स्वर्गीय भागीरथ कानोड़िया स्मृति-ग्रंथ

स्वर्गीय भागीरथ कानोड़िया

स्मृति-ग्रंथ

स्वर्गीय भागीरथ कानोड़िया
स्मृति-ग्रंथ

सम्पादक

भंवरमल सिंघी

प्राक्कथन

इस ग्रन्थ को पाठकों को सौंपते हुए मन में कई प्रकार के भाव आते हैं। कहीं एक विनम्र व्यक्ति के प्रति, जिसने प्रचार और आत्म-प्रदर्शन से दूर रह कर सारे जीवन पीड़ितजनों की सेवा करने की भरसक चेष्टा की, आदर और श्रद्धा व्यक्त कर पाने का थोड़ा-बहुत सन्तोष भी होता है।

इस ग्रन्थ में प्रकाशित १४१ लेखों से यह प्रकट है कि स्वर्गीय श्री भागीरथजी के जीवन का अर्थ ही मनुष्य मात्र की सेवा था। जहां कहीं भी पीड़ा होती, दुख होता, वे उसे दूर करने में लग जाते—यह पीड़ा या दुख; चाहे मनुष्य पर मनुष्य के अत्याचार के कारण हो, चाहे राजनीति द्वारा थोपे गये अन्याय के कारण हो, चाहे समाज द्वारा किये गये पाप के कारण हो, चाहे प्राकृतिक विपत्तियों के कारण हो, भागीरथजी जितना हो सके उतना उस पीड़ा को कम करने या मिटाने में दत्तचित्त होकर लग जाते थे। सच्ची बात तो यह है कि वे असली अर्थों में वैष्णव जन थे। नरसी मेहता का वह भजन, जो गांधीजी को बहुत प्रिय था, "वैष्णव जन तो तेने कहिये, जे पीर पराई जाने रे", भागीरथजी खूब जानते थे और उसे अपने जीवन में भरसक उतारने की कोशिश करते थे। वे सचमुच 'वैष्णवजन" थे।

भागीरथजी आत्मश्लाघा और परनिन्दा से बहुत दूर रहते थे। इन पंक्तियों के लेखक और भागीरथजी के कई मित्रों के आग्रह से भी यह सम्भव नहीं हो सका कि उनके जीवन-काल में उनका अभिनन्दन किया जा सके और उनके अभिनन्दन ग्रन्थ की कोई योजना बने। इस विषय में भागीरथजी ने प० बनारसीदासजी चतुर्वेदी और श्री गोविन्दप्रसाद केजड़ीवाल को जो पत्र लिखे, वे यह बताते हैं कि किस हद तक वे सम्मान से बचना चाहते थे। दोनों को ही लिखे उनके वे पत्र इस ग्रन्थ में पाठकों को पत्र-खण्ड के प्रारम्भ में ही पढ़ने को मिलेंगे।

भागीरथजी की मृत्यु के बाद यह तय किया गया कि अभिनन्दन ग्रन्थ तो निकाला नहीं जा सका लेकिन उनका स्मृति-ग्रन्थ जरूर निकाला जाय। इस काम को करने के लिए आज से सवा साल पहले भागीरथजी के परम मित्र श्री सीतारामजी

सेकसरिया की अध्यक्षता में 'श्री भागीरथ कानोड़िया स्मारक समिति' गठित की गयी। समिति का मन्त्री मुझे बनाया गया और अन्य सदस्य हैं : सर्वश्री गंगाशरण सिंह, बनारसीदास चतुर्वेदी, सिद्धराज ढढ्ढा, भगवतीप्रसाद खेतान, यशपाल जैन, कृष्णचन्द्र अग्रवाल, कल्याणमल लोढ़ा, कन्हैयालाल सेठिया, बदरीनारायण सोढाणी, विष्णुकान्त शास्त्री और श्री रतनशाह (उप-मन्त्री)। यह तय किया गया था कि स्मृति-ग्रन्थ भागीरथजी की ८७वीं वर्षगांठ, २५ जनवरी, १९८१ को प्रकाशित किया जाय पर यह न हो सका। कलकत्ता में बैठ कर समय के बारे में निश्चित नहीं हुआ जा सकता। बिजली की कठिनाई तो है ही फिर सम्पादक की बीमारी भी बड़ा कारण रही। देश भर में भागीरथजी के परिचितों और मित्रों से पत्र-व्यवहार कर लेख मंगाने और उनका चयन करने के बाद वह अचानक बीमार पड़ गया। बीमारी के बाद देख-रेख करने के सिवाय ज्यादा कुछ नहीं कर पाया। इससे काम में देर तो हुई ही और मुद्रण का काम तो वह बिलकुल ही देख न सका।

यद्यपि भागीरथजी का कर्मस्थल अधिकांशतः कलकत्ता और राजस्थान ही रहा है लेकिन उन्हें इन दो भौगोलिक सीमाओं में बांधा नहीं जा सकता। जैसाकि ऊपर लिखा है, जहां कहीं भी पीड़ा होती वे दौड़कर वहां जाने की कोशिश करते थे। बंगाल का १९४३ का दुर्भिक्ष हो, राजस्थान का सूखा और अकाल हो या १९३४ का बिहार का भूकम्प हो, भागीरथजी सच्चे मन से इनकी विभीषिका को कम करने में जुटे। पीड़ित की सेवा करने में ही उन्हें अपने जीवन की सार्थकता महसूस होती थी। उनके बारे में सभी जगहों के और सभी तरह के कार्यकर्ताओं ने इस ग्रन्थ में लिखा है। हमें ऐसा नहीं लगा कि जितने भी लेख आये, उनमें से किसी को भी बाद दें। इससे पाठकों के साथ थोड़ा अन्याय यह हुआ है कि उन्हें जगह-जगह दुहरावट मिलेगी लेकिन हम लेखकों की बातों को जस का तस ही देना चाहते थे। फिर भी कुछ लेखों में हमें बहुत मामूली सम्पादन करना पड़ा है। हम चाहते तो और भी लेख मंगा सकते थे लेकिन कहीं तो सीमा माननी ही पड़ती है।

लेख कुल मिला कर भागीरथजी के जीवन के लगभग सभी पहलुओं को समेट लेते हैं। परदुखकातर भागीरथजी बहुत विनोदी स्वभाव के भी थे। छोटा से छोटा हो या बड़ा से बड़ा, विनोद करके वे सबको हंसाने में माहिर थे। उनके विनोद की भी झलक इस ग्रन्थ में जहां-तहां दिखायी पड़ती है।

हां, भागीरथजी के कहावतों सम्बन्धी कार्य पर चाह कर भी ग्रन्थ में कोई लेख हम नहीं दे पाये। इस विषय में हमने बाहर के कई अधिकारी विद्वानों से अनुरोध किया और लेख भेजने का वचन भी हमें मिला पर अन्ततः कोई लेख आया पार नहीं पड़ा। अन्त में हमने कलकत्ता के श्री रेवतीलाल शाह से इस विषय में कुछ लिखने को कहा। उनका लेख एकदम अन्तिम समय में मांगा गया था और तब तक लेखों का खण्ड छप चुका था, इसलिए उसे परिशिष्ट में दिया जा रहा है।

१४१ संस्मरणों में स्वातंत्र्य-संग्राम के सेनानियों, सामाजिक कार्यकर्ताओं, साहित्यिकों और महिला कार्यकर्ताओं के अलावा भागीरथजी के मित्रों, सहयोगियों और परिवार के सदस्यों के लेख हैं। उनके सहयोगियों के लेख उनकी परदुखकातरता, सौजन्य, विनम्रता के उदाहरण पेश करते हैं। ऐसे कई लेख तो अत्यन्त मार्मिक हैं। परिवार के सदस्यों के लेख भागीरथजी के पारिवारिक जीवन की बहुत ही सरस झांकी प्रस्तुत करते हैं।

इस ग्रन्थ में उनकी जीवनी प्रस्तुत करना काफी कठिन था क्योंकि भागीरथजी ने अपने बारे में या अपने काम के बारे में कहीं नहीं लिखा। उनके पास कोई 'रेकार्ड' नहीं थे। ऐसी हालत में भागीरथजी के मित्रों, स्वजनों से मिलकर और खासकर उनके घनिष्ठतम मित्र श्री सीतारामजी सेकसरिया की डायरियां पढ़कर जीवन-वृत्त लिखा गया। १९४३ के बंगाल के अकाल में भागीरथजी ने बहुत बड़ा काम किया था। उस वक्त इन पंक्तियों का लेखक जेल में था। जेल से छूटने पर उसे पता लगा कि कितना बड़ा काम भागीरथजी ने किया। इस काम के बारे में भी भागीरथजी ने एक भी कागज अपने पास नहीं रखा था। इत्तफाक से बंगाल रिलीफ कमेटी में भागीरथजी के सहयोगी श्री कृष्णचन्द्र महापात्र ने उस समय के सारे कागजात अपने पास सुरक्षित रखे। उनके सौजन्य से ही हम इस ग्रन्थ में बंगाल रिलीफ कमेटी के नाम आये दो ऐतिहासिक तार और १९४७ के अपने 'चमत्कारपूर्ण' कलकत्ता-अनशन के बाद गांधीजी द्वारा दंगा-पीड़ितों के पुनर्वास के लिए एक कमेटी गठित करने का निर्देश देने वाला पत्र परिशिष्ट में छाप रहे हैं। निर्देश-पत्र भागीरथजी ने गांधीजी के डिक्टेशन पर लिखा था और उस पर गांधीजी के हस्ताक्षर हैं। जीवन-वृत्त श्री अशोक सेकसरिया ने लिखा है। हमारा विश्वास है कि यह भागीरथजी को समझने में सहायक होगा।

ग्रंथ के पत्र-खण्ड में भागीरथजी के कुछ पत्र दिये गये हैं। उनके पत्रों की बात तो विचित्र हैं। न मालूम कितने हजार पत्र उन्होंने लिखे होंगे। पत्रों में गम्भीर से गम्भीर समस्या को सरल भाषा में मनोविनोद के साथ प्रस्तुत करना उनका स्वभाव था। दुर्भाग्य से बहुत कम लोगों के पास उनके लिखे हुए पत्र मिले। वे स्वयं तो कोई पत्र रखते ही न थे। आये हुए हर पत्र का जवाब देना, उनका सहज स्वभाव था और आये हुए पत्र को फाड़ देना भी। अगर बहुत सारे पत्र मिल जाते तो उनका एक अलग संकलन बहुत काम का बन सकता था। फिर भी जो थोड़े से पत्र मिले उनमें से कुछ को इस ग्रन्थ में दिया जा रहा है।

भागीरथजी ने बहुत ऊंची शिक्षा प्राप्त नहीं की थी लेकिन साहित्य में उनकी सहज रुचि थी और भक्ति-साहित्य तो उन्हें अत्यन्त प्रिय था। अंग्रेजी के भी वे अच्छे जानकार थे। उन्होंने जो कुछ लिखा वह हमारी दृष्टि में बहुत अच्छे स्तर का है। उनके बहुत थोड़े लेख मिले और जो मिले वे हम अपनी याददाश्त के सहारे ही इकट्ठा कर पाये। उनकी कहावतों की कहानियों के लोकप्रिय संग्रह 'बहता पानी निर्मला'

से चुनकर चार कहानियां इस ग्रन्थ में दी गयी है। ये कहानियां भागीरथजी की भाषा और उनकी लेखन शैली की सहजता का अच्छा परिचय देती है।

इस ग्रन्थ के काम में बहुत लोगों ने सहयोग दिया। श्री राजेन्द्र कुमार बागड़ोदिया और श्री जयप्रकाश शर्मा ने राजस्थान की संस्थाओं और कार्यकर्ताओं से लगातार पत्र-व्यवहार कर सामग्री भिजवायी। भागीरथजी को तस्वीर खिचवाने से बड़ी विरक्ति थी। उनकी तस्वीरें प्राप्त करना भी वड़ा कठिन था। वनस्थली से श्री प्रह्लादनारायण पुरोहित ने हमें भागीरथजी के वनस्थली में खींचे गये ११ चित्र भेजे जिनमें तीन इस ग्रन्थ में दिये जा रहे हैं। भागीरथजी की ज्येष्ठ पुत्री सावित्री खेमका से भागीरथजी के अग्रज गंगाबक्सजी का दुर्लभ चित्र और अन्य कुछ चित्र प्राप्त हुए।

भाई यशपाल जैन का आभार प्रकट करना तो महज शिष्टाचार होगा। इस ग्रन्थ की कल्पना में और उसको मूर्त्त रूप देने में वे सब समय हमारे ही साथ थे। एक समय तो ऐसा भी आया था कि यह तय हुआ कि ग्रन्थ का मुद्रण दिल्ली से ही हो और वे ही उसका काम देखें, बाद में किसी तरह कलकत्ता में ही व्यवस्था बैठ गयी।

यह थोड़े दुख की बात है कि बहुत सतर्कता बरत्तने की कोशिश के बावजूद मुद्रण में भूलें रह गयी हैं और वर्तनी में भी समरूपता नहीं रखी जा सकी है। ग्रन्थ का कलेवर भी उतना सुन्दर नहीं बन पाया है जितना हमने चाहा था पर जो चाहा वह कब हुआ है ?

जो हो भागीरथजी का जीवन ऐसा है, उसकी हर घटना ऐसी है जिसको जानने और समझने से प्रेरणा मिले। इस ग्रन्थ का महत्व इसी बात में है कि यह उस प्रेरणा को विस्तार देने का एक माध्यम है।

५३३ लेक गार्डेन्स
कलकत्ता-७०००४५

भंवरमल सिंघी

अनुक्रम

चित्रों की तालिका

भागीरथ कानोड़िया

जन्म : मुकुन्दगढ़, २५ जनवरी, १८९५ मृत्यु : कलकत्ता, २९ अक्टूबर, १९७९

परिशिष्ट—४९१ से ५०६

चित्रों की तालिका

भागीरथ कानोड़िया

जन्म : मुकुन्दगढ़, २५ जनवरी, १८९५ मृत्यु : कलकत्ता, २९ अक्टूबर, १९७९

१
प्रवेश

एक ऐसे व्यक्ति की, जिसने चुपचाप स्वधर्म का निर्वाह किया हो, जीवनी लिखना उतना ही कठिन है जितना कि किसी गुप्त दानी के दान का पता लगाना। स्व० भागीरथ कानोड़िया के बारे में ये दोनों ही बातें लागू होती हैं, सो उनकी जीवनी लिखना सहज नहीं। जीवनी लिखने के लिए उनके परिवार के लोगों और सहकर्मियों से मुलाकात करके, कलकत्ता के मारवाड़ी समाज सम्वन्धी साहित्य तथा उनके परम मित्र श्री सीताराम सेकसरिया की पचास वर्षों की डायरियां पढ़ कर हमने उनके बारे में काफी-कुछ जाना है, लेकिन हमें शक है कि सूचनाएं और जानकारियां संग्रह करने के वावजूद हम भागीरथजी को ठीक तरह से पकड़ पाये हैं। वह हमारी मुट्ठी से बार-बार फिसल जाते हैं। यह शायद ठीक भी है, क्योंकि अपने ८५ वर्ष के जीवन में उन्होंने कहीं भी और कभी भी अपने को सिद्ध करने का कोई प्रयत्न नहीं किया, जो किया वह सब सहज भाव से और अपने संस्कारी स्वभाव के चलते किया। ऐसे व्यक्ति को हम कुछ सिद्ध करें, यह उसकी स्मृति के प्रति अन्याय ही होगा।

यह छिपाना नहीं है कि हमारे मन में उनके प्रति श्रद्धा और कृतज्ञता का ऐसा भाव है, जो हमसे अतिशयोक्तियां करवा सकता है, लेकिन एक बचत भी है और वह है भागीरथजी की अपनी प्रशंसा के प्रति विरक्ति। एक प्रसंग याद आता है—एक व्यक्ति भागीरथजी के सामने उनकी अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा कर रहा था तो उन्होंने उससे कहा : "आप इतनी हलकी बातें क्यों करते हैं?" उनकी स्मृति का तकाजा है कि हम हलकी बातें न लिखें, लेकिन यह सामर्थ्य हममें है या नहीं है, इसका निर्णय तो वही करेंगे जो इस वृत्तांत के पाठक हैं।

हमारे देश में आज से पैंसठ-सत्तर वर्ष पहले समाप्त हुई शताब्दी में (१८१०-१९१०) दो प्रवृत्तियां स्पष्ट दिखायी देती थीं। एक, अपने धार्मिक और सामाजिक संस्कारों को ही मानवीय और न्यायपूर्ण ढंग से विकसित करने की और दूसरी, पाश्चात्य प्रभाव से अपने को रंग डालने की। पहली प्रवृत्ति आत्म-निरीक्षण और आत्म-परिष्कार पर बल देती थी, तो दूसरी प्रवृत्ति आत्म-निरीक्षण और आत्म-परिष्कार की जहमत मोल लेने के बजाय पश्चिम के अंधानुकरण को ही सारी समस्याओं का हल मानती थी। हमने पाया है कि जिन लोगों में पहली प्रवृत्ति का उत्कर्ष देखा गया, उन्हीं लोगों ने समाज को कहीं बदला; दूसरी प्रवृत्ति के लोगों ने तो सिर्फ एक ऐसा ऊपरी ढांचा बनाने में ही मदद की जिसके कारण, देश को आजादी के बाद से हम एक ही साथ उपभोक्ता-संस्कृति और मार्क्सवादी विचारधारा के प्रभाव में आकर आज एक ऐसी स्थिति में पहुंच गये हैं, जिसमें सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक जीवन में कोई मूल्य ही नहीं रह गये हैं और वैषम्य व अन्याय दिनोंदिन बढ़ते ही जा रहे हैं। ऐसी

मूल्यहीन दशा में जब अश्रद्धा और अनुदारता का प्रचण्ड वातावरण हो, तब भागीरथजी जैसे संस्कारी व्यक्ति को, जिसने अपनी सीमाओं के दायरे में अपने धार्मिक और सामाजिक संस्कारों को रूपांतरित किया, समझना और समझाना अत्यन्त कठिन है।

'संस्कार' शब्द की शायद दुनिया की किसी अभारतीय भाषा में पर्यायवाची संज्ञा नहीं है, क्योंकि 'संस्कार' विशुद्ध रूप से एक भारतीय अवधारणा है, जिसमें पूर्व-जन्म और पुनर्जन्म की कल्पना निहित है, और जो व्यक्ति के मन में पाप और पुण्य की भावना को भी जन्म देती है। गांधीजी जैसा व्यक्ति जब बिहार के १९३४ के भयानक भूकम्प को हरिजनों पर सदियों से किये जा रहे अत्याचारों का परिणाम बताता है या सामान्य आदमी किसी अत्याचारी की आकस्मिक या दुर्घटना में मृत्यु को उसकी करनी का फल कहता है, तो यही 'संस्कार' काम करता होता है, भले ही वह कर्म के सिद्धांत को बौद्धिक रूप से न मानता हो।

परम्परा और संस्कार एक जैसी चीजें जरूर लगती हैं, लेकिन उनमें निश्चय ही भेद है। हमारे देश में गांधीजी जैसा व्यक्ति पैदा हुआ, जो कहीं भी परम्परावादी न था, लेकिन पूर्ण रूप से संस्कारी था। गांधीजी को परम्परावादी न मानने के बावजूद बहुत से लोग उन्हें क्रांतिकारी नहीं मान पाते हैं तो उसकी वजह यह है कि वे परम्परा और संस्कार के बीच के सूक्ष्म भेद को नहीं समझ पाते। गांधीजी का संस्कारी होना उन्हें क्रान्ति-विरोधी मालूम पड़ने लगता है। सत्य, अहिंसा, अस्तेय और अपरिग्रह के विचार, गांधीजी ने परम्परा के बजाय अपने संस्कारों से ही ज्यादा प्राप्त किये थे। गांधीजी जैसा व्यक्ति रूढ़ियों को निरन्तर तोड़ता है, लेकिन अपने संस्कारों को कभी नहीं मिटाता; वह उन्हें निरन्तर रूपांतरित करता चलता है—जीवन उसके लिए अनवरत 'सत्य की खोज' बना रहता है और खोज के अनुरूप वह अपने को ढालता और परिष्कृत करता रहता है।

ऊपर गांधीजी का उदाहरण देकर जो लिखा गया है उसका उद्देश्य भागीरथजी के जीवन को समझने के लिए एक परिप्रेक्ष्य प्राप्त करना है, क्योंकि गांधीजी के परिप्रेक्ष्य के बिना हम गांधी-युग के भागीरथजी के जैसे लोगों को समझने में भारी भूल कर सकते हैं।

२

जन्म और पूर्वज

भागीरथजी का जन्म आज से ८६ वर्ष पहले संवत् १९५१ के माघ मास की मौनी अमावस, तदनुसार २५ जनवरी सन् १८९५ को राजस्थान के शेखावाटी इलाके के मुकुन्दगढ़ कसबे में हुआ। उस समय शेखावाटी का इलाका, उन्हीं के शब्दों में "तिहरी गुलामी का शिकार था, तिहरी गुलामी—जागीरदारों और ठाकुरों की गुलामी, जयपुर के राजा की गुलामी और इनके ऊपर अंग्रेजी राज्य की गुलामी। गुलामी ही गुलामी चारों तरफ से जन-जीवन को घेरे हुई थी। न थी सामाजिक चेतना, न थी

जागृति, न थे शिक्षा के साधन, न थे आर्थिक प्रगति के उपादान। गरीबी और गर्दिश में से निकलने के लिए शेखावाटी के वैश्य लोग व्यापार-व्यवसाय के लिए अन्यान्य प्रदेशों में गये, जाकर अपने कठोर परिश्रम और विशेष व्यवसाय-बुद्धि से सफलता प्राप्त की, ये सभी लोग 'मारवाड़ी' नाम से अभिहित हुए।"

भागीरथजी के पूर्वज हरियाणा के महेन्द्रगढ़ जिले के एक गांव कानोड़ के रहने वाले थे। कानोड़ से ही कानोड़िया शब्द की उत्पत्ति हुई। मारवाड़ी बनियों की उपाधियां उनके मूल स्थान या उनके किसी आदरणीय पुरखे के नाम से ही उत्पन्न हुई हैं, जैसे पाटोद के रहनेवाले पाटोदिया, झुंझनू के रहनेवाले झुनझुनवाला, जालीरामजी से जालान, खेमचन्दजी से खेमका आदि। आज से लगभग ४०० साल पहले भागीरथजी के पूर्वज कानोड़ छोड़ कर कई स्थानों में रहने के बाद राजस्थान के एक कसबे नवलगढ़ में आकर बस गये। शेखावाटी के प्रसिद्ध ठाकुर शार्दूलसिंहजी के दूसरे बेटे नवलसिंहजी ने नवलगढ़ बसाया था। नवलसिंहजी के वंश में आगे जाकर मुकुन्दसिंहजी पैदा हुए। वह नवलगढ़ के चौथे हिस्से के मालिक थे, लेकिन वह अपनी अलग हैसियत अर्थात् अपने नाम का गढ़ बसाना चाहते थे। उन्होंने नवलगढ़ से चार कोस दूर सावसर में 'गढ़' बसाने का निर्णय किया। कानोड़िया परिवार नवलगढ़ के सम्पन्न परिवारों में गिना जाता था। मुकुन्दसिंहजी चाहते थे कि नयी बस्ती में यह सम्पन्न परिवार बसे। उन्होंने भागीरथजी के परदादा जोखीरामजी को सावसर में बसने के लिए राजी कर लिया। जोखीरामजी ने नवलगढ़ में एक कुआं और शिव-मन्दिर बनाया था। कुआं आज भी "जोखीरामजी का कुआं" के नाम से प्रसिद्ध है और कानोड़िया परिवार ही अभी भी उसकी देख-रेख करता है। संवत् १९१६ में सावसर की नई बस्ती का मुकुन्दसिंहजी ने अपने नाम पर नाम रखा मुकुन्दगढ़। कानोड़िया परिवार की मुकुन्दगढ़ को बसाने में प्रमुख भूमिका रही थी सो प्रारम्भ से ही उसकी वहां धाक थी।

मुकुन्दगढ़ के संस्थापक मुकुन्दसिंहजी के बारे में कई किस्से प्रचलित हैं। एक किस्सा यहां लिखा जा रहा है। इससे उस जमाने के ठाकुरों की अकड़ और प्रदर्शन-प्रियता का थोड़ा-बहुत पता लगता है। उन दिनों शेखावाटी में प्रायः सभी जरायम पेशा जातियों को मीणा कहा जाता था। जो चोरियां होतीं उनके लिए मीणा ही जिम्मेदार ठहराये जाते। मुकुन्दसिंहजी के समय उदयराम नाम का एक मीणा अपनी फुर्ती, तेजी और होशियारी के लिए मशहूर था। राजस्थान के शेखावाटी इलाके में सत्यनारायण सतिया हो जाता हैं, सीताराम सीतिया हो जाता है, भागीरथ भागीरथा हो जाता है, सो मीणा उदयराम "उदिया" के नाम से ही जाना जाता था। कहते हैं कि उदिया सीधी दीवार पर चढ़ जाता था। वह चोरी करते हुए कभी नहीं पकड़ा गया, लेकिन ठाकुर मुकुन्दसिंहजी ने उसे एक बार पकड़ लिया और उसका सिर काट कर नवलगढ़ के चार फाटकों में से एक अगुना दरवाजे (पूर्वी दरवाजे) पर टांग दिया। अगुना दरवाजा नवलगढ़ का सबसे ऊंचा फाटक है। कहते हैं उदिया का कटा हुआ मुण्ड अगुना दरवाजे पर महीनों लटका रहा और लोगों में दहशत फैलाता रहा। लेकिन मुकुन्दगढ़ बसाने में इन्हीं मुकुन्दसिंहजी ने काफी विनम्रता और उदारता बरती और लोगों को वहां मुफ्त जमीन दे-दे कर बसाया।

जब मुकुन्दगढ़ बसा तो जोखीरामजी काफी बूढ़े हो चले थे। ठाकुर मुकुन्दसिंहजी ने उन्हें नये गढ़ के प्रधान पंच का पद संभालने को कहा, पर वृद्धावस्था के कारण वह राजी नहीं हुए। इस पर उनके बेटे और भागीरथजी के दादा जयनारायणजी को प्रधान पंच बनाया गया।

जयनारायणजी शेखावाटी के मारवाड़ी बनियों की उस पीढ़ी में आते हैं जिसने देश के विभिन्न भागों में जाकर व्यापार करना शुरू किया। जयनारायणजी रुई और अफीम के व्यापार के सिलसिले में इन्दौर, उज्जैन और बम्बई तक गये थे। उन्होंने इतना कमाया कि कानोड़िया परिवार शेखावाटी के सम्पन्न परिवारों में गिना जाने लगा। उस समय देश के मारवाड़ी बनिया परिवारों में सबसे पहले सम्पन्न और धनी होनेवाला फर्म था—रामगढ़ के पोद्दारों का ताराचन्द-घनश्यामदास फर्म। इस फर्म के भाई जोहरीमल-रामलाल पोद्दार के यहां जयनारायणजी के पुत्र और भागीरथजी के पिता रामदत्तजी का विवाह हुआ। यह विवाह निश्चय ही कानोड़ियों की समृद्धि और प्रतिष्ठा का सूचक था। कहते हैं कि पोद्दारों को यह लगा कि कानोड़ियों की बारात बहुत छोटी आयेगी, सो उन्होंने जयनारायणजी को कहलाया कि ऐसी बारात न आये कि हमारी जगहंसाई हो। ठाकुर मुकुन्दसिंहजी को जब इस बात का पता चला तो उन्होंने इसे मुकुन्दगढ़ की प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया, जयनारायणजी को कहा : "आप बिल्कुल चिन्ता न करें। ऐसी बारात जायेगी जैसी आज तक किसीकी नहीं गयी।" और सचमुच ही मुकुन्दसिंहजी ने बारात को सेना जैसा रूप दे दिया—२०० घोड़ों और हाथियों तथा नवलगढ़, मंडावा, बिसाऊ और आसपास के इलाकों के सात-आठ जागीरदारों समेत जब बारात का लश्कर रामगढ़ पहुंचा तो पोद्दारों को समझ नहीं आया कि 'इत्ती' 'छोटी बारात' का कैसे स्वागत करें।

जयनारायणजी के बारे में एक किस्सा मशहूर है कि वह अपने मातहत लोगों के खिलाफ चुगली सुनना पसन्द नहीं करते थे और किसी को भी अपमानित किया जाना उन्हें बरदाश्त नहीं होता था। उन्होंने काफी कमाया था सो घर में सभी चीजों की इफरात रहती थी। घी के कनस्तर भरे रहते थे और नौकर-चाकर भी काफी थे। एक नौकर रोज शाम को घर जाते समय अपने लोटे में घी भर कर ले जाता था। किसी ने जयनारायणजी से इसकी शिकायत की तो उन्होंने कहा : "ठीक है, तुम कल उसे रंगे हाथों पकड़वाना।" दूसरे दिन सुबह-सुबह ही उन्होंने नौकर को बुलाया और कहा : "आज जब तुम घर जाओ तब अपने लोटे में बालू भर कर ले जाना। देखो, इसमें कोई चक न हो, यह मेरा हुक्म है।" शाम को वह व्यक्ति रंगे हाथों पकड़वाने को हाजिर हुआ। नौकर घर जाने लगा तो उसने जयनारायणजी को कहा : "अब आप इसका लोटा देखिये।" जयनारायणजी ने नौकर को बुलाया और कहा : "लोटा उलटो।" घी के बदले बालू देख कर चुगलखोर के पास आगे कुछ कहने को नहीं रहा।

एक किस्सा जयनारायणजी की पत्नी यानी भागीरथजी की दादी के बारे में भी है। कहते हैं कि वह बड़ी नेक, न्यायप्रिय और दयालु थीं। एक बार जयनारायणजी को मंडावा में किसी सौदे में बहुत रुपये आये। जिन लोगों ने खोये

उनमें से कुछ ने तो रुपये लाकर दे दिये लेकिन अधिकांश ने रुपयों के एवज में घर के गहने दिये। रुपये और गहने लेकर वह घर पहुंचे। पत्नी ने जब पति के पास गहने देखे तो पूछा, "यह गहने कैसे ?" तो बताया गया कि जो लोग रुपये नहीं दे सके, उन्होंने गहने दिये हैं। इस पर वह बोलीं : "जिनके घर से गहना आया है उनके घरों में आज चूल्हा नहीं जलेगा, दूसरों के आंसुओं से भींगा धन जब तक हमारे घर में रहेगा तब तक मैं अन्न-जल ग्रहण नहीं करूंगी।" जयनारायणजी को पत्नी की बात माननी पड़ी और उन्होंने तुरन्त मुनीम को मंडावा भेज कर गहने लौटा दिये। भागीरथजी के भतीजे प्रसिद्ध उद्योगपति राधाकिशनजी कानोड़िया का कहना है कि कानोड़िया परिवार की उन्नति के पीछे परिवार की महिलाओं का बहुत बड़ा योगदान है; उनके धार्मिक और सत्स्वभाव के कारण मुसीबत के दिनों में भी परिवार की इज्जत बनी रही।

जयनारायणजी के चार पुत्र हुए—जानकीदासजी, हरदेवदासजी, हरिरामजी और भागीरथजी के पिता रामदत्तजी। इन चार भाइयों में जानकीदासजी ने तो अपना सारा समय पूजा-पाठ और ईश्वर-भजन में ही बिताया। चारों पुत्रों के जन्म के साथ-साथ तीस साल की अवधि में परिवार की समृद्धि बढ़ती ही गयी, लेकिन इसके बाद अफीम के व्यवसाय में मन्दी आने पर जयनारायणजी ने रुई के व्यापार से स्थिति को सम्भालने की कोशिश जरूर की, पर वह सम्भल न सकी और घर के गहने बेचने तक की नौबत आ गयी। धीरे-धीरे कानोड़िया परिवार इतना विपन्न हो गया कि उसे घर की बहली (दो पहियों का छोटा रथ) तक को बेचना पड़ा और यह बहली बिकी ग्यारह रुपयों में और पौने चार रुपये प्रत्येक भाई को मिले। राधाकिशनजी कानोड़िया ने बताया "संवत् १९३० (सन् १८७३-७४) तक कानोड़िया आसामी बड़ी थी, पर इसके बाद हालत कमजोर होती गयी और यह उतार भी लगभग तीस वर्षों तक चला जब भागीरथजी का जन्म संवत् १९५१ (सन् १८९५) में हुआ तब कानोड़िया परिवार की आर्थिक हालत कतई अच्छी नहीं थी, यद्यपि मुकुन्दगढ़ में उसकी प्रतिष्ठा में किसी भी प्रकार की कमी नहीं आयी थी।

भागीरथजी के पिता रामदत्तजी ने परिवार की हालत सम्भालने के लिए कलकत्ता की यात्रा की और वहां दलाली का काम करने लगे और उनके प्रयत्नों से परिवार की हालत थोड़ी सुधरी भी। एक सम्पन्न फर्म में ब्याहे जाने के बावजूद रामदत्तजी ने अपने ससुरालवालों से कभी किसी प्रकार की आर्थिक मदद नहीं चाही, अपने बूते पर ही खड़े होने की कोशिश की। उनके बारे में ज्यादा पता नहीं, शायद वह भी अपने पुत्र भागीरथजी की तरह ही संकोची और अपने को प्रकट करने से कतरानेवाले व्यक्ति रहे होंगे। बहरहाल, उनके बारे में दो किस्से सुनने को मिले, जो उनकी उदारता और कर्त्तव्यपरायणता को दरशाते हैं। पहला, उनके कलकत्ता-प्रवास का है। रामदत्तजी भी अपने बड़े भाई जानकीदासजी की तरह ही धार्मिक व्यक्ति थे। कलकत्ता रहते तो रोज गंगा-स्नान को जाते। एक दिन वह गंगा-स्नान करके लौट रहे थे तो रास्ते में एक बंगाली जमींदार के घर का दरवान अपनी बन्दूक साफ कर रहा था। बन्दूक में कोई छर्रा रह गया था जो निकल कर रामदत्तजी के घुटने में आ लगा। उन्होंने दरवान को कुछ नहीं कहा और गद्दी (काम करने और रहने दोनों का स्थान)

चले आये। लोगों ने पुलिस में रपट लिखाने को कहा तो उन्होंने कहा : "डाक्टर बुलवा कर छर्रा निकलवा दीजिये, मुझे किसी गरीब की नौकरी नहीं छुड़ानी है।"

दूसरा किस्सा मुकुन्दगढ़ का है। लड़कों का एक टोला तालाब में नहा रहा था। एक लड़का नहाते-नहाते डूब गया। चीख-पुकार मची तो शोर सुन कर रामदत्तजी पहुंचे और तालाब में कूद पड़े। उन्होंने लड़के को किसी तरह बाहर निकाला, दूसरे लड़कों को दौड़ा कर तुरन्त वैद्य को भी बुलाया पर लड़का बच नहीं सका।

रामदत्तजी के तीन पुत्र और दो पुत्रियां हुईं—गंगाबक्स, प्रह्लाद और भागीरथ तथा नर्मदा और कृष्णा। तीनों भाइयों में बड़े होने के कारण गंगाबक्सजी के मन में परिवार की हालत सुधारने की इच्छा सबसे ज्यादा बलवती थी। परिवार की उन्नति और समृद्धि के लिए उन्होंने अपने को बचपन से ही झोंक दिया। १३-१४ वर्ष की उम्र में एक बार बम्बई में भाग्य आजमाने के बाद वह कलकत्ता चले आये और बिड़लों की गद्दी "बलदेवदास-जुगलकिशोर" में मुनीमी करने लगे। भागीरथजी के निर्माण में उनके बड़े भाई गंगाबक्सजी की क्या भूमिका रही, इसका अन्दाज लगा पाना मुश्किल है। यहां हम इतना ही कह कर संतोष करते हैं कि भागीरथजी का जो चरित्र और व्यक्तित्व बना, वह गंगाबक्सजी के बिना शायद बन नहीं पाता। उन्होंने भाई से भी ज्यादा पिता की तरह भागीरथजी को बनाने में योग दिया।

३

प्रारम्भिक जीवन

भागीरथजी के बचपन के बारे में हम कोई जानकारी इकट्ठा नहीं कर पाये क्योंकि उनके समवयस्क लोग अब नहीं के बराबर हैं। उनके परम मित्र सीतारामजी ने, जो उनसे ढाई वर्ष बड़े हैं, बताया कि तेरह वर्ष की उम्र में उनका भागीरथजी से पहली बार परिचय हुआ था, "संवत् १९६२ में नवलगढ़ (सीतारामजी का जन्म-स्थान) में प्लेग की बीमारी फैली तो मैं मेरे पिताजी के मामा के परिवार के साथ मुकुन्दगढ़ चला आया। उस समय मेरी उम्र १३ वर्ष की थी। मुझे मुकुन्दगढ़ की पाठशाला में दाखिल किया गया। इसी पाठशाला में भाई भागीरथजी भी पढ़ा करते थे। तब उनकी उम्र साढ़े दस बरस की थी। यह मेरा उनका पहला परिचय था। मैं ढाई-तीन महीने मुकुन्दगढ़ रहने के बाद नवलगढ़ लौट आया। इसके ७-८ वर्ष बाद जब मैं कलकत्ता आया, तब पहले परिचय के आधार पर फिर परिचय हुआ पर घनिष्ठता नहीं हुई, घनिष्ठता तो लगभग बीस वर्ष बाद जाकर हुई।" भागीरथजी के बचपन के बारे में सीतारामजी भी पाठशाला में तीन महीने के अपने साथ के सिवाय कुछ न बता सके।

भागीरथजी की मृत्यु के दो-एक साल पहले उनकी जीवनी लिखने के मकसद से यह सोचा गया था कि उनके बचपन के बारे में उनसे कुछ मोटी-मोटी जानकारी हासिल की जाय। वह अपने बारे में कुछ भी लिखे जाने के विरुद्ध थे। ज़ीवन-काल में उनके

अभिनन्दन की कई योजनाएं बनीं लेकिन उनका उन्होंने इतनी कड़ाई से विरोध किया कि वे उनके प्रशंसकों और भक्तों के मन में ही रह गयीं। दो-एक साल पहले 'धोखा' देकर उनके बचपन के बारे में जानने की बात भी सोची गयी—भागीरथजी को राजस्थान और खासकर शेखावाटी के जन-जीवन और वहां की कहावतों, लोक-कथाओं और रीति-रिवाजों के बारे में बताने में बहुत रस आता था, सो यह कह कर कि "हम आपके बचपन के समय की शेखावाटी के बारे में जानना चाहते हैं," प्रकारांतर से उनके बचपन के बारे में जानकारी प्राप्त की जाय, किन्तु यह भी सम्भव नहीं हुआ।

सो भागीरथजी के बचपन के बारे में मोटी-मोटी जानकारी भी नहीं है। दो-एक बातें अलबत्ता अनुमान से लिखी जा सकती हैं। मारवाड़ी बोली में आर्थिक स्थिति के अच्छी न होने को प्रकट करने के लिए बहुत ही व्यंजनात्मक रूप में 'फीका' शब्द का प्रयोग किया जाता है, जैसे आजकल फलां परिवार 'फीका' है। तो जब भागीरथजी का जन्म हुआ तब मुकुन्दगढ़ के कानोड़िया फीके थे। किसी भी परिवार में और खासकर मारवाड़ी बनिया परिवार में आर्थिक स्थिति के अच्छे न होने का प्रभाव सर्वव्यापी और सर्वनाशी होता है। ऐसे में भागीरथजी का बचपन निश्चय ही उन्मुक्तता और हंसी-खुशी के वातावरण में नहीं बीता होगा। माता-पिता की छोटी सन्तान होने के कारण हो सकता है कि उन्हें ज्यादा ही स्नेह मिला हो, पर इस विषय में हमें कुछ पता नहीं। यह जानने की जरूर इच्छा होती है कि बचपन में मित्रों के साथ उनके झगड़े होते थे या नहीं, क्योंकि उनके साथ कभी किसी मित्र के झगड़ा होने की बात सुनने में नहीं आयी।

भागीरथजी के जन्म (संवत् १९५१) के पांच साल बाद राजस्थान में भीषण अकाल पड़ा था, जिसे छपनिया (संवत् १९५६ का) अकाल कहा जाता है। इस अकाल की कहानियां बहुत दिनों तक चलती रहीं। संवत् १९५६ के दस-पन्द्रह साल बाद तक जनमे लोग भी उन्हें सुनाते हैं। उस अकाल की विभीषिका का वर्णन करने-वाले कितने ही गीत उस जमाने में चल पड़े थे। भागीरथजी बहुत आर्द्र होकर छपनिया अकाल के मशहूर गीत "छपन्या रै छपन्या बैरी, ओजूं मत आज्ये म्हारे देस बैरी" का उल्लेख किया करते थे। इस अकाल की उनके शिशु-मन पर कहीं न कहीं बहुत गहरी छाया पड़ी होगी, क्योंकि कहीं भी अकाल पड़ने पर उन्हें इस अकाल की हमेशा याद आती। १९७२-७३ के राजस्थान के अकाल के बारे में अपने एक लेख (चौरङ्गी वार्ता, ५ फरवरी १९७३) में उन्होंने लिखा भी था : "यों तो राजस्थान में अकाल की शिकायत आये दिन ही रहती है लेकिन किसी-किसी वर्ष का अकाल इतना भयंकर होता कि उसकी कथा अनेक वर्षों तक चलती है। इस तरह का अकाल एक तो विक्रम संवत् १९०० में पड़ा था और दूसरा विक्रम संवत् १९५६ में...। छपनिये अकाल को देखनेवाले अनेक लोग आज मौजूद भी हैं जो आंखों-देखी घटनाओं का हृदय-विदारक वर्णन करते हैं। सन् १९४३ में बंगाल में जो अकाल की स्थिति लोगों ने देखी, करीब-करीब वैसी ही स्थिति संवत् १९५६ में राजस्थान की थी। लोगों की जानकारी के लिए मैं यह लिखना चाहता हूं कि राजस्थान की संवत् १९५६ की दयनीय स्थिति से द्रवित होकर स्वामी विवेकानन्द ने किशनगढ़ (अजमेर

जिला) में रह कर राहत कार्य किया था। एक बार उनके पास राहत कार्य के लिए धन की कमी हुई तो उन्होंने बेलूर स्थित अपने मठ की जमीन भी बेचनी चाही। शिष्यों ने इसका जब हल्का-मीठा विरोध किया तो स्वामीजी ने कहा : "मठ से मनुष्य बड़ा होता है। जमीन को बचाने से मनुष्य को बचाना अधिक आवश्यक है।" जमीन का बैनामा सही करने को जब स्वामीजी कलकत्ता आये तो मैसूर महाराजा को, जो उन दिनों कलकत्ता आये हुए थे, इस बात का पता लगा और उन्होंने स्वामीजी को चालीस हजार रुपये दिये तथा जमीन बेचने से रोक दिया।"

संवत् १९५६ के इस अकाल का श्री घनश्यामदास बिड़ला ने भी बड़ा मार्मिक वर्णन किया है : "मेरी याद में और शायद सारे हिन्दुस्तान में १९५६ संवत् जैसा अकाल नहीं पड़ा।......छप्पन में यों कहना चाहिए कि बरसात हुई ही नहीं...भूख के मारे लोग बच्चे बेचने लगे पर लेनेवाले कहां ? लोगों की कमर में रुपये पड़े रहे और वे भूख के मारे मरते गये। मैंने अपनी आंखों बीसों मुर्दे हमारे गांव के आस-पास सड़ते देखे और सैकड़ों खोपड़ियां बिखरी हुई देखीं...लाखों आदमी राजस्थान में मरे...किसी-किसी घर में तो मुर्दा जलानेवाला भी नहीं बचा।"

जब भी कहीं अकाल पड़ता तो भागीरथजी स्वस्थ हों या अस्वस्थ, दौड़ कर वहां पहुंचते। सन् १९४३ में जब वह जेल से रिहा किये गये तो बंगाल में 'छपनिया' जैसा ही अकाल पड़ा हुआ था। वह तुरन्त कोई सोच-विचार किये बिना राहत कार्यों में जुट पड़े। अकाल, भूकम्प, बाढ़ और दंगों जैसी प्राकृतिक या मानवीय विभीषिकाओं से पीड़ित जनों के प्रति उनकी तीव्र संवेदना के बीज निश्चय ही बहुत बचपन में पड़े होंगे।

दो-एक बातें और अनुमान के आधार पर कही जा सकती हैं। बचपन में कहानियां सुनने और लोगों की बातें सुनने और उन्हें गुनने का उनमें जबरदस्त चाव रहा होगा। १६ वर्ष की उम्र में वह कलकत्ता चले आये और तब से कलकत्ता के ही स्थायी बाशिंदा बन गये हालांकि तब से मृत्यु तक शायद एक भी साल ऐसा न बीता होगा जब वह राजस्थान न गये हों, लेकिन उन्हें शेखावाटी की असंख्य मारवाड़ी कहावतों, लोक-कथाओं और मारवाड़ी शब्दों की व्युत्पत्ति का जैसा ज्ञान था, उसे देखते हुए यह लगता है कि बहुत बचपन में ही यह ज्ञान-भण्डार बनने लगा होगा।

बचपन में वह बहुत धार्मिक भी रहे होंगे। सीतारामजी ने बताया : "१९४२ के आन्दोलन में जब मैं और भागीरथजी एक साथ प्रेसीडेंसी जेल में थे तो हमने एक साथ रोज रामायण का पाठ करने का नियम बनाया। मुझे यह देखकर अचरज हुआ कि मेरी अपेक्षा उन्हें रामायण की चौपाइयां ही नहीं, गीता के श्लोक भी कहीं ज्यादा याद थे, जब कि मैं रामायण और गीता का पाठ नित्य-कर्म की भांति रोज करता हूं।" रामायण और गीता, भागीरथजी ने निश्चय ही सात-आठ वर्ष की उम्र से पढ़नी शुरू की होगी। आज से साठ-सत्तर वर्ष पहले तक शेखावाटी के मारवाड़ी परिवारों में दान, धर्म-ग्रन्थों के पारायण और साधु-सन्तों के सत्संग की परम्परा बनी हुई थी। शेखावाटी के कसबों में दूर-दराज से कोई न कोई साधु या 'सिद्ध-पुरुष' या 'महात्मा' पहुंचा ही रहता था और उसकी बड़ी स्थानीय ख्याति रहती थी। भागीरथजी

के पिता रामदत्तजी धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे और ताऊ जानकीदासजी ने तो अपना सारा समय पूजा-पाठ में ही बिताया। सो बचपन में भागीरथजी के आसपास का वातावरण धार्मिक रहा होगा और उससे उनमें निश्चय ही धार्मिक संस्कारों की जड़ें गहरी जमी होंगी।

भागीरथजी पांच या छह साल की उम्र में मुकुन्दगढ़ में गनेड़ीवालों की पाठशाला में दाखिल हुए। उन दिनों शेखावाटी में शिक्षा की हालत के बारे में भागीरथजी ने खुद लिखा है: "शिक्षा का प्रचार बहुत ही कम था। या तो थोड़ी-बहुत गुरु-चटशालाएं थीं अथवा उर्दू-फारसी पढ़ाने के लिए मकतब। मकतबों में मुसलमान लड़कों को कोई मौलवी या पीर पढ़ाया करता था। इतनी सी लिखाई-पढ़ाई भी कसबों तक ही सीमित थी। छोटे गांवों में तो शिक्षा का नाम ही नहीं था। गुरु-चटशालाओं में छात्रों को अक्षर-ज्ञान करा दिया जाता था, तथा साधारण हिसाब-किताब करने और बही-खाता लिखने की विधि सिखा दी जाती थी। अक्षर-ज्ञान में ह्रस्व-दीर्घ मात्राओं की जानकारी बहुत कम लोगों को ही होती थी। शुद्ध हिन्दी लिखना तो न छात्र को आता था, न छात्र के अभिभावक को और न स्वयं अध्यापक महोदय को ही।" शेखावाटी के "अध्यापक महोदयों" के बारे में भागीरथजी ने जो लिखा है वह उनके गुरु कल्याणबक्सजी जोशी पर अलबत्ता लागू नहीं होता। सीतारामजी ने बताया: "मुकुन्दगढ़ पाठशाला के गुरु कल्याणबक्सजी जोशी मिड्ल या उससे कम पढ़े थे, लेकिन हिन्दी, संस्कृत और उर्दू का उन्हें बहुत अच्छा ज्ञान था। उन्हें बहुत अच्छा शिक्षक भी माना जाता था। उस समय के गुरु लोग लड़कों को बहुत मारा करते थे। कई गुरु तो लड़कों को नीम के पेड़ और दीवार की खूंटी पर लटका देते थे और ऐसे गुरुओं को बहुत अच्छा माना जाता था। कल्याणबक्सजी बहुत अच्छा और मन लगा कर पढ़ाते थे, पर उस जमाने के "अच्छे" गुरुओं की तरह उन्हें भी लड़कों को मारने की आदत थी। वह डंडूकली (डंडे) से मारते थे। मैं मुकुन्दगढ़ की पाठशाला में ढ़ाई-तीन महीने ही पढ़ा। इस बीच मुझे मार नहीं पड़ी। ढाई-तीन महीने में पड़ती भी क्या? भाई भागीरथजी को मेरे रहते कभी नहीं पड़ी और शायद ऐसे भी कभी नहीं पड़ी होगी। वह पढ़ने में बहुत तेज माने जाते थे।"

भागीरथजी के निकट सम्बन्धी ८१ वर्षीय केशरदेवजी कानोड़िया ने कल्याणबक्सजी जोशी के बारे में एक बहुत ही सुन्दर कहानी सुनायी: "मैं भी कल्याणबक्सजी से पढ़ा। वह मारते जरूर थे, पर हमलोगों को बड़ी निष्ठा से पढ़ाया करते थे। सच्चरित्र और साधु स्वभाव के तो इतने थे कि एक बार उनका नौजवान बेटा एक महात्मा के पास मन की शांति प्राप्त करने गया तो उस महात्मा ने उससे कहा: "तेरे घर में तेरा बाप महात्मा है। उसके रहते तुझे मेरे पास आने की जरूरत नहीं।"

भागीरथजी ने मुकुन्दगढ़ की पाठशाला में छह-सात वर्ष तक शिक्षा प्राप्त की। अंग्रेजी, हिन्दी और उर्दू तथा हिसाब की महाजनी पद्धति का साधारण ज्ञान प्राप्त किया। इसी पाठशाला में कलकत्ता के प्रसिद्ध मारवाड़ी सामाजिक-राजनीतिक नेता बसन्तलालजी मुरारका भी कुछ दिनों उनके सहपाठी रहे। इस प्रकार उनकी बचपन

की या स्कूली शिक्षा तो बहुत ही अपर्याप्त रही। भागीरथजी अक्सर कहा करते : "मेरी समूची पढ़ाई पर किताब, स्लेट, बर्त्ता, स्कूल की फीस आदि पर सब मिला कर एक रुपया या बहुत ज्यादा हो तो कुल मिला कर दो रुपया खर्च हुआ होगा।"

राजस्थान से कलकत्ता आने के बाद भागीरथजी ने अपनी कुशाग्र बुद्धि के चलते बहुत कम ही समय में अच्छी अंग्रेजी लिखना-पढ़ना सीख लियां। उनके साथ काम किये हुए सभी लोगों की राय है कि उनका अंग्रेजी में लिखा ड्राफ्ट (मसौदा) बहुत सटीक और अच्छा होता था। भतीजे राधाकिशनजी कानोड़िया ने, जिन्होंने अंग्रेजों के जमाने में भागीरथजी को व्यापारिक चिट्ठियां लिखते हुए देखा है, बताया : "चाचाजी की लिखी चिट्ठियां अंग्रेज व्यापारियों को स्पष्टता के कारण बहुत पसन्द आती थीं।" कलकत्ता में १९१६ से युवा मारवाड़ी सामाजिक-राजनीतिक कार्यकर्त्ताओं की जो मित्र-मण्डली सक्रिय हुई, उसमें प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका और बैजनाथजी देवड़ा को छोड़ कर किसी को भी स्कूल-कॉलेज की शिक्षा प्राप्त नहीं हुई थी। इस मण्डली में भागीरथजी, प्रभुदयालजी और बैजनाथजी ही अंग्रेजी के अच्छे जानकार माने जाते थे।

उनका हिन्दी का ज्ञान तो स्वाध्याय के कारण बढ़ता ही गया। बचपन में जो उर्दू पढ़ी, वह भूली नहीं। सीतारामजी ने बताया : "गांधीजी के कहने पर हिन्दुस्तानी के प्रचार के लिए जब गांधीवादी कार्यकर्त्ताओं ने उर्दू सीखना शुरू किया तो भाई भागीरथजी को सीखने की जरूरत नहीं पड़ी, वह पहले से ही उर्दू जानते थे।" श्रीमती शन्नो देवी ने, जिनकी पंजाब में स्वतन्त्रता-संग्राम में विशिष्ट भूमिका रही है, हाल में भागीरथजी की राजस्थानी कहावतों की कहानियों की पुस्तक 'बहता पानी निर्मला' पढ़ने के बाद एक पत्र में लिखा : "मुझे पता ही नहीं था कि भागीरथजी को उर्दू-फारसी का इतना ज्ञान था। मैं तो यही समझती थी कि वह सिर्फ हिन्दी जानते थे। पुस्तक पढ़ने से पहली बार यह पता चला कि उनको उर्दू-फारसी में भी कमाल हासिल था।" संस्कृत और उर्दू के ज्ञान तथा मारवाड़ी बोली के प्रति अगाध प्रेम के कारण भागीरथजी का लिखा हिन्दी गद्य बाबू बालमुकुन्द गुप्त के गद्य जैसा आनन्द देता है। आज जब हिन्दी का क्रमशः अंग्रेजीकरण होता जा रहा है और अपनी प्रकृति के विपरीत उसका वाक्य-विन्यास हो रहा है तब भागीरथजी के हिन्दी गद्य की स्पष्टता और उसमें मारवाड़ीपन की हल्की आंच हिन्दी-गद्य की अमित सम्भावनाओं को प्रकट करती है।

४
व्यावसायिक जीवन

व्यवसायी और उद्योगपति के रूप में सफल होने के लिए व्यक्ति में तीव्र व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा और अपने उद्देश्य से इतर कारणों द्वारा प्रभावित न होने की एक प्रकार की निर्ममता आवश्यक है। भागीरथजी में ये दोनों ही 'गुण" या "अवगुण" न थे। वह किसी भी परिभाषा से कड़े व्यक्ति नहीं थे। हमने तो यहां तक सुना है कि

उनके मातहत काम किये हुए लोगों को दूसरे लोग, अपने यहां रखने से इसलिए हिचकते थे कि भागीरथजी ने अपने उदार स्वभाव के कारण उनकी आदतें बिगाड़ दी होंगी।

हमारे इस युग की शायद सबसे बड़ी ट्रैजेडी यह है कि हम किसी भी प्रकार अर्जित सफलता को ही सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण मान बैठे हैं। ऐसे में समाज में महत्व-कांक्षाओं को अराजकता फैलती है और मानवीय मूल्य समाप्त होते जाते हैं। भागीरथजी जैसे व्यक्ति व्यवसाय के क्षेत्र में अत्यधिक कुशल न होने के बावजूद जीवन के व्यापक क्षेत्र में कहीं मानवीय मूल्यों के क्षय को रोकते हैं। हमारी दृष्टि में यह बहुत बड़ी बात है। भागीरथजी के जीवन में यदि कोई विडम्बना थी तो यह कि सेठ होना नहीं चाह कर भी वह सेठ माने जाते रहे। वैश्य परिवार में जन्म लेने और आज से सत्तर-अस्सी वर्ष के पहले के राजस्थान में अन्य किसी पेशे का विकल्प न रहने के कारण वह व्यवसाय के क्षेत्र में उतरे और आगे जाकर व्यवसायी से उद्योगपति भी बने।

भागीरथजी के बड़े भाई गंगाबक्सजी सन् १९०१ में कलकत्ता आये और बिड़लों की गद्दी बलदेवदास-जुगलकिशोर में मुनीमी करने लगे। वह बलदेवदासजी के कृपा-पात्र बने और समवयस्क होने के कारण जुगलकिशोरजी के साथी। अपनी व्याव-सायिक प्रतिभा, कठिन परिश्रम और साधु-स्वभाव के कारण उन्होंने जल्द ही गद्दी में सबका मन जीत लिया। दस वर्ष बाद सन् १९११ में जब उन्होंने भागीरथजी को कलकत्ता बुलाया, तब वह गद्दी में 'स्थापित' हो चुके थे। १६ वर्ष की उम्र में भागीरथजी भी बिड़लों की इस गद्दी में काम करने लगे। यह गद्दी बड़ाबाजार के अफीम चौरस्ते के पास १८ मल्लिक स्ट्रीट पर 'काली गोदाम' नाम से मशहूर एक इमारत में थी। काली गोदाम में और भी बहुत सारी गद्दियां थीं। आजकल बहुमंजिला इमारतों में जिस तरह बड़ी-बड़ी कम्पनियों के एयरकंडीशन दफ्तर होते हैं कुछ उसी प्रकार काली गोदाम में गद्दियां थीं। उस वक्त एयरकंडीशन का तो सवाल ही नहीं था, गद्दियों में टेबुल-कुरसी तक नहीं होती थी। एक बड़े से गद्दे पर सफेद चाननी (चादर) बिछी रहती थी, जो हफ्ते में शायद एक बार बदली जाती थी। बाबू लोग और उनके मुनीम सुबह सात बजे से रात बारह बजे तक काम करने के बाद इसी गद्दे पर पसर जाते थे। स्त्रियां देस (राजस्थान) में रहती थीं। गद्दी में ही निपटना, खाना, सोना आदि सब होता था। निपटने के लिए क्यू (कतार) लगता था। आज जिनके कमरों से सटा पश्चिमी ढंग का नाना प्रकार की सुविधाओंवाला स्नान व शौच-गृह होता है, वे ही लोग तब नहाने-निपटने के लिए क्यू में खड़े रहते थे। श्री घनश्यामदास बिड़ला ने अपनी पुस्तक 'कुछ देखा, कुछ सुना' में गद्दियों की उन दिनों की दशा का बहुत अच्छा वर्णन किया है। कई मुनीम और कर्मचारी तो पांच-पांच सात-सात दिन गद्दी के बाहर ही नहीं निकल पाते थे। उन दिनों की ये मारवाड़ी गद्दियां ही आज के मारवाड़ी उद्योग-पतियों के आलीशान एयरकंडीशन दफ्तरों और चेम्बरों की जननी थीं।

गद्दियों के जीवन में मितव्ययिता का आदर्श कृपणता की हद तक पहुंचा हुआ था। अपनी और अपने मातहतों की सुविधा और आराम की मारवाड़ी सेठ को उन दिनों तनिक भी फिक्र नहीं थी, वह तो अहर्निश एक ही धुन में लगा रहता—किस तरह कम से कम खर्च किया जाय–चमड़ी जाय पर दमड़ी नहीं और ज्यादा से ज्यादा कमाया जाय।

बिड़लों की गद्दी में अन्य गद्दियों की अपेक्षा शायद कुछ ज्यादा सफाई और सुविधा रही हो, पर उसकी जीवन-पद्धति भी वही थी जो अन्य गद्दियों की थी। सुबह उठने से लेकर रात सोने तक हिसाब, रोकड़, लेवा-वेची और तेजी-मंदी की इस दुनिया में पठन-पाठन और मनन असम्भव चीज थी। ऐसी दुनिया में भागीरथजी बरसों रहे और इसीमें रह कर पठन-पाठन तथा अपनी संवेदना का विस्तार कर सके, यह कोई मामूली बात नहीं, क्योंकि गद्दी-संस्कृति, व्यक्ति को अत्यन्त सीमित व संकीर्ण कर देती थी। उसमें पला हुआ व्यक्ति हर चीज को रुपयों तथा नफे-नुकसान के मानदण्ड से ही देख पाता था, उसके लिए जीवन में रुपयों के मूल्य के सिवाय अन्य कोई मूल्य नहीं रहता था।

मारवाड़ी सेठों में यह परम्परा रही है कि वे अपने विश्वासपात्र और मुख्य रूप से काम सम्भालनेवाले मुनीमों की किसी-किसी व्यापार में कुछ न कुछ पांती (हिस्सेदारी) रख देते थे और उन्हें स्वतंत्र रूप से व्यापार करने की भी छूट दे देते थे। उस जमाने के कई धनी मारवाड़ी सेठ मुनीम से लखपति बने थे और आज के कई मारवाड़ी करोड़पति उद्योगपति परिवारों के एक पीढ़ी पहलेवाले मुखिया पचास-पचपन वर्ष पहले तक मुनीम थे। गंगाबक्सजी को बलदेवदास-जुगलकिशोर में काम करते हुए कुछ वर्ष ही बीते होंगे कि जुगलकिशोरजी ने कुछ कामों में उनकी पांती रख दी। इस तरह भागीरथजी ने जब बिड़लों की गद्दी में काम करना शुरू किया तब उनकी स्थिति विशुद्ध कर्मचारी के बजाय कर्मचारी-मालिक जैसी कुछ थी। गद्दी में गंगाबक्सजी, जुगलकिशोरजी के साथ काम करते थे तो भागीरथजी, घनश्यामदासजी के साथ।

जिस साल (सन् १९११) भागीरथजी ने काम करना शुरू किया शायद उसी साल बिड़लों ने जापानी कपड़ा आयात करने का काम शुरू किया था। सन् १९१० से लेकर सन् १९१८ तक का समय बिड़लों के उत्कर्ष का समय था, इसी समय एक तरह से उनके भावी औद्योगिक साम्राज्य की नींव पड़ी और इसी दौरान पहला विश्व युद्ध भी हुआ। कहते हैं कि सन् १९१४ और १९१८ के बीच बिड़ला २० लाख से बढ़ कर ८० लाख के आसामी हो गये, लगभग करोड़पति बन गये। बिड़लों का काम बढ़ता ही जा रहा था। बलदेवदास-जुगलकिशोर की गद्दी नये कामों के लिए छोटी और नाकाफी महसूस होने लगी। अब कलकत्ता के अंगरेज सौदागरों के इलाके (डलहौजी स्क्वायर) में बिड़ला ब्रदर्स की स्थापना हुई। भागीरथजी ने सन् १९३९ तक बिड़ला ब्रदर्स में काम किया। इसके बाद गंगाबक्स जी के कुशल निर्देशन में कानोड़िया परिवार ने स्वतंत्र रूप से काम करना शुरू कर दिया। १९३९ में कानोड़ियों का बिड़लों से चालीस वर्ष का व्यापारिक सम्बन्ध तो समाप्त हुआ, पर पारिवारिक सम्बन्ध बना रहा। कानोड़िया, बिड़ला-समूह के ही अंग माने जाते रहे। स्वतंत्र व्यापार की नींव वैसे तो सन् १९२७-२८ में ही पड़ गयी थी, जब गंगाबक्सजी ने कानोड़िया कम्पनी की स्थापना की थी। इसके कुछ ही दिनों बाद उन्होंने पूर्वी बंगाल में एक जूट बेलिंग प्रेस भी लगाया। सन् १९३९ में जब बिड़लों से अलग हुए तब बिड़लों की ही मदद से जनरल प्रोड्यूस कम्पनी का काम शुरू किया। यह कम्पनी हेसियन बोरों तथा पाट का निर्यात करती थी।

ऐसा लगता है कि २५-३० वर्ष की जवान उम्र में ही व्यापारिक क्षेत्रों में भागीरथजी आदरणीय हो गये थे, क्योंकि उन्हें 'पंचायतियां' सौंपी जाने लगी थीं। आज से लगभग ५५-६० वर्ष पहले भागीरथजी द्वारा की गयी पंचायती का यह किस्सा हमारे सुनने में आया है : जुगलकिशोरजी के परिचित दो व्यापारियों में किसी सौदे को लेकर झगड़ा पड़ गया। एक व्यापारी ने जुगलकिशोरजी से अनुरोध किया कि वह झगड़े का निपटारा कर दें। जुगलकिशोरजी राजी नहीं हुए। उन्होंने व्यापारी को कहा कि तुम किसी और का नाम सुझाओ तो उसने भागीरथजी का नाम सुझाया। दूसरे व्यापारी ने भी भागीरथजी का नाम मंजूर कर लिया।

(राजस्थान से व्यापार के लिए कलकत्ता आये लोगों के बीच गांवों में पंचायत का जो रूप था, वह शहर आकर वदल गया था। पंचायत के वदले दोनों पक्ष एक ऐसे प्रतिष्ठित व्यक्ति को चुन लेते जिस पर उनका भरोसा हो। ऐसे प्रतिष्ठित व्यक्ति को ज्यादातर व्यापारियों के सौदे सम्बन्धी और भाइयों के बीच हिस्सेदारी सम्बन्धी झगड़ों का निपटारा करना पड़ता था। सामान्यतः मारवाड़ी कोर्ट-कचहरी से बहुत घवराता है। कहते हैं कि आजादी के पहले कलकत्ता के मारवाड़ी फर्मों के बीच झगड़े के सिर्फ तीन ही मामले अदालत तक पहुंचे थे। बहरहाल, दोनों पक्ष द्वारा मंजूर व्यक्ति दोनों पक्षों की बात सुन कर तथा अन्य लोगों से तथ्यों का पता लगा कर निर्णय किया करता था।)

भागीरथजी ने दोनों पक्षों की बात सुन कर निर्णय दिया तो वह व्यापारी जिसने भागीरथजी का नाम सुझाया था, बहुत नाराज हुआ। उसने जुगलकिशोरजी से निर्णय के विरुद्ध शिकायत की और कहा : "मैंने तो अपना आदमी सोच कर भागीरथजी का नाम सुझाया था लेकिन उन्होंने तो सामनेवाले का पक्ष लिया।" इस पर जुगल-किशोरजी ने इस व्यापारी के सामने ही भागीरथजी से कहा : "ये कहते हैं कि तुमने इनके साथ अन्याय किया है।" भागीरथजी ने जवाब दिया : "मैंने अपनी जान में अन्याय नहीं किया, जो उचित लगा वही निर्णय किया।" इस पर व्यापारी ने, जो उम्र में भागीरथजी से दुगुना था, तैश में आकर कहा, "बड़ो आयो युधिष्ठिर।"

भागीरथजी की युधिष्ठिर से तुलना एक और विषय में भी सार्थक है—जिस तरह युधिष्ठिर को द्यूत की लत थी, उसी तरह भागीरथजी को भी फाटके की लत थी। शायद भागीरथजी का एक मात्र अवगुण फाटके के प्रति यह मोह ही था। भागीरथजी के समधी (पुत्री उषा के श्वसुर) नथमलजी भुवालका का, जो पिछले दस-बारह वर्षों से उनके बहुत निकट आ गये थे और उनके साथ गंगोत्री और यमुनोत्री की यात्रा में भी गये थे, कहना है कि भागीरथजी फाटका इसलिए खेला करते थे कि उन्हें हमेशा लोगों को रुपये देने की जरूरत रहती थी। वह यह सोचते थे कि फाटके से जो प्राप्त होगा, उसे लोगों को दे देंगे। फाटके से जब उन्हें लाभ होता तो किसी को पता नहीं चलता क्योंकि ये रुपये वह चुप-चाप लोगों को देने में खर्च कर देते थे। लेकिन जब घाटा होता तो फर्म के लोगों को पता चल जाता क्योंकि भुगतान का सवाल उठता। नथमलजी ने कहा कि भागीरथजी कमाई के लोभ में फाटका नहीं खेलते थे। यह सुन कर मन में सवाल उठा कि युधिष्ठिर के बारे में बार-बार पढ़ा है

कि उन्हें द्यूत की लत थी और इसमें वह हमेशा खोते ही खोते थे, लेकिन इस बात का कहीं पता नहीं चलता कि क्या पाने के लिए वह खेलते थे।

भागीरथजी ने २५—३० वर्ष की उम्र से जीवन के अंतिम दिनों तक बहुत सी 'पंचायतियां' की और इधर पैसों के बाहुल्य और "स्टैंडर्ड" ऊंचा उठाने के कारण मारवाड़ियों के बीच पिता-पुत्र के और पति-पत्नी के आधुनिक झगड़े बढ़ने लगे तो उनमें भी दोनों पक्ष उनकी शरण में जाते।

भागीरथजी के बिड़लों की गद्दी में काम करने के वक्त का एक वाकया केशरदेवजी कानोड़िया ने सुनाया : "भागीरथजी के दयालु स्वभाव का आसपास के लोगों और खासकर गद्दी में काम करनेवाले लोगों को पता हो गया था। लोग अपने आर्थिक कष्ट के बारे में उन्हें बताते तो वह कुछ न कुछ जरूर सहायता करते और एक बार कर देने के बाद यदि लम्बे अरसे तक सहायता न मांगी जाती तो खुद पूछते। एक दिन गद्दी के खजांची गंगाधरजी हरलालका ने मुझसे (केशरदेवजी भी बिड़लों की ही गद्दी में ही काम करते थे) कहा: 'मेरा कभी न कभी भागीरथ बाबू से झगड़ा होगा, क्योंकि वह बीसियों आदमियों को मुझसे रुपये लेने के लिए चिरकुट (परची) मांड (लिख) देते हैं। हिसाब होने पर जब वह देखेंगे कि रुपये इतने ज्यादा हो गये हैं तो उन्हें विश्वास ही नहीं होगा और मुझ पर नाराज होंगे और तब मैं भी कुछ कह दूंगा।' इस पर मैंने (केशरदेवजी) गंगाधरजी से कहा: 'आप बिल्कुल निश्चिन्त रहें, मैं गारण्टी देता हूं कि आपका उनसे कोई झगड़ा नहीं होगा, वह आपसे पूछेंगे भी नहीं कि इतने ज्यादा रुपये कैसे हो गये।' मेरी बात सच निकली। गंगाधरजी की शंका निर्मूल सिद्ध हुई। जोड़ बताने पर भागीरथजी ने जितने रुपये हुए उन्हें अपने नाम मंडवा (लिखवा) लिया, परचियों को देखा तक नहीं।"

बिड़ला ब्रदर्स ने १९१८—२२ के दौरान कई नयी मिलें खरीदी। कलकत्ता में केशोराम काटन मिल व जूट मिल और ग्वालियर तथा दिल्ली में कपड़ा मिलें इसी दौरान की चीजें हैं। दफ्तर के काम को सुचारु रूप से चलाने और उसे अंग्रेजों जैसा बनाने के लिए बिड़ला ब्रदर्स में नये नियम बनाये जाते तो घनश्यामदासजी कहते : "नियम बनाते वक्त यह ध्यान में रखना होगा कि वे भागीरथजी पर लागू नहीं होंगे। वह नियम पर नहीं चल सकेंगे। अगर उन्होंने देखा कि उनसे मिलने तीन-चार आदमी आये हुए हैं तो वे सभी को एक साथ बुला लेंगे।" भागीरथजी यह बरदाश्त नहीं कर सकते थे कि कोई उनकी प्रतीक्षा करे और अगर कोई उनसे मिलना चाहता है तो बिना मिले चला जाय। उनकी सत्तर-पचहत्तर वर्ष की उमर तक तो घरवालों ने उनकी इस आदत को स्वीकार कर लिया था पर बाद में उनकी पत्नी, पुत्रियों और पुत्र-वधुओं ने कड़ाई बरतने की चेष्टा की, लेकिन व्यर्थ। सोने चले जाने के बाद भी जब कोई उनसे मिलने आ जाता तो वह बिस्तर छोड़ कर कमरे से बाहर मिलने आ जाते और बरजनेवालियों को कहते, "कितनी दूर से चल कर आया होगा ? पांच मिनट मिल लूंगा तो मेरे क्या फर्क पड़ जायगा।"

भागीरथजी का एकदम प्रारम्भ का व्यावसायिक जीवन बड़े भाई गंगाबक्सजी की छाया में बीता। जब तक गंगाबक्सजी जीवित रहे एक प्रकार से भागीरथजी के अभिभावक बने रहे। लेकिन यह ऐसा अभिभावकत्व था जिसमें भागीरथजी को अपने

मानवीय गुणों का विकास करने का निर्बाध अवसर मिला। संयुक्त परिवार के आदर्श मुखिया की जो आदर्श छवि हमारे मन में है वह गंगाबक्सजी पर पूरी तरह चरितार्थ होती है। गंगाबक्सजी ने कभी भी भागीरथजी को किसी चीज के लिए टोका नहीं, उदारता में अव्यावहारिकता के लिए भी नहीं। इसका एक कारण तो यह भी था कि वह स्वयं उदार थे और उदारता को गुण मानते थे। उनके मन में अपनी भूमिका निश्चित थी कि वह मुख्य रूप से व्यवसायी हैं और व्यवसाय की दिशा में बढ़ते रह-कर अपने परिवार को संभालते हुए ही उन्हें समाज का जितना भी कल्याण हो सके करना है। अपनी इस भूमिका का उन्होंने पूरा निर्वाह किया—कानोड़िया परिवार को फिर से सम्पन्नता दिलायी और अपनी सीमाओं के भीतर समाज के कल्याण और सुधार के लिए काम भी किये। १९२६ में भागीरथजी ने खादी पहनना शुरू किया तो गंगाबक्सजी ने भी खादी अपना ली ताकि भागीरथजी को कहीं यह न लगे कि वह उनके साथ नहीं हैं।

चालीस की उमर के आसपास में पत्नी के मरने के बाद गंगाबक्सजी ने दूसरा विवाह नहीं किया। १९१८ में तो तीन दिन के भीतर प्लेग में उन्होंने अपने पिता रामदत्तजी, अपने छोटे भाई प्रहलादरायजी और अपने ज्येष्ठ पुत्र गोवर्धन को खोया। यह प्लेग परिवार के लिए बड़ी घातक सिद्ध हुई। परिवार के आठ व्यक्तियों की मृत्यु हुई। तीन वर्ष बाद संवत् १९७८ (सन् १९२२-२३) में भागीरथजी की मां आनी देवी की भी मृत्यु हो गयी। १९४८ में जब गंगाबक्सजी की मृत्यु हुई तो भागीरथजी को ५३ वर्ष की उम्र में शायद पहली बार पारिवारिक दायित्व की प्रतीति हुई होगी, क्योंकि गंगाबक्सजी ने अपने जीवन-काल में उन्हें पारिवारिक चिंता और दायित्व से सर्वथा मुक्त रखा था। गंगाबक्सजी की मृत्यु के बाद भागीरथजी ने दीवाली की पूजा कभी नहीं की, कहते, "भाईजी तो मेरे हाथ थे। जब हाथ ही नहीं हैं तो विना हाथ के पूजा कैसे करूं ?"

गंगाबक्सजी की मृत्यु तक कानोड़िया-परिवार का मुख्य व्यवसाय पाट था। लेकिन देश का विभाजन होने पर यह व्यवसाय घटने लगा तो उसने नये-नये क्षेत्रों में प्रवेश किया। चायबागान और चीनी मिलें खरीदीं—१९५० में असम में दो चाय बागीचे और बिहार के बगहा में चीनी मिल। १९५३ में भागीरथजी ने गुजरात के वीरमगाम में कपड़े की मिल 'प्रभा मिल' खरीदी। १९५४ में संयुक्त परिवार नये-नये दबावों और व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं के कारण टूट गया। १९५६ में भागीरथजी ने मध्यप्रदेश के बुरहानपुर में कपड़ा मिल 'बुरहानपुर ताप्ती मिल' खरीदी और इसके बाद १९५८ में उत्तर बंगाल में डिमडिमा चाय बाग़ीचा और फिर असम में बोरशिला चाय बागीचा। १९६३ में उन्होंने राजस्थान के किशनगढ़ में सूता मिल 'आदित्य मिल' बैठायी। १९७० तक भागीरथजी व्यवसाय में सक्रिय रहे। इसके बाद उन्होंने व्यवसायिक जीवन से लगभग सन्यास सा ले लिया। १९११ में शुरू हुआ व्यावसायिक जीवन इस तरह लगभग ६० वर्ष चला। इसमें कई मौके तो ऐसे आये जब भागीरथजी को अत्यंत मानसिक कष्ट और तनाव से गुजरना पड़ा।

५

पारिवारिक जीवन

पंद्रह वर्ष की आयु में भागीरथजी का चूड़ी के केजड़ीवाल परिवार में श्रीमती भगवानी देवी से विवाह हुआ। इसके कुछ महीनों बाद ही वह जीविकोपार्जन के लिए कलकत्ता चले आये और वहीं रहने लगे। भगवानी देवी मुकुन्दगढ़ ही रहीं। दस वर्ष बाद १९२० में सारा कानोड़िया परिवार जब कलकत्ता आकर रहने लगा तब भगवानी देवी भी कलकत्ता आ गयीं। विवाह के छह वर्ष बाद उन्हें पहली सन्तान हुई—नन्दलाल और इसके साढ़े चार वर्ष बाद दूसरी—तुलसीदास। तुलसीदासजी के जन्म के बाद भगवानी देवी को तपेदिक हो गया और तीन वर्ष बाद बनारस में उनकी मृत्यु हो गयी।

अपने १३ वर्ष के दाम्पत्य जीवन में एक हिन्दू स्त्री के संस्कारों के अनुरूप भगवानी देवी ने पति की हर इच्छा को अपनी इच्छा माना। संयुक्त परिवार के हित में अपनी निजी इच्छाओं का दमन किया। भागीरथजी के मझले भाई (लेकिन उनसे बड़े) प्रहलादजी का २५ वर्ष की आयु में प्लेग में देहान्त हो गया था। वह अपने पीछे दो पुत्रियां छोड़ गये थे। उनकी विधवा पत्नी बसन्ती देवी चाहती थीं कि भागीरथजी के उस समय इकलौते पुत्र नन्दलालजी को दत्तक ले लें। भगवानी देवी अपने इकलौते पुत्र को अपनी जेठानी को देने को तैयार हो गयीं। यह कोई कम बड़ा त्याग न था क्योंकि उस जमाने में दत्तक चले जाने का अर्थ यह होता था कि पुत्र को उसे जन्म देने वाली मां को मां कहने और मां के लिए पुत्र को पुत्र कहने तक का अधिकार नहीं रहता था।

भगवानीदेवी की मृत्यु के एक वर्ष बाद २९ वर्ष की आयु में भागीरथजी का मुकुन्दगढ़ के बागड़ोदिया परिवार की श्रीमती गंगा देवी के साथ विवाह हुआ। गंगा देवी से भागीरथजी को सात सन्तानें हुईं—आत्माराम, सावित्री, सुशील, अश्विनी कुमार, ज्योतिप्रकाश, सन्तोष कुमार और उषा। तृतीय सन्तान सुशील की तीन वर्ष की अल्पायु में ही मृत्यु हो गयी। कुछ ही वर्ष पहले भागीरथजी की सन्तानों ने अपने माता-पिता के दाम्पत्य जीवन की स्वर्ण जयन्ती मनायी थी।

आज तो भागीरथजी के बेटे तक दादा हो गये हैं। बेटे-बेटियों और पौत्रों का अपना-अपना परिवार हो गया है। १९४० तक भागीरथजी का पारिवारिक जीवन पूरी तरह संयुक्त परिवार के तहत ही बीता। इस समय बच्चों के बड़े होने और उनके विवाह होने के साथ बड़ाबाजार के मकान में जगह कम होने लगी और भागीरथजी बालीगंज में आकर रहने लगे, यद्यपि संयुक्त परिवार बना रहा। गंगाबक्सजी की मृत्यु के बाद संयुक्त परिवार टूटता गया और भागीरथजी का अपना परिवार भी बेटों द्वारा स्वतंत्र व्यवसाय शुरू करने के साथ विभाजित हो गया।

व्यावसायिक जीवन और उसके साथ सामाजिक सेवा कार्यों में व्यस्तता के कारण भागीरथजी अपनी पत्नी और संतानों को उतना समय नहीं दे सके जितना कि आज का तथाकथित आधुनिक पिता देता है। भागीरथजी की पत्नी गंगा देवी ने बताया कि दफ्तर के काम के वाद का सारा समय सार्वजनिक काम में लगाने के कारण भागीरथजी घर के कामों में विलकुल ही समय नहीं दे पाते थे। जब घर में रहते तो सारे वक्त मुलाकाती आते ही रहते। सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं की पत्नियों और बच्चों की जैसी उपेक्षा होती हैं वैसी ही उनकी और बच्चों की हुई। सास-ससुर भी नहीं थे और गृहस्थी में दैनन्दिन जीवन में छोटी-बड़ी समस्याएं आती रहती थीं, शुरू-शुरू में वह बहुत घबरा जाती थीं और कभी कभी बहुत खीझ भी जाती थीं। लेकिन आहिस्ते-आहिस्ते आदत पड़ गयी और उन्होंने मान लिया कि ऐसे ही चलेगा।

एक विदेशी महिला ने एक वार गांधीजी से कहा कि आप बहुत उदार है तो उन्होंने जवाव दिया कि आप इस बारे में श्रीमती गांधी (माता कस्तूरबा) से दरियाफ्त करें तो आपको मालूम होगा कि मेरे जैसा अनुदार व्यक्ति दुनिया में कोई नहीं है। भागीरथजी गंगादेवी के प्रति निश्चय ही अनुदार नहीं थे, लेकिन अपने निस्पृह स्वभाव के कारण वह यह मानते थे कि अपनी इच्छा को गौण और दूसरों की इच्छा को प्रधान मानना चाहिए। गंगा देवी के लिए यह मानना भागीरथजी जितना सहज और स्वाभाविक न था। गंगा देवी ने कहा : "मैं साधारण स्त्री हूं। मैं घर गृहस्थी के धरातल पर ही रहती थी। कभी कोई शिकायत करती और अगर उसकी वह उपेक्षा करते तो बहुत दुखी हो जाती।"

गंगा देवी आज से ४५-५० वर्ष पहले खादी की फेरी करने और पर्दा निवारण के लिए घर-घर गयी थीं। इस बारे में पूछने पर उन्होंने बताया कि भागीरथजी चाहते थे कि वह ज्यादा से ज्यादा सार्वजनिक कार्यों में भाग लें। जेठ गंगाबक्सजी बहुत ही उदार व्यक्ति थे लेकिन उन्हें घर की बहू-बेटियों का फेरी करने और कांग्रेस के लिए चंदा मांगने घर घर जाना अति लगता था। उन्हें पसन्द न था कि वह घर-घर जाएं। ऐसे में वह बड़े धर्म संकट में पड़ जाती थीं। क्या करें? पर्दा निर्वारण के लिए घरों में घूमने के अपने अनुभव के बारे में गंगा देवी ने बताया कि सभी घरों में सभी महिलाएं पर्दे के खिलाफ थीं लेकिन पुरुषों के डर के कारण मन की बात कहने से हिचकिचाती थीं।

किसी भी परिवार में उसके बड़े होते जाने पर सदस्यों के बीच किसी न किसी प्रकार के द्वन्द्व पैदा होते ही हैं। भागीरथजी का परिवार भी कोई अपवाद नहीं था। सीतारामजी की डायरियों से पता चलता है कि भागीरथजी के साधु-स्वभाव और कहीं भी सख्ती न बरतने की मानसिकता के कारण परिवार के कई सदस्यों को उनके बारे में गलतफहमी हो जाती थी और ऐसे में भागीरथजी मन ही मन कष्ट पाते थे। सीतारामजी ने अपनी डायरियों में कई जगह लिखा है कि "भाई भागीरथजी मन में अपार कष्ट पाते रहते हैं पर मुंह से कुछ कहते नहीं।"

परिवार के छोटे बच्चों से भागीरथजी का स्नेह इस प्रकार का था कि वे अपने माता-पिता और भाई-बहनों तक की शिकायत उनसे करते। बेटी उषा की बेटी ने उनसे शिकायत की कि मां उसे उसके भाई से कम प्यार करती है। अपनी दौहित्री की इस

शिकायत का उनको इतना ध्यान था कि मृत्यु के दिनों में वेहोश अवस्था में उन्होंने उषाजी को कई वार कहा, "तुम उसे डांटा मत करो।" सबसे छोटी पुत्रवधू उमा कानोड़िया ने, जिन्होंने भागीरथजी की अथक सेवा कर उनके प्रशंसकों और प्रेमियों की कृतज्ञता अर्जित की है, बताया कि 'काकोजी' का स्वभाव ऐसा था कि वह उन्हें घर की हर वात कह सकती थीं। ऐसी बातें जिन्हें वह 'मां' (सास) को भी नहीं कह पाती थीं उन्हें वह 'काकोजी' को निःसंकोच कह डालतीं।

शिक्षित मारवाड़ी घरों में आजकल मारवाड़ी बोली प्रायः लुप्त होती जा रही है। भागीरथजी ने ही एक वार बातों-बातों में बताया था कि मारवाड़ी घरों में अंग्रेजी का ऐसा चलन हो गया है कि बच्चे पूछते हैं—फ्राइडे को हिन्दी में बृहस्पतिवार कहते हैं या शुक्रवार? वह परिवार के सभी सदस्यों से मारवाड़ी में ही बोलते। ऐसे भी हमारा खयाल है कि किसी मारवाड़ी से उन्होंने कभी अंग्रेजी या हिन्दी में बातचीत नहीं की होगी।

सार्वजनिक कार्यों में भाग लेने के कारण भागीरथजी के परिचित और मित्रों का दायरा वहुत बड़ा था। राजनीतिक नेता, सामाजिक कार्यकर्त्ता और लेखक इसी दायरे में आते। कलकत्ता आने पर भागीरथजी के यहां कितने लोग ठहरे, इसकी कोई गणना नहीं है। राजेन्द्र बाबू और टण्डनजी तो और किसी के घर ठहरते ही नहीं थे। अपने आराम और सुख-सुविधा की तनिक भी परवाह न करनेवाले भागीरथजी अतिथियों की छोटी-छोटी आवश्यकताओं का भी पूरा ध्यान रखते थे। कई बार तो ऐसा होता कि गाड़ी के अतिथियों की हाजरी में रहने के कारण उन्हें अपने कार्यक्रम स्थगित करने पड़ते।

नौकर-चाकरों से उनका संबंध कभी मालिक-नौकर का नहीं रहा। नौकरों के घर परिवार की उन्हें पूरी जानकारी रहती। कलकत्ता में आकर बसने के पहले मुकुन्दगढ़ में कन्हैया की मां और सेवु नामकी बहुत पुरानी दो नौकरानियां थी। दोनों बूढ़ी और अशक्त हो जाने के कारण अपने-अपने घर चली गयीं। एक बार भागीरथजी मुकुन्दगढ़ गये तो उन्होंने सबों की कुशल-क्षेम जाननी चाही। तब सेवु को भी याद करके बुलावा भेजा। पता चला कि वह अत्यन्त अशक्त और अन्धी भी हो गयी है। अकेले और पैदल चल कर नहीं आ सकती। उन दिनों गांव में तो ऊंट या रथ ही सवारी थी। भागीरथजी ने तुरन्त घर का रथ सेवु को लिवा लाने भेजा। वह गरीब अनपढ़ बूढ़ी औरत आश्चर्य और अविश्वास से किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गयी। वह बेचारी इसकी स्वप्न में भी कल्पना नहीं कर सकती थी कि उसे लाने के लिए रथ आयेगा।

अपने पारिवारिक जीवन में भागीरथजी को सबसे बड़ा सदमा अप्रैल, १९६९ में लगा। उनकी सबसे छोटी पुत्री उषा के पति राधेश्यामजी भुवालका का एक विमान दुर्घटना में देहान्त हो गया। इस मृत्यु से वह अत्यन्त विचलित हो उठे। उनके कष्ट को देखकर सीतारामजी ने अपनी डायरी में लिखा: "ईश्वर भागीरथजी जैसे सत्पुरुष को इतना कष्ट क्यों देता है?" भागीरथ जी के राजस्थान के काम के बारे में जानने की कोशिश में हमने स्व० रामेश्वरजी टांटिया की डायरियां पढ़ीं तो पाया कि राधेश्यामजी की मृत्यु पर टांटियाजी ने अपनी डायरी में हूबहू वही बात लिखी जो सीतारामजी ने लिखी थी—"ईश्वर भागीरथजी जैसे सत्पुरुष को इतना कष्ट क्यों देता है?"

६

समाज-सुधार

सन् १९११ में कलकत्ता आने से पहले भागीरथजी मुकुन्दगढ़ में दो सामाजिक कार्यों में भाग ले चुके थे। सन् १९०९ में वसंतलालजी मुरारका और उन्होंने मिलकर मुकुन्दगढ़ में एक पुस्तकालय खोला था। इस पुस्तकालय के बारे में बसंतलाल मुरारका स्मृति-ग्रंथ में भागीरथजी ने लिखा है: "उस वक्त उस पुस्तकालय के लिए कुल चन्दा १५ रु० इकट्ठा हुआ था, जिससे ११ रु० की लागत से एक जाजम (दरी) बनवायी गयी थी और वेंकटेश्वर-समाचार नामका एक साप्ताहिक पत्र बम्बई से मंगवाया गया था। कुछ फटी पुरानी पुस्तकें इधर-उधर से मांग कर इकट्ठा की गयी थीं, जिन्हें मरम्मत कर-कराके रखा गया था।" सन् १९११ में मुकुन्दगढ़ में 'सीठणों' के खिलाफ आंदोलन हुआ था। विवाह पर स्त्रियों द्वारा गाये जानेवाले अश्लील गालियों भरे गीतों को 'सीठणा' कहा जाता है। एक प्रतिज्ञा-पत्र तैयार करके लोगों से सीठणों के खिलाफ हस्ताक्षर भी करवाये गये। इस आन्दोलन में गंगाबक्सजी की प्रमुख भूमिका थी और १६ वर्षीय भागीरथजी तथा १८ वर्षीय बसंतलालजी उनके प्रमुख सहयोगी थे। इन दो कार्यों से यह तो पता चलता ही है कि बहुत कच्ची उम्र में भागीरथजी के मन में ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा और उसकी सामाजिक आवश्यकता की समझ पैदा हो गयी थी, दूसरे वह रूढ़ियों को जस का तस मानने को तैयार न थे।

भागीरथजी जब कलकत्ता आये तब बंगाल सारे देश में स्वदेशी और राष्ट्रीयता का गढ़ था। सन् १९०५ के बंग-भंग विरोधी आंदोलन में बंगाल में गजब की जागृति देखी गयी थी। आंदोलन में बंगाली जनता के सभी वर्गों की हिस्सेदारी थी और वह गांव-गांव तक पहुंच गया था। बाद में गांधीजी ने जब असहयोग आंदोलन शुरू किया तो बंग-भंग विरोधी आंदोलन में जो बातें स्वतः स्फूर्त ढंग से हुई थीं, उन्हें असहयोग आंदोलन की तकनीक के रूप में अपना लिया। बंग-भंग विरोधी आंदोलन इतना सफल रहा था कि सन् १९११ में सरकार को बंगाल का विभाजन रद्द करना पड़ा। लेकिन यह आश्चर्य की बात लगती है कि कलकत्ता में व्यापार में लगे हुए मारवाड़ियों पर इसका कोई बड़ा असर नहीं दिखाई पड़ा। प्रवासी मारवाड़ी व्यापारियों की दुनिया एक ऐसा द्वीप थी जिसमें केवल धन कमाने की हविस के सिवाय और किसी चीज का अस्तित्व नहीं था। इस दुनिया को जगाने के लिए कभी-कभी उसे कोई धिक्कारता भी था, जैसे, "जिस समय भारतवर्ष के सभी श्रेणी के मनुष्य अपनी-अपनी उन्नति अपनी-अपनी जाति का सुधार और अपने-अपने अधिकार के लिए तुमुल आंदोलन चला रहे हैं, उस समय वह कौन सी जाति है जो अभी तक प्रगाढ़ निद्रा में सो रही है, जिसके कानों में अभी तक यह सुधार की चिल्लाहट नहीं पहुंची है और जो इस उन्नतकर समय में भी अपनी निद्रा को भंग न कर अपमानित और लांछित हुआ चाहती

है ? हमें बड़े दुख के साथ कहना पड़ता है, कहते भयानक लज्जा प्राप्त होती है कि यह 'मारवाड़ी समाज' है जो आंखें रहते हुए भी आंखें बन्द करके अन्धों के समान टटोलती (ता) हुई (आ) चलती (ता) है और जिसमें अभी तक उन्नति का वायु प्रवेश नहीं कर सका है" (मारवाड़ी कर्मचारियों की दुर्दशा – बालकृष्ण व्यास, १९१८)।

सन् १९११ में जब भागीरथजी ने कालीगोदाम की बिड़लों की गद्दी में काम करना शुरू किया तो उनके आसपास चहुंओर वही वातावरण था जिसमें 'उन्नति का वायु' प्रवेश न कर सका था। उस समय मारवाड़ी समाज में सनातनधर्मियों और सुधारवादियों के दो गुट जरूर थे और उनमें परस्पर तनातनी चलती थी। यह एक प्रकार से पुरानी और नयी पीढ़ी के बीच की खाई का प्रमाण भी था। इस समय वे सभी लोग, जो बाद में मारवाड़ी समाज में सुधार के कार्यों में भागीरथजी के सहयोगी बने, गद्दियों की दुनिया में कैद थे। सुबह से रात तक काम में पिले रहने के कारण उन्हें आपस में मिलने का और देश-समाज की समस्याओं पर विचार करने का मौका तक नहीं मिलता था। इसके अलावा गद्दियों की दुनिया में जो प्रतिष्ठित थे, वे सनातनी विचारों के थे और किसी भी प्रकार के सुधार के विरोधी थे। भागीरथजी जैसे नौजवानों को इस दुनिया में ही अपना स्थान बनाना था, सो उसमें बिना जमे हुए ही समाज के प्रतिष्ठित मुखिया लोगों से टक्कर लेने का साहस भी न था। एक बात और भी ध्यान में रखने की है और वह यह कि प्रवासी की मानसिकता अपने प्रवास के स्थान में मुसीबत मोल लेने की नहीं होती। वह अपने को बाहरी दुनिया से समेट कर अपने उद्देश्य की प्राप्ति में ही लगा रहता है। सुगबुगाहट के बावजूद यह स्थिति गांधीजी के असहयोग आंदोलन के समय तक बनी रही।

इस वक्त कलकत्ता में मारवाड़ियों की तीन सामाजिक संस्थाएं थीं—पिंजरापोल सोसाइटी (१८९०)। मारवाड़ी एसोसिएशन (१८९८) और विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय (१९०१)। 'सुधारक' शब्द उतना नहीं चला था। समाज की रूढ़ियों और रीति-रिवाजों को बदलने के पक्षधरों को मोटे तौर पर आर्यसमाजी कहा या माना जाता था। मारवाड़ी एसोसिएशन, मारवाड़ियों का मुख्य संगठन माना जाता था और इसके मुख्य कर्त्ता-धर्त्ता थे—जुहारमल खेमका, रामजीदास बाजोरिया, केशोराम पोद्दार, रामकुमार झुनझुनवाला, चिम्मनलाल गनेड़ीवाला, दौलतराम चोखानी आदि। दूसरी तरफ सुधार चाहनेवाले युवकों में प्रमुख थे—नागरमल मोदी, फूलचन्द चौधरी, रामकुमार जालान, रामकुमार गोयनका, बैजनाथ केड़िया आदि, जो सभी भागीरथजी से उम्र में सात-आठ साल बड़े थे। ये युवक मारवाड़ी एसोसिएशन में प्रतिनिधित्व चाहते थे, पर सनातनी नेता एसोसिएशन की "पवित्रता" बनाये रखने को कटिबद्ध थे। उन्होंने इन युवकों को एसोसिएशन में घुसने न देने के लिए यह नियम बना दिया था कि जो गीता की शपथ लेकर घोषणा करेंगे कि "हम सनातन-धर्मी हैं", उन्हें ही सदस्य बनाया जायेगा।

विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय चल रहा था, लेकिन उसका अपना मकान न था। १९०६ में उसे कलकत्ता विश्वविद्यालय ने हाई स्कूल तक शिक्षा प्रदान करने की अनुमति भी दे दी। विद्यालय चलता रहा, पर मकान की समस्या बनी हुई

थी। मार्च १९११ में पं० मदनमोहन मालवीय कलकत्ता आये तो उन्होंने मारवाड़ियों की एक सभा में जल्द से जल्द विद्यालय का मकान बनाने के लिए कोष इकट्ठा करने की अपील की। इस अपील का ऐसा प्रभाव पड़ा कि कुछ लोगों ने यह प्रतिज्ञा कर डाली कि जब तक मकान बनाने के कोष में तीन लाख रुपया इकट्ठा नहीं होगा तब तक वे पगड़ी नहीं बांधेंगे। इकट्ठा करने का यह काम इतने जोरों से चला कि नौ महीने के भीतर ही तीन लाख तीन सौ दो रुपये हो गये। सुधारवादी युवकों ने भी रुपये इकट्ठा करने में पूरा सहयोग दिया। इसके चलते उनकी इच्छा हुई कि विद्यालय की कार्यकारिणी में उनका भी प्रतिनिधित्व हो, पर सनातनी उन्हें यहां भी न घुसने देने के लिए कटिबद्ध थे। उन्होंने वही शर्त्त दुहरायी कि गीता की शपथ लेकर घोषणा करनी पड़ेगी कि "हमारा सनातन धर्म में पूरा विश्वास है।"

सनातनियों का दबदबा कितना ज्यादा था और सुधारवादी कितने विवश थे, इसका एक दिलचस्प किस्सा यहां दिया जाता है। इस समय सुधारवादी युवकों के बीच दक्षिण के एक स्वामी शंकरानन्दजी योगी का बहुत प्रभाव था। स्वामीजी राष्ट्रीयतावादी और समाज-सुधारक थे। युवकों ने स्वामीजी को कहा : "हमने इतनी मेहनत से चंदा इकट्ठा किया पर ये बड़े-बूढ़े 'पोंगे' हमें कहते हैं कि गीता की शपथ लेकर सनातनधर्मी होने की घोषणा करो तभी कार्यकारिणी का सदस्य बनाया जा सकता है।" इस पर स्वामीजी ने युवकों से कहा : "तुम लोगों को कहना चाहिए था कि हम गीता की शपथ लेकर घोषणा कर देंगे पर आप लोगों को भी ऐसी ही घोषणा करनी पड़ेगी। ऐसा कहने पर वे लोग गीतावाली बात पर जोर नहीं देते। खैर, अब जब चुनाव हो तब तुम सब लोग सभा-स्थल में दो-दो तीन-तीन के गुट में चार-पांच जगह बैठ जाना और नियोजित रूप से मंत्री के लिए सनातनधर्मियों में से ही किसी ऐसे व्यक्ति का नाम प्रस्तावित करना जो तुम लोगों से शत्रुता न रखता हो और जिसके नाम को अस्वीकार करना उनके लिए आसान न हो।"

तो विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय की कार्यकारिणी और पदाधिकारियों के लिए चुनाव की सभा में सुधारवादी युवकों ने 'षड़यंत्र' करके रूड़मलजी गोयनका का नाम मंत्री के पद के लिए प्रस्तावित किया। रूड़मलजी कलकत्ता के प्रसिद्ध गोयनका परिवार (जिसमें दो-दो सर हुए—सर हरिराम और सर बदरीदास) के थे और संस्कृत के अच्छे विद्वान माने जाते थे। सनातनियों से रूड़मलजी का नाम अस्वीकार करते न बना। रूड़मलजी मंत्री हुए और शायद एक दो सुधारवादी युवक कार्यकारिणी में लिये भी गये।

प्रथम विश्वयुद्ध आरम्भ होने के बाद पंजाब में गदर पार्टी और बंगाल में युगांतर और अनुशीलन समितियों से सम्बन्धित लोगों को सरकार अंधाधुन्ध गिरफ्तार करने लगी। मारवाड़ी समाज व्यापारी समाज होने के कारण राजभक्त माना जाता था। विदेशी कपड़े का व्यापार उसका मुख्य व्यापार था। कपड़े का आयात अंग्रेजी आफिसों द्वारा होता था। मारवाड़ी समाज के बड़े नेता या पंच इन आफिसों के दलाल या मुसद्दी थे। सुधारवादी युवकों में से कुछ ऐसे थे जो अंगरेजी राज्य के खिलाफ उग्र विचार रखते थे और क्रान्तिकारियों के साथ भी उनका थोड़ा-बहुत सम्बन्ध था। सन् १९१६ में ऐसे कुछ युवकों ने रोडा कम्पनी के कुछ कारतूस लाकर बांसतल्ला स्ट्रीट के

एक गोदाम में रखे। पुलिस को इसका पता चल गया। उसने गोदाम पर छापा मार कर कारतूस बरामद किये और कुछ मारवाड़ी युवकों—हनुमानप्रसाद पोद्दार, प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका, कन्हैयालाल चितलांगिया, ओंकारमल सराफ, ज्वालाप्रसाद कानोड़िया और फूलचन्द चौधरी को गिरफ्तार किया। घनश्यामदासजी बिड़ला पर भी वारंट था और उनको गिरफ्तार करने के लिए पुलिस ने काली गोदाम पर भी छापा मारा था, लेकिन वह कलकत्ता से बाहर गये हुए थे।

मारवाड़ी युवकों की गिरफ्तारी से कलकत्ता के मारवाड़ी व्यापार-जगत में भयानक आतंक छा गया। उन दिनों सर (डा०) कैलाशचन्द्र बोस का मारवाड़ी समाज के प्रतिष्ठित लोगों से बहुत अच्छा ताल्लुक था। प्रतिष्ठित का मतलब बड़े व्यापारी, जो अंग्रेज सरकार के भक्त होने के साथ रूढ़ियों के भक्त भी थे। सर कैलाशचन्द्र ने पुलिस अधिकारियों को आश्वासन दिया कि घनश्यामदासजी बिड़ला का क्रान्तिकारियों से कोई सम्बन्ध नहीं है, तो उनके नाम वारंट रद्द हुआ। मारवाड़ी समाज के प्रतिष्ठित नेता अंग्रेज सरकार को यह जताने के लिए कि मारवाड़ी समाज की क्रान्तिकारियों से किसी भी प्रकार की सहानुभूति नहीं है, 'सब कुछ' करने को तैयार थे, "वे सर कैलाश चन्द्र के मारफत सरकार के पास राज-भक्ति के संदेश भेजने लगे।" इस वक्त आज की मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी का नाम मारवाड़ी सहायक समिति था। सर कैलाशचन्द्र ने मारवाड़ी समाज के कर्णधारों को सुझाया कि 'समिति' नाम बहुत खतरनाक है, क्योंकि बंगाल के क्रान्तिकारी आंदोलन के दो संगठनों के नाम में 'समिति' है—युगान्तर समिति और अनुशीलन समिति। इसलिए मारवाड़ी सहायक समिति का नाम न बदला गया तो सरकार मारवाड़ी समाज को शंका की दृष्टि से देखती रहेगी। यह सुझाव मान लिया गया और मारवाड़ी सहायक समिति का नाम बदल कर मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी रखा गया। इन सब बातों का नतीजा यह हुआ कि मारवाड़ी समाज में सनातनधर्मियों और सुधारकों के बीच जो तनातनी चल रही थी, उसमें सनातनधर्मियों का पलड़ा और भी भारी हो गया। लेकिन यह प्रकृति का एक प्रकार का अटल नियम-सा लगता है कि जब चरम निराशा हो, तब उसमें कुछ लोग ऐसे तत्व भी देखने लगते हैं जिससे उन्हें कहीं न कहीं बल मिलता है। सन् १९१६ में कुछ मारवाड़ी युवकों की गिरफ्तारी से जो आतंक पैदा हुआ, उसमें यह तथ्य भी प्रकट हुआ कि दब्बू और सरकार-परस्त समाज में भी कुछ ऐसे युवक भी थे जो अंग्रेज सरकार से लड़ने के लिए जोखिम उठाने को कुछ हद तक तैयार थे। इस तथ्य से मारवाड़ी समाज के उन युवकों ने, जिनकी अब तक सुधारवादियों के पक्ष का मन ही मन समर्थन करने के सिवाय कोई भूमिका नहीं थी, निश्चय ही प्रेरणा ग्रहण की। मारवाड़ी समाज, वैश्य समाज होने के कारण उग्र कदम उठा नहीं सकता। उसके ये युवक स्थिति का प्रतिकार जरूर करना चाहते थे, लेकिन साथ ही किसी प्रकार की मुठभेड़ से भी बचना चाहते थे। उनकी मानसिक स्थिति कुछ इस प्रकार की थी कि—"चाहे जो हो, हम चुप नहीं बैठ सकते, हमें कुछ न कुछ करना होगा और पहले कदम के रूप में हमें आपस में मिलना-जुलना शुरू करना चाहिए।"

ऐसे युवकों ने 'मिलना-जुलना' शुरू कर 'ज्ञानवर्द्धिनी मित्र-मंडली' स्थापित की। इस संस्था के उद्देश्यों में यह लिखा गया कि राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक

कामों से संस्था का कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा। यह ज्ञानवर्धन के कामों तक अपना कार्य सीमित रखेगी। भागीरथजी का इस संस्था से प्रारम्भ से ही सम्बन्ध रहा। कलकत्ता के सदासुख कटरे में संस्था का कार्यालय खोला गया। इसमें शहर में बाहर से आये प्रसिद्ध व्यक्तियों के व्याख्यान कराये जाते थे। संस्था में २०-२५ से ३०-३५ वर्ष की उम्र तक के युवक थे। कलकत्ता में आगे जाकर १९१७-१८ से १९४७ तक और उसके बाद भी सामाजिक, राजनीतिक कार्यों में जो मारवाड़ी कार्यकर्त्ता-नेता सक्रिय रहे, वे प्रायः सभी 'ज्ञानवर्द्धिनी मित्र-मंडली' के सदस्य थे—पद्मराज जैन, नागरमल केडिया, विलासराय मोदी, बैजनाथ केडिया, रंगलाल जाजोदिया, (इन सब की १९४०-५० के आसपास मृत्यु हो गयी), बसन्तलाल मुरारका, गंगाप्रसाद भोतिका, भागीरथ कानोड़िया, रामकुमार भुवालका, मोतीलाल लाठ (इन सब की १९५६ से ८० के बीच मृत्यु हुई, अन्तिम तीन की तो १९७९-८० में छह महीनों के भीतर), प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका और सीताराम सेकसरिया।

कलकत्ता में मारवाड़ी समाज में सामाजिक सुधार और शिक्षा के क्षेत्र में जो भी काम हुआ, उसकी इस मित्र-मंडली के बिना कल्पना भी नहीं की जा सकती। इस मंडली के लोगों ने अपने जीवन-काल में बीसियों-तीसियों संस्थाओं को जन्म दिया। अपने भरसक सार्वजनिक कार्यों में चन्दा दिया और कांग्रेस तथा देश की अन्य संस्थाओं के लिए लाखों ही नहीं, करोड़ों रुपयों का चंदा करवाया। समाज-सुधार के सभी आंदोलनों—विधवा-विवाह, मृतकविरादरीभोजबन्दी, दहेजबन्दी, परदा-निवारण आदि—में जम कर भाग लिया। अपने परिवारों में सामाजिक कुप्रथाएं तोड़ीं। हिन्दी के प्रचार-प्रसार में योगदान किया। साप्ताहिक और मासिक पत्र (अग्रसर सुधारक, जागरण, नया समाज आदि) निकाले। देश के स्वाधीनता-आन्दोलन में भाग लिया और कइयों ने जेल-यात्राएं भी कीं। इस मित्र-मंडली के सब सदस्यों का सार्वजनिक जीवन एक दूसरे से इतना जुड़ा हुआ है, कि जब हम एक की बात लिखते हैं तब अनायास ही वह सब की बात हो जाती है। यह कहना शायद अतिशयोक्ति नहीं है कि मारवाड़ी समाज ही नहीं, किसी अन्य समाज में भी इस तरह की मित्र-मंडली नहीं रही, जिसने बीस-तीस वर्ष तक अनवरत सामाजिक और राजनीतिक कार्य किया हो। सेठ जमनालाल बजाज के रूप में इस मित्र-मंडली के सदस्यों ने एक 'बड़ा भाई' और रहनुमा प्राप्त किया तथा गांधीजी को तो लगभग पिता जैसा ही माना। बड़ा भाई और पिता मानने की बात आज के लोगों को कुछ अटपटी या अतिशयोक्तिपूर्ण लग सकती है, लेकिन राजस्थान के शेखावाटी से कलकत्ता आये इन व्यापारी; सामाजिक-राजनीतिक कार्यकर्त्ताओं में इतनी बौद्धिकता नहीं थी कि वे सिर्फ बुद्धि के आग्रह और उसके बल पर किसी को रहनुमा या नेता मान लें। उनके लिए रहनुमा या नेता को पारिवारिक हैसियत प्रदान करना जरूरी था। जमनालाल बजाज ने जब गांधीजी से कहा था कि वह उन्हें अपना पांचवा पुत्र मानें तो उसके पीछे यही संस्कार काम कर रहा था। मित्र-मंडली में यह फैसला हुआ था कि आपस में किसी बात का फैसला न होने पर उसे गांधीजी को सौंपा जायेगा। मंडली के 'गरम' सदस्यों के बारे में 'नरम' सदस्य गांधीजी तक 'शिकायत पहुंचाते थे और उसके बारे में गांधीजी का निर्णय न आने तक गरम-नरम दोनों ही सस्पेंस की (अनिश्चय की) स्थिति में रहते थे।

'ज्ञानवर्द्धिनी मित्र मंडली' की स्थापना भय के वातावरण में हुई थी, लेकिन वह भय को भगाने का एक उपक्रम भी थी। धीरे-धीरे जब भय कम होने लगा तो मंडली के सदस्य महसूस करने लगे कि वे जो काम करना चाहते हैं, उसके लिए इतने सीमित उद्देश्यों की संस्था से काम नहीं चल सकता। मारवाड़ी एसोसिएशन उन दिनों मारवाड़ी समाज का मुख्य संगठन था लेकिन इसमें सनातनी ज्ञानवर्द्धनीवाले युवकों को घास का एक तिनका भी डालने को तैयार न थे। काफी सोच-विचार के बाद एसोसिएशन के विरोध में मारवाड़ी ट्रेडर्स एसोसिएशन नामका एक समानान्तर संगठन स्थापित करने का निर्णय किया गया। इस एसोसिएशन में ज्ञानवर्द्धिनी मित्र-मंडली अन्तर्भुक्त कर दी गयी। १९१८ में जमनालाल बजाज कलकत्ता आये तो उन्होंने मारवाड़ी एसोसिएशन के सनातनी नेताओं तथा सुधारवादी युवक कार्यकर्ताओं के बीच झगड़े को मिटाने की कोशिश की, लेकिन सनातनी नेता अपनी अकड़ में कोई समझौता करने को तैयार न थे। जमनालालजी ने सनातनियों का प्रभाव समाप्त करने के लिए अखिल भारतीय मारवाड़ी अग्रवाल महासभा की स्थापना की, जिसके भागीरथजी एक सक्रिय सदस्य बने।

देश में राजनीतिक सरगर्मी बढ़ रही थी। १९१९ में रोलट ऐक्ट को लेकर अंग्रेजों के विरुद्ध प्रचंड वातावरण बन रहा था। गांधीजी ने इस काले कानून के विरुद्ध सत्याग्रह की घोषणा कर दी थी और इसी बीच आग में घी के समान ६ अप्रैल को अमृतसर में जलियानवाला बाग में नृशंस हत्याकांड हुआ। ऐसे में मारवाड़ी अग्रवाल महासभा का काम बहुत तेजी से बढ़ा। जमनालालजी बजाज इस महासभा के प्राण थे। असहयोग आंदोलन के सिलसिले में कांग्रेस में उनकी जो भूमिका रही थी, उसके कारण वह देश के मुख्य नेताओं में गिने जाने लगे थे। देश भर के मारवाड़ी युवक जमनालालजी के नेतृत्व में सामाजिक सुधार का आंदोलन करने के साथ देश के स्वाधीनता संग्राम में भी भाग लेना चाहते थे। यह समय समाज-सुधार और राजनीति के बीच अटूट सम्बंध का था—सनातनी, समाज सुधार के विरुद्ध और अंग्रेज सरकार के पक्ष में थे, और सुधारक, समाज-सुधार के पक्ष में और अंग्रेज सरकार के विरुद्ध थे।

मारवाड़ी अग्रवाल महासभा का पहला अधिवेशन वर्धा में और दूसरा बम्बई में हुआ। बम्बई अधिवेशन में गांधीजी भी आये। इस वक्त बाल-विवाह के विरोध पर ही जोर था, सुधारवादी युवक भी विधवा-विवाह का समर्थन करने से हिचकते थे। बम्बई अधिवेशन में 'बाल-विवाह' के प्रस्ताव पर काफी वाद-विवाद के बाद तय हुआ कि बारह वर्ष से पहले लड़की और १६ वर्ष से पहले लड़के का विवाह न किया जाय। इसके साथ ही संशोधन के रूप में यह छूट दी गयी कि विशेष अनुमति से कन्या का विवाह १२ वर्ष के पहले भी किया जा सकता है। इस संशोधन को नवयुवकों को स्वीकार करना पड़ा। अप्रैल १९२१ में महासभा का तीसरा अधिवेशन कलकत्ता में हुआ। सनातनियों ने इस अधिवेशन का बहुत विरोध किया। उनके विरोध के कारण अधिवेशन शायद और भी ज्यादा सफल रहा। इस अधिवेशन के बाद महासभा का कार्यालय कलकत्ता में ही रखने का निश्चय हुआ और बसंतलालजी मुरारका महासभा

के प्रधानमन्त्री चुने गये। १९२६ में मारवाड़ी अग्रवाल महासभा के ८ वर्ष के कार्य-काल के सम्बन्ध में बसन्तलालजी ने एक पुस्तिका प्रकाशित करवायी। इस पुस्तिका से पता चलता है कि देश भर में तव तक महासभा की ३०० से भी अधिक शाखाएं स्थापित हो गयी थीं। भागीरथजी महासभा में इस वक्त निश्चय ही काफी सक्रिय थे क्योंकि असम और वंगाल में महासभा की कार्य-संचालन समिति के वह सदस्य थे। अन्य सदस्य थे—रंगलाल जाजोदिया, बैजनाथ केड़िया, तुलसीराम सरावगी, पद्मराज जैन, प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका, रामचन्द्र पोद्दार, रामेश्वर सिंहानिया (जलपाईगुड़ी) और मुरलीधर चोखानी (माकुम जंक्शन, असम)।

देश में गांधीजी की महत्ता स्थापित हो गयी थी। भागीरथजी तथा मित्र-मण्डली के सभी युवक गांधीजी के प्रभाव में आ चुके थे। गांधीजी की विचारधारा उन्हें अपने अनुकूल तो लगती ही थी, इसके अलावा वह उन्हें एक ऐसे धार्मिक महापुरुष भी लगते थे, जो सनातनियों के चंगुल से धर्म की रक्षा कर 'सत्य-धर्म' स्थापित कर सकते थे। १९२१-२२ तक मण्डली के प्रायः सभी युवक नौकरियां छोड़ कर स्वतंत्र रूप से व्यापार करने लगे थे। भागीरथजी, यद्यपि विड़लों के यहां ही काम कर रहे थे लेकिन १० वर्षों के भीतर उनकी स्वतन्त्र हैसियत बन गयी थी। स्वाभाविक था कि इससे सारी मित्र मण्डली में ऐसा आत्म-विश्वास पैदा हुआ कि अब सनातनियों से टक्कर ली जा सकती है। मण्डली कोई ऐसा काम करने को व्यग्र थी, जो अव तक न हुआ था। उसके सदस्य मारवाड़ी अग्रवाल महासभा के बाल-विवाह सम्बन्धी प्रस्ताव को बहुत कमजोर मानते थे। केन्द्रीय धारा सभा (सेंट्रल एसेम्बली) में लड़कियों के विवाह की उम्र बढ़ाने के लिए जब शारदा बिल पेश किया गया और गांधीजी को इसका समर्थन करने का अनुरोध किया गया तो उन्होंने लिखा : "मैं यह स्वीकार करता हूं कि बिल के बारे में मुझे ज्यादा जानकारी नहीं, लेकिन मैं लड़कियों के विवाह की उम्र बढ़ाकर १४ (शारदा बिल में १४ की तजवीज थी) नहीं, १६ करने के पक्ष में हूं। विवाह की रस्म-अदाई से १४ वर्ष की लड़की का विवाह, जो अनैतिक और अमानवीय कार्य है, कानूनी नहीं बन जाता। जो कार्य अपने-आप में अनैतिक है, उसे संदिग्ध संस्कृत श्लोकों से पवित्र नहीं बनाया जा सकता। मैंने बहुत सी बाल-माताओं की तन्दुरुस्ती चौपट होती देखी है और जब बाल-विवाह के साथ बाल-वैधव्य की विभीषिका भी मिल जाती है, तब तो यह ट्रैजेडी पूरी हो जाती है" (यंग इंडिया, २७ अगस्त, १९२५)।

अभी तक मण्डली के युवक बाल-विवाहों और वृद्ध विवाहों (अनमेल-विवाह) को रोकने के आन्दोलन ही करते थे और इनमें भी उन्हें पूरी सफलता नहीं मिलती थी। आन्दोलन का एक नतीजा यह जरूर हुआ था कि वृद्ध-विवाह छिप कर होने लगे और उनकी सामाजिक स्वीकृति को भी एक प्रकार का धक्का लगा। सीतारामजी ने बाल-विवाह और अनमेल विवाह-विरोधी आंदोलनों के बारे में बताया : "इन आन्दोलनों में भागीरथजी पूरी तरह सक्रिय थे। अनमेल विवाह-विरोधी आंदोलनों में हम दोनों पक्षों को समझाने की चेष्टा करते। सफल न होने पर हम लोग विवाहों में बाधा डालते, प्रदर्शन करते। यहां तक कि मौका लगाकर लड़कियों को उठा लेते थे और फिर बाद में उनके अभिभावकों को समझा कर उनकी उम्र के अनुकूल लड़कों से

उनका विवाह करवा देते। मुझे यह याद तो नहीं है कि यह कब की बात है, एक लड़की को हमलोग उठा लाये। उसकी उम्र १० वर्ष थी। उसका विवाह हम नहीं कर सकते थे। उसे ४-५ वर्ष रखना पड़ा। यह लड़की भागीरथजी के जूट प्रेस में रही। उसके रहने का सारा खर्च और वाद में उसके विवाह का सारा खर्च भागीरथजी ने दिया। खर्च उठाने से भी वहुत बड़ी वात उस जमाने में किसी परायी लड़की को अपने संरक्षण में इस प्रकार रखने और सामाजिक वदनामी से न डरने की थी। 'लड़कियां उठाने' की इस उग्र कार्रवाई को लेकर हमारी मित्र-मण्डली में भारी मतभेद हुआ। हमारे दो मित्रों ने 'लड़की उठाने' के बारे में गांधीजी को पत्र लिखा तो उनका उत्तर आया कि लड़कियों को जबरदस्ती उठा कर लाना अनुचित है। इसके बाद लड़कियों को उठाने की वात समाप्त हो गयी।"

तो मण्डली यह सोचने लगी थी कि "हमें समाज सुधार का कोई क्रांतिकारी कदम उठाना चाहिए, जिससे समाज में क्रांति की भूमिका तैयार हो सके।" इसी समय (१९२६) में मण्डली के लोगों ने सुना कि हावड़ा में एक मारवाड़ी बाल-विधवा जानकी देवी शाह वैधव्य से तंग आ गयी है और पुर्नविवाह करना चाहती है। झरिया के नागरमलजी लील्हा की पत्नी का देहान्त हो गया तो उन्होंने निश्चय किया कि "मैं मारवाड़ी अग्रवाल विधवा से ही विवाह करूंगा ताकि मारवाड़ी समाज में विधवा-विवाह के प्रचलन को वल मिल सके।" जानकी देवी और नागरमलजी को एक दूसरे को दिखाया गया। जानकी देवी २२ वर्ष की थीं और नागरमलजी ३६ वर्ष के। नागरमलजी आर्य समाजी विचारों के थे और विवाह के लिए आर्य समाज मन्दिर उपलब्ध भी था, लेकिन मण्डली के युवक सनातनियों के मुहल्ले बड़ाबाजार में ही सवकी आंखों के सामने उसे करना चाहते थे ताकि समाज पर ज्यादा प्रभाव पड़े और सनातनियों की छाती पर मूंग दला जाय। छाजूरामजी चौधरी का मकान बहुत बड़ा और बड़ाबाजार के बीचोबीच था। युवकों ने विवाह के लिए इस मकान को चुना। छाजूरामजी मकान देने को सहर्ष राजी हो गये। विवाह बड़े जोश और उत्तेजना के वातावरण में सम्पन्न हुआ।

सनातनियों में इस विवाह की प्रचण्ड प्रतिक्रिया हुई। बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह का विरोध तो वे कुछ हद तक समझ सकते थे पर विधवा-विवाह तो उनकी निगाह में सरासर अधर्म था। उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय के संस्कृत प्राध्यापक महामहोपाध्याय पं० लक्ष्मण शास्त्री की अध्यक्षता में बड़ाबाजार में विधवा-विवाह के विरोध में सार्वजनिक सभा का आयोजन किया। सभा-स्थल के चारों ओर सनातनियों ने लठैत गुण्डों को तैनात किया। सभा में विधवा-विवाह विरोधी भाषणों के बाद आयोजकों की ओर से शास्त्रार्थ की परम्परा की रक्षा करने के लिए ऐलान किया गया, 'विधवा-विवाह के पक्ष में कोई वोलना चाहे तो उसे १० मिनट का समय दिया जायेगा।' इस पर पं० दीनानाथ सिद्धांतालंकार उठे और उन्होंने विधवा-विवाह के पक्ष में शास्त्रीय प्रमाण देने शुरू किये ही थे कि उन पर और विधवा-विवाह के समर्थकों पर तड़ातड़ लाठियों की वर्षा होने लगी। 'इंगलिश मैन' (अंग्रेजी में कलकत्ते से निकलनेवाला दैनिक) ने इस सभा को लेकर कलकत्ता-पुलिस और बंगाल सरकार को फटकारते हुए

लिखा कि वे नगर के समाज-सुधारक कार्यकर्ताओं को कुछ अनुदार धनिकों के गुण्डों द्वारा पिटवाकर ब्रिटेन की सुधार-पोषक परम्पराओं को कलंकित करना चाहती हैं। 'इंगलिशमैन' के इस मन्तव्य से सनातनियों को यह लगा कि राज-भक्ति के पुरस्कार-स्वरूप उन्हें सुधारवादियों के खिलाफ़ गुण्डई करने में शायद सरकार का सहयोग न मिले। इससे उनमें निराशा पैदा हुई, फिर भी धर्म की रक्षा करने क लिए विधवा-विवाह जैसे "अधर्म करनेवालों को कोई न कोई सजा देना जरूरी है वरना समाज में अधर्म का ही बोलवाला हो जायेगा" सो उन्होंने विधवा-विवाह कराने में जिन १२ युवकों की सबसे अधिक सक्रिय भूमिका थी, उन्हें जाति-बहिष्कृत कर दिया। तो भागीरथ कानोड़िया, पद्मराज जैन, प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका, बसन्तलाल मुरारका, सीताराम सेकसरिया, ओंकारमल सराफ, जगन्नाथ गुप्त, रामगोपाल सराफ, फूलचन्द चौधरी, रामकुमार भुवालका, नागरमल मोदी और धर्मचन्द रानीवाला जाति-बहिष्कृत कर दिये गये।

कलकत्ता के सुधारवादी युवकों द्वारा आयोजित नागरमल लील्हा और जानकी देवी का यह विवाह कितना क्रांतिकारी था, यह इस बात से प्रकट है कि मारवाड़ी अग्रवाल महासभा को भी इसका समर्थन करते नहीं बना। महासभा के ११वें अधिवेशन में विधवा-विवाह की निन्दा करते हुए प्रस्ताव पास हुआ। इस पर नवयुवकों में बहुत क्षोभ देखा गया तो अप्रैल १९३० में उज्जैन के अपने १२वें अधिवेशन में महासभा ने एक प्रस्ताव पास कर कहा: "विधवा-विवाह का प्रश्न विवादग्रस्त है (इसलिए) अनेक कारणों से महासभा इस प्रश्न पर विचार करना उचित नहीं समझती।" बहरहाल, विधवा-विवाह आयोजित करने के बाद मित्र-मण्डली का उत्साह बढ़ता ही गया। मण्डली के सदस्य मृतक बिरादरी भोजों में पिकेटिंग करते रहे। पिकेटिंग के दौरान उन पर ऊपर से मैला फेंका जाता, गंदी-गंदी गालियों की बौछार की जाती और कभी-कभी भोज में जानेवाले लोग उनके शरीर को रौंद कर भी जाते। विधवा-विवाह का कोई अवसर मिलने पर मित्र-मण्डली उसका आयोजन करती। मण्डली के एक सदस्य रामकुमारजी भुवालका ने अपनी पत्नी के मरने पर १९३५ में विधवा-विवाह किया और १०-१५ वर्ष बाद मण्डली के एक और सदस्य बसन्तलालजी मुरारका ने अपने कुंवारे पुत्र का विधवा से ही विवाह किया; बसन्तलालजी की मृत्यु के बाद उनके सबसे छोटे कुंवारे पुत्र का भी विधवा से ही विवाह हुआ। मृतक बिरादरी भोजों, बाल-विवाहों, अनमेल-विवाहों के विरोध और विधवा-विवाहों के आयोजन के साथ मण्डली के सदस्य मारवाड़ी समाज में प्रचलित पर्दा-प्रथा के खिलाफ भी लगातार आन्दोलन करते रहे। इन सभी आंदोलनों में भागीरथजी आगे रहे।

कलकत्ता में कई वर्षों तक हर साल पर्दा-निवारण दिवस मनाया जाता था। मण्डली के सदस्य उन विवाहों में भाग नहीं लेते थे, जिनमें पर्दा-प्रथा का पालन होता था और वर-कन्या की उम्र १८-१४ से कम होती थी। बिड़ला-परिवार में एक विवाह में पर्दा-प्रथा के पालन का अन्देशा था तो मित्र-मण्डली ने उसमें भाग नहीं लेने का निर्णय किया। अन्ततः इस विवाह में पर्दा-प्रथा का पालन नहीं हुआ और तब जाकर मण्डली के सदस्य बारातियों के स्वागत और सम्मान में दिये जाने वाले भोज "सज्जन

गोठ" में शामिल हुए। अप्रैल १९४६ में स्वयं भागीरथजी के बड़े भाई गंगाबक्सजी की पौत्री का विवाह था। इस विवाह में पर्दा-प्रथा का पालन हो रहा था सो भागीरथजी ने उस विवाह में भाग नहीं लिया। इस विवाह के दिन ही इस ग्रन्थ के सम्पादक का भी विवाह था। भागीरथजी के मकान पर ही यह विवाह हुआ। लोगों ने कहा कि जिस दिन घर में 'शुभ विवाह' हो रहा हो, उसी दिन भागीरथजी का अपने मकान में 'विधवा-विवाह' होने देना अमांगलिक है। इस तरह की बातों का भागीरथजी के लिए अर्थ नहीं था, पर ये उस वक्त की परिस्थितियों की सूचक तो हैं ही। एक तरह से १९४६ तक कलकत्ता में मारवाड़ी समाज के भीतर समाज सुधार का आन्दोलन जारी रहा। इसके बाद वह मंद पड़ता गया और अब तो बिलकुल समाप्त ही हो गया है। हाल में विवाहों में अत्यधिक शान-शौकत के खिलाफ छिटपुट आंदोलन जरूर हुए हैं, पर यह कहना होगा कि उनमें पहले जैसी आंच नहीं है।

भागीरथजी निश्चय ही एक धार्मिक व्यक्ति थे, लेकिन वह परम्परावादी और रूढ़िवादी न थे। ऐसी सामाजिक और धार्मिक परम्पराओं और रूढ़ियों को जो मनुष्य के बीच भेद करती हों और स्त्री को हेय और वस्तु मानती हों, वह स्वीकार नहीं कर सकते थे। अंग्रेजीदां लोग जब रूढ़ियों का विरोध करते हैं तो उसके पीछे यह भाव ज्यादा रहता है कि इनके रहते "हम आधुनिक युग में पिछड़े कहलायेंगे," लेकिन भागीरथजी ने रूढ़ियों का विरोध किया और समाज सुधार के आंदोलन में भाग लिया तो उसके पीछे सामाजिक अन्याय के विरुद्ध उनकी जाग्रत संवेदना ही थी।

७

शिक्षा-प्रसार और हिन्दी-प्रचार

भागीरथजी जब बीस वर्ष के थे तब एक बार बीमार पड़े। गद्दी में बीमार की तीमारदारी नहीं हो सकती थी सो उन्हें मुकुन्दगढ़ जाना पड़ा। बीमारी में उन्हें सारे समय लेटे रहना पड़ता। एक दिन उन्होंने अपनी छोटी बहन कृष्णा बाई को, जो उस समय १२-१४ वर्ष की रही होगी, कहा "बाई, आ तन (तुम्हें) लिखनो-पढ़नो सिखा दूं।" कृष्णा बाई को अक्षर-ज्ञान न था। उन्होंने कहा कि अभी आप बीमार हैं, ठीक हो जाने पर सिखाइएगा, लेकिन भागीरथजी ने कहा कि उनका समय नहीं बीतता है, पढ़ाने से वह बीतने लगेगा। बीमार रहते हुए भागीरथजी ने कृष्णा बाई को लिखना-पढ़ना सिखा दिया और गीता भी पढ़ा दी। इसी पढ़ाई के बल पर वह आजीवन गीता पाठ करती रहीं।

ऊपर की घटना हमने इसलिए लिखी कि इससे भागीरथजी की पढ़ाने की ललक का पता चलता है। हमने देखा है कि पुरानी पीढ़ी के ऐसे लोगों में, जो समाज-सेवा के कार्यों में भाग लेते थे, निरक्षरों को साक्षर बनाने और खासकर स्त्रियों में शिक्षा का प्रसार करने की विशेष लगन होती थी। कलकत्ता में सामाजिक और

राजनीतिक कार्य करनेवाले मारवाड़ी युवकों की मित्र-मण्डली ने स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया है। जब यह मित्र-मंडली आगे बढ़ कर समाज-सुधार के काम करने लगी तो उसका ध्यान शिक्षा की ओर भी गया। वह जमाना ही ऐसा था जब समाज-सुधार की दिशा सर्वतोमुखी होती थी—रूढ़ियों का विरोध करनेवाला सामाजिक कार्यकर्त्ता अपने-आप शिक्षा के प्रसार में भी लग जाता था।

आज से साठ-सत्तर वर्ष पहले मारवाड़ी समाज शिक्षा के क्षेत्र में भयंकर रूप से पिछड़ा हुआ था। सारे समाज में दो-तीन व्यक्ति भी ग्रेजुएट न थे और स्त्रियों में तो लगभग सभी निरक्षर थीं। कलकत्ता के समाज-सुधारवादी मारवाड़ी युवकों की मित्र-मण्डली को अपने समाज का यह पिछड़ापन बंगाली समाज की शिक्षा के क्षेत्र में उन्नति को देखते हुए और भी ज्यादा अखरता था। एक बात और, तब मारवाड़ी होने का अर्थ ही पिछड़ा होना और शिक्षा और संस्कृति के मामलों में कोरा होना होता था। इस पिछड़ेपन के एहसास के कारण मारवाड़ी सामाजिक कार्यकर्त्ताओं में बंगाली के मुकाबले एक प्रकार की 'हीन-भावना' थी। लेकिन यह हीन-भावना, ग्रन्थिवाली हीन-भावना नहीं थी, सो उसमें हीनता को दूर करने की भावना ही ज्यादा प्रबल थी। सनातनियों की ओर से इस वक्त लड़कों के लिए विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय और लड़कियों के लिए सावित्री पाठशाला चल रही थी। सनातनी, लड़कियों को उच्च शिक्षा देने की कल्पना भी नहीं कर सकते थे, सो सावित्री पाठशाला में लड़कियों को अक्षर-ज्ञान करा कर तथा विष्णु सहस्रनाम, हनुमान-चालीसा, गीता और देव-स्तुतियां रटा-पढ़ा कर स्त्री-शिक्षा का कर्तव्य पूरा किया जाता था। १९२० में जुगलकिशोरजी बिड़ला और घनश्यामदासजी बिड़ला के प्रयत्न से और उनके ही द्वारा दिये गये मकान में मारवाड़ी बालिका विद्यालय खोला गया। विद्यालय में किसी भी प्रकार की फीस नहीं थी, लेकिन माता-पिता लड़कियों को स्कूल भेजने को तैयार नहीं होते थे। सो विद्यालय में बहुत कम लड़कियां थीं और चौथी से आगे की कक्षा तो थी ही नहीं। १९२९-३० में भागीरथजी, सीतारामजी और स्व० गंगाप्रसादजी भोतिका ने विद्यालय का काम सम्भाला, तो चौथी कक्षा के बाद पांचवीं कक्षा तो चालू हुई, लेकिन छठी कक्षा खोलने के लिए कोई लड़की ही न थी. तब पांचवीं कक्षा की एक पंजाबी लड़की—कौशल्या कालरा—को डबल प्रमोशन देकर छठी कक्षा शुरू की गयी। आगे जाकर एक-एक, दो-दो लड़कियों को लेकर सातवीं-आठवीं कक्षाएं खोली गयीं।

१९३५ में पहली बार विद्यालय से दो लड़कियों को मैट्रिक की परीक्षा देने के लिए भेजा गया। मारवाड़ी बालिका विद्यालय का काम आगे बढ़ाने में भागीरथजी का बहुत बड़ा हाथ रहा। कलकत्ता में आजादी के पहले तक हिन्दी भाषा-भाषी लड़कियों का एक तरह से यही एकमात्र विद्यालय था। विद्यालय के भूतपूर्व कार्यालय अधिकारी द्वारका प्रसादजी ने हमें बताया कि भागीरथजी विद्यालय का काम अपार लगन और निष्ठा के साथ करते थे। वह कितनी ही गरीब लड़कियों की पढ़ाई का खर्च स्वयं देते थे। उनके प्रयत्न से विवाहित और स्कूल आने में असमर्थ स्त्रियों के लिए विद्यालय द्वारा प्रयाग महिला विद्यापीठ और हिन्दी साहित्य सम्मेलन की परीक्षाओं में बैठने की भी व्यवस्था की गयी।

मारवाड़ी बालिका विद्यालय धीरे-धीरे इतना बढ़ता गया कि बड़ाबाजार का मकान बहुत छोटा पड़ने लगा और नयी इमारत बनाने की बात सोचनी पड़ी। इस तरह १९५४ में विद्यालय के तहत किन्तु उससे अलग श्री शिक्षायतन की स्थापना की गयी। दो-एक वर्ष बाद इसमें कालेज भी खोल दिया गया। कलकत्ता में आज हिन्दी माध्यम से लड़कियों को शिक्षा देनेवाली सबसे बड़ी संस्था श्री शिक्षायतन ही है। भागीरथजी इसके मृत्यु पर्यन्त अध्यक्ष रहे। श्री शिक्षायतन की विशाल इमारत के लिए भागीरथजी ने लाखों रुपयों का चन्दा किया। भागीरथजी और उनके मित्र सीतारामजी सुबह-सुबह चन्दा इकट्ठा करने निकलते और रोज ही पांच-दस-पन्द्रह हजार लाते। लगातार दो-तीन महीनों तक दोनों मित्रों ने चन्दा इकट्ठा कर इस विशाल संस्था का निर्माण किया।

१९३२ में गांधीजी के अनशन के बाद जब हरिजनोत्थान का काम जोरों से शुरू हुआ तो भागीरथजी के प्रयत्न से कलकत्ता की हरिजन बस्तियों में बच्चों और प्रौढ़ों के लिए २२ स्कूल खोले गये, जिनमें रात्रिकालीन स्कूलों की संख्या काफी थी।

देश में आजादी के पहले तक हिन्दी के प्रचार और प्रसार में मारवाड़ी समाज का बहुत बड़ा योगदान रहा है। कलकत्ता अगर एक समय हिन्दी का बड़ा केन्द्र रहा तो उसका एक बड़ा कारण मारवाड़ी समाज की हिन्दी-भक्ति भी था। किसी भी धनी होते हुए समाज में, अगर वह सांस्कृतिक रूप से बहुत पिछड़ा हुआ हो तो संस्कृति की भूख अत्यन्त प्रबल होती है। मारवाड़ी समाज की यह भूख हिन्दी से जुड़ कर, हिन्दी के साहित्यकारों का सम्मान करके, उन्हें आर्थिक सहायता देकर, हिन्दी में पत्र-पत्रिकाओं के निकालने में मदद देकर और हिन्दी का प्रचार करनेवाली संस्थाओं का काम करके कहीं शांत होती थी और उसे लगता था कि इससे वह सांस्कृतिक रूप से सम्पन्न हो रहा है। आजादी के बाद तो यह स्थिति एकदम बदल गयी है, जब सम्पन्न मारवाड़ियों ने अफ़सर-वर्ग के लोगों की तरह अंगरेजी को अपना लिया है और हिन्दी को सांस्कृतिक विपन्नता की अभिव्यक्ति मान लिया है। सम्पन्न मारवाड़ी घरों में अब कोई भी बच्चा हिन्दी माध्यम से नहीं पढ़ता और लड़कियां तो अंगरेजी में ही गिटिर-पिटिर करती हैं। भागीरथजी को मारवाड़ी समाज के इस पतन से व्यथित होते हमने कई बार देखा है। हिन्दी के प्रति उनका अनुराग राजस्थानी के प्रति ममता के कारण भी हमेशा बढ़ता ही गया—वह यह मानते थे कि राजस्थानी हिन्दी की समृद्धि में सहायक है और बोलियों का जीवित रहना जरूरी है, क्योंकि वे हिन्दी की समृद्धि का निरन्तर स्रोत बनी रह सकती हैं।

हिन्दी का प्रचार और प्रसार, भागीरथजी के मन का काम था। गांधीजी के आशीर्वाद से जब पूर्व भारत राष्ट्रभाषा प्रचार सभा का गठन हुआ तो उसके वह संचालकों में एक थे। इस संस्था ने बंगाल, असम और ओड़िशा में अहिन्दी भाषियों को हिन्दी सिखाने और उनके लिए हिन्दी की परीक्षाएं चलाने का काम किया। हिन्दी-प्रेम के कारण हिन्दी के कई बड़े लेखकों से भागीरथजी का घनिष्ठ सम्बन्ध बना। हजारी प्रसादजी द्विवेदी, जैनेन्द्र कुमार, बनारसीदास चतुर्वेदी और महादेवी वर्मा से तो एक प्रकार का घर का सा सम्बन्ध हो गया। टंडनजी को तो भागीरथजी से विशेष स्नेह था, कलकत्ता

आने पर उनके पास ही ठहरते ! विशाल भारत के सम्पादन के लिए बनारसीदासजी कलकत्ता रहते थे तो भागीरथजी ने उनसे कलकत्ता में हिन्दी का एक अच्छा पुस्तकालय खोलने के बारे में बातचीत की। बनारसीदासजी ने अपनी पुस्तकों का संग्रह पुस्तकालय को दे दिया। इस तरह कलकत्ता के जकरिया स्ट्रीट में भागीरथजी के मकान के ठीक सामने के मकान में 'तुलसी पुस्तकालय' की स्थापना हुई। उस जमाने में पुस्तकालय की बड़ी ख्याति थी। उसकी ओर से साहित्य, समाजशास्त्र, राजनीति, कला, विज्ञान आदि विषयों पर गोष्ठियां और व्याख्यान भी आयोजित किये जाते। भागीरथजी इस बात के लिए हमेशा प्रयत्नशील रहे कि हिन्दी में अच्छी किताबों का प्रकाशन हो और वे सस्ती कीमतों पर उपलब्ध हों। सस्ता साहित्य मंडल की अध्यक्षता स्वीकार करने के पीछे उनके मन में यही बात थी कि मंडल के मारफत वह अच्छी किताबें सस्ती कीमतों पर प्रकाशित करवा सकेंगे। अपनी पुस्तक 'बहता पानी निर्मला' के छपने के वक्त उन्होंने कई लोगों से पूछा कि पुस्तक की कीमत कितनी होनी चाहिए और उन्होंने पुस्तक की कीमत कम से कम रखवायी।

शांतिनिकेतन में हिन्दी भवन और कलकत्ता विश्वविद्यालय में हिन्दी चेयर की स्थापना भागीरथजी के ही प्रयत्नों से हुई।

८

स्वाधीनता-आन्दोलन

कलकत्ता में १९१८ और १९२६ में हिन्दू-मुस्लिम दंगे हुए थे। ये दंगे गैर-बंगाली मुहल्लों में ही सीमित रहे। १९२६ के दंगे में भागीरथजी ने उपद्रवी मुहल्लों से लोगों को निकालने का काम किया। १९२६ के दंगे के बाद की एक घटना के बारे में सीतारामजी ने बताया : "१९२६ में प्रथम विधवा-विवाह के बाद हम (भागीरथजी और मैं) साथ-साथ जाति-बाहर हुए। इसके कुछ दिनों बाद हिन्दू-मुस्लिम दंगा हुआ तो उसमें भी हमने साथ-साथ काम किया। लेकिन साथ-साथ काम करने के बावजूद भागीरथजी से मेरी मैत्री प्रगाढ़ नहीं हुई थी। मैं उनकी अपेक्षा अन्य मित्रों के ज्यादा निकट था। कलकत्ता में उन दिनों सूते के व्यापारियों की ओर से एक जुलूस, जो राजराजेश्वरी का जुलूस कहलाता था, निकला करता था। दंगा हो जाने के कारण इस जुलूस के बारे में नाना तरह की आशंकाएं थीं और इसमें शामिल होना खतरनाक माना जा रहा था। भाई भागीरथजी, मैं और हमारे साथी इस जुलूस में शामिल हुए। जुलूस में शामिल होते हुए मन में चिंता थी—न मालूम क्या हो जाय। जुलूस में शामिल होने के पहले मैंने अपनी स्त्री के नाम एक नोट लिखा था। उस नोट में अनेक चीजों के बारे में लिखते हुए मैंने भागीरथजी के बारे में लिखा था कि उनसे अच्छा आदमी आज तक मुझे नहीं मिला है। उनका और मेरा साथ तो पूर्व-जन्म का है। यह नोट मैंने बाद में, पचीस-तीस वर्ष बाद पढ़ा तो चकित रह गया कि साधारण से सम्बन्ध और

परिचय से भागीरथजी के प्रति मेरे मन में इस तरह के विचार कैसे आये और खासकर मृत्यु की आशंका के वक्त ? भागीरथजी से मेरी मैत्री तो १९३० के आंदोलन के बाद ही बढ़ी। १९३० के आंदोलन में मैं जेल गया। जेल से लौटने पर भागीरथजी ने इतना आदर और स्नेह दिया कि हम सारे कामों में साथ रहने लगे। १९३० से जो घनिष्ठता कायम हुई, वह पचास वर्ष तक बढ़ती ही गयी और हमारे बीच कोई फर्क नहीं रह गया। हम दो देह एक प्राण हो गये थे। अत्यन्त परदुखकातर होने के कारण वह हमेशा तात्कालिक राहत के कामों में जुट पड़ते थे और मैं इन कामों को ज्यादा महत्व नहीं देता था सो इनमें बहुत कम सहयोग देता था। लेकिन इसका उन्होंने कभी बुरा नहीं माना और मैं जो काम करता था उनमें पूरा सहयोग दिया।"

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है कि १९२० के बाद कलकत्ता के सुधारवादी मारवाड़ी युवकों की मित्र-मण्डली पर गांधीजी का प्रभाव दिनोंदिन बढ़ता ही गया और गांधीजी के हरेक कार्यक्रम में हिस्सा लेना मण्डली का कर्त्तव्य बनता गया। भागीरथजी ने १९२६ में ही खादी पहनना शुरू कर दिया था और कलकत्ता में गांधीजी द्वारा १९२९ में शुद्ध खादी भण्डार के उद्घाटन के बाद वह खादी के प्रचार में भी लग गये। कलकत्ता में खादी की फेरियां निकलवाने और घर-घर जाकर खादी बेचने के कामों में वह रहे। भागीरथजी, सीतारामजी और बसंतलालजी (मुरारका) की पत्नियों ने भी कुछ अन्य स्त्रियों के साथ घर-घर खादी बेची। अपने जन्म-स्थान मुकुन्दगढ़ में भागीरथजी ने खादी-उत्पादन केन्द्र खोला। शुद्ध खादी भण्डार, मित्र-मण्डली का केन्द्र बन गया। शाम को सारे मित्र वहां आ जाया करते और गांधीजी के कामों—हरिजन सेवा, हिन्दी-प्रचार, विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार आदि—को किस प्रकार आगे बढ़ाया जाए, इस पर विचार करते। भण्डार से श्री महावीर प्रसाद पोद्दार की देख-रेख में गांधीजी की पुस्तकों के प्रकाशन का काम भी शुरू हुआ और भण्डार द्वारा प्रकाशित कुछ पुस्तकें सरकार द्वारा जब्त भी की गयीं। १९३३ में प्रवासी प्रेस से गांधीजी की पुस्तकें "अच्छे कागज पर अच्छे ढंग से और सफाई से निकलें," इसके लिए भागीरथजी ने सारे रुपये खुद दिये।

मण्डली के अन्य सदस्य राजनीति में और कांगरेस के कामों में बढ़ कर भाग लेने लगे। यद्यपि भागीरथजी राजनीतिक कामों में अपने अन्य मित्रों की तरह सक्रिय नहीं हुए लेकिन उनमें पूरा सहयोग देते रहे। वह कांगरेस के चवन्निया सदस्य भी नहीं बने। सभा-सोसाइटियों में जाने, नाम छपवाने और व्याख्यान देने से उन्हें सहज-स्वाभाविक अरुचि थी। वह तो ऐसे काम करने के आदी थे जिनमें नाम दूसरों का हो। १९३० के आंदोलन में वह सक्रिय नहीं रहे, पर जब गांधीजी ने हरिजन-उत्थान का काम उठाया तो वह उसमें अत्यधिक उत्साह के साथ जुट गये। १९३२ में गांधीजी ने यरवदा जेल में नये संविधान में दलित वर्गों की पृथक चुनाव-व्यवस्था के खिलाफ २० सितम्बर से आमरण अनशन शुरू किया तो देश भर में जगह-जगह दलित वर्गों (हरिजनों) को कुओं पर पानी भरने देने और मन्दिरों में प्रवेश करने देने की घटनाएं हुईं। सैकड़ों सभाएं हुईं जिनमें गांधीजी की दीर्घायु की कामना करने के साथ हिन्दू-धर्म के कलंक अस्पृश्यता को मिटाने और दलितों को समाज में न्यायोचित स्थान दिलवाने का

संकल्प लिया गया। शांतिनिकेतन में विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने काले वस्त्र धारण कर 'उपवास और प्रार्थना' के दिन की सभा का संचालन किया। पूना पैक्ट होने पर गांधीजी ने अनशन तोड़ा, लेकिन उन्होंने यह भी घोषणा की कि यदि अस्पृश्यता दूर करने के लिए तेजी से कुछ नहीं किया गया तो वह फिर अनशन करेंगे। १९३२ में गांधीजी ने पहली बार दलितों को 'हरिजन' कहना शुरू किया। 'हरिजन' नाम से पत्र निकाला। हरिजन-कोष खोला। हरिजन सेवक संघ की स्थापना की। आज सरकार की ओर से कहा जाता है कि समाचार-पत्र हरिजनों की दुर्दशा के समाचार छाप कर सनसनी पैदा करते हैं। लेकिन हरिजनों की दुर्दशा के लम्बे विवरण छापने की शुरुआत राष्ट्रपिता ने ही की थी। 'हरिजन' में उन्होंने हरिजनों की दुर्दशा के लगातार विवरण छापे। हरिजनों की समस्या उठा कर गांधीजी ने एक तरह से हिन्दू धर्म की रूढ़ियों के खिलाफ जिहाद ही छेड़ दिया। अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग गांधीजी को ऐसा व्यक्ति मानते हैं जो हमें प्राचीन युग में वापस ले जाना चाहता था। इसकी वजह यह है कि उन्होंने गांधीजी को समझने की चेष्टा ही नहीं की। उनकी अपेक्षा सनातनियों ने गांधीजी को ज्यादा ठीक समझा; उन्होंने हरिजनोद्धार को लेकर गांधीजी को गालियां निकालना और उनके प्रति घृणा जताना शुरू किया। इसका कारण यह था कि वे इस बात को देख रहे थे—जो अंग्रेजी पढ़े-लिखे आधुनिक व्यक्ति देखने में असमर्थ थे—कि गांधीजी क्या करने जा रहे हैं। वे यह देख पा रहे थे कि गांधीजी हिन्दू धर्म को इस तरह परिष्कृत करना चाहते हैं कि वह एक परम उदारवादी और लोकतांत्रिक धर्म बन जाय। तो सनातनियों ने गांधीजी के हरिजन-आन्दोलन का जोरों से विरोध किया। १९ जून, १९३४ को पूना में उन पर बम भी फेंका गया।

देश में हरिजनों के बारे में एक नयी चेतना पैदा होनी शुरू हुई। चूंकि उस वक्त आजादी नहीं मिली थी और लूट में हिस्सा मारने की बात न थी, इसलिए मंदिर-प्रवेश और अस्पृश्यता-निवारण सम्बन्धी आंदोलन के साथ-साथ हरिजन बस्तियों की सफाई, हरिजन स्कूलों की स्थापना आदि के रचनामक काम भी हुए। यहां तक हुआ कि फिल्म-निर्माताओं ने अस्पृश्यता के विरोध में फिल्में बनायीं—"अछूत-कन्या' और 'महात्मा' जैसी फिल्में बनीं। कलकत्ता में विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने "अछूत-कन्या' के प्रदर्शन का उद्‌घाटन किया। भागीरथजी ने इस अवसर पर सिनेमा-मालिक से विश्वकवि को एक थैली भी भेंट करवायी।

२० सितम्बर, १९३२ के अनशन के सात महीने बाद गांधीजी ने ८ मई, १९३३ को यरवदा जेल में फिर २१ दिनों का उपवास किया। यह उपवास आरम्भ करते हुए उन्होंने कहा "अगर ईश्वर को मेरी देह से सेवा लेनी है तो उपवास से (भी) वह विलीन नहीं हो जायेगी। यदि वह (ईश्वर) हरिजनों का पक्षधर है तो इस सत्कार्य को जारी रखने के लिए नये-नये लोगों को सामने लायेगा।" हरिजन-उद्धार या हरिजन-सेवा और सवर्णों के मन में हरिजनों के साथ सदियों से होनेवाले अत्याचार के प्रति पश्चाताप का उदय करवाना, गांधीजी का मिशन हो गया। नवम्बर, १९३३ को हरिजनों के बारे में 'प्रोपगंडा' करने और हरिजन-कोष के लिए चन्दा इकट्ठा करने गांधीजी देश के दौरे पर निकल पड़े। ९ महीने वह देश भर का दौरा करते रहे।

१२५०० मील की दूरी उन्होंने ९ महीनों में नापी। देश के सुदूरवर्ती कोनों तक पहुंचे। कुछ हिस्सों में तो पैदल-यात्रा भी की। ८ लाख रुपये इकट्ठा किये।

इस देश-व्यापी दौरे के सिलसिले में अप्रैल-मई, १९३४ में गांधीजी ओड़िशा आये और यहां उन्होंने पद-यात्रा शुरू की। भागीरथजी भी कलकत्ता से ओड़िशा गये। इस अवसर पर एक बहुत सुन्दर घटना घटी। गांधीजी ने एक विशाल जनसभा में भाषण देने के बाद हरिजन-कोष के लिए सहायता मांगी। स्त्रियों से गहने मांगे। अनेक लोगों ने अनेक प्रकार की चीजें दीं—छोटी-बड़ी। जो चीजें आयीं, उनमें कृष्ण की एक मूर्त्ति भी थी। गांधीजी ने सभी चीजों को नीलाम करना शुरू किया। कृष्ण की मूर्ति भी नीलाम चढ़ा दी। भागीरथजी ने गांधीजी से मजाक में कहा : "बापू ! आपने तो भगवान को भी नीलाम कर दिया।" इस पर गांधीजी ने हंसते हुए कहा "माई, मैंने गोविन्द लीनो मोल। यह (भगवान) तो सदा ही बिकता और नीलाम होता रहा है, भक्तों के लिए।" ३१ जुलाई, १९३४ में गांधीजी इसी हरिजन-यात्रा के सिलसिले में कलकत्ता पहुंचे तो ठक्करबापा के साथ भागीरथजी के घर भी पधारे। भागीरथजी की पत्नी गंगा देवी ने उनका पूजन किया और अपनी ओर से हरिजन-कोष के लिए भेंट दी। गांधीजी वहां उपस्थित महिलाओं से भी रुपये वसूलने से नहीं चूके। सात मिनट के भीतर उन्होंने २१०० रु० वसूल कर डाले। ठक्करबापा ने इस दिन की अपनी डायरी में लिखा है : "चार बजे कानोड़ियाजी के घर गये। उनके पुत्र (सुशील, उम्र तीन वर्ष) की हाल में मृत्यु हुई है इसलिए उनकी पत्नी बाहर नहीं निकलतीं, सो गांधीजी को उनके मकान पर बुलाया गया था। बापू को सिक्कों का ढेर सा उपहार दिया गया, टोटल दो हजार से भी ज्यादा।"

कलकत्ता में हरिजनों की उन्नति के लिए जो भी काम शुरू किये गये, उनमें भागीरथजी का प्रमुख हिस्सा था। मित्र-मण्डली की ओर से हरिजन-उत्थान समिति की स्थापना की गयी। समिति ने कलकत्ता की हरिजन बस्तियों में बच्चों के स्कूल और प्रौढ़ों के नाइट-स्कूल खोले। समिति के कार्यकर्त्ता हरिजन बस्तियों में जाकर वहां सफाई का काम करते, लैनटर्न लेक्चर आयोजित करते। उन दिनों के भागीरथजी के काम के बारे में सीतारामजी ने बताया : "हरिजन-सेवा के काम में तो उन्होंने बहुत ही दिलचस्पी ली। हमलोग हरिजन बस्तियों में जाते। भागीरथजी हरिजनों के गन्दे घरों में बैठकर उनसे बहुत देर बहुत तरह की बातें करते जो उनके साथ होते हुए भी मैं नहीं कर पाता था। उनकी तरह गंदी जगहों में मैं उठ-बैठ नहीं सकता था। उन दिनों की एक घटना याद है। एक हरिजन बस्ती में सुदर्शन नाम का एक हरिजन रहता था। भागीरथजी उससे बहुत बात करते। सुदर्शन का बेटा बीमार पड़ा तो उन्हें उतनी ही चिंता हुई जितनी कि घर के किसी बच्चे के बीमार पड़ने पर होती। पहले दिन बच्चे को देखने के बाद दूसरे दिन वह पहुंचे कि बच्चे को डाक्टर से दिखाने के लिए सुदर्शन को राजी किया जाय, पर वह राजी ही नहीं हुआ, यही कहता रहा—झाड़-फूंक से ठीक होगा, झाड़-फूंक से विपत्ति का निवारण होगा और हमारी जाति के लोगों को खिलाना पड़ेगा। भागीरथजी निराश लौट आये।"

द्वारकाप्रसादजी ने, जो १९३२-३३ में हरिजन-उत्थान समिति के कार्यालय-अधिकारी रहे, बताया : "बस्तियों में जो स्कूल चलाये जाते थे उनके निरीक्षण के लिए भागीरथजी अक्सर जाया करते थे और हर वक्त मुझ से काम की रपट लेते रहते थे।" भागीरथजी को हरिजन-सेवा बहुत बड़ा कार्य लगता था। उनका हिन्दू संस्कार यह था कि हरिजनों के साथ सदियों से अन्याय होता आया है, इसलिए उनके लिए हम जो कुछ भी कर पायें, वह कम है। बंगाल में हरिजनों की उन्नति के लिए जो कुछ भी काम हुआ उसमें वह रहे। राजस्थान हरिजन सेवक संघ के तो वह बीस वर्ष तक अध्यक्ष रहे। ठक्करबापा से उनका बहुत नजदीकी सम्बध बना। अपने जन्म-स्थान मुकुन्दगढ़ में कृष्णदासजी जाजू के हाथों से १९३७ में उन्होंने कानोड़िया परिवार द्वारा खोले गये स्कूल-शारदा विद्यालय-में हरिजन बच्चों का प्रवेश करवाया। इसका काफी विरोध हुआ और सवर्णों के बच्चों ने स्कूल जाना बंद कर दिया। मुकुन्दगढ़ के सरदारों ने बहुत दबाव डाला कि हरिजन बच्चों का प्रवेश रोक दिया जाय। कलकत्ता में १९२६ में जाति-बहिष्कृत होने के बाद १९३७ में मुकुन्दगढ़ में अब भागीरथजी एक बार फिर जाति-बहिष्कृत हुए अपने हरिजन-प्रेम के कारण। लेकिन वह "अड़े रहे" कि हरिजन बच्चे स्कूल में पढ़ेंगे ही। धीरे-धीरे सवर्णों का विरोध मंद पड़ता गया।

'अड़े रहे' लिखना गलत है, क्योंकि भागीरथजी अड़नेवाले व्यक्ति नहीं थे। हरिजनों को स्कूल में भरती न होने देना उनकी निगाह में पाप था और यह पाप वह नहीं कर सकते थे। उनके जीवन में ऐसे मौके बहुत कम आये हैं जब उन्होंने अपनी बात मनवाने के लिए आग्रह किया हो, लेकिन अन्याय को उन्होंने स्वीकार नहीं किया और इस अस्वीकार को वह दृढ़ता के रूप में नहीं लेते थे, महज मानवीय कर्त्तव्य और स्वधर्म मानते थे।

१९३४ में बिहार में जबरदस्त भूकम्प आया। गांधीजी ने इसे हरिजनों के साथ सदियों से किये जानेवाले अत्याचार का परिणाम बताया। भागीरथजी मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी की ओर से राहत का काम करने तुरंत बिहार पहुंचे और लगभग हर भूकम्प-पीड़ित स्थान पर उन्होंने जाने की कोशिश की। यहां सीतारामजी की 'एक कार्यकर्त्ता की डायरी' में से १९ जनवरी, १९३४ की डायरी का एक अंश उद्धृत किया जाता है, जो भूकम्प के वक्त भागीरथजी के कार्य की झांकी देता है : "मोकामा में स्टीमर मिला, सीमरिया घाट उतरे, वहां गाड़ी मिली, शाम साढ़े चार बजे समस्तीपुर पहुंचे। दरभंगा की गाड़ी तो बंद थी ही रास्ते के पुल टूट गये थे। मोटर का जोगाड़ करने निकले, पर पेट्रोल पर सरकारी नियंत्रण रहने के कारण मोटर का मिलना भी सहज नहीं था। बिहार के प्रधान नेता ब्रजकिशोर बाबू के डेरे गये। वहां भागीरथजी के परिचित और गांव के लोग मिल गये। सबडिवीजनल अफसर के यहां गये। वह खूब मजे में टेनिस का बल्ला दोस्तों और मेम साहब के साथ घुमा रहा था। भागीरथजी ने उससे अंग्रेजी में बात कर पेट्रोल का आर्डर लिया। रास्ता जगह-जगह से टूटा हुआ था। ब्रजकिशोर बाबू तथा दूसरे लोगों ने रात में जाने को मना किया पर भागीरथजी की इच्छा जाने की थी और अपने भी राजी थे पर बच्चू बाबू, जिनकी मोटर थी, वह राजी नहीं हुए। इसलिए रात वहीं पर रहे।"

भूकम्पग्रस्त क्षेत्रों में ५-६ दिन रहने के बाद सीतारामजी कलकत्ता लौट आये लेकिन भागीरथजी वहीं रहे। २२ जनवरी, १९३४ की डायरी में सीतारामजी लिखते हैं : "भागीरथजी का दयालु स्वभाव है। यहां के गरीबों से बात करने पर उनको चावल तथा एक स्त्री को दो रुपये दिये।" १ फरवरी १९३४ को सीतारामजी अपनी डायरी में लिखते हैं : "भागीरथजी का तार आया, मुजफ्फरपुर आदि के गांवों की हालत खराब है। आ सकते हो तो आ जाओ।" २ फरवरी की डायरी में वह लिखते हैं : "मुजफ्फरपुर पहुंचे। मालूम हुआ कि भागीरथजी मोतिहारी गये हैं शायद शाम तक लौट आयेंगे।...बिहार सेन्ट्रल रिलीफ कमेटी के कार्यकर्त्ताओं से मिले। उनके और मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी के बीच थोड़ा मतभेद चल रहा है। भागीरथजी यहां दो दिन रहे इसलिए इस मतभेद को कुछ अंशों में मिटा दिया पर फिर नहीं उठेगा, ऐसा नहीं कहा जा सकता।"

भूकम्प, बाढ़, अकाल, इन सबमें भागीरथजी अपने को भूलकर सहायता कार्य में जुट जाते थे। ऐसे अवसरों पर वह अपने को किसी संस्था से जोड़ लेते थे और उसीके मारफत काम करते। भागीरथजी के स्वभाव का चरम गुण पर-दुखकातरता था। ऐसे में वह अन्य कार्यों की अपेक्षा राहत और चिकित्सा के कार्यों से ज्यादा आकृष्ट होते थे। कलकत्ता के बड़ाबाजार में कोई प्रसूति गृह नहीं था और हिन्दी-भाषी समाज अस्पताल में जाने से हिचकता भी था इसलिए १९३७ में भागीरथजी और सीतारामजी ने बड़ाबाजार में एक प्रसूति गृह खोलने का निश्चय किया। जुलाई १९३७ को जानकी देवी बजाज के हाथों इस प्रसूति गृह—मातृ सेवा सदन—का उद्घाटन हुआ। खुलने के डेढ़ महीने के भीतर ही यह स्थिति आ गयी कि जगह की कमी महसूस होने लगी और अतिरिक्त चारपाइयां डालनी पड़ीं। मातृ सेवा सदन ने १२-१३ साल तक बड़ाबाजार में मातृ जाति की बड़ी सेवा की। सेठ कन्हैयालाल लोहिया ने मातृ सेवा सदन के पास ही मल्लिकों की विशाल इमारत खरीदी थी। उन्होंने प्रस्ताव रखा कि यदि अस्पताल उनके नाम पर कर दिया जाय तो वह इमारत दे देंगे। इस प्रस्ताव को भागीरथजी और सीतारामजी ने स्वीकार कर लिया क्योंकि मातृ सेवा सदन का मकान बहुत छोटा पड़ रहा था जिससे बहुत सी महिलाओं को लौटाना पड़ता था। इस प्रकार मातृ सेवा सदन, लोहिया मातृ सेवा सदन हो गया। लेकिन बाद में भागीरथजी और सीतारामजी, कन्हैयालालजी से मतभेद के कारण इस संस्था से हट गये। मतभेद का एक कारण यह भी था कि कन्हैयालालजी सेवा सदन में मुसलमान और हरिजन महिलाओं के भरती किये जाने तथा रोगियों के आराम के लिए नयी सुविधाएं बढ़ाने और व्यवस्था को सुधारने के लिए अधिक खर्च करने के एकदम विरुद्ध थे।

जनवरी, १९३९ म जयपुर राज्य (रियासत) ने प्रजामण्डल को, जो उत्तर-दायी शासन की मांग कर रहा था, गैरकानूनी घोषित कर दिया और जमनालालजी बजाज के जयपुर राज्य में प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगा दिया। कलकत्ता की मित्र-मण्डली के लगभग सभी सदस्य जयपुर राज्य की 'प्रजा' थे। उन्होंने प्रजामण्डल के आंदोलन का समर्थन करने के लिए कलकत्ता में एक कमेटी बनायी। कलकत्ता से प्रजामण्डल

के आन्दोलन को सहयोग मिले, इसके लिए जमनालालजी बजाज भी कलकत्ता आये। यह तय हुआ कि कलकत्ता की कमेटी के पदाधिकारियों को जरूरत पड़ने पर सत्याग्रह करने के लिए जयपुर जाना पड़ेगा। इसका मतलब यह था कि उनको जेल जाना पड़ सकता था। सीतारामजी कमेटी कें मन्त्री नियुक्त किये गये पर अध्यक्ष का चुनाव नहीं हो सका क्योंकि कोई बनने को तैयार न था। सीतारामजी २६ जनवरी, १९३९ की अपनी डायरी में लिखते हैं: "भागीरथजी ने खुद का नाम (अध्यक्ष पद के लिए) दिया। वह जेल में साथ रहेंगे तो विशेष सुविधा होगी पर पता नहीं साथ रह सकेंगे या नहीं।"

कलकत्ता की कमेटी ने बंगाल, बिहार, ओड़िशा और असम में मारवाड़ियों के बीच प्रजामण्डल के आन्दोलन के बारे में प्रचार करने के लिए लोग भेजे। इन प्रांतों में भी कई जगह प्रजामण्डल के आन्दोलन का समर्थन करने के लिए कमेटियां भी बनीं। ११ फरवरी को जमनालालजी बजाज और हीरालालजी शास्त्री गिरफ्तार कर लिये गये। इसके बाद जयपुर में आन्दोलन ने खूब जोर पकड़ लिया; "जब सत्याग्रह करने के लिए जत्था निकलता तो बाजारों, रास्तों और मकानों पर मनुष्यों के सिवाय कुछ नहीं दिखता। दस-बीस हजार आदमियों का इकट्ठा होना तो मामूली बात थी। ऊपर में तो पचास हजार तक लोग इकट्ठा हो जाते थे। साधारण दिन जयपुर में आधा मन आटे की पूड़ियां बिकती थीं तो सत्याग्रह के दिन ६ मन। आसपास के स्थानों से बहुत बड़ी तादाद में लोग आते।" भागीरथजी के जन्म-स्थान मुकुन्दगढ़ में प्रजामण्डल के आन्दोलन के सिलसिले में 'किसान दिवस' मनाया गया। इस अवसर पर जो जुलूस निकला उसमें शामिल लोगों को मुकुन्दगढ़ के ठाकुर बाघसिंहजी के निर्देश पर पीटा गया। जो किसान युवक जुलूस का नेतृत्व कर रहा था, वह भीषण रूप से घायल हुआ। भागीरथजी ने इस युवक की चिकित्सा की व्यवस्था करने के साथ ठाकुरों के खिलाफ उसे संरक्षण भी दिया। मुकुन्दगढ़ के ही पास पंचपाना (पांच गांव) के क्षेत्र में आन्दोलन के सिलसिले में भागीरथजी अपने साथियों—नरोत्तमजी जोशी, महादेवजी और चिरंजीलालजी ढांचोलिया के साथ सभा करने चिराणां गांव गये। पंचपाना गांवों के सरदारों "भौम्याओं" ने अपने क्षेत्र में निषेधाज्ञा लगा दी। उनके लठैतों ने सभा के लिए आये लोगों को पीटना शुरू किया। भागीरथजी और उनके साथियों को काफी चोट आयी। लेकिन गांधीजी ने १९ मार्च को यह आन्दोलन स्थगित करवा दिया। हीरालालजी शास्त्री और जमनालालजी जेल में थे। हीरालालजी ने अपनी आत्मकथा 'प्रत्यक्ष जीवन शास्त्र" में लिखा है: "सत्याग्रहियों की कमी नहीं हुई थी। गांधीजी ने अपने किसी तरीके के अनुसार उस समय सत्याग्रह को स्थगित करवाया था, जब वह जोरों पर था।" गांधीजी के इस निर्णय का प्रजामण्डल के कार्यकर्त्ताओं ने दबा-दबा विरोध भी किया। गांधीजी द्वारा निर्णय करने के वक्त हीरालालजी की पत्नी श्रीमती रतन शास्त्री कमरे के बाहर थीं। वह आवेश में आकर गांधीजी के पास गयीं और उन्होंने कहा कि जो लोग जेल में हैं उन्हें विश्वास ही नहीं होगा कि आपने सत्याग्रह स्थगित करने का निर्णय किया है। तब गांधीजी ने उसी समय अपने हाथ से सत्याग्रह स्थगित करने का आदेश लिखा ताकि जेल के साथियों को समाधान हो। इस आदेश का ब्लाक बनवाकर छपवाया गया। सत्याग्रह स्थगित होने पर भी जयपुर शासन

ने सत्याग्रहियों को नहीं छोड़ा। हीरालालजी साढ़े पांच महीने की जेल के बाद छोड़ गये और जमनालालजी उसके भी बाद। आन्दोलन स्थगित होने के बाद जेल में बन्द सत्याग्रहियों को भागीरथजी नहीं भूले। उनकी हालत देखने वह जयपुर गये और कैम्प जेलों में प्रत्येक सत्याग्रही से जाकर मिले।

दूसरे विश्व-युद्ध में रंगून पर बमबारी होने के बाद सारा बंगाल खतरनाक क्षत्र घोषित कर दिया गया। १९४१ के अन्त तक पांच-सात लाख आदमी कलकत्ता छोड़ कर बाहर चले गये शहर का जीवन एकदम असामान्य हो गया। बमबारी के डर से रात को ब्लैक-आउट रहता यानी बिजलियां बन्द रखी जातीं। किसी भी समय बमबारी हो सकती है, यह आशंका सब समय व्याप्त रहती। भागीरथजी और उनकी मित्र-मण्डली ने बमबारी होने पर लोगों को प्राथमिक चिकित्सा की जा सके, इसकी व्यवस्था की। उनके ही मकान पर प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र खोला गया। स्वयं भागीरथजी और उनके मित्र शाम को इकट्ठा होते और बमबारी की हालत में तुरन्त सहायता करने के लिए तैयार रहते थे। रंगून से भारतीय शरणार्थी भाग कर कलकत्ता आने लगे तो भागीरथजी ने उनके रहने और खाने-पीने आदि की व्यवस्था करने में बड़ी तत्परता के साथ काम किया।

अंग्रेजों ने देश को इस द्वितीय विश्व-युद्ध में उसकी मरजी के खिलाफ झोंक दिया था। सरकार की सारी शक्ति युद्ध-प्रयत्नों में लग गयी और इसका बोझ देश-वासियों पर तरह-तरह से पड़ने लगा। ऐसे में गांधीजी ने निर्णय किया कि देश को जबरदस्ती, उसकी मरजी के बिना युद्ध-प्रयत्नों में शामिल करने के खिलाफ कुछ चुनिन्दा लोग देश भर में व्यक्तिगत सत्याग्रह करें। गांधीजी की दलील थी कि अंग्रेज अगर भारत को युद्ध-प्रयत्नों में शामिल करना चाहते हैं तो उन्हें भारत को पहले स्वाधीनता प्रदान करनी होगी। लेकिन फासिज्म के खिलाफ लड़ने का दावा करनेवाली ब्रिटिश सरकार 'दुनिया की स्वाधीनता की लड़ाई' तो लड़ रही थी पर भारत को स्वाधीनता देने को तैयार नहीं थी; उसने भारत रक्षा कानून के तहत कांग्रेसी और गांधीवादी कार्य-कर्त्ताओं को गिरफ्तार करना शुरू किया। सरकार और कांग्रेस के बीच मुठभेड़ की स्थिति पैदा होती गयी। ८ अगस्त, १९४२ को बम्बई में कांग्रेस महासमिति ने "भारत-छोड़ो" प्रस्ताव पास किया। प्रस्ताव पास होने के बाद गांधीजी ने अपने भाषण में कहा: "इस प्रस्ताव को पास करने के बाद हम स्वाधीन हो गये हैं। अब हमें महसूस करना चाहिए कि हम आजाद हैं और हम पर कोई गैर लोग हुकूमत नहीं कर सकते। अब हम अपनी हुकूमत कायम करेंगे।"

९ अगस्त की सुबह गांधीजी और कांग्रेस वर्किंग कमेटी के सभी सदस्यों की गिरफ्तारी के बाद देश में राष्ट्रीयता की जो चेतना फैली और उसे कुचलने के लिए गोरी सरकार ने जिस नृशंस दमन नीति का आश्रय लिया, वह स्वतंत्रता संग्राम के गौरवमय इतिहास की वस्तु है। बंगाल में भी सभी नेता और कार्यकर्त्ता गिरफ्तार कर लिये गये। ऐसे में भागीरथजी, जो राजनीति में बहुत सक्रिय नहीं थे, चुप नहीं बैठे रह सकते थे। कार्यकर्त्ताओं के अभाव में आन्दोलन को जीवित रखने के प्रयत्न में वह लगे। खुफिया विभाग को उनकी गतिविधियों का पता लगा और उन्हें २२ अगस्त,

१९४२ को गिरफ्तार कर लिया गया। जेल में उनकी गिरफ्तारी का समाचार पाने पर २५ अगस्त को सीताऱामजी ने अपनी डायरी में लिखा : "उनकी गिरफ्तारी कई कारणों से चिंता की बात है। नन्दू (भागीरथजी के ज्येष्ठ पुत्र नन्दलाल) ज्यादा बीमार है। भागीरथजी की स्त्री भी बीमार और भोली है। भागीरथजी बाहर रहते तो आन्दोलन की हर तरह से मदद मिल सकती थी, यह बड़ा नुकसान है। इसके बाद एक बात और है यदि वह बाहर रहते तो अपने घर के लोगों की तरफ से अपने को कोई चिन्ता नहीं थी।"

२८ अगस्त को भागीरथजी सेन्ट्रल जेल से प्रेसीडेंसी जेल भेज दिये गये। यहीं उनके साथी सीतारामजी और बसन्तलालजी मुरारका भी थे। ९ अक्टूबर को अपनी डायरी में सीतारामजी लिखते हैं : "भाई भागीरथजी को आज कन्फर्म कर दिया गया यानी वह अनिश्चितकाल के लिए जेल में रख दिये गये।" जेल में भागीरथजी की तबीयत बिगड़ने लगी। २४ दिसम्बर की डायरी में सीतारामजी लिखते हैं : "अचानक भाई भागीरथजी चक्कर आने से गिर पड़े...उन्हें अस्पताल भेजना पड़ा। रात में अकेले कोठरी में रहना उचित न था, जेल के नियमों के अनुसार पास कोई नहीं रह सकता था।" अप्रैल १९४३ से भागीरथजी की तबीयत ज्यादा खराब हो गयी, लगातार बुखार रहने लगा। ४ मई की डायरी में सीतारामजी लिखते हैं : "अधिकारियों के पास एक चिट्ठी आयी कि वे भागीरथजी से बात करके यह समझ लें कि वह बाहर जाकर कोई राजनीतिक काम में भाग नहीं लेंगे। भाई भागीरथजी बाहर जाकर किसी काम में भाग लें या न लें पर यह कह कर छूटना तो अपमान है और सरकार हमलोगों से ऐसा पूछे या ऐसी उम्मीद करे यह उसकी हिमाकत है। भागीरथजी ने उचित उत्तर दिया। इस पर सरकारी आदमी ने कहा : ऐसा करने से आप तभी छूट सकेंगे जब सब लोग छूटेंगे। भाई भागीरथजी ने कहा कि मैं सब जानता हूं और सोच-समझ कर उत्तर दे रहा हूं।" ८ मई की डायरी में सीतारामजी लिखते हैं "भाई भागीरथजी की तबीयत गिरती ही जा रही है।" भागीरथजी की तबीयत में सुधार नहीं हुआ। २५ जून, १९४३ को उन्हें रिहा कर दिया गया।

जयप्रकाशजी की फरारी की अवस्था में उनके कलकत्ता के आतिथेय श्रीसोहनलाल पचीसिया ने हाल में बनारसीदासजी चतुर्वेदी को बात-बात में बताया कि जेल से छूटने के बाद भागीरथजी आन्दोलन को पूरी मदद करते रहे। जब जयप्रकाशजी जेल से भाग कर कलकत्ता आये तो भागीरथजी ने उनसे सम्पर्क स्थापित किया। जेल में बन्दी कार्यकर्त्ताओं के परिवारों की तो उन्होंने ढूंढ़-ढूंढ़ कर मदद की।

६

बंगाल का अकाल

भागीरथजी जब रिहा हुए तब बंगाल में १९४३ के अकाल की काली छाया फैलने लगी थी। चावल के दाम बेतहाशा बढ़ते जा रहे थे। अन्न की तलाश में लोगों का गांवों से कलकत्ता आना और मारे-मारे फिरना शुरू हो गया था। एक महीने बाद तो कलकत्ता में सड़क पर चलते हुए किसी भी समय भूख से मरनेवाले लोगों की लाश पर पैर पड़ने की हमेशा आशंका रहती। अगस्त, सितम्बर, अक्टूबर और नवम्बर के चार महीनों में तो अकाल ने अपना विकरालतम रूप दिखाया। ऐसा लगता था कि किसी महामारी ने बंगाल को जकड़ लिया है और वह रोज दुगुने-तिगुने और चौगुने वेग से हजारों-लाखों लोगों को मौत के मुंह में झोंक रही है। कोई-कोई गांव तो श्मशान बन गया था, जहां इक्के-दुक्के लोग अकाल की विभीषिका की कहानी कहने के लिए बच रह गये थे।

अकाल के चपेट में वैसे तो मध्य वर्ग तक के लोग भी आये लेकिन भूमिहीन-मजदूरों, मछुवारों और गांवों में कारीगरी के तरह-तरह के छोटे-छोटे धन्धे करनेवाले लोगों पर इसकी सबसे भयंकर मार पड़ी। अकाल ने सारा आर्थिक और सामाजिक ढांचा ही तोड़ दिया। अन्न जुटाने की कोशिश में मछुवारों को अपने जाल और अपनी नौकाएं तक बेचनी पड़ी तथा कारीगरों को अपने औजार। लोगों ने, वे जो कुछ भी बेच सकते थे, बेचा। गरीब औरतों के पास बेचने को कुछ न था तो वे अपनी इज्जत बेचने को बाध्य हुईं। आदमी भूख से लाचार होकर वह सब कुछ करने को बाध्य हुआ जिसकी आदमी के रूप में वह कल्पना भी नहीं कर सकता था—माता-पिता ने अपनी सन्तान को, पति ने पत्नी को और पत्नी ने पति को, सन्तान ने बूढ़े माता-पिता को निराश्रित छोड़ दिया। कलकत्ता में तो आदमी और जानवर के बीच भोजन के लिए लड़ाई लड़ने के दृश्य सामान्य हो गये थे—डस्टबिन से कुछ प्राप्त करने की कोशिश में भूखा आदमी आवारा कुत्ते का सबसे बड़ा दुश्मन बन गया था और भूख की इस लड़ाई में आदमी और कुत्ते के बीच कुत्ता ज्यादा ताकतवर साबित हो रहा था। शहरों में गांवों से आये लोगों की भूखी और नंगी भीड़ सब जगह दिखायी पड़ने लगी। गृहस्थों के यहां "मा, एक टू फेन दाओ" (थोड़ा सा चावल का मांड़ ही दे दो) की पुकार करते हुए ग्रामीणों को अक्सर देखा जा सकता था। अकाल का सबसे बड़ा लक्षण यही होता है कि ग्रामीण गांवों को छोड़ कर शहरों की ओर भागने लगते हैं।

इस अकाल में बंगाल रिलीफ कमेटी के सेक्रेटरी के रूप में भागीरथजी ने राहत का जो कार्य किया, वह आज भी ३७ वर्ष बाद लोग याद करते हैं। इस ग्रन्थ के अनेक

संस्मरणात्मक लेखों में भी अकाल के दौरान किये गये उनके काम का जिक्र आया है। इसमें कोई शक नहीं कि भागीरथजी ने राहत के जो अनेक कार्य किये, उनमें बंगाल के अकाल में किया गया उनका काम विशेष महत्व रखता है।

यह अकाल अनावृष्टि या किसी अन्य प्राकृतिक विपत्ति के कारण नहीं पड़ा था। यह तो पूरी तरह मनुष्य की ही करतूत था। इसमें कितने लोग मरे? तत्कालीन भारत मन्त्री एमरी ने अकाल में मरे लोगों की संख्या ६९८००० बतायी। ब्रिटिश सरकार द्वारा नियुक्त उडहेड कमीशन ने अप्रैल १९४५ में अपनी रपट में कहा: "बंगाल के अकाल में मारे गये १५ लाख गरीब ऐसी परिस्थितियों के शिकार हुए जिनके लिए वे जिम्मेवार नहीं थे।" कमीशन का यह अनुमान विवादास्पद है। बंगाल रिलीफ कमेटी ने उडहेड कमीशन को अपने प्रतिवेदन में अकाल में मरे लोगों की संख्या ३५ लाख कूती। कलकत्ता विश्वविद्यालय के एक सर्वेक्षण में भी ३५ लाख लोगों के मरने का अनुमान प्रकट किया गया। आम धारणा तो चालीस लाख से भी ज्यादा लोगों के मरने की है।

अकाल का मुख्य कारण सरकार की नृशंसता और लापरवाही थी। उसने ऐसी परिस्थितियां पैदा कर दी थीं जिनमें बाजार से चावल एकदम गायब हो गया और जमाखोरी और मुनाफाखोरी को पूरा प्रोत्साहन मिला। दूसरा विश्व-युद्ध शुरू होते ही सरकार ने अपनी सारी शक्ति युद्ध में लगा दी और नागरिकों की आवश्यकताओं को एकदम भुला दिया। नागरिक रसद विभाग में सारे बड़े अधिकारी यूरोपियन थे और जो भारतीय थे उनका भी तबादला किया जाने लगा। १९४१ के आसपास जब युद्ध में जापान की भारी जीत होने लगी तो अंग्रेज सरकार को यह लगा कि बर्मा जीतने के बाद जापान बंगाल पर चढ़ाई करेगा सो उसने एक प्रकार की 'स्काच्र्ड अर्थ' (अपने स्थान को ही नष्ट कर देना जिससे शत्रु उसका उपयोग न कर सके; घर-फूंक या सर्वक्षार) नीति अपनायी; तटवर्ती इलाकों में नौकाओं को डुबो दिया गया तथा वहां चावल भी नहीं रहने दिया गया। सरकार की ओर से कहा जाने लगा कि भारत रक्षा कानून के तहत चावल ले लिया जायेगा। १९४०-४२ में तो नागरिकों से यह भी अपील की गयी कि वे अपने पास २-३ महीने का अनाज का स्टाक रखें; व्यापारियों को भी गांवों से चावल खरीदने को प्रोत्साहित किया गया। यही नहीं, सरकार ने युद्ध के लिए बाजार से सामान खरीदने के लिए अन्धाधुन्ध नोट छापे जिससे भयंकर मुद्रास्फीति पैदा हुई। गांवों में रोज कमा कर खानेवाले लोग कीमतों में भारी वृद्धि के कारण अनाज खरीदने में असमर्थ होते गये। अनाज की बढ़ती हुई कीमत का उनकी कमाई से कोई मेल नहीं रहा। ऐसे लोग १९४३ में बहुत बड़ी संख्या में मरे। बंगाली मध्य वर्ग तक चावल की बढ़ती कीमतों के कारण भुखमरी की हालत में पहुंच गया।

सरकार ने सेना के लिए हमेशा १० लाख टन अनाज स्टाक में रखना तय किया था। बर्मा-सीमा पर इस स्टाक का बहुत अनाज नष्ट हुआ पर उसमें से अकाल-पीड़ितों को कुछ भी नहीं दिया गया। इस स्टाक के लिए सरकार ने गांवों से बड़े पैमाने पर चावल खरीदा। युद्ध में कारखाना-मालिकों की कमाई बहुत ज्यादा हो रही थी सो उन्होंने भी कारखानों को पूरे दम से चलाने के लिए अनाज का संग्रह किया और

सरकार ने इसमें उन्हें पूरा सहयोग दिया; उन्हें प्रोत्साहित किया कि वे ज्यादा से ज्यादा अनाज खरीदकर रखें। ब्रिटिश सरकार को इस बात की तनिक भी चिन्ता नहीं थी कि बंगाल के लोगों का क्या होता है। उसे तो बस युद्ध प्रयत्नों को सफल करने की पड़ी थी फजलुल हक-मन्त्रिमण्डल यह कह रहा था कि बंगाल में चावल का संकट पैदा हो रहा है, लेकिन ब्रिटिश सरकार यह दिखाना चाह रही थी कि कोई संकट नहीं है। बंगाल एसेम्बली के युरोपियन सदस्यों की मदद से फजलुल हक-मन्त्रिमण्डल को गिराया गया और उसकी जगह सर ख्वाजा निजामुद्दीन के नेतृत्व में मुस्लिम लीग का मन्त्रिमण्डल सत्तारूढ़ हुआ। ब्रिटिश सरकार को लगा कि यह मन्त्रिमण्डल युद्ध-प्रयत्नों में पूरा सहयोग देगा। हुसन शहीद सुहरावर्दी (बाद में बंगाल के मुख्यमन्त्री और पाकिस्तान के प्रधानमन्त्री) इस मन्त्रिमण्डल में नागरिक रसद मन्त्री बने। उन्होंने तो कई बार ऐलान किया कि बंगाल में किसी प्रकार का अनाज संकट नहीं है (सुहरावर्दी ने तो अक्टूबर, १९४३ में, जब लाखों आदमी मर चुके तब जाकर यह स्वीकार किया कि बंगाल में अकाल चल रहा है)। इस मन्त्रिमण्डल ने एक भयानक कार्य यह किया कि इस्पहानी एण्ड कम्पनी नामकी एक प्राइवेट कम्पनी को सरकार की ओर से चावल खरीदने का भार दे दिया। उसे सोल एजेन्ट बना दिया। इस्पहानी कम्पनी ने एक अन्य फर्म—हनुमानबक्स-विश्वनाथ—को अपना सब-एजेन्ट नियुक्त किया। दोनों ने बंगाल के गांवों से जो चावल खरीदा उसे बहुत मुनाफे पर सरकार को बेचा। १९४३ में बंगाल सरकार ने जो चावल खरीदा उसमें से १४१,००० टन शहरों को दिया गया और सिर्फ ६५००० टन गांवों को।

बर्मा से चावल का निर्यात तो बन्द हो गया पर सरकार ने बंगाल से चावल का निर्यात जारी रखा। जब कलकत्ता के 'स्टेट्समैन' ने नगर की सड़कों पर अकाल से मरनेवालों की फोटू छापी तो दिल्ली में केन्द्रीय सरकार के अधिकारियों ने उस पर आपत्ति की और कहा कि स्टेट्समैन अतिरंजित फोटुएं छाप रहा है (फोटुएं भी अतिरंजित होती हैं ?)। ब्रिटिश सरकार और निजामुद्दीन मंत्रिमंडल की सारे समय चेष्टा अकाल की स्थिति को छिपाने की थी। चूंकि सड़कों पर रोज लाशें दिखाई पड़ती थीं सो कलकत्ता में गांवों से आये लोगों को भगाने और निकालने के लिए सरकार द्वारा अभियान छेड़े गये। ब्रिटिश पार्लियामेन्ट में भारत-मंत्री एमरी ने बार-बार कहा कि बंगाल में कोई संकट नहीं है। सरकार की चेष्टा चूंकि अकाल को छिपाने की थी, इसलिए उसने शहरों की तरफ तो थोड़ा-बहुत ध्यान भी दिया लेकिन गांवों की भयंकर उपेक्षा की।

इस तरह की स्थिति में सिर्फ सरकार की ही ओर ताकते नहीं रहा जा सकता था वरन अपने से अकाल पीड़ितों के लिए जो कुछ भी हो सके करना चाहिए, यह बात बहुतों के मन में घुमड़ रही थी इस घुमड़न के कारण अकाल-पीड़ितों को सीधे राहत पहुंचाने और राहत कार्य करनेवाले संगठनों के काम में तालमेल बैठाने के उद्देश्य से २९ जुलाई, १९४३ को बंगाल रिलीफ कमेटी की स्थापना हुई। सर बदरीदास गोयनका इसके अध्यक्ष और भागीरथजी मंत्री-कोषाध्यक्ष बनाये गये। इस कमेटी ने बंगाल के अकाल में राहत कार्य करनेवाले सबसे बड़े गैरसरकारी संगठन का

रूप ले लिया। कमेटी के निर्माण में डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी की अत्यंत सक्रिय भूमिका रही थी इसलिए बहुत लोगों को यह गलतफहमी हो गयी थी कि डा० मुखर्जी इसके अध्यक्ष हैं जबकि वह इसके उपाध्यक्ष थे। डा० मुखर्जी की कमेटी के रूप में मशहूर होने के कारण कमेटी को अपने काम में एकाध बार दिक्कत भी आयीं।

कमेटी की स्थापना के बाद भागीरथजी अकाल सहायता के काम जो जुटे, एक वर्ष तक लगातार रात-दिन जुटे रहे। इस एक वर्ष में उन्होंने कोई दूसरा काम नहीं किया। रात-दिन अकाल पीड़ितों की सहायता में लगे रहे। सीतारामजी का कहना है कि जब वह जेल से छूट कर आये तो लोगों ने उन्हें बताया कि जिस तरह राजेन्द्र बाबू ने १९३४ के बिहार के भूकम्प में अपने को भूल कर काम किया था उसी तरह १९४३ में भागीरथजी ने बंगाल के अकाल में काम किया।

सरकार की ओर से यही कहा जाता रहा है कि संकट मामूली है और उसके लिए पिछला मंत्रिमंडल दोषी है (डा० मुखर्जी पिछले मंत्रिमंडल के सदस्य रह चुके थे)। एक बार तो यूरोपियन सदस्यों ने एसेम्बली में डा० मुखर्जी से कहा, "आप जापान के प्रधान मंत्री से क्यों नहीं अनाज मांगते ?" ऐसे में बंगाल रिलीफ कमेटी ने सारे देश और दुनिया का ध्यान बंगाल के अकाल की तरफ खींचने की कोशिश की। उसने देश-विदेश के अखबारों को अकाल के बारे में जानकारी दी। परिणामस्वरूप उसके पास देश से ही नहीं विदेश से भी चन्दा और सामान आने लगा। कमेटी के दफ्तर में इतने मनीआर्डर आने लगे कि उन्हें लेने के लिए विशेष व्यवस्था करनी पड़ी। उसे २७५४५०२ रुपये नगद चन्दे के रूप में और लगभग १० लाख रुपये का अनाज, कपड़ा आदि अन्य चीजें दान में प्राप्त हुई। दक्षिण अफ्रीका के प्रमुख नगरों—जोहानीजबर्ग, डरबन, नटाल और ट्रांसवाल तथा रोडेशिया, जंजीबार, नैरोबी, और कोलम्बो आदि के प्रवासी भारतीयों के संगठनों से भी उसे काफी चन्दा प्राप्त हुआ।

इस अकाल में पीड़ितों की सहाता के लिए देश के कुछ अखबारों ने जो काम किया, वह भारतीय पत्रकारिता का एक गौरवपूर्ण अध्याय हैं। अखबारों ने अकाल पीड़ितों के लिए बंगाल रिलीफ कमेटी को चन्दा भेजने की अपीलें तो निकाली हीं खुद भी अपनी ओर से सहायता-कोष खोले। दिल्ली के 'हिन्दुस्तान टाइम्स' ने बंगाल रिलीफ कमेटी को २५००० रुपये और ११६९६ मन गेहूं और चावल भेजा। इसी तरह अहमदाबाद के दैनिक 'जन्मभूमि' ने भी कमेटी को १४ हजार मन बाजरा भेजा। बंगाल के लोग बाजरा नहीं खाते इसलिए कमेटी ने 'जन्मभूमि' की अनुमति से इस बाजरे को बाहर बेचा और उससे प्राप्त रकम से चावल खरीदा। इनके अलावा इलाहाबाद के 'लीडर,' मद्रास के 'इंडियन एक्सप्रेस', पटना के 'इंडियन नेशन', हुबली के 'संयुक्त कर्नाटक', दिल्ली के 'तेज' और करांची के 'संसार समाचार' तथा हिन्दी अखबारों में बनारस के दो दैनिकों 'आज' और 'संसार' तथा इलाहाबाद से श्रीनाथ सिंह के सम्पादन में प्रकाशित होनेवाली स्त्रियों की मासिक पत्रिका 'दीदी' ने कमेटी को सहायता भेजी। देश के कई शहरों, बम्बई, नागपुर, धमतरी, रावलपिण्डी, गुजरानवाला, मंडाला, गोरखपुर, करांची, लखनऊ, शिमला और भटिण्डा में भी बंगाल सहायता कोष या समिति की स्थापना की गयी। श्रीमती महादेवी वर्मा ने अकाल पर हिन्दी कविताओं का एक संकलन

'बंग-दर्शन' प्रकाशित किया जिसकी बिक्री की सारी आय अकाल-पीड़ितों को दी गयी।

बंगाल रिलीफ कमेटी का मुख्य काम अनाज प्राप्त करना और उसे अकाल-पीड़ितों के पास पहुंचाना था। भागीरथजी दफ्तर में रह कर अनाज खरीदने की व्यवस्था करने के साथ-साथ बंगाल के गांवों में भी अनाज की रसद लेकर पहुंचते। कमेटी ने देश की तमाम मंडियों से अनाज खरीदा। इस अनाज को सरकारी प्रतिबन्ध के कारण मंगाना भी आसान न था। सरकारी अधिकारियों से निरन्तर बातचीत और पत्र-व्यवहार करना पड़ता। भागीरथजी को खुद चक्कर लगाने पड़ते। एक बार तो बंगाल के नागरिक रसद मन्त्री हसन शहीद सुहरावर्दी के यहां ५-६ बार चक्कर लगाना पड़ा। इन चक्करों के बाद भागीरथजी ने ५ अक्टूबर, १९४३ को सुहरावर्दी को जो पत्र लिखा, वह नीचे दिया जा रहा है :-

माननीय हसन शहीद सुहरावर्दी
नागरिक रसद मन्त्री,

प्रिय महोदय,

२ अक्टूबर को आपको पत्र लिखने के बाद अगले दिन मैंने यह पता लगाने के लिए आपको फोन किया कि हमारी कमेटी को कब तक कलकत्ता में अनाज की डिलीवरी प्राप्त करने का आर्डर मिलेगा। आपने हमें वचन दिया था कि कमेटी को अनाज दिया जायेगा। लेकिन आपसे यह जानकर मुझे आश्चर्य हुआ कि इस बीच आप कुछ नहीं कर सके क्योंकि इधर आपका अनाज का स्टाक कम हो गया है।

यह बहुत ही दुख की बात है कि आपने मुझे अपने निवास-स्थान पर ५-६ बार बुलाया और आज-कल-परसों करते रहे। इसके बाद आपने फिर वचन दिया और फिर अगले दिन कुछ करने में असमर्थता प्रकट कर दी।

दरअसल हमारी कमेटी पीड़ित लोगों की सहायता करके सरकार का ही काम कर रही है इसलिए यह स्वाभाविक है कि हम सरकार से हर प्रकार की सहायता और सहयोग की आशा करें, खासकर जबकि विभिन्न जिलों में हम सहायता का सारा काम स्थानीय अधिकारियों के सलाह-मशविरे से कर रहे हैं। मैं आपको यह आश्वासन देना चाहता हूं कि हमारी कमेटी से सरकार जो भी सम्भव सहायता व सहयोग चाहेगी, वह हम देने को हमेशा प्रस्तुत हैं। इसके साथ मैं आपसे एक बार फिर जानना चाहता हूं कि बंगाल के विभिन्न जिलों में हमारी कमेटी को जितने अनाज की जरूरत है, उसे आप देने की स्थिति में हैं या नहीं, आपकी देने की इच्छा है या नहीं। अगर है तो क्या आप मुझे कृपया यह सूचित करेंगे कि तत्काल आप कितना अनाज हमें कलकत्ता में सप्लाई कर सकेंगे ताकि हम उसे ढाका, फरीदपुर, त्रिपुरा और मेदिनीपुर आदि जिलों में पहुंचाने के लिए व्यवस्था कर सकें।

आशा है आपसे पत्र का तुरन्त जवाब मिलेगा।

आपका,
भागीरथ कानोड़िया
(मन्त्री बंगाल रिलीफ कमेटी)

राहत कार्य करना कितना कठिन था इसका अन्दाज कमेटी की ३१ मई, १९४४ को प्रकाशित रपट से मिलता है। इसमें कहा गया है: "कमेटी के गठन के बाद हमारा पहला काम अकाल-पीड़ितों के लिए अनाज प्राप्त करना था। लेकिन इस समय सरकार से और उसके माध्यम के बिना (अनाज के लाये-ले जाने पर रोक होने के कारण) किसी भी प्रकार की सप्लाई प्राप्त करना असम्भव था इसलिए हमने सरकार से बातचीत की। शुरू में हमारा अनुभव बहुत ही दुखद रहा। लाख कोशिशों के बावजूद हम कई सप्ताह तक सरकार से एक औंस भी अनाज प्राप्त नहीं कर सके, वचन अलबत्ता दिये जाते रहे। पास में अनाज खरीदने के लिए पर्याप्त पैसे रहने के बावजूद हम यह सोचने की स्थिति में आ गये कि जब हम कुछ नहीं कर पा रहे तो दाताओं को उनके पैसे क्यों न लौटा दें। ......हमें बड़े दुख के साथ कहना पड़ता है कि अकाल-पीड़ितों को राहत पहुंचाने का काम करनेवाली संस्थाओं को सरकार ने पूरा सहयोग नहीं दिया। बहुत से स्थानों पर तो बिलकुल ही सहयोग नहीं मिला और कई स्थानों पर दिक्कतें भी पैदा की गयीं। कहीं-कहीं तो स्थानीय अफसरों ने नियम-कायदे दिखा कर राहत-कार्य होने ही नहीं दिया। उन्होंने राहत-कार्य के लिए कलकत्ता से भेजा गया सामान (अनाज, कपड़े, दवाएं) तक जब्त कर लिया। कमेटी को परिवहन-व्यवस्था की दिक्कत के कारण भी बड़ी अड़चनें आयीं। सरकार द्वारा नौकाएं जब्त कर लेने के कारण जिलों में नौकाओं से अनाज भेजना सम्भव नहीं रहा। रेलवे वैगन समय पर उपलब्ध नहीं होते थे और होते तो उन्हें पहुंचने में बड़ी देर लगती। हमारे दाताओं द्वारा कलकत्ता भेजा गया अनाज और हमारे द्वारा जिलों को भेजा गया सामान (अनाज, कपड़े, दवाएं) महीनों तक नहीं पहुंचता था। अन्त में सैनिक अधिकारियों ने हमारी मदद की। यह मदद बहुत देर से मिली अगर यह नहीं मिलती तो स्थिति और बदतर होती।"

अनाज प्राप्त करने के लिए किस प्रकार की दौड़-धूप करनी पड़ती थी, इसका एक उदाहरण दिया जा रहा है। उन दिनों कलकत्ता में सिंधिया स्टीम नेवीगेशन कम्पनी का काम स्व० गगनबिहारी मेहता (अमरीका में भारत के भूतपूर्व राजदूत) सम्भालते थे। वह भागीरथजी के मित्र थे। उन्होंने भागीरथजी को कहा कि उनकी कम्पनी कराची से गेहूं लाने के लिए कमेटी को अपना जहाज मुफ्त दे सकती है। इस पर भागीरथजी ने श्री विद्याभूषण चिंतामणि को, जो कराची में कई वर्ष तक रह चुके थे, सिंध सरकार से बातचीत कर अनाज खरीदने कराची भेजा। चिंतामणिजी ने बताया कि कराची पहुंचने पर उन्होंने नगर के अत्यन्त प्रतिष्ठित व्यक्ति जमशेदजी नौशरवानजी मेहता (जो कराची के मेयर भी रहे) के माध्यम से सिंध सरकार के मन्त्रियों से सम्पर्क किया। मन्त्रिगण उन्हें बार-बार आश्वासन देते रहे कि कराची से कलकत्ता अनाज ले जाने की अनुमति दे दी जायेगी। इस तरह ७-८ दिन बीत जाने के बाद अन्त में सिंध के नागरिक रसद मन्त्री ने चिंतामणिजी को कहा कि चूंकि डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी आपकी कमेटी से सम्बद्ध हैं इसलिए हम आपको कराची से अनाज ले जाने की अनुमति नहीं देंगे। चिंतामणिजी निराश होकर कलकत्ता वापस रवाना होने की सोच रहे थे कि उन्हें भागीरथजी का पत्र मिला कि वह पंजाब जांय और वहां से अनाज खरीद

कर भेजें। चिंतामणिजी पंजाब गये और वहां उन्होंने सरकार से अनाज खरीदने की अनुमति प्राप्त की और लायलपुर की मंडी से कलकत्ता गेहूं भेजा।

कमेटी से डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी के जुड़े रहने के कारण दक्षिण अफ्रीका के प्रवासी भारतीय मुसलमानों के बीच मुस्लिम लीग की तरफ से प्रचार किया गया कि बंगाल रिलीफ कमेटी, हिन्दू महासभा की कमेटी है (हिन्दू महासभा की अलग सहायता कमेटी थी और बंगाल रिलीफ कमेटी में हिन्दू और मुसलमान दोनों ही थे। भागीरथजी स्वयं एक साम्प्रदायिक कमेटी के मंत्री होने की कल्पना भी नहीं कर सकते थे) और उसका उद्देश्य बंगाल के मुस्लिम लीग मंत्रिमंडल को बदनाम करना है। बंगाल रिलीफ कमेटी के कागजात देखने पर हमने पाया कि भागीरथजी ने फजलुल हक और सर अब्दुल हलीम गजनवी तथा ऐसे कुछ व्यक्तियों के नाम से जिनकी निर्विवाद प्रतिष्ठा थी, दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों के नाम वक्तव्य निकलवाया। इस वक्तव्य में लीग के प्रचार का जोरदार खंडन किया गया। भागीरथजी ने भारतीय संगठनों के प्रतिनिधियों को कमेटी के कार्य-कलाप के बारे में बताते हुए पत्र लिखे। जोहानीजबर्ग के भारत सहायता कोष के सेक्रेटरी को १० फरवरी, १९४४ को भेजे गये तार में भागीरथजी ने लिखा : "राहत कार्य करते हुए हमारे मन में केवल एक ही इच्छा है कि किसी भी प्रकार पीड़ित लोगों की सहायता की जाय।"

उस वक्त बंगाल अविभाजित था। २८ जिलों में से लगभग सभी की भागीरथजी ने यात्रा की। ये यात्राएं सारी परिवहन-व्यवस्था के अस्त-व्यस्त रहने के कारण अत्यंत कष्टमय थीं। इन यात्राओं के दौरान कई गांवों में भागीरथजी को ग्रामीणों को यह भी बताना पड़ा कि आटा किस प्रकार खाया जाता है। बंगाल के सुदूरवर्ती गांवों के लोगों को यह भी पता नहीं था कि आटा क्या चीज है। कहीं-कहीं तो लोगों ने उनसे पूछा कि क्या हम इसे घोल कर पियें।

बंगाल रिलीफ कमेटी ने सभी जिलों में कुछ न कुछ काम किया। कमेटी की रपट से पता चलता है कि (१) उसने लंगर खोले (२) मुफ्त अनाज बांटा (३) बच्चों के लिए मुफ्त दूध बांटने के केन्द्र, निराश्रितों के लिए कैम्प, और निराश्रित बच्चों की देख-भाल के लिए शिशु-गृह खोले (४) अकाल में पढ़ाई छूट जानेवाले छात्रों की पढ़ाई की व्यवस्था की (५) एक अलग चिकित्सा विभाग की स्थापना की जिसके तहत बहुत से स्थानों पर चिकित्सा केन्द्र खोले गये, दवाएं बांटी गयीं (६) राहत-कार्य करने वाले अन्य संगठनों को अनुदान दिया गया (७) अकाल पीड़ितों के पुनर्वास से लिए कताई, बुनाई, धान-कुटाई, तालाबों की फिर से खुदाई, झोपड़ियां बनाने, मछुवारों को जाल बनाने का सामान देने, कारीगरों को औजार देने, तट-बन्ध बनाने और किसानों में बीज बांटने आदि के काम किये।

कमेटी ने २५ जिलों में ९२ लंगर और ४७५ मुफ्त अनाज बांटने के केन्द्र खोले। लंगरों से रोज ३७८५० व्यक्तियों को खाना और अनाज-केन्द्रों से ७९,७९६ व्यक्तियों को अनाज दिया जाता रहा। इसके अलावा ३९८ सस्ते अनाज की दुकानें खोली गयीं जिनसे ३०७६९९ व्यक्तियों को रोज सस्ते दामों पर अनाज दिया जाता रहा। इस तरह कमेटी ने ४२५,२४५ व्यक्तियों को रोज सीधे राहत पहुंचायी।

कमेटी ने अपनी जिला कमेटियों के माध्यम से स्थानीय बाजारों से बहुत बड़ी मात्रा में अनाज खरीदा। इसके अलावा कलकत्ता और बंगाल के बाहर से भी उसने अनाज खरीदा और काफी अनाज उसे दान में भी मिला। यह सारा अनाज कुल मिलाकर १४४०६३ मन था। यह मुफ्त बांटने और सस्ती दर पर बेचने के काम में लगाया गया। कमेटी ने कपड़े, दूध, गुड़, बिस्कुट और कम्बल आदि भी बड़ी मात्रा में दान में प्राप्त किये या खरीदे और उनका वितरण किया।

भागीरथजी ने मध्यवर्ग के परिवारों के लिए, जो लोक-लज्जा के कारण सहायता केन्द्रों में आने से हिचकते थे, १० रुपये मन चावल सप्लाई करने की एक योजना चलायी। इस योजना में उन्होंने अपने उन तमाम सम्पन्न परिचितों को अकाल-राहत के काम में लगाने की चेष्टा की, जो गांवों में जाकर काम नहीं कर सकते थे। ऐसी ही एक मारवाड़ी महिला ने हमें बताया : "मध्य-वित्त परिवार सहायता लेने में शर्म महसूस करते थे इसलिए कमेटी के स्वयंसेवकों ने घर-घर जाकर उनको राशन-कार्ड की तरह के कमेटी के कार्ड दिये जिनको दिखा कर वे कमेटी द्वारा चलायी जानेवाली अनाज की दुकानों से अनाज प्राप्त कर सकते थे। कमेटी के कार्यकर्त्ता किस मुस्तैदी से काम करते थे, इसका एक उदाहरण देते हुए इस महिला ने अपने साथ हुई एक घटना बतायी : "एक दिन सस्ते अनाज की दूकान में मैं आटा बेच रही थी। बिक्री के पैसों में से आठ आने पैसे मैंने एक बीमार औरत को दे दिये कि बाद में अपने पास से दे दूंगी। लेकिन मैं बिक्री के पैसों में अपने आठ आने पैसे रखना भूल गयी और घर चली आयी। रात ग्यारह बजे दूकान के एक कार्यकर्त्ता का फोन आया कि बिक्री के पैसों में आठ आने घट रहे हैं, आपको कुछ पता है क्या ?"

कमेटी ने दिसम्बर १९४३ में अपने तहत एक रोग-निरोधक विभाग खोला। श्रीमती कल्याणी भट्टाचार्य को इस विभाग का जिम्मा सौंपा गया। इस विभाग के द्वारा बंगाल के २२ जिलों में १२२ चिकित्सा-केन्द्र खोले गये जिनमें ६४ डाक्टरों और २९४ स्वयंसेवकों ने काम किया। इन केन्द्रों में दवाओं के अलावा रोगियों के पथ्य की भी व्यवस्था की गयी। केन्द्रों में दवाओं के साथ शल्य-चिकित्सा के उपकरण, परीक्षण यंत्र आदि रखने को भी व्यवस्था की गयी। स्वयंसेवकों के लिए दूर-दूर के गांवों में जाने के वास्ते साइकिलों का भी इन्तजाम किया गया।

कमेटी ने बंगाल सरकार से १५०० पौण्ड कुनैन प्राप्त किया। इस कुनैन से कमेटी के एक सदस्य डा० विधानचन्द्र राय (बाद में पश्चिम बंगाल के मुख्यमन्त्री) ने एक विशेष प्रकार की एक करोड़ से भी अधिक गोलियां बनायी—ए० बी० एन०—६१। ये गोलियां, पूरी मात्रा में (डोज) लेने पर तीन लाख लोगों को मलेरिया से मुक्त करने की क्षमता रखती थीं। किन्तु डा० राय की यह गोली अपनी क्षमता से अधिक शक्तिशाली निकली। काफी लोग पूरी मात्रा लिए बिना ही मलेरिया से मुक्त हो गये। इस प्रकार इन गोलियों से तीन लाख से कहीं ज्यादा लोगों को लाभ मिला।

बंगाल के इस अकाल की तात्कालिक समस्या अवश्य अनाज मुहैया करने की थी, लेकिन असली समस्या लोगों की क्रय-शक्ति बढ़ाने की थी। इस सम्बन्ध में बंगाल रिलीफ कमेटी की रपट में कहा गया : "इस अकाल ने सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं

के सामने एक महत कार्य छोड़ा है। समस्या सिर्फ भुखमरी या महामारी से लड़ने या अनाज की पर्याप्त सप्लाई प्राप्त करने या कीमतों पर नियंत्रण रखने की नहीं है। इस अकाल ने बंगाल में एक ऐसा वर्ग पैदा किया है—अर्थशास्त्री इसे जो चाहे नाम दें—जिसके पास प्रान्त में अनाज का कितना ही अधिक स्टाक क्यों न हो और उसकी कीमत कितनी ही कम क्यों न हो, उसे खरीदने की तनिक भी सामर्थ्य नहीं है। इस वर्ग की क्रय-शक्ति को वापस लौटाने की समस्या सबसे बड़ी है। क्रय-शक्ति के लौटे बिना कोई सहायता सार्थक नहीं हो सकती। हम इस दिशा में हमसे जो कुछ हो सकता है, करने की चेष्टा कर रहे हैं पर कोई भी गैरसरकारी संगठन, भले ही कितना ही बड़ा क्यों न हो, इस विषय में बहुत ज्यादा नहीं कर सकता। इस बारे में तो सरकार ही कुछ कर सकती है, जिससे समस्या का हल हो। फिर भी हमने सभी केन्द्रों और कमेटियों को एक प्रश्नावली भेजी है ताकि उससे प्राप्त जानकारी के आधार पर इस सम्बन्ध में योजना बना सकें। कई जगहों से कुटीर-उद्योग की योजनाएं आयी हैं, जिन पर काम शुरू कर दिया गया है। हम जानते हैं कि यह कार्य बहुत बड़ा है। इसके लिए बहुत रुपये और बहुत कार्यकर्त्ताओं की आवश्यकता है। फिर भी हमसे जो कुछ हो सकता है, वह हमें करना ही चाहिए।"

कमेटी ने अकाल पीड़ितों के पुनर्वास और उनको क्रय-शक्ति को पुनर्जीवित करने के लिए कई काम शुरू किये। भागीरथजी ने इस सम्बन्ध में ७ फरवरी, १९४४ को बंगाल के मुख्यमन्त्री ख्वाजा निजामुद्दीन को जो पत्र लिखा, उसे नीचे दिया जा रहा है:

प्रिय महोदय,

.........अन्य प्रादेशिक सरकारों की तरह आपकी सरकार भी चाहती है कि प्रदेश में खाद्य का ज्यादा से ज्यादा उत्पादन हो।

मुझे यह लगता है कि ज्यादा खाद्य उत्पादन के साथ रोजगार उपलब्ध कर बंगाल के निराश्रित और असहाय लोगों की क्रय-शक्ति को पुनर्जीवित करने की जरूरत है। इसके लिए प्रदेश की खेती करने लायक परती जमीन, जो जून १९४२ तक के सरकारी आंकड़ों के अनुसार ८६२, ७८८ एकड़ है, भूमिहीन किसानों को दी जाय तो काफी लाभ हो सकता है। हां, पहले कुछ सालों में इस जमीन को लगान-मुक्त रखना होगा क्योंकि अभी लगान की जो दर है उसे देखते हुए शायद कोई भी किसान जमीन लेने को तैयार न हो।

अगर आपकी सरकार को यह सुझाव आकर्षित करता है तो इसको लागू करना कठिन नहीं है और इसके व्यावहारिक पहलुओं पर तफसील से बातचीत की जा सकती है। मुझे इस बात में कोई सन्देह नहीं कि अगर आप इस तरह की कोई योजना चलायें तो विभिन्न सहायता समितियां और संगठन उसमें पूर्ण सहयोग देंगे।

आपका,
भागीरथ कानोड़िया
(मन्त्री बंगाल रिलीफ कमेटी)

१०

शांति और पुनर्वास के प्रयत्न

सोलह अगस्त, १९४६ का कलकत्ते का हिन्दू-मुस्लिम दंगा शायद देश का सबसे बड़ा साम्प्रदायिक दंगा था। चार दिनों तक भीषण रूप से चलने के बाद छिट-पुट घटनाओं के रूप में तो यह एक बरस से भी ज्यादा चलता रहा। चार दिन के तांडव में ५००० लोग मारे गये और २५००० घायल हुए। करोड़ों की सम्पत्ति नेस्तनाबूद हुई। सबसे ज्यादा लज्जाजनक बात तो यह थी कि हिन्दू और मुसलमान आमने-सामने भी नहीं लड़े; हिन्दू-इलाकों में संख्या-बल में कम लाचार मुसलमानों की और मुसलमान-इलाकों में हिन्दुओं की निर्ममतापूर्वक हत्या की गयी।

इस दंगे से देश भर में मार-काट का सिलसिला चल पड़ा। बम्बई, क्वेटा, इलाहाबाद और दिल्ली में दंगे हुए और फिर नोआखाली, बिहार और अन्त में पंजाब में ऐसे हत्याकाण्ड हुए, जिनकी दुनिया के जघन्यतम हत्याकाण्डों से सहज ही तुलना की जा सकती है। देश भर में साम्प्रदायिकता का ऐसा जहर फैला कि गांधीजी को छोड़ कर सभी बड़े नेताओं को यह लगने लगा कि हिन्दू और मुसलमान एक साथ एक देश में नहीं रह सकते सो देश को विभाजित करना ही होगा। कलकत्ता के दंगे के एक वर्ष बाद १५ अगस्त, १९४७ को देश का विभाजन हुआ और उसकी ही कड़ी में साढ़े पांच महीने बाद ३० जनवरी, १९४८ को एक हिन्दू सम्प्रदायवादी के हाथों गांधीजी की हत्या हुई।

कलकत्ता के दंगे में भागीरथजी ने बहुसंख्यकों के इलाकों में घिरे अल्पसंख्यकों को निकालने और शान्ति स्थापित करने के काम किये। एक भी मुसलमान, हिन्दू-इलाके में और एक भी हिन्दू, मुसलमान-इलाके में सुरक्षित नहीं रह गया था। बंगाल में मुस्लिम लीग का मन्त्रिमण्डल था और मुख्यमन्त्री हसन शहीद सुहरावर्दी पर तो यह आरोप भी था कि उनकी शह से ही दंगे हुए। सरकार की सारी प्रशासनिक मशीनरी का रवैया साम्प्रदायिक था जिससे जनसंख्या में ज्यादा होने के बावजूद कलकत्ता में हिन्दुओं में भयानक आतंक छा गया था। भागीरथजी सेना और पुलिस के दस्तों के साथ मुहल्लों में पहुंचते और लोगों को लारियों में भर-भर के बाहर निकालते। स्थिति यह हो गयी थी कि लोग इतना ही चाहते थे कि किसी तरह ऐसे इलाके में पहुंच जांय, जहां उनके धर्मावलम्बी हों। ऐसे में भागीरथजी लालबाजार (कलकत्ता का पुलिस मुख्यालय) से तनावग्रस्त इलाकों में पुलिस की कुमक भिजवाने की कोशिश भी करते ताकि घिरे लोगों को थोड़ा ढारस रहे।

दंगे में भागीरथजी द्वारा जकरिया स्ट्रीट में खोला गया 'तुलसी पुस्तकालय' भी गुण्डों द्वारा जला दिया गया। यह ऐसा पुस्तकालय था जिसमें मुसलमान पढ़ने आया करते थे। इसमें उनकी रुचि की किताबें तथा अखबार मंगाये जाते थे। भागीरथजी जब जकरिया स्ट्रीट में रहते थे तभी उन्होंने यह पुस्तकालय खोला था।

मुहल्ले के मुसलमानों ने गुण्डों को पुस्तकालय जलाने से रोकने की बहुतेरी कोशिश की, कहा : "यह तो हमारे काम आता है", लेकिन व्यर्थ।

अक्टूबर, १९४६ में नोआखाली में भीषण नर-संहार और स्त्रियों पर अत्याचार शुरू हुआ। कांग्रेस-अध्यक्ष आचार्य कृपलानी के साथ भागीरथजी अक्टूबर महीने में ही दो वार नोआखाली गये और वहां जाकर उन्होंने देखा कि क्या राहत कार्य किया जा सकता है। ३० अक्टूबर को कलकत्ता में श्री शरतचन्द्र बसु की अध्यक्षता में बंगाल सेन्ट्रल रिलीफ कमेटी की स्थापना हुई। प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका इस कमेटी के सेक्रेटरी और भागीरथजी कोषाध्यक्ष बनाये गये। इस कमेटी ने पूर्व बंगाल में राहत पहुंचाने का बहुत बड़ा काम किया। गांधीजी ने ६ नवम्बर, १९४६ से नोआखाली जिले में रहना शुरू किया। उन्होंने अपने लिए एक गांव चुन लिया और अपने सब साथियों को अलग-अलग गांव में जा कर बैठने और वहां से काम करने का आदेश दिया। बंगाल सेन्ट्रल रिलीफ कमेटी का नोआखाली के गांवों के 'गांधी-कैम्पों' से तो सम्बन्ध बना ही, उसने पूर्व बंगाल के गांधीवादी रचनात्मक कार्यकर्ताओं के माध्यम से भी बड़े पैमाने पर राहत-कार्य किया। कमेटी का अधिकांश काम भागीरथजी ही करते थे। १९४३ के अकाल में वह पूर्व बंगाल और नोआखाली की यात्रा कर चुके थे सो वह स्थानीय परिस्थितियों से बहुत अच्छी तरह परिचित थे। इस अनुभव के कारण कमेटी को वहां अपने काम में काफी मदद मिली।

बंगाल सेंट्रल रिलीफ कमेटी के उस वक्त के कागजात देखने से पता चलता है कि नोआखाली के हत्याकांड के बाद पूर्व बंगाल में 'नोआखाली रेस्क्यू, रिलीफ एण्ड रिहैबिलिटेशन कमेटी' और 'त्रिपुरा डिस्ट्रिक्ट रेस्क्यू एण्ड रिलीफ कमेटी' नामकी दो कमेटियां राहत और उद्धार-कार्य में सबसे अधिक सक्रिय थीं। सेन्ट्रल रिलीफ कमेटी का दोनों से अनवरत सम्पर्क बना हुआ था और इनके माध्यम से उसने बड़ा काम किया। उसके पास पूर्व बंगाल के रचनात्मक, सामाजिक और राजनीतिक कार्यकर्ताओं के पत्र आते और उनके आधार पर वह पैसे और सहायता भिजवाती। ठक्करबापा ने नोआखाली में हरिजनों की बस्तियों में कैम्प खोले थे। इन कैम्पों से भी सेन्ट्रल रिलीफ कमेटी का संबंध बना हुआ था। ऐसे कैम्पों में हेमचर का कैम्प स्व० शचीन्द्रनाथ मित्र सम्भालते थे। कमेटी के कागजात में शचीन्द्रनाथ मित्र के, जिन्हें बंगाल का गणेश-शंकर विद्यार्थी कहा जाना चाहिए, कई पत्र देखने को मिले। शचीन्द्रनाथ मित्र की १ सितम्बर, १९४७ को कलकत्ता में हिन्दू और मुसलमानों के बीच प्रेम और सद्भाव कायम करने की कोशिश करते वक्त गुण्डों ने हत्या कर दी। सेन्ट्रल रिलीफ कमेटी का पूर्व बंगाल के अभय आश्रम, कपसरिया पल्ली गठन केन्द्र, बंगीय पल्ली संगठन समिति जैसी रचनात्मक संस्थाओं से विभाजन के दो-तीन वर्ष बाद तक सम्बन्ध बना रहा। बंगाल के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी त्रैलोक्य महाराज के कमेटी के नाम खुद के हाथ के लिखे बीसियों पत्र हमें देखने को मिले। इन पत्रों में महाराज ने कमेटी के काम की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की थी।

कागजात में एक पत्र बीबी अमतुस सलाम का भी मिला। नोआखाली में हत्या, लूट-पाट और आगजनी तो हुई ही थी लेकिन सबसे ज्यादा लज्जाजनक बात तो यह

हुई थी कि स्त्रियों पर जघन्य अत्याचार हुए थे। बंगाली हिन्दू स्त्रियों ने डर के कारण सौभाग्य के चिन्ह धारण करने बन्द कर दिये थे—शंख की चूड़ियां पहनना और मांग में सिन्दूर भरना बन्द कर दिया था। बीवी अमतुस सलाम गांधीजी के साथ नोआखाली आयीं तो उनके आदेश पर सिरन्दी गांव में जाकर काम करने लगीं। गांव में भय का यह वातावरण देख कर उन्होंने अनशन प्रारम्भ किया। उनके अनशन से महिलाओं में साहस का संचार हुआ तो उन्होंने (अमतुस सलाम) भागीरथजी को खत लिखा कि वह किसी विश्वस्त आदमी के हाथों से पूरी सावधानी रख कर सिन्दूर और शंख की चूड़ियां भिजवायें। इस पर भागीरथजी ने सेन्ट्रल रिलीफ कमेटी के कार्यालय-अधिकारी श्री कृष्णचन्द्र महापात्र के हाथ नदी-मार्ग से बीबी अमतुस सलाम के पास शंख की चूड़ियां और सिन्दूर पहुंचाया। श्री कांतिलाल शाह द्वारा लिखी गयी ठक्करबापा की जीवनी से पता चलता है कि ठक्करबापा ने भी डरी हुई स्त्रियों के बीच बनारस से शंख की चूड़ियां और सिन्दूर मंगा कर बांटा था।

कमेटी ने पीड़ित लोगों के बीच लगभग साढ़े आठ लाख रुपये खर्च किये।

इधर कलकत्ता में १६ अगस्त के दंगे के वाद स्थिति सामान्य नहीं हो रही थी। चार महीने बाद १२ दिसम्बर को पहली बार करफ्यू उठाया गया लेकिन छिटपुट वारदातें होते रहने के कारण वह वापस उपद्रवग्रस्त इलाकों में लगने लगा। हिन्दू-इलाकों में मुसलमानों का खात्मा हो चुका था और मुसलमान-इलाकों में हिन्दुओं का। लेकिन इलाके सटे हुए थे और इस तरह बने हुए थे कि किसी हिन्दू या मुसलमान को अपने इलाके में आने-जाने के लिए दूसरे के इलाके से होकर जाना पड़ता था। इस तरह वाहर निकलना और घर वापस पहुंचना जोखिम और खतरे का काम हो गया था। कलकत्ता, हिन्दू और मुसलमान इलाकों में इस तरह बंट गया था कि जगह-जगह सीमाएं और मध्यवर्ती (बफर) इलाके भी कायम हो गये थे। यात्री-बसें अपने निर्धारित रास्तों को छोड़ कर घूम कर यात्रा करतीं ताकि बीच में उपद्रवी इलाके न पड़ें। हिन्दू और मुसलमान इलाकों में दूसरे सम्प्रदाय की अधिकांश दुकानें जला दी गयी थीं लेकिन दफ्तर तो थे सो इनमें काम करनेवाले दूसरे सम्प्रदाय के लोग अपने को हमेशा संकटापन्न मानते थे। ऐसे में आतंक के कारण नागरिकों को होनेवाली असुविधाओं को दूर करने की बात कलकत्ता के मारवाड़ी कार्यकर्ताओं के मन में आयी। ३० मार्च, १९४७ को हिन्द सेवा संघ नामकी एक संस्था बनायी गयी। हम पहले ही यह लिख चुके हैं कि संकट के समय जो कोई भी संस्था काम कर रही होती, भागीरथजी उसके माध्यम से काम करने लगते थे, वह हिन्द सेवा संघ के माध्यम से काम करने लगे।

हिन्द सेवा संघ ने उपद्रवग्रस्त इलाकों में खाली किये गये मकानों की हिफाजत करने, उपद्रवग्रस्त इलाकों से लोगों को सुरक्षित स्थानों पर पहुंचाने और सियालदह से हावड़ा के बीच पहरे के साथ मुफ्त परिवहन-सेवा (यह इसलिए कि लोग बीच के रास्ते से होकर गुजरने में डरते थे और इस मार्ग पर बसें नहीं चलती थीं) चलाने के कार्य किये। संघ की ओर से हिन्द सेवा दल के नाम से सहायता और उद्धार कार्य करने के लिए स्वयंसेवकों और कार्यकर्ताओं का एक दल भी गठित किया गया। आतंक दूर करने और शांति स्थापित करने के लिए संघ के तत्वावधान में मुहल्ला-कमेटियां भी

गठित की गयीं। संघ का दफ्तर चौवीसों घण्टे खुला रहता था। उसके पास ६ जीपें, २ स्टेशन वैगन, ३ हथियारवन्द गाड़ियां और २ एम्बुलेंस थीं। खाली मकानों की रखवाली करने के लिए १५० दरवानों की एक टीम थी। उसका एक दरवान गुण्डों के हाथों मारा भी गया।

९ मई, १९४७ को गांधीजी कलकत्ता आये। शहर की स्थिति अशांत थी। करफ्यू लगा हुआ था। सीतारामजी की डायरी से पता चलता है कि ११ मई को वह भागीरथजी के साथ गांधीजी से मिलने गये तो, "भाई भागीरथजी ने बातों के सिलसिले में कह दिया कि लोग ऐसा मानते हैं कि बिहार में जो कुछ हुआ उसकी वजह से मुसलमान रुके, नहीं तो ज्यादा जबरदस्ती करते। इसका गांधीजी पर बहुत बुरा असर पड़ा और वे तमक गये। भागीरथजी के कहने का अर्थ उन्होंने (गांधीजी ने) गलत लगाया। इसके बाद भी थोड़ी बातें हुई पर जमी नहीं। अपने को भी अच्छा नहीं लगा। समय भी ज्यादा नहीं था इसलिए जल्दी आ गये।"

यह वक्त ही ऐसा था कि देश के बड़े से बड़े लोग, जन्म-भर हिन्दू-मुसलमान सद्भाव के लिए काम करनेवाले लोग तक साम्प्रदायिकता के जहर से अछूते नहीं रह पाये। यह वक्त गांधीजी के लिए अपने दीर्घ राजनीतिक जीवन में सबसे अधिक पीड़ा का भी था। उन्हें कहीं यह महसूस हो रहा था कि जिन लोगों के साथ उन्होंने बरसों काम किया था, वे अब उनका साथ देने को तैयार नहीं हैं, वे साम्प्रदायिकता के शिकार हो कर सारी स्थिति को हिन्दू-मुसलमान दृष्टिकोण से ही देख रहे हैं और उन्हें (गांधीजी को) 'फालतू' समझ रहे हैं। इस वक्त की गांधीजी की पीड़ा का प्रोफेसर निर्मलकुमार बसु, प्यारेलाल और कुमारी मनु गांधी की पुस्तकों से कुछ पता लगता है।

तो भागीरथजी जो बता रहे थे उसे गांधीजी ने उनका निजी मत मान लिया। भागीरथजी ऐसे व्यक्तियों में नहीं थे जो अपनी सफाई देते। वह यह मानते थे कि सामनेवाले व्यक्ति को अगर उनके बारे में गलतफहमी हो गयी है तो वह सफाई देने से दूर नहीं होगी, वह तो समय के साथ सामनेवाले के समझने पर अपने-आप दूर हो जायगी।

गांधीजी को जाननेवाले प्रायः सभी व्यक्तियों का यह मत है कि वह तमकते नहीं थे। दूसरों की बातों को सुनने और समझने का अपार धैर्य उनमें था। लेकिन १९४६-४७ के साम्प्रदायिक वैमनस्य के आगे असहाय होने का बोध उनमें कहीं घर करने लगा था जिससे कभी-कभी वह उत्तेजित हो जाते थे। निर्मल बसु ने अपनी पुस्तक 'माई डेज विद गांधी' में लिखा है कि नोआखाली में किसी-किसी रात गांधीजी इतने उद्विग्न हो जाया करते थे कि अकेले में बड़बड़ाते : "क्या करूं ? क्या करूं ?"

११ मई के ही दिन, जिसकी ऊपर चर्चा की गई है, भागीरथजी से बातचीत के आगे या पीछे गांधीजी की सुहरावर्दी भी से मुलाकात हुई थी। इस मुलाकात में निर्मल बसु भी गांधीजी के साथ थे। उन्होंने अपनी पुस्तक में लिखा है कि वह (निर्मल बाबू) सुहरावर्दी से कलकत्ता के दंगे की कुछ हत्याओं के बारे में पुलिस-जांच की शिकायत कर रहे थे। प्रसिद्ध इतिहासकार सर यदुनाथ सरकार के बेटे की हत्या की जांच के बारे में निर्मल बाबू ने पुलिस की निष्क्रियता की शिकायत की तो सुहरावर्दी ने कहा कि इस

हत्या के बारे में तरह-तरह की अफवाहें हैं तो गांधीजी ने, जो सारी बातचीत सुन रहे थे, एकाएक सुहरावर्दी को कहा कि कलकत्ता में जितने हिन्दू और मुसलमानों की हत्याएं हुई हैं उनके लिए आप जिम्मेवार हैं (सुहरावर्दी के मुख्यमंत्रित्व के समय में ही ये हत्याएं हुई थीं)। इस पर सुहरावर्दी ने गांधीजी को जबाब दिया कि देश भर में मुसलमानों की जो हत्याएं हुई हैं, उनके लिए आप (गांधीजी) जिम्मेवार हैं। इस पर गांधीजी एकदम तमक गये और उन्होंने कहा: "डोंट टाक राट (बकवास मत करो)"। निर्मल बाबू आगे लिखते हैं: "मैंने गांधीजी को इस तरह बिफरते कभी नहीं देखा था।"

तीन महीने बाद ९ अगस्त को गांधीजी जब देश का अपना व्यापक दौरा कर पुनः कलकत्ता लौटे तो स्थिति में बड़ा परिवर्तन हो चुका था। तब तक कांग्रेस और लीग द्वारा देश और पंजाब तथा बंगाल का विभाजन स्वीकार कर लेने के बाद ३ जुलाई, १९४७ को पश्चिम बंगाल में डा० प्रफुल्लचन्द्र घोष के मुख्यमंत्रित्व में कांग्रेसी मंत्रि-मंडल बन चुका था। यदि पहले मुसलमान-राज्य था तो अब एक प्रकार हिन्दू-राज्य कायम हो गया। पहले हिन्दू, मुसलमानों से डरते थे अब मुसलमान हिन्दुओं से डरने लगे। ७ जुलाई को एक मुसलमान पुलिस अफसर के जनाजे को लेकर दंगा शुरू हुआ तो लगभग ५० लोग मारे गये। ५ जुलाई को इस अफसर की हत्या कर दी गई थी। इसी स्थिति में गांधीजी नोआखाली जाने के लिए पटना से कलकत्ता आये थे, किन्तु कलकत्ते की स्थिति तनावपूर्ण होने और मुसलमानों के आग्रह के कारण उन्हें अपनी नोआखाली-यात्रा स्थगित कर देनी पड़ी।

१८ अगस्त को कलकत्ता से चौदह मील दूर बारकपुर में हिन्दू और मुसलमानों के बीच मस्जिद के सामने बाजा बजाने को लेकर दंगा हो गया। भागीरथजी और उनके मित्र शांति स्थापित करने की कोशिश में बारकपुर पहुंचे। थोड़ी देर में गांधीजी भी पहुंच गये। उनके पहुंचने के बाद हवा ही बदल गयी। हिन्दू कहते थे, "महात्माजी जैसा कहेंगे, वैसा हम करेंगे" और मुसलमान कहते थे, "गांधीजी जो कहेंगे हम वही करेंगे।" गांधीजी ने मौन दिवस होने के कारण लिख कर कहा कि नमाज के वक्त तो बाजा बजना ही नहीं चाहिए, बाद में चाहे बजे या न बजे।

इस घटना के बारे में सीतारामजी ने बताया: "मैंने और भागीरथजी ने कहा कि नमाज के वक्त का सब लोगों को पता नहीं रहता इसलिए अच्छा हो कि यह निर्णय किया जाय कि मस्जिद के सामने बाजा बजाना एकदम ही बन्द रखा जाये। इस पर गांधीजी ने पेंसिल से लिख कर उत्तर दिया कि इस विषय पर बहुत सोचना पड़ेगा। गांधीजी ने ऐसा क्यों कहा मेरी समझ में नहीं आया तो भागीरथजी ने मुझे समझाया कि अगर साम्प्रदायिक हिन्दू इस बात को न मानें तो झगड़े की एक और जड़ खड़ी हो जायेगी इसलिए बापू ने एक शब्द में कह दिया कि इस सम्बन्ध में और सोच-विचार करना होगा। भागीरथजी ने शायद बापू के दिमाग को सही पढ़ा।"

३१ अगस्त को गांधीजी ने घोषणा की कि वह २ सितम्बर को नोआखाली जायेंगे लेकिन इसी दिन रात को कलकत्ता में साम्प्रदायिक दंगे फिर भड़क उठे और गांधीजी को १ सितम्बर से ४ सितम्बर तक अनशन करना पड़ा। अनशन तोड़ने के बाद गांधीजी ने दंगों में विस्थापित लोगों के पुनर्वास के लिए एक कमेटी बनाने का

निश्चय किया। दंगों के बाद कलकत्ता के मेयर श्री सुधीरचन्द्र रायचौधरी की अध्यक्षता में एक केन्द्रीय शांति कमेटी बनायी गयी थी। यह कमेटी शांति और सद्भाव स्थापना सम्बन्धी काम ही करती थी। गांधीजी ने कलकत्ता में रह कर देखा था कि दंगों से आबादी का बहुत बड़ा स्थानांतरण हुआ था सो वह चाहते थे कि पुनर्वास के काम के लिए विशेष रूप से कुछ किया जाय। ६ सितम्बर को गांधीजी ने एक बैठक बुलायी। इसमें पुनर्वास के काम के लिए केन्द्रीय शान्ति कमेटी के तहत एक फिनान्स-सब कमेटी (वित्त उपसमिति) बनायी गयी। बैठक में गांधीजी बोलते रहे कि कमेटी को क्या-क्या करना चाहिए और उन्होंने भागीरथजी को कहा कि वह जो बोलें उसे भागीरथजी लिखते रहें। बैठक के वक्त भागीरथजी ने गांधीजी से जो डिक्टेशन लिया था, उसका कागज कमेटी के कागजात में मिला। इस कागज पर गांधीजी के हस्ताक्षर भी हैं (कागज की फोटो-लिपि परिशिष्ट में दी गयी है)।

इस वित्त-उपसमिति के पश्चिम बंगाल के मुख्यमन्त्री डा० प्रफुल्लचन्द्र घोष अध्यक्ष बनाये गये। समिति यद्यपि केन्द्रीय शान्ति कमेटी के तहत थी पर गांधीजी ने उसको पुनर्वास का काम स्वतन्त्र रूप से करने का निर्देश दिया। भागीरथजी उप-समिति के मन्त्री-कोषाध्यक्ष बनाये गये। उपसमिति को बड़े पैमाने पर रुपये इकट्ठा कर पुनर्वास का काम करना था इसलिए उसमें हसन शहीद सुहरावर्दी और नलिनीरंजन सरकार जैसे प्रसिद्ध व्यक्तियों के साथ सभी चेम्बर आफ कामर्स (वाणिज्य संस्थाएं) के प्रतिनिधि शामिल किये गये। अन्य सदस्य थे : एम० एच० इस्पहानी (कलकत्ता के सबसे बड़े मुसलमान व्यापारी-उद्योगपति), डी० एन० सेन (बंगाल नेशनल चेम्बर आफ कामर्स), के० डी० जालान (इण्डियन चेम्बर आफ कामर्स), बाबूलाल जालान (मारवाड़ी चेम्बर आफ कामर्स), कासिम इस्माइल (मुस्लिम चेम्बर आफ कामर्स), ए० पी० बेन्थल (बंगाल चेम्बर आफ कामर्स; यह यूरोपियनों की वाणिज्य संस्था थी, बेंथल के विलायत चले जाने पर नील ब्रोडी ने उनका स्थान लिया), आर० के० जैदका (प्रसिद्ध पंजाबी बस-लारी मालिक), एम० एल० शाह (प्रसिद्ध गुजराती व्यापारी), देवेन्द्रनाथ सेन (प्रसिद्ध बंगाली उद्योगपति), विश्वम्भरनाथ चतुर्वेदी (कलकत्ता स्टाक एक्सचेंज के अध्यक्ष) और करमचन्द थापड़ (प्रसिद्ध पंजाबी व्यापारी और उद्योगपति)।

उपसमिति की बैठक मुख्यमन्त्री के निवास-स्थान पर होती थी। कमेटी ने विस्थापितों के पुनर्वास के लिए नये घर बनाने और नष्ट हुए मकानों की मरम्मत करने का काम करने के अलावा विस्थापितों में बर्त्तन बांटने, दैनिक मजदूरी कर रोजी-रोटी कमानेवालों को फिर से धन्धा शुरू करने के लिए पूंजी देने और जिन छात्रों की पढ़ाई छूट गयी थी उनकी शिक्षा की व्यवस्था करने के काम अपने हाथ में लिए।

कमेटी ने नष्ट बस्तियों का पुनः निर्माण करने के अपने कार्यक्रम में दो माडल (आदर्श) बस्तियां बनाने का भी निश्चय किया। इन आदर्श बस्तियों में पाखाने, स्नान-घर और पीने के पानी की समुचित व्यवस्था करने के साथ एक प्राइमरी स्कूल, एक औषधालय और बच्चों का पार्क बनाने का भी निर्णय किया गया। कमेटी ने नारकेल-डांगा मेन रोड और दिलखुशा स्ट्रीट में इस प्रकार की दो बस्तियां बनायीं और उनको

कलकत्ता कारपोरेशन को सौंप दिया। कलकत्ता में इससे पहले इस तरह की आदर्श बस्तियों के निर्माण की बात सोची भी नहीं गयी थी।

कमेटी के पास पुनर्वास-सहायता के लिए जो आवेदन आते थे, उनकी स्थान पर जाकर जांच की जाती और फिर सहायता मंजूर की जाती। इस काम के सिलसिले में भागीरथजी रोज ही कलकत्ता की गन्दी बस्तियों में जाते और आवेदनकर्ताओं से रुबरू मुलाकात करते। कमेटी के कागजात में मुस्लिम रिलीफ कमेटी के भी कई आवेदन देखने को मिले। कमेटी ने मुस्लिम रिलीफ कमेटी के सहयोग से कई मुसलमान बस्तियों के पुनःनिर्माण का काम भी किया। कागजात में नवम्बर, १९४८ का लिखा हसन शहीद सुहरावर्दी का भी एक पत्र भागीरथजी के नाम मिला। इस पत्र में सुहरावर्दी ने एक मुसलमान वस्ती के पुनःनिर्माण के वारे में कमेटी को जल्दी निर्णय करने का अनुरोध किया था। इस पत्र को देख कर ५ साल पहले ५ अक्टूबर, १९४३ को भागीरथजी द्वारा सुहरावर्दी को लिखे गये उस पत्र की याद आयी, जिसमें उन्होंने बंगाल में अकाल के वक्त अनाज की सप्लाई के बारे में सुहरावर्दी को शीघ्र निर्णय करने को लिखा था। पांच वर्षों में क्या से क्या हो गया।

११

भागीरथजी और बंगाल

आजादी के पहले हमारे समाज-जीवन में घोल-मेल और एक समुदाय के लोगों के दूसरे से जुड़ने की प्रक्रिया चालू थी। बंगालियों और मारवाड़ियों के बीच वैमनस्य तब भी था लेकिन मारवाड़ियों में ऐसे लोग, जो समाज-सुधार और स्वाधीनता आंदोलन के क्षेत्र में सक्रिय थे, बंगाली-जनजीवन से हमेशा जुड़ने की कोशिश करते रहते थे और उनके प्रयत्नों से कहीं मारवाड़ी और बंगाली के बीच आदान-प्रदान की मंद प्रक्रिया भी चल रही थी, जो आजादी के बाद विकसित होने के बजाय मुरझा गयी है।

भागीरथजी की बंगाली-जनजीवन से जुड़ने की हमेशा कोशिश रही। इसके चलते वह बहुत सारे बंगाली राजनीतिक और रचनात्मक कार्यकर्ताओं तथा शिक्षाविदों के सम्पर्क में आये और बहुत सारी बंगाली संस्थाओं से उनका सम्बन्ध बना। बंगाल में अकाल और बाढ़ तथा साम्प्रदायिक दंगों जैसी प्राकृतिक और मानवीय विभीषिकाओं के समय उन्होंने अपने को भुला कर राहत कार्यों में भाग लिया। १९४३ के बंगाल के अकाल के समय के उनके काम के बारे में पाठक पिछले पृष्ठों में पढ़ चुके हैं। १९५३ में बंगाल में खासकर मेदिनीपुर जिले में भयंकर बाढ़ आयी तो मुख्यमंत्री डा० विधान चन्द्र राय की अध्यक्षता में पश्चिम बंगाल प्रदेश बाढ़ सहायता समिति गठित की गयी। भागीरथजी इस समिति के मंत्री बनाये गये। समिति के पास शुरू में बिलकुल ही रुपये नहीं थे तो भागीरथजी ने अपने दफ्तर से रुपये एडवांस देकर समिति का काम प्रारम्भ किया।

एक सामाजिक कार्यकर्ता को, और फिर वह भागीरथजी जैसा व्यक्ति हो तो बहुत सारे ऐसे काम करने पड़ते हैं जो एकदम तात्कालिक होते हैं। ऐसे कामों के बारे में पन्द्रह-बीस वर्ष बाद पता लगाना अत्यंत कठिन होता है। भागीरथजी ने बंगाल और कलकत्ता में इस तरह के असंख्य तात्कालिक काम किये। श्री कृष्णचन्द्र महापात्र ने ऐसे कुछ तात्कालिक कामों के बारे में बताया। १९४५-४६ में जब आजाद हिन्द फौज के सिपाही भारत आये और शाहनवाज, सहगल तथा ढिल्लो पर अंग्रेज सरकार ने राज-द्रोह का मामला चलाया तो बंगाल में एक आई० एन० ए० जांच और सहायता कमेटी बनी। भागीरथजी इस कमेटी के कोषाध्यक्ष बनाये गये। १९४८ में गांधीजी की मृत्यु के बाद गांधी नेशनल मेमोरियल फंड की स्थापना हुई तो उसकी बंगाल-शाखा का भागीरथजी को कोषाध्यक्ष बनाया गया। १९५२ में ट्यूनीसिया के स्वातंत्र्य-संग्राम में सहायता करने के लिए कलकत्ता में 'एड टू ट्यूनीसिया कमेटी' बनायी गयी। इसके भी भागीरथजी कोषाध्यक्ष थे। बंगाली कार्यकर्ता जो भी संस्था और कमेटी बनाते उसमें भागीरथजी को कोषाध्यक्ष का पद देते क्योंकि वे यह जानते थे कि भागीरथजी के हाथ में कोष रहेगा तो उसका प्रवन्ध सुचारू रूप से होगा।

सीतारामजी की डायरियों से पता चलता है कि भागीरथजी ने बंगाल के ऐसे महापुरुषों से, जिनके प्रति उनके मन में अपार श्रद्धा थी, अपना सम्पर्क निरन्तर बढ़ाया। सम्पर्क-संकोची होने के बावजूद वह इनसे सम्पर्क बढ़ाने की कोशिश करते थे तो उसके पीछे उनका यह संस्कार काम करता था कि महापुरुषों की संगत व्यक्ति को व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं और वासनाओं से मुक्त कर उसे संस्करित करती है। रूढ़ियों और अंधविश्वासों के प्रति गहरी वितृष्णा के बावजूद किसी साधु-सन्त की चर्चा सुनने पर वह उसके पास जाते और यह जानना चाहते कि वह सचमुच साधु है या नहीं। दीनबन्धु ऐण्ड्र-यूज जैसे व्यक्तियों को भागीरथजी साधु मानते थे और उनकी चर्चा करते हुए श्रद्धा-विभोर हो जाया करते थे। न जाने कितने लोगों से उन्होंने दीनबन्धु की सरलता की चर्चा की होगी। ऐसी चर्चा में वह यह जरूर बताते कि दीनबन्धु से किसी ने पूछा आपने (दीनबन्धु) विवाह क्यों नहीं किया तो उन्होंने (दीनबन्धु ने) जवाब दिया कि कभी इतना समय ही नहीं मिला कि विवाह के बारे में सोचूं।

बंगाल के तीन महापुरुषों—रवीन्द्रनाथ ठाकुर, आचार्य जगदीशचन्द्र बसु और आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय—के वह सम्पर्क में आये। आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय ने अपनी आत्म-कथा में मारवाड़ियों के खिलाफ कुछ बातें लिखीं थीं जिनसे मारवाड़ियों में उनके प्रति काफी रोष था। भागीरथजी को यह रोष बहुत गलत मालूम हुआ क्योंकि उनकी राय यह थी कि आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय जैसे साधु-पुरुष ने जो लिखा है, वह द्वेषवश लिखा हो ही नहीं सकता।

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के प्रति भी भागीरथजी की असीम श्रद्धा थी। रवीन्द्रनाथ की जन्म और मृत्यु-तिथि की सभाओं में वह बहुत वर्षों तक नियमपूर्वक शामिल होते रहे। ८ मई, १९४६ की अपनी डायरी में सीतारामजी लिखते हैं: "शाम को स्वर्गीय पूज्य रवीन्द्रनाथ टैगोर का जन्म दिवस था, उसकी सभा में गये। इस सभा में गैरबंगालियों में भाई भागीरथजी और मैं शायद दो ही आदमी थे। हम

बंगालियों में प्रान्तीयता वताते हैं पर रवीन्द्रनाथ जैसे आदमी के लिए सभा हो और उसमें मारवाड़ी या अन्य गैरबंगालियों का न जाना क्या वताता है, क्या साबित करता है ? रवीन्द्र मेमोरियल में अभी तक करीब तेरह लाख रुपये इकट्ठा हुए हैं जिसमें गैरबंगालियों का शायद कुछ भी हिस्सा नहीं है या है तो बहुत नगण्य है।"

विश्वकवि से भागीरथजी का सम्पर्क भी काफी आया। विश्वकवि जब शान्तिनिकेतन से कलकत्ता आते तो अपने जोड़ासांकू स्थित भवन में एक अन्तरंग गोष्ठी आयोजित करते। इसमें वह अपनी नयी कविताओं का पाठ करते और फिर फरमाइश पर पुरानी कविताएं भी सुनाते। इस अन्तरंग गोष्ठी में विश्वकवि ने खुद भागीरथजी को कई बार निमन्त्रित किया। रवीन्द्रनाथ के बारे में कोई भागीरथजी से कुछ जानना चाहता तो वह बड़े उत्साह से बताते। १९७३ या १९७५ में घोर अस्वस्थता के दौरान उन्होंने अपने डाक्टर को रवीन्द्रनाथ के बारे में यह किस्सा बड़े प्रेम से सुनाया : "एक बार रवीन्द्रनाथ बहुत बीमार पड़े। आपरेशन करने की जरूरत पड़ी। बंगाल के प्रसिद्ध शल्य-चिकित्सक डा० नीलरतन सरकार ने उनका आपरेशन किया। आपरेशन के बाद जब विश्वकवि को होश आया तो डा० सरकार ने हाथ जोड़ कर विश्वकवि से कहा : आप मुझे क्षमा करेंगे। आपरेशन के लिए मुझे आपकी दाढ़ी काटनी पड़ी तो विश्वकवि ने कहा : 'समझा, यम मेरी दाढ़ी पकड़ कर ले जा रहा था लेकिन तुम बड़े चालाक निकले। तुमने तुरन्त मेरी दाढ़ी काट दी। यम को मुझे छोड़ देना पड़ा।' भागीरथजी ने भाव विभोर होकर अपने डाक्टर को बताया कि विश्वकवि के मुंह से यह सुन कर डा० नीलरतन सरकार निहाल हो गये। उन्हें 'जीवन धन्य हुआ' की साक्षात प्रतीति हुई।"

आचार्य सर जगदीशचन्द्र बसु की पत्नी लेडी अबला बोस के प्रति भी भागीरथजी के मन में बड़ा आदर था। लेडी अबला बोस का बंगाल में स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उनकी मृत्यु पर 'लेडी अबला बोस स्मृति कोष' का गठन हुआ तो भागीरथजी उसके कोषाध्यक्ष हुए।

राजस्थान के मुख्यमन्त्रियों की तरह पश्चिम बंगाल के मुख्यमन्त्रियों से भी भागीरथजी का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा। राजस्थान के प्रथम मुख्यमन्त्री शास्त्रीजी की तरह प० बंगाल के प्रथम मुख्यमन्त्री डा० प्रफुल्लचन्द्र घोष उनके व्यक्तिगत मित्र थे। डा० विधानचन्द्र राय, प्रफुल्लचन्द्र सेन और अजय मुखर्जी से भी उनका गहरा सम्बन्ध था।

बंगाल में हरिजनोद्धार के कार्य में भागीरथजी की रुचि के बारे में पाठक पढ़ चुके हैं। बंगाल हरिजन सेवक संघ के संस्थापकों में से वह एक थे। गांधीजी के जितने भी रचनात्मक कार्य बंगाल में हुए उनमें भागीरथजी का पूरा योगदान रहा। 'बंगाल के गांधी' सतीशचन्द्र दासगुप्त से और उनकी संस्था खादी प्रतिष्ठान तथा बंगाल के रचनात्मक कार्यकर्ताओं और उनकी विभिन्न संस्थाओं से भागीरथजी का प्रगाढ़ सम्बन्ध रहा। नवद्वीप की बंगवाणी और अन्य कई गांधीवादी संस्थाओं से वह मृत्यु पर्यन्त जुड़े रहे।

भागीरथजी की मृत्यु पर कलकत्ता में सार्वजनिक संस्थाओं की ओर से जो शोक सभा हुई उसके निवेदकों में ७५ संस्थाएं थीं। इन संस्थाओं में सामाजिक और शैक्ष-

णिक संस्थाओं के साथ जमायत-उल उलेमा हिन्द, रामकृष्ण मिशन, भारत सेवाश्रम संघ, गुजरात रिलीफ सोसाइटी और पंजाब सेवा समिति जैसी संस्थाएं भी थीं। ७५ संस्थाओं में से सभी का भागीरथजी से किसी न किसी प्रकार का सम्बन्ध रहा था। इससे यह पता चलता है कि भागीरथजी की सेवा का क्षेत्र कितना विस्तृत था।

राहत-कार्य भागीरथजी के मन का कार्य था इसलिए रामकृष्ण मिशन के काम में उनकी बहुत रुचि थी। रामकृष्ण मिशन से उनका सम्बन्ध बढ़ता ही गया। कलकत्ता के पास रामकृष्ण मिशन के नीमपीठ-आश्रम के तो वह वर्षों अध्यक्ष रहे। नीमपीठ-आश्रम आज रामकृष्ण मिशन की एक विशेष संस्था बन गया है। इसके विकास में भागीरथजी का बहुत बड़ा योगदान रहा है।

भागीरथजी कलकत्ता के कई समाज कल्याण ट्रस्टों से जुड़े थे। इनमें रघुमल चैरिटी ट्रस्ट और रायबहादुर विश्वेश्वरलाल हलवासिया ट्रस्ट प्रमुख हैं। हलवासिया ट्रस्ट के मारफत उन्होंने इतना बड़ा काम किया कि उसके बारे में अलग से लिखना आवश्यक प्रतीत होता है।

हलवासिया ट्रस्ट

इस ट्रस्ट से भागीरथजी ४२ वर्ष जुड़े रहे। १९३४ में कलकत्ता उच्च न्यायालय में उन्हें इसका रिसीवर नियुक्त किया और १९४१ में वह उसके एक ट्रस्टी बनाये गये और १५ जुलाई, १९७६ तक बने रहे, जब उन्होंने कुछ विशेष परिस्थितियों के कारण ट्रस्टी के पद से इस्तीफा दे दिया।

ट्रस्ट का काम जब भागीरथजी ने रिसीवर के तौर पर सम्भाला तो आपसी झगड़ों के कारण उसकी हालत बहुत खराब थी। सारी सम्पति बदइन्तजामी के कारण बिखर कर नष्ट हुए जा रही थी और आज से लगभग पचास साल पहले रायबहादुर विश्वेश्वरलाल हलवासिया ने जिन 'शुभ कामों' में लगाये जाने के लिए अपना 'इस्टेट, नगदी व मकानात वगैरह धर्मार्थ किये थे', वे फलित नहीं हो रहे थे। ट्रस्ट को ऐसे एक व्यक्ति की जरूरत थी जो उसके संचालक के रूप में निःस्वार्थ भाव से उसकी सम्पत्ति से होनेवाली आमदनी को 'धर्मार्थ' लगाये। भागीरथजी के रूप में ट्रस्ट को ऐसा व्यक्ति मिल गया।

रायबहादुर विश्वेश्वरलाल हलवासिया ने अपनी वसीयत में 'रोगियों की दवा, अनाथालय, स्कूल, मन्दिर के खर्च इत्यादि शुभ कर्म' में सम्पत्ति की आमदनी लगाने का जो निर्देश दिया था उसका पालन करते हुए भागीरथजी ने ट्रस्ट के सेवा-क्षेत्र को व्यापक बनाया। स्कूल, मन्दिर, अनाथालय और औषधालय खोलने और उनको सहायता देने के अलावा भागीरथजी ने ट्रस्ट की ओर से जरूरतमन्द छात्रों को व्याज-मुक्त ऋण देने, सार्वजनिक अस्पतालों में रोगियों के लिए मुफ्त शैयाओं की व्यवस्था करने, अनुसंधान कार्यों में मदद देने और हिन्दी का प्रचार करने के काम चालू किये। व्याज-मुक्त ऋण देने की ट्रस्ट की योजना कितनी सफल रही इसका अन्दाज इसी बात से लगाया जा सकता है कि १९७९ के अन्त तक ट्रस्ट ने जरूरतमन्द छात्रों को जो १,५६,८०० रु० व्याज-मुक्त ऋण दिया था उसमें से १४०९२५ रु० उसके पास लौट कर आ भी गया था।

ट्रस्ट ने १९३९ में भागीरथजी के ही कारण विश्वभारती, शान्तिनिकेतन में हिन्दी भवन की स्थापना की। ३१ जनवरी, १९३९ में विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की उपस्थिति में जवाहरलाल नेहरू ने इसका उद्घाटन किया। दीनवन्धु सी० एफ० ऐण्ड्रूजने हिन्दी भवन के निर्माण में भागीरथजी की भूमिका की चर्चा करते हुए 'विशाल भारत' (जनवरी, १९४०) में लिखा : "भवन की स्थापना में भागीरथजी ने जो सहायता की है उसके लिए उन्हें पूरी तरह साधुवाद देना मेरे लिए असम्भव है। उनके बिना हम हिन्दी भवन की मौजूदा उन्नति करने में समर्थ नहीं हो सकते थे।" ट्रस्ट ने हिन्दी भवन से एक त्रैमासिक पत्रिका 'विश्वभारती' का प्रकाशन करने में भी मदद की। इसके आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी वर्षों सम्पादक रहे और इसकी हिन्दी की अत्यन्त प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में गिनती होती थी। हाल में हिन्दी भवन में अतिथि-निवास बनाने में सहायता देने के अलावा ट्रस्ट ने भवन की ओर से एक व्याख्यानमाला—हलवासिया व्याख्यानमाला और एक अनुसन्धान-प्रकाशन—हलवासिया अनुसन्धान प्रकाशन की शुरुआत की है। ट्रस्ट अब तक विश्वभारती और हिन्दी भवन को २०६०५० रु० दे चुका है।

आज से ३० साल पहले कलकत्ता विश्वविद्यालय में हिन्दी की पढ़ाई की व्यवस्था बहुत ही अपर्याप्त थी। आधुनिक भारतीय भाषाओं के अन्तर्गत ही हिन्दी पढ़ाई जाती थी और सिर्फ एक प्राध्यापक—आचार्य ललिताप्रसाद सुकुल—थे। सुकुलजी को कलकत्ता विश्वविद्यालय में हिन्दी की इस उपेक्षा से बड़ी पीड़ा थी। तब शायद विश्वविद्यालयों में हिन्दी पढ़ानेवाले हिन्दी से लगाव महसूस करते थे। झूठ, तिकड़म और चापलूसी का आज जैसा साम्राज्य स्थापित नहीं हुआ था। सुकुलजी ने अपने मित्रों से इस बात की चर्चा की कि हिन्दी राष्ट्रभाषा तो हो गयी पर कलकत्ता विश्वविद्यालय में उसका विभाग भी नहीं है। चर्चा भागीरथजी के कानों तक पहुंची। उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग खोलने के लिए हलवासिया ट्रस्ट की ओर से पूरी मदद देने की बात कही। विभाग तो नहीं खुल सका लेकिन विश्वविद्यालय में हिन्दी की चेयर की स्थापना हो गयी। इस चेयर के लिए हलवासिया ट्रस्ट ने ५९ हजार रुपए दिये। यह चेयर अभी भी कायम है और इसके अन्तर्गत हिन्दी के स्नातकोत्तर अध्ययन की व्यवस्था चल रही है। भागीरथजी के बिना इस चेयर की स्थापना की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।

भागीरथजी ने ट्रस्ट के सेवा-क्षेत्र को हरियाणा और बंगाल से बढ़ा कर अखिल भारतीय भी बनाया। ट्रस्ट ने १९४३ से लेकर १९७९ तक १०२,६३,३०३ रु० (एक करोड़ से भी ज्यादा) की सहायता की है। इसमें हरियाणा, पश्चिम बंगाल, राजस्थान, बिहार और मध्यप्रदेश में उसकी सहायता सबसे ज्यादा रही, लेकिन महाराष्ट्र ओड़िशा, दिल्ली, गुजरात, तमिलनाडु, असम, केरल, आंध्र प्रदेश, पंजाब तथा अण्डमान और मेघालय तक भी उसकी सहायता पहुंची। १९७६ में ट्रस्ट ने बदरीनाथ में ७ लाख रु० की लागत से एक धर्मशाला बनायी। यह उतराखण्ड की सर्वश्रेष्ठ धर्मशालाओं में एक मानी जाती है।

ट्रस्ट के मैनेजर गणेशमलजी वैद ने बताया कि ट्रस्ट की हर महीने दो बैठकें होती थीं—एक संचालन समिति की और एक ट्रस्टियों के बोर्ड की। भागीरथजी का

सहायता के लिए आये हुए आवेदनों पर विचार करते वक्त छोटे-छोटे आवेदनों पर बहुत ज्यादा ध्यान रहता। धीरे-धीरे बैठकों में यह होता गया कि बड़े-बड़े आवेदनों पर विचार करके ट्रस्टी लोग चले जाते और छोटे-छोटे आवेदनों पर विचार करने व फैसला करने का भार भागीरथजी पर छोड़ जाते। अन्य ट्रस्टियों के चले जाने के बाद काम सलटा कर ही भागीरथजी बैठक से उठते। मिदनापुर में हलवासिया ट्रस्ट की बहुत बड़ी जमींदारी थी। इस जमींदारी के बारे में भागीरथजी का शुरू से ही यह रुख रहा कि यह जमीन भूमिहीन किसानों को दी जानी चाहिए और सरकारी कानून बनने के पहले ट्रस्ट ने अपनी काफी जमीन एकदम सस्ती कीमतों पर भूमिहीनों को दी।

ट्रस्ट के माध्यम से भागीरथजी ने कितनी ही छोटी-छोटी संस्थाओं को ऐसी मदद की जिससे वे बाद में जाकर अपने पैरों पर खड़ी हो सकीं। उनकी ही प्रेरणा से बाढ़ और अकाल में ट्रस्ट ने राहत-कार्य करनेवाली संस्थाओं की मदद करना भी शुरू किया। १९७६ में भागीरथजी ने बड़ी ही दुखद परिस्थितियों में ट्रस्टी के पद से इस्तीफा दिया। १९७५ के जून में एमरजेन्सी लग गयी थी और ऐसे में तत्कालीन रक्षामंत्री चौधरी बंसीलाल की ट्रस्ट के कामों में अचानक 'दिलचस्पी' बढ़ गयी। रायबहादुर विश्वेश्वरलाल हलवासिया हरियाणा के निवासी थे सो चौधरी बंसीलाल ने 'हरियाणा के हित के लिए' भागीरथजी जैसे गैरहरियाणवी को ट्रस्ट से निकालने का निर्णय किया। एमरजेन्सी-राज्य था। अपील, दलील और वकील की कोई गुंजाइश नहीं थी। ट्रस्ट के अन्य ट्रस्टी चौधरी बंसीलाल के खौफ से आतंकित थे। भागीरथजी हलवासिया ट्रस्ट नहीं छोड़ना चाहते थे क्योंकि उसके माध्यम से वह सहायता का बड़ा काम कर रहे थे लेकिन अपने सहकर्मियों के डर को देख कर उन्होंने उनसे कहा : मैं किसी के कारण इस्तीफा देना नहीं चाहता लेकिन अगर आप लोग यह समझते हैं कि मेरे बने रहने से ट्रस्ट को नुकसान होगा तो मैं इस्तीफा दे दूंगा। चूंकि सभी ट्रस्टी इस राय के थे कि परिस्थितियों को देखते हुए चौधरी बंसीलाल से बैर मोल लेना उचित नहीं है, भागीरथजी ने इस्तीफा दे दिया। इस प्रकार हलवासिया ट्रस्ट से उनका ४२ वर्ष का सम्बन्ध औपचारिक रूप से समाप्त हुआ लेकिन इस्तीफा देने के बाद भी वह हलवासिया ट्रस्ट के काम में रुचि लेते रहे और उसके माध्यम से जो कुछ भी सेवा और जन-कल्याण का काम करवा सकते थे, करवाते रहे।

१२
भागीरथजी और राजस्थान

मारवाड़ी सेठों ने जब कलकत्ता और बम्बई में नये-नये रुपये कमाये तो राजस्थान के अपने गांव या कसबे में हवेलियां बनायीं और स्कूल, कालेज, अस्पताल तथा औषधालय खोले। लेकिन धीरे-धीरे ये सेठ इतने कलकतिया या बम्बइया बनते चले गये कि राजस्थान से उनका सम्पर्क नहीं के बराबर रह गया। आज उनकी बनायी गयी हवेलियों में शायद उल्लू बोलते हैं और स्कूल, कालेज, अस्पताल आदि किसी प्रकार घिसटते-घिसटते चले आ रहे हैं। इसके विपरीत भागीरथजी का राजस्थान से सम्पर्क कलकत्ता या बम्बई के सेठों जैसा कभी नहीं रहा, वह निरन्तर बना रहा और यह सम्पर्क, विशुद्ध रूप से मातृभूमि की सेवा का सम्पर्क था।

राजस्थान की राजनीति और अन्य सार्वजनिक कार्यों में भागीरथजी ने देश के आजाद होने के पहले भी भाग लिया था। प्रजामण्डल के आन्दोलन में उनके भाग लेने के बारे में पाठक पढ़ चुके हैं। आजादी के तुरन्त बाद के दिनों में जब राजस्थान का नया राज्य एकदम शैशवावस्था में था तब भागीरथजी ने राजस्थान कांग्रेस की फूट को दूर करने की भी कोशिश की थी और इसमें वह एक-दो बार सफल भी हुए थे। २३ अगस्त, १९५० की अपनी डायरी में सीतारामजी लिखते हैं: "भाई भागीरथजी आज जयपुर गये। (हीरालाल) शास्त्रीजी ने उन्हें बुलाया है। शास्त्रीजी के साथ राजस्थान की कांग्रेस का जो विवाद या झगड़ा चल रहा है उसको सेट्ल (हल) कराने के उद्देश्य से गये हैं।" इसके तीन दिन बाद सीतारामजी ने लिखा: "शास्त्रीजी और (जयनारायण) व्यासजी का समझौता हो गया।" लेकिन धीरे-धीरे भागीरथजी ने राजस्थान की राजनीति से अपने हाथ खींच लिये और जो भी मुख्यमन्त्री हुआ उसे सहयोग दिया तथा उससे राहत-कार्य करवाने की कोशिश की। शास्त्रीजी, पालीवालजी, व्यासजी, सुखाड़ियाजी, बरकतुल्लाजी, जोशीजी और भैरोंसिहजी शेखावत—सभी को उन्होंने यह सोच कर सहयोग दिया कि राजस्थान जैसे पिछड़े राज्य में सरकार की मदद के बिना राहत का कार्य भी कर पाना असम्भव है।

भागीरथजी एक संस्कारी व्यक्ति थे। राजस्थान में उन्होंने जिस तरह काम किया उससे यह लगता है कहीं उनमें यह संस्कार निरन्तर काम करता रहा कि वह तो राजस्थान छोड़ कर कलकत्ता चले आये हैं और उन्हें भौतिक सुख-सुविधाएं भी मिल गयी हैं, लेकिन राजस्थान में वह जिनको छोड़ आये हैं, वे दुख-कष्ट में रह रहे हैं। भागीरथजी को शायद कहीं बहुत गहरे ऐसा लगता था कि राजस्थान के लोगों का उन पर कोई स्थायी कर्ज है जिसे उन्हें निरन्तर चुकाते रहना है।

१९६० में मुख्यमन्त्री सुखाड़ियाजी ने भागीरथजी को कहा कि वह राजस्थान में कोई उद्योग खोलें, "अब तक आपने राजस्थान को दिया ही दिया है अब अपनी जन्मभूमि को भी आप कुछ देने का मौका दीजिये", इस पर किशनगढ़ में सूता मिल बिठाने की योजना बनी। १९६३ में इस प्रकार आदित्य मिल की स्थापना हुई। किशनगढ़ में बहुत पहले 'महाराजा मिल' के नाम से एक कपड़ा मिल चलती थी लेकिन वह बाद में बन्द हो गयी जिससे बहुत सारे मजदूर बेकार हो गये थे। आज भागीरथजी द्वारा खोली गयी आदित्य मिल में २००० से अधिक मजदूर काम कर रहे हैं और मिल के सहयोग से किशनगढ़ में ७००० से भी अधिक पावरलूम चल रहे हैं जिनसे लगभग १५००० लोगों को काम मिला हुआ है।

राजस्थान में भागीरथजी ने जो काम किये, वे ज्यादातर राहत के थे लेकिन इसके साथ ही शिक्षा-प्रसार, हरिजनोद्धार और जन-चिकित्सा सम्बन्धी काम भी उन्होंने कम नहीं किये। राजस्थान की कितनी ही शिक्षा-संस्थाओं से वह मृत्यु पर्यन्त जुड़े रहे। कुछ संस्थाओं के नाम याद आते हैं—वनस्थली विद्यापीठ, बाल मन्दिर, विद्या भवन, महिला मण्डल, राजस्थान विद्यापीठ आदि। इन संस्थाओं में वनस्थली विद्यापीठ तो आज बहुत बड़ी और भारत-विख्यात संस्था हो गयी है, लेकिन प्रारम्भ में उसका जीवन बहुत कठिनाइयों में गुजरा। आर्थिक संकट हर समय ही उपस्थित रहता था। भागीरथजी इस संस्था से प्रारम्भ से लेकर मृत्यु पर्यन्त जुड़े रहे। वनस्थली विद्यापीठ के संस्थापक हीरालालजी शास्त्री ने अपनी आत्मकथा "प्रत्यक्ष जीवन शास्त्र" में लिखा है : "कलकत्ते में सीतारामजी, भागीरथजी जैसे मित्रों का वनस्थली को बड़ा सहारा रहा। वनस्थली के १९५१ के संकटकाल में भागीरथजी कानोड़िया ने घर बैठे जो आर्थिक सहायता पहुंचायी उसे रतनजी (शास्त्रीजी की पत्नी) और मैं कभी भूल नहीं सकते। एक बार तो भागीरथजी ने बड़े भारी खतरे से हमारी रक्षा की।"

जन्म-स्थान मुकुन्दगढ़ में भागीरथजी ने अपने दादा ज़यनारायणजी द्वारा बनायी गयी पुरानी हवेली में सन् १९२० में ही कानोड़िया स्कूल खोल दिया था जिसमें उस समय मिड्ल तक की पढ़ाई की व्यवस्था थी। मुकुन्दगढ़ के आसपास के गांवों में भी उस जमाने में उन्होंने २०-२५ स्कूल खुलवाये थे। इन स्कूलों के बारे में उन्होंने इस बात का हमेशा ध्यान रखा कि ये धनाभाव के कारण कहीं बन्द न हो जांय। १९५० के दशक के प्रारम्भ में उन्होंने ग्राम-शिक्षा की एक योजना बनायी और उसके तहत गांवों में शिक्षा का प्रचार और प्रसार करने का प्रयत्न किया। १९६४-६५ में राजस्थान के मुख्यमन्त्री सुखाड़ियाजी ने एक दिन भागीरथजी को बातों ही बातों में कहा कि जयपुर में अच्छा महिला कालेज नहीं है। इस पर भागीरथजी ने अपने ज्येष्ठ पुत्र नन्दलालजी को जयपुर में महिला कालेज खोलने को कहा। इस तरह १९६७ में जयपुर में कानोड़िया महिला कालेज की स्थापना हुई। यह कालेज आज राजस्थान का सर्वश्रेष्ठ महिला कालेज माना जाता है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने भी कालेज की बड़ी प्रशंसा की है।

राजस्थान के शहरों. कसबों और गांवों में भागीरथजी की प्रेरणा और सहायता से कितने स्कूल-कालेज खोले गये, इसका कोई हिसाब नहीं। हम इतना ही कह सकते

हैं कि राजस्थान के जो भी लोग उनके पास अपने इलाके में स्कूल-कालेज आदि खोलने के बारे में सलाह और सहायता के लिए आते, उन्हें वह उत्साहित करते और तन-मन-धन से उनका साथ देते। राजस्थान की छोटी-बड़ी संस्थाओं के कार्यकर्ता प्रवासी मारवाड़ी सेठों और उद्योगपतियों से चन्दा उगाहने प्रायः कलकत्ता आते रहते। बड़े सेठों के यहां पहुंचना तक उनके लिए मुश्किल होता। ऐसे में वे भागीरथजी को पकड़ते। भागीरथजी खुद तो देते ही, दूसरों से दिलवाते और बहुत बार इन कार्यकर्ताओं के साथ चन्दा-अभियान में शामिल होकर खुद सेठों के घर-घर जाते। इस तरह उन्होंने कितना चन्दा दिया और दिलवाया, इसका भी कोई हिसाब नहीं। भागीरथजी के साथ जाने से संस्थाओं के कार्यकर्ताओं को कुछ न कुछ प्राप्त होता ही था क्योंकि उनके प्रति दाता के मन में इतना सम्मान रहता कि उसके लिए 'नटना' (नाही करना) सम्भव नहीं होता। भागीरथजी के एक परिचित ने बताया कि भागीरथजी को किसी ने सुझाया कि वह गुरुदयाल जी बरेलिया के पास जांय तो उन्हें अच्छा चन्दा मिल सकता है, इस पर वह उनके निवास-स्थान पर पहुंचे। बरेलियाजी ने कहा : "आपने तकलीफ क्यों की, मुझे बुला लिया होता।" इस पर भागीरथजी ने कहा : "दाता कन (पास) तो भिखारी न ही आनो पड़।" इसी तरह न जाने कितने ही दाताओं ने बरेलियाजी की तरह भागीरथजी के प्रति सम्मान प्रकट किया होगा। लेकिन कभी-कभी कड़ुआ अनुभव भी होता। एक बार भागीरथजी, नन्दलालजी टांटिया के साथ एक बड़े धनी के यहां श्री कल्याण-आरोग्य सदन के लिए चंदा मांगने गये। फाटक पर भागीरथजी ने दरवान से पूछा : "बाबू घर पर हैं न ?" तो दरवान ने कहा 'हां'। भागीरथजी, नन्दलालजी के साथ भव्य और शानदार ड्राइंग-रूम में जाकर बैठ गये। धनी व्यक्ति के बेटे ने, उन्हें ड्राइंग-रूम में बैठा देख कर अपने पिता को सूचित किया। थोड़ी देर बाद बेटा भागीरथजी के पास आया और प्रणाम करके बैठ गया। भागीरथजी ने उससे कहा : "तुम्हारे पिताजी से मिलना है" तो वह बोला "पिताजी तो घर पर नहीं हैं।" यह एकदम साफ जाहिर हो गया था कि 'पूज्य पिताजी' घर पर ही विराजमान थे लेकिन दर्शन देना नहीं चाहते थे। नन्दलालजी इस व्यवहार से एकदम हतप्रभ रह गये तो भागीरथजी ने उनसे कहा 'कोई बात नहीं भिखारियों के साथ ऐसा होता ही है।"

नथमलजी भुवालका ने बताया कि उनका भागीरथजी के साथ राजस्थान जाने का एक ही बार अवसर आया, "इस यात्रा में देखा, जहां भी हम जाते उनकी जान पहचान-परिचय का कोई न कोई मिल जाता। कलकत्ता में बैठ कर कोई भागीरथजी के राजस्थान से प्रगाढ़ सम्पर्क और उनके द्वारा उपकृत लोगों के बारे में कुछ नहीं जान सकता।" यह सुन कर हमें १९५८ की उस जीप-दुर्घटना की याद आयी, जब भागीरथजी जल-बोर्ड द्वारा बनाये गये कुओं को देखने मुकुन्दगढ़ से सालासर जा रहे थे। दुर्घटना के स्थान के आसपास प्राथमिक चिकित्सा की भी कोई व्यवस्था नहीं थी। उन्हें जयपुर ले जाना तय किया गया। लेकिन अवस्था इतनी खराब थी कि साथ के लोगों ने सोचा कि कहीं रास्ते में ही मृत्यु न हो जाय इसलिए कोई चिकित्सक तो रहना ही चाहिए। लोग खोज-खाज कर पास के गांव से एक वैद्य को साथ चलने के लिए ले आये। भागीरथजी लगभग बेहोश से थे। जयपुर पहुंचने पर उन्होंने अपने साथियों

से कहा : "आप जिस बेचारे वैद्य को साथ लाये हैं उसे रुपये देकर अब वापस घर जाने दीजिये।" वैद्य को इसका पता लगा तो उसने भागीरथजी से कहा : "मैं नहीं जाऊंगा और न ही रुपये लूंगा। आज भगवान ने मुझे अपना थोड़ा ऋण चुकाने का मौका दिया है तो आप उससे मुझे वंचित क्यों कर रहे हैं ?" 'वैद्य की बात पहेली सी जान पड़ी तो उसने भागीरथजी को अपना नाम बताते हुए कहा : "आपने ही छात्रवृत्ति देकर मुझे पढ़ाया है और आज आपके ही कारण रोटी कमा कर खाने लायक बन पाया हूं। यह तो आपके उपकार का थोड़ा ऋण चुकाने का मुझे भगवान ने मौका दिया है।" भागीरथजी ने कहा : "मुझे तो याद नहीं कि मैंने आपकी कभी मदद की थी।" ऐसे कितने ही लोग थे जिनकी भागीरथजी ने मदद की थी लेकिन जिनका पता दूसरों को तो क्या, भागीरथजी को खुद न था।

अकाल में राहत-कार्य

बचपन के प्रसंग में छपनिया अकाल तथा अन्य अकालों के बारे में भागीरथजी की संवेदना की पिछले पृष्ठों में चर्चा की जा चुकी है। राजस्थान में भागीरथजी के जीवनकाल में जब भी कोई अकाल पड़ा तो वह राहत-कार्य करने दौड़े-दौड़े वहां पहुंचे। सन् १९३८-३९ में राजस्थान में जब अकाल पड़ा तो वह वहां पहुंचे। इस अकाल में उनके राहत-कार्य के बारे में हमें केवल इस बात का पता लगा कि कलकत्ता में उन्होंने राजपूताना अकाल सहायक समिति गठित की थी और कई लाख रु० का चन्दा इकट्ठा किया था। सीतारामजी ने ५, नवम्बर १९३८ की अपनी डायरी में लिखा है : "भागीरथजी राजपूताना अकाल सहायक समिति में खूब लग गये हैं। उन पर भार अधिक है। ऐसा लगता है कि अपने से हो सके उतनी उनकी सहायता करना अपना कर्त्तव्य है।"

इसके बाद संवत् २००८ (१९५१-५२) में राजस्थान में अकाल पड़ा तो भागीरथजी मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी के अध्यक्ष थे। नवम्बर, १९५१ में वह सोसाइटी के मंत्री के साथ राजस्थान गये। राजस्थान में भी राहत-कार्य का एक संगठन बना—राजस्थान सेवा समिति। भागीरथजी इस समिति के भी अध्यक्ष बनाये गये। उन्होंने सारे अकाल-पीड़ित क्षेत्रों की यात्रा की और राहत-कार्य के आर्थिक पक्ष की पूरी जिम्मेवारी अपने ऊपर ली। सीकर, झुंझनू, जयपुर, जोधपुर, उदयपुर कोटा और अजमेर आदि जिलों में राहत का कार्य व्यापक रूप से किया। राहत-कार्यक्रम के अन्तर्गत अनाज, रजाई, दूध, और दवाओं आदि के वितरण के साथ लोगों को मजदूरी दिलाने तथा जलाभाव की समस्या का हल करने के लिए टैंक और तालाब खुदवाने का भी काम शुरू किया। अकाल के वक्त मवेशियों को सबसे ज्यादा कष्ट होता है। भागीरथजी ने मवेशियों के लिए चारे और दवाइयों की व्यवस्था करने पर विशेष ध्यान दिया। राजस्थान सेवा समिति ने एक लाख मन कडबी मध्यभारत, मध्य प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश से खरीदी। कई जगह सस्ती घास के डिपो भी खोले। राहत-कार्य डेढ़ वर्ष तक चला। इसमें करीब ७-८ लाख रुपये खर्च हुए।

१९५१-५२ के अकाल के बाद राजस्थान में बड़ा अकाल १९७२-७३ में पड़ा। इस समय भागीरथजी की अवस्था ७७-७८ वर्ष की थी। स्वास्थ्य भी काफी

बिगड़ चुका था पर वह पहले की तरह ही अकाल-राहत के कार्यों में जुट गये, राजस्थान भर में घूमे। परिवार के लोगों तथा परिचितों ने उन्हें बार-बार कहा कि अब आपकी उम्र नहीं रही कि पहले की तरह घूमें तो उन्होंने एक-दो बार खीझ कर कहा भी, "मेरे स्वास्थ्य की इतनी ज्यादा चिन्ता करने के बजाय अकाल-पीड़ितों की थोड़ी चिन्ता कीजिए।" राजस्थान के अकाल-पीड़ित क्षेत्रों की यात्राओं में समय निकाल कर वह जब कभी पत्र लिखते तो उसमें अकाल का ही वर्णन होता। इस समय के उनके एक पत्र का एक अंश यहां उद्धृत किया जा रहा है, जो उनकी हिन्दी और कहावतप्रियता का भी एक अच्छा उदाहरण है—"राजस्थान में अकाल की विभीषिका का पता देखने से ही लगता है। अखबारों को पढ़ने से तो कुछ पता लगता नहीं। बहुत ही भयंकर हालत है और उससे भी बुरी बात यह है कि सरकार की ओर से राहत-कार्य बहुत अल्प मात्रा में ही हो रहे हैं। स्थानीय सेठ लोगों की तरफ से भी इस बार कहीं कोई काम नहीं हो रहा है। सरकार बातें बहुत करती है, काम कुछ करती नहीं। चेजे-भाटे (सड़क, मकान निर्माण आदि) का काम न तो कसबों में है और न छोटे गांवों में क्योंकि अकाल के कारण सब लोगों को अपना-अपना जी बचाने की लगी हुई है।

"गाय के खाने का सामान—चारा-दाना तो मंहगा हुआ है और दूध-घी कुछ सस्ता। सस्ता होने का कारण यह है कि गांव का जो आदमी आधा दूध अपने बच्चों को देता था और आधा कसबे में आकर बेच जाता था वह पूरा का पूरा कसबे में बेचना चाहता है जिससे वह अपने गोधन को जीवित रख सके तथा बच्चों को रोटी दे सके। गाय-सांसरों को तो भूख आयी हुई है ही, मनुष्यों में भी भूख है। जिस गाय के दाम गये साल ९ सौ रुपया था उसका दाम आज साढ़े चार सौ है। साढ़े चार सौ में ८ किलो दूध देनेवाली दुजान-तिजान गाय मिल जाती है। अनाज के दाम, सभी चीजों के बहुत बढ़े हुए हैं, लेकिन साग-सब्जी सस्ती है। आलू ४० पैसे किलो तथा मूली दस पैसे किलो। जो मालिनें दस पैसे किलो मूली बेचती हैं—वे बाड़ीवालों से चार पैसे किलो लाती हैं। गाय-सांसर बाहर भी बहुत जा रहे हैं। सारा खाका देखे तो आदमी कांप जाय, ऐसी हालत है।

"... ..एक बात और लिखूं। पूरे-पूरे कलियुग का दर्शन होता है। सुरभि के दाम, सुरभि की पूछ घट रही है जबकि गर्दभि के दाम और पूछ बढ़ी हुई है। एक अच्छी गाय और एक अच्छी गधी की कीमत बिलकुल एक ही है। 'घोड़ा गधा एक भाव' यह कहावत तो सुनी हुई है, लेकिन गधा और गाय एक भाव की कहावत आंखों के सामने चरितार्थ हो रही है।"

इस अकाल के बारे में अपने एक लेख में भागीरथजी ने लिखा: "इस साल विक्रम सम्वत् २०२९ में जो अकाल पड़ा है वह पिछले किसी अकाल से कम नहीं है। कई लोगों का तो कहना है कि राजस्थान के अमुक-अमुक स्थानों पर छपनिये से भी ज्यादा भयावह स्थिति है। २४ जिलों में १८ जिले अभावग्रस्त घोषित हो चुके हैं। जोधपुर और बीकानेर के कुछ हिस्सों में पानी का भी भयानक संकट है।"

इस अकाल में राहत-कार्य के लिए भागीरथजी ने राजस्थान रवाना होने से पहले कलकत्ता में रामेश्वरजी टांटिया, नथमलजी भुवालका तथा कुछ अन्य लोगों की मदद से

चन्दा-अभियान चलाया। १०-१२ दिन यह अभियान चला। करीब १५ लाख रु० प्राप्त हुए। राजस्थान जाकर उन्होंने पीपुल्स वेलफेयर सोसाइटी (जन-कल्याण समिति) के माध्यम से राहत-कार्य शुरू किया। इसके लिए उन्होंने एक विशाल योजना बनायी। वह चाहते थे कि इस योजना के लिए जन-कल्याण समिति जितना खर्च करे, सरकार उससे दुगुना खर्च करे। इस बारे में उन्होंने राजस्थान के मुख्य-मन्त्री से बातचीत की तो मुख्यमन्त्री ने आना-कानी की। कारण था बदरीनारायणजी सोढाणी का समिति का मन्त्री होना। सोढाणीजी ने कभी कांग्रेस पार्टी का विरोध किया था सो मुख्यमन्त्री ने भागीरथजी से कहा : यदि आप सोढाणीजी के साथ काम करेंगे तो सरकार आपको सहायता नहीं देगी। भागीरथजी चाहते थे कि सरकार अधिक से अधिक सहयोग दे जिससे ज्यादा से ज्यादा लोगों की सहायता की जा सके, लेकिन वह सरकारी सहायता प्राप्त करने के लिए सोढाणी जैसे कर्मठ और सेवापरायण साथी को छोड़ देने को कतई तैयार न थे। उन्होंने मुख्यमन्त्री और अन्य मन्त्रियों से कई बार मुलाकात की और अन्त में उन्हें सरकारी सहायता देने के लिए राजी कर लिया।

कई कार्यक्रम सरकारी मदद से चलाये गये और कई कार्यक्रम जन-कल्याण समिति ने अकेले चलाये। इन कार्यक्रमों में प्रमुख थे :—

(१) अकाल पीड़ितों को रोजगार मुहैया करने और अनाज देने के लिए निर्माण-कार्य शुरू करना, जैसे—तालाब और कुएं खोदना, पुराने कुओं की मरम्मत करना, गांवों में स्कूलों के नए कमरे बनाना आदि। इन निर्माण-कार्यों में मजदूरी के बदले में अनाज देने की व्यवस्था की गयी।

(२) नित्योपयोगी वस्तुओं खासकर अनाज की सस्ती दुकानें खोलना।

(३) अपाहिज और असमर्थ लोगों को मुफ्त अनाज देने के साथ आर्थिक सहायता देना।

(४) अनुभवी डाक्टरों की देख-रेख में दवा का वितरण करना।

(५) सीकर, झुंझनू और चुरू जिलों के लगभग १८०० गांवों में सार्वजनिक सांडों को ६ महीने तक प्रति दिन २ किलो गुंवार प्रति सांड देने की व्यवस्था करना।

(६) पशु-पोषण केन्द्र और शिविर खोलना जिनमें गायों को सस्ती दर पर चारा उपलब्ध करने की व्यवस्था करना।

(७) कपड़ों, कम्बलों, चप्पलों और बच्चों के लिए पोषक आहार का वितरण करना।

(८) रोजगार के लिए चरखों का वितरण और कते सूत को खादी कमीशन द्वारा बेचने की व्यवस्था करना।

जाड़े की वजह से अकाल में स्थिति और भी कठिन हो गयी थी। भागीरथजी ने सोचा कि कपड़े और कम्बल खरीदने पर अगर रुपये खर्च हो जायेंगे तो अनाज बांटने का आवश्यक काम कम करना पड़ेगा। इसलिए उन्होंने अपने परिचितों को पुराने कपड़े, कम्बल, जूते आदि भेजने को कहा और ये बड़ी संख्या में जमा हुए। दवाओं की कई कम्पनियों से भागीरथजी ने दवाएं मांगी। इस तरह बिना कोई खर्च किए अकाल-पीड़ितों की कई जरूरतें पूरी करने की चेष्टा की गयी।

१९७३ के मार्च में भागीरथजी ने उदयपुर जिले के अकालग्रस्त आदिवासी इलाकों की यात्रा की। भारत माता की तिरस्कृत और सदियों से उत्पीड़ित संतानों —हरिजनों और आदिवासियों—के प्रति उनका परदुखकातर मन हमेशा ही आर्द्र रहता था। राजस्थान के अकालों में अपनी यात्राओं के दौरान उन्हें सबसे पहले यही नजर आता कि "सभी जगह हरिजनों की अवस्था अधिक शोचनीय है"। यह हमारे लिए लज्जा की बात है कि राजस्थान में हरिजनों और आदिवासियों के लिए उन्होंने जो काम किए उनकी विस्तृत जानकारी हम जुटा नहीं पाये। वह २० वर्षों तक राजस्थान हरिजन सेवक संघ के अध्यक्ष रहे और १९४७ में ठक्करवापा द्वारा भारतीय आदिम जाति सेवक संघ की स्थापना के वाद उसके १५ वर्षों तक कोषाध्यक्ष। ठक्करबापा द्वारा ही स्थापित राजस्थान के रचनात्मक कार्यकर्ताओं की एक संस्था 'राजस्थान सेवक संघ' के भी वह संस्थापक सदस्यों में एक थे। इन तीनों संस्थाओं के माध्यम से उन्होंने जो काम किया उसकी हमें जानकारी नहीं मिल पायी। वहरहाल, उदयपुर जिले के दुर्गम पर्वताचंलीय गांवों की यात्रा करते हुए उनके मन में यह बात आयी कि अकाल के वक्त गांवों के आदिवासियों को राहत पहुंचाने के लिए कोई गैरसरकारी व्यवस्था होनी ही चाहिए क्योंकि आदिवासी मुखर नहीं हैं, इसलिए उनकी तरफ सरकार का ध्यान बिल्कुल ही नहीं जाता। उदयपुर के कार्यकर्ताओं को उन्होंने आदिवासियों के बीच राहत-कार्य करने के लिए संस्था बनाने को कहा। इस तरह उनकी प्रेरणा से मार्च, १९७३ में उदयपुर में जन-कल्याण समिति की स्थापना हुई। यह समिति आज सात वर्षों से लगातार काम करती चली आ रही है।

१९७३ के अकाल में समिति ने उदयपुर जिले के आदिवासी इलाकों का सर्वेक्षण कर चार तहसीलों—सराड़ा, कोटड़ा, खेरवाड़ा और झाड़ोल—में सेवा-केन्द्र खोले और प्रति दिन ५००० खाद्य-पैकेट (प्रति व्यक्ति १७५ ग्राम चना, मूंगफ़ली, गुड़ और जौ की धानी) वांटे। उसने कुल मिला कर एक लाख बीस हजार रुपये की लागत से एक लाख ६८ हजार २५५ खाद्य-पैकेटों का वितरण करने के साथ निर्माण-कार्य में लगे अकाल-पीड़ित आदिवासी मजदूरों के पैरों को जलती धरती की आग से बचाने के लिए ३ हजार चप्पलें भी बांटीं। इस सूखाजन्य अकाल के सिर्फ ८ महीने बाद अगस्त, १९७३ में उदयपुर पर अतिवृष्टि का प्रकोप हुआ। ३७ दिन तक सूर्य के दर्शन ही नहीं हुए। गांव पानी में डूब गये। अब समिति को अतिवृष्टि से पीड़ित लोगों के बीच राहत-कार्य शुरू करना पड़ा। वस्त्र और खाद्य-पैकेट बांटने के साथ समिति को छप्पर छाने का काम भी अपने हाथों में लेना पड़ा। कलकत्ता से भागीरथजी ने आदिवासियों में बांटने के लिए ५००० वस्त्र भिजवाए।

१९७३ के राजस्थान के अकाल में भागीरथजी का मन राहत-कार्य को लेकर इतना 'आक्रांत' रहता था कि वह अपने मित्रों, पुत्र-पुत्रियों तथा अन्य सम्बन्धियों को जो पत्र लिखते उनमें उन्हें कोंचते रहते कि वे अकाल में राहत के लिए कुछ न कुछ करें। इस 'कोंच' का नतीजा भी निकला करता। मित्र रुपयों का जोगाड़ करने में और परिवार के लोग भी कुछ न कुछ करने को प्रवृत्त होते। समिति के विवरण से पता चलता है कि भागीरथजी के पुत्र अश्विनी कुमार ने बम्बई से उदयपुर के आदि-

वासियों में बांटने के लिए ३५००० क्लोरोक्विन फास्फेट की गोलियां और आदित्य मिल से १५० विटामिन के टिन भिजवाये। पुत्रवधू भारती ने राजस्थानी महिला मण्डल, बम्बई से ५००० कपड़ों की गांठें तथा १५० कम्बल भिजवाये।

१९७२-७३ के अकाल में राहत-कार्य लगभग डेढ़ वर्ष चला। इसमें करीब १६ लाख रु० खर्च हुए। ७७-७८ वर्ष की उम्र में भागीरथजी राजस्थान के रेगिस्तान में वैशाख और जेठ महीनों की भयंकर गरमी और लू में दिन-रात उबड़-खाबड़ सड़कों पर जीप में यात्रा करते। कभी-कभी तो एक दिन में ३०० मील। भादों के महीने में झुंझनू में राणीसती का मेला लगता है। इधर मारवाड़ी सेठ एक तरफ जितनी तेजी से आधुनिक हो रहे हैं, दूसरी तरफ उतनी ही तेजी से वहमी और अन्धविश्वासी भी हो रहे हैं सो राजस्थान में नित नये देवी-देवताओं का भी जन्म हो रहा है। बहरहाल, भागीरथजी को किसी ने कह दिया कि राणीसती के मेले पर देश भर से धनी मारवाड़ी सेठ इकट्ठा होते हैं और यदि आप वहां जांय तो राहत-कार्य के लिए खासे रुपये मिल सकते हैं। इस जानकारी से भागीरथजी बहुत उत्साहित हुए और तुरन्त झूंझनू पहुंचे। वहां बारिश में भींग गये। काम की धुन में उन्होंने यह नहीं सोचा कि उनकी उम्र ७८ वर्ष हो गयी है और उनका स्वास्थ्य जर्जर हो चुका है। उन्हें ठण्ड लग गयी जिसने निमोनिया का रूप ले लिया। वह बेहोश हो गये और उनकी हालत चिन्ताजनक हो गयी। काफी लम्बे इलाज के बाद वह स्वस्थ हुए और परिवार के लोगों के मना करने के बावजूद फिर राजस्थान पहुंच गये।

१९७५-७६ में राजस्थान के बीकानेर अंचल में अकाल पड़ा। इस अकाल में भी भागीरथजी ने जन-कल्याण समिति के माध्यम से राहत-कार्य किया। अकाल के वक्त शुरू किये गये निर्माण कार्यों में राजस्थान नहर के इलाके में तीस-पैंतीस हजार मजदूर काम कर रहे थे लेकिन उनके लिए अनाज तथा अन्य नित्योपयोगी वस्तुओं की दुकानें नहीं थी। भागीरथजी ने इस इलाके की यात्रा करने के बाद वहां "ना नफा ना नुकसान' के आधार पर दुकानें खुलवायीं। दूकानें चालू करने के लिए पूंजी नहीं थी तो उन्होंने तुरत ऋण प्राप्त कर पूंजी की व्यवस्था की। दुकानों ने ७२५००० रु० का अनाज और अन्य नित्यपयोगी वस्तुएं बेचीं और उन्हें सिर्फ २८००० रु० का घाटा हुआ। इन दुकानों के खुल जाने पर स्थानीय मुनाफाखोर दुकानदारों को मजबूर हो कर अपनी कीमतें घटानी पड़ीं जिससे गरीब जनता को बहुत राहत मिली।

राजस्थान जल-बोर्ड

राजस्थान में भागीरथजी ने जो काम किये उनमें 'राजस्थान जल-बोर्ड' का काम विशेष महत्व का है। उनके इस काम को निश्चय ही बहुत दिनों तक याद किया जायेगा। पीने के पानी का संकट जिस तरह राजस्थान में है उस तरह देश के अन्य किसी राज्य में नहीं। भागीरथजी इस संकट को स्थायी रूप से दूर करने की बात हमेशा सोचते रहते थे। उन्होंने राजस्थान के मुख्यमन्त्री से इस सम्बन्ध में बातचीत की। मुख्यमन्त्री उनको सहयोग तो देना चाहते थे पर किस तरह दें, यह समझ नहीं पा रहे थे—कुएं खोदने का काम कैसे हो, किसके द्वारा हो, किसको यश मिले—ये सब प्रश्न

उनके सामने थे। एक वर्ष की माथापच्ची के बाद राजस्थान सरकार ने 'राजस्थान जल-बोर्ड' नाम से एक स्वायत्त बोर्ड की स्थापना की मंजूरी दी। १९५५ में यह बोर्ड विधिवत् गठित हुआ। मुख्यमन्त्री इसके अध्यक्ष, भागीरथजी मन्त्री और बदरीनारायणजी सोढाणी संयुक्त मन्त्री बनाये गये।

जल-बोर्ड के मन्त्री के रूप में भागीरथजी ने राजस्थान के गांवों में घूम कर यह देखा कि किस प्रकार काम किया जाय ताकि ज्यादा से ज्यादा लोगों को लाभ पहुंचे। कुंए खोदने का काम शुरू करने के पहले हजारों गांवों में सर्वेक्षण किया गया। जिलों की हर तहसील में जल-बोर्ड की कमेटी बनायी गयी। बोर्ड की ओर से प्रत्येक जिला कमेटी को एक जीप दी गयी। सर्वेक्षण कर यह पता लगाया गया कि--(१) इलाकों में कितनी आबादी के पीछे पीने के पानी की व्यवस्था है (२) भू-वैज्ञानिक और भौगोलिक स्थिति के आधार पर कुआं, बोरिंग और बरसात का पानी इकट्ठा करने के लिए कुण्ड, इन तीनों में किसका निर्माण अधिक फलदायक तथा कम खर्च में हो सकेगा।

भागीरथजी ने अपनी बनिया-बुद्धि से यह हिसाब भी लगाया कि एक नया कुआं बनाने में जितना खर्च, परिश्रम और समय लगेगा, उतने में तीन से पांच पुराने व बेकार पड़े हुए कुओं को मरम्मत कर उपयोगी बनाया जा सकता है। दूसरे, इन पुराने और बेकार कुओं की मरम्मत करने पर यह तो पता रहेगा ही पानी मिलेगा जब कि नये कुएं खोदने के वक्त इस बात की कोई गारण्टी नहीं रहेगी कि पानी मिलेगा ही। इसलिए मरम्मत करने योग्य कुओं की मरम्मत करवायी गयी और जहां दूर-दूर तक पानी की कोई व्यवस्था नहीं थी, वहां नये कुएं, तालाब, बोरिंग और बरसात का पानी इकट्ठा करने के लिए कुण्ड (इन्हें टांके कहा जाता है और इनमें बरसात का पानी पीने के लिए ६ महीने तक सुरक्षित रखा जा सकता है) बनाये गये।

कुएं खोदने के काम में स्थानीय लोगों की अधिक से अधिक हिस्सेदारी रहे, इसके लिए यह तजवीज की गयी कि कुआं खोदने का एक तिहाई खर्च कुएं के स्थान से जुटाया जाय और दो-तिहाई खर्च जल-बोर्ड दे। कुएं के स्थान पर एक तिहाई खर्च न जुटने पर भागीरथजी उसे चन्दे से प्राप्त रकम द्वारा पूरा करते। रामेश्वरजी टांटिया, नन्दलालजी भुवालका, गोबरधनदासजी बिन्नानी और मातादीनजी खेतान की मदद से इस काम के लिए उन्होंने एक कोष भी बनाया।

जल-बोर्ड के काम से ३३००० गांव लाभान्वित हुए। एक वर्ष के भीतर (१९५५-५६) १०५०० नये कुएं बनाये गये और २५०० पुराने कुओं व तालाबों की मरम्मत की गयी।. कुण्ड (टांके) भी हजारों की संख्या में बनाये गये।

इस वृहत् कार्य में सीमेंट के साढ़े पांच लाख बोरे लगे और कुल खर्च लगभग दो करोड़ रु० आया। सवा करोड़ सरकार ने दिये, ५२ लाख स्थानीय लोगों ने श्रम-दान तथा चूना व ईंट आदि के रूप में दिये और बाकी के रुपये प्रवासी राजस्थानियों से चन्दे द्वारा एकत्र किये किये। ठीक दामों पर कुएं बनाने का सामान जुटाने और खर्च का पूरा हिसाब-किताब रखने का पूरा काम स्वयं भागीरथजी ने किया।

बोर्ड का ज्यादा काम बीकानेर, जोधपुर, कोटा, बून्दी और सीकर के ग्रामीण क्षेत्रों में हुआ। जैसलमेर में भी बोर्ड ने काम करने की बड़ी चेष्टा की लेकिन पानी के

बहुत नीचे होने के कारण वह वहां ज्यादा काम नहीं कर पाया। बीकानेर के एक गांव में ५०० फुट नीचे पानी निकला तो कुएं के स्थान पर एक महीना मेला लगा रहा। भाग्यवश वहां पानी भी खूब मीठा निकला।

मातादीनजी खेतान ने, जो जल-बोर्ड के काम में भागीरथजी के साथ रहे थे, कहा : "भागीरथजी ने कितना बड़ा काम किया और उसके कितने दूरगामी नतीजे निकले, इसकी सहज ही कल्पना नहीं की जा सकती। १९५५-५६ में जल-बोर्ड द्वारा कुएं खोदने के साथ राजस्थान के झुंझनू और सीकर जिलों में तो 'कुआं क्रान्ति' ही हो गयी। लोग यह जान गये कि वे मिल कर थोड़ा प्रयत्न करने पर अपने गांव में कुएं बना सकते हैं। १९६८-७२ में जल-बोर्ड के संयुक्त मंत्री बदरीनारायणजी सोढाणी ने भागीरथजी की प्रेरणा से कुओं का क्षेत्र पीने के पानी से बढ़ा कर कृषि तक ले जाने का काम किया। विदेशी संस्था 'कासा' की मदद से इस दौरान १००० नल-कूप बनाये गये। १९५५ में जल-बोर्ड द्वारा कुएं बनाना प्रारम्भ करने के बाद से आज तक यानी लगभग २५ वर्ष के भीतर सीकर और झुंझनू जिलों में ५३ हजार कुएं और नल-कूप बने हैं जिनमें २९ हजार को तो बिजली भी मिल गयी है।"

जल-बोर्ड के काम के बारे में लोगों का कहना है कि उसने राजस्थान में पीने के पानी के संकट को दूर करने की जैसी ईमानदार और जोरदार कोशिश की, वैसी कोशिश पहले कभी नहीं हुई थी। इस मायने में भागीरथजी ने अपने को राजस्थान का सच्चा भगीरथ प्रमाणित किया।

श्री कल्याण आरोग्य सदन

भागीरथजी अपने अंतिम दिनों में श्री कल्याण आरोग्य सदन को ले कर ही सबसे ज्यादा चिंतित रहते थे कि उनके चले जाने के बाद कहीं संस्था का काम ढीला न पड़ जाय। अपने जीवन में उन्हें पहली बार यह एहसास हुआ कि जिस तरह उन्होंने संस्था के लिए साधन जुटाये, शायद उस तरह आगे कोई नहीं जुटायेगा। इसलिए वह इस बात के लिए प्रयत्नशील थे कि उनके जीवन-काल में ही संस्था के भविष्य में सुचारू रूप से चलते रहने की कोई स्थायी व्यवस्था हो जाय। मृत्यु के बाद भी कम से कम सदन के माध्यम से वह एक सेवा-कार्य करते रहें, यह उनके मन की वासना जरूर थी।

श्री कल्याण आरोग्य सदन की कल्पना आज से ३१-३२ साल पहले की है। १९४९-५० में बदरीनारायणजी सोढाणी शेखावटी में क्षय-रोगियों के लिए एक अस्पताल खोलने की योजना लेकर कलकत्ता आये थे। उनके साथ शेखावाटी में प्रजामंडल-आंदोलन के नेता लादूरामजी जोशी भी थे। इन दोनों ने भागीरथजी से बातचीत की। भागीरथजी को योजना पसंद आयी। उन्होंने तुरंत लोगों से सम्पर्क किया और पांच-सात लाख रु० के आश्वासन भी प्राप्त कर लिये। लेकिन योजना आगे नहीं बढ़ पायी तो सोढाणीजी ने सीकर में सरजिकल कैम्प लगाने शुरू कर दिये। इन कैम्पों में बहुत रोगी आते थे, जिनमें क्षय-रोगियों की संख्या काफी होती थी। यह स्थिति क्षय-रोगियों का अस्पताल खोलने की योजना को उकसाती रहती थी। जल-बोर्ड ने स्व० जमनालालजी

बजाज के जन्म स्थान सांवली गांव में एक कुआं बनाया था। कुएं के पास ही सीकर के राव राजा कल्याणसिंह का ग्रीष्म-महल और बगीचा था। कल्याणसिंहजी ने अस्पताल खोलने के लिए अपना ग्रीष्म-महल और बगीचा दे दिया। इस प्रकार सन् १९६० में इस बगीचे में श्री कल्याण आरोग्य सदन की नींव रखी गयी और १५ नवम्बर, १९६४ को प्रधानमंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री ने इसका उद्घाटन किया। उस वक्त अस्पताल में २० शय्याएं थीं। १९६८ में कुछ अमरीकी आरोग्य सदन को देखने आये और उसके काम से अत्यन्त प्रभावित हुए। इन अमरीकियों के प्रयत्न से 'कासा' ने सदन के आस-पास के इलाके में कृषि-विकास के लिए 'फूड फार वर्क (श्रम के बदले अन्न)' योजना के अन्तर्गत गेहूं और सोयाबीन तेल के रूप में किस्तों में डेढ़ करोड़ रुपये की सहायता देना प्रारम्भ किया। इसके बाद इंग्लैण्ड की एक संस्था ने भी १६ लाख रु० की सहायता दी

विदेशी मदद से अस्पताल के अहाते में उबड़-खावड़ जमीन को समतल करके बाग-बगीचे, सड़क, सिंचाई के लिए कुएं और कुओं पर पम्प आदि बनाये गये। धीरे-धीरे अस्पताल भी बढ़ता गया और विदेशी सहायता से चारों ओर का निर्माण-कार्य भी। साथ ही जन-कल्याण के अन्य कार्य भी होने लगे। लेकिन १९७० के आस-पास आरोग्य सदन में एक विषम समस्या पैदा हो गयी। कार्यकर्ताओं के बीच मतभेद लगातार बढ़ने लगा, यहां तक बदरीनारायणजी सोढाणी सदन के काम से अलग होना चाहने लगे। इसके अलावा संस्था पर कर्ज भी बहुत चढ़ गया था। ऐसा लगने लगा कि अब यह अस्पताल आगे नहीं चल पायेगा। ऐसे में भागीरथजी से अनुरोध किया गया कि वह संस्था को संभालें। यह अक्सर देखा गया है कि जब कोई संस्था संकटापन्न हुई तो उसे बचाने के लिए लोग भागीरथजी की शरण में गये। सीतारामजी की डायरियों से पता चलता है कि कलकत्ता के मारवाड़ी सामाजिक-राजनीतिक कार्य-कर्त्ताओं की मित्र-मण्डली में किसी काम को लेकर विवाद या परेशानी पैदा होने पर भागीरथजी को बीच में डाल दिया जाता था और यह सोचा जाता था कि उनके रहने मात्र से ही विवाद हल हो जायेंगे। इस विवाद में भागीरथजी ने इस शर्त्त पर काम संभालना स्वीकार किया कि सोढाणीजी कल्याण आरोग्य सदन के मंत्री बने रहेंगे।

दिसम्बर, १९७१ में जब भागीरथजी कल्याण आरोग्य सदन के अध्यक्ष बने तब अस्पताल में १०० रोगियों को रखने की व्यवस्था थी और ऊपर से उस पर ढेर सारा कर्ज था। आहिस्ते-आहिस्ते उन्होंने अस्पताल को इतना बढ़ाया कि उसमें आज लगभग चार सौ रोगी रखने की व्यवस्था है। एक-एक चारपाई (रोगी की व्यवस्था) के खर्च का उन्होंने इन्तजाम किया। वह साल में तीन बार राजस्थान जाते और सीकर में रह कर अस्पताल का काम-काज देखते। ३-४ वर्ष के भीतर ही सदन का काम बहुत बढ़ गया और सालाना बजट २३ लाख रु० तक पहुंच गया। भागीरथजी ने इतने बड़े बजट की व्यवस्था बड़े परिश्रम और धैर्य के साथ की। १९७८ में रुपया इकट्ठा करने और डाक्टरों की व्यवस्था करने के लिए वह कुछ दिन बम्बई जाकर भी रहे। धनी-मानी लोगों से सम्पर्क कर उन्होंने बम्बई में दस लाख रु० इकट्ठा किया। मातादीनजी खेतान ने बताया कि उन्होंने भागीरथजी को एक-एक चारपाई का खर्च जुटाने में अत्यधिक मेहनत करते हुए

देख कर एक बार उनसे कहा कि आप इतनी मेहनत करते हैं, यह अच्छा नहीं है तो वह वोले : "मेर तो वड़ो आलम हो गयो, 'मेहनत करूं हूं कि नहीं करूं हूं' पतो ही कोनी चाल।"

कलकत्ता में रहते हुए भी भागीरथजी आरोग्य सदन के दैनन्दिन के कामकाज से नियमित पत्र-व्यवहार द्वारा बराबर सम्पर्क रखते। अस्पताल में भरती के लिए रोगी भेजते, अस्पताल के कर्मचारियों की समस्याओं को हल करते और जरूरी निर्देश भेजते। उनकी देख-रेख में श्री कल्याण आरोग्य सदन का कर्ज ही नहीं चुका, वह देश के क्षय रोग के सबसे अच्छे अस्पतालों में भी गिना जाने लगा।

भागीरथजी ने श्री कल्याण आरोग्य सदन को एक कम्युनिटी सेंटर (समाज-कल्याण-केन्द्र) का रूप भी देने की कोशिश की। हमारे देश में श्री क०आ० सदन को छोड़ कर कोई भी अस्पताल ऐसा नहीं है जिसमें एक ही साथ गोशाला, धर्मशाला, पुस्तकालय-वाचनालय, वाटर वर्क्स, प्राथमिक विद्यालय, मंदिर, तरण-ताल, नहर और बगीचा हो। सदन की इन सुविधाओं से सिर्फ रोगी ही नहीं अन्य लोग भी फायदा उठाते हैं।

सदन की १९७८-७९ की परिचय-पुस्तिका में भागीरथजी ने लिखा था : "अस्पताल में रोगियों की सेवा के अलावा गो-संवर्धन का भी काम होता है। गायों को डाक्टर की सलाह से संतुलित आहार दिया जाता है। उनके पीने का पानी शुद्ध और स्वच्छ एवं रहने का स्थान स्वच्छ, हवादार और प्रकाशवाला है। हमारे पास गायें अधिकतर राढ़ी नस्ल की हैं। उनकी बच्छड़ियां किसानों के यहां ३५-३६ महीनों (की उम्र) में गाभिन होती थीं। हमारे यहां अनुकूल आहार और अच्छी सेवा मिलने से यह अवधि २५ महीने की रह गयी है। मुझे आशा है कि अगले तीन वर्षों में हमारे यहां जो बाछियां हैं, वे १८ महीने की उम्र में गाभिन होने लग जायेंगी।"

सदन में गो-संवर्धन के साथ खेती और बागवानी भी होती है। परिचय-पुस्तिका में भागीरथजी आगे लिखते हैं : "यहां खेती और वागवानी भी सुधरे तरीकों से की जाती है। परिणामस्वरूप हमारी आवश्यकता के अन्न का एक अच्छा हिस्सा हम यहां उपजा लेते हैं। मौसम के दिनों में फल यहां पर अच्छी तादाद में और अच्छी जाति के होते हैं। पाठकों को यह जान कर ताज्जुब होगा कि फलों में अनार, अंजीर, अंगूर, आम, अमरूद, शहतूत आदि काफी चीजें होती हैं। अमरूद तो मौसम के दिनों में ढाई-तीन मन रोज होते हैं। यहां के बगीचे के फूलों की गुंथी हुई मालाएं बीकानेर तक के बाजार में बिकने जाती हैं। मोगरा फूलने के दिनों में यहां पर सदा दो मन फूल मोगरे के हर दिन उतरते हैं।"

सदन में शैयाएं तीन प्रकार की हैं (१) जिनका सरकार खर्च देती है (२) जिनका खर्च दाताओं से प्राप्त रकम पर चलता है (३) जिनका रोगी स्वयं खर्च वहन करते हैं। नं. १ और नं. २ प्रकार की शैयाएं निः शुल्क हैं। राजस्थान सरकार के खर्च पर चलनेवाली शैयाएं ५० और दाताओं के खर्च पर चलनेवाली २५० हैं।

सदन में स्व० रामेश्वरजी टांटिया की स्मृति में उनके पुत्र नन्दलालजी टांटिया के १० लाख रु० के अनुदान से आयुर्विज्ञान अनुसंधान केन्द्र खोला गया है। इसके अलावा आउटडोर विभाग के लिए एक अलग भवन भी राधाकृष्णजी कानोड़िया के तीन

लाख रु० के अनुदान से निर्मित किया गया है। सदन की ओर से दो होमियोपैथिक चिकित्सालय भी चल रहे हैं, एक सीकर में और दूसरा कलकत्ता में।

सदन में क्षय की आधुनिकतम चिकित्सा की व्यवस्था है। सदन को छोड़कर राजस्थान के किसी भी अन्य टी० बी० अस्पताल में चेस्ट-सर्जरी की व्यवस्था नहीं है। क्षय की शल्य चिकित्सा के अलावा सदन में अन्य रोगों की भी शल्य-चिकित्सा की जाती है। सामान्यतः क्षय के रोगी सदन में चार महीना इलाज होने पर रोग-मुक्त हो जाते हैं। लेकिन क्षय के रोग का असली इलाज तो गरीबी को दूर करना है। सदन की १९७८-७९ की परिचय-पुस्तिका में एक जगह भागीरथजी ने लिखा था : "टी० बी० के रोगियों की असली सेवा तो समाज में फैली हुई गरीवी और बेरोजगारी को मिटाना है लेकिन यह काम अपने वश का नहीं है। चिकित्सा और उपचार द्वारा जितनी सेवा बन सकती है, उतनी करने का प्रयत्न रहता है।"

यह कहा जा सकता है कि श्री कल्याण आरोग्य सदन देश के सर्वश्रेष्ठ सार्वजनिक क्षय चिकित्सालयों में एक है। बाहर से जो भी लोग सदन को देखने आये, वे इतना आधुनिक और सर्वसुविधा-सम्पन्न अस्पताल देख कर चमत्कृत हुए। लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने १९७० में सदन का निरीक्षण किया। इस वक्त उसकी हालत वहुत अच्छी नहीं थी और आज जैसी वहुत सी सुविधाएं भी न थीं। लेकिन जे० पी० उसके निर्माण के पीछे की भावना से बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने सदन की अतिथि-पुस्तिका में लिखा : "इस रेगिस्तानी इलाके में ऐसा हरा-भरा और सुन्दर उद्यान और क्यारियां देख कर आश्चर्य हुआ। और इससे कम आश्चर्य इस वात पर नहीं हुआ कि सैंकड़ों (अर्थात वहुत कम रुपयों से) रुपये से प्रारम्भ किया हुआ यह आरोग्य कल्याण (श्री कल्याण आरोग्य सदन) अब इतना बड़ा और साधन-सम्पन्न टी० बी० चिकित्सालय बन गया है। धन्य हैं इसके निर्माता श्री बदरीनारायणजी सोडाणी। सोढाणीजी ने सिद्ध कर दिया कि तप और त्याग से क्या नहीं सम्भव हो सकता।"

भूतपूर्व प्रधानमन्त्री मोरारजी देसाई ने सदन को देख कर लिखा : "यह सेनेटोरियम टी० बी० के मरीजों के लिए आशीर्वाद बन गया है। जिस उत्साह से कार्यकर्ता काम कर रहे हैं, उससे विश्वास होता है कि इस संस्था के लिए जितना धन चाहिए उतना मिल जायेगा और इसका पूरा विकास होता रहेगा।" हाल में पश्चिम बंगाल के मुख्यमन्त्री श्री ज्योति बसु ने भी सदन को देख कर लिखा : "यहां आ कर ऐसा लगा कि मरुस्थल मुस्कुरा रहा है। सेनोटोरियम की व्यवस्था बहुत अच्छी है। हमने यहां पाया कि बहुत से स्थानों के मरीज आ कर अपना इलाज कराते हैं।"

जन-कल्याण समिति

राजस्थान में राहत-कार्य करते हुए भागीरथजी को उसकी अपर्याप्तता का एहसास हमेशा रहता था। राजस्थान के १९५१-५२ के अकाल के वक्त 'नया समाज' में उन्होंने एक लेख (फरवरी, १९५२) में लिखा था : "राहत-कार्य करनेवाला केवल अपने मन में संतोष कर लेता है, वरना आज की स्थिति में जब तक कोई आमूल परिवर्तन नहीं होता तब तक छिटपुट सेवा के कार्यों से बहुत बड़ी सहायता क्या मिल सकती है ?

दरअसल प्रयत्न तो यह होना चाहिए कि न अकाल पड़े और न महामारी फैले, सारे लोगों को धंधा-रोजगार मिल सके और परिश्रमपूर्वक हर व्यक्ति अपनी रोटी का अच्छी तरह उपार्जन कर सके। न किसी को मांगने की जरूरत रहे, न देने की—सर्वे लोका सुखिनो भवन्तु सर्वे सन्तुष्टिमया।"

इसके वीस वर्ष बाद राजस्थान के १९७२-७३ के अकाल के वक्त उन्होंने (चौरंगी वार्ता. ५ फरवरी, १९७३) लिखा : 'राहत-कार्य अकाल का स्थायी उपचार नहीं। नारद ने युधिष्ठिर से पूछा था "हे युधिष्ठिर, तुम्हारे राज्य में खेती वर्षा पर तो निर्भर नहीं ?' युधिष्ठिर ने जवाब दिया 'मेरे राज्य में खेती वर्षा पर निर्भर नहीं। हमारे देश में युधिष्ठिर के राज्य जैसी स्थिति आये तब अकाल नहीं पड़ेंगे लेकिन...... राजस्थान में आज राहत की तात्कालिक आवश्यकता के साथ-साथ इस बात की भी जरूरत है कि अधिक से अधिक सिचाई के कुएं बनाये जायं। विना विद्युत सिंचाई के बैलों या ऊंटों से यह काम पार पड़नेवाला नहीं है।"

अकाल में राहत-कार्य करते हुए भागीरथजी के मन में विकास के ऐसे कार्य करने की इच्छा जोर पकड़ती रहती थी, जिनके द्वारा अकाल का "स्थायी उपचार" हो सके। इसके लिए वह एक ऐसे स्थायी संगठन की आवश्यकता महसूस कर रहे थे, जो सामान्य अवस्था में कृषि-विकास और रोजगार-निर्माण का काम करता रहे और अकाल पड़ने पर तत्काल राहत के काम में जुट जाय। श्री कल्याण आरोग्य सदन के नाम से टी० बी० अस्पताल १९६४ से ही चल रहा था। बाद के वर्षों में सदन ने कृषि-विकास का कार्य भी हाथ में ले लिया और अन्य बहुमुखी निर्माण-कार्य भी प्रारम्भ किये। १९७१ में भागीरथजी द्वारा सदन का काम सम्भालने के बाद अस्पताल बहुत तेजी से बढ़ने लगा। अस्पताल का काम, कृषि विकास तथा अन्य बहुमुखी निर्माण कार्य एक साथ एक ही संस्था के तहत करना कठिन मालूम होने लगा तो एक ऐसी अलग संस्था बनाने की बात सोची जाने लगी जो कृषि-विकास के साथ रोजगार-निर्माण के अन्य रचनात्मक काम भी करे। इस तरह १९७२ में पीपुल्स वेलफेयर सोसाइटी या जन-कल्याण समिति की स्थापना हुई। समिति के भागीरथजी अध्यक्ष और वदरीनायणजी सोढाणी मंत्री बनाये गये। समिति का मुख्य कार्यालय उदयपुर रोड, सीकर में कायम किया गया। इस समिति के माध्यम से भागीरथजी ने बड़े पैमाने पर अकाल के स्थायी उपचार करनेवाले काम करने का सपना देखा।

जन-कल्याण समिति की स्थापना करने में भागीरथजी के मन में शायद दो और बातें भी काम कर रही थीं। जल-बोर्ड का काम करने के बाद उनको कहीं यह लगने लगा था कि अगर स्थानीय रूप से कोई कार्य (कूप-निर्माण, स्कूल-निर्माण, वृद्धों और असहाय लोगों के लिए पेंशन-व्यवस्था, खादी विकास आदि) शुरू किया जाय और उसके लिए पहले गैरसरकारी प्रयत्नों से कुछ पैसों का जोगाड़ कर लिया जाय तो सरकार को उस काम में मदद करने के लिए वाध्य किया जा सकता है। दूसरे, विदेशी संस्थाओं से भी मदद प्राप्त की जा सकती है। लेकिन इसके लिए यह भी आवश्यक होगा कि स्थानीय लोग पहले उद्यम करें। अगर राजस्थान भर में जन-कल्याण समिति की शाखाएं खुल जांय या स्थानीय संगठन उसकी एजेन्सियों के रूप में काम करें तो

राजस्थान में बहुत बड़ा काम किया जा सकता है। वह सोचते थे कि सरकारी और विदेशी सहायता प्राप्त करने के लिए पहले रुपयों का जो जोगाड़ आवश्यक होगा, वह जन-कल्याण समिति या उसकी एजेन्सियां कर पायेंगी। शायद यह भी सोचते थे कि जिस तरह उन्होंने पिछले चालीस-पचास वर्षों से राजस्थान में राहत-कार्यों और जल-बोर्ड आदि के काम के लिए रुपयों का जोगाड़ किया था उसी तरह आगे भी करते रहेंगे, कर लेंगे। कहने का मतलब यह है कि भागीरथजी जैसे व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा-शून्य व्यक्ति में शायद जन-कल्याण समिति के माध्यम से बहुत बड़े पैमाने पर राहत, विकास तथा कल्याण कार्य करने की बहुत बड़ी महत्वाकांक्षा जगी थी।

समिति की स्थापना के कुछ ही महीनों बाद राजस्थान में भयंकर अकाल पड़ा जिसके कारण उसे तत्काल राहत के कार्य में जुट जाना पड़ा। इस अकाल में समिति ने बहुत बड़े पैमाने पर राहत-कार्य किया। दो वर्ष बाद १९७५-७६ में बीकानेर में अकाल पड़ा तो समिति ने वहां भी राहत-कार्य किया। समिति का मुख्य कार्य तो अकाल का 'स्थायी उपचार' अर्थात् कृषि-विकास और रोजगार-निर्माण करना है। कृषि-विकास और रोजगार-निर्माण के कार्यों के लिए भागीरथजी ने कई प्रकार के रचनात्मक कार्यक्रम बनाये।

जन-कल्याण समिति के काम में यदि हम श्री कल्याण आरोग्य सदन द्वारा १९६६ में शुरू किये गये कृषि-विकास के कार्य को भी जोड़ लें तो कहना होगा कि समिति ने १९७८ तक १२ वर्ष की अवधि में राजस्थान के लगभग ८०० गांवों में १६०० से अधिक सिंचाई के कुएं और ९०० पीने के पानी के कुएं बनाये। इनके अलावा उसने पीने के पानी के ७५ सार्वजनिक टैंक बनाने के साथ ३०० पुराने और अधूरे कुओं को भी गहरा करवाया और उनकी मरम्मत करवायी। समिति के काम का राज्य सरकार पर यह दबाव पड़ा कि एक स्वयंसेवी संस्था जब इतना काम कर रही है और वह कुछ नहीं कर रही तो उसे निकम्मी बतानेवालों की संख्या और भी बढ़ जायगी, सो उसने भी कुओं के निर्माण में सहायता देनी शुरू की। इसका नतीजा यह हुआ कि सरकार की मदद से राजस्थान में २५००० कुएं बनाये गये।

समिति ने एक समग्र ग्राम-विकास योजना बनायी। इस योजना के तहत उसने किसानों को ७-८ किस्तों में आसानी से चुकाये जानेवाले ब्याज-मुक्त ऋण दिलवाने का कार्यक्रम चलाया। इस कार्यक्रम में सिंचाई के लिए कुएं बनाने तथा पम्पिंग सेट लगाने के वास्ते गरीब किसानों को कुल खर्च का एक तिहाई बैंकों से उधार दिलवाने का कार्य किया गया। बाकी खर्च के लिए समिति ने सामान तथा अनुदान की व्यवस्था की। समिति ने टाटा और किर्लोस्कर जैसे फर्मों के पम्पिंग सेट लगवाये तो इन फर्मों से उनकी सरविसिंग और मरम्मत का प्रबन्ध भी करवाया।

समग्र ग्राम विकास योजना के तहत समिति ने तरह तरह के कार्यक्रम चालू किये—कृत्रिम और प्राकृतिक खाद की व्यवस्था की, कम्पोस्ट-पिट, गोबर-गैस प्लांट बनाये, अच्छे किस्म के बीज सस्ती कीमतों पर उपलब्ध करवाये, पशु-नस्ल सुधार के लिए अच्छी नस्ल के सांडों की व्यवस्था की तथा कुओं पर बाल बियरिंगवाले पहिये लगवाये ताकि पानी निकालने में बैलों और आदमियों को कम श्रम करना पड़े।

हमारे देश का पुरुष तो स्त्री के प्रति इतना सम्वेदनहीन है कि उसे उसकी तकलीफों का खयाल भी नहीं आता। पाखाने की व्यवस्था न होने और चूल्हे के धुएं से स्त्रियों को कितनी तकलीफ होती है, यह दिल्ली की शानदार इमारतों में बैठ कर योजनाएं बनानेवाले लोग कभी नहीं सोचते। भागीरथजी को ग्राम विकास की योजना बनाते वक्त अपने सम्वेदनशील स्वभाव के कारण स्त्रियों की तकलीफों का हमेशा ध्यान आता रहता था। विकास-योजना के तहत उन्होंने गांवों में ट्रेंच पाइपवाले शौचालय बनाये, घरों में निर्धूम चूल्हे लगवाये और परिवार-नियोजन के कार्यक्रम शुरू किये। गांवों में स्त्रियों को घर बैठे रोजगार प्राप्त हो, इसके लिए उन्होंने समिति की ओर से सिलाई की मशीनें भी बंटवायीं।

शहरों में तो आधुनिकीकरण के चलते कुछ सार्वजनिक-सेवाएं शुरू हुई हैं पर गांवों में ऐसी सेवाओं का एकदम अभाव है। गांवों में किसी प्रकार का उपभोक्ता-आन्दोलन भी नहीं है जिससे गांवों की छोटी-छोटी दुकानों में साबुन, तेल आदि जैसी चीजें यदि मिलती हैं तो शहरों की अपेक्षा ज्यादा महंगी मिलती हैं। इसलिए समिति ने गांवों में—"ना नफा, ना नुकसान" आधार पर उचित मूल्य की दुकानें खुलवायीं। इसके साथ ही समिति ने पशुओं के पीने के लिए गांवों में स्वच्छ पानी के हौज और चारे की व्यवस्था की और प्यासे लोगों के लिए गरमियों के दिनों में प्याऊ लगवाये।

बेरोजगार व्यक्तियों को रोजगार उपलब्ध करने के लिए समिति ने कताई-बुनाई केन्द्र खोले। इनमें अम्बर चरखे और करघे बांटे गये। तैयार खादी की बिक्री की भी व्यवस्था की गयी। एक कताई-बुनाई केन्द्र से करीब २५० लोगों को रोजगार उपलब्ध हो जाता है। पोकरण में भागीरथजी ने ५००० रु० देकर ऊनी खादी का एक उत्पादन केन्द्र खुलवाया। इस केन्द्र में आज १० लाख रुपये प्रति वर्ष की ऊनी खादी बन रही है और साढ़े चार सौ लोगों को पूर्ण और आंशिक रोजगार प्राप्त हो रहा है।

समिति ने जन-कल्याण के और जो काम किये हैं, उनमें (१) छात्रावासों में रहनेवाले हरिजन और आदिवासी छात्रों के लिए अतिरिक्त पोषक आहार की व्यवस्था करने (२) गांवों में स्कूलों के टूटे मकानों की मरम्मत करने (३) एकदम गरीब व्यक्तियों को कपड़ा और अनाज देने (४) भग्न मन्दिरों का जीर्णोद्धार करने (५) सरजिकल कैम्प लगाने और (६) जाड़ों में रजाइयां वितरित करने आदि के काम विशेष उल्लेखयोग्य हैं।

समिति ने अपाहिज और निराश्रित वृद्ध लोगों को आजीवन पेंशन दिलवाने का बहुत बड़ा काम किया। १९७४ में भागीरथजी ने इस काम को बड़ी मेहनत से किया। राजस्थान से अपने परिवार के लोगों और मित्रों को उन दिनों भागीरथजी पत्र लिखते तो उनमें इस काम की हमेशा चर्चा रहती थी। २१ फरवरी, १९७४ की डायरी में सीतारामजी लिखते है :—"भाई भागीरथजी का पत्र आया है। आर्त्त की सेवा और सहायता का काम उनको बहुत रुचता है और इस काम को वह जितना अच्छा और अधिक कर सकते हैं वैसा कोई दूसरा आदमी कर सके उसको मैं नहीं जानता। मेरी निगाह में आर्त्त और अभावग्रस्त लोगों की सेवा-सहायता का काम भागीरथजी तन-मन-धन से अद्भुत लगन के साथ करते हैं। राजस्थान में तीन हजार ऐसे आदमियों को जो वृद्ध, अपाहिज और जिनको देखने-सम्भालनेवाला कोई नहीं है, चालीस रुपये महीना

सरकार पेंशन देती है। भागीरथजी प्रयत्न कर रहे हैं कि और तीन हजार आदमियों को, उनकी फोटो, ठिकाना और हालत आदि लिख कर सरकार से सहायता दिलवाएं। वह सरकार द्वारा सहायता कराने की कोशिश करके और लाखों रुपये चन्दा आदि करके इस काम को आगे बढ़ा रहे हैं।"

जन-कल्याण समिति के मारफत वह किस तरह का काम करना चाहते थे और उनके काम करने का तरीका क्या था, इसकी एक झलक उदयपुर के राजेन्द्र कुमारजी बागड़ोदिया (भागीरथजी की पत्नी के भतीजे) को लिखे गये उनके नीचे दिये गये तीन पत्रों से मिलती है।

१२ मार्च, १९७३ के पत्र में भागीरथजी लिखते हैं: "तुम्हारे साथ उदयपुर के कलक्टर से मिला था। उसने पत्र लिखने को कहा था लेकिन वह अभी तक नहीं आया। तुम यह पत्र पहुंचते ही नीचे लिखी बातें पूछ कर आना और मुझे तुरन्त उत्तर देना: (१) वह (कलक्टर) पीपल्स वेलफेयर सोसाइटी (जन-कल्याण समिति) की एजेन्सी को मान लेंगे क्या (२) कुओं की मरम्मत कराने, गहरा कराने और अधबने कुओं को पूरा कराने आदि का काम अपन लोग करें तो उसमें वह (कलक्टर) कितनी मदद कर देंगे? अपनी अपेक्षा तो यह है कि दो-तिहाई रुपया वह दें और एक तिहाई अपनी कमेटी दे। अगर मंजूर हो तो पूछना प्रति कुआं अधिक से अधिक रकम कितनी होगी और कुल अधिकतम रकम कितनी होगी। (३) गांवों में प्राइमरी स्कूलों की बिल्डिंग हैं, उनकी मरम्मत कराने, अधबनी को पूरी कराने और एक कमरा जोड़ने में उसकी कोई दिलचस्पी है? सीकर के कलक्टर ने प्रति स्कूल तीन हजार रुपये देने (मंजूर) किये हैं, १० स्कूलों के लिए, बाकी रुपया लगे तो कमेटी लगाये (४) अपनी कमेटी (अन्य कार्यों के लिए रुपये) दे तो सरकार कितना औगमेंट (वृद्धि) कर सकती है।"

२२ मार्च, ७३ के पत्र में भागीरथजी लिखते हैं: "तुम्हारा पत्र मिल गया था। सरकारवाले (राजस्थान सरकार) पीपुल्स वेलफेयर सोसाइटी की एजेन्सी को मान्यता नहीं दे रहे हैं इसलिए कलक्टर के मान्यता देने का कोई अर्थ नहीं निकलेगा। मैंने सरकार से मान्यता तथा एड (सहायता) की बात नक्की कर ली थी (तय कर ली थी) किन्तु बाद में वे मुकर गये और इसलिए मुकर गये कि कमेटी के मन्त्री बदरीनारायणजी सोढाणी हैं जो किसी वक्त राजनीति में उनके अपोजिट (विरोधी) कैम्प में थे। फिर भी उदयपुर में कुछ काम तो करना ही है।"

१४ जून, १९७४ के पत्र में भागीरथजी लिखते हैं: "तुम्हारा पत्र मिला। पशन मंजूर करने का काम झंझटभरा बहुत है, इसमें कोई शक नहीं, लेकिन है बहुत आवश्यक। थोड़े से रुपये अपने खरच हो कर एक आदमी के आजीवन खरचे की व्यवस्था हो जाती है। इस काम को अगर तुम बड़े पैमाने पर कर सको। ५००-१००० आदमियों को पेंशन दिला सको तो एक बड़ा पुण्य का काम तुम्हारे हाथ से हो जायेगा। सिलाई की मशीनें तुम बांट चुके हो क्या?"

समिति ने इन सब कार्यों पर १९७९ तक एक करोड़ से भी अधिक रुपये खर्च किये। विदेशी और सरकारी सहायता अलग है। समिति ने विकास-कार्यों के साथ सामाजिक सुधार के काम को भी जोड़ने की कोशिश की। कृषि-विकास और

राहत के कार्यक्रमों के साथ उसने गांवों में शराबबंदी, परिवार-नियोजन, मृतक भोज वंदी के कार्यक्रम भी चलाये। समिति की यह कोशिश रही है कि गांवों में विकास का जो भी काम वह चलाये उसमें ग्रामीणों की पूरी साझेदारी रहे। इसका नतीजा भी सामने आया है। गांवों में समिति के चिकित्सा और स्वच्छ शौचालय कार्यक्रमों में ग्रामीण स्वयं आगे बढ़ कर भाग ले रहे हैं। समिति के कार्यकर्ता यह महसूस करते हैं कि जिन गांवों को उन्होंने अपनाया है या 'दत्तक' लिया है, वे जल्दी ही 'आदर्श-गांव' वन जायेंगे।

समिति के काम में भागीरथजी ने सरकार से जिस प्रकार के सहयोग की अपेक्षा की थी, वह नहीं मिला। राजनीति के संकीर्ण दायरे से आगे बढ़ कर सोचने में राजस्थान सरकार की असमर्थता के कारण समिति के कामों में कई प्रकार की अड़चनें आयीं। समिति के काम को देखकर विदेशी संस्थाओं ने उसकी मदद करनी चाही तो वह मदद भी सरकार ने प्राप्त नहीं करने दी। शुरू में समिति को विदेशी मदद मिली थी पर बाद में सरकार की मंजूरी न मिलने के कारण वह बन्द हो गयी।

समिति के काम के इस विवरण को हम सीतारामजी की २० मार्च, १९७४ (कलकत्ता) की डायरी के इस लम्बे नोट के साथ समाप्त करते हैं :-

"शाम को भाई भागीरथजी की संस्था पीपुल्स वेलफेयर सोसाइटी की मीटिंग में गया। इस सोसाइटी को स्थापित हुए ज्यादा दिन नहीं हुए पर इसने वहुत वड़ा और अच्छा काम किया है। पिछले दिनों राजस्थान में भयानक अकाल पड़ा था उस समय सोसाइटी खासकर भागीरथजी ने वहुत उपयोगी सहायता की, लोगों की, वहां के पशुओं खासकर गायों और सांडों की। इसके अलावा राजस्थान में पानी की कमी तो वरावर रहती हैं इस विषय में भी उपयोगी और अच्छा काम किया। संस्था को बाहर से यानी विदेश से भी वहुत सहायता मिली और उसका सुन्दर उपयोग वे कर सके। इन आठ-दस महीनों में करीब १५ लाख रुपये से वहां के गरीव लोगों के लिए उपयोगी और स्थायी काम भी किये। कुएं बनाने तथा पुराने कुओं को गहरा कर पानी अधिक आ सके इसकी व्यवस्था की।

"भागीरथजी में काम करने की भावना वहुत अधिक है। उनका राजस्थान सरकार और जनता पर काफी प्रभाव है। साथ ही उनको वहां काम करनेवाले भी खूब मिलते हैं। वहां के कार्यकर्ता उनसे प्रभावित हैं तथा उपकृत हैं। वे लाखों रुपयों से वहां वर्षों से कार्यकर्ताओं की सहायता करते रहे हैं। राजस्थान का कोई भी छोटा-बड़ा कार्यकर्ता, नेता और सरकारी मंत्री ऐसा नहीं हैं जो भागीरथजी को न जानता हो या जिसने मौके-मौके पर उनसे किसी प्रकार सहायता न ली हो। हर प्रकार के लोगों से उनका अच्छा सम्वन्ध है। मेरी निगाह में भागीरथजी से अधिक सम्वन्ध शायद राजस्थान के लोगों और संस्थाओं का किसी का नहीं है। अब वे अस्सी वर्ष के हो रहे हैं साथ ही आखों से कम दिखने लगा है। स्वास्थ्य भी वहुत अच्छा नहीं कहा जा सकता। सिर में वरावर दर्द रहता है जिसके लिए रोज ही चार-पांच गोली सैरीडोन या इसी प्रकार की दवा लेनी पड़ती है। इसलिए वे अब वहुत दौड़-धूप का काम करें यह ठीक नहीं लगता पर उनकी वहुत इच्छा काम करने की तथा काम बढ़ाने की है।

"राजस्थान सरकार के पास पानी की व्यवस्था करने के लिए एक-डेढ़ करोड़ रुपया पड़ा है, यदि वह व्यवस्था न कर सके तो यह रुपया भारत सरकार को लौटाना पड़ेगा। पर वह व्यवस्था नहीं कर पा रही है। न कर पाने का कारण परस्पर की राजनीति है। सब मन्त्री लोग अपने गांवों में अपने इलाके में रुपया लगाना चाहते हैं। इस प्रतिस्पर्धा में काम ही नहीं हो पाता। वे लोग यह अच्छी तरह जानते हैं कि उनके आदमी काम करेंगे तो चोरी होगी, काम अच्छा नहीं होगा। तब भी अपने ही आदमियों के द्वारा काम कराना पसन्द करते हैं। इस हालत में काम करने में अनेक कठिनाइयां हैं। पर भागीरथजी के प्रति सबका विश्वास है और काम की अच्छाई के कारण शायद कुछ हो जाय। यह सब हालत है हमारे देश में, कम-अधिक सारे देश की यही स्थिति है। इन राजनीतिक नेताओं ने सब भ्रष्ट कर दिया है।

"भागीरथजी बहुत बोझ लेकर काम करें ऐसा मेरा मन नहीं चाहता पर सोचता हूं तो ऐसा भी लगता है कि यह शरीर तो जायेगा ही और इस उम्र में लोभ भी क्या? जितना किया जा सके वह करना और इस शरीर को सेवा और भले कामों में लगाते हुए खत्म करने से अच्छी बात क्या हो सकती है।"

पुनश्च : भागीरथजी की मृत्यु के बाद जन-कल्याण समिति ने राजस्थान के चुरू जिले के सुजानगढ़ के पास गोपालपुरा के हनुमान मन्दिर के नीचे (मन्दिर एक पहाड़ी पर है) भागीरथजी की स्मृति में ६०० निराश्रित वृद्धों का एक आश्रम खोलने का निश्चय किया है। कन्हैयालालजी सिखवाल ने, जो आश्रम की स्थापना के काम में लगे हुए हैं, बताया : "आश्रम की योजना बहुत बड़ी है। इसके लिए हमें ३०० बीघा जमीन मिल गयी है। यह जमीन तीन तरफ पहाड़ से घिरी हुई है। कुछ इंजीनीयरों ने एक ऐसी योजना बनायी है जिसके द्वारा आश्रम की जमीन में एक दीवार खड़ी कर के पहाड़ पर होनेवाली बारिश का पानी संग्रह किया जा सकेगा। इससे एक बहुत बड़ा जलाशय बनेगा और आश्रम व उसके आस-पास बड़े पैमाने पर खेती का काम किया जा सकेगा।)"

× × × ×

जीवन के अन्तिम वर्षों में तो भागीरथजी का राजस्थान से मोह अत्यधिक बढ़ गया था। किशनगढ़ में आदित्य मिल की स्थापना के बाद वहां उनके आवास की व्यवस्था अच्छी थी। १९७० में व्यापार से सन्यास लेने के बाद वह किशनगढ़ को केन्द्र बना कर साल में ३-४ महीने राजस्थान में रहते, कहते "कलकत्ता की अपेक्षा राजस्थान में मेरा मन ज्यादा लगता है, तबीयत भी ज्यादा ठीक रहती है।" राजस्थानी कहावतों और लोक-कथाओं का संग्रह करने तथा राजस्थानी शब्दों की व्युत्पत्ति का पता लगाने में उन्हें एक प्रकार का आत्मिक आनन्द आने लगा था जो शायद राजस्थान में रहने पर और भी बढ़ता था। जीवन के अन्तिम दस वर्षों में तो उन्होंने राजस्थानी लोक-कथाओं और कहावतों को लेकर बड़ा काम कर डाला। 'मरु-भारती' के सम्पादक कन्हैयालालजी सहल ने अपनी पत्रिका के लोक-कथा विशेषांक के लिए कुछ कहानियां लिखने का अनुरोध किया तो उन्होंने १०-१५ लोक कथाएं लिख कर भेज दीं। इस पर सहलजी ने और कहानियां भेजने का अनुरोध किया तो कुछ और लिख कर भेज दीं।

इन लोक-कथाओं को लिखने में इतना आनन्द आया कि उन्होंने कहानियां लिखना जारी रखा। कहानियों की संख्या बढ़ती गयी और भागीरथजी ने परिवार के लोगों तथा परिचितों को उन्हें पढ़ने दिया। उनसे लोगों ने आग्रह किया कि इन कहानियों की पुस्तक प्रकाशित होनी चाहिए। इस तरह उनकी राजस्थानी लोक-कथाओं की पुस्तक 'बहता पानी निर्मला' का जन्म हुआ। पुस्तक इतनी ज्यादा पसन्द की गयी कि उसके अत्यन्त अल्प समय के भीतर तीन संस्करण हो गये। पुस्तक को जिसने पढ़ा उसने दूसरों को भी पढ़वाया। हर संस्करण में भागीरथजी ने नयी कहानियां जोड़ीं।

राजस्थानी कहावतों पर काम वैसे तो भागीरथजी ने १९५२-५३ में ही शुरू कर दिया था और याददाश्त से कुछ कहावतें नोट की थीं लेकिन कार्याधिक्य के कारण काम आगे बढ़ नहीं पाया। बीस वर्ष बाद उन्होंने काम को फिर उठाया और गोविन्दजी अग्रवाल के साथ मिल कर उसे पूरा किया। उनकी मृत्यु के १०-१५ दिन पहले ही उनका 'राजस्थानी कहावत कोश' छप कर आया। इस कोश में ३२०९ कहावतें दी गयी हैं जिनके सरल अर्थ और भावार्थ भी साथ दिये गये हैं। ३५० कहावतों की तो सन्दर्भ कथा भी संक्षेप में दी गयी है।

जीवन के अन्तिम वर्षों में तो उनका जीवन इतना राजस्थानमय हो गया था कि ऐसा लगता था कि कलकत्ता उनके लिए परदेस होता जा रहा है। बार-बार राजस्थान जाने को उनका मन करता रहता और वह बार-बार जाते।

१३
यात्रांत

भागीरथजी लम्बे दुबले-पतले व्यक्ति थे। उनका स्वास्थ्य कभी भी बहुत अच्छा नहीं रहा लेकिन इसके बावजूद उनमें परिश्रम करने की असाधारण क्षमता थी। उन्हें काम करते देख कर बहुत से लोगों की यह धारणा एकदम सही मालूम पड़ने लगती थी कि दुबले-पतले आदमी, हृष्ट-पुष्ट आदमी की तुलना में बहुत ज्यादा मेहनती हुआ करते हैं। स्वास्थ्य के प्रति वह बहुत सावधान न थे, खान-पान के बारे में किसी प्रकार का परहेज नहीं बरतते थे। उनके मित्र सीतारामजी, जो खान-पान के मामले में बहुत ज्यादा नियमों के पाबंद हैं, भागीरथजी के कुछ भी खा-पी लेने के बारे में चिढ़ कर कहते, "भागीरथजी को कचौड़ी-पकौड़ी, समोसा-डोसा, कुछ भी दे दो खा लेंगे, उन्हें कोई ज्ञान ही नहीं है।" सुबह एक-डेढ़ घंटा घूमने के अलावा भागीरथजी ने स्वास्थ्य सम्बन्धी किसी नियम का पालन नहीं किया।

मीग्रेन (सिर-दर्द) उन्हें तीस-पैंतीस साल से था। इधर बीस सालों में तो यह और भी बढ़ गया था। दिन भर में दो-चार से छह-सात सैरीडोन की गोलियां लेते रहते जिसका स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ना लाजिमी था। १९५८ की जीप-

दुर्घटना ने उनके स्वास्थ्य को एकदम झिंझोड़ डाला, लगभग छह महीने बिस्तर पर रहना पड़ा और इसके ऊपर लोभी डाक्टर के गलत उपचार की सजा भुगतनी पड़ी, पैर में दोष रह गया। कुछ वर्ष बाद इस डाक्टर का कई मरीजों की शिकायत पर प्रैक्टिस करने का लाइसेंस रद्द कर दिया गया। लेकिन भागीरथजी ने इलाज के दौरान इस डाक्टर पर कभी शक नहीं किया और ना ही परिवार के लोगों व मित्रों की उसके सम्बन्ध में की गयी शिकायत पर ध्यान दिया।

१९७३ में भागीरथजी को बारिश में भींग जाने के कारण निमोनिया हो गया और एक बार तो ऐसा लगा कि वह शायद बच नहीं पायेंगे। इस बीमारी से वह उबर तो आये लेकिन एकदम जर्जर हो कर। उन्हें कोई न कोई तकलीफ रहने लगी और सिर-दर्द तो ऐसा संगी था जो साथ छोड़ता ही नहीं था। आंखों की ज्योति भी मन्द पड़ने लगी। लेकिन यह थोड़े अचरज की बात है कि शरीर की एकदम जर्जर अवस्था में उन्होंने कुछ एकदम नये काम हाथ में लिए। श्री कल्याण आरोग्य सदन और जन-कल्याण समिति के काम को बढ़ाने में पूरी तरह लगने के साथ राजस्थानी लोक-कथाओं की कहानियां लिखीं तथा राजस्थानी कहावतों का कोश तैयार किया।

१९७४ में एक और नया काम हाथ में लिया। भारतीय भाषा परिषद नाम की एक नयी संस्था खोलने की कल्पना साकार रूप ग्रहण करने लगी। १ मार्च, १९७५ को इस संस्था का विधिवत् उद्घाटन हुआ। इसके बाद संस्था के मकान के लिए भागीरथजी चन्दा इकट्ठा करने के अभियान में जुटे। ८० वर्ष की उम्र में वह सीतारामजी के साथ सुबह-सुबह चन्दा इकट्ठा करने निकलते। एक-डेढ़ महीने में उन्होंने इतना चन्दा इकट्ठा कर डाला कि संस्था की एक विशाल और सुन्दर इमारत बनायी जा सके। १९७५ के अगस्त में उनकी तबीयत बिगड़नी शुरू हुई और उनके पित्ताशय का ऑपरेशन करना पड़ा। ठीक होते ही वह राजस्थान चले गये और श्री कल्याण आरोग्य सदन और जन-कल्याण समिति के कामों में पूरी तरह जुट गये।

१९७७ में वह फिर बीमार पड़े। उनका स्वास्थ्य और भी तेजी से जर्जर होने लगा। १९७९ की जुलाई में वह इतने अस्वस्थ हो गये कि उन्हें खाट पकड़नी पड़ी। परिवार के लोगों और परिचितों व मित्रों, सभी ने सोचा कि दुर्बलता की वजह से ही यह बीमारी है। डाक्टर बीमारी का कोई निदान नहीं कर पा रहे थे। इस अवस्था में वह डाक्टरों से पूछते : "विल आई बी क्योर्ड, विल आई बी आल राइट (क्या मैं ठीक हो जाऊंगा, चंगा हो जाऊंगा)।" ऐसा लगता था कि उनमें दो-चार वर्ष जीने की प्रबल इच्छा थी ताकि राजस्थान में शुरू किये गये कामों को अंजाम दे सकें। अपनी पुत्रवधुओं को उन्होंने कहा भी कि कई काम वह करना चाहते हैं। लेकिन वह धीरे-धीरे शिथिल पड़ते गये। कमजोरी के कारण थोड़ी सी भी बातचीत करने में थक जाते। खाने की इच्छा बिल्कुल खतम हो गयी। उनकी पुत्रवधू उमा उन्हें खिलाने के लिए तरह-तरह के उपाय करतीं, एक दिन उन्होंने उनसे कहा : "मैं क्या करूं, मुझ से खाया नहीं जाता।" इस वक्त उन्हें चिट्ठियों का जवाब न दे पाने का भी अफसोस बहुत रहता, कहते, "चिट्ठी को जवाब कोनी दियो।" शरीर में जब तक थोड़ी सी भी ताकत रही तब तक उन्होंने बोल कर चिट्ठियों का जवाब लिखाने की कोशिश

की पर यह चल न सकी। अब उन्हें लगने लगा कि वह बच नहीं पायेंगे और उन्हें कल्याण आरोग्य सदन की चिंता सताने लगी कि उनके जाने के बाद उसका सालाना खर्च कैसे चलेगा।

८ अगस्त को राखी थी। महादेवीजी (वर्मा) उन्हें पैंतीस-चालीस साल से राखी भेजती थीं, जिसे वह अपनी पुत्र-वधुओं या बेटियों से बंधवाते थे। पर्व के तीन-चार दिन पहले राखी डाक से आ जाया करती थी। इस वार नहीं आयी तो उन्होंने उमाजी से कई वार पूछा : क्या बात है इस वार महादेवीजी की राखी नहीं आयी। ठीक पर्व के दिन डाक से जब राखी आयी तव जाकर उनको तसल्ली हुई। अगस्त के तीसरे सप्ताह में डाक्टरों ने उनके शरीर पर नाना प्रकार के परीक्षण कर बीमारी का निदान ढूंढ़ने की चेष्टा की, उन्हें नरसिंग होम में दाखिल किया गया। परीक्षणों में कोई खास दोष नहीं निकला तो एक बार आशा बंधी कि शायद पहले की तरह इस बार भी उबर आयें, लेकिन बीमारी तो कोई थी नहीं, शरीर जवाव दे रहा था। पलंग पर एक करवट उन्हें सोये हुए देख कर लगता था कि मानो बरसों का थका हुआ कोई मुसाफिर या दौड़ कर हांफा हुआ कोई शिशु सो रहा है। बीमारी की खबर सुन कर आनेवाले लोग उनके मुंह से कम से कम एक-दो शब्द सुनने को आतुर रहते। ऐसे में परिवार के लोगों को कुछ सख्ती बरतनी पड़ती और बहुतों का कोपभाजन भी होना पड़ता।

सितम्बर के दूसरे सप्ताह तक लगभग बेहोशी की हालत हो गयी। इसी वक्त बदरीनाराणजी सोढाणी उनसे मिलने सीकर से आये। सहसा उनकी चेतना पूरी तरह लौट आयी और उन्होंने सोढाणीजी को कहा, "मैंने आपको चाकरी बजा दी है।" अपने पुत्र अश्विनी कुमार को बुलाया और कहा : "श्री कल्याण आरोग्य सदन का खर्च कैसे चलेगा। तुम सालाना खर्च के लिए सालाना कुछ देते रहने का वायदा करो", तो अश्विनीजी ने कहा "मैं सालाना देना चाहता हूं लेकिन किसी कारणवश नहीं दे पाने की जोखिम नहीं लेना चाहता, इसलिए अभी एक मुश्त पांच लाख रुपये दे देता हूं।" यह सुन कर भागीरथजी को बड़ी तसल्ली हुई (अश्विनीजी ने भागीरथजी की मृत्यु के बाद एक मुश्त रकम को बढ़ा कर १५ लाख कर दिया)।

ज्योतिमठ के शंकराचार्य उनसे मिलने आये तो उनके कान में जाकर कहा गया, "शंकराचार्यजी आपसे मिलने आये हैं"। लेटे-लेटे उन्होंने हाथ जोड़े। शंकराचार्यजी ने उनसे पूछा : "आपकी कोई इच्छा है ?" तो एकदम स्पष्ट कहा, "कोई इच्छा नहीं है।" सितम्बर समाप्त होने तक जीवन की कोई आशा नहीं रही। अक्टूबर के किसी दिन बेहोशी की हालत में एक बार ज्ञान आया तो पुत्र अश्विनी, पुत्रवधुएं भारती व उमा और पुत्री उषा उनके पास बैठे थे। उनसे पूछा, 'क्या आपको कोई पीड़ा है ?" तो उन्होंने स्पष्ट कहा, "पीड़ा कुछ भी कोनी (कोई पीड़ा नहीं है।)"

पत्नी गंगा देवी, पुत्र, पुत्रवधुओं और पुत्रियों की दिन-रात अथक सेवा और परिचितों व मित्रों की प्रार्थनाओं के बावजूद २९ अक्टूबर, १९७९ को उनका देहावसान हो गया।

१४
परदुखकातरता

गांधीजी ने एक बार कहा था कि हमारे देश की सबसे बड़ी समस्या यह है कि हमारे देश के पढ़े-लिखे और सम्पन्न व्यक्ति का हृदय अत्यन्त कठोर है।

आज तो यह लगता है कि उसका हृदय कठोर ही नहीं, उसमें गरीब की हालत को जानने और समझने तक की भी इच्छा नहीं है। वह गरीब को कहीं भी अपने जैसा आदमी नहीं मानता कि उसकी तकलीफ को तनिक भी महसूस करे। हममें से कितने लोग हैं जो कभी मई-जून की कड़ी धूप में नंगे पैर चलते आदमी की पीड़ा अनुभव करते हैं, और हममें से जो मोटरों में बैठने के आदी हैं, उनमें से कितनों को इस बात का भी एहसास है कि पानी या कीचड़ से भरी सड़क पर मोटर रास्ते चलते लोगों के लिए मुसीवत हो सकती है, उनके कपड़े बिगाड़ सकती है। हम तो एक ऐसे क्रूर और असम्वेदनशील समाज में रह रहे हैं जिसमें खाते-पीते लोगों को गरीव और अधनंगे आदमी की उपस्थिति का भी एहसास नहीं है। ऐसे में भागीरथजी की परदुखकातरता, दरिद्र का कष्ट समझने की इच्छा व क्षमता और उसे दूर करने की आतुरता, हमारे मन में उनके प्रति श्रद्धा को कई गुना बढ़ा जाती है।

भागीरथजी एक बार स्वास्थ्य बिगड़ जाने पर नैनीताल गये थे। अपनी इस यात्रा के बारे में उन्होंने 'नया समाज' के जनवरी, १९४९ के अंक में एक बहुत ही सुन्दर लेख लिखा (देखें परिशिष्ट)। इस लेख के मनोहारी वर्णन और मनोहारी गद्य को पढ़ कर हम मुग्ध हो रहे थे कि लेख के अन्त में एक झटके से हम स्वर्ग से धरती पर उतर आये। भागीरथजी की वर्णन-क्षमता से कहीं ज्यादा उनकी सम्वेदना ने हमें अभिभूत कर डाला। लेख का वह अन्तिम अंश यहां हम उद्धृत करते हैं क्योंकि यह भागीरथजी की सम्वेदना का उन्हीं के शब्दों में हमें साक्षात दर्शन कराता है :—

"नैनीताल की सफाई देख कर तबीयत खुश हो गयी, पर नगर को इतना साफ-सुथरा और स्वास्थ्यप्रद रखनेवालों की स्थिति जान कर खुशी नहीं हुई। यहां के मेहतरों को म्युनिसिपैलिटी से केवल तीस-इकंतीस रुपये महीना मिलता है। इसके अलावा कुछ भी नहीं। सुवह ७ बजे से ड्यूटी पर आना पड़ता है इस कठिन शीत में विना चाय-पानी पिये। शहर को साफ रखनेवाले तथा सारे लोगों को स्वास्थ्य बख्शनेवाले इन अभागे भाई-वहनों की किसे चिन्ता है कि ये इतनी कम आय में किस तरह गुजर कर पाते हैं। और फिर इनके रहने का स्थान कितना तंग और अन्धकार पूर्ण है। जिनके परिश्रम से सारे लोग स्वस्थ हैं, उनके स्वास्थ्य और खाने-पीने की चिन्ता से हमलोग कितने उदासीन हैं।

'दूसरा दर्जा कुलियों या मजदूरों का है, जो हमारा बोझ ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर पहाड़ों में ढोते हैं, सड़क बनाते हैं, मकान चिनते हैं और डांडी (डोली)

चलाते हैं। इन्हें 'डोटियाल' कहते हैं क्योंकि इनमें से ज्यादातर लोग डोटी नामक स्थान से आते हैं. जो नेपाल और कुमायूं की सरहद पर है। यहां के सारे मकान इन्होंने बनाये, सड़कें इन्होंने तैयार की, यही लोग गत एक सौ वर्षों से अपनी पीठ पर लाद कर दूर-दूर के स्थानों से अन्न तथा साग-सब्जी हमें खिलाते रहे हैं और आज भी खिलाते हैं। बीमार या कमजोर कोई हुआ अथवा वृद्ध हुआ, तो उसे डोली में बिठा कर सिर पर लाद कर भी ले जाते हैं। यहां जितना सुख और वैभव है, उस सारे की सृष्टि करनेवाले यही हैं। फिर भी पेट में पूरा अन्न नहीं, तन पर कपड़ा नहीं।

"सृजन करनेवाला परिश्रम करनेवाला भूखा और नंगा है, अपनी सृजन की हुई सारी वस्तुओं के उपयोग से वंचित है। गाय-भैंस रखता है पर बच्चों को दूध नहीं, डोली रखता है तो सिर पर बोझा ढोने के लिए, मकान चिनता है लेकिन बिना आज्ञा उसमें प्रवेश भी नहीं कर पाता, सूत कातता और विनता है लेकिन दूसरों के लिए। बिजली की रोशनी का सारा संरजाम इकट्ठा किया, बिजली पैदा की और उसकी जगमगाहट से सारा नैनीताल तथा दूसरे शहर जगमग कर रहे हैं, लेकिन इन लोगों के रहने के स्थानों में तो आज भी वही किरासिन की डिबिया है और उसके लिए भी राशन की मेहरबानी से पूरा किरासन तेल कहां मिल पाता है ? दूसरी तरफ थोड़े से परोपजीवी लोग, जिन्होंने अपना एक गुट बना कर सारी पृथ्वी पर अपना मायाजाल बिछा लिया है, सारे पदार्थों का उपभोग कर रहे हैं। हम लोग इसी श्रेणी के हैं जिन्हें शारीरिक परिश्रम बिलकुल नहीं करना पड़ता और फिर भी सारी सुख-सुविधाओं का उपभोग करते हैं।"

गांधीजी ने शारीरिक परिश्रम करने पर ही रोटी खाने का हकदार होने (ब्रेड लेबर) की बात कही थी। मध्य वर्ग और सम्पन्न वर्ग में कुछ मुट्ठी भर लोगों में ही शारीरिक परिश्रम न कर रोटी खाने के लिए मन में अपराध-भाव रहता है। भागीरथजी में यह अपराध-भाव निश्चय ही तीव्र था। अक्सर इस तरह के अपराध-भाववाले व्यक्ति अपनी अत्यधिक सम्वेदनशीलता के कारण कर्मठ नहीं होते, वे ऐसा कुछ नहीं कर पाते जिससे किसी का भी कष्ट दूर हो। ऐसे लोग अपने अत्यन्त सीमित दायरे में भले और अच्छे रह कर समाप्त हो जाते हैं। लेकिन भागीरथजी में कर्मठता थी और उन्होंने अपनी सम्वेदना को वायवी नहीं रहने दिया उसे निरन्तर ठोस रूप देते रहने की कोशिश की।

१९७३ में राजस्थान में अकाल-पीड़ितों को काम देने के लिए शुरू किये गये निर्माण-कार्यों का निरीक्षण करते हुए उन्होंने देखा कि मजदूर नंगे पैर जलती धरती पर काम कर रहे हैं। इस दृश्य ने भागीरथजी को इतना सताया कि उन्होंने इन लोगों के लिए हजारों जोड़ी चप्पलें मंगवाकर वितरित करवायीं। इसी तरह जब उन्हें मालूम पड़ा कि मजदूरों को पीने को ठण्डा पानी नहीं मिलता तो तुरन्त घड़ों की व्यवस्था करवायी। यह देख कर कि विश्राम के समय भी मजदूरों को किसी प्रकार की प्राकृतिक छांह न रहने के कारण धूप में ही बैठना पड़ता है, उन्होंने बांस के छप्पर डलवा कर जगह-जगह छांहदार विश्राम-स्थल बनवाये। मजदूरों के कुपोषण के शिकार दुबले-पतले बच्चों को देख कर उन्होंने बदरीनारायणजी सोढाणी को कहा : "आ मजूरां का टांबरा क खातर

भी कोई खाबा की चीज को इन्तजाम करां तो ठीक रहव (इन मजदूरों के बच्चों के लिए भी खाने की किसी चीज का इन्तजाम करें तो ठीक रहेगा) ।" इस पर सोढाणीजी ने सुझाव दिया कि यदि भुने हुए चनों, चिवड़ा, मूंगफली और गुड़ का १७५ ग्राम का पैकेट बना कर बच्चों को दिया जाय तो उन्हें पूरा आहार मिलेगा और वे खुश भी होंगे। यह सुझाव अमल में लाया गया। इन पैकेटों में यह सुविधा थी कि इन्हें बनाना सरल था और कुछ दिन रखे जाने पर भी पौलिथिलीन की थैलियों के कारण धूल, मिट्टी आदि से इनके नष्ट और खराब होने का भी खतरा नहीं था। मजदूरों के बच्चों के बीच इस तरह के पैकेट बांटे गये। एक पैकेट भागीरथजी ने अपनी पुत्रवधू को दिया और कहा, "या बता, यो खा कर तेरो पेट भर कि नहीं ?" पुत्रवधू ने खा कर उन्हें रपट दी कि इससे भूख शान्त हुई और खाने में भी स्वाद आया तो उन्हें बेहद संतोष हुआ।

एक बार भागीरथजी श्री कल्याण आरोग्य सदन से नीरोग हुए एक रोगी को घर के लिए रवाना होते हुए देख रहे थे। जाड़े के दिन थे। रोगी के पास ओढ़ने को कम्बल नहीं था। भागीरथजी को लगा कि गरम कपड़ों के अभाव में रोगी घर पहुंचते-पहुंचते बीमार हो जायेगा। उसी दिन उन्होंने सदन में यह व्यवस्था करवायी कि नीरोग हो कर घर जानेवाले रोगियों को जाते समय सदन की ओर से एक तूस भी दी जाय।

सम्वेदना और जिज्ञासा के बीच एक प्रकार का लेन-देन का सम्वन्ध है। दोनों का व्यापार एक दूसरे से बढ़ता है। जब आदमी किसी चीज के बारे में सम्वेदनशील होता है तो उसके बारे में वह अपनी सम्वेदना के अनुकूल ज्यादा से ज्यादा जानना चाहता है और उस जानकारी से अपनी सम्वेदना को पुष्ट करता है। पढ़े-लिखे सम्पन्न वर्ग के लोगों में सम्वेदना न होने के कारण जिज्ञासा भी नहीं होती। वे यह जानना भी नहीं चाहते कि जो गरीब उन्हें हमेशा दिख पड़ते हैं, वे क्या खाते-पीते हैं, कैसे रहते हैं, आदि। भागीरथजी जब किसी से भी मिलते तो उसकी व्यक्तिगत आर्थिक स्थिति के बारे में पूछते—कितना कमाते हो, कितने बच्चे हैं, क्या खाते हो आदि। कोई और इस तरह के प्रश्न पूछे तो आदमी इसे अस्वस्थ जिज्ञासा मान चिढ़ जाय लेकिन जब भागीरथजी पूछते थे तो उसमें उनकी सम्वेदना झलकती थी जिससे पूछे जानेवाले व्यक्ति को बुरा नहीं लगता था। अपनी राजस्थान-यात्राओं में भागीरथजी सैकड़ों लोगों से मिलते तो उनसे इसी तरह के व्यक्तिगत सवाल पूछते। १९५१-५२ के राजस्थान के अकाल में निर्माण-कार्य में लगे मजदूरों से सवाल पूछने के बाद उन्होंने लिखा : "(मजदूर) कहते थे तरकारी तो अमीरों के खाने के चीज है। यहां तो रोटी के साथ किसी-किसी दिन नमक-मिर्च मिल जाता है तो वह दिन हम लोग भाग्य का दिन मानते हैं...स्वतन्त्र भारत में यह स्थिति हम लोगों के लिए शर्म की बात है।" इसी यात्रा में गांवों में बच्चों से उन्होंने जानना चाहा कि क्या उन्होंने कभी मेवा खाया है, "बच्चों ने बादाम, किशमिश, काजू आदि का न तो कभी नाम सुना है और न उनका स्वाद ही जानते हैं। जब उन्हें ये चीजें दिखा कर पूछा गया तो वे नहीं बता सके कि ये क्या चीजें हैं और किस काम में आती है।" हम इस तरह के सवाल यदि नहीं पूछते तो उसके दो ही कारण होते हैं—हम या तो गरीब को आदमी ही नहीं मानते कि वह तरकारी, बादाम, किशमिश और काजू खाने के योग्य है या फिर अपने स्वाद को किरकिरा करना

नहीं चाहते। हमें भागीरथजी की छोटी पुत्रवधू उमा कानोड़िया और छोटी बेटी उषा भुवालका ने बताया : "काकोजी के सामने जो कुछ भी परस दिया जाता उसे वह खा लेते, अगर नमक ज्यादा या कम हुआ तो भी कुछ नहीं कहते, स्वाद-बेस्वाद की कभी उन्होंने शिकायत नहीं की", परिचितों ने बताया : "वह कभी होटल या रेस्तरां नहीं जाते थे।" भागीरथजी गरीब नहीं थे, अतिसम्पन्न थे पर मजदूर के तरकारी न खाने और उसके बच्चों के बादाम, किशमिश न पहचानने का 'ज्ञान' उनके भीतर इतना धंसा हुआ था कि उसकी प्रतीति हमेशा कहीं न कहीं रहती।

'चोर' कहलाने या माने जानेवाले समाज के दरिद्र वर्ग के लोगों के प्रति भागीरथजी की सम्वेदना और समझ की जिन तीन घटनाओं का हमें पता लगा उन्हें यहां लिखा जा रहा है : श्री कल्याण आरोग्य सदन अपने निरोग हुए रोगियों को घर जाते समय कुछ महीनों की दवा साथ में देता है ताकि इलाज जारी रहे। ऐसा एक रोगी सीकर के किसी दवाखाने में सदन से मिली दवाएं बेचने आया। दूकानदार ने सदन के अधिकारियों को खबर दी तो सभी ने कहा : "इस आदमी को पुलिस को दे देना चाहिए।" लेकिन भागीरथजी ने कहा, 'ऐसा क्यों सोचते हैं कि यह आदमी चोर है। यह पता लगाइये कि वह दवा क्यों बेच रहा था।" इस पर 'चोर' के घर आदमी भेजा गया कि वह अपना जीवन खतरे में डाल कर क्यों दवा बेचने सीकर आया तो उसकी बूढ़ी मां ने बताया कि चूंकि बेटा कई महीनों अस्पताल रहा इसलिए घर में कमानेवाला कोई नहीं था। घर में जो कुछ था वह इतने दिनों में बिक गया। बच्चे तीन दिन से भूख से बिलबिला रहे थे और घर में दवा के सिवाय और कुछ बेचने को नहीं था। इस जानकारी के मिलने पर सदन की ओर से दवा बेचनेवाले आदमी के यहां बच्चों के खाने के लिए अनाज भिजवाया गया।

दूसरी घटना बहुत पुरानी है। १९३६ में भागीरथजी एक विवाह में आमन्त्रित थे। वहां कुछ लोग एक व्यक्ति को चोर मान कर पीट रहे थे। ऐसे अवसरों पर सभी लोग अपनी बहादुरी दिखाने के लिए चोर को पीटने में योग देने लगते हैं। भागीरथजी ने पीटनेवाले लोगों को रोकने की बहुतेरी कोशिश की लेकिन व्यर्थ। इस पर वह चोर के एकदम पास जाकर खड़े हो गये और उन्होंने कहा : "अब इसे मारने से पहले आपको मुझे मारना होगा।" इस प्रकार उन्होंने समाज के भद्रजनों से उस व्यक्ति की रक्षा की।

तीसरी घटना यह है कि एक दिन रात भागीरथजी की मुहल्ले में शोर से नींद खुल गयी। वह सड़क पर आये तो देखा कि लोग एक अधनंगे व्यक्ति को, जो जाड़े में ठिठुर रहा था, किसी मकान में चोरी करने के लिए पीट रहे थे। भागीरथजी को यह दृश्य असह्य लगा। उन्होंने लोगों से कहा : "आप इसे पीट तो रहे हैं लेकिन यह नहीं देख रहे हैं कि यह आदमी जाड़े में ठिठुर रहा है।" उन्होंने घर से कम्बल मंगा कर इस व्यक्ति को उढ़ाया।

हमारे समाज में जो भी व्यक्ति सम्वेदनशील है, वह स्त्री के प्रति अतिरिक्त सम्वेदनशील हुए बिना रह नहीं सकता क्योंकि स्त्री उत्पीड़न की सबसे ज्यादा शिकार है। भागीरथजी कभी-कभी परिवार के लोगों और मित्रों को अपनी यात्राओं के अनुभवों और ग्रामीणों से बातचीत के बारे में बताया करते थे। बताये जानेवाले प्रसंगों में स्त्री के प्रति क्रूरता के प्रसंग ही ज्यादा होते थे।

भागीरथजी ने एक बार बताया कि वह कहीं जा रहे थे तो उनके सामने जो गाड़ी चल रही थी, वह सड़क पर एक औरत को टक्कर देकर चली गयी। भागीरथजी ने अपनी गाड़ी रोकी तो देखा औरत को काफी चोट लगी है। इस औरत के साथ उसकी जेठानी भी थी लेकिन उसे बिलकुल ही चोट नहीं लगी थी। भागीरथजी ने घायल औरत को मोटर में लिटाया और उसे अस्पताल ले जाने लगे तो उन्होंने जेठानी को भी साथ चलने को कहा तो उसने कहा : "मं तो नुक्तो (मृतक-भोज) जीमण जाऊं हूं मं साग कोनी जाऊं" और चली गयी। भागीरथजी ने घायल औरत को अस्पताल पहुंचाया और पूछताछ करके उस औरत के पति को बुलाया। पति खेत पर काम कर रहा था। वह भागीरथजी को देख कर थोड़ा अचरज में तो पड़ा लेकिन उसने कहा कि इतनी सी बात के लिए उसे क्यों बुलवाया गया। यदि यह ठीक हो जायेगी तो अपने आप घर आ जायेगी और यदि मर जाय तो "थे (आप) फूंक-फांक दियो" और चला गया (भागीरथजी ने चिकित्सा की सारी व्यवस्था की)।

इसी तरह की एक और घटना भागीरथजी ने बतायी। कल्याण आरोग्य सदन में आनेवाले ९० प्रतिशत मरीज पुरुष ही होते हैं। यह बात नहीं कि स्त्रियों को क्षय रोग नहीं होता। वास्तविकता तो यह है कि क्षय रोग स्त्रियों को ही ज्यादा होता है। एक स्त्री जब क्षय के कारण मरणासन्न हो गयी और घर का कोई काम-काज करने लायक नहीं रही तो उसके घरवाले उसे सदन में पहुंचा कर चले गये और फिर उन्होंने उसकी कोई खोज-खबर नहीं ली। इस स्त्री की आगे की कहानी यह है कि १४ महीने के इलाज के बाद वह ठीक हो गयी और बच्चों की ममता के कारण घर जाना चाहने लगी। भागीरथजी ने इस स्त्री के पति के बारे में पूछताछ करवायी तो पता चला कि वह कलकत्ता रहता है। कलकत्ता पहुंचने पर भागीरथजी ने पति को बुलवाया और उसे कहा कि वह अपनी पत्नी को अपने घर बुला ले। पति ने कहा कि वह टी० बी० की मरीज है उसे मैं घर नहीं रख सकता। इस पर भागीरथजी ने उसे बहुत प्रयत्न कर समझाया कि टी० बी० अब ठीक हो गयी है और उसकी पत्नी अब पूर्ण स्वस्थ है। इस पर पति ने कहा कि उसका वेतन बहुत कम है। तब भागीरथजी ने उसके लिए पार्ट-टाइम काम की व्यवस्था की और उस स्त्री को उसके घर भिजवाया।

भागीरथजी जब बड़ेबाजार में रहते थे तब एक दिन बगल के मकान में एक स्त्री की चीख सुन कर उनकी नींद टूट गयी। स्त्री को आधी रात को उसका पति पीट रहा था। भागीरथजी वहां पहुंचे और उन्होंने पति को कहा कि वह अपनी पत्नी को मार नहीं सकता। पति ने कहा कि पत्नी उसकी है, उससे वह जो चाहे कर सकता है। इस पर भागीरथजी ने कहा : "मेरा भी यह धर्म है कि मैं किसी स्त्री को पिटने नहीं दे सकता। अगर आपने अपनी स्त्री को पीटा तो मुझे आपके खिलाफ कुछ करना पड़ेगा।" इतनी बात थोड़ी कड़ाई से कहने के बाद भागीरथजी ने पति को खूब धैर्य के साथ समझाया और पति ने उनके सामने शपथ ली कि वह भविष्य में अपनी पत्नी को कभी नहीं पीटेगा।

१५

विनोदप्रियता

सूचनाएं और जानकारी एक हद तक ही कुछ बताने में समर्थ होती हैं। कभी-कभी तो वे इस अर्थ में भ्रामक भी होती हैं कि उनसे व्यक्ति का हमारे मन में ऐसा चित्र वन जाता है, जिसका असली व्यक्ति से कोई मेल ही नहीं होता। जीवनी लिखते हुए इस बात का हमेशा खतरा बना रहता है कि हम विष्णु शर्मा के शिष्यों की तरह सब लक्षण तो शायद गिना जायं लेकिन मुट्ठी में क्या है, यह बता न पायें। भागीरथजी की जीवनी लिखते हुए इस खतरे का बार-बार आभास होने के कारण अपनी ओर से इसे दूर करने की कोशिश में हम उनके स्वभाव के एक ऐसे पहलू को, जिसका अभी तक इस वृत्तांत में जिक्र नहीं आया है, यहां रखेंगे और आशा करेंगे कि इससे उनका वह व्यक्तित्व भी प्रकाश में आ सकेगा जो सूचनाओं और जानकारी के बोझ से दब गया है।

पाठकों ने अब तक जो पढ़ा है उसके आधार पर वे शायद यह सोच भी नहीं सकते कि भागीरथजी एक अत्यन्त विनोदी और विनोदप्रिय व्यक्ति थे। हम परदुखकातर व्यक्ति को कहीं ऐसा व्यक्ति मान बैठते हैं जो हमेशा दुखी या उदास या गंभीर बना रहता है। लेकिन परदुखकातरता और विनोदप्रियता में कहीं भी विरोध नहीं है। हमारे देश के दो सबसे बड़े परदुखकातर महापुरुषों—बुद्ध और गांधी—में दूसरे के बारे में तो हमें पूरा पता है कि वह अत्यन्त विनोदप्रिय व्यक्ति थे। गांधीजी की विनोदप्रियता के यदि हजारों नहीं तो कम से कम सैकड़ों उदाहरण हमारे सामने हैं। भागीरथजी के बारे में जानने की कोशिश में हम जिन लोगों से मिले, उन सभी ने उनके विनोदी स्वभाव की चर्चा की, कहा, "वह बात-बात में विनोद करते थे।" लेकिन जब विनोद के कुछ उदाहरण देने की बात कही गयी तो उत्तर मिला, "वह तो मौके पर किया गया विनोद होता था इसलिए उसका उदाहरण दे सकें, ऐसी हमारी याददाश्त नहीं है।" कुछ लोगोंने जरूर अपनी याददाश्त पर जोर दे कर उनके विनोद और उनकी प्रत्युत्पन्नमति के कुछ उदाहरण दिये, जो आगे दिये जायेंगे।

भागीरथजी का विनोद मारवाड़ी कहावतों और लोक-कथाओं से भरपूर रहता था। शब्दों के साथ खिलवाड़ कर और अंग्रेजी तथा हिन्दी के शब्दों को मिला कर श्लेष और यमक पैदा करने की उनमें अद्भुत क्षमता थी। किसी-किसी व्यक्ति से उनका सम्बन्ध इस प्रकार का भी होता था कि सारी बातचीत ही विनोद के रूप में होती। भागीरथजी का परिवार बहुत बड़ा था। बड़े परिवारों में बहुत दफा एक ही साथ दो प्रकार के रिश्ते बन जाया करते हैं। हिन्दू समाज में वर-पक्ष को ऊंचा और कन्या-पक्ष को नीचा दरजा दिये जाने के कारण एक ही व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के सन्दर्भ में रिश्ते के हिसाब से एक ही साथ ऊंचा और नीचा दोनों हो सकता है। मसलन भागीरथजी बेटी की जेठानी उनकी पुत्रवधू की बहन हैं। ऐसे में वर-पक्ष के रिश्ते के मुताबिक जेठानी ससुराल में तो

उनकी बेटी से सम्मान प्राप्त करने की अधिकारिणी हुई लेकिन अपने पीहर में वह उनकी बेटी को अपनी बहन की ननद के रूप में सम्मान देने को बाध्य है। इस तरह के दुहरे रिश्तों को लेकर विनोद करने का कोई भी मौका भागीरथजी नहीं जाने देते थे।

विनोद के साथ उनमें प्रत्युत्पन्नमति भी समान रूप से थी, जिसके कारण दोनों के बीच भेद करना कठिन हो जाता है। उनके विनोद में व्यंग्य की मात्रा एकदम नहीं रहती। हम जब किसी को कोई सच्ची बात कहने से कतराते हैं लेकिन उसे कहने के लिए अकुलाते भी हैं तो व्यंग्यरूपी विनोद का सहारा लेने लगते हैं। यह एक प्रकार का छिपा हुआ आक्रमण हो जाया करता है। भागीरथजी के विनोद में इस तरह का व्यंग्य नहीं होता था क्योंकि अपने सम्वेदनशील स्वभाव के कारण वह जानते थे कि इससे व्यंग्य के पात्र में सत्य का एहसास जगने के बजाय प्रतिहिंसा का भाव ही ज्यादा जगता है। अच्छा विनोद तो वही विनोद है जिससे सभी आनन्दित हों। विनोद, भागीरथजी के लिए भेद मिटाने का भी एक प्रकार का 'उपाय' था। वह छोटे-बड़े, अमीर-गरीब, अपने से ऊंचे-नीचे, सबसे विनोद करते थे, जिससे उम्र और गरीब-अमीर तथा ऊंच-नीच का भेद मिट जाया करता था।

नीचे भागीरथजी के विनोद और उनकी प्रत्युत्पन्नमति के कुछ उदाहरण, इस आशा से दिये जा रहे हैं कि पाठक उन्हें पढ़ कर आनन्दित होंगे :-

भागीरथजी एक सज्जन से बातचीत कर रहे थे। बात-बात में लायन्स क्लबों की चर्चा चल पड़ी तो उन सज्जन ने कहा : "लायन्स क्लब के सदस्य अपने को शेर (लायन) कहते हैं और उनकी पत्नियां अपने को शेरनी (लायोनेस) कहती हैं," तो भागीरथजी ने कहा : 'आप ठीक कह रहे हैं, लेकिन मैं जितनी भी लायेनेसों को जानता हूं वे सभी चूहों और तिलचट्टों तक से डरती हैं।"

× × ×

जल-बोर्ड द्वारा बनाये गये एक कुएं का निरीक्षण करने के लिए जाते हुए १९५८ में भागीरथजी की जीप की एक ट्रक से टक्कर हो गयी। इस दुर्घटना में उनके कूल्हे और टांग की हड्डी टूट गयी। वह बेहोश हो गये। उन्हें जयपुर लाया गया। अस्पताल में बहुत से लोग उन्हें देखने आये। जयपुर में भागीरथजी के मुनीम रामकृष्णजी पारीक 'धाड़ीजी' तो सारे समय मौजूद ही थे। जब भागीरथजी को होश आया तो उनकी सबसे पहले नजर पारीकजी पर पड़ी। उन्हें देखकर उन्होंने देखने आये दूसरे लोगों को कहा : "आप इसे (पारीकजी को) जानते हैं न ? इसका नाम धाड़ी (डाकू) है। यह बहुत धाड़े (डाके) डालता है।"

(पारीकजी का बचपन में बहुत शरारती होने के कारण 'धाड़ी' नाम पड़ गया, जो उनके अत्यन्त मृदुल और प्रेमल स्वभाव के बावजूद आज तक बना हुआ है।)

भागीरथजी के यह कहने पर कि "यह बहुत धाड़े (डाके) डालता है," धाड़ीजी ने उन्हें तपाक से मजाक में ही जवाब दिया "मैं तो आपके ही साथ रहा हूं। अगर अभी भी धाड़ी हूं तो जिम्मेवारी आपकी है।" अब भागीरथजी ने कहा "मेरे साथ तो बहुत लोग रहे हैं। उन्हें तो कोई 'धाड़ी' नहीं कहता। तुम्हें ही कहते हैं सो मेरी जिम्मेवारी कहां से है ?"

× × ×

अस्पताल में उनके दाहिने पांव के अंगूठे से लेकर छाती तक प्लास्टर लगा दिया गया था। अत्यधिक कष्ट था। उन्हें बहुत सारी दवाइयां देनी पड़ीं। इससे जीभ का स्वाद कड़ुवा हो गया। डाक्टर जब इंजेक्शन देने लगा तो भागीरथजी ने उससे पूछा "किसलिए इंजेक्शन दे रहे हैं?" डाक्टर ने कहा : "आपकी जीभ की कड़ुआहट दूर करने के लिए" इस पर भागीरथजी ने कहा : "डाक्टर साहब, मैंने यदि आपको इसका मौका दिया हो तो माफी चाहता हूं।" डाक्टर एक बार सकपका गया लेकिन जब उसकी समझ में आया जीभ की कड़ुआहट से मतलब कड़ुवे बोल से है तो बहुत हंसा और चकित भी हुआ कि इतनी पीड़ा के वक्त भी कोई मजाक कर सकता है।

x x x

भागीरथजी को जयपुर से कलकत्ता लाया गया। कूल्हे और टांग की हड्डी टूट जाने के कारण उनकी एक टांग को लोहे के यंत्र से खींच कर सीधा लटकाना पड़ा। इस क्रिया को 'ट्रैक्शन' कहा जाता है। भागीरथजी को इस अवस्था में काफी दिन रहना पड़ा। यह बहुत ही कष्टदायक था। क्षण भर पीड़ा कम होती तो दूसरे ही क्षण फिर बढ़ जाती। उनसे एक ऐसे सज्जन मिलने गये जिनसे मिलते ही वह विनोद की कोई न कोई बात करते थे। उन्होंने जब भागीरथजी से उनकी तबीयत के बारे में पूछा तो वह बोले "क्वचित पेनम, क्वचित चैनम, पेनम-चैनम क्वचित-क्वचित।"

x x x

इस दुर्घटना के बाद भागीरथजी को लगभग छह महीने बिस्तर पर रहना पड़ा। उनकी पुत्रवधू की मां रोज उन्हें देखने आतीं। दो दिन वह नहीं आयीं तो उन्होंने अपनी पुत्रवधू से पूछा : तुम्हारी मां क्यों नहीं आयी? पुत्रवधू ने जवाब दिया कि मां को अनिद्रा रोग हो गया है तो उन्होंने कहा "तुम्हारी मां तो बड़ी भयंकर निकली। माएं तो बेटी के घर का पानी तक नहीं पीतीं और तुम्हारी मां तुम्हारे घर से इतनी बड़ी चीज (अनिद्रा का रोग; भागीरथजी को भी यही था) उठा ले गयी।"

x x x

दुर्घटना के बाद जब भागीरथजी बिस्तर से उठे तो लड़खड़ा कर चलते। इन्हीं दिनों उनके पुत्र ज्योतिप्रकाश का विवाह होनेवाला था। मारवाड़ी घरों में विवाह के दो-तीन महीने पहले से गीत गाये जाने लगते हैं। एक दिन वह बिस्तर पर लेटे हुए थे कि उन्हें एक गीत के ये बोल सुन पड़े "बन्नाजी (वर) थारी (आपकी) चाल मतवाली, थारी चितवन नखराली, थारी बोली लाग प्यारी-प्यारी" तो उन्होंने कहा : "बन्नाजी की चाल मतवाली है कि नहीं, यह तो पता नहीं, पर मेरी चाल जरूर मतवाली है।"

x x x

ज्योतिप्रकाश की पत्नी का नाम मैना है। एक दिन भागीरथजी के पास बैठी हुई घर की महिलाएं आपस में चर्चा कर रही थी कि "मैना" नाम अच्छा नहीं लगता। किसी ने कहा हम उसे सारिका कहेंगे। मैना का अर्थ भी रह जायेगा और बुरा भी नहीं लगेगा। भागीरथजी चुप-चाप सब सुन रहे थे। बीच में ही वह बोले : "इतना सब सोचने की क्या जरूरत है? ज्योति का ही नाम तोता रख दो तो सारी समस्या अपने आप हल हो जायेगी।"

x x x

जीप-दुर्घटना के बाद उनकी टांग में खोट रह गयी। उन्हें दोनों पैरों में थोड़ी भिन्न प्रकार की चप्पलें पहननी पड़ती थीं। एक चप्पल की एड़ी थोड़ी ज्यादा ऊंची होती। चलने में बाद के दिनों में थोड़ी कठिनाई भी होने लगी। एक बार चलने में वह थोड़ा डगमगाये तो उनके साथ चल रही उनके एक मित्र की पुत्रवधू ने कहा 'थान पकड़ूं के, काकोजी (मैं आपको पकड़ूं क्या) ?' तो उन्होंने तपाक से कहा : "म तेरो के अपराध कर्‌यो (मैंने तुम्हारा क्या अपराध किया है) कि तूं मन पकड़सी (कि तुम मुझे पकड़ोगी) ?"

x x x

भागीरथजी एक बार बीमार पड़े तो उनका कार्डियोग्राम लिया गया। रिपोर्ट देख कर डाक्टर ने उनसे कहा : "आपका हार्ट (हृदय) तो बहुत अच्छा है।" इस पर भागीरथजी ने कहा : "आज तक किसी ने मेरा हार्ट खराब नहीं बताया लेकिन आपको इस बात पर शक कैसे हो गया।"

x x x

एक बार भागीरथजी आंखों के डाक्टर के पास अपनी आंख की जांच करवाने गये। लौट कर घर आये तो एक मुलाकाती ने पूछा 'कहां गये थे ?" उन्होंने कहा : "आंख दिखाने गया था।" मुलाकाती ने कहा : "आप किसी को आंख दिखा सकते हैं, यकीन नहीं होता" इस पर भागीरथजी ने कहा : "दिखाता तो बहुत हूं पर कोई डरता ही नहीं।"

x x x

१९७३ से भागीरथजी का स्वास्थ्य लगातार खराब ही होता जा रहा था। एक बार तो उन्हें निमोनिया हो गया और बचने की भी आशा नहीं रही। इस अवस्था में एक महिला उनसे मिलने गयीं तो उसने पूछा, "अब आपकी तबीयत कैसी है ?" तो उन्होंने हंस कर कहा : "कोई इलाज नहीं हो रहा है।" महिला चौंकी कि वह क्या कह रहे हैं। उसे कुछ भी समझ में नहीं आया कि क्या कहे। तब वह बोले : "एक हिन्दू और एक मुसलमान एक ही नौका में नदी पार कर रहे थे। बीच में नौका डूबने लगी तो 'मुसलमान अल्लाह ! अल्लाह ! अल्लाह ! बचाओ ! बचाओ !' चिल्लाने लगा और हिन्दू कभी राम को, कभी शिव को, कभी हनुमानजी को, कभी दुर्गाजी, को रक्षा करने के लिए बुलाने लगा। मुसलमान तो बच गया क्योंकि अल्लाह उसकी पुकार सुनकर तुरन्त दौड़ा चला आया लेकिन हिन्दू डूब गया क्योंकि जैसे ही रामजी उसकी रक्षा करने के लिए रवाना होने को तैयार हुए उसने शिवजी को बुलाना शुरू किया। रामजी यह सोच कर कि जब शिवजी को बुलाया जा रहा है तब उनके जाने की जरूरत नहीं है, डूबनेवाले के पास नहीं गये। इस प्रकार कोई भी देवता हिन्दू की रक्षा के लिए ठीक समय पर न पहुंच सका और वह डूब गया। मेरी हालत नौका वाले हिन्दू की तरह है। एक डाक्टर देख जाता है उसकी दवा चलते न चलते (परिवार के लोगों द्वारा) दूसरे डाक्टर को बुलाया जाता है और फिर तीसरे को। तुम समझ गयी न, इलाज क्यों नहीं हो रहा है।"

x x x

भागीरथजी जब मृत्यु-शय्या पर थे तब उनकी खुराक एकदम कम हो गयी। पुत्रवधुएं खाने का आग्रह करते हुए कहतीं कि खाना चाहिए, नहीं तो कमजोरी बढ़ती जायेगी। एक दो बार उन्होंने जबरदस्ती खाया भी। एक दिन पुत्रवधुओं के जोरदार आग्रह करने पर बोले : "कृष्ण जब दुर्योधन क कण (पास) संधि को संदेश लेकर गया, तब विन धर्म और अधर्म के है, बतान लाग्या तो दुर्योधन बोल्यो, "जानामि अहं धर्मो, न आजानामि अधर्मो। मेरी एक (धर्म) म वृत्ति कोनी और एक (अधर्म) स निवृत्ति कोनी। मेरी थे (पुत्रवधुएं) धर्म में वृत्ति कराओ या अधर्म से निवृत्ति दिलाओ तब तो कोई बात ह, उपदेश निरर्थक ह। थे लोग जो कहो हो मं सब समझूं हूं। मेर खाण की रुचि कोनी। मेरी रुचि बढ़ाओ जद तो बात बण। खाणो चाहिए बोलण मं फायदो कोणी। क्यूं ठीक ह न ?"

x x x

एक बार भागीरथजी की बड़ी पुत्री सावित्री (खेमका) उनके लिए बढ़िया विलायती ऊन का स्वेटर बुन रही थी। ऊन के डिब्बे पर 'मेड इन इंग्लैण्ड' लिखा था। उसे देख कर भागीरथजी बोले, "बहुत वर्ष पहले जब अश्विनी (भागीरथजी के पुत्र) बहुत छोटा था तब उसके सिर में चोट लग गयी। लगातार खून बह रहा था। मैं उसे डाक्टर के पास ले गया। डाक्टर टिंचरआयडिन की शीशी खोलने लगा तो अश्विनी न समझे, इस खयाल से मैंने डाक्टर से अंग्रेजी में पूछा, विल इट पेन (क्या इससे पीड़ा होगी) ? इस पर अश्विनी तुरन्त बोला" पी-ए-आई-एन पेन माने दर्द होता है। मैं यह दवा नहीं लगाऊंगा। तुम्हारे डिब्बे पर लिखा "मेड इन इंग्लैण्ड" माने विलायती होता है सो मैं यह स्वेटर नहीं पहनूंगा।"

x x x

अंगरेजी के संकेताक्षरों (ऐब्रिवियेशन) की भागीरथजी बड़ी सूझबूझवाली उलटबांसियां किया करते थे। अपने एक पौत्र को उन्होंने बी० एस० सी० (बैचेलर आफ साइंस) का मतलब 'ब्रेन सिवियरली क्रैक्ड' (मस्तिक गंभीर रूप से क्षतिग्रस्त) और एम० एल० ए० (मेम्बर आफ लेजिस्लेटिव आफ एसेम्बली) का मतलब "मेम्बर आफ ल्यूनैटिक एसाइलम" (सदस्य-पागलखाना) बताया।

x x x

भागीरथजी की पुत्रवधू को पुत्री हुई तो वह उसे अस्पताल में देखने गये। हालचाल पूछने के बाद कमरे के चारों ओर-नजर डाल कर बोले "तेरी सासु तन कमरों तो उन्नीस ही दिवाओ" (मारवाड़ी में अपेक्षाकृत खराब के लिए 'उन्नीस' बहुत ज्यादा बरता जाता है। कोई भी चीज पहले की तुलना में खराब होने पर उसे 'उन्नीस' और अच्छी होने पर 'इक्कीस' कहा जाता है)। पुत्रवधू की समझ में नहीं आया कि भागीरथजी ऐसा कैसे कह रहे हैं, सहसा उसे याद आया कि उसके कमरे का नम्बर 'उन्नीस' है तो वह खिलखिला कर हंस पड़ी।

x x x

भागीरथजी की पत्नी के भतीजे श्री राजेन्द्र बागड़ोदिया का घर का नाम 'मोती' है। मोतीजी उदयपुर में रहते हैं और पीपुल्स वेलफेयर सोसाइटी का काफी

काम देखते हैं इसलिए भागीरथजी को उनसे विशेष स्नेह था। वह मोतीजी को अक्सर पूछते "तू सांचो मोती है कि कल्चर ?"

X X X

मोतीजी ने एक बार भागीरथजी से उदयपुर आने का बहुत आग्रह किया तो उन्होंने पूछा "वहां स्नेह है कि नहीं ?" मोतीजी ने कहा कि वह तो कलकत्ता गयी हुई हैं। इस पर भागीरथजी ने कहा "जब स्नेह ही नहीं हैं तब मैं आकर क्या करूंगा।" मोतीजी को एकबारगी समझ में नहीं आया कि भागीरथजी क्या कह रहे हैं फिर याद आया कि उनकी पत्नी का नाम स्नेह है और स्नेह का मतलब स्नेह ही होता है।

X X X

सीतारामजी के दौहित्र का नाम प्रसन्न कुमार है। एक दिन भागीरथजी ने प्रसन्नकुमारजी को फोन किया तो उन्होंने कहा "मैं प्रसन्न हूं।" इस पर भागीरथजी ने फटाक से कहा : "आप प्रसन्न हैं, यह तो मैं समझ गया, लेकिन आप हैं कौन ?"

X X X

एक वार भागीरथजी बम्बई में थे तो घण्टी बजी। उन्होंने पूछा : "कौन आया है ?" तो उनकी पत्नी ने कहा : "वही तीनों—ज्योति (उनका पुत्र), कांति (ज्योतिप्रकाश के मित्र) और प्रकाश (भागीरथजी की पुत्रवधू के भाई)।" इस पर भागीरथजी ने कहा : "ये तीन कहां से हुए, ये तो एक ही हैं।" ज्योति, कांति और प्रकाश का अर्थ एक ही है।"

X X X

भागीरथजी अपने पुत्र के बम्बई के नये फ्लैट में पहली बार आये। लिफ्ट में चढ़े तो पुत्रवधू ने उनसे कहा 'जी' को दबाइये ('जी' का मतलब ग्राउण्ड फ्लोर का बटन)। इस पर उन्होंने कहा : "जद 'जी' दब जासी तो रहसी के ?"

X X X

एक बार भागीरथजी की सबसे छोटी पुत्रवधू उमा के ताऊ कलकत्ता आये तो अपनी भतीजी से मिलने गये तो वह पहले भागीरथजी से मिले। बात-बात में उन्होंने पूछा; उमा घर में है न ? इस पर भागीरथजी ने कहा वह तो नहीं है, बाहर गयी है। सन्तोष (भागीरथजी के सबसे छोटे पुत्र) के साथ वकील के पास गयी है। ताऊ वकील के पास जाने की बात सुन कर चिन्तित हुए और उन्होंने उद्विग्न होकर पूछा : क्या हुआ ? इस पर भागीरथजी ने कहा : "वह आप लोगों पर मुकदमा करने की सोच रही है इसलिए वकील से सलाह करने गयी है। ताऊ की समझ में कुछ नहीं आया—क्या मुकदमा, तो भागीरथजी बोले : "उमा इसलिए मुकदमा करने की सोच रही है कि आप लोगों ने उसके विवाह में तो कम रुपये लगाये लेकिन उसकी दूसरी बहनों के विवाह में ज्यादा।" यह सुन कर ताऊ और साथ में बैठे सभी लोगों का हंसी के मारे बुरा हाल हुआ।

X X X

भागीरथजी के घर के बगल में मोहनलालजी टीबरेवाल रहते हैं। वह बड़े ही धार्मिक वृत्ति के व्यक्ति हैं, साल में छह महीने वृन्दावन रहते हैं। भागीरथजी को उनसे रोज मिले

बिना चैन नहीं पड़ता था। मोहनलालजी की पत्नी का नाम शान्ति है इसलिए भागीरथजी उन्हें रोज ही कहते : "लोग शान्ति प्राप्ति करने के लिए इतने प्रयत्न करते रहते हैं और उन्हें वह मिलती नहीं। लेकिन एक तुम हो जो जब चाहे तब शान्ति को बुला सकते हो।"

x x x

भागीरथजी और मोहनलालजी के बीच सारी बातचीत विनोद में ही होती। यह कहने की जरूरत नहीं होनी चाहिए यह मारवाड़ी में ही होती थी। भागीरथजी की मृत्यु के दो महीने पहले मोहनलालजी एक बार उन्हें देखने गये तो उन्हें देख कर भागीरथजी ने कहा, "मोहन, ठाकुर जी मेर इस्तीफो मंजूर कर लियो।' इस पर मोहनलालजी ने कहा "कोनी कर्‌यो (नहीं किया)।" "कयां ?" भागीरथजी ने पूछा, इस पर मोहनलालजी कहा, "ठाकुर जी न अकेल न पावर नहीं ह। लक्ष्मीजी की मंजूरी क बिना इस्तीफो मंजूर कोनी हो सक।" भागीरथजी ने हंसने लगे।

x x x

मोहनलालजी एक बार वृन्दावन से कलकत्ता लौटने पर घर में दाखिल हुए ही थे कि भागीरथजी का फोन आया, "कन्हैये से तेरी बात होगी (हो गयी) ?" मोहनलालजी ने कहा, "होगी थान (आपको) बुलाया ह।" भागीरथजी कहा "मन (मुझे) ही बुलाया ह कि गंगा (भागीरथजी की पत्नी) न भी बुलाया ह।" मोहनलालजी ने कहा "थारी कीमत गंगा क गैल (पीछे) ही ह ?" भागीरथजी ने कहा, "गंगा की भी कीमत मेरे गैल ही ह।"

x x x

श्री रामेश्वर जी टांटिया बहुत मोटे खद्दर का लम्बा कुरता पहना करते थे। एक बार वह भागीरथजी के साथ खादी खरीदने खादी भण्डार गये तो भागीरथजी ने भण्डार के प्रबन्धक से पूछा, "थार भण्डार में बाबाजी क झोल को कपड़ो मिल ह के ?"

x x x

भागीरथजी की पौत्री (रश्मि) का विवाह था। रामेश्वरजी टांटिया ने, जो भागीरथजी के पड़ोस में रहते थे उनसे कहा कि घर में विवाह है, कोई काम हो तो बताइये। भागीरथजी ने कहा कोई काम नहीं है। दो तीन दिन बाद रामेश्वरजी ने फिर आग्रह किया कि उन्हें कोई काम बताया ही जाय तो भागीरथजी बोले "म्हार गीत गाण क काम को इन्तजाम कोनी होयो। गीत गाण को काम थे करद्‌यो।"

x x x

भागीरथजी के पुत्र अश्विनी कुमार का विवाह हुआ था। अश्विनी कुमार उस वक्त वीरमगांव रहते थे। भागीरथजी की पत्नी गंगा देवी पुत्रवधू की गृहस्थी जमाने के लिए वीरमगांव गयी तो वहीं जम गयी यानी जितने दिन के लिए गयी थीं उससे ज्यादा रह गयीं। इस पर भागीरथजी ने कलकत्ता से उन्हें फोन पर कहा : "वठइ मरण को विचार ह के ? कांधो देणन ओर बेटां न भेजूं के ?' यह सुनकर गंगा देवी ने हंसते-हंसते नहले पर दहला जवाब दिया "बेटो तो उर ह, ओर बेटां न भेजन की जरूरत कोनी। थान आणो होव तो आ सको हो।"

x x x

भागीरथजी अपने पुत्र अश्विनीकुमार के पास बम्बई में थे। एक दिन ताराचन्दजी साबू उनसे मिलने आये तो उन्होंने अश्विनीकुमारजी से भी मिलने की इच्छा प्रकट की तो उन्हें बताया गया कि उनके शिक्षक आये हुए हैं और वह कसरत कर रहे हैं। इस पर साबूजी ने कहा : कसरत के लिए शिक्षक की क्या जरूरत है तो किसी ने कहा शिक्षक आते हैं तो कसरत करते हैं नहीं तो नहीं करते। भागीरथजी ने इस पर साबूजी को कहा : "छोटो टाबर (बच्चा) होव ना, मास्टर आव तो जद पढ़ ले नई तो कोनी पढ़।"

x x x

सीतारामजी का अभिनन्दन समारोह था। श्रीमती महादेवी वर्मा सीतारामजी और भागीरथजी को अपना भाई मानती हैं। समारोह में महादेवीजी ने सीतारामजी को दुशाला ओढ़ाया तो भागीरथजी ने तुरन्त मजाक किया "यह तो अंधेर हो रहा है। हमारे यहां तो रीति यह है कि भाई बहन को चूनड़ी ओढ़ाता है लेकिन यहां तो इतने बड़े लोगों के सामने उलटी बात हो रही है—बहन भाई को दुशाला उढ़ा रही है और कोई कुछ नहीं कह रहा है।"

x x x

एक बार भागीरथजी ने अपने एक परिचित व्यक्ति को एक पुस्तक दी। इस व्यक्ति ने पूछा आपने यह पुस्तक मुझे ही क्यों दी तो भागीरथजी ने कहा : "जैसे पिता सुपात्र देख कर उसको अपनी बेटी सौंपता है उसी तरह आपको सुपात्र जान कर यह पुस्तक दे रहा हूं।" यह परिचित व्यक्ति अपनी व्यस्तता के कारण पढ़ नहीं पाते थे, लेकिन अपने को सुपात्र सिद्ध करने के लिए उन्हें व्यस्तता के बावजूद किताब पढ़नी पड़ गयी।

x x x

राजस्थान के अकाल के समय गायों के चारे के लिए भागीरथजी चन्दा इकट्ठा कर रहे थे। एक धनी व्यक्ति बड़ी रकम देने में सोच-विचार करने लगे तो भागीरथजी ने कहा "विचारो के हो, कलम लिख दो। जब वैतरणी पार करण को समय आसी तो थे सबसे पहली पार उतरोगा। म्हें लोग कोई थाको पल्लो नई पकड़ पावांगा।" हंसते हुए धनी व्यक्ति ने बड़ी रकम लिख दी।

१६
उपसंहार

भागीरथजी के धार्मिक संस्कार गहरे थे। उनके हर कार्य के पीछे ये संस्कार किसी न किसी रूप में काम करते मालूम पड़ते हैं। ईश्वर में उनकी आस्था के प्रमाण रूप में हम यह भी लिख सकते हैं कि अपने द्वारा कोई अच्छा काम होने पर वह अक्सर कहा करते : "सब कुछ वही (ईश्वर) करता है। मैं तो निमित्त मात्र हूं।" यह उनका तकियाकलाम भी था। जब वह मृत्यु-शैय्या पर थे तब एक दिन सत्यनारायणजी टांटिया ने उनसे कहा : "थे भोत काम कर्‌या हो, समाज थारो ऋणी ह", तो भागीरथजी ने कहा : "म करण वालो कुण, काम तो सब ईश्वर कर ह। म तो निमित्त मात्र हूं।" लेकिन आत्म-निरीक्षण की प्रवृत्ति और "मो सम कौन कुटिल खल कामी" की भावना के चलते उन्हें यह लगता रहता था कि ईश्वर में उनकी आस्था में कमी है; वह वैसी नहीं, जैसी कि होनी चाहिए।

जीवन के अन्तिम वर्षों में वृद्धावस्था और जर्जर स्वास्थ्य के बावजूद उन्होंने पशुपतिनाथ, बद्रीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री और यमुनोत्री की तीर्थ-यात्राएं कीं। यमुनोत्री की यात्रा के बारे में उन्होंने स्वजनों को यह घटना सुनायी : "मैं डांडी में बैठा यमुनोत्री के दर्शन करने जा रहा था। रास्ते में एक अंधी बुढ़िया माई मिली। मैंने उससे पूछा : माई कहां जा रही हो ?" तो उसने जवाब दिया : यमुना माई के दर्शन करने। इतनी ही बात हुई कि मेरी डांडी आगे बढ़ गयी। कुछ दूर जा कर मैंने अपनी डांडी रुकवाई और बुढ़िया माई के आने की प्रतीक्षा करने लगा। थोड़ी देर बाद माई जब डांडी के पास पहुंची तो मैंने उससे पूछा : माई, तुम तो अन्धी हो। यमुना माई के दर्शन कैसे करोगी ? इस पर माई ने कहा : मैं अन्धी हूं लेकिन यमुना माई तो अन्धी नहीं है, और आगे बढ़ गयी। मुझे धक्का सा लगा। डांडी में बैठा, सोचता रहा कि बुढ़िया माई की आस्था और भक्ति के सामने मेरी आस्था और भक्ति कितनी तुच्छ है।"

तुच्छता का भाव व्यक्ति में दो प्रकार के स्थायी मनोभाव पैदा कर सकता है— एक, तुच्छता की भावना और आत्म-शंकाएं व्यक्ति को इतनी आविष्ट कर डालें कि वह किसी भी कार्य को करने में नितांत असमर्थ हो जाय; दूसरे, तुच्छता की भावना विनम्रता का रूप ले ले और व्यक्ति अपने भरसक जो हो करे, भरसक करना उसका स्वधर्म बन जाय। भागीरथजी में तुच्छता के भाव ने दूसरा मनोभाव ही पैदा किया। अपने भरसक जो हो उसे करना, उनके जीवन का मूलमंत्र बना। भूकम्प, बाढ़ और अकाल में राहत कार्य करते हुए, अपने पास आये लोगों की सहायता करते हुए, गुप्त दान देते हुए, सीकर के टी० बी० अस्पताल का संचालन करते हुए उन्हें दारुण कष्ट और भयानक गरीबी के आगे अपने प्रयत्नों की तुच्छता का हर समय एहसास रहता था, लेकिन इसके साथ ही यह दृढ़ भाव भी रहता कि जितना कर सकें उतना करने में

हिचकिचाना नहीं है। हिचकिचाये तो स्वधर्म से विमुख होंगे—"स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि" और "स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावह।"

धार्मिक संस्कारों के चलते ही भागीरथजी में स्वधर्म की यह धारणा विकसित हुई। स्वधर्म की धारणा से व्यक्ति में व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं की लपटें बुझ जाया करती हैं और उसमें स्वाभाविक रूप से विनम्रता आती है। भागीरथजी की विनम्रता इसीलिए सहज और स्वाभाविक थी। हम जब व्यक्ति के किसी गुण को सहज और स्वाभाविक मान बैठते हैं तो यह सोचने की गलती भी करते हैं कि उसके पीछे कोई प्रयत्न नहीं होता, वह अनायास ही उसे प्राप्त हुआ होता है। लेकिन ऐसा होता नहीं, यह इतना आसान भी नहीं। जो गुण अत्यन्त सहज और स्वाभाविक लगता है, उसके पीछे सजग रहने और आत्म-शोधन की प्रक्रियाएं निरन्तर चलती रहती हैं। भागीरथजी उन पत्रों को तुरन्त फाड़ दिया करते थे जिनमें उनकी प्रशंसा होती। बातचीत में प्रशंसा किये जाने पर बातचीत को तुरन्त मोड़ देते या सीधे-सीधे कह देते कि हल्की बात न करें। हमें बहुत सारे लोगों ने बताया कि भागीरथजी अपनी तस्वीर लेने नहीं देते थे। १९७३ के राजस्थान के अकाल के समय राजस्थान के एक बड़े नेता कलकत्ता आये हुए थे। उनकी तस्वीर लेने के लिए एक फोटोग्राफर पहुंचा हुआ था। नेता ने अपने साथ फोटो खिचवाने के लिए कई लोगों को खड़ा किया, भागीरथजी को भी खड़े होने को कहा तो वह बैठे रहे और बोले : "कुछ काम करूं तब तो फोटो खिचवाऊं"। यह सुन कर जो लोग खड़े हुए थे वे भी पीछे हट गये। यह सब सजग रहने और आत्म-शोधन की प्रक्रियाओं के निरन्तर चलते रहने का संकेत है—प्रशंसा सुनना और फोटो खिचवाना कहीं न कहीं अभिमान और आत्म-मुग्धता को जन्म देता है, इसलिए उनसे हमेशा दूर रहने की चेष्टा करते रहना है। कोई आश्चर्य नहीं कि भागीरथजी से रोज मिलनेवाले किसी व्यक्ति को किसी ने उनका चापलूस कहा हो। भागीरथजी ने अपनी सजगता और आत्म-शोधन के 'सहज और स्वाभाविक गुण' के चलते चापलूस जनमने ही नहीं दिये। हमारे देश में तो जो धनी-मानी या नेता हुआ, वह प्रशंसा के सिवाय कुछ सुनना ही नहीं चाहता। यही नहीं, प्रशंसा न करने पर वह सामनेवाले को दुश्मन तक मानने लगता है। इसके चलते हमारे देश में चापलूसों की संख्या इतनी तेजी से बढ़ रही है कि कोई हिसाब लगाना ही मुश्किल हो गया है।

स्वधर्म की धारणा के कारण भागीरथजी ने कहीं यह स्वीकार कर लिया था कि बड़े परिवर्तन और सारे संसार के दुख हरने का महत् कार्य उनकी क्षमता के परे है, उन्हें तो लोगों के तात्कालिक कष्ट दूर करने का तात्कालिक काम वह जितना कर सकते हैं, करना चाहिए। भागीरथजी कोई क्रांतिकारी नहीं थे। गांधीवादी मूल्यों में आस्था के सिवाय समाज-परिवर्तन का भी कोई नक्शा उनके दिमाग में नहीं था। लेकिन राजनीति को वह साधु-सन्तों की तरह गन्दी वस्तु नहीं मानते थे। समाज और इतिहास के बारे में अपनी सहज समझ से उन्होंने जाना था कि आज के युग में राजनीति सर्वव्यापी है और उससे बचने की चेष्टा करना गलत है; हर व्यक्ति का यह कर्त्तव्य है कि वह राजनीति को ज्यादा से ज्यादा पवित्र बनाने की चेष्टा करे। इस एहसास के साथ उन्होंने यह भी देख लिया था कि राजनीति में जिस कौशल की जरूरत होती है,

वह उनमें नहीं है और उनकी अन्तः प्रेरणा उन्हें ऐसे कामों को करने की ही ओर प्रवृत्त करती है जिनसे लोगों का कष्ट तत्काल दूर होता दिख पड़े, इसलिए राजनीति में सक्रिय होने पर वह अपनी उस शक्ति का क्षय और अपव्यय ही करेंगे जो रचनात्मक कार्यों और राहत-कार्यों में अच्छी तरह लगा सकते हैं।

इसलिए उन्होंने सक्रिय राजनीति में कभी भाग नहीं लिया और आजादी के बाद एम० पी० आदि होने के प्रलोभनों को अपने मन में कहीं जगह ही न दी। यही नहीं, उन्होंने अपने मित्रों को भी इस प्रकार के प्रलोभनों से बचाने की कोशिश की। सीतारामजी की डायरी से पता चलता है कि १९५२ में उन्हें (सीतारामजी को) चुनाव में खड़े होने के लिए कई लोगों ने कहा और वह इस बारे में सोचने भी लगे तो भागीरथजी ने उनको सलाह दी कि इस पचड़े में उन्हें नहीं पड़ना चाहिए। आजादी के पहले भी भागीरथजी ने सक्रिय राजनीति के बजाय रचनात्मक कार्यों के क्षेत्र को ही चुना था—खादी, हरिजनोद्धार, हिन्दी-प्रचार आदि। यहां हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि ये सारे रचनात्मक कार्य स्वाधीनता आन्दोलन के अभिन्न अंग थे। स्वाधीनता आंदोलन में सक्रिय भाग लेनेवाले कार्यकर्ताओं की उन्होंने हर प्रकार से मदद की। उनके प्रति श्रद्धा का यह भाव रखा कि वे पहली पंक्ति में ब्रिटिश सरकार से सीधे जूझ रहे हैं और वह खुद स्वाधीनता आन्दोलन की दूसरी पंक्ति में हैं। ऐसे कार्यकर्ताओं को वह आजादी के २५-३० वर्ष बाद भी नहीं भूले। इसी ग्रन्थ में स्वाधीनता-संग्राम में भाग लेनेवाली एक महिला सेनानी के प्रति भागीरथजी की सम्वेदना का बहुत ही मार्मिक वर्णन श्री विजय ढांढनिया ने अपने संस्मरण में किया है। श्री मेघराज सेवक ने, जिनका भागीरथजी से पचास वर्ष से सम्बन्ध रहा और जो भागीरथजी के अनेक कार्यों में साथ रहे, हमें बताया कि भागीरथजी स्वाधीनता आन्दोलन के कार्यकर्ताओं से उनके घर की हालत के बारे में खोद-खोद कर पूछा करते थे और उनकी इस तरह मदद किया करते थे कि किसी दूसरे को उसका पता भी नहीं लगता था। आजादी के बाद राजनीति के निरन्तर मूल्यहीन होते रहने के माहौल में उनकी चेष्टा यही रही कि सत्ताधारियों से जो भी कल्याणकारी काम वह करवा सकें, करवाने की चेष्टा करें।

भागीरथजी के सारे जीवन पर विहंगम दृष्टि डालने पर वह कभी-कभी एक मिशनरी के जीवन सरीखा मालूम पड़ता है। क्वेकर और ईसाई मिशनरियों के जीवन के बारे में पढ़ने पर मालूम पड़ता है कि आर्त्त की सेवा से अपने जीवन की शुरुआत कर वे आगे बढ़ते हुए ऐसी संस्थाओं के निर्माण में लगते हैं जिनसे कष्ट के स्थायी उपचार की व्यवस्था हो। भागीरथजी के जीवन में मिशनरियों की यह प्रवृत्ति स्पष्ट दिखायी पड़ती है। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में राजस्थान में वह इसी तरह की संस्थाओं के निर्माण में लगे हुए थे।

(२)

इस जीवन-वृत्त के प्रारम्भ में हमने लिखा है कि भागीरथजी जैसे गांधी-युग के व्यक्तियों को गांधीजी के परिप्रेक्ष्य के बिना समझना कठिन है। यहां प्रारम्भ के उस सूत्र को पकड़ कर हम भागीरथजी के व्यक्तित्व पर विचार करेंगे।

एक प्राचीन देश में कोई भी नयी सभ्यता आसानी से अपनी जड़ नहीं जमा सकती। अंग्रेजों के आगमन से लेकर आज तक जो लोग हमारे देश को पश्चिमी नमूने का आधुनिक और औद्योगिक राष्ट्र बनाने की कल्पना करते आये हैं, वे इस सत्य को देख सकने में एकदम असमर्थ रहे। ऐसे लोग माया में पड़े अन्धे हैं। इन्होंने कभी यह सोचने तक की कोशिश नहीं की कि पश्चिम के ढांचे को अपनाने का क्या नतीजा होगा— एक तो हमारे जैसे देश के लिए यह अव्यावहारिक है, दूसरे इसको अपनाने से देश की अपनी जो भी अस्मिता और ऊर्जा है, वह भी नष्ट हो जायेगी। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि गांधीजी की हत्या के बाद से देश में एक 'नया भारत' या 'सपने का भारत' बनाने का आन्दोलन समाप्त हो गया और पश्चिम के अन्धानुकरण में हम आज जैसी दारुण परिस्थिति में पहुंच गये हैं। एक गांधीवादी अर्थशास्त्री ने हाल में लिखा भी है : "जिस हिन्दुस्तानी दिमाग को अंग्रेज २०० सालों में भी खरीद नहीं पाये, उसे आजादी के बाद हमारे ही देसी पिशाचों ने कौड़ियों के भाव बेच डाला।"

आज की स्थिति में पलट कर यह देखना जरूरी हो गया है कि गांधीजी देश के करोड़ों लोगों को, जिनमें भागीरथजी जैसे लोग भी थे, कैसे अनुप्राणित और प्रेरित कर पाये। गांधीजी पर यह आरोप लगाया जाता है कि उन्होंने लोगों के धार्मिक संस्कारों और धार्मिकता को अपील कर देश के एक आधुनिक राष्ट्र बनने में बाधा खड़ी की। ऐसा आरोप लगानेवालों के दिमाग में आधुनिक राष्ट्र का मतलब आधुनिक राष्ट्र न हो कर पश्चिम के ढंग का राष्ट्र होता है। लेकिन गांधीजी भारत को पश्चिमी नमूने का आधुनिक राष्ट्र नहीं बनाना चाहते थे। उन्होंने तो परिग्रह और मनुष्य पर मशीन के आधिपत्य पर आधारित पश्चिमी सभ्यता को पापपूर्ण माना था। भारतीय राजनीति में पदार्पण के ९ साल पहले, १९०८ में ही गांधीजी ने 'हिन्द स्वराज्य' में देश की सभ्यता और संस्कृति के अनुरूप एक सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक ढांचे की कल्पना प्रस्तुत की थी और जीवन भर उसे मज्जा प्रदान करने की कोशिश करते रहे। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि हमारा देश पश्चिमी सभ्यता के तथाकथित श्रेष्ठ होने के कारण नहीं, बल्कि अपनी देह और आत्मा के सड़ने के कारण गुलाम हुआ है। इसीलिए उन्होंने आत्म-निरीक्षण और आत्म-शोधन की आवश्यकता बतायी और लोगों के धार्मिक संस्कारों को परिष्कृत कर सत्य और अहिंसा के दो आधारभूत विश्वासों पर उन्हें एक नया और आधुनिक रूप देने की कोशिश की।

अंगरेजी राज की प्रचण्ड शक्ति, देसी पश्चिम-भक्तों के व्यंग्य व तिरस्कार, कट्टर और रूढ़िवादी हिन्दुओं के विरोध और सर्वव्यापी व सर्वनाशी रूप ग्रहण करने-वाली ताकतवर पश्चिमी औद्योगिक सभ्यता के बावजूद गांधीजी हमारे देश के लोगों को अनुप्राणित और प्रेरित कर सके तो उसका कारण वह आदर्श था जो उन्होंने देश-वासियों के समक्ष रखा। इस प्रकार के आदर्श के बिना वह देशवासियों में न आत्म-सम्मान की भावना पैदा कर सकते थे और ना ही उन्हें अन्याय के खिलाफ लड़ने को प्रेरित कर पाते।

आज हम गांधीजी के प्रभाव को एक किंवदन्ती के रूप में देखने के आदी हो गये हैं। लेकिन जब हम भागीरथजी जैसे व्यक्तियों के जीवन में प्रवेश करते हैं तो

उस युग में भी प्रवेश पा लेते हैं जब किंवदन्ती, किंवदन्ती न होकर वास्तविकता थी। 'हिन्द स्वराज्य' और 'अनासक्तियोग' का भागीरथजी जैसे लोगों के लिए वही स्थान रहा होगा जो चीन में माओ की 'रेड बुक' का कभी था।

भागीरथजी जैसे धार्मिक संस्कारों के व्यक्ति के निकट गांधीजी की महत्ता सिर्फ इसलिए नहीं थी कि वह अंगरेजों से भारतीय जनता को मुक्ति दिला सकते थे, इसलिए भी थी कि वह धर्म, सत्य और अहिंसा पर आधारित व्यवस्था कायम करना चाहते थे। गांधीजी ने व्यक्ति में विदेशी हुकूमत और अन्याय के खिलाफ चेतना पैदा करने के साथ-साथ उसे इस बात के लिए भी प्रेरित किया कि वह अपने भरसक परमार्थ करे। इसके लिए उन्होंने व्यक्ति के धार्मिक संस्कारों को कुरच-कुरच कर निष्कलुष और परिष्कृत करने की कोशिश की ताकि उनका सही मानवीय रूप निखर कर आये।

अपनी सम्वेदना के कारण हो सकता है कि भागीरथजी गांधीजी के विना भी अपने धार्मिक संस्कारों को मानवीय रूप प्रदान कर सकते लेकिन तव उनका रूप निश्चय ही सीमित होता, इतना विकसित नहीं। गांधीजी ने भागीरथजी जैसे लोगों को अपने धार्मिक संस्कारों के उत्स तक पहुंचने में मदद की और यह दिखाया कि "मैं सारे शास्त्रों को अस्वीकार करूंगा यदि वे संयत तर्क और अन्तरात्मा की आवाज के प्रतिकूल आदेश देते हों...सत्ता की पूजा दिल और दिमाग की कमजोरी का सवूत है...जो कुछ भी सत्य की कसौटी पर खरा नहीं उतरता, उसे अस्वीकार करना होगा, भले ही उसका स्रोत कुछ भी क्यों न हो" (गांधीजी)।

गांधीजी के कारण भागीरथजी जैसे व्यक्ति अपने धार्मिक संस्कारों के वावजूद यह देख सके कि शास्त्रों में स्त्रियों और शूद्रों के वारे में जो कहा गया है, वह क्रूर और अन्यायपूर्ण तथा धर्म की मूल भावना के विपरीत है। शास्त्रों को क्रूर और अन्यायपूर्ण कहनेवाले तो वहुतेरे थे पर उनकी बात भागीरथजी जैसे व्यक्तियों को अपील नहीं कर सकती थी क्योंकि ऐसा कहनेवाले धर्म को ही वुराई की जड़ घोषित करते थे, जवकि गांधीजी का कहना था "मुझे तो धर्म प्यारा है इसलिए मुझे सबसे ज्यादा दुख इस वात का है कि हिन्दुस्तान धर्म-भ्रष्ट होता जा रहा है। धर्म का अर्थ मैं हिन्दू, मुस्लिम या पारसी धर्म नहीं करता। इन सब धर्मों के अन्दर जो धर्म है वह हिन्दुस्तान से जा रहा है, हम ईश्वर से विमुख हो रहे हैं" (हिन्द स्वराज्य)।

हमने देखा है कि गांधीजी के प्रभाव में आये हिन्दुओं में गांधी-युग के दिनों में धार्मिक उदारवाद वढ़ता ही गया। ऐसे एक उदार हिन्दू के रूप में हम पाते हैं कि भागीरथजी में हरिजन और स्त्री के प्रति विशेष सम्वेदना थी क्योंकि ये तथाकथित शास्त्रों के कारण ही सबसे ज्यादा उत्पीड़न के शिकार हुए हैं। भागीरथजी को मुसलमान कभी यवन या म्लेच्छ नहीं जान पड़ा। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की विचारधारावाले लोग जब मुसलमानों के प्रति विद्वेष की बात कहते तो भागीरथजी के चेहरे पर पीड़ा और विरक्ति के भाव स्पष्ट दिखायी देने लगते थे। गो-रक्षा में भागीरथजी की सहज ही रुचि थी लेकिन इस सम्बन्ध में भी उनके विचार एक उदार हिन्दू के थे, उन्होंने लिखा था : "केवल गो माता की जय बोलने से और गोपाष्टमी के दिन उसके माथे पर तिलक लगाने से ही इस युग में गो-रक्षा होनी मुश्किल लगती है। हर हिन्दू, जिनमें मैं अपने

को भी शामिल करता हूं, यह चाहेगा कि गाय की रक्षा हर हालत में होनी चाहिए लेकिन चाह के साथ-साथ वैज्ञानिक रीति से प्रयत्न हो तभी यह हो सकेगा।"

(३)

गांधीजी का भागीरथजी पर प्रभाव कार्यकारी हो सका तो उसका एक कारण यह भी था कि गांधीजी की बातें एक ही साथ उनके संस्कारों से मेल खाती थीं तो बुद्धि से भी उचित जान पड़ती थीं। यह सोने में सुहागेवाली बात गांधीजी के सिवाय किसी भी अन्य महात्मा, विचारक, नेता और तत्वज्ञानी के साथ नहीं हुई। गांधीजी के प्रभाव ने भागीरथजी के व्यक्तित्व का विस्तार किया और उनके सहज स्वाभाविक गुणों को पुष्ट किया। इस प्रभाव के विना भागीरथजी के व्यक्तित्व की कल्पना करना कठिन है।

गांधीजी के प्रभाव में आये धार्मिक वृत्ति के लोगों ने अपने धार्मिक संस्कारों का इस तरह रूपांतरण किया कि धर्म के वाह्याडम्बरों में उनका कोई विश्वास नहीं रह गया। वाह्याडम्बर उन्हें व्यक्ति को वास्तविक धर्म से विमुख करनेवाले और अन्ध-विश्वास वढ़ानेवाले प्रतीत होते थे। गांधीजी ने हमेशा धर्म के अनुसार आचरण करने की वात कही लेकिन यज्ञ, हवन और अन्य वाह्याचारों को तनिक भी प्रश्रय नहीं दिया वरन् इनके खिलाफ एक प्रकार का धर्म-युद्ध ही छेड़ा। 'अनासक्तियोग' में तो उन्होंने 'यज्ञ' को एक नयी ही परिभाषा दी : "यज्ञ का अर्थ है मुख्य रूप से परोपकार के लिए शरीर का उपयोग।" गांधीजी के जीवन-काल में उनके प्रभाव से हमारे देश में अन्धविश्वासों और यज्ञ व हवनों का लोप हो रहा था लेकिन उनकी हत्या के वाद तो ऐसा लगता है कि अन्धानुकरण और अन्धविश्वास—उपभोक्ता संस्कृति और यज्ञ, हवन तथा ज्योतिष आदि—हमारे जीवन को ग्रसते ही चले जा रहे हैं; हमें हास्यास्पद बनाते जा रहे हैं।

भागीरथजी का धर्म के वाह्याडम्बरों में तनिक भी विश्वास न था। उन्होंने खुद यज्ञ, हवन, पूजा-पाठ कभी नहीं किया। किसी ज्योतिषि को कभी हाथ नहीं दिखाया। वाह्याडम्बरों के प्रति उनकी अरुचि का तथाकथित आधुनिकता से कोई सम्वन्ध नहीं था। यह तो इसलिए थी कि वाह्याडम्बर व्यक्ति को संकीर्ण बनाते हैं और उसे नकली और झूठा आत्म-सन्तोष प्रदान करते हैं। इसीलिए उनमें वाह्याडम्बरों के प्रति अरुचि के साथ धर्म के आत्मिक आनन्दवाले भक्ति पक्ष के प्रति गहरी आसक्ति थी। भक्ति-साहित्य उनका सबसे प्रिय साहित्य था। भक्तों का जीवन उन्हें मोहता था क्योंकि भक्ति का उनके निकट अर्थ था—अहं का पूर्ण विसर्जन।

हमारे देश में पता नहीं किस तर्क से यह मान लिया गया है कि जिस व्यक्ति में धर्म के वाह्याडम्बरों के प्रति अरुचि होगी, उसमें देश के इतिहास और परम्पराओं के प्रति भी अरुचि होगी। इस भ्रामक धारणा के कारण हमारे देश में ऐसे लोगों की संख्या कम नहीं है जो लोक-संस्कृति, देश के इतिहास और परम्पराओं में रुचि रखने वाले लोगों को पुनरोत्थानवादी मानते हैं। भागीरथजी की देश के इतिहास और परम्पराओं में गहरी रुचि थी, और इस रुचि का पुनरोत्थानवाद से किसी प्रकार का सम्बन्ध न था। धार्मिक स्थानों की यात्रा में भी उन्हें आनन्द आता था। रामेश्वरम्

को छोड़ कर वह प्रायः सभी प्रमुख तीर्थ-स्थानों की यात्रा कर चुके थे। जब भी वह तीर्थ-यात्रा पर जाते, पंडों की अश्लीलता को झेल कर भी उनसे पुरानी बहियां निकलवाते और उनमें अपने पूर्वजों के हस्ताक्षर और उनके द्वारा लिखे गये सन्देश बड़े चाव से देखते। भागीरथजी के पुत्र अश्विनीकुमार जब काश्मीर में मार्तण्ड और अन्य तीर्थ-स्थानों में गये तो सब जगह उन्हें भागीरथजी के लिखे हुए सन्देश और हस्ताक्षर मिले।

किशनगढ़ में एक बार सारा परिवार—पुत्रियां, सावित्री और ऊषा, पुत्रवधुएं पौत्र और दौहित्र—जुटा तो भागीरथजी ने पुष्कर के पण्डे को बुलवाया और सबको १५० वर्ष पहले के अपने परदादा आदि के हस्ताक्षर बड़े चाव से दिखाये और पण्डे की बही में प्रत्येक बच्चे से हस्ताक्षर करवाये। उन्होंने खुद पण्डे की बही में लिखा: "यह पुरोहितों की जो संस्था है और जिसे आजकल के पढ़े-लिखे लोग निकम्मी बताते हैं, वे नहीं जानते कि यह संस्था कितनी उपयोगी है। मैं चाहता हूं कि आनेवाली पीढ़ी इसकी उपयोगिता समझे और इसका सम्मान करे।"

१९७० में भागीरथजी ने व्यावसायिक जीवन से सन्यास ले लिया और साल में तीन-चार महीने किशनगढ़ को केन्द्र बना कर राजस्थान में रहने लगे। थोड़े ही दिनों में उन्होंने आसपास के धार्मिक स्थानों और साधु-सन्तों का पता लगा लिया। उन्हें पता लगा कि किशनगढ़ के पास 'पीताम्बर की गाल' नामक जगह में कोई मन्दिर है, जहां से कुछ दूर सलीमाबाद में निम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्य श्रीजी महाराज रहते हैं और जोधपुर के पास कोई साध्वी रहती हैं। इनके बारे में उन्होंने पूरी जानकारी प्राप्त की। आचार्य जी से उन्होंने देश, दर्शन, अध्यात्म और आश्रम की व्यवस्था पर दीर्घ-चर्चा की। सलीमाबाद में एक कुआं है। इसके बारे में कहा जाता है कि उसमें से कितना ही पानी क्यों न निकाला जाय और इलाके में कितना ही दुष्काल क्यों न पड़े, उसका पानी कम नहीं होता। भागीरथजी इस कुएं को देखने गये और उसके बारे में लोगों से खोद-खोद कर पूछते रहे। आचार्यजी के पास वहां के राजा का एक पुराना रोजनामचा था। इसकी जानकारी भागीरथजी को हो गयी। आचार्यजी से आग्रह करके वह रोजनामचा उन्होंने निकलवाया और पढ़ा। रोजनामचे में राजा के यहां एक बारात के आने का बड़ा विस्तृत विवरण है—कितने आदमी, कितने घोड़े और नौकर आये, क्या क्या मिठाइयां बनीं, किसको क्या और कितना दिया गया आदि। रोजनामचे से बारातवाला अंश उन्होंने परिवार के लोगों को सुनाया भी।

किशनगढ़ में डाक्टर फैयाज अली नामक विद्वान और चित्रकार रहते हैं। किशनगढ़ के एक राजा नागरीदासजी कृष्ण भक्त एवं कवि थे। फैयाज अलीजी को उनकी रचनाओं पर शोध करने पर डाक्टरेट मिली है। फैयाज अलीजी ने नागरीदास के पदों के भावों पर अपने पुत्र से किशनगढ़ शैली में चित्र भी बनवाये हैं। भागीरथजी पिता की विद्वत्ता और पुत्र की चित्रकारी पर मुग्ध हुए। जो भी किशनगढ़ आता उसे डा० फैयाज अली के बारे में बताते और उससे कहते कि वह उनसे जाकर जरूर मिले।

किशनगढ़ में भागीरथजी जिस घर में रहते थे उसमें बैठक और भोजन के कमरे के वीच कांच पर खुदाई किये हुए चार दरवाजे हैं। उनमें बुद्ध को खीर देती हुई सुजाता, राम को वेर देती हुई शवरी और सुदामा का सत्कार करते हुए कृष्ण के चित्र अंकित हैं। सुदामावाले चित्र में श्रीकृष्ण सुदामा के चरणों में झुके हुए हैं। श्रीकृष्ण का यह विनीत और अपने को क्षुद्र मानने का भाव भागीरथजी को विभोर करता था। घर में जो अतिथि आता, उसे दरवाजों के पास ले जाते और वड़े चाव से चित्र दिखाते। सुदामा और कृष्ण का चित्र दिखाते वक्त उनकी आंखों में नरोत्तमदास का वही भाव उमड़ आता—"पानी परात को हाथ छुयो नहिं, नैनन के जल सो पग धोए।"

(४)

भागीरथजी आस्थावान व्यक्ति थे। वह यह मानते थे कि आदमी विवेक और बुद्धिसम्पन्न प्राणी है सो आपसी झगड़े सौहार्द और सद्भाव के द्वारा दूर किये जा सकते हैं; यदि व्यक्ति अपने अहं को विसर्जित कर दे और दूसरों के वारे में उदारतापूर्वक और न्यायपूर्वक सोचे तो बहुत सारी समस्याएं उत्पन्न ही न हों। इस मान्यता के कारण वह काफी छोटी उम्र में ही पंचायतियों के पचड़े में पड़े और लगभग अन्तिम दिनों तक पंचायतियां करते रहे। कई पंचायतियों में तो उन्हें वहुत कुछ सुनना पड़ा—दोनों पक्षों या एक पक्ष की कटूक्तियां और अपने ऊपर दोषारोपण। कटूक्तियों और दोषारोपण को वह जिस तरह सह लेते थे, उसे सहिष्णुता की अति ही कहा जा सकता है। सीतारामजी की डायरियों से ऐसे कई प्रसंगों का पता चलता है। १९ सितम्बर, १९४६ की डायरी में सीतारामजी लिखते हैं: "......जी की कोई पंचायत भागीरथजी ने की थी। उस वारे में......जी ने आज भागीरथजी को बहुत अनुचित वातें कहीं पर भागीरथजी उनको बिलकुल वरदाश्त करते रहे। भागीरथजी वहुत सहनशील हैं पर आज तो उनकी बहुत ज्यादा सहन करने की शक्ति का पता चला।" १९५८ में जीप-दुर्घटना में घायल होने के बाद भागीरथजी ने अत्यन्त शारीरिक अस्वस्थता एवं कष्ट में भी एक व्यक्ति के आग्रह पर एक पंचायती की थी। अत्यन्त कष्ट से बैठ कर घण्टों हिसाब-किताव कर फैसला किया लेकिन उनका फैसला 'आग्रही' व्यक्ति के अनुकूल न हुआ तो उसने भागीरथजी पर आरोप लगाया कि उन्होंने (भागीरथजी) उसे जालसाजी कर फंसा लिया और फैसला मानने से इनकार कर दिया। इस घटना का कई वर्षों वाद पता चला क्योंकि भागीरथजी ने किसी को भी नहीं बताया था कि उनके साथ क्या वीती थी।

कटूक्तियां सुनने और आत्मीय स्वजनों के दूसरों के पचड़े में पड़ कर अपने को परेशान न करने के उपदेश के बावजूद भागीरथजी अपने इस विश्वास के कारण पंचायतियां स्वीकार कर लेते थे कि अपनी विवेकशील मध्यस्थता से वह दोनों दलों के बीच वैमनस्य को दूर कर सौहार्द तथा सद्भाव स्थापित कर सकेंगे। कभी-कभी तो पंचायतियों में उन्हें आर्थिक भार भी सहन करना पड़ जाता। पाठक संस्मरणों में सीतारामजी केड़िया के संस्मरण में एक ऐसे ही प्रसंग से भागीरथजी की सदाशयता

का आभास पा सकेंगे। उनकी नजर में कहीं भी कोई झगड़ा होता दिखायी पड़ता तो वह बीच-बचाव की जरूर कोशिश करते। शेखावाटी में जाटों और मुसलमानों के गांवों में भागीरथजी ने बड़ा काम किया—स्कूल खुलवाये, कुएं खुदवाये आदि। एक बार वह जीप से जाटों के एक गांव से गुजर रहे थे कि उन्होंने देखा जाटों के दो दल लड़ रहे हैं और खुल कर लाठियां चला रहे हैं। वह जीप से तुरन्त कूद पड़े और अकेले निहत्थे लाठियों के बीच घुस गये और दोनों दलों के बीच लड़ाई रुकवा कर ही रहे।

१९७२ में राजस्थान के चुरू नगर में जैनियों और हिन्दुओं के बीच दंगा हो गया। १९६१ में तेरापंथी जैन समाज के बड़े आचार्य तुलसी गणि ने 'अग्नि परीक्षा' नामक काव्य लिखा था। इसमें उन्होंने राम और सीता का चरित्र जिस तरह अंकित किया था उसका सनातनधर्मियों द्वारा विरोध किया गया और इसके फलस्वरूप आचार्य तुलसी ने अपने काव्य में सुधार करना भी स्वीकार कर लिया। लेकिन ग्यारह वर्ष बाद भी १९७२ में आचार्य तुलसी जब चुरू आये तो सनातनधर्मियों ने पुरी के शंकराचार्य के नेतृत्व में उनके खिलाफ बड़े जोरों का आन्दोलन छेड़ा। इस आन्दोलन ने हिन्दू-जैन दंगे का रूप ले लिया। दोनों तरफ से गुण्डों की मदद ली गयी, लूट-खसोट हुई और एक-दो आदमी मारे भी गये। भागीरथजी को इस दंगे से बहुत पीड़ा हुई। वह चुरू गये और उन्होंने सनातनियों और जैनियों के बीच शान्ति स्थापना करने की कोशिश की। दोनों पक्षों को एक साथ बिठा कर शान्ति वार्ता करवायी।

झगड़ा मिटाने की कोशिशों का ही एक दूसरा पहलू यह था कि भागीरथजी स्वयं कभी विवाद में नहीं पड़ते थे। उनकी हमेशा यही कोशिश रहती थी कि विवाद उत्पन्न हो ही नहीं। श्रीमती कुसुम खेमानी ने बताया कि वह किसी समारोह में भागीरथजी के साथ गयी थीं, वहीं सीतारामजी भी उन्हें मिल गये और उन्होंने भागीरथजी को उन्हीं के (कुसुम खेमानी के) सामने डांटना शुरू कर दिया कि आपने (भागीरथजी ने) कैसे इस्तीफा दे दिया। बात यह थी कि भागीरथजी ने हलवासिया ट्रस्ट से इस्तीफा दे दिया था और इसकी खबर सीतारामजी को उसी दिन लगी थी। सीतारामजी कह रहे थे कि जिस ट्रस्ट में आपने ३५ साल काम किया, जिसे आप एकदम शोचनीय हालत से उबार कर अच्छी हालत में ले आये और जिसके मार्फत आप इतना काम कर रहे थे उससे आपने इतनी सहजता से इस्तीफा कैसे दे दिया। सीतारामजी कहते रहे और भागीरथजी चुपचाप सुनते रहे। उन्होंने अपने सबसे अन्तरंग मित्र को भी इस्तीफा देने के बारे में सफाई नहीं दी (इस्तीफे के कारण के बारे में पाठक पहले पढ़ चुके हैं)। उन्हें कहीं स्पष्टीकरण देना तक भी विवाद बढ़ाना लगता था। किसी भी सभा-समिति में यदि उनके किसी प्रस्ताव पर थोड़ी असहमति दिखती तो वह अपने प्रस्ताव को वापस ले लेते या उस पर आग्रह नहीं करते।

भागीरथजी के बारे में एक ऐसा किस्सा सुनने को मिला जिससे कटुता और विवाद के प्रसंग टालने के बारे में उनकी अत्यन्त सजगता का पता चलता है—एक बारात में भागीरथजी वर-पक्ष के मुख्य कर्त्ताधर्त्ता थे। वधू-पक्ष वाले बारातियों के लिए फलों का इन्तजाम करना भूल गये। भागीरथजी को कहीं से भनक मिली कि वर-पक्ष के कुछ लोग फलों की कमी अत्यधिक 'महसूस' कर रहे हैं।

उन्हें लगा कि इस 'महसूस' करने से कहीं वधू-पक्ष का अपमान न हो जाय सो उन्होंने चुपके से खुद तत्काल फलों की व्यवस्था कर दी।

विवाद उत्पन्न न होने देने की इस कोशिश के कारण भागीरथजी एकदम जरूरी हो जाने पर ही विरोध करते। सभा-समितियों में बहुत सारे लोग छोटी-छोटी बातों या गौण बातों का विरोध कर एक प्रकार का असहिष्णु वातावरण बना डालते हैं। भागीरथजी की हमेशा यही कोशिश रहती कि काम में बाधा न आये और इसके लिए वह गौण बातों को नजरअंदाज करने के आदी बन गये थे। लेकिन यह थोड़े अचरज की बात लगती है कि विवादों से बचनेवाले और भूल से भी अप्रिय सत्य न बोलनेवाले भागीरथजी किसी व्यक्ति के बारे में कोई बदनामीवाली खबर सुनने पर उससे तपाक से सीधे पूछ लिया करते थे कि खबर सही है या गलत। एक महिला कल्याण संस्था के संचालक के बारे में भागीरथजी को पता लगा कि उन्होंने अपनी विवाहिता पत्नी के रहते अन्य स्त्री से विवाह कर लिया है। भागीरथजी ने इस व्यक्ति से तुरन्त पूछा कि खबर सही है या गलत। जब व्यक्ति ने विवाह करने की बात स्वीकार की तो उन्होंने उसे कहा : "एक महिला-कल्याण संस्था के संचालक होते हुए आपने जो आचरण किया है, वह शर्मनाक है।" कई लोगों ने हमें बताया कि वह कभी-कभी इस तरह प्रश्न कर डालते थे कि सामनेवाला आदमी शर्म से गड़ कर अपराध स्वीकार कर लेता था।

सीतारामजी की डायरियों से पता चलता है कि वह भागीरथजी को कई बार कह दिया करते थे "आप समझते नहीं, जानते नहीं।" ऐसा कहने के बाद वह यह भी लिखते कि यह भागीरथजी की महानता है कि वह ऐसी बातों का जरा भी बुरा नहीं मानते जब कि उनका ज्ञान और जानकारी ज्यादा है। सीतारामजी की ५० साल की डायरियों (१९२९-१९७९ ; भागीरथजी की मृत्यु के बाद और वृद्धावस्था के कारण सीतारामजी का डायरी लिखना बन्द हो गया) में एक ही प्रसंग है जिसमें भागीरथजी ने सीतारामजी को कोई कड़ी बात कही हो। १९४२ में जब दोनों मित्र एक साथ जेल में थे तब एक दिन सीतारामजी ने इस बात पर क्षोभ प्रकट किया कि जेल में फल नहीं मिलते तो भागीरथजी ने उनसे कहा : "आपका यह क्षोभ मोहजन्य और अनुचित है।"

भागीरथजी के जीवन के बारे में जानने की कोशिश में हमने जिन लोगों से भी मुलाकात की उनमें से प्रायः सभी ने उनके कभी क्रोध न करने और यहां तक कि अपमान सह लेने की बात कही लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि भागीरथजी ने निरीहता को गुण मान लिया था। गांधीजी ने अपने प्रभाव में आये लोगों में लोकतान्त्रिक मर्यादाओं और वैयक्तिक अधिकारों के प्रति चेतना और जागरुकता पैदा की थी। गांधी-युग में किसी भरी सभा में मर्यादाविहीन और उद्धत आचरण करना सहज नहीं था। कोई करता तो उसका निश्चय ही कहीं न कहीं विरोध होता। भागीरथजी के द्वितीय पुत्र तुलसीदासजी कानोड़िया ने भागीरथजी के जीवन के ऐसे तीन प्रसंग बताये जिनसे लोकतान्त्रिक मर्यादाओं और वैयक्तिक अधिकारों के प्रति उनकी चेतना तथा उनके प्रति उनके आग्रह का पता चलता है। इन तीनों प्रसंगों को आगे दिया जा रहा है :—

अंग्रेजों के जमाने की बात है। दूसरे विश्वयुद्ध के पहले १९३९ के किसी एक दिन भागीरथजी हवड़ा स्टेशन से दूसरे दरजे (तब तीसरे दरजे को दूसरे दरजे का नाम नहीं दिया गया था और दूसरे तथा तीसरे दर्जे के बीच एक ड्यौढ़ा दरजा भी अलग था) के डिब्बे में सवार हुए। इसी डिब्बे में एक अंग्रेज भी अपना कुत्ता लेकर सवार हुआ। भागीरथजी ने गार्ड को कहा कि कुत्ते को साथ लेकर सफर करने की मनाही है सो अंग्रेज सज्जन कुत्ते के साथ सफर नहीं कर सकते। गार्ड ने अंग्रेज को कहा कि आपके सहयात्री को आपके कुत्ते के साथ सफर करने पर आपत्ति है तो उसने कहा : मेरा कुत्ता तो मेरे साथ ही चलेगा। भागीरथजी ने कहा कि वह डिब्बे में अंग्रेज सज्जन को कुत्ते के साथ यात्रा करने नहीं देंगे। लेकिन गार्ड ने अंग्रेज की रौद्र मुद्रा देख कर कहा कि वह कुछ नहीं कर सकता। इस पर भागीरथजी ने गार्ड से कहा कि आप यह लिख कर दें कि आप कुछ नहीं कर सकते। गार्ड ने लिख कर देने के बजाय कहा : आपके पास सेकेण्ड क्लास का टिकट है। मैं आपको फर्स्ट क्लास के डिब्बे में जगह देता हूं। आप मेरे साथ चलिये। भागीरथजी ने कहा कि वह फर्स्ट क्लास में नहीं जायेंगे और उसी डिब्बे में चलेंगे और कुत्ते के साथ सफर भी नहीं करेंगे। ट्रेन चल पड़ी तो भागीरथजी ने चेन खींच कर ट्रेन रोक दी। गार्ड को समझ में आया कि यह व्यक्ति माननेवाला नहीं है तो उसने हार कर अंग्रेज को कहा कि नियम के अनुसार आपको ही उतरना होगा। आखिर में इस तरह अंग्रेज को कुत्ते के साथ डिब्बे से उतरना पड़ा।

दूसरी घटना भी रेल-यात्रा की ही है। १९४४ में भागीरथजी अपने पुत्रों, तुलसीदासजी और ज्योतिप्रकाशजी के साथ पुरी जा रहे थे। ज्योतिप्रकाशजी की उम्र तब ५-६ साल थी। उन दिनों ट्रेन की खिड़कियों में छड़ नहीं रहते थे। रात को ज्योतिप्रकाश ट्रेन से गिर गये। भागीरथजी ने चेन खींच कर ट्रेन रोकी। गार्ड अंग्रेज या ऐंग्लो इंडियन था। भागीरथजी ने उससे कहा कि बच्चे को ढूंढ़ने के लिए ट्रेन विपरीत दिशा में ले जायी जाय। गार्ड ने इससे इनकार किया तो भागीरथजी ने उससे कहा : "टिकट खरीदनेवाले सभी यात्रियों को उनके गनतव्य तक पहुंचाना रेलवे कम्पनी की जिम्मेवारी है। जब तक बच्चा नहीं मिल जाय तब तक आप गाड़ी आगे नहीं बढ़ा सकते।" गार्ड को उनकी बात माननी पड़ी। इत्तफाक से उसी समय विपरीत दिशा में जानेवाली एक ट्रेन आ गयी तो गार्ड ने उसे रोका। भागीरथजी उस ट्रेन में बैठ कर गये। डेढ़ मील दूर पर बच्चा लहूलुहान और बेहोश मिला। उसे लेकर आये तब ट्रेन आगे बढ़ी।

तीसरी घटना १९४६ की है। उन दिनों कलकत्ता बेल जूट एसोसिएशन और इन्डियन जूट मिल एसोसिएशन के बीच जूट के निर्यात को लेकर झगड़ा चल रहा था। मिलवाले निर्यात नहीं करना चाहते थे। कलकत्ता बेल जूट एसोसिएशन इस झगड़े के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव पास करना चाहता था। जाहिर है कि यह प्रस्ताव जूट मिल एसोसिएशन के प्रतिकूल था। लेकिन बेल जूट एसोसिएशन के सेक्रेटरी श्री जे० जे० बी० सदरलैंड ने एसोसिएशन की सभा में कहा कि वह इस प्रस्ताव को पास नहीं होने देंगे क्योंकि यह जूट मिल एसोसिएशन के खिलाफ जाता है। उस समय सदरलैंड बंगाल चेम्बर आफ कामर्स की ओर से बेल जूट ऐसोसिएशन और इण्डियन जूट मिल एसोसिएशन दोनों के ही सेक्रेटरी पद पर थे; उनका (सदरलैंड का) कहना था कि

चूंकि वह दोनों एसोसिएशनों के सेक्रेटरी हैं इसलिए एक एसोसिएशन द्वारा दूसरे एसोसिएशन के खिलाफ प्रस्ताव पास होने नहीं दे सकते। सदरलैंड द्वारा प्रस्ताव का विरोध करने पर वेल जूट एसोसिएशन के सदस्य ढीले पड़ने लगे। भागीरथजी वेल जूट एसोसिएशन के सदस्य थे और वह भी सभा में उपस्थित थे। उन्होंने सदरलैंड को कहा कि यह वेल जूट एसोसिएशन की सभा है, जूट मिल एसोसिएशन की नहीं। इस पर सदरलैंड ने कहा कि यह ठीक है लेकिन वह अपनी मौजूदगी में किसी भी हालत में जूट मिल एसोसिएशन के खिलाफ प्रस्ताव पास नहीं होने देंगे। इस पर भागीरथजी ने उससे कहा कि तब आप इस सभा से उठ कर चले जा सकते हैं (यू आर फ्री टू गो)। सदरलैंड बैठक से चले गये और प्रस्ताव पास हो गया। (सदरलैंड के बारे में यहां यह जानकारी देना आवश्यक लगता है कि कलकत्ता के १९४६ के हिन्दू-मुस्लिम दंगे में उन्होंने अपने मुसलमान ड्राइवर की जान बचाने में अपनी खुद की जान गंवायी। दंगाई उनके ड्राइवर को मारना चाहते थे, उन्हें नहीं, लेकिन उन्होंने दंगाइयों का प्रतिरोध किया और अपने ड्राइवर की जान बचाने में स्वयं मारे गये)।

(५)

किसी भी व्यक्ति को अच्छी तरह जानने के लिए उसकी कार्य-पद्धति को जानना बहुत सहायक होता है क्योंकि वह व्यक्ति की मूल-प्रवृत्तियों की ओर इंगित किया करती है। आर्त्त के प्रति भागीरथजी की सम्वेदना की गहराई को जानने के लिए यह देखना आवश्यक लगता है कि वह किस प्रकार आर्त्त की सहायता करने की चेष्टा करते थे। भागीरथजी की हमेशा यह कोशिश रहती थी कि सहायता प्राप्त करनेवाला सहायता से स्वावलम्वी वनने की ओर मुखातिव हो और उसमें अपने कष्ट दूर करने के लिए कुछ करने का उपक्रम भी पैदा हो। व्यक्तिगत सहायता करते हुए भी वह इसी वात की चेष्टा करते थे। कितने ही लोगों की उन्होंने इस तरह सहायता की जिससे वे आगे जा कर अपने पैरों पर खड़े हो सके।

राजस्थान के गांवों में भागीरथजी ने हजारों कुएं खुदवाये, लेकिन एक भी कुआं 'कूप-दान' के तहत नहीं खुदा। हर कुएं के निर्माण के वक्त उनकी यह सख्त हिदायत रहती थी कि डायनामाइट से विस्फोट के बाद मलवा हटाने का काम गांव वालों को खुद करना होगा; अगर वे कुआं बनाने में श्रमदान नहीं करेंगे तो कुएं का काम बन्द कर दिया जायेगा। भागीरथजी राजस्थान में इतने अधिक कुएं वनवा सके तो उसका एक वहुत बड़ा कारण यह भी था कि कुओं की चिनाई आदि का काम गांववालों ने खुद किया।

१९५५ में भागीरथजी ने अहमदावाद के पास वीरमगाम में कपड़े की मिल खरीदी। इसके काम के सिलसिले में उन्हें वीरमगाम रहना पड़ता था। सुबह टहलने की आदत होने के कारण वह वीरमगाम की सरहद के पास माण्डल रोड नाम की सड़क पर टहलने जाने लगे। सड़क के कुछ दूर पर भोजवा नाम का एक गांव है। एक दिन जब वह टहल रहे थे तो उन्हें एक अधनंगा ग्रामीण मिला। भागीरथजी ने उससे बातचीत शुरू की। वीरमगाम में फुलवारी नाम के एक बगीचे के कुएं के

पानी को छोड़कर अन्य सभी कुओं का पानी खारा था; ग्रामीण ने उन्हें बताया कि उसके गांव भोजवा में भी पानी खारा है। ग्रामीण की बात सुन कर भागीरथजी सोचने लगे कि मीठे पानी का कैसे इन्तजाम किया जाय। उन्होंने ग्रामीण को कहा कि अगर बोरिंग खोदा जाय तो पानी ज्यादा मिलेगा और मीठा भी। ग्रामीण बेचारे को पता भी नहीं था कि बोरिंग क्या चीज होती है। भागीरथजी ने इस पर गांववालों से बातचीत करना तय किया। उन्होंने ग्रामीणों को बुलाकर कहा कि वह बोरिंग खोदने के लिए एक हजार रु० देंगे लेकिन बाकी गांव के लोगों को इकट्ठा करना पड़ेगा। उन दिनों एक बोरिंग खोदने में १३-१४ हजार रुपए लगते थे। गांववालों को भागीरथजी का प्रस्ताव पसंद आया, उन्होंने काफी उत्साह और जोश से रुपये इकट्ठे किये। बोरिंग खुद गया और उसमें मीठा और भरपूर पानी निकला। यह बोरिंग आज भी चल रहा है। इससे गांववालों को मीठा पानी तो मिल ही रहा है, खेती भी अच्छी हो रही है।

भागीरथजी जो भी काम करते उसमें हमेशा छोटी-छोटी बातों का पूरा ध्यान रखा करते और अपने सहयोगियों और सहकर्मियों के बारे में ज्यादा से ज्यादा जानने की भी कोशिश करते। जिन संस्थाओं का काम उन्होने संभाला उनकी दैनन्दिन की समस्याओं के बारे में अपने को पूरी तरह वाकिफ रखा। राजस्थान में बहुत सारा काम उन्होंने पत्र-व्यवहार के द्वारा किया। वह काम के सिलसिले में संस्थाओं के अधिकारियों से तरह-तरह के सवाल पूछते। विस्तार में चीजों को जानने-समझने की उनकी इच्छा को कोई अधिकारी समझ नहीं पाता तो वह लिखते कि "मेरे पत्र का जवाब देते वक्त आप मेरा पत्र सामने रख लिया कीजिये तो सुभीता रहेगा।" किसी संस्था में अधिकारियों के बीच किसी भी प्रश्न को लेकर मतभेद होने पर सभी पक्षों की बात बहुत ध्यान से सुनते और उन्हें यह समझाने की कोशिश करते कि वे एक दूसरे के प्रति उदार होकर संस्था के हित की बात सोचें।

उनकी कार्य-पद्धति उनकी सम्वेदना को पग-पग पर प्रकट करती थी। यह कहा जाता है कि किसी भी संस्था के काम को कुशलतापूर्वक करने के लिए थोड़ी बहुत कड़ाई की जरूरत पड़ती ही है। ऐसा लगता है कि भागीरथजी कहीं इस मान्यता को गलत सावित करने पर तुले हुए थे। राहत-कार्य उन्होंने बड़ी कुशलता के साथ किये लेकिन कड़ाई कहीं नहीं बरती।

(६)

भागीरथजी जैसे व्यक्ति के बारे में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या एक उद्योगपति के रूप में वह ट्रस्टी थे? इस प्रश्न से कतराया नहीं जा सकता। जब-जब किसी सम्पन्न व्यक्ति की परदुखकातरता और आर्त्त के प्रति सम्वेदना की बात कही जायेगी तो सुननेवाला पलट कर पूछेगा ही "ठीक है, पर असली प्रश्न का जवाब दीजिये कि वह व्यक्ति ट्रस्टीशिप के सिद्धांत पर कितना खरा उतरता था?" ऐसे प्रश्न का ठीक-ठीक जवाब दे पाना हमारे लिए संभव नहीं है लेकिन हम यहां इसका 'सामना' करने की कोशिश करते हैं।

गांधीजी ने ट्रस्टीशिप का सिद्धांत तो रखा लेकिन यह कहना पड़ेगा कि वह अपने जीवन-काल में और उसके बाद भी ऐसा कोई व्यक्ति पैदा नहीं कर पाये जिसे पूरी तरह ट्रस्टी कहा जा सके। प्रसिद्ध समाजवादी विचारक और नेता डा० राममनोहर लोहिया ने लिखा है कि ट्रस्टीशिप के सिद्धांत पर ३० वर्ष तक कड़ी मेहनत के बावजूद गांधीजी सिर्फ एक ऐसा व्यक्ति पैदा कर पाये, जो उपभोग के मामले में ट्रस्टी था लेकिन उत्पादन के मामले में पूंजीपति और समाज को अपनी सम्पत्ति वसीयत कर जाने के मामले में अर्धट्रस्टी और अर्धपूंजीपति था। डा० लोहिया का इशारा स्व० सेठ-जमनालाल बजाज की तरफ था। हमारे खयाल में यह जमनालालजी की बड़ी से बड़ी प्रशंसा है।

डा० लोहिया की एक कसौटी पर भागीरथजी खरे उतरते हैं। उपभोग के मामले में जमनालालजी की तरह वह भी निश्चय ही पूरे ट्रस्टी थे। उनका अपना रहन-सहन अत्यन्त सीधा-सादा और किसी भी प्रकार के खर्चीलेपेन और विलासिता से पूर्ण रूप से मुक्त था — जो परस दिया वह खा लिया और जो कपड़े सिला दिये, वे पहन लिये। व्यापारी और उद्योगपति में मुनाफा कमाने के लिए जिस प्रकार की "निर्ममता" होती हैं, वह भागीरथजी में कतई नहीं थी। उनके मातहत काम करनेवाले सभी लोगों का कहना है कि उनका व्यवहार उनके प्रति कभी मालिक-नौकर जैसा नहीं रहा।

कर्मचारियों के वेतन के बारे में भागीरथजी का क्या रुख रहता था, इस बारे में सीतारामजी की २४ नवम्बर, १९४१ की डायरी से कुछ प्रकाश पड़ता है। मातृ सेवा सदन में भागीरथजी कर्मचारियों का वेतन बढ़ाने के पक्ष में थे और सीतारामजी कर्मचारियों के वेतन को ठीक समझते थे। सीतारामजी लिखते हैं : "(भागीरथजी की) विचार करने की पद्धति है और अपनी जो है उसमें फर्क है। और फर्क होना स्वाभाविक है। सबका एक सा विचार कैसे हो सकता है ? दूसरी एक बात और भी है कि उनकी और अपनी स्थिति भी भिन्न है। आर्थिक कामों में अपने उनके इतना साहस कैसे करें...इसलिए कई मौकों पर अड़चन सी मालूम होने लगती है। जैसे सेवा सदन में जितने आदमी काम करते हैं उनका जो वेतन है, वह अपनी निगाह में ठीक है। वेतन बढ़ाने की और नये आदमी रखने की और जरूरत नहीं। उनकी (भागीरथजी की) निगाह में है। (लेकिन) वह अपने से कुछ नहीं कहेंगे या अपने जो कहेंगे उसको मान लेंगे। यह उनका सीधापन और सरलता है। इससे एक तो सेवा सदन में काम करनेवाले लोग यह समझेंगे कि सीतारामजी अनुदार हैं तथा काम को बढ़ाना नहीं चाहते या उनकी हिम्मत कम है। नाना तरह की बातें हो सकती हैं। अपने भी सोचते हैं कि लोगों को ज्यादा वेतन दिया जाना चाहिए, जो काम दो आदमी करते हैं उसकी जगह पर तीन करें तो शायद काम अच्छा होगा और काम करनेवाले आदमियों को आराम मिलेगा पर अपने इसको कर सकने में असमर्थ से हैं क्योंकि वेतन ज्यादा देने में या ज्यादा आदमी रखने में वही आर्थिक सवाल काम करता है। क्या तो पास में ज्यादा रुपये और उनको लगाने की इच्छा हो, शक्ति हो या लोगों से ज्यादा रुपये उठाने की शक्ति हो। अपने दोनों बातों में भागीरथजी से हल्के हैं इसलिए स्वभावतः अपने से उनकी वह बात (वेतन बढ़ाने की) उत्साहपूर्वक स्वीकार नहीं की जाती। ऐसे ही दूसरी

संस्थाओं की बात है। आज रात उनसे थोड़ी स्पष्ट बातें कीं। अपना उनका कोई मतभेद नहीं है और न कोई और ही बात है। वह अपने को बहुत अच्छे, बहुत प्यारे और नजदीकी मालूम होते हैं। ईश्वर से यही प्रार्थना है कि अपने और उनसे अच्छे काम कराये।"

कर्मचारियों-मजदूरों के हड़ताल करने पर उनका रुख हमेशा बातचीत से विवाद का निपटारा करने का होता था। मोहनलालजी टीबरेवाल ने बताया कि भागीरथजी ने उन्हें एक बार उनके कारखाने में मजदूरों के हड़ताल करने पर कहा कि ताश के खेल में इक्का जिस तरह निर्णायक होता है उसी तरह मजदूरों का एका निर्णायक हुआ करता है। मजदूरों की बात टाली नहीं जा सकती; "मजदूरों के एका के सामने तुम्हें ही सेट्लमेंट करना पड़ेगा।" श्री कल्याण आरोग्य सदन में कर्मचारियों ने एक बार हड़ताल कर दी तो भागीरथजी ने सख्ती बरतना तो दूर रहा बहुत अल्प समय के भीतर चार बार सीकर की यात्रा की और बातचीत के द्वारा विवाद का हल किया और अपने साथियों को कहा "प्रबन्धकों को (कर्मचारियों के साथ अपने विवाद को) प्रतिष्ठा का सवाल नहीं बनाना चाहिए। कुछ सुविधाएं देनी चाहिए। जीत हमेशा मजदूरों की होती है। दीन-दुखी की सेवा और उसे सहयोग करने से आत्मा को शान्ति मिलती है।" मुकुन्दगढ़ के शारदा सदन कालेज के अध्यापकों से बातचीत करते हुए भागीरथजी ने उद्योग-धन्धों में मजदूरों की दशा सुधारने के बारे में यह मत व्यक्त किया था : "सरकार का कुछ हस्तक्षेप तो आवश्यक है जैसे न्यूनतम मजदूरी, काम करने के घंटे, वास्तविक छुट्टी, आवास आदि (के मामलों में)।"

ट्रस्टीशिप के बारे में भागीरथजी के शारदा सदन कालेज के अध्यापकों से इस बातचीत के दौरान जो विचार प्रकट किये, उन्हें यहां उद्धृत किया जा रहा है। अध्यापकों के प्रश्न—गांधीजी के ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त को क्या कभी व्यावहारिक रूप मिला है तथा इसकी उपादेयता क्या है—के जवाब में भागीरथजी ने कहा : "यह कोई नया सिद्धान्त नहीं है। ईशोपनिषद के—

"ईशावास्यम् इदम् यत् किं च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुंजीथाः मा गृधः कस्यस्विद् धनम्॥"

मन्त्र से स्पष्ट होता है कि यह बहुत पुराना सिद्धान्त है। गांधीजी ने समय-समय पर कहा है कि मैं जो कुछ प्रतिपादित कर रहा हूं उसमें कोई नयी बात नहीं है। मैं तो अपने पूर्वजों द्वारा कहे गये सिद्धान्त को नयी भाषा और नये रूप में रख रहा हूं। इस सिद्धान्त की उपादेयता सर्वदा थी है और रहेगी। लेकिन लोगों के मन में जब तक स्वार्थ-भावना है तब तक यह सिद्धान्त कार्य-रूप नहीं ले सकता। मनुष्य के मन में यह तैयारी होनी चाहिए कि उसमें अपनी चाह कम हो, अपने लिए भोग की इच्छा कम से कम हो, देने की अधिक से अधिक। ज्यों-ज्यों यह भावना विकसित होगी त्यों-त्यों लोगों की सुख-शान्ति बढ़ेगी।"

(७)

भागीरथजी के बारे में इस जीवन-वृत्त में हमने ज्यादा से ज्यादा जानकारी जुटाने की कोशिश जरूर की है, लेकिन हमें संदेह है कि हम उनके व्यक्तित्व

को पकड़ पाये हैं; जैसा कि हमने शुरू में लिखा वह हमारी मुट्ठी से बार-बार फिसल जाते हैं। एक कारण तो यह भी है कि इस जीवन-वृत्त को जानकारी इकट्ठा करते-करते लिखा गया है। किसी पुरानी घटना की कोई नयी बात मालूम पड़ने पर उसे उसके स्थान पर जोड़ने के बजाय किसी अन्य स्थान में घुसेड़ने की चेष्टा की गयी है, जिससे समग्रता के बजाय छितराव का ज्यादा आभास होता है। दूसरे, भागीरथजी के राजस्थान के काम के बारे में गहराई से जानने के लिए राजस्थान जाकर लोगों से मिलना आवश्यक था लेकिन मिलने के बजाय पत्र-व्यवहार से काम चलाया गया है, जिससे वृतान्त में भारी कमी रह गयी है।

कलकत्ता में भागीरथजी के बारे में जानने के लिए हम लोगों से मिले तो हमने पाया कि वह अजातशत्रु थे। ऐसे लोगों ने भी, जिन्हें समाज, खासकर मारवाड़ी समाज में सनकी और विक्षुब्ध माना जाता है और जिनके बारे में कहा जाता है कि वे केवल निन्दा ही करना जानते हैं, हमें बहुत प्रेम से भागीरथजी के बारे में बताया और उनके प्रति श्रद्धा प्रकट की। ऐसे एक व्यक्ति ने कहा भी: "मैं मारवाड़ी समाज के सभी धनी-मानी लोगों से घृणा करता हूं लेकिन भागीरथजी के प्रति मेरे मन में अपार श्रद्धा है। मैं जो भी जानता हूं वह बताऊंगा। भागीरथजी के गुण ज्यादा से ज्यादा प्रकाश में आने चाहिए।" सभी मुलाकातियों ने भागीरथजी की परदुखकातरता और सम्वेदना की चर्चा की। एक ने राजस्थान में अकाल के समय भागीरथजी द्वारा पशुओं के लिए चारे का प्रबन्ध करने के बारे में बताते हुए कहा "बा न मीणखां की ई पीड़ा नई (ही) व्यापती जानवरां की भी व्यापती।" बातचीत के दौरान कितने ही लोगों ने उनके शिष्टाचार और सौजन्य (कर्टसी) की चर्चा की, साथ बिठा कर खिलाने की बात कही। उनकी सम्वेदना और हमेशा दूसरों का खयाल रखने के स्वभाव की एक चरम अभिव्यक्ति हमें उनके किसी को भी अपनी प्रतीक्षा न करने देने में प्रकट होती मालूम पड़ती है। भागीरथजी को यह बात शायद कहीं बरदाश्त ही नहीं होती थी कि कोई उनकी प्रतीक्षा करे। हम और हममें खासकर जो भी थोड़े प्रतिष्ठित हुए, सहज ही इस बात के आदी हो गये हैं कि अगर हम से कोई अपने काम से मिलने आया है तो उसे अगर वह हमसे कम प्रतिष्ठित हुआ, तो प्रतीक्षा करवाने में कोई हर्ज नहीं। भागीरथजी से अधिकांश लोग अपने काम से ही मिलने जाते थे, ज्यादातर सहायता मांगनेवाले, लेकिन उन्होंने अपने जानते हुए किसी को भी कभी अपनी प्रतीक्षा नहीं करने दी।

इस ग्रन्थ में भागीरथजी का अपने पौत्र श्रीनिवास के साथ एक बहुत ही सुन्दर चित्र है। बच्चों के प्रति उनके प्रेम के कई उदाहरण मिले। कोई बच्चा उन्हें चिट्ठी लिखता तो उसे चौथे दिन उनके हाथ का लिखा जवाब मिल जाता था (तब डाक-व्यवस्था आज जितनी बिगड़ी हुई नहीं थी)। भागीरथजी की सबसे छोटी पुत्री उषाजी की बेटी से, जिसने अपनी मां की शिकायत उनसे की थी, हमने मिलना चाहा तो वह नहीं मिली। वह अपने नानाजी के बारे में उनकी मृत्यु के बाद किसी से बातचीत नहीं करती। उसका यह भाव किसी को भी द्रवित कर सकता है।

इस वृतान्त के प्रारम्भ में हमने लिखा कि जिस व्यक्ति ने चुपचाप स्वधर्म निबाहा हो उसकी जीवनी लिखना उतना ही कठिन है जितना किसी गुप्त दानी के दान

का पता लगाना। 'स्वाधीनता आंदोलन में मारवाड़ी समाज की आहुतियां (राधाकृष्ण नेवटिया, १९४८)" में भागीरथजी के परिचय में लिखा भी गया है "कभी-कभी ऐसे अवसर भी आये हैं जब आपने खयाल किया है आज अच्छे कार्य में सहायता प्राप्त करने के लिए कोई नहीं आया। अधिकतर गुप्त रूप से ही आप दान दिया करते हैं जिसकी संख्या कभी-कभी लाखों तक पहुंच जाती है।" सचमुच ही उनकी जीवनी लिखना कहीं गुप्त दानी के दान का पता लगाना जैसा था। भागीरथजी के गुप्त दान के पीछे क्या संस्कार काम करते थे, उन्हें आज समझना भी कठिन है क्योंकि यह मान लिया गया है कि दान के पीछे अगर प्रतिष्ठा प्राप्त करने की हविस न हुई (और ज्यादा से ज्यादा कोई अच्छी चीज हुई) तो अपराध-शमन की भावना होती है। भौतिकवाद के दुराग्रहों के चलते हम कहीं मनुष्य की उन प्रवृत्तियों को भी समझने से इनकार कर रहे हैं जो उसे पशु से ऊपर उठाती हैं, मानव बनाती हैं।

भागीरथजी के इस जीवन-वृत्त को लिखने के दौरान उनके अभिन्न मित्र सीतारामजी सेकसरिया और एक सहयोगी रामेश्वरजी टांटिया की डायरियां हमने पढ़ीं। सीतारामजी की डायरियों की इस जीवन-वृत्त में बहुत दफा चर्चा आयी है और रामेश्वरजी की एक बार। १९५१ में रामेश्वरजी भागीरथजी के साथ पहली बार १०-१५ दिन रहे। इस दौरान अपनी डायरियों में भागीरथजी के प्रति उन्होंने जो उद्‌गार प्रकट किये, उन्हें यहां उद्धृत करने का हम यहां लोभ संवरण नहीं कर पा रहे हैं क्योंकि उसके बाद यह लिखने की बहुत जरूरत नहीं रह जाती कि लोगों पर उनका प्रभाव कैसा पड़ता था। रामेश्वरजी ३ दिसम्बर, १९५१ की डायरी में लिखते हैं: "भागीरथजी महापुरुष हैं"। इसके बाद १० दिसम्बर को उन्होंने फिर लिखा: "भागीरथजी के साथ रहने से मालूम हुआ कि उनका स्वभाव बहुत ही अच्छा है।"

जीवन-वृत्त के इस 'उपसंहार' को लिखने के दौरान भी उनके परिचितों से बात करने पर उनकी परदुखकातरता और सम्वेदना की कोई न कोई नयी बात मालूम होती है और यह लगता है कि द्रौपदी के चीर की भांति उनकी परदुखकातरता और सम्वेदना का कोई अन्त नहीं था। सीकर के एक ग्रामीण अपढ़ जाट ने सीकर में भागीरथजी की मृत्यु पर आयोजित शोक सभा में कहा कि वह भी कुछ बोलना चाहता है। जब इस जाट को मौका दिया गया तो वह बोला: "भागीरथजी इन्द्र से भी बड़े थे।" बड़े होने का उसने कारण यह बताया कि अकाल के समय बहुत प्रार्थना करने के बावजूद इन्द्र नहीं आता था लेकिन भागीरथजी बिना बुलाये चले आते थे। इस अपढ़ जाट जैसी टूक बात कह कर इस वृत्तांत को समाप्त करने की क्षमता हममें नहीं है सो हम लिखते हैं: दुनियावी दृष्टि में भागीरथजी बहुत बड़े आदमी नहीं रहे हों लेकिन जिन्होंने उन्हें जाना है वे जानते हैं कि वह कितने बड़े थे। उनकी परदुखकातरता और उनकी सम्वेदना का जो भी आधा-अधूरा चित्र इस वृत्तांत से उभरता है, वह यदि हमें कहीं भी दूसरे के प्रति उदार होने में और अपनी सम्वेदना का विस्तार करने में मदद दे तो हम कृतकृत्य होंगे।

●
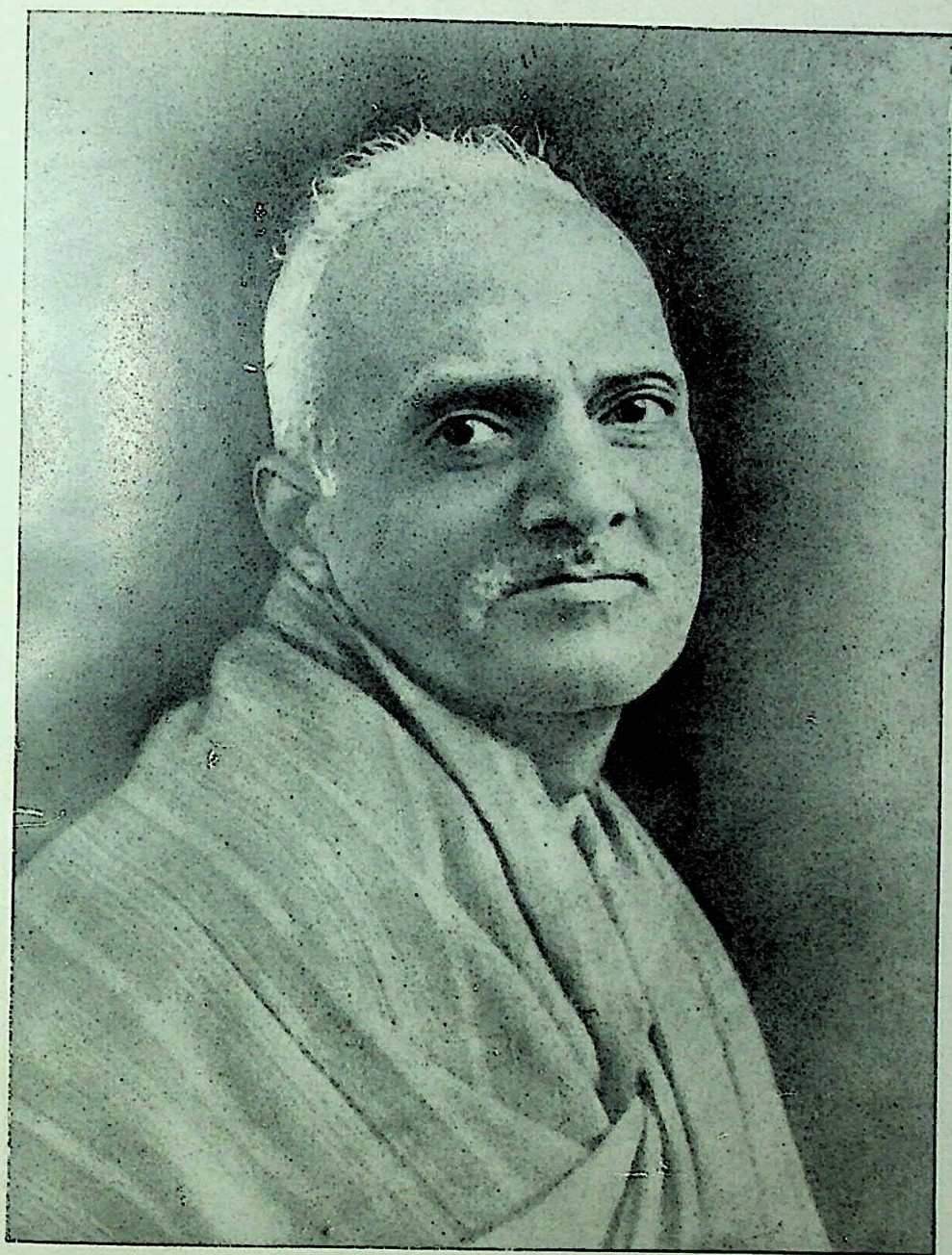
अग्रज स्व० गंगाबक्सजी कानोड़िया

युवा व्यवसायी भागीरथजी

युवावस्था का एक और चित्र

बुजुर्ग भागीरथजी दफ्तर में काम करते हुए
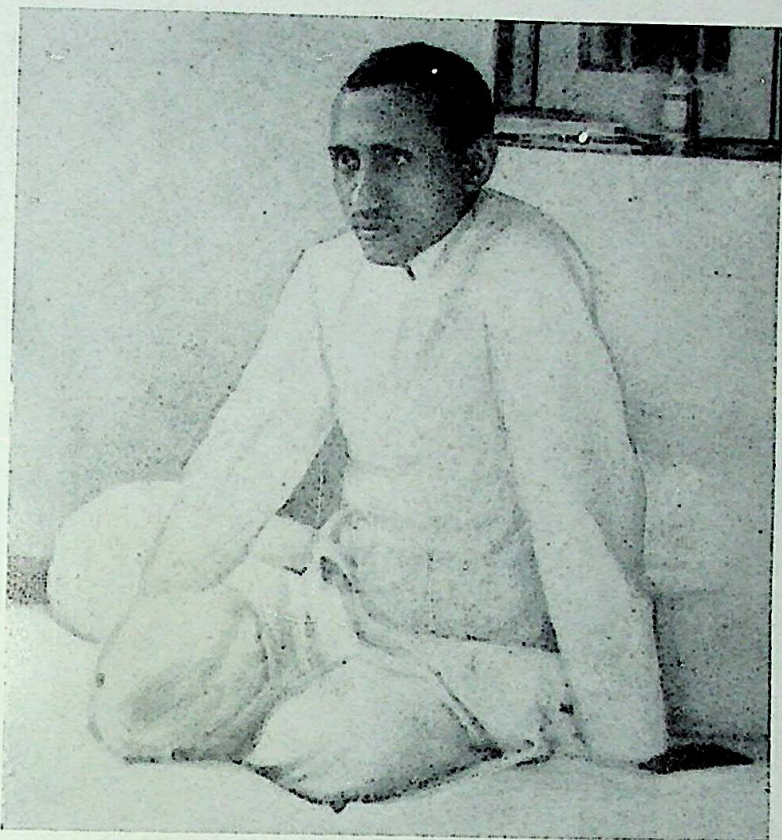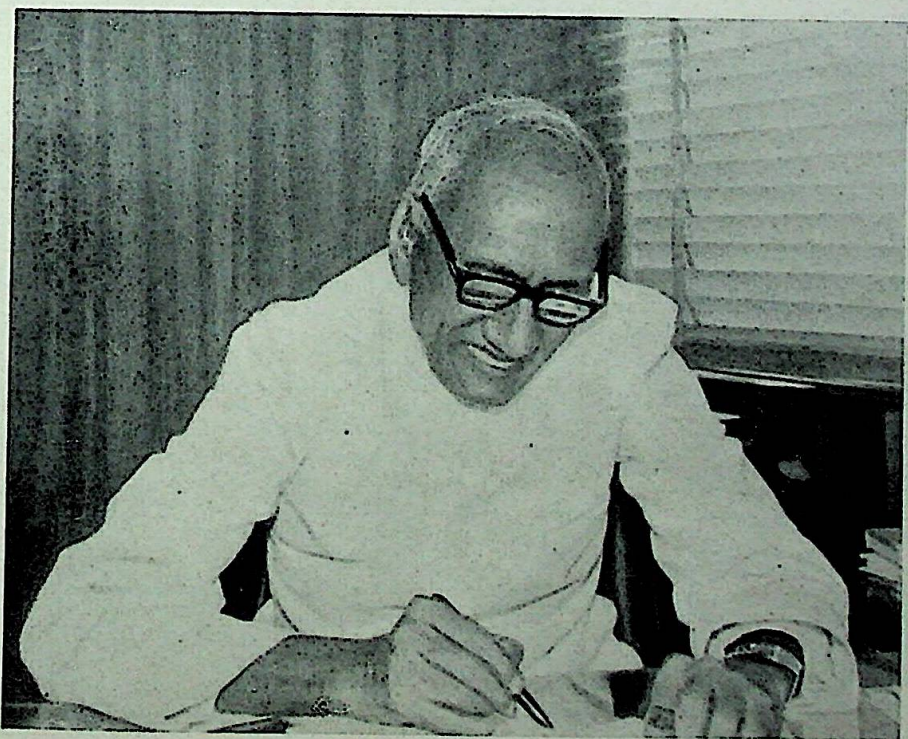
परिवार के बीच भागीरथजी

ऊपर खड़े बाएं से : विमला कानोड़िया, उर्मिला कानोड़िया (पुत्र-वधुएं), सावित्री खेमका, दीनानाथ खेमका, (पुत्री-जामाता), राधेश्याम भुवालका, उषा भुवालका (जामाता-पुत्री), भारती कानोड़िया और मैना कानोड़िया (पुत्र-वधुएं) ।

कुर्सी पर बैठे बाएं से : आत्माराम कानोड़िया, तुलसीदास कानोड़िया (पुत्र), गंगादेवी (धर्मपत्नी), भागीरथजी, अश्विनीकुमार कानोड़िया और सन्तोषकुमार कानोड़िया (पुत्र) ।

नीचे बैठे बाएं से : कुमकुम, अलका, नीरजनयन, रश्मि, मधूलिका और मृणालिनी ।
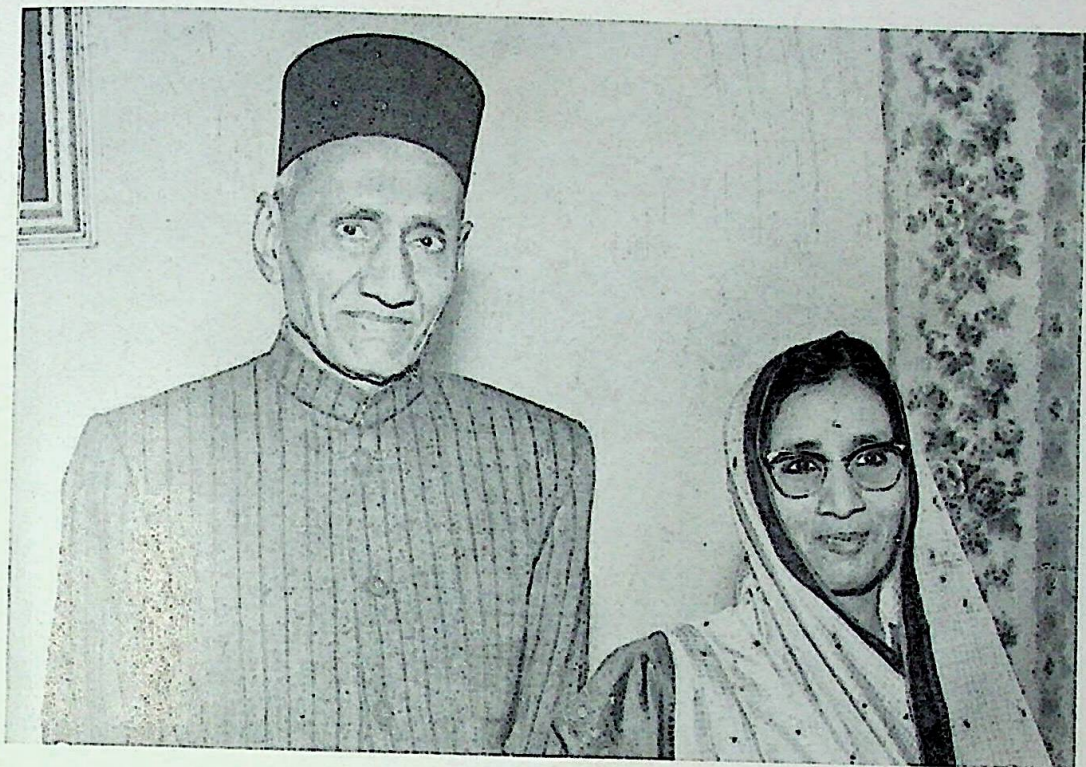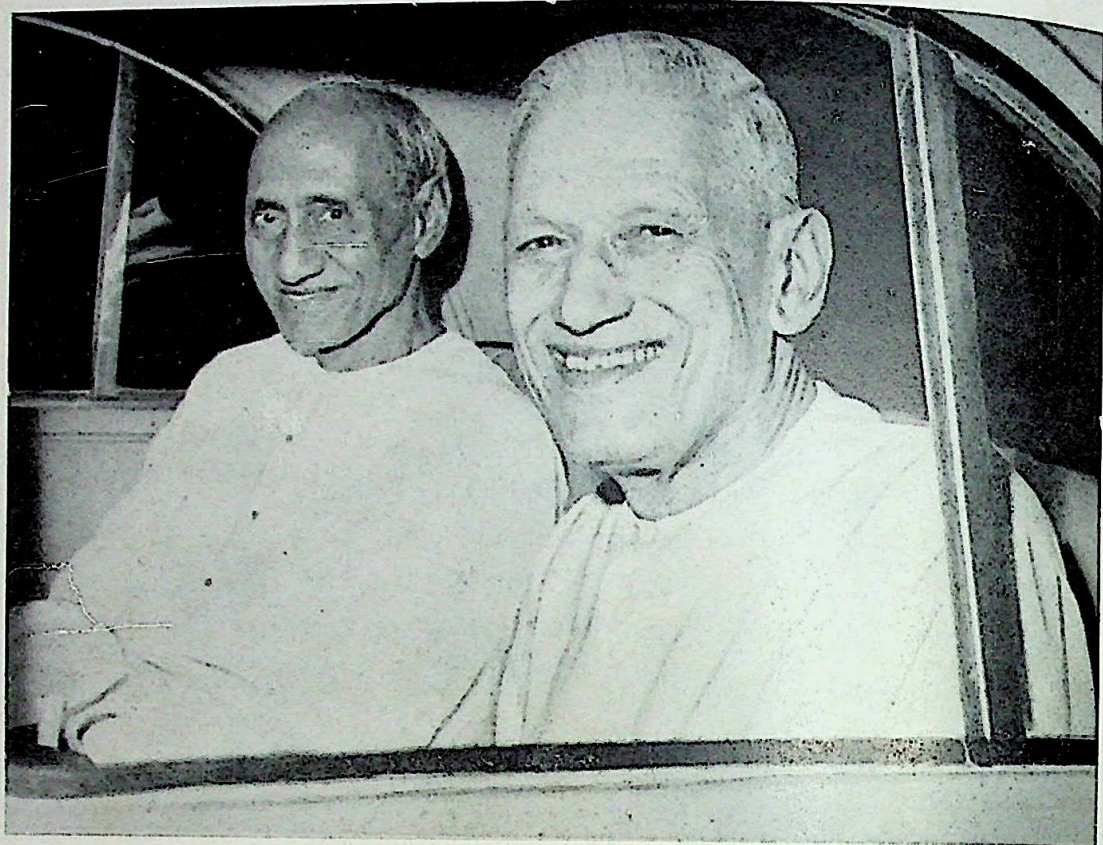
परम मित्र श्री सीताराम सेकसरिया के साथ
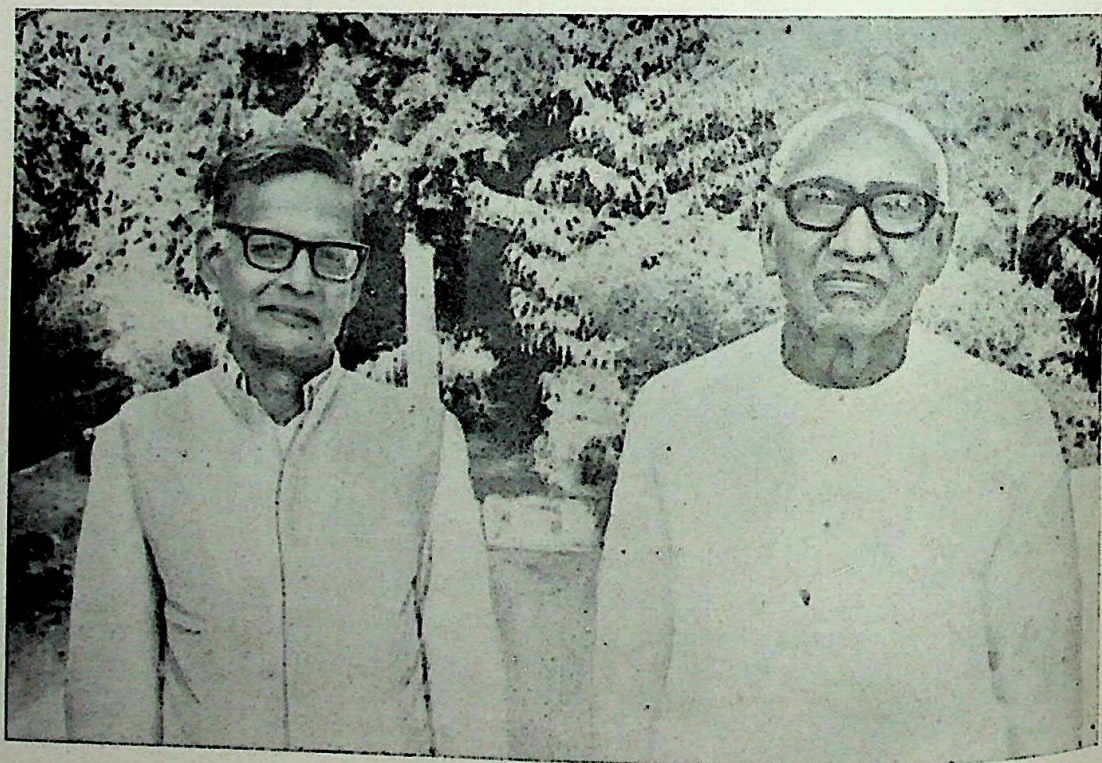
परम सहयोगी श्री बदरीनारायण सोढाणी के साथ

ज्योर्तिपीठ के शंकराचार्य स्वामी श्रीस्वरूपानन्दजी के साथ
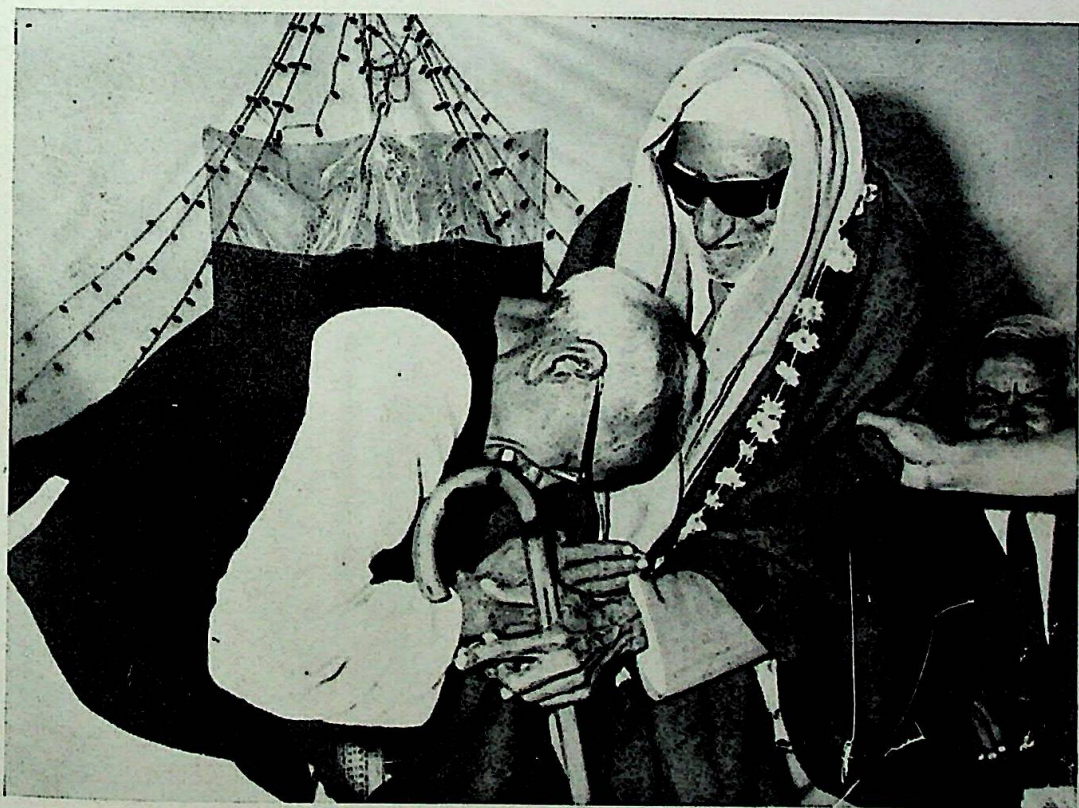
मुनि जिन विजयजी की अभ्यर्थना करते हुए

लोकनायक जयप्रकाशनारायण को माला पहनाते हुए
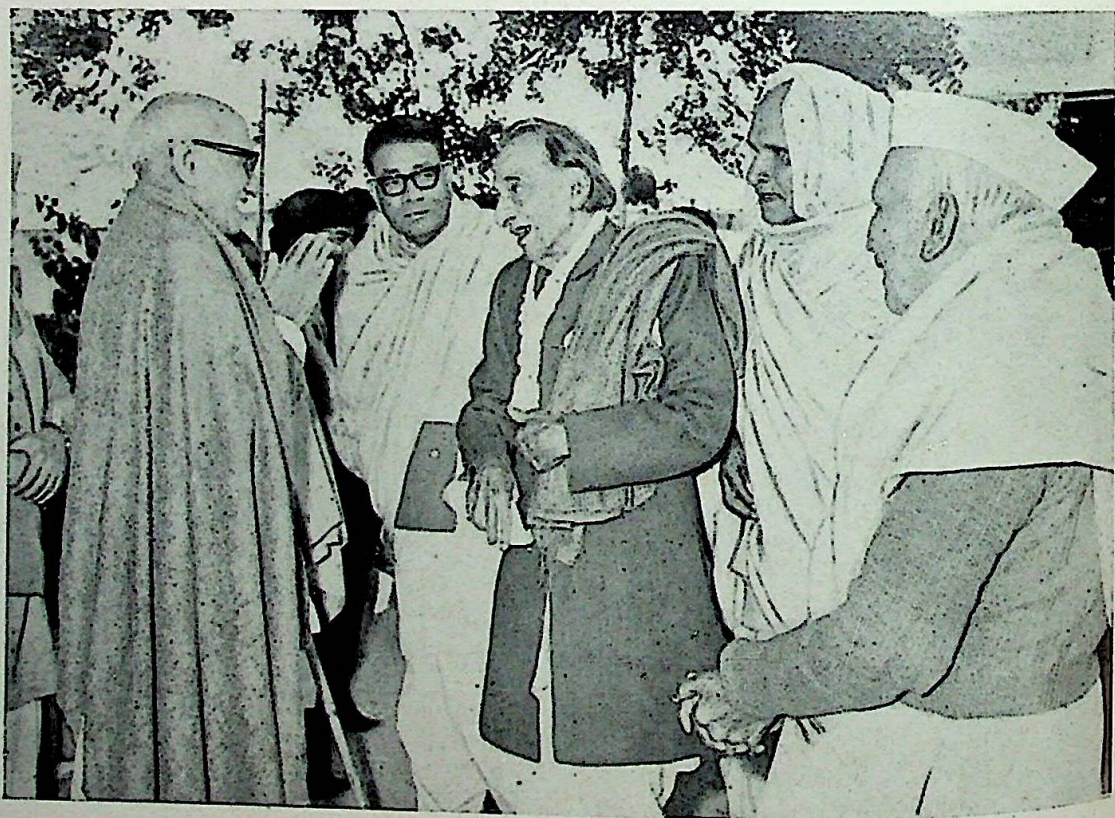
वनस्थली के वार्षिकोत्सव (१९७१) में आचार्य कृपलानी का स्वागत करते हुए। चित्र में बाएं से दाएं : आचार्य प्रेमनारायण माथुर, आचार्य कृपलानी, स्व० पं० हीरालाल शास्त्री और श्री गोकुल भाई भट्ट।

राजर्षि स्व० टण्डनजी के साथ
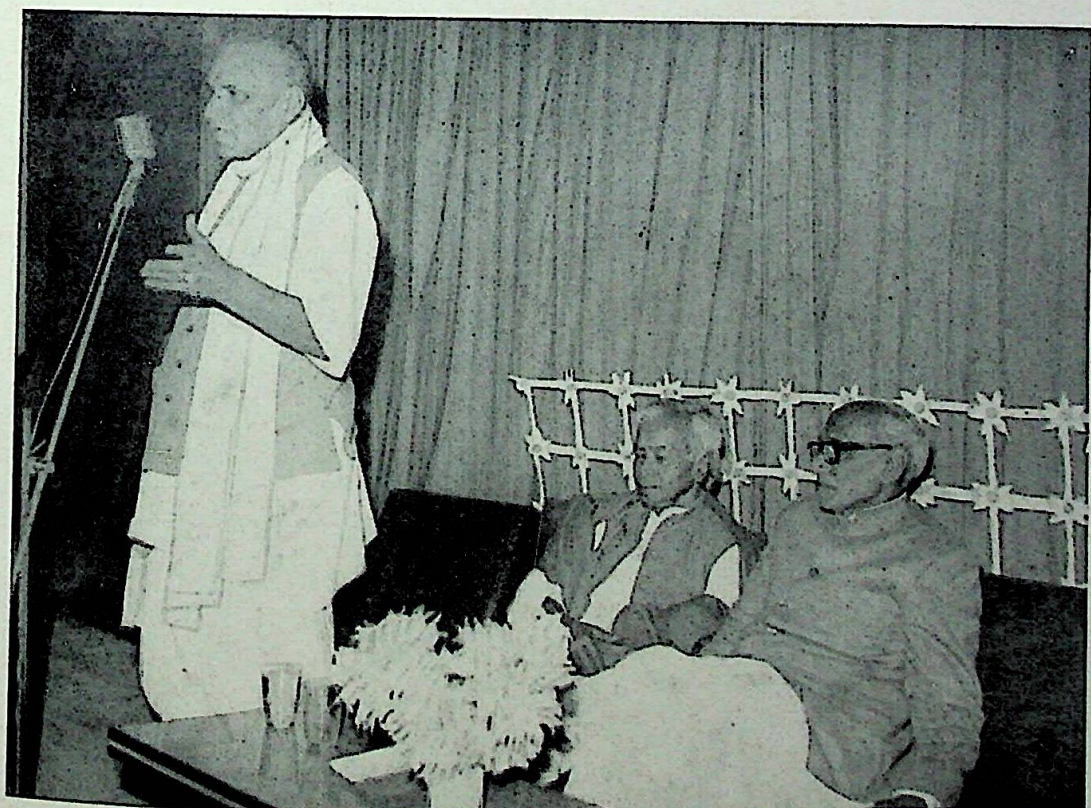
अपने दो मित्रों—स्व० हीरालालजी शास्त्री और डा० प्रफुल्लचन्द्र घोष के साथ
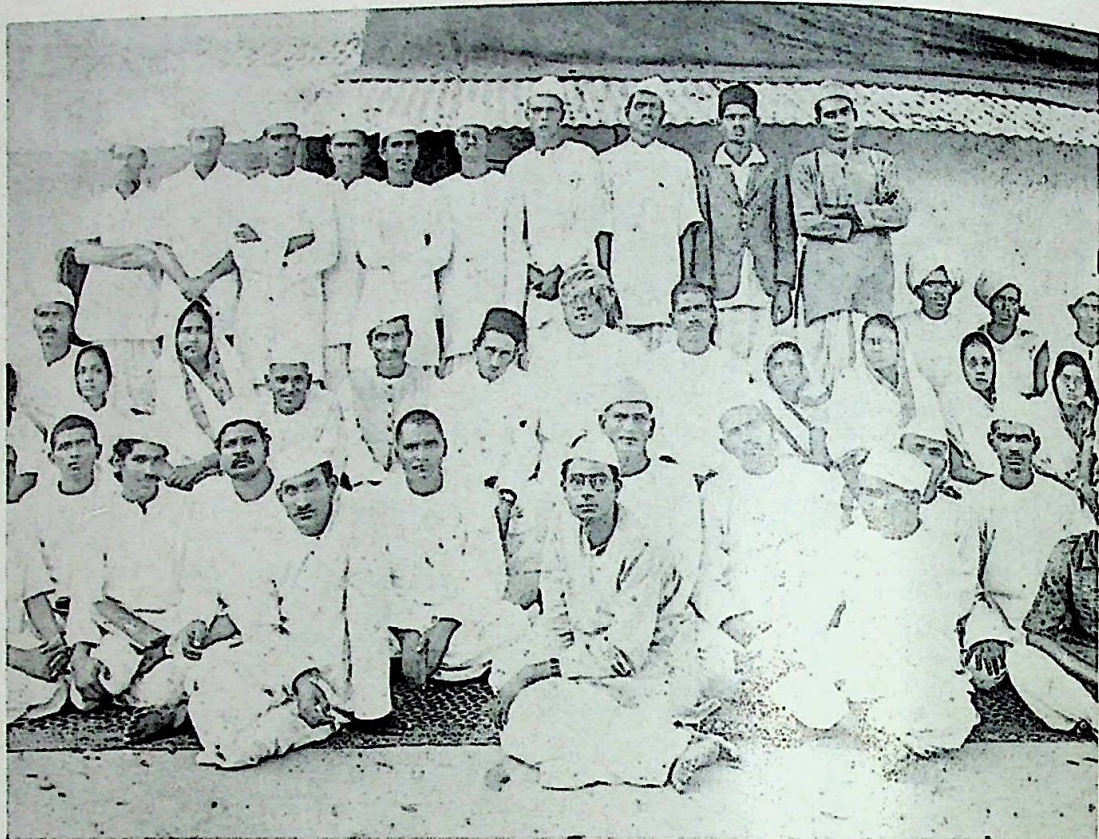
१९४० में देशरत्न डा० राजेन्द्रप्रसाद के वनस्थली आगमन पर समूह चित्र ।
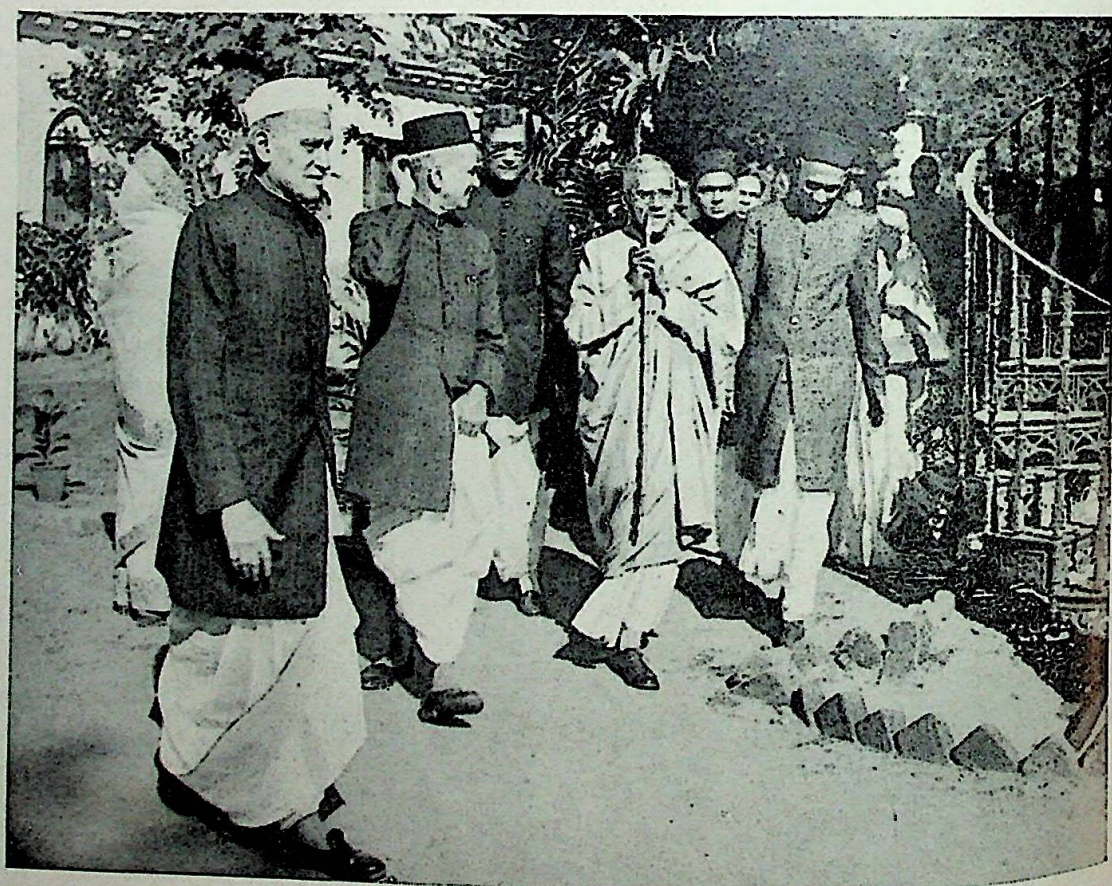
श्री शिक्षायतन के उद्घाटन के अवसर पर प० बंगाल के साधु राज्यपाल डा० हरेन्द्रकुमार मुखर्जी के साथ ।

डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या के साथ
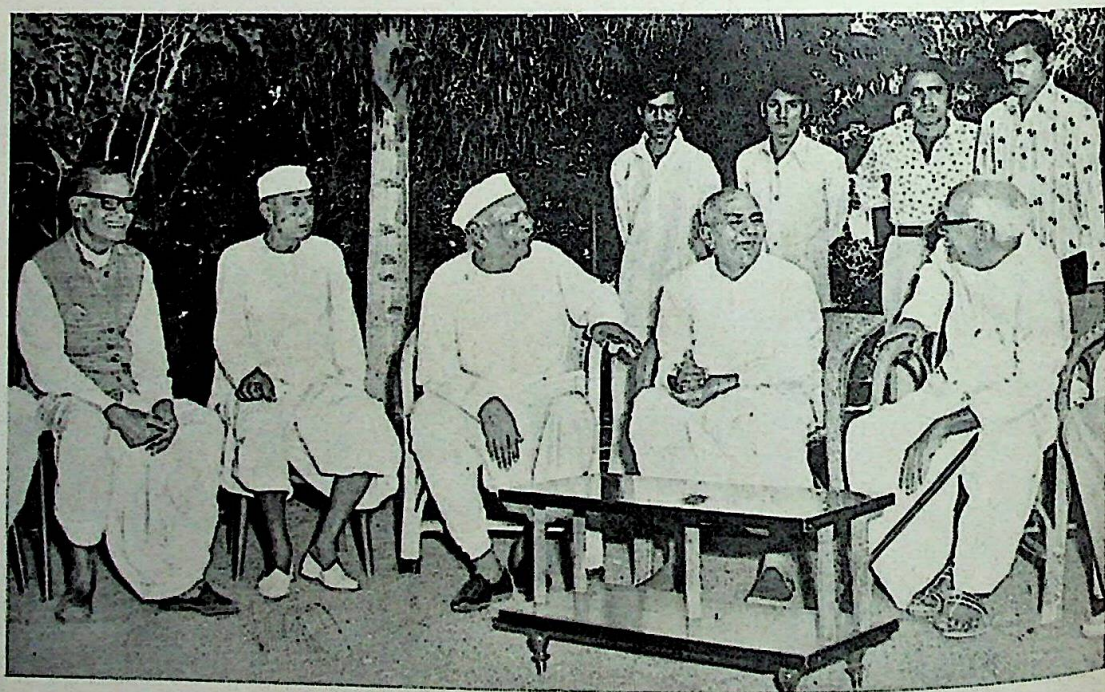
राजस्थान के सहयोगियों के साथ : बाएं से दाएं : श्री बदरीनारायण सोढ़ाणी, श्री लादूराम जोशी, श्री रामेश्वर अग्रवाल, मास्टर आदित्येन्द्र और भागीरथजी।
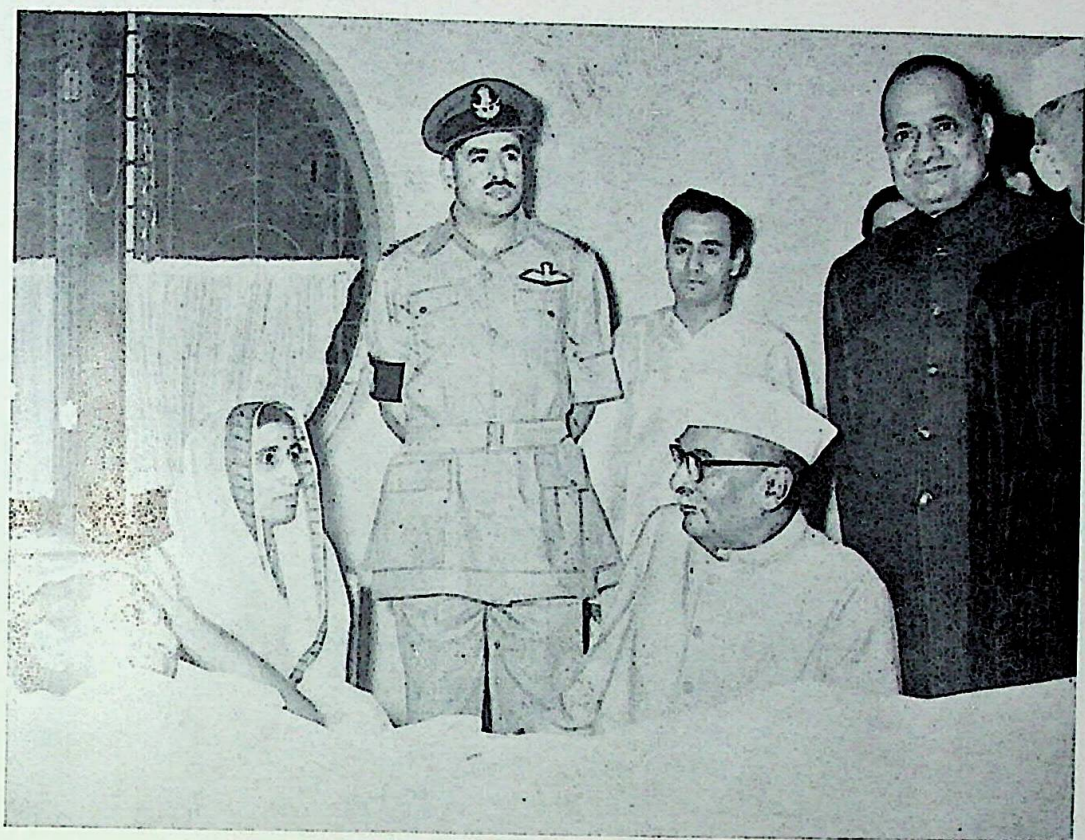
१९५८ में जीप दुर्घटना में घायल भागीरथजी को राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद घर पर देखने आये।
चित्र में श्रीमती गंगादेवी कानोड़िया, श्री आत्माराम कानोड़िया और श्री राधाकृष्ण कानोड़िया भी दिख पड़ते हैं।

८०वें जन्म दिन पर अपने कुछ मित्रों के साथ। पीछे: बाएं से दाएं: नथमलजी भुवालका, सीतारामजी सेकसरिया और प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका। सामने बाएं से दाएं: ताराचन्दजी साबू और स्व० रामकुमारजी भुवालका।
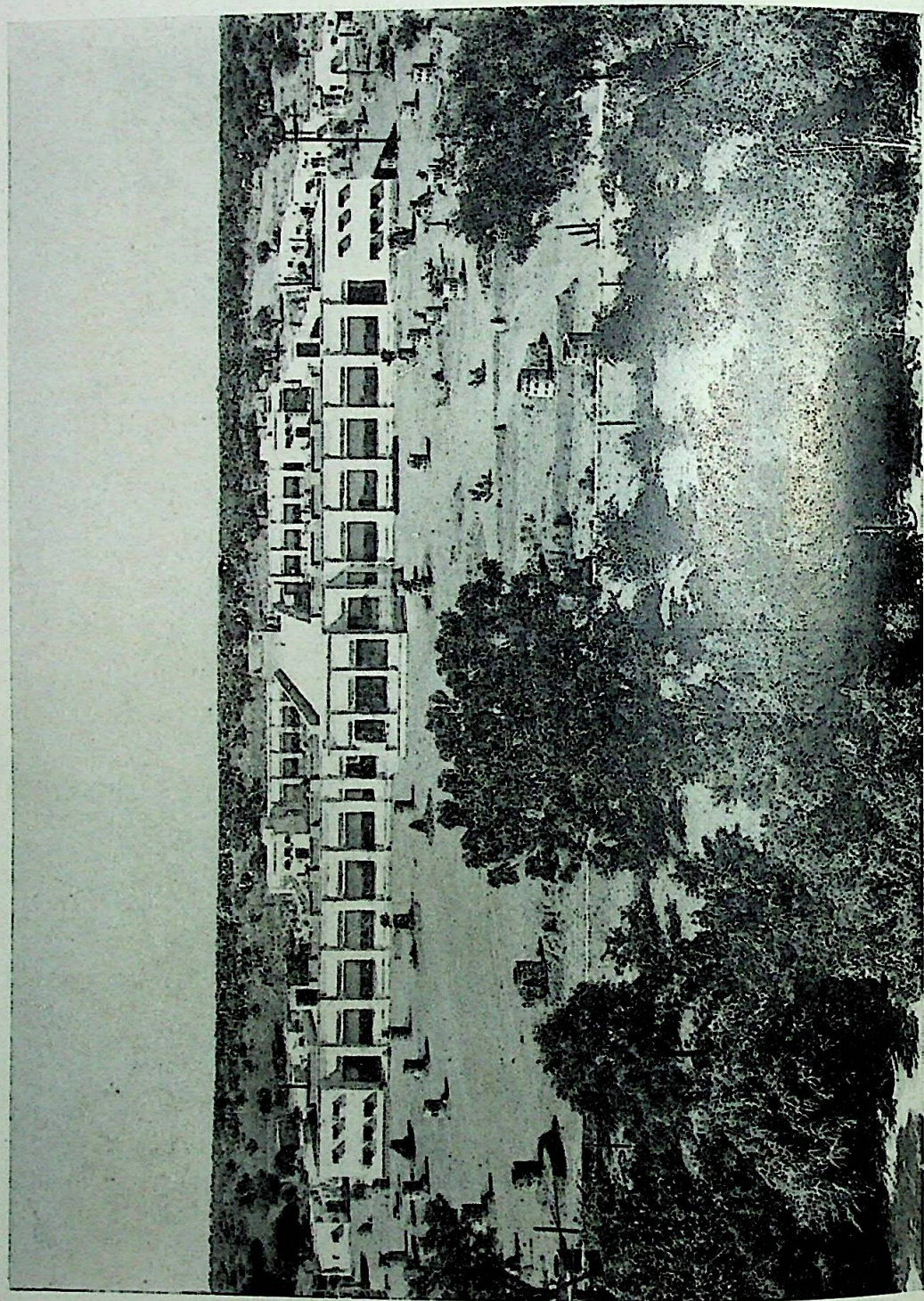
भागीरथजी का श्री कल्याण आरोग्य सदन, सीकर
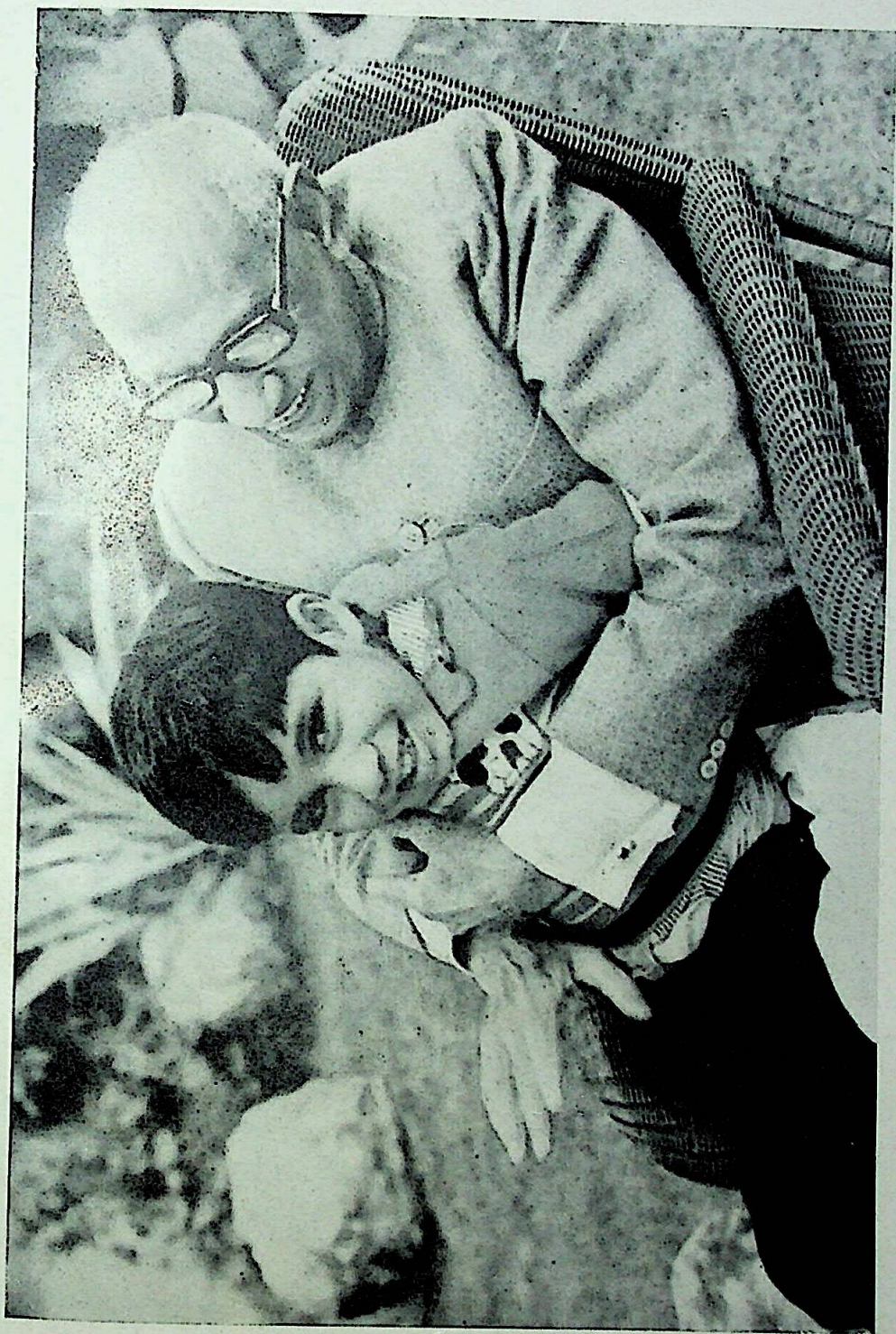
पौत्र श्रीनिवास के साथ प्रसन्न भागीरथजी

चिर निद्रा में

सर्वोदय-संत
आचार्य विनोबा भावे

सेवाभावी भक्त

भागीरथजी सेवाभावी भक्त थे। गोसेवा और गोरक्षा के कार्य में उन्हें रुचि थी और उसमें उनका हमेशा सहयोग रहा। आशा है कि भागीरथजी का सेवा-कार्य उनके परिवार-जन आगे भी जारी रखेंगे। वही भागीरथजी का सही स्मारक होगा।

—:०:—

सुप्रसिद्ध गांधीवादी विचारक एवं लेखक
काका कालेलकर

सज्जन और विनम्र

भागीरथजी कानोड़िया के साथ मेरा परिचय मेरे परम स्नेही सीतारामजी सेकसरिया द्वारा हुआ। उनकी सज्जनता और विनम्रता तो देखते ही प्रभावित करती थी। भागीरथजी जितने कार्य-कुशल थे उतने ही सज्जन भी। किसी के भी दु:ख में मदद करने को हमेशा तत्पर रहते, किन्तु चाहते कि अपना नाम आगे न आये। प्रत्यक्ष राजनीति में कोई रस नहीं था किन्तु स्वराज्य के लिये जेल अवश्य गये थे।

पूज्य गांधीजी के सब रचनात्मक कार्यों में सदा मदद करते रहते थे।

—:०:—

श्री रामकृष्ण आश्रम नीमपीठ के मंत्री
स्वामी बुद्धानन्द

वीतराग जनसेवक

मेरे चारों ओर स्व० भागीरथजी की स्मृतियां बसी हुई हैं। सन् १९४३ का भंयकर वर्ष युद्ध, अकाल और महामारी का वर्ष था। द्वितीय विश्वयुद्ध अपनी पूर्ण क्रूरता से ध्वंस कर रहा था। उपनिवेशवादी ब्रिटिश राज भारत पर शासन कर रहा था और उसका रक्त चूस रहा था। उसने षड़यन्त्र कर के बंगाल से अनाज गायब कर के कृत्रिम अकाल की स्थिति पैदा कर दी जिससे कि भूख मरते लोग अंग्रेजों की फौज में भर्ती हो जायें। बंगाल में भीषण अकाल पड़ा। प्रत्येक घर से भूख के कारण अन्न की पुकार उठने लगी। लाखों की संख्या में स्त्री-पुरुष और बच्चे कीड़े-मकोड़ों की तरह मरे। महामारी ने भी इस अकालग्रस्त प्रान्त को धर दबोचा और मानव-प्राण हरने में पीछे नहीं रही। दुर्भिक्ष एवं महामारी के दोहरे प्रहार ने अपनी विनाशलीला से बंगाल में वास्तविक नरक का दृश्य उपस्थित कर दिया।

भागीरथजी कानोड़िया इस विपत्ति के समय बंगाल रिलीफ कमेटी के सेक्रेटरी के रूप में राहत कार्य करने में अगुआ बने। यह कार्य उनकी संगठन-शक्ति, कार्य-कुशलता एवं सबसे अधिक अकालग्रस्त दीन-दुखियों के प्रति उनकी करुणा का प्रमाण था। इन राहत कार्यों के दौरान मुझे भागीरथजी से परिचय प्राप्त करने का अवसर मिला। मैंने उन्हें बिना थके, बिना माथे पर शिकन लाये अनवरत कठिन परिश्रम करते, कभी-कभी दो-दो टेलीफोन पर एक साथ बात करते देखा है। बंगाल के उस वीर पुरुष डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने मेरा भागीरथजी से परिचय करवाया था।

मैं सन् १९४५ में अविभाजित बंगाल से निकल पड़ा और सन् १९६१ में विभाजित बंगाल में वापस आया। १९४५ से १९६० तक के वर्ष मैंने गिरनार पर्वत, हृषिकेष, उत्तर काशी तथा पशुपतिनाथ में संयम धारण और ध्यान करने में बिताये। इन वर्षों में अन्तिम कुछ वर्ष मैंने श्री रामकृष्ण आश्रम के आदर्शों के अभ्यास एवं प्रचार, तथा गुजरात एवं बम्बई में जन-सेवा के कार्य करने में व्यतीत किये। भारत स्वतंत्र तो हो गया परन्तु गांवों के करोड़ों भारतीयों को अभी तक आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करनी बाकी है। वापसी पर मैंने पश्चिम बंगाल के ग्रामीणों की यथाशक्ति सेवा करने का निश्चय किया। इस कठिन एवं भारी कार्य के लिए मैंने भागीरथजी से मार्ग दर्शन एवं सहायता मांगी। उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया और श्री रामकृष्ण आश्रम, नीमपीठ की कार्यकारिणी समिति के १९६१ से १९६४ तक उपाध्यक्ष एवं १९६५ से १९७४ तक अध्यक्ष रहे। १९६१ से १९६४ तक का ४ वर्ष का समय बहुत कठिन था क्योंकि तब सब कार्यों का आरम्भ एवं निर्माण शून्य से करना था। भागीरथजी ने, जो

स्वयं में एक संस्था थे, कार्य आरम्भ करने की सारी मुश्किलों को हल करते हुए आश्रम की सहायता की। आश्रम में लड़कों का हाई स्कूल, लड़कियों का हाई स्कूल, हरिजन एवं अनुसूचित जाति के छात्रों के लिये आश्रम प्रणाली की पाठशाला, प्राथमिक विद्यालय, पूर्व प्राथमिक विद्यालय एवं ग्रामीण पुस्तकालय, इन सब संस्थाओं के जन्म एवं विकास के लिये उनका प्रेरक नेतृत्व उत्तरदायी है। बिजली की व्यवस्था, टेलीफोन एक्सचेंज, रामकृष्ण आश्रम प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, मत्स्य विकास केन्द्र के साथ कृषि विकास केन्द्र की स्थापना, पक्के श्मशान घाट का निर्माण, डाक-घर का खुलना, पक्की सड़क का निर्माण, ये सब उपलब्धियां उनके अथक प्रयास, दूरदर्शिता और महानता की कथा सुनाती हैं।

उन्होंने कभी भी नाम और यश की आकांक्षा नहीं की। वह अपने कर्त्तव्य को साहस और ईमानदारी से पूरा करने में विश्वास करते थे। इमारतों पर अपने नाम की शिला लगा कर अपना यश गाने की वृत्ति को वह नापसन्द करते थे और इसे व्यर्थ मानते थे। उनके अनुसार महान युगद्रष्टाओं एवं विद्वानों की ही स्मृति चिरकाल तक रहती है। साधारण मनुष्य जिन्होंने कभी थोड़ा सा कुछ काम कर दिया वे बहुत थोड़े समय के लिये याद किये जाते हैं। उनसे किसी समारोह की अध्यक्षता कराना बड़ा कठिन काम था, क्योंकि वह कभी भी उच्च पद पर आसीन होने के विरोधी थे। उनके जैसी नम्रता एवं विनयशीलता अन्यत्र पाना दुर्लभ है।

एक अलभ्य गुण था उनमें—किसी को भी कष्ट न देने का। वह सावधानी से उन बातों से अपने को दूर रखते थे जिनसे दूसरों को पीड़ा पहुंचे। वह सदा सबों को सहजता के वातावरण में रखने का प्रयत्न करते और विरोध एवं मतभेद से दूर रहते। वह अहं भाव से अछूते थे और विवश किये गए बिना अपने बारे में कभी कुछ नहीं कहते थे। वह परनिन्दा और परचर्चा से परे रहते। उन्होंने किसी के लड़ाई-झगड़े का कभी नाजायज फायदा नहीं उठाया और न कभी ओछापन दिखलाया। वह बहुत ही धैर्यवान, सहनशील एवं दूसरों के लिये सदा रास्ता छोड़ कर हट जानेवाले व्यक्ति थे। उन्होंने कभी किसी के प्रति मनोमालिन्य नहीं रखा तथा बातचीत में सदा शान्ति और बड़प्पन से काम लिया। वह बहुत ही मृदुल स्वभाव के मिष्टभाषी एवं शिष्ट व्यक्ति थे। उनकी छवि सदा मेरी आंखों के सामने घूमती है, उनकी वाणी मेरे कानों में गूंजती है और मुझे अपना कार्य करते रहने को प्रेरित करती है। उनकी स्मृति की सुगन्ध सदा हममें बसी रहे और हमें प्रेरणा देती रहे।

आश्रम की कार्यकारिणी समिति ने उनके निधन पर जो शोक प्रस्ताव पास किया था उसमें मेरी भावनाएं प्रतिध्वनित होती हैं। अपने को व्यक्त करने के लिये उससे अधिक अच्छे शब्द मेरे पास नहीं है, इसलिये उसी के कुछ शब्द उद्धृत करता हूं :

"सज्जनता में बेजोड़, अच्छाई और महानता के जीते-जागते उदाहरण, और प्रेरणा के अजस्र स्रोत भागीरथजी कानोड़िया ने कर्मपूर्ण वर्षों का ऐसा जीवन जिया जिसकी कुंजी सादगी थी और धर्म मेरुदण्ड था, उद्देश्य के प्रति सच्चाई उनके जीवन की विशेषता थी तो उदारता उनका मूल-मंत्र था। देखने में अत्यन्त सीधे-सादे, आचरण में सहज, सबके प्रति मृदुल एवं नम्र, खुशमिजाज और विनोदी, मन के कोमल, बोलने में मीठे,

सहृदय, सदा औरों के दृष्टिकोण के साथ मेल मिलाने को उत्सुक अपने स्वभाव के कारण वह सदा सबों के प्रिय और सम्मान के पात्र बने। उद्योगपति के रूप में वह बहुत चमके, परन्तु उनकी नीरव और मौन रह कर दान देने और स्वार्थ से ऊपर उठ कर जन-कल्याण करने के वैभव की चमक कहीं अधिक थी। उद्योग-धन्धे में व्यस्तता के बावजूद दीन-दुखियों और वंचितों के प्रति उनकी सम्वेदना उन्हें नीमपीठ के रामकृष्ण आश्रम की ओर खींच लायी। तब आश्रम बीहड़ और दलदल में एक छोटी कुटिया में अविकसित अवस्था में था। उपाध्यक्ष और अध्यक्ष के रूप में उनके दीर्घ, कार्यशील सान्निध्य की अनेकों मधुर स्मृतियां हैं जो आश्रम के आरम्भ के कठिन संघर्षमय दिनों की याद दिलाती हैं—उन्होंने किस तरह नवजात संस्था को दृढ़ता के साथ पाला और बड़ा किया, जिससे कि वह पीड़ित मानवता की सेवा करने का केन्द्र बन सके।

"आश्रम की स्थापना के समय से ही उन्होंने, व्यक्तिगत हैसियत से दान देकर उसे बढ़ाने की कोशिश की। उदारमना धनिक व्यापारियों और कलकत्ता के प्रतिष्ठित लोगों को आश्रम से परिचित करवा कर, अपनी मिलनसारिता और याचना की अनुपम शैली के बल से, उन्हें केवल अपनी तिजौरी खोलने को ही नहीं वरन, इस मानव सेवा कार्य के लिये बड़े-बड़े अनुदान देने को प्रेरित किया। इस तरह उन्होंने आश्रम को शून्य से इस ऊंचाई तक पहुंचने के संघर्ष में मदद की। आश्रम अति कृतज्ञता के साथ यह मानता है कि उनके सहयोग और शुभ कामनाओं के बल पर ही वह आज इतना विकास कर पाया है। आश्रम सदा इस महान हितैषी की मधुर याद संजो कर रखेगा।

"१९७४ के आखिर में वार्द्धक्यजनित दुर्बलता और अस्वस्थता के कारण उन्होंने आश्रम की कार्यकारिणी के अध्यक्ष पद से इस्तीफा दे दिया था परन्तु अन्त तक आश्रम के प्रति उनका प्रेम बना रहा। उनके द्वितीय पुत्र श्री तुलसीदास कानोड़िया, जो उतने ही मिलनसार और आकर्षक स्वभाव के हैं, उनकी जगह आश्रम की कार्यकारिणी के सदस्य बने हैं। इस तरह कानोड़िया परिवार के साथ आश्रम एक सूत्र में बंधा रह गया है। भागीरथजी के रोमांचित करनेवाले व्यक्तित्व की सबसे महत्वपूर्ण बात थी कि वह हमेशा आश्रम की उन्नति के लिये उत्सुक रहे। आश्रमवासियों के तथा आश्रम की गतिविधियों के बारे में तब भी पूछताछ करते रहे जब उनके जीवन की रेणु उनकी रोगशय्या पर से तेजी से फिसलती जा रही थी—यहां तक कि जब उनकी जीवन-ज्योति किसी भी क्षण बुझ जाने की धमकी दे रही थी और उनकी आवाज मृत्युगीत के भीषण शोर के बीच केवल फुसफुसाहट मात्र रह गयी थी।"

—:०:—

प्रसिद्ध जैन मुनि, अणुव्रत के प्रस्तोता

आचार्य तुलसी गणि

परिणाम-भद्र

कुछ सम्पर्क आपातभद्र होते हैं, परिणाम में भद्र नहीं होते और कुछ सम्पर्क आपातभद्र नहीं होते, परिणाम में भद्र होते हैं। भागीरथजी कानोड़िया का जब पहली बार सम्पर्क हुआ, तब वह बहुत भद्र नहीं था। उनके मन में भी अनेक आशंकाएं थीं और हमारे मन में भी एक विचार था। किन्तु जैसे-जैसे निकटता बढ़ती गई, सारी आशंकाएं समाप्त हो गईं और एक आत्मीय भाव बन गया। वे एक सामाजिक कार्यकर्ता थे, चिन्तनशील व्यक्ति थे और थे कर्मठ और बहुत समझदार। वे बात को बहुत जल्दी पकड़ लेते थे। एक बार जयपुर आये थे तो मेरे पास एक पुस्तक पड़ी थी—"जैन दर्शन : मनन और मीमांसा"। उन्होंने पुस्तक हाथ में ली। उसका मूल्य देख कर बोले—"इतना मूल्य !" मैंने सोचा—सब लोग शिकायत करते हैं कि पुस्तकों का मूल्य बहुत रखा जाता है। ये भी कहेंगे कि मूल्य ज्यादा है। उन्होंने दूसरी ही बात कही। वे बोले—"इतना कम मूल्य इस पुस्तक का ! केवल पच्चीस रुपया ! इसका मूल्य कम से कम पचास रुपया अवश्य ही होना चाहिए था। बहुत मूल्यवान् पुस्तक है। कम मूल्य देख कर लोग कहेंगे—कोई महत्त्व की पुस्तक नहीं है, इसीलिए कम मूल्य रखा है, केवल पच्चीस रुपया। यदि पचास रुपया देखेंगे तो कहेंगे—कोई न कोई महत्त्वपूर्ण पुस्तक होनी चाहिए।" मैंने सोचा—कितनी गहरी बात ! सामान्य व्यक्ति का दृष्टिकोण दूसरा होता है और प्रबुद्ध व्यक्ति का दृष्टिकोण दूसरा होता है। वस्तुस्थिति भी यही है कि प्रबुद्ध व्यक्ति यदि कम मूल्य देखता है तो उसकी यही धारणा बनती है कि यह या तो कोई प्रचार की पुस्तक है या इसमें कोई दम नहीं है। यदि यह महत्त्वपूर्ण होती तो इसका इतना कम मूल्य कैसे होता ? यह दृष्टि का बहुत बड़ा अन्तर होता है। मैंने देखा कानोड़ियाजी की दृष्टि बहुत साफ थी। हर बात को बहुत जल्दी पकड़ लेते थे।

एक प्रसंग बना। वे मेरे पास आकर बोले—"आचार्यजी, आपने उन तीन साध्वियों के प्रति जो दृष्टिकोण अपनाया वह सन्तोषजनक नहीं है।" मैंने कहा—"आपको वस्तुस्थिति ज्ञात नहीं है, इसीलिए आप यह कह रहे हैं।" उन्होंने कहा—"यह सच है। मैं सुनी-सुनाई बात के आधार पर कह रहा हूं। वास्तविकता का मुझे पता नहीं है।" तब फिर मैंने उन्हें सारा घटना-क्रम बताते हुए कहा—"क्या आप मेरी प्रवृत्ति से परिचित नहीं हैं ?" उन्होंने कहा—"बहुत परिचित हूं। अनेक वर्षों से सम्पर्क में हूं।" मैंने कहा—"क्या मैं क्रूरतापूर्ण व्यवहार कर सकता हूं और वह भी एक साध्वी के प्रति ? क्या आप ऐसी कल्पना कर सकते हैं ?" उन्होंने कहा—

"जंचता तो नहीं है। फिर भी आप इसे और अधिक स्पष्ट करें।" मैंने कहा—"अंतिम क्षण तक मैंने प्रयत्न किया कि यह घटना न घटे।"
घटना यों है—

वे उदयपुर में थीं। एक बहिन अस्वस्थ थी। विहार की स्थिति में नहीं थीं। बहिनों के बारे में मेरे पास कई शिकायतें थीं। मैंने कहा—"अस्वस्थ बहिन को वहां रख दो। उसकी परिचर्या में एक पूरा ग्रुप साध्वियों का रख देंगे। बाकी की तुम विहार करके यहां आ जाओ।" तब उन्होंने कहा—"हम बहिन को छोड़कर नहीं आ सकतीं।" मैंने कहा—"बहिन या किसी का मोह साधु-जीवन में नहीं रहना चाहिए। हां, सेवा होनी चाहिए—वह होगी ही।" उन्होंने नहीं माना, तो मैंने यहां तक कहलाया—'तुम एक बार आ जाओ, फिर वापिस तुमको बहिन के पास भेज देंगे। इतना आश्वासन देने पर भी उन्होंने कोई बात स्वीकार नहीं की। अनुशासन का प्रश्न उपस्थित हो गया। संघनेता के नाते, आचार्य के नाते मुझे अनुशासनात्मक कदम उठाना पड़ा। हमारे संघ में अनुशासन की अवहेलना कभी मान्य नहीं हो सकती। इसलिए मुझे उन तीनों साध्वियों को संघ से अलग करना पड़ा।"

कानोड़ियाजी बोले—"यह स्थिति है, तब तो आपने उचित ही किया। किन्तु मेरे सामने घटना का दूसरा ही रूप प्रस्तुत हुआ था।" मैंने कहा : "सुनी-सुनाई बात में बहुत अन्तर रहता है।" उनकी धारणा स्पष्ट हो गई। मैंने देखा जब वस्तुस्थिति सामने आई तो उनका मन बिल्कुल भारहीन हो गया। मन में कोई समस्या या उलझन नहीं रही।

वे एक उद्योगपति थे, धनी व्यक्ति और सम्मान्य थे। यह उनके जीवन का एक पक्ष है। किन्तु मैं उन्हें जिस दृष्टि से देखता हूं, वह दृष्टि उनकी अन्य विशेषताओं के कारण बनी हुई थी। मुझे वैभव या सम्पदा से कोई विशेष सरोकार नहीं है। उनमें जो मानवीय गुणों का विकास था, वह दुर्लभ था। इस दृष्टि से उनके प्रति, उनकी आत्मा के प्रति मैं सद्भावना व्यक्त करता हूं और यह आशंसा करता हूं कि उनकी आत्मा उत्तरोत्तर अपने चैतन्य को अनावृत कर आगे से आगे बढ़ी रहे।

—: ० :—

हिन्दी की मूर्द्धन्य कवयित्री
श्रीमती महादेवी वर्मा

स्मृतियां

हर व्यक्तित्व की अपनी भाषा होती है। कुछ व्यक्तित्व ऐसे जटिल होते हैं कि जीवन भर उन्हें समझने का प्रयास करने पर भी सफलता संदिग्ध ही रहती है किन्तु कुछ ऐसे सरल होते हैं कि उन्हें क्षण भर में खुली पुस्तक के समान पढ़ा जा सकता है।

भाई भागीरथजी का व्यक्तित्व ऐसा ही सरल स्वच्छ बिल्लौर जैसा था, जिसमें किसी दुराव या अस्पष्टता का आभास मुझे नहीं मिला। भाई सीतारामजी को जान कर भागीरथजी को न जानना सम्भव नहीं था, क्योंकि वे सीतारामजी के ऐसे मित्र थे, जो बाल्य-काल से अन्त तक उनके साथ छाया के समान निरन्तर भिन्न और अभिन्न रहे। उनके हर कार्य में सहयोगी रहने पर भी उन्होंने सीतारामजी के यश में कोई अंश-भाग नहीं चाहा। जब सीतारामजी ने स्वयं देना भी चाहा तब उन्होंने अपने सहयोग को भी उपेक्षित करके नकार दिया।

यश की लिप्सा मनुष्य की सहजात दुर्बलता है। उससे जो निर्लिप्त रह सके उसे असाधारण ही कहना चाहिए। मैंने विद्यापीठ के शैशव में ही उन दोनों को साथ देखा। लम्बा कद, दुबली शरीर यष्टि, उज्ज्वल श्यामवर्ण, गोलाई लिए मुख और उसी के अनुपात से नाक-नक्श तथा आत्मीयताभरी आंखों में परिचयभरी सरल दृष्टि।

उसी समय परीक्षा-विभाग से महाविद्यालय-विभाग को १, एल्गिन रोड के पुराने बंगले में लाये थे और वहां एक पुराने बंगले के अतिरिक्त विशेष कुछ नहीं था। छात्रावास भी नया-नया कामचलाऊ बना लिया था। भोजनालय भी कच्चा-पक्का आधा बना था जिसके कच्चे आंगन को लीप कर हम चटाइयां बिछा कर बैठते थे। उसमें जब भाई सीतारामजी के साथ भागीरथजी आकर खड़े हो गए तब पहले कुछ संकोच अवश्य हुआ परन्तु उन दोनों की प्रसन्न मुद्रा देखकर वह तुरन्त ही दूर हो गया। ऐसा लगा मानों हम जन्म-जन्मान्तर से परिचित और उसी ग्रामीण परिवेश में पले-बढ़े हैं और बहुत दिनों के बिछोह के उपरान्त मिले हैं। वह कुछ ऐसी अनिर्वचनीय अनुभूति है जिसे व्यक्त करने में शब्द असमर्थ ही रहेंगे। भाई भागीरथजी के स्वभाव की एक विशेषता ने मुझे प्रायः विस्मित किया है। सामान्यतः मनुष्य अपने किये अपकार को स्मृति पटल से पोंछ डालता है और उपकार को स्वर्णाक्षरों से अंकित रखता है। इसके विपरीत भागीरथजी दूसरे के प्रति किये अपने उपकार को भूल जाते थे तथा अपनी छोटी से छोटी भूल को भी स्मृति में अंकित रखते थे। इतना ही नहीं दूसरा भूलना भी चाहे तो उसे याद दिलाते रहते थे। कहा नहीं जा सकता कि यह स्वभाव उन्हें किस जन्म की साधना से प्राप्त था, परन्तु यह विरल तो है ही।

उनकी संवेदनशील प्रकृति का प्रथम परिचय भी मुझे विद्यापीठ में ही मिला। हम विद्यापीठ के सेवासदन में पचास के लगभग असहाय बहिनों को निःशुल्क रख कर तीन वर्षों में स्वावलम्वी बना देने का लक्ष्य रखते थे। उस युग में भी इतनी महिलाओं के भोजन, वस्त्र, शुल्क आदि की व्यवस्था करना कठिन ही था। भोजन अत्यन्त सादा होता था। सब्जी, दही आदि सप्ताह में दो वार ही दे पाते थे। भाई भागीरथजी को जब यह ज्ञात हुआ तव उनकी आंखें सजल हो आईं, जिनके आंसुओं को छिपाने का वे प्रयत्न करते रहे। उनकी कातरता देखकर मैंने सांत्वना देते हुए कहा कि भारत का अधिकांश जन-समुदाय ऐसा ही भोजन करता है परन्तु उनका समाधान नहीं हुआ और उन्होंने भाई सीताराम के साथ उस अधिक व्यय-भार को संभाला जो उन बहिनों को नित्य अच्छा भोजन देने से बढ़ा था।

उसी प्रकार जब बंगाल से अपहृत कुछ बहिनों के वापस आने पर उन्हें उनके परिवारों ने स्वीकार नहीं किया तब महिला विद्यापीठ ने उनके लिए वनिता-विश्राम खोला और उनके पठन-पाठन की व्यवस्था की। इस व्यवस्था में वे सहयोगी रहे।

साहित्यकार-संसद की स्थापना में भी उनका सहयोग रहा। भाई सीतारामजी के हर सामाजिक-सांस्कृतिक कार्य के तो वे अविच्छिन्न अंग ही रहे, परन्तु अपने कृतित्व का कोई भार न उन्होंने अपनी स्मृति में रखा और न दूसरों को उसका स्मरण कराया। उद्योग के क्षेत्र में रहते हुए भी हमारे स्वातन्त्र्य-संग्राम में उन्होंने महत्वपूर्ण सहयोग भी दिया और जेल में बन्दी-जीवन भी बिताया। पूज्य बापू के वे अपने जीवन के अन्त तक भक्त रहे। बापू के महाप्रस्थान के उपरान्त उनके अनेक भक्तों ने उनके सिद्धान्तों की सुविधानुकूल व्याख्या कर के अपने लिए सुविधाएं जुटा लीं, किन्तु भागीरथजी जैसा समर्पित व्यक्तित्व ऐसी किसी सुविधा को हेय-दृष्टि से ही देखता रहा जो गांधीजी के नाम से सुलभ हो गई थी। आज उनके बिना भाई सीतारामजी को देख कर मन विषाद से भर जाता है। छाया वृक्ष में विलीन होकर भी उसे अकेला तो कर ही जाती है। उनकी कर्म-निष्ठा, उनका निष्काम-समर्पण, उनका अकुण्ठित स्नेह जो कभी उनकी वाणी में मुखर नहीं हुआ, हम सबके हृदय में अपना पता छोड़ गया है। इस युग में जब मित्रता स्वार्थगत, स्नेह सुविधागत, और सहयोग लाभ और अर्थगत है, तब ऐसे व्यक्तित्व मिलना सम्भव नहीं रहा है। वे धन्य हैं जो ऐसा जीवन जी सके, जिससे अन्य जीनेवाले प्रेरणा ले सकें। जो अपने आदर्श को अकुण्ठित रखकर विदा लेता है उसी का जीवन सार्थक है।

बध्यो बधिक पर्‌यो पुन्य जल उलटि उठाई चोंच।
तुलसी चातक प्रेम-पट, मरतहु परी न खोंच॥

—: ० :—

विश्वप्रसिद्ध भाषा-वैज्ञानिक

डा० स्व० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या

हिन्दी-प्रेमी

कानोड़ियाजी मेरे अत्यन्त सम्मानीय मित्रों में से थे और उन्हें मैं प्रमुखतया दो रूपों में पहचानता रहा। एक यह कि वे बहुत पुराने सामाजिक कार्यकर्त्ता थे और दूसरे यह कि वे सम्पर्क-भाषा हिन्दी के विकास में सदैव ही प्रयत्नशील रहे। व्यक्तित्व और कृतित्व के लिए मैं उन्हें उच्चतम पद प्रदान करना चाहूंगा क्योंकि उन्हें मानव-सेवा की बेचैनी एक क्षण भी कम नहीं होती थी। हां, जरूरतमन्दों के पुनर्व्यवस्थापन के लिए गांधीजी ने जब व्यावसायिक व्यक्तियों का खुला आह्वान किया था तो कानोड़ियाजी उनमें से प्रथम पंक्ति में गणनीय थे। अतः भागीरथजी जैसे सदाशय व्यक्तियों का उद्योग-व्यापार में होना, वैश्य-समाज की आदर्श-प्रधान शुभ प्राचीन भारतीय परम्परा का मूर्तिमान स्वरूप है।

—: ० :—

भागीरथजी के अभिन्न मित्र

श्री सीताराम सेकसरिया

निष्काम कर्मयोगी

एक ऐसे व्यक्ति के बारे में, जिसके साथ सत्तर वर्ष का परम आत्मीय दीर्घ सम्बन्ध रहा हो—जो बचपन, जवानी और बुढ़ापे में हमेशा साथ-साथ रहा हो, जिसके साथ रेल और जेल में जीवन के सघन क्षण व्यतीत हुए हों—लिखना अत्यन्त दुष्कर है। लेकिन उसके बारे में दुनिया को बताने की इच्छा भी बहुत प्रबल होती है। भाई भागीरथजी जैसे व्यक्ति के बारे में जानने की बहुत लोगों में इच्छा होगी, इसमें मुझे सन्देह है। हमारी दुनिया अब ऐसे लोगों की, जो अपने को नेता नहीं, कार्यकर्ता मानते हैं, कदर करना तो दूर उनके बारे में जिज्ञासा भी अनुभव नहीं करती।

एक वाक्य में कहना हो तो कहेंगे कि गांधी-युग में हमारे देश में कार्यकर्त्ताओं की एक ऐसी जमात पैदा हुई, जिसने अपने हिन्दू-संस्कारों का अद्भुत रूपांन्तर किया। हिन्दू-धर्म की बुनियाद पर ही इन लोगों ने प्रेम, करुणा और समता की भावनाएं अपने में इस तरह विकसित कीं कि उन्हें मुसलमान को पराया मानना या हरिजन को अछूत मानना पाप लगा। भाई भागीरथजी के हिन्दू-संस्कार तो प्रबल थे ही, साथ में सामाजिक रीति-रिवाजों, राजस्थानी भाषा और कहावतों की विशद जानकारी के कारण उनमें अतीत के प्रति एक प्रकार का मोह भी था। लेकिन इन दोनों चीजों ने उनके व्यक्तित्व को संकीर्ण और पुरातनपन्थी बनाने के बजाय उदार और आधुनिक बनाया। यह कैसे संभव हुआ ? यह सोचने पर दो ही कारण नजर आते हैं—उनकी सम्वेदना और करुणा इतनी तीव्र थी कि वह उदार हुए बिना रह ही नहीं सकते थे। दूसरे, गांधीजी का प्रताप था कि हर आदमी कहीं-न-कहीं अपनी रूढ़िवादिता को त्यागने के लिए बाध्य हो रहा था।

देश गुलाम था, इसलिये भाई भागीरथजी ने राजनीति से सम्पर्क रखा था। उनके बंगाल में मंत्री बनने की बात भी उठी थी। लेकिन देश के आजाद होने के बाद उन्होंने राजनीति से सम्पर्क तोड़ लिया। वह अत्यन्त विनम्र व्यक्ति थे ; सत्तर वर्ष के संग-साथ में मैंने उनके मुंह से कभी कड़ी बात नहीं सुनी। बातचीत में क्षुद्रता और छोटेपन का प्रतिकार वह अपने को बातचीत से काट कर किया करते थे। हम सब झूठी प्रशंसा सुनने पर कहीं-न-कहीं प्रसन्न होते हैं। अपने जीवन में भाई भागीरथजी को ही मैंने एकमात्र ऐसा व्यक्ति पाया जो झूठी प्रशंसा करनेवाले आदमी को यह कह कर चुप करा देता था कि 'आप इतनी हल्की बात क्यों करते हैं ?' अपने बारे में कभी आत्म-प्रशंसा के भाव में कुछ बताते हुए मैंने उनको कभी नहीं पाया। अपने बारे में उनकी यह उदासीनता उन्हें कहीं जनक-जैसा विदेह बनाती थी। मेरे मन में उनकी

छवि राजा जनक की ही है। इधर मैंने उनमें एक परिवर्तन जरूर देखा था—उनकी लोक कथाओं की पुस्तक 'बहता पानी निर्मला' की चर्चा होने पर वह पूछते थे कि कौन-कौन-सी कहानी पढ़ी, नहीं तो अपनी हर कृति और हर काम के बारे में उनका रुख आसक्ति के बजाय वैराग्य का ही था।

आजादी की लड़ाई के दिनों में उनका राजनीति से सम्पर्क रहा—गांधीजी, जमनालालजी बजाज, राजेन्द्रबाबू, सुभाषबाबू, टण्डनजी, सरदार पटेल और जयप्रकाशजी जैसी महान आत्माओं से भी उनका निकट का सम्पर्क बना। लेकिन उनका कार्य-क्षेत्र रचनात्मक ही ज्यादा था। गांधीजी ने जब हरिजनों का काम शुरू किया तब गांधीजी के सारे कामों में उन्हें यही सबसे ज्यादा अपनी रुचि का लगा। हरिजन-बस्तियों में जा कर वहां सफाई का काम करने, प्रौढ़-शिक्षा के लिए रात्रिकालीन पाठशालाएं खोलने और चलाने का काम उन्होंने वर्षों किया।

१९४२ में गिरफ्तारी के बाद १९४३ में बीमारी के कारण जब उन्हें रिहा कर दिया गया तब बंगाल में १९४३ का महाअकाल ताण्डव कर रहा था। वह अकाल राहत के काम में जुट गए। राहत-समिति के पास उन दिनों देश के कोने-कोने से मनीआर्डर आते थे। समिति के पास ४० लाख रुपये का कोष जमा हो गया था। बंगाल के गांव-गांव में जा कर अकाल पीड़ितों की सहायता का काम उन्होंने जिस मुस्तैदी से किया उसकी तुलना राजेन्द्रबाबू के बिहार-भूकम्प के काम से करने की मेरी इच्छा होती है।

कलकत्ता में कितनी ही संस्थाएं उन्होंने कायम की। मातृ सेवा सदन, मारवाड़ी बालिका विद्यालय, शुद्ध खादी भण्डार, श्रीशिक्षायतन, अभिनव भारती, भारतीय भाषा-परिषद आदि। मैंने जिन-जिन संस्थाओं का काम सम्भाला उनके मूल में वह थे। बहुत कम लोगों को यह पता है कि मैंने जिन संस्थाओं का काम सम्भाला उनमें भाई भागीरथजी की साझेदारी कितनी अधिक थी। अपने को छिपा कर अदृश्य शक्ति के रूप में काम करने की उनकी आदत जब भी स्मरण आती है, तब लगता है कि वह सचमुच ही देवता थे क्योंकि देवताओं की शक्ति ही अदृश्य हुआ करती है।

राजस्थान में एक बार जल-संकट के भीषण होने पर तत्कालीन मुख्यमन्त्री मोहनलाल सुखाड़िया ने उनसे राज्य की जल-व्यवस्था का काम सम्भालने का आग्रह किया। भाई भागीरथजी ने पहली बार सरकारी मदद से काम किया। जल-बोर्ड के अध्यक्ष के रूप में वह गांव-गांव में घूमे। हजारों कुएं और ट्यूबवेल खुदवाए। राजस्थान के लोग आज भी उनके इस काम की प्रशंसा करते नहीं अघाते। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में वह सीकर (राजस्थान) के टी० बी० सेनेटोरियम का काम देख रहे थे। बद्रीनारायणजी सोढानी जैसे कुशल व मेहनती व्यक्ति का साथ पाकर उन्होंने सीकर जैसे पिछड़े इलाके में टी० बी० का एक ऐसा सेनेटोरियम बनाया है, जो देश में विशिष्ट है।

इस छोटे से परिचयात्मक लेख में मैंने अत्यन्त मोटी-मोटी सूचनाएं ही दी हैं। सत्तर वर्षों के साथ के बारे में लिखने के लिए कम-से-कम सत्तर पन्ने तो चाहिए ही। मैं और भागीरथजी राजस्थान के अगल-बगल के दो कसबों—नवलगढ़ और मुकुन्दगढ़ में जनमे। आज से ६८ साल पहले उन्होंने अपने शहर मुकुन्दगढ़ में पुस्तकालय खोला और मैंने अपने शहर नवलगढ़ में। वह सोलह वर्ष के थे और मैं अठारह वर्ष का। हमारी बचपन की मैत्री किशोरावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था से गुजर कर आज उनके चले जाने से खण्डित हो गई। इस वियोग का दुख कथन से परे है। लेख समाप्त करने के पहले भाई भागीरथजी के बड़े भाई गंगाबक्सजी की मुझे याद आती है। भागीरथजी से उम्र में बड़े होने के बावजूद वह भागीरथजी की बात को हमेशा बुजुर्गाना सलाह ही मानते थे।

—: ० :—

सुप्रसिद्ध सामाजिक एवं राजनैतिक कार्यकर्ता

श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका

उड़ रे हंसा जाओ गगन में

श्रीमद्भागवत में लिखा है :

यथा प्रयान्ति संयाति, श्रौतवेगेन बालुकाः
सयुजन्ते नियुजन्ते, काल वेगेन देहिनः ।।

अर्थात् जिस प्रकार जल के प्रवाह में बालू के कणों का मिलन होता है और बिछुड़न होता है उसी प्रकार कालरूपी नदी के प्रवाह में प्राणियों का मिलन और वियोग होता है।

उसी काल के प्रवाह में आज से लगभग ६० वर्ष पूर्व सन् १९२०-२१ में भागीरथजी से मिलन हुआ था और इस लम्बी अवधि में हमलोग एक साथ काल-प्रवाह में बहते रहे और एक दिन उनसे विछोह भी हो गया। जब साठ साल की लम्बी अवधि के प्रथम छोर से खड़े होकर मंजिल के अन्तिम सिरे की ओर दृष्टिपात करता हूं तो भागीरथजी के साथ बिताई हुई न मालूम कितनी सुखद घड़ियां और घटनाएं काल-यवनिका पर आ-आ कर चित्रपट की तरह छा जाती हैं। जिस व्यक्ति का सान्निध्य एवं स्नेह इतने वर्षों तक मिलता रहा, जो जीवन के उतार-चढ़ाव में एक साथ डटा रहा, जो व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक एवं पारमार्थिक सभी समस्याओं का शब्द-कोश की भांति समाधान रहा, उसके वियोग से मन पर कितना बड़ा आघात लग सकता है इसकी कल्पना करना सहज बात नहीं है। ऐसा लगता है :

"ख्वाब था जो कि देखा,
जो सुना अफसाना था" ।।

जो कुछ आंखों से देखा था वह सब एक स्वप्न का जंजाल मात्र था और जो कुछ कानों से सुना था वह एक गल्प था, कहानी थी।

भागीरथजी सचमुच एक व्यक्ति ही नहीं थे, वे एक संस्था थे। अपने जीवन-काल में भागीरथजी ने विभिन्न क्षेत्रों में बड़ी सेवाएं कीं। हजारों व्यक्तियों और संस्थाओं के वे संबल थे। उनकी सेवाओं से बहुत लोग परिचित भी नहीं हैं क्योंकि उनका आदर्श कर्मनिष्ठा था। प्रचार, प्रसार और दिखावे से वे हमेशा दूर भागते थे। कई मित्रों ने उनके अभिनन्दन का प्रस्ताव कई बार रखा पर वे कभी सहमत नहीं हुए।

आरम्भ में भागीरथजी बिड़ला परिवार के व्यवसाय के साथ सम्बद्ध थे और बिड़ला संस्थान में जिम्मेवारी के पद पर आसीन थे। बहुत दिन काम करने के बाद उन्होंने अपना व्यापार आरम्भ किया। उसमें वे काफी सफल रहे।

भागीरथजी महात्मा गांधी द्वारा चलाए गए स्वतन्त्रता संग्राम में कन्धे से कन्धे मिला कर डटे रहे। जब-जब गांधीजी का आन्दोलन हुआ, उसमें वे शरीक हुए और

आन्दोलन को आगे बढ़ाया। १९४२ के "भारत-छोड़ो" आन्दोलन में ९ मास का कारावास उन्होंने भोगा। गांधीजी के चलाए गए हरिजन आन्दोलन में भागीरथजी ने गांधीजी के साथ धन संग्रह किया और उसमें हर तरह से उन्हें सहयोग दिया। हरिजन पाठशालाएं खोलीं। हरिजनों के बीच उन्होंने काफी दिलचस्पी से काम किया।

राजस्थान के लिए की गई भागीरथजी की सेवाएं सदा चिरस्मरणीय रहेंगी। हीरालालजी शास्त्री, मानिकलालजी वर्मा, हरिभाऊ उपाध्याय और राजस्थान के अन्यान्य नेताओं और कार्यकर्ताओं को भागीरथजी के सहयोग से काफी मदद मिली। बहुत सी संस्थाएं ऐसी हैं, जिनको उन्होंने खड़ा किया; कई संस्थाएं ऐसी हैं, जो भागीरथजी की सहायता से ही फली-फूली हैं। उनका सहयोग न होता तो कदाचित वे बन्द हो जातीं अथवा ठीक ढंग से पनप नहीं पातीं।

पुराणों में वर्णन है कि राजा भगीरथ ने कड़ी तपस्या करने के बाद भारत में गंगा का अवतरण करवाया जिसने सारे उत्तरी और पूर्वी भारत को धनधान्य से सम्पन्न कर दिया। वह कार्य तो अपने ढंग का अनूठा और बेजोड़ कार्य था। पर उसी तरह की भावना से प्रेरित होकर राजा भगीरथ की तरह भागीरथजी ने भी जल-बोर्ड के माध्यम से पेय-जल तथा सिंचाई के लिये जल की उपलब्धि करवाई। राजस्थान की सूखी और बंजर भूमि में कुएं बनवाए और वहां हरित-क्रांति पैदा कर दी। अनाज के उत्पादन में वृद्धि तो हुई ही साथ ही साथ रेगिस्तानी भूखंड हरा-भरा हो गया। लोगों को घर-बैठे काम मिल गया। कृषि को नया जीवन मिला। नैराश्य के अन्धकार में भटकते हुए गरीब किसान के हृदय में आशा की किरण फूटी। जल-बोर्ड के काम में लगे रहने के कारण एक समय उन्हें काफी चोट आई। कई फ्रैक्चर भी हो गए और कई महीनों तक उन्हें शैया पर रहना पड़ा।

उस युग से आज के युग की तुलना करें तो कोई जोड़ ही नहीं है। उस समय समाज कितना रूढ़िग्रस्त था? समाज में कितना अन्धविश्वास, कितना अज्ञान फैला हुआ था, इसका आभास सिर्फ उन्हीं को है जो उस जमाने से गुजर चुके हैं।

सन् १९२६ में भागीरथजी तथा हम सब मित्र एक विधवा-विवाह करवाने में सहयोगी थे। उस विवाह ने समाज में काफी हलचल पैदा कर दी थी। पंचायत बैठी, हमलोग भागीरथजी के साथ पंचायती के सम्मुख उपस्थित हुए। कट्टर रूढ़िवादियों को बहुत समझाया। विधवा-विवाह के पक्ष में बोले। पर उस समय कौन हमारी बात सुननेवाला था? फलस्वरूप हमें जाति-बहिष्कृत किये जाने का दंड भोगना पड़ा।

गांधीजी के खादी आन्दोलन के समय १९२९ में कलकत्ता में शुद्ध खादी भंडार की स्थापना के कार्य में भागीरथजी अगुआ थे। महात्मा गांधी के द्वारा शुद्ध खादी भंडार का उद्घाटन हुआ। इस संस्था ने तब से आज तक खादी जगत् में न मालूम कितना काम किया है। खादी पहननेवालों को आसानी से खादी पहनने का मौका दिया है और अब भी दे रही है। उनके विविध सेवा-कार्यों की यहां विस्तृत गणना नहीं कर रहा हूं। ये तो कुछ संकेत हैं जिनमें भागीरथजी की गहरी रुचि थी।

हिन्दी भाषा-विशेषकर राजस्थानी साहित्य, भागीरथजी को विशेष प्रिय था। समय-समय पर वे हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में लिखते रहते थे। उन्होंने राजस्थानी

कहावतों का संकलन किया। "बहता पानी निर्मला" उनकी सरस लेखनी का एक नमूना है।

भागीरथजी के सामने जो भी सार्वजनिक काम आया, उसके लिये धन एकत्र करने में वे अगुआ रहे। कोई काम ऐसा याद नहीं आ रहा है कि जिसमें उनका सहयोग तन-मन-धन से न रहा हो। सभी कामों में वे आगे रहते थे और मदद देने के लिये सदा तत्पर रहा करते थे। जितना काम कलकत्ता तथा अन्य स्थानों में भागीरथजी ने किया शायद ही अन्य किसी मित्र ने किया हो।

भागीरथजी से उनके अन्तिम दिनों एवं अन्तिम घड़ियों में मिलता रहा। लगता था कि अस्ताचल की ओर सूर्य ढल रहा है और क्षितिज के उस पार विलीन होने के पहले वह अपनी लालिमा बिखेर रहा है। उनका वियोग इतना असह्य हो रहा था कि उनके पास जाकर बैठने की हिम्मत नहीं होती थी।

ऐसे बहुत विरले ही पुण्य-पुरुष होंगे जिन्होंने इस "नर चोले" को पाकर उसे सेवा-धर्म में लगाया हो, जो जन-जन के दुःख-दर्द में शामिल होकर उनकी आर्त्त-वाणी से द्रवीभूत हुए हों, अपने परिश्रम से कमाए हुए धन को गांधीजी के सिद्धान्त के अनुसार जनता की धरोहर माना हो और "तेन त्यक्तेन भुंजीथा" की वेदवाणी को दैनिक व्यवहार में उतार कर अपने जीवन सुमन की सौरभ चारों ओर फैलाई हो। भागीरथजी उन्हीं महान आत्माओं में से थे, जिन्होंने मानवीय उसूलों को अपनाकर अपना जीवन सार्थक किया और एक दिन उन्होंने अपने निर्मल चोले को प्रभु के समक्ष रख दिया।

"उड़ रे हंसा जाओ गगन में, खबरा लाओ मेरे प्रीतम की।"

और वह हंस अपने साध्य की प्राप्ति में अपनी भौतिक सीमाओं को चीरता हुआ स्वच्छन्द गगन मंडल में विलीन हो गया, आंखों से ओझल हो गया। और हम असहाय की भांति देखते ही रह गए।

गीता के द्वारा बताये हुए उस शाश्वत सत्य का स्मरण करके कुछ ढारस मिलता है:

"अजो नित्यः शाश्वतोयं पुराणो, न हन्यते हन्यमाने शरीरे" ॥

—:०:—

भारत के भूतपूर्व उप प्रधानमंत्री,
संसत्सदस्य
श्री जगजीवन राम

पुष्पांजलि

श्री कानोड़िया एक देशभक्त एवं समाज-सेवी व्यक्ति थे। वे समाज और देश-सेवा के लिए सदैव तत्पर रहते थे और आजीवन इस काम में जुटे रहे। दैवी प्रकोप से पीड़ित जनता का दुःख अपना दुःख मान कर वे उसकी सहायता का भरसक प्रयास करते थे। अपनी सेवा और दानशीलता के कारण कलकत्ता में वे लोकप्रिय जन-सेवक के रूप में जाने जाते थे।

—: ० :—

सुप्रसिद्ध समाजसेविका,
एवं वनस्थली विद्यापीठ की संचालिका
श्रीमती रतन शास्त्री

न भूतो न भविष्यति

भाई भागीरथजी जैसे व्यक्ति के बारे में जिनके साथ ५२ वर्ष के लम्बे समय तक आत्मीयतापूर्ण पारिवारिक स्नेह-सम्बन्ध की अजस्र धारा प्रवाहित होती रही, मुझे यह नहीं समझ पड़ रहा है कि क्या तो लिखा जाए और क्या छोड़ दिया जाय।

विवाह होकर अपने जयपुर पहुंचने के कुछ ही महीनों बाद मुझे यह आभास होने लग गया था कि गवर्नमेण्ट का काम छोड़ कर किसी गांव में जम कर बैठने और वहां कोई रचनात्मक काम करने की बलवती इच्छा शास्त्रीजी की है। शास्त्रीजी के भीतर जो गहरा मंथन चल रहा था उसे देख कर एक दिन मैंने उनसे पूछ ही डाला कि इस प्रकार गम्भीर रहने का क्या कारण है? उन्होंने मुझे बताया कि बचपन से ही उनका यह विचार चलता रहा था कि वह किसी गांव में बैठ कर गांववालों के भले के लिए कुछ करें; "मैं देख रहा हूं कि इस समय मैं उससे उल्टी दिशा में बह रहा हूं। जब मनोनुकूल दिशा में आगे बढ़ने का विचार करता हूं तो मुझे सहसा तुम्हारे और बच्चों का ध्यान हो आता है कि वैसी परिस्थिति में तुम लोगों का मेरे साथ निभाव कैसे-क्या हो पायेगा।" यह सुन कर मैंने उस समय न तो कुछ सोचा और न ही कुछ समझा। सहसा मेरे मुंह से निकल गया कि आपको अपनी इच्छा के खिलाफ गवर्नमेण्ट के काम में बिल्कुल नहीं रहना चाहिए। मेरे बारे में आप कुछ सोचते हों तो मेरी बात तो यह है कि आप जो कुछ सोचते हों उसको कार्यान्वित करने में मेरी वजह से आपको कोई कठिनाई नहीं होगी। फिर सही बात तो यह है कि जहां होंगे राम वहीं होगी अयोध्या। थोड़े दिन बाद मैं बीमार हो गयी और अपने पिताजीके पास रतलाम पहुंच गयी। इसी बीच शास्त्रीजी ने अपने सरकारी काम से त्यागपत्र दे डाला।

इन्हीं दिनों एक दिन दा साहब (भाई हरिभाऊजी उपाध्याय) जयपुर में हमारे खेजड़े के रास्ते स्थित मकान पर आये। उनसे शास्त्रीजी ने अपने गांव में बैठ कर काम करने की विचारधारा की बात शुरू कर दी। उसके बाद शास्त्रीजी वर्धा चले गये। वहां काकाजी (श्री जमनालालजी बजाज) से उनका सम्पर्क हुआ। उनके साथ शास्त्रीजी बारडोली चले गये। उन दिनों बापू वहीं पर थे। गवर्नमेण्ट के काम को छोड़ने के बाद शास्त्रीजी माननीय घनश्यामदासजी बिड़ला के पास कुछ समय पिलानी रहे। पिलानी में रहते बिड़लाजी से सलाह-मशविरे के बाद यह सोचा गया कि कुछ दिनों कलकत्ता रह कर वहां सार्वजनिक काम करनेवाले कुछ लोगों से परिचय बढ़ाया जाए और जो काम आगे करने को है, उसके बारे में रूपरेखा बनायी जाए। इस प्रोग्राम में ५-७ महीने निकल गये। इस बीच मैं और बच्चे रतलाम रहे। कुछ

महीनों बाद शास्त्रीजी के साथ मैं भी कलकत्ता पहुंच गयी। मेरे जयपुर से कलकत्ता पहुंचने से पहले शास्त्रीजी के पत्रों से मुझे यह पता चल गया था कि वहां शास्त्रीजी के काम में कुछ लोग दिलचस्पी लेने लगे हैं, तो कुछ लोग मार्गदर्शक और साथी जैसे बन रहे हैं। ऐसे लोगों में से भाई सीतारामजी सेकसरिया और भाई भागीरथजी कानोड़िया के स्नेह और उनकी आत्मीयता का कुछ-कुछ आभास भी मुझे शास्त्रीजी के पत्रों से हो गया था। इन दोनों का थोड़ा हालचाल भी शास्त्रीजी के जयपुर पहुंचने पर मुझे मालूम हो गया था। हम लोगों के कलकत्ता पहुंचने के दिन भाई सीतारामजी तो हम लोगों को हावड़ा स्टेशन पर ही मिल गये और वहां से वे ही हमें उस मकान पर ले गये जो हम लोगों के रहने के लिए तय किया गया था।

मेरे लिए कलकत्ते में सब कुछ नया था। सब लोग नये थे। वातावरण नया था तो वह सारा समाज भी नया था। पर्दा करना मैंने तब तक छोड़ा नहीं था और किसी नये व्यक्ति से बात करने में स्वभावतः झिझक और संकोच होता था। मुझे ठीक से याद नहीं आ रहा है कि मेरे कलकत्ता पहुंचने के कितने दिन बाद की बात है—शायद १०-१२ दिन बाद की बात हो, भाई भागीरथजी को मैंने अपने घर आया देखा। मैंने अपने घूंघट से ही उन्हें देखा, दुबला-पतला शरीर, सादा लिबास, सरल स्वभाव और बड़ा तेजस्वी चेहरा। उस दिन देखा हुआ उनका वह सौम्य चित्र इस समय भी ज्यों का त्यों मेरे सामने है। उनके जाने के बाद मैंने शास्त्रीजी को कहा कि "आप तो इनको सेठ बताते हैं, पर ये सेठ जैसे तो जरा भी नहीं लगते।" पर्दा होने के कारण भाई भागीरथजी और भाई सीतारामजी से सीधी बात करने का सवाल तो उस समय नहीं था। पर दिन भर बाहर रह कर शास्त्रीजी शाम को जब घर लौटते तो उनकी बातचीत से मुझे यह अहसास बराबर होता रहता था कि कामकाज के साथ-साथ शास्त्रीजी का इन दोनों ही मित्रों से दिन प्रतिदिन दिली सम्बन्ध बढ़ता जा रहा है। जयपुर में मित्रों और प्रियजनों के छूट जाने के कारण कलकत्ता पहुंचने पर शास्त्रीजी एक प्रकार का अकेलापन और अपने को एकांगी अनुभव करने लगे थे। परन्तु जो नया काम वे करना चाहते थे उसमें और व्यक्तिगत सम्बन्धों में इन लोगों की वजह से ऐसा लगता था कि कलकत्ते में भी अपने कुछ मित्र और प्रियजनों का ऐसा समाज जुट गया है, जो कठिन काम को करने में साझीदार भी है।

हम लोग कलकत्ता से विदा होकर वर्धा पहुंचे वहां बापू से भेंट हुई। नये काम के बारे में उनका आशीर्वाद भी मिल गया। उस दिन मैंने पहली बार वहां शास्त्रीजी और भाई सीतारामजी को नये काम की कठिनाइयों के बारे में एक पेड़ के नीचे बातचीत करते देखा। सीतारामजी कह रहे थे कि आप तो गांव में जम कर बैठने का निश्चय कर लो; और कोई नहीं हो तो क्या अपन तो हैं हीं। इस घटना के बाद वनस्थली में मई, १९२९ में "जीवनकुटीर" की स्थापना हुई। तब से ही भाई भागीरथजी से और सीतारामजी से मेरा सीधा सम्पर्क बना।

जैसे जैसे कामकाज में, बातचीत में भाई भागीरथजी से सम्पर्क बढ़ता गया वैसे-वैसे उनके व्यक्तित्व, विचारधारा और रहन-सहन की एक सहज और अमिट छाप मेरे मन पर अंकित होती गयी। मेरे मन में यह विचार-मंथन चलता रहता था कि

यह कैसा अनोखा व्यक्तित्व है जो इतने वैभव के बीच रह कर जल में कमलवत् रहता है। अहंकार कहीं इनके पास फटकता नहीं। जो कोई भी, जब भी जिस काम के लिए उनके पास गया होगा, उसकी वे दिल खोल कर इस प्रकार मदद कर दिया करते थे कि मुश्किल से ही किसी को उसका पता चल पाता होगा। यह कह सकते हैं कि दाहिने हाथ का किया बायें हाथ को नहीं मालूम हो पाता था।

जैसे-जैसे वनस्थली का काम बढ़ता गया, वैसे-वैसे उस काम के प्रति उनकी लगन और रुचि भी बढ़ती चली गयी। सर्वोपरि बात तो यह है कि हमारे दोनों परिवारों का नाता ऐसा बन गया कि हम एक ही परिवार के अंग बन गये। यह रिश्ता खून के रिश्ते से भी अधिक निकट का और पक्का था कि हम एक दूसरे के काम में दुःख-सुख में भागीदारी अनुभव करते रहें। एक बार इस एकत्व के भाव का जिक्र अपने ढंग से करते हुए अपने एक पत्र में शास्त्रीजी हम दोनों की लासानी जोड़ी और हम चारों (भाई भागीरथजी और भाई सीतारामजी सहित हम दोनों की) की चौकड़ी की बात लिख गये तो भाई भागीरथजी का जो उत्तर मिला उसमें उन्होंने लिखा कि "लासानी जोड़ी और चौकड़ी की खूब रही। लेकिन जोड़ी और चौकड़ी की गाड़ियां आगे के जमाने में—याने आज से करीब बीसेक साल पहिले खूब हुआ करती थीं। उनमें जो घोड़े होते थे वे एक से हुआ करते थे। रंग के, रूप के, कद के और उम्र के भी। जितना एकसापन घोड़ों में होता था उतनी ही वह जोड़ी या चौकड़ी अच्छी मानी जाती थी। मेरे जैसा घोड़ा इस चौकड़ी में उस हिसाब से किसी तरह भी ठीक बैठेगा नहीं। और ऐसे घोड़े के साथ होने से चौकड़ी की कीमत कोई कद्रदां रईस लगायेगा भी नहीं।"

"शास्त्रीजी, मैं तो लोगों का अपने ऊपर स्नेह ही यह कारण मानता हूं कि वे मुझे इस तरह निभा रहे हैं। नहीं तो अपनी कमियां या कमजोरियां मैं जानता हूं और उन्हें देखते मैं अपने को आपकी चौकड़ी का हकदार नहीं मानता।" भागीरथजी के निरभिमान-भाव की यह बेमिसाल अभिव्यक्ति और कहां मिल सकती है ?

शास्त्रीजी को जब भाई भागीरथजी का यह पत्र मिला तो उन्होंने उनको लिखा : "जिस समय मैंने जोड़ी और चौकड़ी की बात लिखी थी उस समय घोड़ों की तो मुझे कल्पना भी नहीं थी। मनुष्य क्या घोड़ों से इतने गये-बीते हो गये कि उनकी जोड़ी या चौकड़ी न हो सके ? आप अपनी कमियों और कमजोरियों को जानते हैं, इसीलिए तो आप किसी भी जोड़ी या चौकड़ी के हकदार हो सकते हैं। असल मुश्किल तो मेरे जैसे लट्ठ की है, जो बीस में से उन्नीस बार अपनी खुद की राय को ही ज्यादा सही मानता हो।".

वे दूर बैठे भी काम की कठिनाइयों को आंकते हुए काम करनेवालों को उत्साहित करते हुए दिशा दे दिया करते थे,—"बाधाओं से अपन को हताश नहीं होना चाहिए। अपनी शक्ति भर, अपने को बचाये बिना अपनी बुद्धि के अनुसार अपने को तो करते जाना है। संकट और असुविधा तथा अड़चनें जो अपने आप आवें या फिर लोग उपस्थित करें, उन्हें झेलते जाना और परखते जाना है।"

जीवन-कुटीर का काम उन्हें कितना प्यारा था और वे उसे किस महत्व का समझते थे, यह उनके इस कथन से स्पष्ट है कि "कुटीर का काम और उसकी कल्पना

हम लोगों को पसन्द नहीं, बल्कि उससे कुछ ज्यादा है। छोटी-मोटी एक ऐसी संस्था होनी ही चाहिए। फिर यह तो एक पुरानी और प्रिय चीज है जिसके पीछे एक इतिहास है। उसको जीवित रखना ही चाहिए।'

शास्त्रीजी मुझे अक्सर कहा करते थे : "मेरी मां मुझे डेड़ वर्ष का छोड़ कर चली गयी थी। परिवार में सबसे बड़ा मैं था। अतः मेरा मार्गदर्शन करनेवाला मुझे कोई मिला नहीं। पर सार्वजनिक जीवन में आने के बाद भाई भागीरथजी और सीतारामजी से जो आत्मीय सम्बन्ध बने, आराम-तकलीफ में उनसे जो स्नेह, सलाह और सहायता मिलती आ रही है, उससे मुझे यह अभाव कभी खटका नहीं। भाई भागीरथजी जैसे कुछ व्यक्ति और हों तो देश का कल्याण हो जाए।"

मैं जब गहरे विचारों से घिर जाती हूं तो मुझे शास्त्रीजी का एक वाक्य याद आता है, उससे मुझे बल मिल जाता है और मैं निश्चिन्त हो जाती हूं। मैं और शास्त्रीजी सावित्री की पुत्री के विवाह के अवसर पर कलकत्ता पहुंचे थे। तब शास्त्रीजी ने तो कुछ जरूरी काम से तुरन्त जयपुर लौटने का फैसला कर लिया था और मुझे वनस्थली के काम की दृष्टि से कलकत्ता ही रुकना पड़ा था। उनके कलकत्ता से रवाना होने के दो दिन पहले मैंने उनसे कहा था कि आप जयपुर पहुंच कर वनस्थली से सुधाकर या श्याम (दिवाकर) को मेरे पास भेज देना। इस पर वे थोड़े नाराज होकर कहने लगे कि, "श्याम या सुधाकर कलकत्ते में क्या करेंगे ? काम तो वनस्थली का नाम करेगा और मदद भाई भागीरथजी और सीतारामजी की होगी। तुम्हें क्या करना पड़ेगा ?" उनके इस प्रकार कहने पर मैं दो दिन तक परेशान रही। इससे पहले कितनी भी परेशानी मेरे सामने आयी होगी पर मैं कभी भी उनके सामने परेशान चेहरे से नहीं गयी हूंगी। लेकिन मुझे मंजूर करना चाहिए कि शास्त्रीजी के कलकत्ता से रवाना होते समय मैं हावड़ा स्टेशन पर अपने आपको निश्चिन्त और खुश दिखाने में सफल नहीं हो सकी। मेरा उस समय यह हाल देख कर उन्होंने ट्रेन से ही मुझे एक पोस्टकार्ड लिखा : "तुम्हारा उदास चेहरा मैंने आज पहली बार देखा और मुझे लगा कि मैं तुमको अकेली को समुद्र में ढकेल आया क्या ?" उसके साथ ही उनका अगला वाक्य था, "भाई सीतारामजी और भाई भागीरथजी के होते हुए मुझे तुम्हारी क्या चिन्ता है !" शास्त्रीजी पहले चले गये। वे अपने जिन अन्यतम मित्रों के भरोसे मुझे निश्चिन्त अनुभव करते रहने का अटूट भरोसा रखते थे, उनमें से एक भाई भागीरथजी भी शास्त्रीजी की तरह ही हमसे मुंह मोड़ कर एक साल हो गया, उनसे जा मिले। नियति की कैसी विडम्बना है यह !

एक बार कोई प्रसंग ऐसा ही आ गया कि भाई भागीरथजी के सामने मेरे मुंह से निकल गया कि, "मैं कभी बुरा नहीं माना करती पर मुझे मंजूर करना ही चाहिए कि आज तो मैं थोड़ा बुरा मान ही गयी।" इस पर वे हंसते हुए बोले कि, "आप बुरा मान गयीं, पर मैं तो बुरा नहीं मानता न ! आप नाराज हो सकती हैं, पर मैं नाराजी को पहिचानता ही नहीं !"

एक दिन यों ही हंसी-खुशी में बात चल रही थी। वे पूछ बैठे, "रतनजी, यह तो बताओ कि सीतारामजी और मेरे में से-हम दोनों में से-आपको कौन ज्यादा

अच्छा लगता है ?" "मैंने फौरन ही जवाब दिया, "आपने यह कैसा अजीब सवाल किया। आपकी जगह भाई सीतारामजी नहीं भर सकते और भाई सीतारामजी की जगह आप नहीं भर सकते।" तो वे थोड़े हंसे और कहने लगे कि, "मैं यही सोच रहा था कि देखें, आप इसका क्या जवाब देती हैं।"

पिछले ५२ वर्षों के अपने सार्वजनिक जीवन में मेरा राष्ट्र-निर्माताओं, उद्योग-पतियों, व्यवसायियों, सामाजसेवियों, कार्यकर्ताओं और आम जनता के छोटे-बड़े सभी प्रकार के लोगों से वनस्थली के काम से काफी मिलना-जुलना होता रहा है पर जो आत्मीयता, दिलदारी, उदारता, विचारों की प्रौढ़ता, सूझबूझ और सादगी भाई भागीरथजी में देखने को मिली, उसका बखान करने के लिए मेरी कलम और जुबान नाकाफी है।

साधन-सम्पन्न लोगों का यह कायदा-सा बन गया लगता है कि जब कोई व्यक्ति सत्ता में होता है तो उसकी मदद करने को वे आतुर रहते हैं, उससे सम्पर्क बढ़ाने में अपना गौरव समझते हैं। पर भाई भागीरथजी इसके सर्वथा विपरीत थे। वे ऐसे अनोखे व्यक्ति थे कि उन्होंने किन्हीं लोगों की कुछ मदद उनके सत्ता में रहते कर दी होगी तो आवश्यकता पड़ने पर उससे कहीं अधिक मदद दिलेरी और दिलदारी से उस समय की होगी जब वह व्यक्ति सत्ताविहीन हो चुका होगा। इसमें भी उनकी अपनी वही परम्परा रहती थी कि उन्होंने किस के लिए क्या कुछ कर दिया, उसका पता मुश्किल से ही किसी को चल पाता था।

वनस्थली कुछ बनी है। इस रचना के भाई भागीरथजी निर्माता, संरक्षक सलाहकार, सहायक और परम हितैषी स्तम्भ थे। वनस्थली के कार्यकर्ताओं को उनका बड़ा सम्बल था। शास्त्रीजी के शब्दों में यथार्थ ही प्रकट हुआ था, जब उन्होंने कहा था— "भाई भागीरथजी और भाई सीतारामजी के मौजूद रहते मुझे तुम्हारी और वनस्थली की क्या चिन्ता है ?" शास्त्रीजी के जाने के बाद वनस्थली के किसी संकट अथवा कठिनाई के समय भाई भागीरथजी की मौजूदगी ने मुझे कभी यह अनुभव नहीं होने दिया कि मैं किस के पास और कहां जाऊं ? जब कभी ऐसी परेशानी का मौका हुआ उनको पत्र लिख कर समाधान पा लिया या मिल कर बात करके हल निकाल लिया। अब तो शास्त्रीजी के बाद भाई भागीरथजी भी समष्टि में विलीन हो गये। उनके जाने के बाद देश के सार्वजनिक क्षेत्र में उनसे निजी मित्रतावाले हजारों मित्र, उनसे सम्बन्ध रखनेवाली सैकड़ों सार्वजनिक संस्थाएं ही उनके अभाव को जानती और अनुभव करती हैं कि वह कितनी बड़ी शक्ति थे। यह ऐसा अभाव है जिसकी पूर्ति सर्वथा असम्भव है। भाई भागीरथजी के लिए और क्या कहूं ? उनका स्थान रिक्त ही रहेगा। उन जैसे वे ही थे। उन जैसा न कोई पहले हुआ और न होगा, "न भूतो न भविष्यति।"

—: o :—

भागीरथजी के अन्यतम सहयोगी

श्री बदरीनारायण सोढाणी

जिनसे पिता का स्नेह मिला

यद्यपि आज श्रद्धेय बाबू का शरीर हमारे बीच में नहीं है, तथापि उस प्रेरणास्पद व्यक्तित्व के स्मरण मात्र से ही लगता है जैसे मैं परोपकार के लिए, उच्च आदर्शों के लिए उत्प्रेरित हो उठा हूं। मैं यदि यह कहूं तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि भागीरथ बाबू ने सिर्फ मनुष्य शरीर ही नहीं पाया था बल्कि उसे पूर्ण सार्थकता प्रदान की और सही अर्थों में इस नश्वर शरीर का जो सदुपयोग होना चाहिए वह उन्होंने किया। पिछले ३८ वर्षों में स्व० बाबू का जो सान्निध्य मुझे मिला वह आज भी मेरे लिये प्रेरणा का राजमार्ग प्रशस्त कर रहा है।

उनसे जो स्नेह मुझे मिला वह धीरे-धीरे इतनी प्रगाढ़ता को प्राप्त हो गया था कि मुझे याद ही नहीं रहा कि कभी उनके मेरे बीच अपरिचय भी था। फिर भी समय की गणना को सनों में बांध कर याद करूं तो वह १९३९वां ईस्वी सन् चल रहा था। मैं बर्मा से लौट कर आया था। उस समय राजस्थान में भयानक अकाल पड़ा हुआ था। अतः मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी, कलकत्ता की ओर से गांवों में अकाल-राहत के काम चल रहे थे। भागीरथ बाबू सोसायटी के मन्त्री थे। चूंकि आरम्भ से ही समाज-सेवा के कार्यों में मेरी रुचि रही है, अतएव बर्मा से आते ही मैं भी इस अकाल-राहत के कार्यक्रम में लग गया। बस यहीं से वह सूत्र अस्तित्व में आ गया जिसके द्वारा एक ऐसे व्यक्तित्व के पथ से मेरा मार्ग जुड़ गया जिसके पास असहायों के लिए दयावान हृदय था, जन-सेवा के कार्यों को करने के लिए चिन्ताकुल मस्तिष्क था और कभी न चुकनेवाली क्षमता थी। बस, राहत-कार्यों के सम्बन्ध में पत्र-व्यवहार होने लगा। जितनी सहायता के लिये हम उन्हें लिखते वे तुरन्त भेज देते थे तथा पत्रों द्वारा राहत-कार्यों के विषय में उचित परामर्श देते और कामों की जानकारी मांगते।

अभी पत्राचार के माध्यम से ही परिचय-सूत्र पनप रहा था कि सन् १९४२ में प्रजामण्डल की सीकर-जिला कमेटी का गठन हुआ। उसके लिए धनराशि एकत्र करने के लिए मैं कलकत्ता गया। स्वाभाविक था, मैं भागीरथ बाबू से मिलने गया। बस यहीं उस सौम्य व्यक्तित्व का प्रथम दर्शन हुआ और पहली बार में ही मुझे अनुभव हुआ कि इन शांत और गहरी आंखों में आदमी को परख लेने की अजब क्षमता है। मैंने उन्हें सीकर में प्रजामण्डल-कमेटी के गठन की जानकारी दी और इसके लिए उनसे पांच सौ रुपये मांगे। उन्होंने किंचित भी विलम्ब किये बिना मुझे पांच सौ रुपये दे दिये।

प्रजामण्डल दो तरह के कार्य करता था। पहले जनसेवा के कार्य और दूसरे राजनैतिक कार्य। मैं राजनैतिक कार्यों में उतनी रुचि नहीं लेता था। मेरा

आग्रह जन-सेवा के कार्यों के प्रति ही रहता था और इसी सिलसिले में मैं बराबर कलकत्ता जाता रहता था। वे जन-सेवा के कार्यों के प्रति, कभी हलवासिया ट्रस्ट से, कभी स्वयं और कभी अन्य संस्थाओं के माध्यम से बराबर मदद देते रहते थे। जब भी राजस्थान आते सीकर आ कर जन-सेवा के कार्यों को देखते थे। उनकी हर समय यह इच्छा रहती थी कि अधिक से अधिक गरीब लोग लाभान्वित हों और इस सम्बन्ध में उनसे लगातार पत्राचार चलता रहता था। यह क्रम १९४९-५० तक चला। १९४९ में सरजिकल कैम्प लगाने का कार्यक्रम भी प्रारम्भ किया गया जिसमें शल्य-चिकित्सा करवाने की सुविधा लोगों को उपलब्ध करायी जाती। भागीरथ बाबू पूरी रुचि से इस कार्य में सहयोग करते थे।

इसी दौरान मेरा ध्यान दिनों-दिन फैलते जा रहे क्षय-रोग (टी० बी०) से लोगों को मुक्ति दिलाने की ओर गया। अतः मैं और लादूरामजी जोशी, भागीरथ बाबू के पास कलकत्ता गये तथा उन्हें टी० बी० अस्पताल की योजना बताई। उस समय वे परपटी साध रहे थे। परन्तु वे तुरन्त हमारे साथ हो गये और कई जगहों पर सम्पर्क किया। पांच-सात लाख रुपयों का आश्वासन भी मिला, परन्तु फिर किन्हीं कारणों से यह योजना स्थगित करनी पड़ गयी। इसी दौरान सन् १९५२-५३ में बीकानेर में भयानक दुर्भिक्ष पड़ा तब वहां मारवाड़ी रिलीफ सोसायटी की ओर से राहत-कार्य चले, जिन्हें भागीरथ बाबू की जिम्मेदारी पर मैं ही सम्भालता था। १९५३-५४ में जयपुर में मारवाड़ी रिलीफ सोसायटी का क्षेत्रीय कार्यालय खुला तब चिड़ावा में अकाल राहत का काम, चर्खें, सिलाई-मशीन आदि बांटने का काम भागीरथ बाबू की देख रेख में मैं करता था। इस तरह विभिन्न कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के माध्यम से हम दोनों निकटतर आते जा रहे थे और उनका स्नेह-सिक्त वरदहस्त मेरी ओर बढ़ता आ रहा था।

सन् १९५५-५६ में राजस्थान में जल-बोर्ड बना। करीब पौने दो करोड़ की इस योजना के तहत १०,००० नये कुओं, कुण्डों, तालाबों का निर्माण होना था या पुरानों की मरम्मत होनी थी। भागीरथ बाबू इस बोर्ड के मन्त्री थे और उनकी देख-रेख में मैं काम सम्भालता था। बोर्ड को दो तिहाई राशि सरकार से मिलती, तथा एक-तिहाई जन सहयोग से प्राप्त की जाती थी। बोर्ड का व्यवस्था सम्बन्धी खर्च भागीरथ बाबू, स्व० रामेश्वरजी टांटिया व मातादीनजी खेतान के जिम्मे था। बोर्ड का लगभग सारा कार्य भार भागीरथ बाबू पर ही था। इस अरसे में उनके साथ लगभग पूरे राजस्थान का दौरा करने का मौका मिला। दौरे के दौरान उनको मैंने कभी थकान से त्रस्त हुआ नहीं देखा। जिस गांव में भी जाते बड़ी उत्सुकता से गरीब ग्रामीणों की समस्याओं को धैर्यपूर्वक सुनते तथा उनका कोई न कोई समाधान करते। किसी कार्यकर्ता से या कर्मचारी से कोई गलती हो जाती तो वे उसे इतने सहज भाव से लेते थे, कि गलती करनेवाला अपने आप ही आइन्दा गलती न करने का दृढ़ निश्चय कर लेता था।

इसी समय की एक घटना मुझे याद आती है। भागीरथ बाबू, टांटियाजी और मैं जल बोर्ड के कार्य से जीप द्वारा मुकुन्दगढ़ से सालासर जा रहे थे कि रास्ते में

एक्सीडेंट हो गया। भागीरथ बाबू के पैर में भयंकर चोट आयी (जिसका प्रभाव उनके जीवन भर बना रहा)। हम लोग तो सन्न रह गये, क्योंकि हमने सोचा कि बाबू सदा के लिए हमारा साथ छोड़ गये हैं। परन्तु इसे ईश्वरीय कृपा कहिये या उनकी अजब सहन-शक्ति कि वे उस भयंकर चोट को सह गये। उस बीमारी के दौरान भी उन्होंने अपने मस्तिष्क को जन-सेवा के कार्यों की चिन्ता से मुक्त नहीं होने दिया।

जल-बोर्ड का कार्य सन् १९५८ में समाप्त हो गया।

इसी प्रकार क्रम चलता रहा। मैं, अपना सारा समय सार्वजनिक कार्य में ही लगा रहा था और पारिवारिक दायित्वों को पूरा करने के लिए समय नहीं निकाल पाता था। परन्तु मैंने तो एक ऐसे गहरी दृष्टि और उदारमना व्यक्ति का साथ पा लिया था जिसके कारण मुझे पारिवारिक जिम्मेदारियों के प्रति कभी चिन्ता नहीं रही क्योंकि श्रद्धेय बाबू अपने-आप ही मेरे और बच्चों की पढ़ाई-लिखाई के खर्च के लिए व्यवस्था करते रहते थे।

इधर जैसा कि मैं ऊपर उल्लेख कर चुका हूं कि टी॰ बी॰ अस्पताल की योजना खटाई में पड़ चुकी थी परन्तु मैंने इसके लिए प्रयत्न बन्द नहीं किया था। फलस्वरूप सांवली में ४ दिसम्बर, १९६० को अस्पताल की नींव रख दी गयी। श्रीकल्याण आरोग्य सदन का गठन कर दिया गया था। मैं कलकत्ता गया। बाबू से मिला तो उन्होंने अस्पताल के सम्बन्ध में पूरी बात रुचिपूर्वक सुनी और पूर्ण योगदान दिया। विभिन्न संस्थाओं, ट्रस्टों और व्यक्तियों को अस्पताल के लिए सहयोग देने के लिए बराबर कहते रहते थे। १० वर्ष तक लगातार परोक्ष सहयोग उनका मिलता रहा। धीरे-धीरे उनके सहयोग और रुचि में निरन्तर वृद्धि हो रही थी। ये १० वर्ष मेरे लिएं बहुत व्यस्तता के रहे। अतः मैं बहुत थक गया था। फिर 'सदन' में कुछ आंतरिक विवाद भी उठ खड़े हुए थे। अतः १९७० में मैं बीदासर चला गया था। जब बाबू को यह बात ज्ञात हुई तो उन्होंने इस सम्बन्ध में जानकारी हेतु एक पत्र भी दिया और रुपये भी भेजे। अब स्थिति यह थी कि मैं संस्था से अलग होना चाहता था, परन्तु भागीरथ बाबू चाहते थे कि मैं संस्था में बना रहूं। सब लोगों ने मिल कर उन्हें अध्यक्ष बना दिया। परन्तु उनका आग्रह था कि मैं मन्त्री रहूं, तब ही वे अध्यक्ष होंगे। मैं उनके स्नेहिल आग्रह को नहीं टाल सका।

बाबू ने अस्पताल के कार्य को इस तरह संभाला कि मैं तो कार्यभार से मुक्त ही हो गया। जैसे कोई व्यापारी अपने सर्वाधिक आय देनेवाले व्यापारिक केन्द्र को सम्भालता है, वैसे बाबू ने इस संस्था को सम्भाल लिया। साल में तीन बार चाचीजी (अपनी पत्नी) व अपने निजी सचिव को साथ लेकर वे सीकर आते थे तथा अस्पताल के प्रत्येक कर्मचारी व मरीजों से मिलते थे। किसी भी समस्या का बड़े सहज ढंग से हल निकालते थे। किसी व्यक्ति के बारे में कोई शिकायत आती तो उसे बिना उलाहना दिये दूर कर देने की अजीब क्षमता थी उनमें। छोटी से छोटी बात को बड़े गौर से और धैर्य से सुनते थे। इस दौरान वे मुकुन्दगढ़ जाते तो जब तक वहां रहते, आस-पास के गांवों, कसबों से टी॰ बी॰ के मरीज आते रहते और वे

उनका काम करते थे। कई बार तो मुझे ऐसा लगता जैसे टी० बी० अस्पताल का ही शाखा-कार्यालय वहां खुल गया है।

सन् १९७१-७२ में 'कासा' की ओर से १००० नल-कूपों के निर्माण का कार्य मैंने हाथ में ले लिया। अब अस्पताल का काम और यह कुओंवाला काम मैं साथ-साथ सम्भाल रहा था। परन्तु मेरी रुचि 'कासा' की कृषि-विकास-योजना की ओर अधिक थी। अतः मैंने भागीरथ बाबू के सामने एक प्रस्ताव रखा कि 'कासा' वाले काम को अधिक व्यापक रूप दिया जा सकता है। चूंकि विदेशी संस्थाओं से भारी मात्रा में मदद मिल रही है, अतः एक अलग संस्था का गठन किया जाय तो यह काम अधिक सुचारु रूप से हो सकता है। बाबू ने पूरी बात सुन समझ कर प्रस्ताव को सहमति प्रदान कर दी। फलस्वरूप १९७२ में जन-कल्याण-समिति का गठन हुआ जिसके अध्यक्ष भागीरथ बाबू बने और मैं मन्त्री हुआ।

सन् १९७३ में राजस्थान में जबरदस्त अकाल पड़ा। हमने अकाल-राहत की योजना बनाई। हालांकि बाबू का स्वास्थ्य ठीक नहीं चल रहा था, इसके बावजूद उन्होंने श्री रामेश्वरजी टांटिया को साथ लेकर अकाल-राहत हेतु धन संग्रह किया। इस तरह पहले वर्ष में ही उनके मार्गदर्शन में जन-कल्याण समिति ने अकाल राहत जैसा भारी कार्य अपने हाथ में ले लिया। उधर कूप-निर्माण का कार्य चल ही रहा था। इस दौरान उन्होंने अस्वस्थ होते हुए भी बीकानेर, चूरू, नागौर, सीकर, झुंझुनू, आदि जिलों का दो-तीन बार दौरा किया। हम लोगों को यह डर बना रहता कि कहीं उनके स्वास्थ्य में गड़बड़ी न हो जाय। परन्तु उन्होंने कभी भी कोई कमजोरी नहीं दिखायी। हर समय वे उत्साहपूर्ण बने रहते थे।

शायद ही किसी भी यात्रा के दौरान उन्होंने कहा हो कि "आज मुझे तकलीफ हुई है।" इतने अमीर होते हुए भी समयानुसार चाहे जहां सामान्य तरीके से रहने, खाने-पीने से वे जरा भी हिचकिचाते नहीं थे। एक बार भागीरथ बाबू, टांटियाजी और मैं जीप द्वारा कुचामन सिटी से गुजर रहे थे तो वहीं शाम हो गयी। बाबू ने अचानक गाड़ी को एक हलवाई की दुकान पर रुकवा लिया और नीचे उतर पड़े। हम दोनों भी नीचे आ गये। बाबू ने तुरन्त हलवाई को बड़े, पकौड़ी आदि खाने की सामग्री लाने को कहा। मैं अन्दर ही अन्दर काफी असमंजस का अनुभव कर रहा था। यह सोच कर कि...बाबू के यह क्या मूड में आ गयी...इस तरह सरेआम एक साधारण सी दुकान पर इन जैसे बड़े आदमी के लिये यूं खाना-पीना करना ठीक नहीं है..." इधर मैं यह सोच रहा था और बाबू निश्चिन्त भाव से खड़े टांटियाजी से बतिया रहे थे। खाने की चीजें हाथों में आ गयी तो मैंने हिचकिचाते हुए कहा: "यदि अपन को इस तरह खाते हुए कोई जानकार देखेगा तो क्या कहेगा" (असल में आस-पास के लोग हमारी तरफ देख रहे थे, इससे मुझे और भी संकोच हो रहा था, फिर उस समय तक आस-पास के बहुत सारे लोग बाबू को व्यक्तिशः जानने लगे थे)। मेरी बात सुन कर बाबू थोड़े मुसकराये और कहा, "तो आपण के है, कहण हाला कै घरां चल्या चालांगा।" सब लोग एक साथ हंस पड़े। हलवाई तो बेचारा अपने आप को पहले से ही कृतार्थ अनुभव कर रहा था। बाबू के मुंह से यह बात सुन कर तो वह गद्गद् हो गया।

जन कल्याण समिति अपना कार्य सुचारु रूप से कर सके, इसके लिए समिति का व्यवस्था-खर्च उन्होंने अपने जिम्मे ले रखा था और मुझे याद नहीं कि मुझे कभी भी उन्हें रुपये भेजने के लिए लिखना पड़ा हो। वे स्वयं ही समय पर व्यवस्था-व्यय के रुपये भेज देते थे। समिति के विभिन्न कार्यक्रमों के लिए धनराशि हेतु मैं उन्हें कम से कम तकलीफ देना चाहता था फिर भी वे स्वयं ही समिति के लिये रुचिपूर्वक सक्रिय रहते थे, कामों को देखते थे और जहां भी कोई अड़चन आ जाती उसे तुरन्त दूर करने के जिए जुट जाते। वे जिस भी काम में हाथ लगा देते, फिर उसके लिये रुपयों की कमी नहीं रहती। उनके कहने पर लोग तुरन्त सहयोग करते और आदर-पूर्वक उनकी बात को मानते। एक बार खादी-विकास के कार्यक्रम के लिए रुपयों की आवश्यकता हुई तो उनके साथ श्री कृष्णकुमार बिड़ला के पास जाना हुआ। ज्यों ही हम बिड़ला-बिल्डिंग में पहुंचे, श्री कृष्ण कुमार ने बहुत आदर किया और बाबू से कहा : "पैसों के लिए आप यहां आये, मुझे यह अच्छा नहीं लगा। आप टेलीफोन कर देते, मैं रुपये आपके पास भेज देता।" तदुपरान्त वे हमें लिफ्ट तक पहुंचा आये।

एक ओर जहां समिति के कार्यों के प्रति उनमें लगन रहती थी, वहां दूसरी वे मेरी निजी आवश्यकताओं के प्रति भी चिंतित रहते थे। इस अवधि में जब भी मुझे निजी कार्य के लिये रुपयों की आवश्यकता हुई मैं पुत्रवत् उन्हें निस्संकोच लिख देता था और वे पितावत् तुरन्त ही चैक या ड्राफ्ट भेज देते। बल्कि कई बार तो साथ के पत्र में यह भी लिखते कि "इतने कम पैसे में कैसे काम चलेगा?" कितनी चिंता रखते थे वे मेरी? पिछले ३-४ साल में मेरा स्वास्थ्य खराब रहा। वे भी अस्वस्थ चल रहे थे। इसके बावजूद वे बराबर स्वयं पत्र लिख कर मेरी तबीयत के बारे में पूछते रहते और इलाज के लिए पैसे की चिन्ता न करने के लिए लिखते रहते। कुछ अरसे के लिए मैं अमेरिका रहा तब वहां भी उनके स्नेह-सिक्त पत्र मिलते रहते थे।

कितनी सदाशयता, उदारता, निष्ठा और लगन उस सौम्य पुरुष ने पाई थी। इससे भिन्न और देवत्व क्या होता होगा? ३८ साल तक उनके सान्निध्य का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। इस अरसे में कभी भी किसी गलती के लिए उन्होंने मुझे उलाहना नहीं दिया, कभी क्रोध नहीं किया। सहन-शक्ति और क्षमा करने की शक्ति के आगार थे वे। 'क्षमा बड़न को चाहिये' के अनुसार स्व० बाबू वाकई एक बड़े इन्सान थे। नाश्ते और भोजन के समय पांच-सात आदमियों का साथ उन्हें अच्छा लगता था। दूसरों की बढ़ोतरी और उन्नति को देख कर बहुत प्रसन्न होते थे। प्रेरणा देने वाले कहानी-किस्से, संस्मरण, कहावतें आदि सुनने-सुनाने के प्रति वे बहुत रुचि रखते थे। बातचीत के दौरान शालीन विनोद कर लेने में उन्हें आनन्द आता था। धर्म के नैतिक पक्ष को वे सर्वाधिक महत्व देते थे और सदा कहते रहते, "आदमी को चरित्रवान् होना चाहिये।" यह उनमें एक विशेषता थी कि सिर्फ उपदेश देने के लिए ही वे कोई बात नहीं कहते थे अपितु स्वयं भी पालन करते थे। पर-निन्दा उन्हें अच्छी नहीं लगती थी और अपनी गलती को बहुत सहज ढंग से स्वीकार कर लेते थे।

मुकुन्दगढ़ आते तो गांव के बड़े बुजुर्गों से बड़े चाव से मिलते थे। हर समय दस-बीस आदमी उनके पास बने ही रहते थे। साधारण से साधारण कार्यकर्ता से भी

हिल-मिल जाते थे। मेरे खयाल में शायद ही ऐसा कोई व्यक्ति होगा जो उनके सम्पर्क में आया हो और उन्होंने उसकी मदद न की हो। जो भी उनके पास सहायता प्राप्त करने के लिए आता था उससे बातचीत के दौरान ही वे समझ जाते थे कि उसे कितनी सहायता की आवश्यकता है, और जो कुछ करना होता तुरन्त ही कर देते थे। यह उनमें विशेषता था कि उनकी 'कथनी' और 'करनी' में अन्तर नहीं होता था।

वे जन-सेवा के कार्यों के प्रति किंचित भी आलस्य नहीं बरतते थे तथा जन-सेवा के विभिन्न कार्यक्रम बनाने के प्रति उनका मस्तिष्क सदैव सक्रिय रहता था। अपने पत्रों में वे सदैव इसी प्रकार का जिक्र करते रहते थे। यहां उनके दो पत्र प्रस्तुत कर रहा हूं :

कलकत्ता
१७-१-७८

"प्रिय श्री बद्रीनारायणजी,

श्रीकिशनजी सोमानी ने आपको एक पत्र प्राकृतिक चिकित्सा केन्द्र के बारे में लिखा है। अगर यह कैम्प करना हो तो १५ फरवरी के आसपास करना चाहिए क्योंकि तब तक सर्दी कम हो जायेगी। डा० विगमोर जानकार तो हैं।......लोगों को रहन-सहन, खान-पान के बारे में हम जानकारी दे सकें तथा कुछ रोगियों को पांच-दस दिन रख कर प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा इलाज कर सकें तो अच्छा ही है।"

"प्रिय श्री बद्रीनारायणजी,

"११०० का एक ड्राफ्ट भेज रहा हूं। जरूरतमंद लोगों के अन्न, कपड़ा या दवा में खरचा करने के लिए।

राजस्थान सरकार ने यह ऐलान किया था कि जिन लोगों के घर गिर गये हैं उन्हें प्रति घर ३०० रुपये दिये जायेंगे। लेकिन गंवई लोगों के लिए सरकारी अधिकारियों से सम्पर्क साधना मुश्किल है। जिस तरह आपने पेंशन का काम किया है, उसी तरह यह काम भी आप करा सकें तो करने जैसा काम है। देहाती गांवों का कोई धणी-धोरी नहीं है। इसलिए आप खुद कुछ कर सकें तो देखना। अगर बड़े पैमाने पर काम शुरू हो सकता हो तथा पार पड़ता लगे तो ऊपरी खर्चा तो अपन लोग कम-ज्यादा की व्यवस्था कर सकते हैं।"

उपरोक्त दो पत्रों से ही स्पष्ट है कि गरीब और जरूरतमन्द लोगों के प्रति वे कितने चिंतित रहते थे और उनकी कठिनाइयों को कितनी गहराई से समझते थे।

पत्रों का उत्तर वे तुरन्त देते थे और स्पष्ट लिखते थे। अधिकतर पत्र वे स्वयं हाथ से लिखते थे। आलस्य तो उनके आसपास कहीं नहीं फटकता था। एक बार वे मुकुन्दगढ़ आये हुए थे और मैं भी वहां था। उस समय कलकत्ते में श्री सीतारामजी सेकसरिया बीमार थे, अतः वे बहुत चिंतित थे। उन्होंने टेलीफोन से सम्पर्क करने की चेष्टा की, परन्तु नहीं हुआ। अतः वे बेचैन हो गये। रात में उन्हें नींद नहीं आयी और कहने लगे : "उनका जीवन भर का साथ था। ऐसा न हो कि आखिरी समय में उनसे मिलना न हो।" अन्त में वे आधी रात को उठे और रातोंरात ही कलकत्ता चले गये।

अन्त में मुझे उनका स्वर्गारोहण से पूर्व का समय याद आ रहा है। मैं अमेरिका से लौट कर सीकर आया तो पता चला कि बाबू ज्यादा बीमार हैं। मैं कलकत्ता उनसे मिलने गया। बाबू काफी अशक्त हो गये थे। धीरे-धीरे बोल पा रहे थे। उन्होंने मेरा हाथ पकड़ लिया और पास बैठा कर कहने लगे, "मैंने आपकी चाकरी बजा दी है, आगे आप अपना काम सम्भालो।" उनकी यह बात सुन कर मेरा हृदय भर आया। क्या कहूं कुछ समझ में नहीं आया। उस समय मैं २०-२५ दिन कलकत्ता ही रहा। मैं जब भी उनके पास गया मुझे लगता रहता कि बाबू किसी बात से चिंतित हैं। उस दौरान उनके चेहरे पर कभी घबराहट के लक्षण नहीं देखे। एक दिन मुझे ज्ञात हुआ कि वे कल्याण आरोग्य सदन, सीकर में चल रहे घाटे से चिंतित हैं। परन्तु मेरे समझ में नहीं आ रहा था कि उन्हें किस प्रकार से सांत्वना दूं।

एक दिन मेरे सामने ही उन्होंने अपने पुत्र अश्विनी कुमार को बुलाया और कहा, "अश्विनी ! टी० बी० अस्पताल में रुपयों की कमी चल रही है। सो यदि तुम एक लाख रुपया प्रति वर्ष के हिसाब से पांच साल तक अस्पताल को दे सको तो सुविधा होगी।" अश्विनी बाबू ने बिना एक क्षण का भी विलम्ब किये तुरन्त बाबू की आज्ञा शिरोधार्य कर कहा: "रुपये हर साल न देकर मैं तो ५ लाख रुपये एक साथ ही दे दूंगा।" लेकिन बाबू की पूरी चिन्ता अभी दूर नहीं हुई थी सो वे फिर बोले, "..... एक और बात है। जन कल्याण समिति में सालाना २०-२५ हजार रुपये दे दो तो अच्छा रहे।" अश्विनी बाबू ने इस आज्ञा को भी तुरन्त शिरोधार्य कर लिया तो उनके चेहरे से चिन्ता की रेखायें मिट गयीं और खुशी से दीप्त हो उठा उनका मुख-मण्डल। क्या कहूं। मैं तो भाव विह्वल हो उठा—अन्तिम समय में भी इस महान जन-सेवक को सिर्फ जन-सेवा की चिन्ता है।

कभी-कभी मैं कल्पना करता हूं कि मृत्यूपरान्त जब धर्मराज ने उन्हें स्वर्ग में निवास करने के लिए कहा होगा तो उन्होंने कहा होगा, "मैं वहां नहीं रहना चाहता। यह जगह तो अभाव-मुक्त है। मुझे तो ऐसी जगह भेजो जहां मैं लोगों की सेवा कर सकूं।"

मेरे सामने श्रद्धेय बाबू के पद-चिन्हों से बना राजमार्ग फैला पड़ा है। बस यही इच्छा है कि इस राजमार्ग को प्रशस्त करता रहूं।

—: ० :—

सामाजिक क्रान्ति एवं परिवार नियोजन के क्षेत्र में अग्रणी
अ० भा० मारवाड़ी सम्मेलन के भूतपूर्व अध्यक्ष
श्री भंवरमल सिंघी

सदानीरा निर्मला भागीरथी

'बहता पानी निर्मला' श्री भागीरथजी कानोड़िया द्वारा श्रुत-संकलित-लिखित एकमात्र राजस्थानी लोक-कथाओं की पुस्तक का नाम है और यही नाम मुझे स्वयं उनके जीवन के लिए भी सर्वथा उपयुक्त लगता है। उनके जीवन-प्रवाह को मैंने जितना देखा, जाना और समझा है, उससे बराबर यह लगता रहा है कि वे अपने चिन्तन और प्रवर्तन में बराबर प्रवहमान रहे हैं और जहां प्रवाह नहीं होता वहां जड़ता और सड़ांध पैदा हो जाती है। उन्होंने कभी अपने जीवन में इस प्रकार की जड़ता नहीं आने दी और यही कारण है कि वे हमेशा समान भाव से निर्मल बने रहे। निर्मलता और उसका अनुसंधान ही उनका सब-कुछ रहा।

सन् १९३६ में कलकत्ता आने पर पहले-पहल जिन लोगों से मैं मिला, उनमें श्री भागीरथजी भी थे। श्रद्धेय स्व० हीरालालजी शास्त्री का उनके नाम पत्र ले कर आया था। उन्होंने पत्र पढ़ने के पहले ही मुझे अपनी बातचीत में अपनेपन से आपायित कर दिया। जिस स्नेहपूर्ण आत्मीयता से उन्होंने मेरी बातें सुनी, उसे कभी भूल नहीं सकता। समाज-सुधार की दिशा में कार्य करने की मेरी रुचि और प्रवृत्ति की उन्होंने सराहना की और हर प्रकार के समर्थन और सहयोग की भावना व्यक्त कर मेरा उत्साह बढ़ाया। मैं पहले ही स्वर्गीय शास्त्रीजी से सुन चुका था कि समाज-सुधार के क्षेत्र में वे काफी संघर्ष झेल चुके हैं और कलकत्ता के मारवाड़ी समाज में समाज-सुधार का कोई ऐसा कार्य नहीं हुआ था, जिसमें वे सम्मिलित नहीं थे। वास्तव में, मुझे जैसी प्रेरणा और प्रोत्साहन की आवश्यकता थी, वैसी ही उनसे मिली। और उसके बाद तो निरन्तर उनसे प्रेरणा और मार्ग-दर्शन मिलता गया। जो कुछ मैं कर सका, करता गया, उसके लिये उन्होंने सदैव हार्दिक प्रसन्नता प्रकट की। सन् १९४६ में जब मैंने विधवा-विवाह किया तो उसकी व्यवस्था में उनका मुख्य हाथ था। स्वयं उनके घर में ही विवाह हुआ था।

विगत ४० वर्षों की सह-यात्रा में मैंने समाज-सुधार, शिक्षा, साहित्य और राजनीति के हर प्रसंग में उनके विचारों और कार्यों को निरन्तर सक्रियता के साथ गतिमान देखा। परिस्थितियों ने उनको कभी-कहीं अपने विचारों से मोड़ा नहीं, रोका नहीं। जैसे उस दिन थे, वैसे ही हमेशा रहे। कुटुम्ब बढ़ा और बिखरा, काम-धंधा बढ़ा और बदला, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिस्थितियां बदलीं, बहुत सारी उथल-पुथल और उलट-फेर हुआ परन्तु श्री भागीरथजी का अन्तस वैसा का वैसा रहा।

स्कूल-कालेज की शिक्षा उन्हें कुछ नहीं मिली पर जीवन के विश्वविद्यालय में उन्होंने इतना और ऐसा सीखा कि विद्या का धन भी उन्होंने खूब कमाया। राजस्थानी और हिन्दी की बात तो अलग, अंग्रेजी का भी उन्होंने अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। उनके पास काम करते हुए मुझे कई बार बड़ा आश्चर्य हुआ कि वे दूसरे के लिखे हुए पत्रों में संशोधन तक करते थे। और वे संशोधन समीचीन होते थे। यह सब श्रुत ज्ञान और अनुभव की दरिया में से ही उन्होंने प्राप्त किया था।

उनकी वृत्ति धार्मिक थी पर उनके निकट मानवता ही वास्तविक धर्म था। जिसका कोई विशेष नाम नहीं, पद्धति नहीं, भाषा नहीं। बस, मानव-धर्म है। जहां मानवता है, वहां उनकी सहानुभूति थी, प्रवृत्ति थी। जहां भी और जब कभी मानव की पीड़ा चीत्कार करती थी, श्री भागीरथजी का हृदय व्यथित हो उठता था और वे उसकी सेवा-सहायता के लिये दौड़ पड़ते थे। सन् १९४२ में कलकत्ता की प्रेसीडेंसी जेल में श्री भागीरथजी, श्री सीतारामजी सेकसरिया, श्री बसन्तलालजी मुरारका और मैं सब साथ में थे। हममें से सर्वप्रथम श्री भागीरथजी छूटे। जब वे बाहर आये, उस समय बंगाल में भीषण अकाल की स्थिति थी। हजारों लोग बिना खाये मर रहे थे। भागीरथजी ने तुरन्त इस पीड़ित मानवता की सेवा में अपने को लगा दिया। उन्होंने इस कार्य में बहुत समय और शक्ति लगाई और लाखों लोगों की मदद की। उसके लिये धन दिया और इकट्ठा किया। फिर भी सन्तोष उन्हें कभी नहीं मिला। उन्हीं दिनों एक पत्र में उन्होंने मुझे जेल में ही लिखा था—"जो कुछ मैंने किया है या कर सका हूं, उससे मुझे कोई सन्तोष थोड़े ही है लेकिन सन्तोष इतना तो है कि मैं जितना कर सकता था, उतना कस कर करने की कोशिश की।" यही उनके जीवन का आदर्श रहा और यही यथार्थ भी। आदर्श और यथार्थ के समन्वय का प्रयत्न ही उनके जीवन का धर्म था। वे सेवा-धर्म की मूर्ति थे। दया और अनुकम्पा उनकी सहज प्रकृति थी, जिसका उनके जीवन में अनेक बार अनेक प्रसंगों में सच्चा परिचय मिला है। और यह सब सेवा-साधना किसी राजनीतिक या अन्य प्रकार के स्वार्थ के लिये नहीं रही। वे ऐसा मानते थे कि सेवा ही सबसे बड़ा धर्म है। मनुष्य को सेवा के मार्ग पर कभी पीछे नहीं रहना चाहिये। बंगाल में हो, राजस्थान में हो या देश के किसी दूसरे हिस्से में हो, अकाल, बाढ़, भूचाल, सूखा या अन्य किसी कारण से जन-जीवन में कष्ट पैदा हो जाता तो उनका हृदय मर्माहत हो जाता था और वे अस्थिर हो उठते थे। दुखियों की सेवा के लिये वे जो और जितना कर सकते थे, उसके लिये मैदान में कूद पड़ते थे। मानव-सेवा के इतिहास में उनका अपना एक अध्याय है।

इतना सब कुछ करने और करते रहने के बावजूद किसी प्रकार का अहंकार उनको छू तक नहीं गया था। प्रचार उनके स्वभाव में ही नहीं था। जब कभी हम लोगों में से किसी ने उनसे यह कहा था कि इतना काम हुआ परन्तु उसके बारे में जो प्रचार होना चाहिये था, वह नहीं हुआ तो उनका एक ही उत्तर रहा कि हमें अपनी सारी शक्ति कार्य में लगानी है, प्रचार में नहीं। कार्य में ही प्रचार है। आज चारों तरफ प्रतिष्ठा और प्रचार का ही जो घटाटोप छाया हुआ दीखता है उसमें यह बात कितनी बड़ी और कठिन है। आज तो प्रचार पहले होता है और कार्य बाद में।

बल्कि कभी-कभी तो प्रचार ही प्रचार रह जाता है, कार्य नहीं। यह निराभिमान भागीरथजी के व्यक्तित्व का बहुत बड़ा अंग था। सन् १९४५ में जब मैं जेल में था तो उन्होंने एक पत्र में लिखा था—"अभिमान और स्वाभिमान दो अलग-अलग चीज माननी चाहिये। अभिमान माने घमण्ड किया जाये तो यह बुरी चीज करार दी जानी चाहिये। अभिमान यानी घमण्ड का अर्थ अनम्रता है और यह भी कि अभिमानी आदमी किसी चीज को ठीक भी मान ले तो लोगों में, साथियों में, भाइयों में, गांव के लोगों में इस बात से वह दूसरों की अपेक्षा छोटा हो जायेगा या उसकी इज्जत लोग कम करने लगेंगे, इस भय से वह उसे करेगा नहीं। अभिमानी आदमी की दृष्टि बराबर इस बात पर ही रहेगी कि वह अपने इर्द-गिर्द के आदमियों में कोई दूसरा बड़ा न बने। यह उसे गवारा नहीं होगा। इसके लिये अनहैल्दी कम्पीटीशन भी करेगा। स्वाभिमान अच्छी चीज है। स्वाभिमानी आदमी किसी तरह की नीची बात नहीं सोचेगा, नीचा काम नहीं करेगा। सच्चा और पूरा स्वाभिमानी आदमी न अन्याय करेगा और न अन्याय बर्दाश्त करेगा।" इस माने में भाई भागीरथजी स्वाभिमानी थे, अभिमानी बिलकुल नहीं। यही कारण है कि वे न अन्याय करते थे और न अन्याय को बर्दाश्त करते थे; दूसरी ओर किसी के द्वारा की गई निन्दा या लगाये गये लांछन का भी उन पर कोई असर नहीं होता था। वे अन्यायी के प्रति भी हमेशा क्षमाशील रहते थे और बड़े से बड़े और छोटे से छोटे हर आदमी के प्रति उनके व्यवहार में क्षमाशीलता थी।

वे हमेशा मध्यममार्गीय रहे और इसी मार्ग को वे प्रत्येक सामान्य व्यक्ति के लिये उचित भी मानते थे। उनके ही शब्दों में "बहुत कम लोगों को छोड़ कर बाकी लोगों के लिये मध्यममार्ग ही अनुकूल हो सकता है। एक्सट्रीम का उद्देश्य सामने रहे लेकिन जल्दी करके—सोचे बिना—अपनी ताकत और परिस्थितियों का अन्दाज लगाये बिना—उस पर पैर रखने से आगे चल कर बहुत बड़ी प्रतिक्रिया होने का डर रहता है।"

उन्होंने व्यापार-व्यवसाय को ही अपना सामान्य धर्म समझा पर उसके साथ-साथ सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक और साहित्यिक एवं राजनीतिक कामों में भी निरन्तर योग दिया और इन सब में उनकी दृष्टि समन्वयात्मक रही। इनमें से हर काम में उनकी मूल प्रेरणा मानवता की ही रही। इस प्रेरणा का भी मूल-बिन्दु मानव की ही नहीं, प्राणी मात्र की पीड़ा में था। मुझे जेल में ही भेजे गये २० अक्टूबर, १९४४ के पत्र में उन्होंने इस सन्दर्भ में लिखा था—"इस संसार में इतना दुख क्यों है? यदि संसार को ईश्वर का सरजा हुआ माना जाये और ईश्वर को पूर्ण माना जाये तो उसने दुखमय सरजना क्यों की? अगर दुख कर्मों का फल माना जाये तो ऐसे कर्म करने की ईश्वर ने प्रेरणा क्यों दी? कुछ समझ में नहीं आता—क्या बात है यह सारी?" उनको यह बात निरन्तर खटकती रहती थी कि किसी की पीड़ा को देख कर मनुष्य खुद बिना पीड़ित हुए कैसे रह सकता है? वह उसकी उपेक्षा करने का क्यों आदी हो गया है? फिर उन्हीं के शब्दों में—"कितने दुखदायी दृश्य आंखों के, कानों के और हृदय के सामने नित्य होते रहते हैं। लेकिन ये सब दृश्य देखते-देखते, सुनते-सुनते मन इतना आदी हो गया है कि चन्द मिन्टों तक उसका असर मन

पर भले ही रह जाये, उसके बाद तो फिर वैसा का वैसा। घी-दूध खाना, रेशम-ऊन पहनना, मोटरों पर चढ़े फिरना और अपनी झूठी बड़ाई सुन कर राजी होना, जाने-अनजाने शेखी भी बघारना, यह दैनिक चर्या रहती है।"

मैं पहले कह आया हूं कि श्री भागीरथजी हर अर्थ में मानव थे, मानवतावादी थे। वे अपनी और दूसरों सब की परीक्षा भी इसी दृष्टि से और इसी कसौटी पर करते थे। यह बात दिसम्बर, १९४४ में लिखे उनके एक पत्र के निम्न वाक्यों से पूरी तरह समझ में आती है—"मनुष्य के लिए सब से जरूरी चीज यह है कि वह मनुष्य बनने का प्रयत्न करे, योग्य और चतुर हो, सुलझे दिमाग का हो, सहिष्णु हो, सहानुभूति-वाला हो, पड़ोसी धर्म को माननेवाला हो, एक सुनागरिक हो, व्यवहार में सच्चा और नेक हो। दुर्भाग्य से हमारे यहां याने हमारे देश में इसका बहुत दीवाला है। अच्छे और काबिल आदमी बहुत कम पाये जाते हैं। खुद मनुष्य बनने का प्रयत्न करे और दूसरों को मनुष्य बनाने के लिए अपनी शक्ति का उपयोग करे, यह बहुत जरूरी है।" श्री भागीरथजी ने जीवन भर इन्हीं विचारों की प्रेरणा से खुद को और दूसरों को मनुष्य बनाने के लिये अपनी शक्ति का भरसक उपयोग किया।"

इसी भावना से यह स्वाभाविक है कि वे जहां भी मनुष्यता का हनन देखते थे, वहां उनका मन व्यथित हो उठता था। उसके कारण जो अशान्ति, संत्रास और तनाव पैदा हुआ दीखता, उससे उनका मन अशांत होने लगता था। इसके बारे में जब वे विश्लेषण करते थे तो इसका कारण उनको एक ही लगता था कि—"आदमी के मन की भूख और चाह ज्यों-ज्यों बढ़ेगी, त्यों-त्यों मानव का मन अधिक से अधिक क्षुब्ध और अशांत होगा ही। आदमी के पास भोग के साधन ज्यों-ज्यों बढ़ेंगे, त्यों-त्यों उसकी तृष्णा भी अधिक बढ़ेगी। न भोग्य वस्तुओं की कोई सीमा है और न तृष्णा की ही। यह एक ऐसा गोरखधन्धा या जंजाल है कि फंसते ही जाओ। भर्तृहरि का वह श्लोक आपको शायद याद होगा जिसमें कहा है—'भोगा न भुक्ता, व्यमेव भुक्ता, तृष्णा न जीर्णा, तापो न तप्ता, वयमेव तप्ता।"

इस स्थिति के खिलाफ उनके मन में हमेशा असन्तोष उत्पन्न हुआ रहता था, अशांति बनी रहती थी पर, जैसा वे स्वयं कहते थे कि इसके खिलाफ बड़ी तपस्या की आवश्यकता होती है। और उनके शब्दों में..."तपस्या देखने-दिखाने की चीज नहीं है, वह अंतर्मन की क्रिया-प्रक्रिया है, प्रेरणा है। विवशता से झेले हुए कष्ट सहन का नाम तपस्या नहीं है। जो लोग पर-पीड़ा की आत्मानुभूति से पीड़ा से मुक्ति पाने के लिए संघर्ष झेलते हैं, कष्ट सहन करते हैं, उनकी ही तपस्या सही मानों में तपस्या है। और, वह अवश्य सफल होती है।" हमारे राष्ट्रीय संग्राम के संदर्भ में लिखे गए एक पत्र में उन्होंने आज से ३७-३८ वर्ष पहले मुझे लिखा था : "तपस्या विवशता की हुआ ही नहीं करती और विवशता से कष्ट-सहन हो, वह तपस्या नहीं कही जा सकती। उस हिसाब से मानें तब तो आज हिन्दुस्तान के अधिकांश क्या, सारे के सारे आदमी ही तपस्या कर रहे हैं। लेकिन वह तपस्या नहीं है, यह तपस्या है। सफलता चाहे दीखे नहीं लेकिन हर शुद्ध-संकल्प और कृत्य की सफलता तो होती ही है। स्थूल चक्षुओं से तो बहुत चीजें नहीं दीखती, इससे क्या यह थोड़े ही मान लें कि उनका अस्तित्व नहीं

है। महीने नहीं, वर्ष बीत रहे हैं, यह ठीक है लेकिन काल के अनन्त आकाश में दो-पांच दस या बीस वर्ष आखिर कितने होते हैं ? जो संसार विनाश और ध्वंस की ओर जा रहा है, उसे मोड़ने के प्रयत्न में शताब्दियां भी लगे तो ज्यादा थोड़े ही है। और, फिर भी उसका मुड़ना दिखाई न पड़े—उस विनाशकारी, ध्वंसात्मक वृति की जड़ को हम हिला दें या उसे एक हल्का सा धक्का भी दे दें तो क्या हमें उससे सन्तोष नहीं मानना चाहिये ? शताब्दियों और सहस्त्राब्दियों की आदत के कारण हमारी वृत्तियां, आदतें, सोचने का दृष्टिकोण इतने संकुचित हो गये हैं कि हमलोग जल्दी अधीर हो उठते हैं। भंवरमलजी, देश के उत्थान, मानव-समाज के कल्याण और लोकहित के साधन में अगर अपन शरीर या बुद्धि से कुछ भी एक अणु-परमाणु भी हिस्सा दे सकें तो अपन तो कृतार्थ हैं ··मोहवश कुटुम्बीजनों और मित्रों की तपस्या से लोग सदा से ही घबराते आये हैं और जब-जब किसी ने इस मार्ग पर पांव बढ़ाया है, तब-तब बराबर ही तथा-कथित इष्ट मित्रों ने उसे विरत करने की कोशिश की है। विरत न होने पर क्रुद्ध भी हुए हैं, उलाहना भी दिया है, रोये हैं, लिपटें हैं लेकिन आखिर वह नहीं माना तो बाद में उस पर अभिमान किया है, उसके नाम पर यश मिला है। पुराने आख्यान पढ़ने को मिलते हैं। उनकी भाषा आलंकारिक चाहे हो पर घटना सत्य है···। देव-दानव युद्ध हजार-हजार वर्ष से चलता आ रहा है सही, लेकिन इसी तरह चलता रहेगा, यह मानने को जी नहीं करता। मानव, दानव ही बना रहेगा, यह क्यों मान लेना चाहिये ? यह मान लेना तो मानवता की हार है। हो चाहे कुछ भी, लेकिन मैं स्वप्न तो उस दिन का जरूर देख रहा हूं—चाहे उसके आने में कितने ही सौ वर्ष लग जायें, जिस दिन संसार सुखी होगा—एक दूसरे के मित्र होकर लोग रहेंगे। दुश्मनी नाम की वस्तु कोश में ही रह जायेगी। तुलसीदासजी ने कल्पना की है—रामराज्य की। रामायण में दण्ड यतियों के हाथ में ही गिनाया है याने दण्ड नाम की और कोई वस्तु नहीं रह गई थी। क्या यह कभी भी सत्य नहीं होनेवाला है ? होगा ? किसी दिन तो होगा ही।"

जो मानवतावादी होता है, वह हमेशा आशावादी होकर ही रहता है। आशा ही जीवन है। श्री भागीरथजी इसी प्रकार के आशावादी अन्त तक बने रहे। वे इसी प्रकार निरन्तर अपने जीवन का विश्लेषण करते रहे और अपने मन को, जीवन को साफ, जितना निर्मल हो सके बनाते रहे। आशाओं को धक्का लगता रहता। सबसे बड़ा धक्का उनको हमारे स्वराज्य के मामले में लगा। कैसी बोलती अनुभूति है उनकी—"स्वराज्य का हाल तो यह है कि स्वर्ग से गंगा गिरी तो शंकर की जटा में समा गई, धरती के लोगों को उसका लाभ तब मिला जब भगीरथ ने एक बार शंकर के सामने अपना रोना रोया और प्रार्थना की, नहीं तो वह अनन्त काल तक शंकर की जटा में ही पड़ी रहती। शंकर की जटा से निकली तो उसे फिर एक बार एक ऋषि ने अपनी जांघ में रोक कर रख लिया। वहां से छूटने पर उसका नाम जान्हवी हो गया। भगीरथ बेचारे को फिर उसकी खुशामद करनी पड़ी। तब जा कर गंगा का उपयोग जनता को मिल सका। यह स्वराज्य की गंगा भी आज कुछ बड़े लोगों की जटा में समाई हुई है, जनता के दुख-दर्द देखने की किसी को नहीं पड़ी है। स्वर्ग से गंगा याने

अंग्रेजों से स्वराज्य गांधी ने लिया। गांधीजी चले गये तो अब शंकर की खुशामद करनेवाला या शंकर को डरानेवाला भी कोई नहीं रहा। भगवान को जो मंजूर होगा, सो होगा। फिर अपन भी तो केवल बात ही बात करते हैं, कुछ करते कहां हैं?"

'हम भी कुछ करते कहां हैं?' यही श्री भागीरथजी की जीवन-पीड़ा थी। कुछ करने की खोज ही उनकी खोज थी। उनके पास पीड़ा की अनुभूति थी और पीड़ा की ही अभिव्यक्ति। अपनी ८५ वर्ष की आयु तक वे निरन्तर इसी खोज में रहे। जितना और जो कुछ वे इस पीड़ा से मुक्ति के लिये समाज को दे सके, बता सके उसी में उनका मन प्रवहमान रहा। जीवन ने उन्हें बहुत कुछ दिया—गहरा अनुभव और गहरा भाव तथा उसकी गहरी अभिव्यक्ति। उनका यह मौन किन्तु मुखर जीवन-प्रवाह हमारे जीवन में भी निर्मलता लाता और देता रहे, यही उनकी चिर-समाधि पर हमारा सबसे बड़ा अर्घ्य है।

—:०:—

भूतपूर्व संसत्सदस्य, सामाजिक कार्यकर्त्ता,

श्री वेणीशंकर शर्मा

आदर्श मानव

श्री भागीरथजी कानोड़िया, जहां व्यवसाय के क्षेत्र में सचमुच भगीरथ थे, वहां सामाजिक क्षेत्र में वे मां भागीरथी की तरह निर्मल स्वच्छ एवं पवित्र थे। व्यावसायिक क्षेत्र में जो भी उनकी महत्वाकांक्षा रही हो, सामाजिक या राजनैतिक क्षेत्र में उनकी कोई महत्वाकांक्षा नहीं थी। नेता बनना उनके स्वभाव में नहीं था। इसलिये वे नेतागिरी से कोसों दूर रहे। यदि वे चाहते तो एक कुशल नेता के रूप में भी उभर सकते थे किन्तु उन्होंने, क्या सामाजिक, क्या राजनैतिक, दोनों क्षेत्रों में नेताओं के केवल सहयोगी के रूप में कार्य किया। इन क्षेत्रों के नेताओं को उनका आर्थिक सहयोग तो था ही किन्तु उनके साथ वे कन्धे से कन्धा मिला कर काम भी किया करते थे। वे एक कार्यकर्ता मात्र थे और जीवन पर्यन्त कार्यकर्ता के रूप में ही कार्य करते रहे।

इस छोटे से संस्मरणात्मक लेख में मेरा उद्देश्य उनकी सामाजिक या राजनैतिक उपलब्धियों की चर्चा करना नहीं है। वे तो एक खुला अध्याय है जो सर्वविदित है। यहां एक सीमित दायरे में उनके शुद्ध मानवीय रूप का दिग्दर्शन मात्र कराना चाहता हूं।

व्यावसायिक क्षेत्र में, जहां तक मैं समझता हूं, उन्होंने अपना प्रारम्भिक जीवन बिड़ला-बन्धुओं के प्रतिष्ठान में एक उच्च सहयोगी के रूप में आरम्भ किया, जहां उनके अग्रज स्व० बाबू गंगाबक्सजी कानोड़िया पहले से ही स्व० बाबू युगलकिशोरजी बिड़ला के अनन्य सहयोगी और सहायक के रूप में कार्यरत थे। बात बहुत पुरानी है, इसलिए इससे शायद कम लोग ही वाकिफ होंगे कि आज के इस वृहत् बिड़ला प्रतिष्ठान की आधारभूत शिला ये दोनों कानोड़िया बन्धु थे। १९३९ के आसपास इन्होंने इस वृहत् प्रतिष्ठान से अलग होकर अपना निजी व्यवसाय आरम्भ किया जो आज देश में कानोड़िया प्रतिष्ठान के रूप में अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है।

सर्वप्रथम १९२८ में जब मैं कलकत्ते उच्च अध्ययन के लिये आया तो बाबू प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका के मार्फत श्री भागीरथजी से मेरा परिचय हुआ। यहां यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि बाबू प्रभुदयालजी मेरे कलकत्ते में गार्जियन थे और आज भी मैं उन्हें अपना गार्जियन और पथ-प्रदर्शक मानता हूं। उन्हीं की प्रेरणा और सहायता से मैं आगे पढ़ सका।

कलकत्ते में उच्च अध्ययन के लिये मेरे लिये यह आवश्यक था कि मैं अपने पैरों पर खड़ा होऊं। अतएव मैंने बाबू प्रभुदयालजी से मुझे कोई छोटी-मोटी नौकरी दिलाने की प्रार्थना की। वे मुझे भागीरथजी के पास ले गये और उन्होंने मुझे

तुरन्त बिड़ला ब्रादर्स की एक कम्पनी में नियुक्त कर दिया ७५) मासिक पर, जो उस समय मेरे योग-क्षेम के लिये पर्याप्त था।

ताजा-ताजा बी० ए० पास कर आया था, इसलिये किसी भी प्रकार के किसी कार्य का अनुभव तो था नहीं। किन्तु भागीरथजी ने बड़े धैर्य के साथ अपनी घोर व्यस्तता के बावजूद मुझे अंगुली पकड़-पकड़ कर काम सिखाया और मैं दो-तीन महीने में ही कुशल कार्यवाहक बन गया।

मैंने उस कम्पनी में शायद तीन वर्ष काम किया और १९३२ में कानून का अध्ययन समाप्त करके वकालत शुरू करने का विचार किया। प्रैक्टिस करते हुये कानूनन नौकरी नहीं कर सकता था। नौकरी छोड़नी लाजिमी थी। पर नौकरी छोड़ता तो फिर योग-क्षेम कैसे चलता। बड़ी विकट समस्या थी। तब तक छोटे भाई श्रीकान्त को भी मैट्रिक पास करने के बाद कलकत्ते बुला लिया था। उसे आगे पढ़ाना जरूरी था। इसलिये उसका नाम विद्यासागर कालेज में सायंकालीन क्लासों में लिखा दिया था। वह दिन भर बेकार रहता था। अतएव मैंने डरते-डरते भागीरथजी के सामने प्रस्ताव रखा कि प्रैक्टिस आरम्भ करते ही तो मैं अपने खर्च के पैसे कमा नहीं सकूंगा। इसलिये आप मेरे स्थान पर श्रीकान्त को रख लें तो किसी प्रकार समस्या का समाधान हो सके। पर श्रीकान्त तो मुझसे भी ज्यादा कोरा था। केवल मैट्रिक था। इसलिये कुछ जानने का प्रश्न ही नहीं उठता था। काम क्या करता? मैंने भागीरथजी से कहा कि आधे दिन तो मैं कोर्ट की तरफ जाऊंगा और आधे दिन आफिस आकर काम पूरा कर दूंगा तथा साथ-साथ श्रीकान्त को भी काम सिखाता जाऊंगा। यद्यपि मेरा प्रस्ताव बड़ा भोंड़ा सा था किन्तु केवल मेरी दिक्कत दूर करने के लिये उन्होंने उसे स्वीकार किया। केवल इतना ही कहा, देखना किसी प्रकार का ओलमा (उलाहना) न आय। यदि भागीरथजी उस समय मेरे प्रस्ताव को नहीं मानते, जो अस्वाभाविक नहीं होता, तो शायद मेरा जीवन नौकरी करते ही बीतता।

श्री भागीररथजी आरम्भ से ही बड़े आदर्शवादी थे। उन दिनों शायद दोनों कानोड़िया भाई घोड़ा-गाड़ी में आफिस जाया करते थे। मोटरें तब तक कलकत्ते में पर्याप्त संख्या में नहीं थीं। मैं छात्र-निवास से पैदल ही आफिस जाया करता था। एक दिन कैनिंग स्ट्रीट में लम्बे-लम्बे डग भरते उनसे टक्कर हो गई। मैं हैरान था कि इतना बड़ा आदमी (उस समय वे बड़े आदमियों में गिने जाते थे) पैदल चल रहा था। पूछ ही तो बैठा कि आज गाड़ी क्या हुई तो हंसते हुये बोले कि मैं कभी-कभी पैदल भी जाता हूं, जिससे तुम लोगों के कष्ट का कुछ अनुभव तो हो। यह था श्री भागीरथजी का असली रूप।

अपने सहयोगियों और मातहत कर्मचारियों के प्रति उनका रुख बड़ा ही सहानुभूतिपूर्ण होता था। दया के तो वे अवतार थे। आफिस पांच या साढ़े पांच बजे बन्द हो जाती थी। किन्तु भागीरथजी अपनी सौदा-बही मिलाने काफी देर तक बैठा करते थे। उन दिनों क्लर्कों का वेतन तीस-चालीस रुपये मासिक था। कई लोगों को काफी देर तक भी अपना काम पूरा करने के लिये रुकना पड़ता था। उन दिनों यूनियन तो थे नहीं। सबको अपना-अपना काम ईमानदारी के साथ पूरा करना पड़ता

था। जब कभी वह अपना काम पूरा करके आफिस से जाते हुये किसी ऐसे बाबू को तब तक काम करते हुये देखते तो उसके पास जाते, उसकी पारिवारिक स्थिति के सम्बन्ध में पूछते, जो अकसर नाजुक ही हुआ करती थी, और दस-पांच रुपये जो उन दिनों काफी होते थे, उसकी पाकेट में चुपचाप डाल देते। फिर कहते किसी को कहना नहीं। किन्तु कस्तूरी की सुगन्ध तो छिपाये कहीं छिपती है? बात औरों तक भी पहुंची और कई लोगों ने उससे नाजायज फायदा भी उठाना शुरू किया किन्तु उन्होंने अपनी गुप्त सहायता की आदत नहीं छोड़ी। गुप्त सहायता देना उनके स्वभाव का एक अंग हो गया था और केवल वे ही जानते थे कि उन्होंने कितने मित्रों, सहयोगियों और अनजान याचकों की गुप्त सहायता की थी।

प्रगट आर्थिक सहायता भी उनकी कम नहीं थी। स्व० पंडित हीरालालजी शास्त्री द्वारा स्थापित वनस्थली विद्यापीठ के प्रारम्भिक काल में उन्होंने उसकी काफी आर्थिक सहायता की थी। राजस्थान में अपने गांव मुकुन्दगढ़ में भी वे विद्यालय तथा चिकित्सालय चला रहे थे।

भागीरथजी उदार तो थे ही और थे सरल प्रकृति के व दिल के भी बड़े साफ। अपनी भूल देखते ही उसे स्वीकार करने और उसका प्रतिकार करने में उन्हें जरा भी हिचक नहीं होती।

सन् १९३४ की बात है। भूकम्प के कारण बिहार में तबाही मची हुई थी। मुज्जफरपुर और मुंगेर में एक भी मकान साबूत नहीं बचा था। मुझे मारवाड़ी रिलीफ सोसायटी की तरफ से एक छोटी-सी टीम के साथ राहत-कार्य के लिये मुज्जफरपुर भेजा गया और मारवाड़ी रिलीफ सोसायटी की ओर से जो कार्य हुआ उसकी चारों ओर प्रशंसा हो रही थी। उन दिनों वहां मैं प्रायः अठारह-बीस घंटे काम किया करता था। दिमाग सातवें आसमान पर था।

किन्तु चूंकि मैं तत्कालीन कांग्रेस-कार्यकर्ताओं को सन्तुष्ट नहीं कर सका जो मुझसे पीड़ितों के बदले अपनी सेवा की अपेक्षा करते थे। उन्होंने कलकत्ते मेरी शिकायत लिख भेजी और भागीरथजी इन्क्वायरी के लिये मुज्जफरपुर पहुंचे। वहां पहुंचते ही उन्होंने मुझसे कहा : "वेणीशंकर, तुम्हारे काम की शिकायत है।" सुनते ही मैं तो जैसे आसमान से गिर पड़ा। कहां तो सब ओर प्रशंसा ही प्रशंसा मिल रही थी वहां अपने ही लोगों से उपालम्भ। बरदाश्त के बाहर बात थी। किन्तु जब भागीरथजी घूम-घाम कर तथा लोगों से पूछताछ कर वापस आये तो काफी सन्तुष्ट थ और उन्हें अपनी गलती महसूस हुई। बोले : "वेणीशंकर, मुझसे भूल हुई, क्षमा करना। मैंने बिना देखे-सुने ही तुमसे जो कुछ कहा था उसके लिये दुःखित हूं।" भावावेश में मैंने उनके हाथ पकड़ लिये—"यह आप क्या कह रहे हैं?" आगे कुछ बोल नहीं सका। यह था भागीरथजी का सुलभ स्वभाव। जो मनुष्य स्वयं अपनी भूल को पहचान कर उसके लिये पश्चाताप करता है वही महान होता है।

श्री भागीरथजी जहां आदर्श दानी थे वहां आदर्श भिक्षुक भी थे। उन्होंने अपने अर्जित धन का कितना अंश दान में दिया यह तो शायद उनके वंशधर भी नहीं जानते किन्तु उन्होंने सार्वजनिक कामों के लिये समाज से करोड़ों की संख्या में धन

भी एकत्रित किया। उनके झोली फैलाने के पहले ही लोग उनकी झोली भरने के लिये दौड़ पड़ते थे, क्योंकि वे जानते थे कि भागीरथजी को दिया हुआ उनका एक रुपया सवा रुपया बन कर ही खर्च होगा। मारवाड़ी रिलीफ सोसायटी के लिये इकट्ठा किये गये चन्दों में, उनका जब तक वे इस संस्था से सम्बन्धित रहे, काफी हाथ रहता था। राजस्थान के पिछले भीषण अकाल में भी राहत-कार्य के लिये उन्होंने स्वयं भी काफी दिया और मांगा भी काफी।

हिन्दी साहित्य के विकास और सम्बन्ध में भी उनकी काफी रुचि थी। अतएव जो भी साहित्यिक उनके द्वार पर आता कभी खाली हाथ नहीं लौटता। अच्छी-अच्छी पुस्तकों के प्रकाशन में वे बराबर सहायता करते।

वे शब्द के सम्पूर्ण अर्थ में एक मानव ही नहीं अतिमानव थे। दया और सहानुभूति के मूर्तिमान स्वरूप, अपने नाम या प्रशंसा से कोसों दूर, दूसरों के दुःख में दुखी और उनके सुख में सुखी।

जीवन के अन्तिम काल में उन्हें काफी शारीरिक एवं मानसिक कष्ट भोगना पड़ा और शायद यही भारतीय परम्परा भी है। भगवान रामकृष्ण परमहंस को भी जिनसे बढ़कर निष्पाप, निष्कलंक प्राणी दूसरा नहीं हो सकता, अपने अन्तिम काल में काफी कष्ट भोगना पड़ा था। शायद ऐसे महापुरुष अपने पूर्वजन्म के पापों का मार्जन कुछ तो अपने सत्कर्मों से करते हैं, बाकी जो बच जाते हैं उन्हें यहीं भोग कर अपनी तलपट पूरी कर डालते हैं।

—:०:—

अ० भा० सर्वसेवा संघ के भूतपूर्व अध्यक्ष

श्री सिद्धराज ढड्ढा

सौम्य और स्नेहिल व्यक्तित्व

कौन व्यक्ति ऐसा है जिसमें गुण और दोष का मिश्रण न हो ? जिसके जीवन में अच्छाई न हो, बुराई न हो ? और सामनेवाले को अच्छाई या बुराई का जो भान होता है उसमें उसके खुद के भावों का भी तो प्रतिबिम्ब पड़ता होगा। उसकी खुद की अपेक्षाओं की पूर्ति या 'न-पूर्ति' का असर भी पड़ता होगा ? इसके अलावा एक ही व्यक्ति का भिन्न-भिन्न व्यक्तियों से जो सम्पर्क आता है उसमें परिस्थिति की भिन्नता भी रहती है, और उस भिन्नता के अनुसार एक-दूसरे की छाप पड़ती है। इसलिए किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व का मूल्यांकन अन्ततोगत्वा व्यक्ति-सापेक्ष ही हो सकता है।

मेरे चित्त पर स्वर्गीय भागीरथजी कानोड़िया की छाप एक ऐसे सौम्य, स्नेहिल व्यक्ति की है, जिससे मिलने पर मन प्रसन्न हो जाता था। लगभग आधी शताब्दी बीत रही है, जब मैं कलकत्ता जैसे महानगर में "इंडियन चेम्बर आफ कामर्स" में काम करने के लिए गया था। उन दिनों व्यापारिक क्षेत्र में भागीरथजी का नाम काफी आदरपूर्वक लिया जाता था। भागीरथजी से संपर्क के मेरे तीन बिन्दु थे—एक, चेम्बर के काम को लेकर, दूसरा, कलकत्ते के मारवाड़ी समाज में चल रही सुधार तथा सेवा की प्रवृत्तियों को लेकर, तथा तीसरा, राष्ट्रीय आन्दोलन को लेकर। चेम्बर सम्बन्धी काम की अपेक्षा मेरा और भागीरथजी का सम्पर्क सार्वजनिक कामों और प्रवृत्तियों को लेकर ही अधिक था।

यह मैं अपना सौभाग्य ही मानता हूं कि कलकत्ते के मेरे जीवन के शुरू में ही मेरा सम्बन्ध श्री सीतारामजी सेकसरिया तथा श्री भागीरथजी कानोड़िया जैसे मित्रों से हुआ। जहां तक मुझे याद है, कलकत्ते में मेरे अभिन्न मित्र श्री सरदार सिंहजी मोहनोत के द्वारा सीतारामजी तथा भागीरथजी से मेरी निकटता बढ़ी थी। धीरे-धीरे मैं उस मित्रमण्डल में शामिल हो गया। अक्सर भागीरथजी के दफ्तर में ही शाम को अपने-अपने कामों से निवृत्त होकर घर लौटने से पहले हम आठ-दस मित्र इकट्ठा होते थे। भागीरथजी और सीतारामजी के अलावा बसंतलालजी मुरारका, रामकुमारजी भुवालका, प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका, मोतीलालजी लाठ, वेणीशंकरजी शर्मा, भंवरमलजी सिंघी आदि इस मण्डली में थे।

कलकत्ते में उस समय मारवाड़ी समाज तथा हिन्दी-भाषी लोगों के द्वारा जो बहुत-सी सामाजिक या सार्वजनिक प्रवृत्तियां चलती थीं उनमें किसी न किसी रूप में इस मित्रमंडल के सदस्यों का हाथ रहता था। अतः एक तरह से यह मित्रमंडल उन सब प्रवृत्तियों का परस्पर समन्वय करने, और उन्हें सहायता तथा बल पहुंचाने का

एक अच्छा माध्यम वन गया था। यों तो मित्रमंडल के सभी सदस्य सक्रिय थे और इन सार्वजनिक प्रवृत्तियों में सभी का अपना-अपना योगदान रहता था, पर यह कहना शायद अत्युक्ति नहीं होगी कि भागीरथजी और सीतारामजी सब को जोड़नेवाली कड़ी के रूप में थे।

स्व० भागीरथजी आजादी के पहले के जयपुर राज्य के गांव मुकन्दगढ़ के थे, इसलिये स्वाभाविक ही उनकी पं० हीरालालजी शास्त्री से मित्रता थी। आजादी के बाद जब राजस्थान की सब रियासतों को मिलाकर राजस्थान राज्य बना तब पं० हीरालालजी शास्त्री उसके पहले मुख्यमंत्री वने। भाई भागीरथजी का जयपुर राज्य तथा बाद में राजस्थान प्रदेश की रचनात्मक प्रवृत्तियों से भी काफी सम्बन्ध अन्त तक बना रहा। राजस्थान प्रदेश हरिजन सेवक संघ के वे वर्षों अध्यक्ष रहे। स्वर्गीय ठक्कर बापा की प्रेरणा से राजस्थान के रचनात्मक कार्यकर्त्ताओं का एक संगठन "राजस्थान सेवक संघ" के नाम से बना था। उसके भी भागीरथजी संस्थापक-सदस्य थे। औपचारिक सम्बन्ध किसी प्रवृत्ति से होता या न होता, पर भागीरथजी सभी अच्छे कामों में हमेशा सहयोग देते रहते थे। सार्वजनिक कामों से संबंध रखने वाले व्यक्ति कलकत्ते में धन-संग्रह के लिए आते रहते हैं। भागीरथजी उनके लिए बड़ा सहारा थे। वे स्वयं तो अपना योग देते ही थे, लेकिन दूसरों से दिलाने में भी मदद करते थे।

भागीरथजी का जीवन व्यक्तिशः सादा और सरल था। उनके चेहरे पर अभिमान, क्रोध या झुंझलाहट के लक्षण मुझे कभी नहीं दिखाई दिये। जल्दबाजी उनके मिजाज में नहीं थी। विचार, बातचीत, उठना-बैठना—सब चीजों में धीरज उनकी एक खासियत थी। वे विचारों से उदार थे, हालांकि प्रगतिशीलता में अक्सर जो दिखावा या बेताबी होती है वह उनके जीवन से प्रगट नहीं होती थी।

औरों ने भागीरथजी के जीवन के दूसरे पहलू देखे होंगे, और उनमें भिन्न गुण-दोषों का दर्शन भी उन्हें हुआ होगा। यह स्वाभाविक है। पर कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि भागीरथजी एक ऐसे व्यक्ति थे जिनकी याद उन्हें जाननेवालों में बहुत अरसे तक बनी रहेगी।

—:०:—

राजस्थान के प्रसिद्ध गांधीवादी नेता

श्री गोकुलभाई. दौ० भट्ट

साधु-पुरुष

मुझे अभी याद नहीं आता है कि स्वर्गस्थ भागीरथजी कानोड़िया के प्रथम दर्शन मुझे कहां और कब हुए ? हो सकता है कि स्वर्गस्थ जमनालालजी बजाज के साथ या सेवानिष्ठ सीतारामजी सेकसरिया के साथ हुए हों लेकिन एक छवि मेरे चित्त पर अंकित हुई कि भागीरथजी एक विशिष्ट मानव थे।

मेरी जानकारी के अनुसार उन्होंने अपने पुरुषार्थ से, बुद्धिमत्ता से, कुशलता से और सतत परिश्रम से अपना व्यवसाय आरम्भ किया और उसका ऐसा विस्तार किया कि वे एक अच्छे और ऊंचे धनीमानी माने जाने लगे। लेकिन अर्थ-लाभ के साथ ही साथ उनका, गुण-वैभव भी बढ़ा। चारित्र्य की गरिमा भी बढ़ती गयी क्योंकि अपने व्यवसाय के अलावा जनहितकारी कामों में वे हिस्सा लेने लगे थे। वह कार्य दिनों दिन व्यापक बनता गया। सेवा-भावना उभरने लगी।

स्वर्गस्थ भागीरथजी ने राजस्थान के अकाल-निवारण में, हरिजन-सेवा में, जलकष्ट निवारण में अधिक रुचि ली। हरिजन-सेवा का कार्य भी उन्होंने गांधीजी के अनशन के दिनों से अपना रखा था और उसी वृत्ति के परिणामस्वरूप राजस्थान में भी उन्होंने हरिजन-सेवा की।

लोकशक्ति को जागृत करनेवाली, लोगों को प्रेरणा देनेवाली ऐसी मण्डनात्मक प्रवृत्तियां उन्होंने अपने बलबूते पर और अन्तःप्रेरणा से चालू की थी। परन्तु इन सब में सीकर के आरोग्य केन्द्र ने उनको विशेष रूप से आर्कषित किया था क्योंकि यह कार्य क्षय रोगियों की सेवा का था। उन्होंने अपने अन्तकाल को समीप देखकर कितना बड़ा दान दे डाला। पहले उद्‌गार में सीकर आरोग्य केन्द्र को पांच साल के लिए प्रतिवर्ष एक लाख के दान का और फिर कुछ समय के बाद ही करीब-करीब अन्त बेला में पन्द्रह लाख के दान का उच्चारण किया। सीकर का आरोग्य केन्द्र उन्हें बहुत प्रिय था।

खादी और ग्रामोद्योग की अपने वतन की संस्था के कार्य में वे दिलचस्पी रखते थे और उसके द्वारा कत्तिन, बुनकर, कामगार और कार्यकर्ताओं की चिन्ता भी करते थे।

ऐसे परोपकारी, सम्पत्ति के धनी की शक्ति और वृत्ति सीमित नहीं थी। उनके अन्तर में सत्य और प्रेम का झरना बहता रहा था इसीलिये वे राजस्थान के नशाबन्दी कार्य की चिन्ता करते थे और सलाह-सूचना और सहायता करते रहते थे। मेरे अनशन के दिनों में उनकी चिन्ता को मैं अच्छी तरह महसूस कर रहा था। मुझे उनके आशीर्वाद मिलते रहते थे। वे छोटे-बड़े सब कार्यकर्ताओं का ध्यान रखते थे और जब-जब

जरूरत होती थी तब-तब उनकी ओर से प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से आर्थिक सहायता भी कार्यकर्ताओं को मिलती रहती थी।

स्वर्गस्थ भागीरथजी अपने परिवार के तो बड़े थे ही परन्तु वे एक सच्चे मित्र भी थे। उनके परिचय का वर्तुल कलकत्ता या राजस्थान ही नहीं था परन्तु पूरे हिन्दुस्तान तक व्याप्त था क्योंकि उनके दिल में स्नेह और निर्वैरता तथा मिष्टभाषिता भरी हुई थी। वे मितभाषी होते हुये भी एक अच्छे वार्ताकार भी थे और किसी को कल्पना नहीं हो सकती थी कि व्यापारी भागीरथजी एक अच्छे लेखक भी हैं। उनकी कहानियों में माधुर्य, रोचकता और बोध दिखाई देता है। ये कहानियां "बहता पानी निर्मला" नाम से प्रकाशित हुई हैं। उस ग्रन्थ के बारे में मैं यहां लिखना नहीं चाहता परन्तु उन्होंने खुद लिखा है कि "कहानियां, लोकोक्तियां, मुहावरे और लोक-कथायें सुनने-सुनाने की रुचि मेरी बराबर से ही रही है। मेरे कुछ मित्रों और परिजनों का यह आग्रह था कि जो कहानियां आदि मैं उन्हें सुनाता रहा हूं, उनको लिपिबद्ध कर दूं। लेकिन मैं टालता रहा। अब जब पं० कन्हैयालालजी सहल ने, जो कि मेरे अच्छे मित्र हैं तथा राजस्थानी और हिन्दी के माने हुए विद्वान भी, मुझसे कहा कि मैं "मरुभारती" के कहानी अंक के लिये कुछ कहानियां लिखकर भेजूं, तो मैं उनकी बात टाल नहीं सका। फलस्वरूप इतनी सारी कहानियां लिख गया हूं। कहानियां लिखने बैठा तब तो न यह कल्पना ही थी और न यह इरादा ही था कि कहानियों की संख्या इतनी हो जायेगी, लेकिन लिखने बैठा तो एक के बाद एक याद आती गयी और मैं लिखता चला गया। कुछ मित्रों का, खासकर यशपालजी जैन का, यह सुझाव रहा कि इन कहानियों को अलग से पुस्तक के रूप में भी छपा देना ठीक रहेगा और सुझाव के अनुसार यह छोटी सी पुस्तक आप के हाथ में है।" भागीरथजी बहुमुखी प्रतिभा के पुरुष थे। उनकी सन्त-साहित्य में रुचि भी प्रगाढ़ थी और इसीलिये तुलसी-ग्रन्थावली, सूर-ग्रन्थावली जैसे कामों में उन्होंने न सिर्फ आर्थिक योगदान दिया परन्तु सम्पादन में भी अपने सुझाव देते रहे।

ऐसे श्रद्धेय बडिल भ्राता समान साधु पुरुष भागीरथजी को किस तरह मैं श्रद्धांजलि अर्पित करूं? वे प्रेरणा देते रहते थे और स्नेह बरसाते रहते थे। उनकी और सीतारामजी सेकसरिया की अटूट जोड़ी थी। सीतारामजी ने अपनी "एक कार्यकर्ता की डायरी" भाग-एक में सन् १९२९ की १२ जनवरी की डायरी में पृष्ठ तीन पर लिखा है—"सेवा समिति बालचर मण्डल के अधिवेशन में गये। यहां भागीरथजी कानोड़िया मिले। उन पर अपनी बड़ी श्रद्धा है, वास्तव में देवता आदमी हैं, अपने से बड़ा ही प्रेम रखते हैं, वैसे तो वह सब से ही रखते हैं।"

सीतारामजी ने स्वर्गस्थ भागीरथजी की जो छवि देखी वैसी तसवीर मैंने भी देखी। एक अच्छे साधु पुरुष ने जिस तरह का जीवन बिताया वह धन्य जीवन था। ऐसे पुरुष के परिवार में आ० गंगादेवीजी तथा उनके संततिजन, आप्तजन, साथी, मित्र, कार्यकर्ता तथा परिचित नित्य उन्हें याद करते रहेंगे। उन के गुणों का यत्किंचित् अनुकरण करके स्वर्गस्थ को स्नेहांजलि, श्रद्धांजलि, स्मरणांजलि अर्पित करते रहेंगे। अगले पृष्ठ की मेरी कविता के उदगारों का अनुमोदन करेंगे। अभी इतना ही।

निःसंगी थे, निराडम्बर, निरभिमानी भागीरथ
सदा सन्तुष्टजीवन थे चिन्तनशील भागीरथ।
परोपकारी दयावान थे मानव उच्च भागीरथ
कमलवत् नीर में रहकर प्रभुमय जीव भागीरथ।
धनी-मानी प्रतापी थे, विनयमूर्ति थे भागीरथ
विवेकी थे, विनोदी थे, सदा स्मितवान भागीरथ।
विपद में धैर्यधारी थे, व्रती, निर्भीक भागीरथ
अहिंसा प्रेमपुजारी दलित-सेवक थे भागीरथ।
गुणालंकार से भूषित फलेच्छा-त्यागी भागीरथ
सदा स्मरणीय जनसेवक महायोगी से भागीरथ।
नमन उस उच्च आत्मा को शिवात्मारूप भागीरथ
हमारे स्नेह के अर्घ्य स्वीकारो आप भागीरथ।

—: ० :—

अ० भा० गो सेवा संघ के मंत्री,
गांधीवादी कार्यकर्त्ता
श्री राधाकृष्ण बजाज

करुणामूर्ति अजात शत्रु

पू० भागीरथजी कानोड़िया के देहावसान की खबर मिलते ही प्रथम क्षण तो चित्त को शान्ति का अनुभव हुआ। महीने से बेहोश पड़े तकलीफ पा रहे थे। सारी यातनाओं से छूटे, इसका समाधान हुआ और मृत्युदेवका आभार माना। दूसरे ही क्षण वियोग-दुःख उभरने लगा। हर क्षण उनका ही स्मरण होने लगा।

पू० भागीरथजी से मेरे सम्बन्ध को ५० साल से ऊपर हो गये। शुरू से लेकर आज तक देख रहा हूं कि वे करुणा की मूर्ति थे। जहां भी दुःख पड़ा हो वहां उन्हें खड़ा ही पाया। राजस्थान के अनेक अकालों में उन्हें काम करते देखा। वे अध्यक्ष और बद्रीनारायणजी सोढाणी सेक्रेटरी, राजस्थान में दोनों की जोड़ी अटूट थी। बद्रीनारायणजी सोढाणी भी एक त्यागी, तपस्वी और दयामूर्ति सेवक हैं। जहां तकलीफ देखी उनका हृदय द्रवित हो जाता है। पू० भागीरथजी को केवल अकाल-राहत से संतोष नहीं था, सतत् करुणा का एवं दया का कार्य चलता रहे इसके लिये सीकर में उन्होंने पीपल्स वेलफेयर सोसायटी के नाम से एक संस्था खोली, जिसके जरिये अनेक करुणा के कार्य होते रहते हैं। भागीरथजी और सोढाणीजी इसके प्राण थे—वे अध्यक्ष और सोढाणीजी मंत्री। पू० भागीरथजी का दया के क्षेत्र में अंतिम काम कल्याण आरोग्य सदन अर्थात टी० बी० सेनोटेरियम, सीकर का रहा। इस अस्पताल का काम सोढाणीजी ने शुरू किया था। काम शुरू करते समय जिसके पास केवल दो-चार सौ की पूंजी थी, उसने तप और भक्ति के बल पर पचास लाख का सेनोटेरियम खड़ा कर दिया। सरकार की मदद तो दूर, उल्टे उसकी तरफ से कुछ कठिनाइयां ही सहनी पड़ीं। फिर भी यह मनस्वी हारा नहीं। जब अस्पताल पूरा खड़ा हो गया और सौ सवा-सौ बीमार सतत रहने लगे, सालाना लाखों का खर्च बंध गया, तब सोढाणीजी ने भगवान से सहायता की याचना की। सोढाणीजी अत्यन्त व्याकुल थे। अन्त में भगवान द्रवित हुए और पू० भागीरथजी के रूप में संस्था का सारा भार संभाला। पू० भागीरथजी का हाथ लगा और सोने में सुगन्ध आरम्भ हो गयी। आज वहाँ करीब ४०० रोगियों के लिए चारपाइयों की व्यवस्था हो गई है। ८-१० लाख के नये मकान बन गए हैं। सरकारी मदद के बिना वे सालाना ८-१० लाख रुपया दाताओं से जुटाते रहे। मृत्यु के पूर्व भागीरथजी अपने पुत्र को कल्याण आरोग्य सदन को पाँच लाख रु० देने को कह गये। पुत्र भी वैसे मनस्वी और दानवीर निकले कि ५ के बदले १५ लाख रुपये दिये।

राजस्थान में १९३९ में जयपुर सत्याग्रह का काम चला। प्रजामण्डल के कुल पदाधिकारी और संचालक मण्डल के सदस्य जेल भेज दिये गये तब मुझे सत्याग्रह

का संचालक बनाया गया था। मैं तो बहुत छोटा था, लेकिन जिन बुजुर्गों ने सत्याग्रह को चलाया और सहायता की, उनमें पू० भागीरथजी का नाम अग्रणी था। सभी जानते हैं राजस्थान में पानी का अभाव रहा है और आज भी है। दो करोड़ रु० के कुए बनाने की योजना बनी तो भागीरथजी और सोढाणीजी ने उसका काम सम्भाला।

कलकत्ते में भागीरथजी कानोड़िया और सीतारामजी सेकसरिया दोनों की राम-लक्ष्मण की सी जोड़ी थी। उम्र में सीतारामजी कुछ बड़े हैं फिर भी दोनों एक दूसरे का पूरा आदर रखते थे। दोनों के विचारों में थोड़ी भिन्नता भी थी। फिर भी सेवा-कार्य में और प्रेम सम्बन्ध में सूर्य-चन्द्र की तरह यह जोड़ी कलकत्ते के आकाश में सदा चमकती रही। इन दोनों की बनायी अनगिनत संस्थाएं कलकत्ता में फली-फूली हैं।

सर्व सेवा संघ, गो सेवा संघ के वास्ते अनेक बार चन्दा मांगने के लिये कलकत्ता गया हूं और सदा ही इस जोड़ी ने मदद की। पू० काकाजी (जमनालालजी बजाज) के जाने के बाद उनके स्थान पर चाचाजी के रूप में मैंने श्री सीतारामजी सेकसरिया, घनश्यामदासजी बिड़ला, भागीरथजी कानोड़िया और जयदयालजी डालमियां को माना। भागीरथ चले गये, बाकी तीनों की शक्ति क्षीण हो रही है। गाय की मदद में नई पीढ़ी आ रही है। श्री विष्णुहरि डालमियां, श्री माधोप्रसादजी बिड़ला, मदद देंगे। पू० भागीरथजी से प्रार्थना करने का मौका मिला नहीं, लेकिन मुझे भरोसा है उनके सुपुत्रों में से कोई न कोई गाय की मदद में आयेगा ही।

पू० भागीरथजी सर्व मित्र थे। करोड़पति होते हुए भी कार्यकर्ताओं के साथ बराबरी में बैठ कर बातें कर सकते थे। उनकी न्यायप्रियता की इतनी साख थी कि बड़ी-बड़ी पार्टियां आपस के झगड़ों में उन्हें पंच बनाती थी। पंचायत करना भी उनके कार्य का एक बड़ा हिस्सा हो गया था। वे अजातशत्रु थे। जीवन में किसी का बुरा नहीं चाहा। जितना बन सका भला ही किया। सारे भारत में उनकी सहायता से पनप रही संस्थाएं एवं कार्यकर्ता लहरा रहे हैं।

एक बात और भी कह दूं कि शक्तिशाली पुरुष हो और बड़ी-बड़ी सेवाएं जिसके हाथ से हुई हो ऐसे पुरुषों में कुछ न कुछ अहंकार और क्रोध प्रगट होता ही है, लेकिन यह महापुरुष ऐसा देखा जिसे अहंकार या क्रोध छू भी नहीं सका। सदा नम्रता की मूर्ति रहे। इस बारे में भागीरथजी को लोकनायक जयप्रकाशजी का अनुयायी कह सकते हैं, जैसे लोकनायक में अतीव कार्य-शक्ति होते हुए भी अत्यधिक नम्रता थी वैसी ही भागीरथजी में भी थी।

ऐसे महामानव को प्रभु शांति देगा ही। प्रभु से नम्र प्रार्थना है कि देवी स्वरूप चाचीजी, बच्चे, परिवार तथा विशाल मित्र परिवार को सांत्वना दे और उनके सद्गुणों को ग्रहण करने की शक्ति दे।

—: ० :—

हिन्दी के सबसे वरिष्ठ पत्रकार, इतिहास वेत्ता
पंडित झाबरमल्ल शर्मा

कीर्तिः यस्य स जीवति

परमोदार, परोपकार-परायण बाबू भागीरथजी कानोड़िया की याद उनके वियोगजन्य दुख को द्विगुणित कर रही है। कलकत्ते में होनेवाले प्रायः सभी शुभानुष्ठानों में उनका और उनके अभिन्न मित्र बाबू सीतारामजी सेकसरिया का प्रत्यक्ष या परोक्ष सहयोग रहता था। चाहे वह कार्य साहित्यिक, राजनैतिक अथवा समाज सेवा-परक, कैसा ही क्यों न हो। स्वर्गीय बाबू बालमुकुन्दजी गुप्त का स्मृति महोत्सव उनके स्वर्गवास के ४२ वर्षों के बाद समायोजित किया गया था और जिसके मंत्रित्व का भार मेरे दुर्बल कन्धों पर था और जिसका सभापति-पद अलंकृत करने के लिए राजर्षि बाबू पुरुषोत्तमदासजी टण्डन पधारे थे; उस महोत्सव की सम्पन्नता में बाबू भागीरथजी और बाबू सीतारामजी का हार्दिक सहयोग मिला था। इसके लिए बाबू बालमुकुन्दजी गुप्त के आत्मीय जनों की ओर से गुप्तजी के ज्येष्ठ पुत्र बाबू नवलकिशोरजी गुप्त ने विशेष कृतज्ञता ज्ञापित की थी।

मुझे मालूम है कि जिस वनस्थली विद्यापीठ की स्थापना कर पण्डित हीरालालजी शास्त्री से राजस्थान की गरिमा बढ़ायी, कई वर्षों तक बाबू भागीरथजी ने स्वयं सहायता दे कर एवं अपने मित्रों से दिलाकर संस्था का व्यय-भार वहन किया था। संस्था के द्वारा कोई विशेष कार्य करने की जब आवश्यकता अनुभव करते, तभी पं० हीरालालजी शास्त्री कानोड़ियाजी के पास पहुंच जाते और इच्छित धन-राशि प्राप्त कर प्रत्यावर्तित होते। कानोड़ियाजी का निवास स्थान देशभक्तों एवं सेवाभावी कार्यकर्ताओं के लिए सदा खुला रहता था।

दो पार्टियों के झगड़े मिटाने, बंटवारे के लिए भाई-भाई का पारस्परिक मनमुटाव मिटा कर सद्भाव स्थापित करने के निमित्त वे दोनों पार्टियों की सहमति से मध्यस्थ बनाये जाते थे और आपके किये हुए निर्णायक फैसले आपस में बंटवारे के लिए झगड़नेवाले निष्पक्ष मान कर सन्तुष्ट होते थे और यों अदालती खर्च और वकीलों की भारी फीस से उभय पक्ष बच जाते और भाइयों तथा पार्टियों को लड़ानेवाले चकित हो जाते।

निस्संदेह स्वर्गीय बाबू भागीरथजी कानोड़िया एक प्रकृत देशभक्त और सेवा भावी समाज हितकारी के रूप में सदा स्मरण किये जायेंगे। उनकी कीर्ति की धवल ध्वजा सदैव फहराती रहेगी—कीर्तिःयस्य स जीवति। मैं हार्दिक प्रेम के साथ स्व० श्री भागीरथजी कानोड़िया के प्रति सादर अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं।

—:०:—

राजस्थानी एवं जैन साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान

श्री अगरचन्द नाहटा

भारतीय संस्कृति के आराधक एवं पोषक

भारतीय संस्कृति में संस्कारों को बहुत महत्व दिया गया है। गर्भाधान से लेकर मृत्यु पर्यन्त के अनेक संस्कारों का विधान हमारे ग्रन्थों में पाया जाता है। वे चाहे औपचारिक रूप से हों, पर संस्कार बहुत प्रभावशाली होते हैं। सारा जीवन उनसे प्रभावित होता रहता है। बाल्यकाल में जो संस्कार दिये जाते हैं या पड़ते हैं वे एक तरह से स्वभाव से बन जाते हैं। प्राचीन काल से इस पर बहुत जोर दिया गया है कि कुसंस्कारों से बचा जाय और सुसंस्कारों को दृढ़ीभूत किया जाय। वैसे तो वास्तव में संस्कार का अर्थ ही है—परिशुद्धि। और जीवन में शुद्धि और संशोधन की बहुत बड़ी आवश्यकता है। भारतीय संस्कृति में भागीरथी का नाम बड़ा प्रसिद्ध है, क्योंकि भगीरथ द्वारा लाये जाने के कारण पवित्र गंगा नदी का नाम 'भागीरथी' पड़ा। कानोड़ियाजी का नाम भागीरथ भी भारतीय संस्कृति का द्योतक है।

स्वर्गीय श्री भागीरथजी कानोड़िया भारतीय संस्कृति के महान पोषक थे। अनेक सद्गुण उनके रोम-रोम में व्याप्त हो गये थे। दूसरों की भलाई करना, यह उनका जीवन-आदर्श था। 'सादा जीवन और उच्च विचार' के वे जबरदस्त प्रतीक थे। कलकत्ता जाने पर उनसे कई बार मेरा मिलना हुआ। राजस्थानी भाषा और संस्कृति के प्रति उनका अनूठा लगाव था। राजस्थानी कहावतों और लोक-कथाओं के वे अच्छे जानकार थे। उन्होंने इन दोनों का काफी अच्छा संग्रह किया एवं ग्रन्थ रूप में उनका प्रकाशन भी हो चुका है। राजस्थानी भाषा और साहित्य के सम्बन्ध में मेरी उनसे बातचीत हुई और लिखा पढ़ी भी। इसमे उनका इस विषय में बड़ा भारी आकर्षण प्रतीत हुआ। उनके जैसे आदर्श व्यक्ति बहुत बिरले ही मिलते हैं। अच्छे कार्यों में वे सदा सभी को सहयोग देते रहते थे। अच्छे-अच्छे ग्रन्थों को मंगाकर पढ़ते रहना, उनका व्यसन-सा हो गया था। व्यक्ति रूप में भी वे स्वयं बहुत गुणी और गुणीजनों का आदर करनेवाले थे। निश्छल और निरभिमानी व्यक्तियों में वे उल्लेखनीय थे ही, व्यापार में भी उन्होंने खूब सफलता प्राप्त की। जो भी उनके सम्पर्क में आया, वह उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहा। जन-सेवा के क्षेत्र में भी उन्होंने बहुत अच्छा काम किया। ऐसे व्यक्तियों से हम सभी को प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिए। उनके चालू किये हुए कामों को पूरा करने का प्रयास किया जाय। उनकी भावना को मूर्त रूप दिया जाय, यही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

राजस्थानी लोक-कथाओं सम्बन्धी अपना ग्रन्थ उन्होंने मुझे भेजा और मुझे वह ग्रन्थ बहुत ही अच्छा और उपयोगी लगा। उनकी सेवा की सुगन्ध आज भी सर्वत्र प्रसारित हो रही है। ऐसे गुणी व्यक्तियों के स्मरण एवं अनुकरण से हमारा जीवन अवश्य ही गौरवमय बन सकता है।

संत-साहित्य मर्मज्ञ,

हरिजन सेवक संघ के अध्यक्ष

श्री वियोगी हरि

यशस्वी जीवन

सन्मित्र, मृदुभाषी, उदारमना और सदा सेवा-तत्पर—ऐसे थे भागीरथ कानोड़िया। जीवन उनका कर्तव्यनिष्ठ और सात्विक था। उनके इन सद्गुणों की याद बार-बार आती है। जब-जब मैं कलकत्ता जाता था, उनसे विना मिले नहीं रहता था।

कलकत्ते में सबसे पहले श्री महावीरप्रसाद पोद्दार ने उनसे मेरा परिचय कराया था। यह परिचय बहुत जल्दी आत्मीयता में परिणत हो गया। यह बात कोई १९२२ या १९२३ के आसपास की है। बहुत पहले भागीरथजी जकरिया स्ट्रीट (कलकत्ता) पर स्थित बिड़ला-हाउस में रहा करते थे। उनके साथ तभी मैं दो या तीन बार ठहरा था। बाद में बालीगंज के मकान में भी, जहां तक स्मरण है, मैं दो बार उनके साथ रहा था। आतिथ्य उनका कभी भूला नहीं जा सकता। हर सुविधा का वे और उनके परिवार के लोग पूरा ध्यान रखते थे।

भागीरथजी ने ही सबसे पहले मुझे श्री घनश्यामदास बिड़ला से मिलाया था, १९३१ में। उसके बाद 'हरिजन सेवक-संघ' के साथ मेरा सम्बन्ध होने के कारण बिड़ला पार्क में, कभी अलीपुर के बिड़ला-हाउस में और कभी बिड़ला-निकेतन में ठहरने लगा। तब अक्सर मुझे उनके यहां जाने पर मीठा उलाहना मिलता था।

हरिसन रोड (अब महात्मा गाँधी मार्ग) पर जब उन्होंने और उनके सहयोगियों ने 'शुद्ध खादी भण्डार' का उद्घाटन गांधीजी से कराया था, उस दिन सद्भाग्य से मैं उन्हीं का मेहमान था और मैंने बापू के हाथ से कुछ खादी भी खरीदी थी। खादी के प्रति भागीरथजी की निष्ठा जीवन के अन्तिम क्षण तक वैसी ही बनी रही। यों तो सभी लोक-सेवा के कार्यों और रचनात्मक कार्यों में भागीरथजी तन, मन और धन से रस लेते थे, परन्तु हरिजन-सेवा के कार्य के प्रति उनके हृदय में कुछ विशेष प्रेम था। कलकत्ता की हरिजन बस्तियों में वे जाते थे और कुछ-न-कुछ सेवा-कार्य वहां स्वयं करते और दूसरों से कराते थे। राजस्थान-हरिजन-सेवक-संघ का अध्यक्ष जब उनको नियुक्त किया गया, तो हमारे कार्य को विशेष बल और प्रेरणा उनसे मिली। कई वर्ष पहले जब उन्होंने प्रादेशिक हरिजन-सेवक-संघ की अध्यक्षता छोड़ देने की बात सोची, तब मैंने उनसे अनुरोध किया कि चाहे और कार्यों को वे छोड़ सकते हैं, परन्तु हरिजन-कार्य को नहीं

छोड़ना चाहिए। उन्होंने मेरा अनुरोध मान लिया और कई वर्ष तक अध्यक्ष बने रहे और अपना अनुकरणीय सहयोग संघ को देते रहे।

भागीरथजी के साथ रचनात्मक कार्यों और साहित्य पर, विशेषकर राजस्थानी साहित्य पर, चर्चा करते हुए बड़ा आनन्द आता था। उद्योग और व्यापार के आवश्यक कार्यों में से समय निकाल कर वे राजस्थानी साहित्य पर कुछ-न-कुछ लिखते रहते थे। पढ़ने का उनको व्यसन था।

'सस्ता साहित्य मण्डल' के वर्षों सभापति-पद पर रह कर भागीरथजी ने मण्डल के कार्य का मार्ग-दर्शन किया था। 'मण्डल' के दिवंगत मंत्री श्री मार्तण्ड उपाध्याय तथा वर्तमान मन्त्री श्री यशपाल जैन जब-जब कलकत्ते जाते थे, उन्हीं के निवास-स्थान पर ठहरते थे और उनसे अच्छा योगदान उनको मिलता था।

सब प्रकार से भागीरथजी का जीवन यशस्वी और अनुकरणीय था। उनके अनेक संस्मरण अमूल्य निधि के रूप में सदा संचित रहेंगे।

—: ० :—

हिन्दी के वरिष्ठ लेखक और पत्रकार

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी

अर्पण ही अर्पण

"विशाल भारत" का सम्पादन करने के लिए मैं ३० अक्तूबर, सन् १९२७ को कलकत्ता पहुंचा था और १० अक्तूबर, १९३७ तक वहां रहा। इन १० वर्षों के बीच मुझे भाई भागीरथजी कानोड़िया तथा बन्धुवर सीतारामजी सेकसरिया से मिलने का सौभाग्य बीसियों बार ही प्राप्त हुआ होगा। ये दोनों ही सज्जन मेरे यजमान थे और मेरे अनेक यज्ञों में इन्होंने भरपूर सहायता भी दी थी। इन दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध इतना सुदृढ़ था कि मैं उनमें कोई भेद नहीं कर पाता था।

शान्तिनिकेतन के "हिन्दी भवन" का प्रारम्भ यद्यपि भाई सेकसरियाजी के ५०० रु० के अनुदान से हुआ था, तथापि उसे पूर्ण किया कानोड़ियाजी ने।

दीनबन्धु ऐण्ड्रयूज विश्राम करने के लिए शान्तिनिकेतन से इलाहाबाद जा रहे थे। मैंने उनसे प्रार्थना की कि वे कलकत्ता में एक दिन रुक जाएं, ताकि मैं 'हिन्दी भवन' के लिए चन्दा कर सकूं। वे इस काम के लिए सहर्ष राजी हो गए। बोलपुर से वे कलकत्ता शाम को पहुंचे और मैं स्टेशन से उन्हें सीधे भाई भागीरथजी कानोड़िया के घर पर ले गया। भागीरथ भाई को इसकी कोई पूर्व सूचना नहीं थी, इसलिए वे कुछ सकपका गए और बड़े संकोच के साथ उन्होंने कहा, 'आपने इन महापुरुष को यहां आने का कष्ट क्यों दिया ?' मैंने उत्तर में कहा, 'हम लोग शान्तिनिकेतन में हिन्दी भवन तैयार करना चाहते हैं। उसके लिए दो हजार रुपये की आवश्यकता है। आपसे प्रार्थना है कि आप तदर्थ एक हजार रुपये दें।' भाई कानोड़ियाजी ने कहा, 'मैं सहर्ष पांच सौ रुपये दे सकता हूं।' हम लोगों ने उन्हें धन्यवाद दिया और दीनबन्धु ऐण्ड्रयूज ने उनसे अनुरोध किया कि वे शान्तिनिकेतन में 'हिन्दी भवन' बनाने में भरपूर मदद करें।

तत्पश्चात मैं ऐण्ड्रयूज साहब को भाई सेकसरियाजी के यहां ले गया। उन्हें भी कोई पूर्व सूचना नहीं थी। जब उन्होंने श्री ऐण्ड्रयूज को अपने मकान के नीचे देखा तो शीघ्र ही आकर मुझसे पूछा, 'इन महापुरुष को क्यों तंग किया ?' मैंने कहा कि ये स्वयं ही आपको धन्यवाद देने आए हैं क्योंकि आप 'हिन्दी भवन' के लिए पांच सौ गुरुदेव को दे आए हैं। इस पर सेकसरियाजी ने कहा, 'धन्यवाद की तो कोई जरूरत नहीं थी। पर मैं अपने घर से इन्हें खाली हाथ वापस नहीं भेज सकता। दो सौ रुपये और लेते जाइए।' हम लोगों को इससे बड़ा हर्ष हुआ।

आगे चल कर भागीरथ भाई ने चौंतीस हजार रुपये की लागत से पक्का 'हिन्दी भवन' शान्तिनिकेतन में बनवा दिया। यह पैसा उन्होंने 'हलवासिया ट्रस्ट' से

दिलवाया था। आगे चल कर तो मारवाड़ी मित्रों से लाख-सवा लाख से भी ऊपर रुपया 'हिन्दी भवन' को मिला।

साहित्याचार्य पं० पद्मसिंह शर्मा का जब स्वर्गवास हुआ तो मैंने ढाई सौ रुपये भागीरथ भाई से ले कर पालीवालजी के 'सैनिक' को भेज दिये थे और उन्होंने 'सैनिक' का एक पद्मसिंह अंक निकाल भी दिया था।

आर्थिक संकट के समय मेरी प्रार्थना पर भाई सीतारामजी तथा कानोड़ियाजी में पांच हजार रुपये प्रवासी प्रेस को उधार दे दिये थे, जो मुश्किल के साथ चुक पाए।

सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी आसामी बाबू तथा साम्यवादी कार्यकर्ता तैयब शेख के लिए मैंने कुछ मदद भागीरथ भाई से ली थी। जब स्व० माखनलाल चतुर्वेदी को मैंने शान्तिनिकेतन की यात्रा कराई थी उस समय भी भागीरथ भाई ने उन्हें पांच सौ रुपये दिये थे।

एक बार मेरे मन में यह विचार आया, कि चार सौ रुपये का हिन्दी टाइप खरीद लिया जाय और प्राइवेट तौर पर कम्पोजीटर रख कर पुस्तकें कम्पोज कराई जाएं। यह विचार मैंने भागीरथ भाई के सामने रखा। उन्होंने तुरन्त चार सौ रुपये दे दिये। दुर्भाग्य से उन्हीं दिनों मेरे बहनोई श्री कामताप्रसादजी बहुत अस्वस्थ हो गये थे और वे चार सौ रुपये उनकी बीमारी में खर्च हो गए। वे बचाए न जा सके और उनका स्वर्गवास हो गया।

भागीरथ भाई बड़े सहृदय व्यक्ति थे। एक बार प्रसंगवश मेरे मुंह से निकल गया था, 'उन दिनों मेरी आर्थिक स्थिति इतनी खराब थी कि दही लाने के लिए घर में दो पैसे भी न थे।' कई वर्ष बाद भागीरथ भाई ने मुझे उस बात की याद दिलाई तब मुझे आश्चर्य हुआ।

जब 'हिन्दी भवन' के उद्घाटन के लिए पं० जवाहरलालजी नेहरू शान्ति-निकेतन पधारे थे, मैं कलकत्ता में ही था, पर अपने उस स्वप्न को पूरा देखने के लिए मैं शान्तिनिकेतन नहीं गया। बात यह हुई कि कांग्रेस ने पच्चीस रुपये मासिक की आर्थिक सहायता बन्द कर दी थी और इस कारण मैं बहुत उद्विग्न था। पर मैं स्टेशन जरूर गया था। उस समय भागीरथ भाई ने कहा था, "आप शान्तिनिकेतन नहीं चल रहे, जबकि 'हिन्दी भवन' आपने ही बनवाया है। बिना दूल्हे की बारात कैसी ?"

साम्प्रदायिक एकता के लिए जब मैंने ट्रैक्ट छपवाने शुरू किये तो उनका व्यय कानोड़ियाजी तथा सेकसरियाजी ने ही दिया था।

यह मुझे पता था कि अनेक क्रान्तिकारियों को भागीरथ भाई से मदद मिलती थी, जिसका हाल किसी को मालूम न था। बंगाल में जब भयंकर अकाल पड़ा था तब रिलीफ कमेटी के वे ही मन्त्री बनाए गए थे, क्योंकि यह काम बड़ी जिम्मेदारी का था।

दो वर्ष पहले की बात है, मुझे एक सहायक की जरूरत हुई और मैंने यह बात कानोड़ियाजी को लिख भेजी। उन्होंने तुरन्त ही सालभर के लिए चौबीस सौ रुपये भेज दिये। एक कहावत के अनुसार उनका बांया हाथ भी नहीं जानता था कि दाहिना हाथ किसकी मदद कर रहा है।

एक बार जब वे दिल्ली में बिड़ला हाउस में ठहरे हुए थे, उन्होंने मेरी मुलाकात श्रद्धेय घनश्यामदासजी बिड़ला से करा दी थी और दिल्ली के 'हिन्दी भवन' के लिए एक हजार रुपये दिलवा दिये थे। उनकी सब सहायताओं का उल्लेख करने के लिए यहां स्थान नहीं है।

कानोड़ियाजी के अन्तिम दर्शन मुझे तीन-चार वर्ष पहले रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली में हुए थे। वे पालम हवाई अड्डे से कलकत्ता जा रहे थे और रास्ते में मुझसे मिलने के लिए भाई यशपाल जैन के साथ मेरे निवास-स्थान पर पधारे थे। भाई गोविन्दप्रसाद केजरीवाल उस समय मेरे यहां मौजूद थे। वे भी कानोड़ियाजी के प्रशंसकों में हैं।

मेरा और गोविन्दप्रसादजी का यह विचार हुआ कि भागीरथ भाई को एक अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया जाना चाहिए और हम दोनों ने अलग-अलग चिट्ठियां इस विषय में लिखीं और दोनों को ही उन्होंने नकारात्मक उत्तर दिए।

यदि उन सब उपकारों का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया जाय, जो भागीरथ भाई ने मेरे ऊपर किये थे तो पाठक ऊब जायेंगे, इसलिए संक्षेप में ही उनका जिक्र करूंगा।

दक्षिण भारत में हिन्दी-प्रचार का जो कार्य हो रहा था, उसे देखने के लिए मुझे कर्नाटक की यात्रा करनी पड़ी थी और उसके लिए डेढ़ सौ रुपये मार्ग-व्यय के लिए कानोड़ियाजी ने ही दिये थे। मैंने दोनों ओर से थर्ड क्लास में ही सफर किया था। इसी प्रकार छपरा जिले की यात्रा के लिए कानोड़ियाजी ने डेढ़ सौ रुपये दिये थे।

जैसा कि मैं लिख चुका हूं, मैं इन दोनों भाइयों में कोई भेद नहीं कर पाता था। किसी एक की सहायता की मैं दोनों की सम्मिलित सहायंता ही मानता था। रामानन्द चटर्जी स्मृति-ग्रन्थ (अंग्रेजी) के लिए छत्तीस सौ रुपये उन्हीं के व्यय हुए और वह बिना मूल्य वितरित किया गया। विश्वभारती (शान्तिनिकेतन) का भी रामानन्द अंक भाई श्यामसुन्दरजी खत्री तथा डाक्टर रामसिंह तोमर की कृपा से निकल गया था।

जब मैं बारह वर्ष तक संसद की सदस्यता करके घर लौटा तो मेरे पास बैंक में तेरह सौ छियालीस रुपये थे, जिनमें एक हजार रुपये सीतारामजी सेकसरिया द्वारा भेजे गये थे। पिछले पचास वर्षों में मेरे द्वारा जो छोटे-मोटे साहित्यिक यज्ञ किये गए हैं, उनमें किसी-न-किसी प्रकार की आर्थिक सहायता इन दोनों भाइयों से बराबर मिलती रही है और यह मदद सर्वथा निःस्वार्थभाव से ही उन्होंने की है। स्वर्गीय नवीनजी की एक कविता है :

'अरे, समुद अर्पण ही अर्पण
यह जीवन का क्रम है
और ग्रहण में मृत्यु निहित है
प्रतिफल केवल भ्रम है।'

यही इन दोनों का मूलमंत्र रहा है।

कलकत्ते में 'भारतीय भाषा परिषद' की स्थापना का भागीरथजी का कार्य एक बड़ा कार्य है। बंगाल में राष्ट्रीय एकता के काम करने के लिए यह एक ठोस कदम है।

राजस्थान में क्षय रोग की रोक-थाम के लिए चिकित्सालय की स्थापना भागीरथ भाई का अन्तिम स्वप्न था, जिसे वह अपने जीवन-काल में सानन्द सम्पन्न करा गये। यदि भागीरथ भाई चाहते तो कारपोरेशन, विधान-सभा या संसद के सदस्य बनना उनके लिए आसान था, पर उस दिशा में उनकी कोई आकांक्षा नहीं थी। उनके प्रिय कार्यों को हम लोग पूरा करें, यही उनका सर्वोत्तम स्मारक होगा।

भाई भागीरथजी ने अपने निवास स्थान के निकट ही तुलसी लाइब्रेरी कायम कर दी थी जिस पर उनका लगभग ४०-५० हजार रुपया व्यय हुआ होगा। उस पुस्तकालय के लिए अंग्रेजी ग्रन्थ चुनने का काम मेरे सुपुर्द था और भाई धवलेजी हिन्दी ग्रन्थों का चयन करते थे। पुस्तकालय बड़े सुचारु रूप से चल रहा था कि १९४६ में कलकत्ता में साम्प्रदायिक दंगा हुआ और गुण्डों ने उस पुस्तकालय में आग लगा दी जिससे वह जल कर भस्म हो गया। भाई भागीरथजी ने इस दुर्घटना को बड़े धैर्यपूर्वक सहा और अपना मानसिक सन्तुलन कायम रखा।

जब-जब मैं तुलसी पुस्तकालय की याद करता हूं, मेरे मन में एक हूक-सी उठती है। मैंने भी अपने कुछ श्रेष्ठ ग्रन्थ उस पुस्तकालय को बेच दिये थे। वे भी जल गए। उक्त पुस्तकालय की एक पुस्तक Rebels and Renegades अकस्मात् मेरे यहां पड़ी रह गई। वह उस पुस्तकालय की याद दिलाती है। भाई भागीरथजी के हृदय में मुसलमानों के प्रति कोई विद्वेष नहीं था। वे भलीभांति समझते थे कि अवांछनीय व्यक्ति किसी धर्म विशेष के अनुयायी नहीं होते।

—: ० :—

वरिष्ठ लेखक, सन्त साहित्य-मर्मज्ञ
श्री सीताराम चतुर्वेदी

भावुक सन्त

श्री भागीरथजी कानोड़िया के आकस्मिक निधन का समाचार पा कर मुझे सहसा बड़ी बेचैनी हो उठी थी, क्योंकि उनके रुग्ण होने का समाचार मुझे मिल नहीं पाया था। मैं भी संयोगवश सब कुछ छोड़-छाड़ कर एकान्तवास और आत्मचिन्तन करने लगा था। उसी अवस्था में कलकत्ते के श्री शान्तिस्वरूप गुप्त के पत्र से यह समाचार मिला कि वे दिवंगत होकर कीर्तिशेष रह गए हैं।

श्री भागीरथजी उन थोड़े से गुणग्राही, उदार, स्नेहशील और सेवाभाव-पूर्ण सत्पुरुषों में से थे, जिन्होंने जीवन भर लोक-सेवा करते हुए अधिक से अधिक लोक-मंगल सम्पन्न करने में अपना समय और पुरुषार्थ लगाया। मुझसे उनका परिचय कलकत्ते में ही श्री सीतारामजी सेकसरिया के यहां बहुत पहले हुआ था और वहीं मुझे ज्ञात हुआ कि कलकत्ते के मारवाड़ी समाज में व्याप्त कुप्रथाओं को दूर करने में जिन विचारशील पुरुषों का हाथ है, उनमें श्री भागीरथजी प्रमुख हैं।

इसके पश्चात् जिन दिनों मैं कलकत्ते में बिनानी विद्या मन्दिर का अधिष्ठाता था, उन दिनों प्रायः किसी सभा में अथवा विक्टोरिया पर भागीरथजी से दूसरे-तीसरे दिन भेंट होती रहती थी। सम्वत् २०३० में जब यह घोषणा हुई कि सम्वत् ३१ में मानस चतुश्शताब्दी मनाई जा रही है और काशी की अखिल भारतीय विक्रम परिषद ने गोस्वामी तुलसीदास के ग्रन्थों का सम्पादन और टीका करने का भार मुझ पर डाला और १४००-१४०० पृष्ठों के दो खण्ड परिषद ने १०-१० रुपये में पूर्व-ग्राहकों को देना शुरू किया, तब एक दिन अचानक उनका एक पत्र मुझे मिला कि १० रुपये में रायल साइज की १४०० पृष्ठों की पुस्तक दे कर आपको कैसे पोसाता है? मैंने उत्तर में उन्हें लिखा कि न तो सम्पादकों में से ही कोई किसी प्रकार का पारिश्रमिक लेता है, न अन्य सहयोगी ही किसी प्रकार के आर्थिक पोषण की अपेक्षा रखते हैं। इस उत्तर से सम्भवतः वे बहुत अधिक प्रभावित हुए और उन्होंने इसकी चर्चा अपनी मित्र-मण्डली में भी की। जब सूर-पंचशती मनाने का निश्चय हुआ तब सूर के ग्रन्थों का सम्पादन और टीका का भार संयोगवश मुझे ही सौंप दिया गया क्योंकि अंग्रेजी कहावत है—'रिवार्ड फॉर वर्क इज मोर वर्क' (काम करने का पुरस्कार है और अधिक काम करना)। संयोगवश हमारी परिषद में हिसाब-किताब जाननेवाला कोई वणिक् बुद्धिवाला व्यक्ति नहीं था और इस विषय में ब्राह्मण सदा पोंगा होता है। इसी कारण हम लोग पूरी सूर-ग्रन्थावली के व्यय का अनुमान नहीं लगा सके। परिणाम यह हुआ कि तीन खण्ड तो हम लोगों ने राम-राम करके निकाल दिये किन्तु चौथा-खण्ड बहुत विराट (लगभग १५०० पृष्ठों का) हो गया, सम्पादकगण भी यथाशक्ति तन-मन के साथ धन लगा कर त्रस्त हो गए किन्तु ग्रन्थ का रूप सुरसा का मुख बन कर बढ़ता चला जा रहा था। हम लोगों में से कोई भी पवन-तनय के समान बल-बुद्धि-निधान नहीं था इसलिए सबने कन्धा डाल दिया, क्योंकि परिषद के

नियम के अनुसार न तो किसी से चन्दा लिया जा सकता था न ही उधार। मैंने सारी स्थिति श्री भागीरथजी को लिख भेजी और साथ ही यह भी लिखा कि यदि कोई इस शर्त पर आर्थिक सहयोग दे कि हम उसके बदले परिषद की दुगने मूल्य की पुस्तकें उसे दे सकें, तो उन्होंने तत्काल एक सहस्र रुपये स्वयं और दो सहस्र रुपये श्री शान्तिस्वरूपजी गुप्त के द्वारा भिजवा दिये और किसी-न-किसी प्रकार चतुर्थ खण्ड भी प्रकाशित कर दिया गया। फिर भी बहुत सी आवश्यक सामग्री शेष रह गई और मैंने श्री भागीरथजी, श्री नन्दलालजी टांटिया, श्री नथमलजी भुवालका, श्री रामकुमारजी भुवालका तथा श्री शान्तिस्वरूपजी गुप्त को लिखा कि आपके सहयोग से सुई की नोक से ऊंट तो निकल गया पर पूंछ अटकी रह गई। इन सभी मित्रों ने ६०-५० प्रतियों का पूर्व-ग्राहक बन कर पूंछ भी सुई की नाक से निकाल दी और पूरी ग्रन्थावली छप गई।

उसके अनन्तर मुझे सहसा प्रचण्ड वैराग्य हो गया और मैं सब कुछ छोड़-छाड़ कर हिमालय के पंचवटी आश्रम में मौन आत्म-चिन्तन करने लगा। इसी अवधि में श्री भागीरथजी के शरीर-पात का दुखद समाचार मिला। उनके घर का ठिकाना मुझे ज्ञात नहीं था। इसलिए मैंने अपनी सात्त्विक सम्वेदना श्री सीतारामजी सेकसरिया को लिख भेजी। श्री भागीरथजी अपना सम्पूर्ण व्यवसाय करते हुए भी मन से सत्यनिष्ठ लोक सेवक, साधु और सात्त्विक सन्त पुरुष थे—हमारे यहां सन्त के सम्बन्ध में कहा गया है कि श्रेष्ठ वंश में उत्पन्न हुए सज्जन को हम उस अच्छे वंश (बास) के बने हुए व्यजन (पंखे) के समान मानते हैं जो अपने आपको तो चक्कर में डाले रहता है किन्तु दूसरों का ताप दूर करता रहता है—

सुजनं व्यजनं मन्ये चारु-वंश-समुद्भवम्।
आत्मानं च परिभ्राम्य परतापनिवारणम्॥

एक दूसरे श्लोक में सज्जन पुरुष की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि संसार में ऐसे सन्त कितने हैं जो मन-वचन और कर्म से पुण्य के अमृत से परिपूर्ण होकर सदा तीनों लोकों को उपकार ही उपकार की श्रेणियों से तृप्त करते रहते हैं और दूसरे के छोटे से गुण को पर्वत के समान बना कर अपने हृदय में प्रसन्न हो कर खिल पड़ते हैं—

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णास्त्रिभुवनमुपकार श्रेणिभिः प्राणयन्तः।
परगुणपरमाणून्यपर्वतीकृत्य नित्य निज हृदिविकसन्तः सन्तिः सन्तः कियन्त॥

इस युग में ऐसी गुण-ग्राहकता और श्रेष्ठ कार्यों में तत्परता-पूर्ण सहायता देने की वृति कहां देखने को मिलती हैं। इस कलिकाल में जब कोई एक पैसे के लिए किसी का विश्वास नहीं करता तब उन्होंने मेरे कहने पर परिषद् के लिये ओरिएण्ट पेपर मिल से लगभग आठ हजार रुपये का कागज उधार दिला दिया था।

उनके निधन का समाचार देते हुए श्री शान्तिस्वरूपजी गुप्त ने लिखा था कि आपके सबसे बड़े प्रशंसक श्री भागीरथजी का देहावसान हो गया। तब यह समझना तो मेरे लिए कठिन हो गया कि मेरे वे किस गुण के प्रशंसक थे किन्तु यह अवश्य है कि तत्काल मैं कुछ देर के लिए आत्मलीन हो कर उस गुण-ग्राहक महापुरुष को कृतज्ञता, स्नेह और सराहना के भाव से परिपूर्ण होकर देर तक स्मरण करता हुआ सात्त्विक भावांजलि देता रहा। सत्य यह है कि उनके साथ भावुक सन्तों का युग ही समाप्त हो गया।

—:०:—

सुप्रसिद्ध उद्योगपति एवं लेखक

श्री लक्ष्मीनिवास बिरला

फल-फूल से लदा नम्र वृक्ष

दिवंगत भागीरथजी के बारे के चन्द संस्मरण लिखने का आरम्भ अपने बचपन की एक घटना से कर रहा हूं। उनका सबसे पहला परिचय उसी घटना से हुआ था। आज भी वह ज्यों की त्यों मुझे याद है।

मैं ७ साल का हुआ, तब तक प्राय: अपने नानाजी के पास ही रहता था। नानाजी के, मेरी मां को छोड़ कर, दो लड़कियां अर्थात् मेरी दो मौसियां और थीं। मां की मृत्यु तो मैं डेढ़ साल का था तभी हो चुकी थी। दूसरा सामने कोई लड़का न होने के कारण और मां की मृत्यु हो जाने के कारण नानाजी को मुझसे विशेष प्रेम था।

पिताजी कलकत्ते में अकेले ही रहते थे और छोटी मां देश रहती थी इसलिये कलकत्ते में पिताजी के साथ रहना भी सम्भव न था। इसलिये नानाजी और नानी मुझे साथ रखते थे।

स्कूल जाना मैंने शुरू कर दिया था। दशहरे पर कलकत्ता में छुट्टियां लम्बी होती हैं। ऐसी ही छुट्टी में नानाजी देवघर गये। वहां पिताजी के प्रयत्न से एक आरोग्य मन्दिर बनने जा रहा था। उस वक्त एक छोटा सा मकान बन गया था, बाकी झोंपड़ियां थी। हम लोग एक झोंपड़ी में ठहरे। भागीरथजी पिताजी के साथ उस छोटे से मकान में ठहरे थे। मैं शायद ६ साल का था।

झोंपड़ियों के सामने एक पत्थरों का ढेर लगा था और दूसरे मकानों की नींव के लिये शायद पत्थर लाये गये थे। मैं झोंपड़ी से निकल कर दौड़ता हुआ एक ढेर पर जा चढ़ा। छोटे पत्थर थे, फिसलने लगे। मेरा पांव पत्थरों में फंस गया और मैं गिरने लगा। इतने में एक मनुष्य दौड़ता हुआ आया और मुझे खींच कर निकाल कर गोदी में दूर ले गया।

दूर खड़े पिताजी ने पुकारा "भागीरथ क्या हुआ"? भागीरथजी ने हंसते हुए मुझे जमीन पर खड़ा कर दिया। यह थी मेरी पहली मुलाकात। उसके बाद की बात तो क्या लिखूं? भागीरथजी हमारे परिवार के ही सदस्य थे और हम लोग उनका पिता के समान ही आदर करते थे।

बहुत मुद्दत बाद सन् १९२७ में मैंने पाट के एक्सपोर्ट का काम उनके नीचे रह कर किया। बिरला जूट मिल का माल मैं बेचता था उसमें भी उनकी सलाह मिलती थी। विदेशों के तार आते उन्हें कोड में से उतारना भी उनसे सीखा।

उनकी रोज शाम हमारे यहां ही बीतती थी इसलिये जो भी प्रश्न मन में उठता, उन्हें पूछ लेते थे।

भागीरथजी जो काम उठाते उसे पूरी दक्षता से पूरा करते थे। प्रथम महा-युद्ध की समाप्ति के बाद व्यापार फिर चला। भागीरथजी हेसियन का निर्यात तो करते ही थे पर पाट का निर्यात भी शुरू किया। पाट जर्मनी, हालैण्ड, बेलजियम और डण्डी जाया करता था। अंग्रेजों का महायुद्ध में विजय के बाद पारा आसमान में था। हिन्दुस्तान से पाट का एक्सपोर्ट करनेवालों में सबसे ऊपर रैली ब्रादर्स थे। वह लन्दन में पाट की बाल्टिक एक्सचेन्ज के मेम्बर थे इसलिये उन्हें बेचने में सुभीता था। हम लोगों को हिन्दुस्तानी होने के नाते बाल्टिक एक्सचेन्जवाले अपना मेम्बर नहीं बनाते थे। हमें काम करने के लिये दलाली देकर दूसरे मेम्बर का सहारा लेना पड़ता था।

इतनी बाधाएं होते हुए भी भागीरथजी ने पाट का निर्यात शुरू किया तो रैली ब्रादर्स को भी उनका लोहा मानना पड़ा। चाहे व्यापार हो, या सामाजिक काम, चाहे हरिजन बस्ती का काम हो या राजस्थान में सिंचाई के कुओं का, चाहे रघुमल चैरिटी ट्रस्ट का काम हो या सस्ता साहित्य मण्डल का काम, सब कामों में वे लगन से जुटते थे और उन्हें आगे बढ़ाते थे। 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के समय थोड़े दिनों के लिये भागीरथजी जेल भी हो आये।

राजस्थानी साहित्य से भी उन्हें प्रेम था और उसका स्वरूप "बहता पानी निर्मला" तथा गोविन्द अग्रवाल के साथ प्रकाशित "राजस्थानी कहावतों का कोश" में मिला। कहते हैं फूल-फल से लदा वृक्ष झुका रहता है। ऐसे ही थे भागीरथजी। समाज में उनका विशिष्ट स्थान था और अपने आप में वह एक संस्था ही बन गये थे। नई पीढ़ी को देने के लिये उनके पास बहुत कुछ था और वह उन्होंने दिल खोल कर दिया। भागीरथजी जैसे लोग बहुत कम होते हैं।

—: ० :—

हलवासिया ट्रस्ट के ट्रस्टी, स्व० भागीरथजी के सहयोगी
श्री पुरुषोत्तमदास हलवासिया

आदमी होना बड़ा दुश्वार है

"वहता पानी निर्मला" को प्रकाशित करने के लिये संकलित कहानियों का टाइप किया हुआ प्रायः ५० पृष्ठों का संग्रह मुझे देते हुए श्री कानोड़ियाजी ने कहा, "इसे देख कर, कहीं पाठ-भेद हो तो वताना।" कुछ समय उस पर चर्चा हुई और फिर स्मृति के रूप में संजोई कई शिक्षाप्रद कहानियों का उल्लेख करते हुए मुझसे किसी उल्लेखयोग्य प्रसंग के विषय में मेरे विचार पूछे। मैंने जव धर्मराज युधिष्ठिर और यक्ष के संवाद की चर्चा की, तो उन्होंने कहा राजस्थान में इसके संदर्भ में एक और प्रसंग यह भी है कि यक्ष के प्रश्नों का उत्तर देने के बाद युधिष्ठिर ने भी अपनी कई शंकाओं का समाधान करने के लिये यक्ष को कहा। ये शंकाएं युधिष्ठिर द्वारा मार्ग में आते हुए देखे गये दृश्यों के वारे में थीं, जिनसे वह आश्चर्यचकित हुए थे। यक्ष ने युधिष्ठिर को समझाते हुए कहा था कि वे सारे लक्षण कलियुग के आगमन के हैं। प्रसंग संभवतः सभी जानते होंगे—बाड़ द्वारा खेत को उदरस्थ करना, मूल कुएं का स्रोत सूख जाने पर उसके द्वारा पोषित कुओं का असहयोग, गाय द्वारा जन्मजात बछिया का दूध पीना आदि। उन दिनों यही एक लगन थी कानोड़ियाजी को, अपनी स्मृति को पुनर्जीवित कर समाज के सामने रखने की।

यद्यपि मेरी आयु और विचारों में उनसे डेढ़ पीढ़ी का अन्तर था—मैं पीढ़ी १२ वर्ष की मानता हूं—यद्यपि विचार-साम्य की दृष्टि से उनका स्नेह मुझ पर साहित्यिक और सार्वजनिक क्षेत्र के कार्यों में समता का वोध कराता था।

वे राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ से मेरे सम्बन्धों को जानते थे और मुझे इस विषय में कभी छेड़ते हुए कहते थे हिन्दू की बात करना तो साम्प्रदायिकता ही है। मैं कहता यदि हिन्दू, हिन्दुस्तान में साम्प्रदायिक है तो राष्ट्रीय कौन है। तब वे अपने मन की बात कह देते कि पाकिस्तान बनाने के बाद अब मुसलमान की यहां की राष्ट्रीयता स्वयं संदेहास्पद हो गई है।

१९७५ में आपात स्थिति की घोषणा के बाद वे मेरे लिये चिन्तित रहते क्योंकि उससे पूर्व दो वार १९४८ और १९६४ में कृष्ण-जन्मस्थान की यात्रा मैं उनके साथ कर चुका था। आपातकाल के दिनों में कई महीनों बाद जब मैं उनसे मिला तो अत्यन्त प्रसन्न हुए, यद्यपि इस बीच मैंने सम्पर्क पत्रों के द्वारा रखा था तथापि मिलने पर उल्लास हुआ। फिर अनेकों घटनाओं का जिक्र करते हुए मैंने निर्दोष बंदियों के परिवारों का जब जिक्र किया तो वे बड़े दुःखित हुए और आर्थिक सहयोग देकर उनके प्रति अगाध सहानुभूति प्रकट की।

१९७१ की बात है बंगलादेश में विद्रोह के फलस्वरूप पश्चिम भारत में युद्ध जनित आपातकाल की स्थिति बन गई थी। ऐसे समय पूर्व निर्धारित कार्यक्रमानुसार श्री कानोड़ियाजी किशनगढ़ आदित्य मिल में थे और मुझे वहां से उनके साथ ही प्रवास पर वनस्थली, सीकर, मुकुन्दगढ़ होते हुए ८ दिसम्बर को भिवानी में हलवासिया बाल मन्दिर के वार्षिकोत्सव पर पहुंचना था। मुकुन्दगढ़ पहुंचने पर शहरों और ग्रामों में युद्धजनित कार्रवाई के फलस्वरूप ब्लैकआऊट रखने की घोषणा हो चुकी थी। किशनगढ़ में उनका साथ तथा भिवानी तक का प्रवास, मार्ग में साहित्यिक चर्चा आदि के कारण बड़ा ही सुखद एवं स्मरणीय रहा। उसी ब्लैकआऊट की स्थिति में रात्रि के ८ बजे जब भिवानी में स्थानीय कवियों द्वारा उनके सम्मान में गोष्ठी हुई तो उन्हें सुखद आश्चर्य हुआ कि २ घंटे की सूचना पर वहां के राज-कवि सहित १० कवि एकत्रित हुए। सबों ने स्वरचित कविता सुनाकर उन्हें आल्हादित किया था और श्री कानोड़ियाजी ने राजस्थानी दोहे सुना कर वहां हरियाना-शेखावाटी का काव्य संगम बना दिया था। उसके बाद से तो वे मुझे अपने काफी निकट अनुभव करने लगे थे।

प्राय: ४० वर्ष के उनके सम्पर्क में रहने के काल-खण्ड में मैंने उनमें अभिभावक का स्नेह, साहित्यानुरागी की कल्पना, स्वभाव से जिज्ञासु, समाज के प्रति चिन्तनशील कर्त्तव्यनिष्ठ, वीतरागी, भावना और संगठनशीलता का अनोखा सम्मिश्रण पाया और सबसे बढ़ कर उनमें पीड़ित मानवता के प्रति दर्द का अनुभव भी मुझे हुआ था।

आज के युग में यही कहा जा सकता है—

मानते हैं हो फरिश्ते शेखजी
आदमी होना बड़ा दुश्वार है।

—:०:—

स्व० भागीरथजी के समधी, समाज-सेवी

श्री नथमल भुवालका

स्मृतिशेष भागीरथजी

अपनी किशोरावस्था में ही मैं कई व्यक्तियों से सुन चुका था कि बिड़ला ब्रदर्स प्रतिष्ठान में श्री भागीरथजी कानोड़िया एक बड़े सुदक्ष एवं प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं जो देश और समाज का कार्य भी उत्साहपूर्वक किया करते हैं। एक बार किसी सेवा के कार्य से ही वे मेरे घर आये। यही मेरा उनसे प्रथम साक्षात्कार था। देखा, यश के अनुरूप ही उनका व्यक्तित्व था। आत्मीयताभरी मुस्कान थी और सहज ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेनेवाला व्यक्तित्व था। उन्होंने मुझे भी समाज-सेवा करने के लिए प्रेरित किया। मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी की कार्यकारिणी समिति में मैंने उनके साथ कार्य करने का सुयोग प्राप्त किया। उनकी कर्मठता और सौहार्द के कारण संस्था के कार्य सरल तो हो ही जाते थे, रुचिकर और आनन्ददायक भी प्रतीत होने लगते थे। अपनी अध्यक्षता की अवधि में उन्होंने सदैव यही प्रयास किया कि प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित हों और प्रस्तावों का कार्यान्वियन यथासम्भव अवश्य हो। मुझे भली भांति स्मरण है कि उन्होंने बहुमत का समर्थन प्राप्त होने पर भी कतिपय प्रस्तावों को विशेषानुनय के बल पर यह कह कर पारित नहीं होने दिया कि अल्पमत होने पर भी विरोधियों की संख्या नगण्य नहीं है। उनकी मान्यता थी कि बहुमत के अभाव में भी तर्क-पुष्ट एवं औचित्य-मंडित विषयों का तिरस्कार नहीं होना चाहिए। उनके नेतृत्व में सोसाइटी में अनेक उत्कृष्ट तथा महत्वपूर्ण कार्य सम्पादित हुए।

भागीरथजी के कार्य का क्षेत्र व्यापक था। भारत के भिन्न-भिन्न भागों के अनगिनत होनहार व्यक्तियों को उन्होंने जीवन-संग्राम में प्रचुर सहायता प्रदान की। उनके द्वारा अध्ययन एवं अन्यान्य पवित्र संकल्पों के कार्यान्वियन के लिए प्रोत्साहन, सहायता और पथ-निर्देश पानेवाले अनेक लोग आज ऊंचे-ऊंचे पदों पर विराजमान एवं प्रख्यात हैं। कई नेताओं, कवियों, कलाकारों और पण्डितों की जीवन-यात्रा को उन्होंने अपनी सहानुभूति, सेवा और दानशीलता के द्वारा सरल तथा सुखद बना दिया। सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि उन्होंने कभी किसी को अपने गुप्त दानों के विषय में नहीं बताया। बड़े-बड़े तथा अनगिनत लोगों की ओर से अपरिमेय सम्मान और श्रद्धा पाने का क्या मूल रहस्य था, इसका उन्होंने किसी को पता ही नहीं चलने दिया। केवल सीतारामजी सेकसरिया उनके ऐसे अन्तरंग लोगों में थे जो कुछ-कुछ जानते हैं और वह भी इसलिए कि दोनों कई स्थानों पर बहुधा परस्पर विचार-विमर्श करके सहायता आदि देने की व्यवस्था किया करते थे।

वर्तमान शताब्दी में सामान्य जन का अर्थ-कष्ट और तज्जन्य बहुविध संघर्ष उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। अनेक प्रकार के सामाजिक और पारिवारिक द्वन्द्व एवं विघटन दृष्टिगोचर होने लगे हैं। भागीरथजी इन सबके प्रति सदैव सचेत एवं सम्वेदनशील रहे। विषम परिस्थितियों के दलदल में फंसे हुए सम्भावनाशील निराश व्यक्तियों को आशा तथा उल्लास प्रदान करने के लिए वे अपनी सामाजिक ऊंचाई से नीचे उतरने में न तो अपना अपमान समझते थे, न कहीं डगमगाते ही थे। इसका पता तो मुझे तब चला जब वे मुझे १९७२ ई० में राजस्थान-दर्शन के लिए विस्तृत भ्रमण में अपने साथ ले गये। मैंने पाया कि सैकड़ों सुदूरवर्ती ग्रामों में भी उनसे मिलनेवालों में केवल स्थानीय बड़े आदमी ही नहीं थे, बल्कि अधिक संख्या तो उनकी थी जो साधारण, धनहीन और अनपढ़ थे। भागीरथजी समान स्तर पर बैठ कर घण्टों गांव के हरिजनों तथा अन्य किसानों से गम्भीर आत्मीयताभरी बातों में मशगूल हो जाते थे। स्थानीय धनिक व्यक्तियों के लिए भागीरथजी जैसे प्रसिद्ध उद्योगपति को जानना उतना आश्चर्यजनक विषय नहीं था, किन्तु उन्हें जाननेवाले और उनसे परिचित इतनी अधिक संख्यावाले साधारण लोग भी हो सकते हैं, यह मेरी कल्पना के वाहर की बात थी। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि समाज-सेवा का व्रत ग्रहण करनेवाले सम्पन्न नेताओं को सामाजिक यथार्थ का प्रत्यक्ष बोध कराने के लिए एवं उनकी सीख के लिए उन्होंने सादगी, सेवा, आत्म-संयम एवं आत्म-विस्तार का अद्भुत आदर्श उपस्थित किया। उन्होंने संघर्ष और उपदेश के स्थान पर अपने आचरण द्वारा आदर्श उदाहरण प्रस्तुत किया और कहीं भी उसका ढोल नहीं पीटा। यह आत्म-तृप्ति और आत्मानन्द उपलब्ध करने की उनकी अभिनव प्रक्रिया थी। वे सहज ही दिव्य संकल्पों से उत्पन्न उल्लास के अनुपम रस का पान करते रहते थे। जयशंकर प्रसाद की इन अमर पंक्तियों में उनकी दृढ़ आस्था थी :—

औरों को हंसते देखो मनु,
हंसो और सुख पाओ,
अपने सुख को विस्तृत कर लो,
सबको सुखी बनाओ।

भागीरथजी युग-परिवर्त्तन के सन्धि-स्थल पर खड़े एक प्रबुद्ध और उदारचेता नागरिक थे। उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन के युग में कारावास का कठोर दंड भोगनेवाले मनस्वी वीरों की पंक्ति में खड़े होकर क्षुब्ध हृदय और सकरुण नेत्रों से देशी-विदेशी आतताइयों के अत्याचारों का तांडव भरपूर देखा था। उन्होंने उच्च आदर्श की लीक पर चलनेवाले तथाकथित नेताओं के नैतिक पतनों को भी खेदभरी दृष्टि से देखा था। निराश और पीड़ितों की अनभिव्यक्त कराहों को भी उन्होंने द्रवित होकर सुना था। सामाजिक विषमताओं और आकस्मिक संकटों ने उनके भीतर तीव्र प्रतिक्रिया का सृजन किया था, तभी तो बंगाल के अकाल के कराल दिनों में वे स्वयं सहायता का प्रचुर उपकरण लेकर उपेक्षित ग्रामांचलों की ओर दौड़ पड़े थे। उन्होंने दिन-रात घोर परिश्रम करके असंख्य असहायों को मौत का ग्रास होने से बचा लिया था। राजस्थान में जब भीषण अकाल पड़ा तब भी उन्होंने वही करुणा और कर्मठता दिखायी। वे

संकटों की परवाह किये बिना ही कार्यकर्ताओं के साथ स्वयं ही त्राण-कार्यों में जुट पड़ते थे। दुर्गम स्थानों की यात्रा कर पीड़ितों की पीड़ा के सहभागी होने की अनुपम अनुभूति की चर्चा यदाकदा उनके अन्तरंग मित्रों के सम्मुख अनायास ही छिड़ जाया करती थी। वे सबको सुखी देखना चाहते थे। दुखियों और संत्रस्तों को ऊपर उठाना उन्हें भाता था। वे ऋषियों की इस वैदिक वाणी में आस्था रखनेवाले थे :—

सर्वे सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग् भवेत्॥

उन्होंने अनेक विद्यालयों, महाविद्यालयों, औषधालयों, धर्मशालाओं, गोशालाओं तथा मन्दिरों के निर्माण और संचालन के निमित्त प्रेरणा तथा सभी प्रकार के साधनों को जुटाया। उन सबका उल्लेख और लेखा-जोखा यहां सम्भव नहीं है। इन सब कार्यों में कहीं भी भागीरथजी ने पद या नाम पाने का कभी प्रयास ही नहीं किया। लोगों के आग्रह पर भी उन्होंने सर्वदा अज्ञात रह कर ही कार्य करने की इच्छा प्रकट की। वे ऐसे व्यक्तियों में थे जो सुफलदायक पेड़ों को लगा कर दूसरों के भोग के लिए अर्पित कर दिया करते हैं। इधर के २० वर्षों में मैं उनके अधिक से अधिक निकट आता गया। इसे मैं अपना सौभाग्य मानता हूं। मैं अनुभव करता हूं कि मैंने उनसे बहुत कुछ सीखा, जाना और पाया। जिन प्रेरणाओं को वे हमलोगों के मन में जगा गये हैं, वे ही उनकी स्मृतियों को चिरस्थाई बनाने के लिए पर्याप्त हैं।

—: ० :—

सुप्रसिद्ध उद्योगपति

श्री मोहनलाल जालान

संवेदनशील समाज सेवी

मानव धर्म का सच्चे अनुराग से पालन करनेवाला पुरुष आदर्श मानव की संज्ञा से विभूषित किया जा सकता है। दूसरों की सेवा और सहायता से बढ़ कर मानव धर्म का परिचायक अन्य गुण है ही नहीं। गोस्वामी तुलसीदास ने कहा भी है :

'परहित सरिस धरम नहिं भाई।
परपीड़ा सम नहिं अधमाई।।

स्वर्गीय भागीरथजी कानोड़िया ने अपने प्रारम्भिक जीवन से ही धार्मिक, सामाजिक, शैक्षणिक आदि विभिन्न क्षेत्रों में बड़े ही उत्साह से और निष्ठा से कार्य किया था। मेरी दृष्टि में उनके व्यक्तित्व का सबसे उज्ज्वल तत्व उनकी त्यागमय निस्पृह सेवा-भावना और उनका निर्मल चरित्र है। अपना सारा जीवन उन्होंने देश और समाज की सेवा में लगाया, लेकिन प्रतिदान में कुछ चाहा नहीं। वे निरन्तर समाज सेवा की कर्मनिष्ठ प्रचेष्टाएं करते रहे। वास्तव में कोई भी शुभ प्रचेष्टा कभी व्यर्थ नहीं होती।

स्वर्गीय कानोड़ियाजी का जीवन सामाजिक कुरीतियों, व्यापक अशिक्षा, विदेशी शासन से उत्पन्न विकृतियों से संघर्ष करते ही बीता। उनकी प्रतिभा, कर्तव्य और समाज-सेवा से राष्ट्र-जीवन के अनेक क्षेत्र उपकृत हुए हैं। प्रारम्भ से ही उच्चादर्शों को अपना कर जिस काम में लग गये उसका परिपक्व रूप आज हमारे सामने है। समाज-सुधार के जितने भी कार्य हुए : बाल-वृद्ध-अनमेल विवाह बन्द कराना, परदा प्रथा उठाना, विधवा विवाह प्रचलित करना, आदि इन सभी कार्यों में उनका सक्रिय सहयोग रहा।

कितने सार्वजनिक कार्यों से कानोड़ियाजी सम्बन्धित रहे इसका ब्योरा देना दुष्कर है। कोई भी संगठनमूलक कार्य हो, कानोड़ियाजी निश्चय ही उससे सम्बन्धित रहे। शिक्षा प्रसार की ओर भी वे निरन्तर अग्रसर रहे। शिक्षा-प्रचार और समाज-सेवा के सच्चे समन्वय का दृष्टान्त विरला ही होता है। स्व० कानोड़ियाजी भी उन इने-गिने लोगों में से ही एक थे जिन्होंने अपना पूरा जीवन समाज-सेवा और शिक्षा-प्रचार और प्रसार में ही अर्पित कर दिया।

कहते हैं मनुष्य की आकृति में, विशेषतः उसकी आंखों में, उसका हृदय प्रतिबिम्बित होता है। जिसके हृदय में कुछ है ही नहीं, उसकी आंखें भी भावशून्य होंगी। कानोड़ियाजी ने जीवन भर समाज-सेवा करके जो पुण्य संचित किया था वह उनकी आंखों में छलकता था। उनकी आकृति से सादगी टपकती थी, अहिंसा झलकती थी,

चींटी के भी न दब जाने का विनम्र भाव प्रकट होता था। वे विशिष्ट अर्थ में सुसंस्कृत और सभ्य थे।

मातृ-जाति की प्रगति का ध्यान उन्हें निरन्तर रहा। उनका अटूट विश्वास था कि जब तक महिलाओं में वास्तविक जागरण नहीं होगा, तब तक देश की धार्मिक साहित्यिक, सामाजिक और राष्ट्रीय प्रगति सच्चे अर्थों में सम्भव नहीं हो सकती। इसलिये स्वर्गीय कानोड़ियाजी नारी-शिक्षा तथा उसकी प्रगति के लिये निरन्तर गतिशील रहे। मेरी दृष्टि में उनकी सफल जीवन-यात्रा में जो सबसे अधिक अणुतत्व रहा है वह थी उनकी संवेदनशीलता। शायद यही कारण रहा है कि वे इतने रचनात्मक हो सके। संवेदनशीलता के गुण ने ही उन्हें मातृ जाति के इतने निकट ला दिया। संवेदना की सबसे नाजुक कृति नारी को पहचानने और अपनाने में वे सहज ही समर्थ हो गये। संवेदना का गुण धार्मिक होता है। बिना धर्म के संवेदना उपज ही नहीं सकती। कानोड़ियाजी जीवन भर रामायण, गीता आदि सद्‌गन्थों का अनुशीलन करते रहे। सीता-चरित्र ने जहां उन्हें नारी जाति के उत्थान की ओर आकर्षित किया, गीता ने उन्हें कर्म की ओर निरन्तर प्रेरित किया।

शमित हो जाने वाले इस जीवन की सार्थकता इसी में है कि आगे आनेवाला जमाना हमें याद रखे और यह तभी संभव हो सकता है जब मानव मानवोचित काम करे। क्षमता के अनुसार दान दे। स्वर्गीय कानोड़ियाजी में भी दान देने तथा असहायों और जरूरतमन्दों की विभिन्न रूपों में सहायता करने की अच्छी प्रवृत्ति थी। जो भी उनके पास सहायता के लिये गया चाहे वह व्यक्ति रहा हो, चाहे संस्था, कुछ न कुछ लेकर ही लौटा, खाली हाथ नहीं लौटा। अनेक धार्मिक, सामाजिक, शैक्षणिक संस्थाओं की वे समय-समय पर आर्थिक रूप में सहायता करते रहे।

स्वर्गीय कानोड़ियाजी बीते हुए युग के निस्पृह सत्यनिष्ठ संस्कारी जन-सेवकों की श्रेणी के एक अनमोल रत्न थे। स्व० कानोड़ियाजी का जीवन आलोक-शिखा की भांति सदा भावी पीढ़ी का मार्गदर्शन करता रहेगा ऐसा मेरा विश्वास है।

—: ० :—

प्रसिद्ध गांधीवादी विचारक
श्री दादा धर्माधिकारी

समादृत व्यक्तित्व के धनी

कोई ३९ साल पहले और उससे भी पहले, दो-तीन बार मैं श्री भागीरथजी के जकरिया स्ट्रीट के निवास के नजदीक एक मकान में ठहरा था। एक बार बालीगंज स्थित उनके बंगले में ४३ साल पहले ठहरा था। उसके बाद उन्हें कई बार सभाओं में देखा।

व्यक्तिगत परिचय इतने तक ही सीमित रहा। उनकी मृत्यु से पूर्व उन्हें देखने गया था।

जितना प्रत्यक्ष और परोक्ष परिचय हुआ, उसके कारण उनके लिए मन में आदर की भावना है।

—: ० :—

राजस्थान के वरिष्ठ गांधीवादी कार्यकर्ता

श्री भोगीलाल पण्ड्या

दीनबन्धु-दीनवत्सल

सन् १९१९ से मैं राजस्थान के आदिवासी एवं पिछड़े क्षेत्रों के विकास में सेवारत हूं। इस लम्बे सेवाकाल में मुझे भांति-भांति के लोगों से सहयोग मिला है। स्वर्गीय भाईजी भागीरथजी कानोड़िया से पहली बार कलकत्ता में पूज्य ठक्कर बापा ने परिचय कराया था। यह सन् १९३३ की बात है जब मैं अपनी संस्था के लिए चन्दा संग्रह करने हेतु कलकत्ता गया हुआ था। उस समय उनके प्रेम, सद्व्यवहार एवं सार्वजनिक कार्य में सहयोग की प्रवृति से मैं और मेरे साथी बहुत अधिक प्रभावित हुए थे।

भाईजी चन्दा लेनेवाले कार्यकर्ताओं को स्वयं घर से चन्दा देकर स्वयं उन कार्यकर्ताओं में ऐसे घुलमिल जाते थे मानो वे स्वयं भी चन्दा लेनेवाली टोली के ही एक सदस्य हैं और जब तक उस टोली का काम पूरा नहीं हो जाता, वे लगातार साथ बने रहते। खुशी की बात यह थी कि उनके पारिवारिक जन उनके इस स्वभाव से विपरीत नहीं रहते और वे सभी आगन्तुक साथियों को अपने परिवार का ही सदस्य मान कर व्यवहार करते। यह क्रम अनवरत चालू रहा।

स्वर्गीय कानोड़ियाजी भारतीय आदिम जाति सेवक संघ के १५ वर्षों तक कोषाध्यक्ष रहे। भारत के प्रथम राष्ट्रपति श्रद्धेय डा० राजेन्द्र प्रसादजी की अध्यक्षता में बनी यह संस्था देश के ४ करोड़ आदिवासियों की सेवा करती है और पिछड़े गरीब दीन-हीन प्राय: जंगलों में बसी आदिवासी जातियों के उत्थान का काम करनेवाली संस्थाओं का संगठन है। भाईजी इस संस्था के सन् १९४७ में कोषाध्यक्ष बने और आदिवासियों के उत्थान हेतु स्वयं आर्थिक सहायता देते-दिलाते रहे।

भाईजी राजस्थान हरिजन सेवक संघ के भी बीस वर्ष तक अध्यक्ष रहे और अस्पृश्यता निवारण हेतु भरपूर सहयोग देते-दिलाते रहे। वह स्वयं खादीधारी थे और खादी के काम में बड़ी रुचि लेते थे। नई संस्थाओं के गठन में विशेषकर उन संस्थाओं की प्रारम्भिक पूंजी की व्यवस्था करने में भाईजी ने बहुत सहयोग दिया। अभी पिछले वर्षों में पोकरण में एक नई संस्था का गठन हुआ तो उसे आरम्भिक पूंजी हेतु पांच हजार रुपये का सहयोग भागीरथजी ने ही दिया, जिससे इस समय १० लाख रुपये की ऊनी खादी का उत्पादन हो रहा है और साढ़े चार सौ लोगों को आंशिक या पूरा काम मिल रहा है।

बाढ़ अकाल और बीमारी के समय भूखे लोगों को काम देकर भोजन उपलब्ध करवाने, गोरक्षा के लिए घास-चारा दाना जुटाने और बीमारों के लिए दवा आदि

दिलाने में स्व० कानोड़ियाजी सदैव तत्पर रहे। पीने के लिए पानी हेतु कुएं-तालाब खुदवाने और दूसरे सार्वजनिक कार्यों में उन्होंने बहुत दिलचस्पी ली। पश्चिमी राजस्थान सीमा-विकास के कार्य में स्वर्गीय श्री माणिक्यलाल वर्मा के साथ वे पश्चिमी राजस्थान सीमा-विकास समिति के संस्थापक सदस्य बने और पाकिस्तान से लगी सीमा पर शिक्षा और अकाल-राहत के काम में सहयोग किया।

सब मिलाकर आदरणीय भाईजी, जो मेरे साथ वर्षों तक भिन्न-भिन्न संस्थाओं में पदाधिकारी एवं सदस्य के रूप में काम करते रहे, सच्चे मायने में व्यवहार-कुशल, कर्मठ, सहृदय और दयालु स्वभाव के व्यक्ति थे जो निरन्तर आदिवासी, हरिजन, घुमन्तू जाति (गाड़ी लाहौर आदि) और विमुक्त जाति के (कंजर, सांसी, नट एवं चौकीदार, मीणे आदि जो चोरी आदि की आदतें होने से प्रायः पुलिस की देखरेख में रहतीं और जिनकी प्रातः-सायं हाजरी ली जाती) कल्याण हेतु कार्यरत रहे। एक वाक्य में कहूं तो वे मुझे हर क्षेत्र में किसी न किसी रूप में आज भी स्मरण हैं और सदा याद रहेंगे।

—: o :—

सुप्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्री, विद्या-भवन उदयपुर के संस्थापक,

डा० मोहन सिंह मेहता

आदर्श कर्मयोगी

स्वर्गीय भागीरथजी के लिए उनके अनेक मित्रों की तरह मेरे मन में भी बड़ा स्नेह तथा श्रद्धा है। उनके निधन से जो वेदना हुई उसको शब्दों में अच्छी तरह व्यक्त नहीं किया जा सकता। हमारे समाज में उनकी क्षति कई वर्षों तक पूरी नहीं हो सकेगी। उनका व्यक्तित्व ऐसा ही था।

आज से लगभग ४७ वर्ष पूर्व मेरा परिचय भागीरथजी से मेरे स्वर्गीय मित्र भाई दुर्गाप्रसादजी खेतान की कृपा से हुआ। वे उन दिनों जहां रहते थे, उसी गली में दुर्गाप्रसादजी का भी मकान था और उनका अतिथि होने के नाते मैं भागीरथजी के पास ही ठहरा हुआ था। मैं कलकत्ते जिस प्रयोजन को ले कर गया था उस कारण से भी मुझको भागीरथजी के निकट आने का अवसर मिला। वह सार्वजनिक हित का एक नया प्रयोग था। उस पर चर्चा होने से वह हमारे पारस्परिक स्नेह को बनाने और बढ़ाने में काफी मात्रा में सार्थक हुआ। मैं जब कलकत्ते से लौटा तो यह विचार लेकर आया कि सामाजिक चेतना और राजस्थान के जीवन को जागृत करने में सक्रिय होनेवाले दो मित्रों का और परिचय पाया। एक थे भागीरथजी और दूसरे थे प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका। ऐसा लगा कि मानो एक बहूमूल्य निधि मिल गई हैं और मैं बहुत धनाढ्य हो गया हूं।

उन दिनों भागीरथजी का अधिकांश समय और शक्ति व्यवसाय में लगती थी। वे एक उद्योगपति थे और इसमें उनको अच्छी सफलता की सिद्धि हुई। परन्तु मेरे मन में उनके प्रति प्रेम और प्रशंसा उत्पन्न होने का यह विशेष कारण नहीं था। धनी, और वैभवप्राप्त अनेक उद्योगपतियों से जीवन में यदा-कदा मुझको परिचय प्राप्त हुआ है। उनमें से कुछ की कृपा और स्नेह भी मिला। फिर भी बराबर यह अहसास होता था कि यह समुदाय ही दूसरा है, उसकी और मेरी जाति भिन्न हैं। उसके निकट पहुंच कर उस कोठी के द्वार से उस भव्य भवन के चित्र और छटा को देख कर हम चकित तो हो जाते हैं, पर महल के अन्दर की शोभा और सौन्दर्य से हम दूर हैं। उसकी रीति-नीति को भली प्रकार हम न जानते हैं, न समझते हैं और ना ही उसके रंग-रूप और कला की हमको कोई जानकारी है। हमारे लिये तो वह दुनिया ही दूसरी हैं—वह तो परदेस सा है। परन्तु यह भाव भागीरथजी के लिए मन में प्रारम्भ से ही नहीं आया। उनसे सामाजिक समस्याओं पर चर्चा होती तो मालूम होता था कि वे बहुत मात्रा में हमारे वर्ग के ही हैं। उनके विचारों के पीछे चिन्तन था, लगन थी, दर्द था, सच्ची सम्वेदना थी। यह विशेषता बार-बार मानसिक नेत्रों के सामने आती थी।

कलकत्ता की उस १९३२ की यात्रा के बाद कई बार भागीरथजी से भेंट हुई। हमारे बीच पत्र-व्यवहार भी होता रहा। विचारों और आकांक्षाओं में, स्नेह और पारस्परिक विश्वास में, अर्थात् बुद्धि और भावना, दोनों ही क्षेत्रों में हम एक दूसरे के निकट आये और आते रहे। जब भी कलकत्ता जाता तो उनसे अवश्य मिलता।

भागीरथजी के चरित्र, गुण, स्वभाव और व्यक्तित्व को वे ही अच्छी तरह से समझ सकते हैं जो उनसे घनिष्ठ थे। उनमें तो सार्वजनिक जीवन के साधारण नेताओं के लक्षण नहीं थे। वे अपनी प्रसिद्धि और प्रशंसा के भूखे नहीं थे। उनमें सत्य और वास्तविकता के लिये आस्था थी और सामाजिक प्रगति के लिये निष्ठा थी। उनकी प्रकृति में विनय और दूसरों के प्रति और दूसरों के विचारों के प्रति जो सद्भाव सत्कार और सहिष्णुता थी, वह मैंने वहुत थोड़े लोगों में देखी है। ऐसा नहीं हैं कि उनके विचारों में स्वतन्त्र चिन्तन नहीं था परन्तु उनमें मानसिक हठ अथवा पूर्वाग्रहता का कहीं चिन्ह नहीं दिखाई देता था। विनय-भाव उनकी प्रकृति का एक प्रमुख लक्षण था। उनसे आप जिस विषय पर बात करते उसमें उनके अपने स्वतन्त्र विचारों की प्रतिक्रिया मिलती। जिस समस्या पर उन्होंने ध्यान नहीं दिया था तो वे आपको तुरन्त वता देते। उनकी सरलता, सच्चाई और सिद्धान्तों की दृढ़ता का आभास उनसे मिलते ही हो जाता था। यों तो ये गुण और लक्षण सीधे ही अच्छे लगते हैं पर हम सब जानते हैं कि हमारे समाज में इनकी कितनी कमी हैं।

राजस्थान की उन्नति तथा उसकी प्रगति की भागीरथजी के मन में बड़ी चिन्ता और लगन थी। इस विषय पर तो उनसे मिलने पर चर्चा अवश्य ही होती थी। राजस्थान में जहां-जहां रचनात्मक कार्य हो रहा था उसकी उनको जानकारी थी। यही नहीं वरन् वे बड़ी सहानुभूति से उसमें रुचि रखते थे और उदारता से आर्थिक सहायता देते थे। उनके सामने किसी भी अच्छी सार्वजनिक हित की योजना लेकर कोई जाता तो कभी खाली हाथ नहीं आता था। ऐसे सेठ अथवा उद्योगपति इने-गिने ही होंगे जो धन का ऐसी निःस्वार्थ भावना से उपयोग करते होंगे। अन्य सेठों की तरह उनको अपने नाम अथवा ख्याति की इच्छा नहीं रहती थी। अनेक संस्थाएं और उनके संचालक भागीरथजी की उदारता के लिये ऋणी हैं और रहेंगे। मैं स्वयं भी अपने आपको उस गणना में रखता हूं। मित्र का स्नेह तो उनसे विपुल मात्रा में मिला ही पर मेरे सामाजिक कार्य में जो उनका सान्निध्य प्राप्त हुआ वह भी कम मूल्यवान नहीं था। सात वर्ष पूर्व जब राजस्थान सूखे का शिकार हुआ और हम लोग अकाल पीड़ित जन समूह का संकट दूर करने की तैयारी कर रहे थे, तो भागीरथजी ने स्वयं राजस्थान का दौरा किया और उस योजना के संचालन में सक्रिय भाग लिया। उसको देख कर मेरे मन में उनके प्रति श्रद्धा और बढ़ गई।

भागीरथजी के चरित्र और भावना को पहिचानने और सराहना करने में उनकी लिखी हुई पुस्तक "वहता पानी निर्मला" बड़ी सहायक होती हैं। थोड़े ही दिनों में उसके कई संस्करण निकल गये।

कोई मनुष्य अमर होकर नहीं आता है। जीवन यात्रा का अन्तिम चरण सबके लिये मृत्यु ही हैं। पर कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जिनका अस्तित्व समाज-हित को पोषण करने में लगा रहता है, जिनकी भावनाओं और आकांक्षाओं से समाज के वंचित, पीड़ित और शोषित अंग को प्रेम और आत्मीयता मिलते हैं—ऐसे लोग हमारे बीच से जब उठ कर चले जाते हैं तो हृदय की, समाज के हितों को चोट लगती हैं, गहरी वेदना होती है। भागीरथजी के निधन से ऐसा ही हुआ।

—: ० :—

ओड़िशा की प्रसिद्ध गांधीवादी रचनात्मक कार्यकर्तृ
श्रीमती रमा देवी

दुखी जनता के श्रद्धा-पात्र

भागीरथजी हमारे बीच नहीं हैं लेकिन उनकी आत्मा हमारे बीच जरूर है क्योंकि दुखी जनता के प्रति उनकी जो हार्दिक सहानुभूति थी, वह कभी जानेवाली चीज नहीं है। यह सहानुभूति अदृश्य रह कर हम सबको दुखीजनों की सेवा करते रहने के लिए प्रेरणा देती रहेगी।

उनका सेवा-भाव अतुलनीय था। ओड़िशा में जब भी बाढ़ आती या अकाल पड़ता तो भागीरथजी की सहायता दुखी जनता के पास अवश्य पहुंचती। अपनी सेवा के कारण वह दुखी जनता की श्रद्धा के पात्र बने थे।

उनका सेवा-कार्य हमारे लिए अनुकरणीय है। उनके सद्गुणों का हम स्मरण करें और उनकी सेवा-भावना का अनुकरण करे, यही उनके प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

—:०:—

पश्चिम बंगाल के भूतपूर्व मुख्यमंत्री

श्री प्रफुल्लचन्द्र सेन

गांधीवादी देशभक्त

स्वर्गीय भागीरथजी एक सच्चे देशभक्त थे, जिनकी गांधीजी के विचारों में पूरी आस्था थी। गांधीजी ने ट्रस्टीशिप की कल्पना की थी। मैं यह कह सकता हूं कि भागीरथजी ने सम्पत्ति को ट्रस्ट ही माना और ट्रस्टी के रूप में ही उसे रखा। उन्होंने उसे ऐसे रचनात्मक कार्यों में खर्च किया जिनसे बेरोजगार लोगों को मदद मिली। वह खादी के पक्षधर थे और यह मानते थे कि इससे देश का लाभ होगा। वह स्वातंत्र्य-योद्धा थे। स्वतन्त्रता संग्राम में उन्होंने कारावास भोगा। मैं उन्हें ५० वर्ष से भी ज्यादा समय से जानता था। उन्हें अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं।

—: o :—

प्रसिद्ध गाँधीवादी, पश्चिम बंगाल के भूतपूर्व खाद्य मंत्री

श्री चारुचन्द्र भण्डारी

रचनात्मक कार्यकर्ताओं के सच्चे मित्र

१९३० के दशक में डायमण्ड हारवर सब डिवीजन (२४ परगना) के पिछड़े इलाकों में जब हम रचनात्मक कार्य चला रहे थे तो हमें बहुत ही आर्थिक कठिनाइयां झेलनी पड़ रही थीं। गांधीजी को इस बात का पता लगा तो उन्होंने सुझाव दिया कि सीतारामजी और उनके साथी हमारी आवश्यकताओं को पूरा करने की व्यवस्था करें। तब सीतारामजी, भागीरथजी और स्व० श्री बसन्तलालजी मुरारका हमारी सहायता के लिए आगे आये। इसके बाद तो सीतारामजी और भागीरथजी बंगाल में गांधीवादी रचनात्मक कार्यक्रम को बढ़ाने में अधिकाधिक दिलचस्पी लेने लगे। आजादी के पहले भागीरथजी और सीतारामजी एवं उनके द्वारा मारवाड़ी समाज बंगाल में ग्राम-निर्माण के रचनात्मक कार्यक्रमों का आधार स्तम्भ बन गया था। कोई भी ऐसा रचनात्मक काम न था जिसमें भागीरथजी और सीतारामजी न हों। रचनात्मक काम करनेवाली बहुत सारी संस्थाओं के भागीरथजी कोषाध्यक्ष थे। इन संस्थाओं की योजनाओं को सही तौर पर चलाने में भागीरथजी की व्यापारिक प्रतिभा बहुत काम आई।

उनकी मृत्यु से पश्चिम बंगाल के रचनात्मक कार्यकर्ताओं ने एक सच्चा मित्र खो दिया है।

—: ० :—

पश्चिम बंगाल के प्रसिद्ध कांग्रेसी नेता

श्री अतुल्य घोष

भरोसेमंद मददगार

भागीरथजी को बंगाल की आम जनता नहीं जानती लेकिन जो उनके सम्पर्क में आये, वे उन्हें कभी भूल नहीं सकते। वह व्यापार करते थे लेकिन उनका व्यापार, उनकी राजनीतिक, सामाजिक, रचनात्मक और शैक्षणिक सेवाओं में कभी आड़े नहीं आया। वह एक उदार और विनम्र व्यक्ति थे जो स्वाधीनता आन्दोलन के कार्यकर्ताओं की हमेशा मदद किया करते थे। गांधीजी और अन्य नेता उन पर बड़ा भरोसा करते थे। जब भी कोई प्राकृतिक विपत्ति आती तो पीड़ितों की सहायता के काम में मैंने उन्हें आगे पाया। वह खादी और ग्रामोद्योग के कार्यों से बहुत अधिक जुड़े हुए थे। रचनात्मक और सामाजिक कार्यकर्त्ताओं को हमेशा इस बात का भरोसा रहता कि वे अपने काम में भागीरथजी से हर प्रकार की मदद पायेंगे। जन-कल्याण का कोई भी काम हो भागीरथजी उसमें रहते। इसी तरह स्वाधीनता आन्दोलन के भी हर काम में वह रहते। जो उनको जानते हैं वे यह भी जानते हैं कि उनकी मृत्यु से जो स्थान रिक्त हुआ है उसे भरना कितना कठिन है।

मैं भागीरथजी के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं।

राजस्थान के वयोवृद्ध नेता

श्री लादूराम जोशी

विनम्र जनसेवक

स्वर्गीय श्री भागीरथजी कानोड़िया केवल राजस्थान के ही नहीं वल्कि भारतवर्ष के एक विशिष्ट समाजसेवी और शिक्षाप्रेमी व्यक्ति थे। वे आज नही हैं यह वात जो मानने को तैयार नहीं हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे वे अब भी मौजूद हैं। उनके प्रभाव और सत्ता को मृत्यु नहीं मिटा सकती। लेकिन वस्तुतः आज वे नही हैं। जब मानस पटल पर उभर कर उनकी स्मृतियां सामने आती हैं तो मानना पड़ता है कि वे अब स्मरण-मात्र ही रह गये हैं। उनका भौतिक शरीर आज हमारे सामने नहीं है पर उनकी विनम्रता, मधुरता, सार्वभौमिक मानबता—जो मिलनेवालों को अभिभूत कर देती थी—और कितना ही अपरिचित आदमी हो उसको अपना बना लेती थी—यह सब बातें जब याद आती है तो मनमें टीस उठती है कि ऐसा व्यक्ति क्या हमारे समाज को फिर मिल सकेगा।

मानवीय भावों का जितना विकास उनमें हुआ था उतना बहुत कम लोगों में पाया जाता है। मुझे देश के कई विशिष्ट व्यक्तियों और प्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्ताओं के सम्पर्क में आने का अवसर मिला है। पूज्य महात्माजी से लेकर देश के दूसरे महान व्यक्तियों से मिलने का और उनकी सेवा करने का भी यदा-कदा अवसर मिलता रहा है, पर स्वर्गीय श्री भागीरथजी जैसे निरभिमानी और विनम्र-सेवक समाज में बहुत मुश्किल से ही पैदा होते हैं।

स्वर्गीय श्री भागीरथजी से मेरा परिचय सन् १९२७-२८ से था। उनके जन्म-स्थान मुकन्दगढ़ में उन्हीं के द्वारा संचालित मिडिल स्कूल के वार्षिकोत्सव का अवसर था। देशभक्त सेठ जमनालालजी बजाज को उन्होंने आमन्त्रित किया था। उस समय सेठजी सीकर आये हुए थे। उनके साथ में मैं भी उस उत्सव में शरीक हुआ था। आधी शताब्दी पहले उनके साथ जो साधारण परिचय हुआ था वह अन्त समय तक बढ़ता ही रहा। जब से वे कल्याण आरोग्य सदन के अध्यक्ष हुए तब से तो साल में दो-तीन दफे सीकर, सदन की मीटिंगों में आते ही रहते थे और हर मीटिंग में उनसे मुलाकात होती रहती थी। जब कभी वे मिलते तो स्वास्थ्य व उमर के बारे में दिलचस्पी के साथ पूछा करते थे। उमर की दृष्टि से कुछ महीने मुझसे छोटे थे इसलिए वे कहा करते थे कि आपकी तन्दुरुस्ती मेरे से बहुत अच्छी है। उनको चलने-फिरने में इन दिनों में बहुत दिक्कत होती थी।

कल्याण-आरोग्य-सदन कायम करने की कल्पना को लेकर श्री सोढाणीजी के साथ सन् १९४९-५० में हम कलकत्ता गये हुए थे। टी० बी० सेनीटोरियम की योजना

को मूर्त्त रूप देने की दृष्टि से मैं और श्री सोढाणीजी ने स्व० सेठ श्री रामसहायमलजी मोर, स्व० सेठ श्री ज्वालाप्रसादजी भरतिया एवं स्व० सेठ श्री रावतमलजी नोपानी के साथ विचार-विमर्श किया और उन लोगों ने हम दोनों को साथ ले कर अन्य कई व्यक्तियों एवं ट्रस्टों से विचार-विमर्श किया पर उन दिनों स्व० श्री कानोड़ियाजी कहीं बाहर गये हुए थे। उनके आने पर उनसे बातचीत करके आगे बढ़ने की बात थी। उन दिनों राजस्थान के मुख्यमन्त्री स्व० श्री हीरालालजी शास्त्री भी कलकत्ता आए हुए थे और राज्य की प्रारम्भिक अवस्था में वे कोई नया काम प्रारम्भ करने की स्थिति में नहीं थे। इसलिए उस समय यह योजना स्थगित करनी पड़ी। पर उस योजना के प्रति उनकी भावना, दिलचस्पी व निष्ठा थी, जिससे आगे चल कर श्री सोढाणीजी को बहुत प्रेरणा और प्रोत्साहन मिला। अन्ततोगत्वा श्री सोढाणीजी का बोझ हल्का करने के लिए भागीरथजी ने पूर्ण दायित्व अपने ऊपर ले लिया। स्व० कानोड़ियाजी की यह विशेषता थी कि वे जिस किसी भी अच्छे काम में दिलचस्पी लेते थे, उसको सफल बनाने और विकसित करने में निष्ठा के साथ जुट जाते थे, और अपने मित्रों एवं परिचितों से निरन्तर सम्पर्क करके उस काम को पूरा करने के लिये प्रेरणा देते रहते थे। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण सीकर का श्री कल्याण-आरोग्य-सदन है। पिछले वर्षों में कल्याण आरोग्य सदन का जो विकास हुआ उसमें उनका सतत प्रयत्न और विनम्र सेवा-भाव ही मुख्य है। उनकी विनम्रता का एक उदाहरण यहां प्रस्तुत करना अप्रासंगिक न होगा।

जब उनको कल्याण आरोग्य सदन का अध्यक्ष चुनने की बात हुई तो उन्होंने कहा था कि श्री बद्रीनारायणजी सोढाणी मंत्री रहेंगे तो ही मैं अध्यक्ष बनूंगा। मैं तो उनके मुनीम का काम कर सकता हूं। काम की जिम्मेदारी सोढाणीजी पर ही रहेगी। यह उनकी विनम्रता की एक झांकी है। अनेक कार्यकर्त्ताओं से विभिन्न विषयों पर वार्ता करते समय हमेशा उनके चेहरे पर मुस्कान व प्रसन्नता रहती थी। दूसरे के अभावों को देख-सुन अनुभव कर उसकी पूर्ति के लिए स्वयं व अपने मित्रों से यथाशक्ति सहायता दिलवाने का प्रयत्न करते थे। विरक्ति और आवेश उनके चेहरे पर बहुत कम देखने को मिलते थे। हमारे लिये सचमुच यह बहुत बड़े गौरव की बात है कि राजस्थान की भूमि में पैदा हुआ एक व्यक्ति न केवल राजस्थान में बल्कि सारे भारतवर्ष में अपनी विनम्र सेवाओं के बलबूते पर प्रतिष्ठा व आदर का पात्र बन गया। हम प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि स्व० कानोड़ियाजी जैसे आदमी इस देश में उत्पन्न हों, जिनकी प्रेरणा से समाज में चेतना, स्फूर्ति व उदात्त सेवा-भाव का विकास हो सके।

—: ० :—

प्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्त्री,
भारत सरकार की भूतपूर्व समाज-कल्याण राज्य मंत्री
डॉ० फूलरेणु गुहा

सब अवस्थाओं में सुखी

भागीरथजी की याद मुझे बहुत पहले आजादी के पहले के युग में ले जाती है। मुझसे उनका परिचय श्रद्धेय सीतारामजी सेकसरिया ने करवाया था। १९४३ के बंगाल के मानव-कृत अकाल के वक्त मैंने उन्हें ज्यादा निकट से जाना और यह निकटता प्रगाढ़ता में बदलती गई। इस अकाल की विभीषिका इतनी प्रचण्ड थी कि देश भर से सहायता की जरूरत हुई। अकाल के उन दिनों में जब खासकर अनाथ और निराश्रित बच्चों की दशा बहुत खराब थी, मैंने भागीरथजी के साथ काम किया। बंगाल रिलीफ फंड एवं ऐसे ही अन्य संगठनों तथा बाद में अखिल भारतीय महिला सम्मेलन की कलकत्ता शाखा द्वारा बंगाल के विभिन्न हिस्सों में स्थापित शिशु केन्द्रों के कार्य के दौरान भागीरथजी के साथ अपने सम्बन्ध का मुझे विशेष रूप से स्मरण है। बाद में १९४४ में अ० भा० महिला सम्मेलन के तहत अ० भा० शिशु-रक्षा कमेटी बनाई गई तो भागीरथजी ने उसमें भी प्रमुख हिस्सा लिया।

अकाल के वक्त मुझे भागीरथजी के साथ बंगाल के दूर-दराज के स्थानों की यात्रा करनी पड़ी। इन यात्राओं में मैंने उन्हें बहुत नजदीक से देखा। उनके सहज और सरल स्वभाव, काम के प्रति लगन और दूसरों की भावनाओं का हमेशा खयाल रखने और सम्मान करने की प्रवृति ने मुझे अत्यन्त प्रभावित किया। विभिन्न जिलों की यात्राओं के दौरान मैंने देखा कि वह सामान्य जनों से घुल-मिल जाते थे, उनके आतिथ्य को बहुत कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करते थे। मैं जानती थी कि वह अपने लिए टिकने की अच्छी व्यवस्था कर सकते थे लेकिन उन्होंने कभी ऐसा नहीं किया; जैसी भी व्यवस्था रहती, उसी में वह खुश रहते।

अकाल के दिनों में हम युवा-कार्यकर्ताओं पर उनके व्यक्तित्व की अमिट छाप पड़ी। उन्होंने सहायता-कार्य के साथ अपने को एकदम एकाकार कर डाला था। पीड़ित लोगों के प्रति उनके मन में सच्ची करुणा थी जो पग-पग में प्रकट होती थी।

व्यक्तिगत कारणों से उन्होंने शिशु-रक्षा कमेटी के कार्यों से छुट्टी ले ली। लेकिन हमने जब भी उनसे सहायता और सलाह चाही तो उन्होंने मुक्त हृदय से दी। यद्यपि अब वह हमारे बीच नहीं हैं लेकिन वह हमारी स्मृतियों में हमेशा जीवित रहेंगे; हम उन्हें एक महान कार्यकर्ता के रूप में हमेशा याद रखेंगे।

—: ० :—

सुप्रसिद्ध उद्योगपति एवं
स्व० जमनालालजी बजाज के पुत्र
श्री रामकृष्ण बजाज

अभिमानमुक्त

व्यवसाय और उद्योग में लगे हुए ऐसे व्यक्ति तो अनेक हैं, जो सामाजिक कार्यों के लिए आर्थिक सहायता और दान आदि देते हैं, किन्तु स्वयं सामाजिक संस्थाओं की प्रवृत्तियों में ध्यान, समय व शक्ति खर्च करें, ऐसे व्यक्ति बहुत ही कम पाये जाते हैं। श्री भागीरथजी उन्हीं गिने-चुने व्यक्तियों में से थे। जो भी सेवा-कार्य वे उठाते, उसमें दत्तचित होकर लग जाते थे। इन कार्यों के लिए एक तरफ धन जुटाना और दूसरी तरफ कार्यकर्ताओं को तैयार करना व उनसे काम लेना उनकी अपनी ही विशेषता थी। कार्यकर्ताओं के साथ वे एकरस हो जाते थे और इस तरह का मेलजोल का सम्बन्ध स्थापित कर लेते थे कि फिर किसी प्रकार का भेदभाव नहीं रह जाता था। उनमें अपना वर्चस्व जताने की प्रवृत्ति बिलकुल ही नहीं थी। यही कारण था कि वे पूरी तरह कार्यकर्ताओं का विश्वास प्राप्त कर लेते थे और उन्हें सार्वजनिक कार्यों में प्रेरित कर पाते थे। जिन संस्थाओं से वे सम्बन्धित थे उनकी दिक्कतों को दूर करने में वे सक्रिय रहते थे, खुद भी आर्थिक सहायता करते और दूसरों से भी धन एकत्रित करते थे। यही कारण था कि धनिक वर्ग में भी उनका मान-सम्मान था। एक और गुण उनमें यह था कि अपनी सेवा का, धन का और प्रतिष्ठा का अभिमान उनमें तनिक भी नहीं था।

हमारा तो उनका काफी पारिवारिक सम्बन्ध था। पू० पिताजी (श्री जमनालालजी बजाज) की उनसे बहुत ही आत्मीयता थी। सार्वजनिक कार्यों के प्रति दोनों का दृष्टिकोण एक जैसा ही था तथा कार्यप्रणाली में भी साम्य था। पिताजी जब भी कलकत्ता जाते तो, भागीरथजी, वसन्तलालजी मुरारका और सीतारामजी सेकसरिया के साथ काफी समय गुजारते, सार्वजनिक कार्यों की चर्चा करते, योजनाएं बनाते, और मिलजुल कर उन्हें कार्यान्वित करते थे। पू० भागीरथजी का जाना मेरे लिए तो व्यक्तिगत क्षति भी है। उनकी स्मृति को मेरे विनीत प्रणाम !

—: ० :—

प्रसिद्ध उद्योगपति एवं शिक्षा-प्रेमी
डॉ० रामनाथ पोद्दार

सेवा की प्रतिमूर्ति

मैं भागीरथजी साहब को बहुत अच्छी तरह जानता था लेकिन मुझे किसी खास कमेटी में उनके साथ काम करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। इसके बावजूद मैं उन्हें इतना तो जानता ही हूं कि उनकी सार्वजनिक सेवाओं, उनकी लगन और त्याग की प्रशंसा कर सकूं। उन्होंने बीसियों संस्थाओं का निर्माण किया जो हमें हमेशा उनके महान व्यक्तित्व को याद दिलाती रहेगी। अपने प्रेमल व्यक्तित्व और अपनी लगन के कारण वह समाज-सेवा का भाव रखनेवाले लोगों को अनायास ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेते थे। उनका जीवन बहुत दिनों तक बहुत से लोगों को प्रेरणा देता रहेगा।

—: ० :—

राजस्थान के वयोवृद्ध गांधीवादी, सस्ता साहित्य मंडल के संस्थापक
श्री जीतमल लूणिया

सादा जीवन : उच्च विचार

स्व० भागीरथजी कानोडिया के निकट सम्पर्क में आने का मुझे अवसर नहीं मिला और न उनके साथ कभी मेरा पत्र-व्यवहार ही हुआ, लेकिन सस्ता साहित्य मण्डल के साथ हम दोनों का ही अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध था और उस नाते हमलोग मंडल की बैठकों में प्रायः मिलते रहते थे।

एक बार हम लोग (श्री हरिभाऊ उपाध्याय, श्री मार्तण्ड उपाध्याय, श्री यशपाल जैन और मैं) कलकत्ता गये, तो उन्हीं के साथ ठहरे। अन्य व्यक्तियों से तो उनका बहुत ही नजदीक का परिचय था क्योंकि वे कलकत्ते जाते रहते थे और उन्हीं के यहां ठहरा करते थे, लेकिन मैं तो एक तरह से नया ही था। पर उन्होंने जो आतिथ्य-सत्कार किया और समय पर खाने-पीने आदि की छोटी-से-छोटी बात तक के लिए जिस प्रकार बराबर पूछते रहे, उससे उनके सौजन्य का मेरे मन पर बड़ा असर पड़ा। वह सम्पन्न व्यक्ति थे। उनके यहां नौकर-चाकर थे, फिर भी वह स्वयं बड़े ही नम्र और सेवा-भावी थे। ऐसा गुण बहुत कम संम्पन्न व्यक्यिों में पाया जाता है, पर भागीरथजी तो अपने इस गुण के कारण सर्वत्र आदर के भाजन थे।

परोपकार-वृत्ति उनमें गजब की थी। कोई भी जरूरतमन्द आदमी अथवा सेवा-भावी संस्था का प्रतिनिधि उनके पास आता था तो वह स्वयं उसकी आर्थिक सहायता करते थे, साथ ही अन्य व्यक्तियों से भी सहायता दिलवा देते थे। अभिमान तो उन्हें छू भी नहीं गया था। हमेशा हंसमुख और नम्रता से पूर्ण ही मैंने उन्हें पाया। वह कहने में तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं होगी कि वह सेवा की जीवन्त प्रतिमा थे और दीन-दुखियों की सहायता के लिए सदैव तत्पर रहते थे। हरिजनों के प्रति उनका अगाध प्रेम था। वह जात-पांत अथवा धर्म के आधार पर किसी को छोटा या बड़ा नहीं मानते थे और मानव के नाते सबको समान आदर देते थे। यदि कोई छोटा व्यक्ति उनके पास पहुंच जाता था तो भागीरथजी के सामने वह दीनता अनुभव नहीं करता था, बल्कि उसे इस बात से प्रसन्नता ही होती थी कि वह उनके पास से छोटा होकर नहीं, बल्कि बड़ा होकर ही लौटा है।

भागीरथजी के जीवन में हद दर्जे की सादगी थी। उनके रहन-सहन, आचार-विचार आदि को देखकर कोई भी यह नहीं कह सकता था, कि वह इतने पैसेवाले व्यक्ति हैं। उनका हाथ हमेशा खुला रहता था। जरूरतमंदों को वह भरपूर सहायता देते थे और सबसे बड़ी बात यह कि वह जो कुछ देते थे, दिल से देते थे और उसके पीछे यश प्राप्त करने की भावना नहीं होती थी। इस प्रकार के सेवा-भावी, सात्त्विक, परदुखकातर व्यक्ति बहुत कठिनाई से मिलते हैं। इसीसे भागीरथजी का अभाव आज बहुत अखरता है।

सच बात यह है कि वह व्यक्ति नहीं, संस्था थे और अपने जीवन में उन्होंने लोक-कल्याण के जो कार्य किये, वे एक बड़ी-से-बड़ी संस्था भी नहीं कर सकती थी। मैं उनके प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं।

—: ० :—

राजस्थान के वरिष्ठ नेता

श्री कुम्भाराम आर्य

राजस्थान के सपूत

श्री भागीरथजी कानोड़िया राजस्थान के सपूतों में से एक थे। अपने पुरुषाथ और सामर्थ्य से उन्होंने जो यश और कीर्ति अर्जित की, उसका उदाहरण नहीं है।

बोल-चाल में ग्रामीण मारवाड़ी, रहन-सहन सरल और सीधा जीवन, न यश, न कीर्ति की चाह, न धन का अभिमान। वे गांव, गरीव और दुखियों के दुख से सहानुभूति रखते थे। सेवा उनके जीवन का धर्म था।

मेरा उनसे सम्वन्ध रहा। मैंने उन्हें जब देखा, गांव, गरीव और पीड़ितों की सेवा में लगा ही देखा। धन कमाते कभी नहीं देखा, फिर भी वे करोड़पतियों की श्रेणी में तो थे ही। हंसमुख और मृदुभाषी थे। गरीवी और अमीरी का सही अनुभव उनके जैसा शायद किसी को न हो। उनको दोनों (गरीवी और अमीरी) सिद्धि प्राप्त थी। न गरीवी से घबराये और न अमीरी से बौराये। उनका जीवन सधा हुआ जीवन था। उनको कटु और कठोर बोलते कभी देखा और सुना नहीं। शायद मां-बाप ने यह सिखाया ही न हो। कठोर और विषम स्थिति को भी शान्त भाव से टाल देते थे। क्रोध कभी देखने को नहीं मिला, पर सोचता हूं कि आता तो होगा ही, क्योंकि यह मानव स्वभाव में है। जो हो उन्हें कभी क्रोध करते नहीं देखा।

शेखावाटी उनके उपकार की सदा ऋणी रहेगी। आज शिक्षा और राजनैतिक क्षेत्र में जो उन्नति शेखावाटी में दिखाई पड़ रही है, उसका श्रेय धनपति बिड़लाजी के साथ कानोड़ियाजी को भी है। बिड़ला ट्रस्ट का धन, शिक्षा-कार्य में इतना सही और फलदायक सिद्ध नहीं होता, यदि श्री निहालसिंहजी तक्षक शिक्षा-कार्य के संचालक नहीं होते। तक्षकजी को लानेवाले कानोड़ियाजी थे। उन्होंने जन-जागृति के लिए जयपुर, बीकानेर और पटियाला आदि देशी रियासतों के क्षेत्र में जो शिक्षा का कार्य करवाया वह किसी से छिपा नहीं है। राजस्थान के उत्थान में बिड़लाजी का धन और कानोड़ियाजी का मन पूरी तरह से लगे। कानोड़ियाजी अपने ट्रस्ट का धन भी शिक्षा-कार्य में अधिक व्यय करते रहे। जयपुर में कानोड़िया गर्ल्स कालेज और अपनी जन्मभूमि मुकुन्दगढ़ में स्थापित कालेज कानोड़िया ट्रस्ट की देन हैं।

पीने के पानी की योजना को ले कर जो कार्य राजस्थान के गावों में हुआ, उसमें कानोड़ियाजी का विशेष हाथ था, राज और समाज से करोड़ों रुपये इस कार्य में उन्होंने लगवाये।

उनके उपकार से न जाने कितने परिवार और व्यक्तियों को लाभ हुआ है और प्रसिद्धि मिली है। आजादी के पूर्व अनेक राजनीतिक कार्यकर्ता कानोड़ियाजी से रक्षण और पोषण पाते रहे हैं। आज वह हमारे बीच नहीं हैं पर उनके उपकार सदैव स्मरण रहेंगे।

—: ० :—

राजस्थान विधानसभा के भूतपूर्व अध्यक्ष

श्री नरोत्तमलाल जोशी

पुण्यश्लोक भागीरथजी

श्री भागीरथजी कानोड़िया से मेरा साक्षात्कार १९३७-३८ में हुआ, जब मैंने काशी विश्वविद्यालय से शिक्षा प्राप्त कर शेखावाटी क्षेत्र में वकालत शुरू की थी और सामाजिक एवं राजनैतिक कार्यों में भाग लेने लगा था। झुंझनू नगर में उस समय हरिजनों विशेषकर मेहतरों को पीने के पानी की बड़ी दिक्कत थी। रींगस निवासी भाई श्री मूलचन्दजी अग्रवाल उस समय प्रजामण्डल के कार्य के सिलसिले में झुंझनू रहते थे। हम दोनों ने मिल कर झुंझनू के सेठ भोलारामजी टीबड़ेवाला की सलाह एवं सहयोग से कानोड़ियाजी से मुकुन्दगढ़ जा कर सम्पर्क किया। उन्होंने कुछ आर्थिक सहयोग दिया और बाद में हरिजन सेवक संघ के ठक्कर बापा से पत्र-व्यवहार हुआ और उनकी आर्थिक सहायता व सहयोग से मेहतरों के मोहल्ले में कुआं बनाया गया। कानोड़ियाजी उक्त कुएं के निर्माण के बाद स्वयं झुंझनू निरीक्षण को आए। उन वर्षों में देहातों में शिक्षा-प्रसार के लिए कहीं भी राजकीय स्कूल नहीं थे। मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी, कलकत्ता, सुप्रसिद्ध दानवीर राय बहादुर सेठ सूरजमल शिवप्रसाद, राजपूताना शिक्षा मण्डल तथा बिड़ला ऐजूकेशन ट्रस्ट की ओर से कई कसबों में स्कूल खोले गए। उसी सिलसिले में कानोड़िया एजूकेशन ट्रस्ट की ओर से भी तत्कालीन जयपुर राज्य द्वारा निर्धारित पाठ्य प्रणाली के अनुसार कई स्कूल देहातों में खोले गए। बालिकाओं में शिक्षा-प्रसार के लिए सुप्रसिद्ध राष्ट्रकर्मी स्वनामधन्य श्री हीरालालजी शास्त्री ने उन्हीं वर्षों में वनस्थली विद्यापीठ की स्थापना की।

कानोड़ियाजी वर्ष में २-३ बार अपने व्यस्त कामकाजी जीवन में से समय निकाल कर मुकुन्दगढ़ अवश्य आया करते, विशेषतः आश्विन मास में, जब यहां की मरुभूमि में चारों ओर हरियाली रहती थी, फसल पकने में आती और मौसम बड़ा स्वास्थ्यप्रद व सुहावना हो जाता था। उनके साथ उनकी मित्रमण्डली के बहुत लोग कलकत्ता से आते थे जिनमें प्रायः सीतारामजी सेकसरिया अवश्य होते थे। प्रसिद्ध समाज सुधारक श्री बसन्तलालजी मुरारका भी प्रायः आते रहते थे। कानोड़िया ट्रस्ट द्वारा संचालित स्कूलों के अध्यापकों, विद्यार्थियों तथा उस क्षेत्र के काश्तकारों और हरिजनों की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति की कानोड़ियाजी पूरी जानकारी रखते थे। वनस्थली में प्रारम्भिक वर्षों में शेखावाटी की ही बालिकाओं ने ही अधिकतर प्रवेश लिया था। उन सब की प्रेरणा, छात्रवृत्ति एवं व्यवस्था के मूल में कानोड़ियाजी ही थे। बाद में तो इस संस्था ने अखिल भारतीय क्षेत्र की स्त्री-शिक्षा की संस्था के रूप में अद्वितीय ख्याति प्राप्त की। वनस्थली से कानोड़ियाजी आजीवन सम्बद्ध रहे। कानोड़िया ट्रस्ट की ओर से उस समय मिडिल स्कूल चलता था जिसमें विख्यात शिक्षा-शास्त्री प्रधानाध्यापक रखे जाते थे। इस क्षेत्र के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं शिक्षा प्रसार में जिन व्यक्तियों और परिवारों का योगदान रहा है उसमें कानोड़ियाजी व उनके परिवार की मुख्य गणना है।

कानोड़ियाजी की वृत्ति प्रधानतः शिक्षा-प्रसार, सामाजिक कुरीतियों का निवारण, छूआछूत को दूर करना तथा हरिजनोद्धार की थी। ठिकानेदारों और काश्तकारों के संघर्ष में उनकी सहानुभूति काश्तकारों की ओर थी क्योंकि जागीरी शासन का अत्याचार वे स्वयं अपनी आंखों से देख चुके व अनुभव कर चुके थे। उन्होंने जनता को शिक्षित करने के लिए स्कूल खोले और खुलवाए और अकाल-सहायता कार्य, जल कष्ट निवारण, छूआछूत को मिटाने में बरावर लोगों को प्रेरणा देते रहे। राजस्थान वनने के वाद जल-वोर्ड के माध्यम से पेय जल-संकट निवारण के निमित्त मोहनलालजी सुखाड़िया की सरकार के साथ सहयोग करके उन्होंने जो कार्य किया उससे राजस्थान के जल संकटग्रस्त क्षेत्रों को बड़ी राहत मिली। कलकत्ता में जहां उनका व्यापार केन्द्र था, राजस्थान की रियासतों के सार्वजनिक कार्यकर्ता वरावर सहायता के लिए कानोड़ियाजी के मेहमान रहते थे और शायद ही किसी देशी रियासत के कार्यकर्ता ऐसे रहे हों जिन्होंने कानोड़ियाजी के सहयोग का लाभ न लिया हो।

कानोड़ियाजी शरीर के दुवले-पतले, स्वभाव से मृदुभाषी, सहिष्णु, सरल और तीक्ष्ण बुद्धि थे। वे एक दृष्टि में ही मिलनेवाले का पूरी तौर से मूल्यांकन कर लेते थे किन्तु अप्रिय सत्य किसी को नहीं कहते थे। सन् १९४३ की वात है, जब सारे राष्ट्रीय नेता जेल में बन्द कर दिये गये और महात्मा गांधी को भी जेल में बन्द कर दिया गया था उस समय कलकत्ता के एक युवा दम्पत्ति ने अपना जीवन समाज-सेवा के लिए अर्पण कर दिया और गांधीजी की खादी और ग्रामोत्थान की योजना ले कर शेखावाटी के एक ग्राम में आकर रहने लगे। उक्त दम्पति ने स्पष्टतः कानोड़ियाजी से सलाह की थी और सहायता भी मांगी—कानोड़ियाजी ने उनकी आर्थिक सहायता तो की परन्तु अपने मधुर स्वभाव के अनुरूप उन्हें यह भी वतलाया कि यह प्रण निभना कठिन है। इस पर भी वे झुंझनू के पास एक ग्राम में आ कर बैठे और स्कूल, आश्रम, ग्राम-सफाई, खादी ग्रामोद्योग का कार्य चालू कर दिया। वे थोड़े दिनों में ही ऊब गये। उनके कार्य का श्रीगणेश हुआ ही था कि इन पंक्तियों के लेखक से, कलकत्त में मिलने पर कानोड़ियाजी ने मुझसे पूछा कि "आप की राय में कितने दिनों तक निभनेवाला है?" उनका स्पष्ट संकेत था कि युवा दम्पति रचनात्मक कार्यों में ज्यादा समय तक निभनेवाले नहीं है। आर्थिक सहयोग तो क्षेत्र के वाहर दानी महानुभावों से ही प्राप्त होता था जो ज्यादा लम्बा चलनेवाला नहीं था। एक वर्ष चल कर सारा कार्य बन्द हो गया। वाद में उन्होंने अपने सहयोग के लिए यह कह कर सन्तोष किया कि ऐसे मंगल व कल्याण कार्यों में जितना भी कुछ किया जा सके वह ठीक ही है।

भारतीय संस्कृति में लक्ष्मी का महत्व दान से आंका गया है। "दानायः लक्ष्मीः सुकृताय विद्या" की कहावत प्रसिद्ध है। इस क्षेत्र की पुरानी परम्परा के अनुसार दाता अपने दान में किसी दूसरे के दान को शामिल नहीं करता था। यथाशक्ति दान कर के आत्मसन्तोष करता था चाहे वह मात्रा में कितना ही स्वल्प हो। स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व इस क्षेत्र में शिक्षा एवं चिकित्सा क्षेत्र में दानी सेठ महानुभावों का ही योगदान रहा है। अब तो स्कूल, कालेज और अस्पताल हमारे लोककल्याणकारी राज्य में हर जिले में स्थापित हो गये हैं। झुंझनू जिले में इससे पूर्व भी लगभग

प्रत्येक गांव में दानी सेठ महानुभावों की ओर से स्कूल, धर्मशाला व औषधालय व कूप आदि बनाये गये। शिक्षा के क्षेत्र में राज्य सरकार ने इस जिले में कोई कालेज नहीं खोला और चल रहे स्कूल और कालेजों को राज्य की ओर से वित्तीय अनुदान देना शुरू कर दिया। कानोड़ियाजी को प्रारम्भ में यह बड़ा अटपटा लगा। सन् १९५२ में उन्होंने राजस्थान के तत्कालीन मुख्यमन्त्री श्री जयनारायणजी व्यास को यह कहा भी कि राज्य सरकार उन स्कूल और कालेजों को आर्थिक सहायता क्यों देती है जिनके पीछे बहुत बड़ी आमदनीवाले ट्रस्ट हैं और जिन्हें आर्थिक सहायता की आवश्यकता नहीं है? आज ३ वर्ष के राजकीय अनुदान के अनुभव से हमने जो कुछ पाया है वह हमारे सामने है। अनुदान प्राप्त करनेवाली संस्थाओं के शिक्षा स्तर और अनुदान को सर्वथा अस्वीकार करनेवाले बिड़ला ऐजूकेशन ट्रस्ट की संस्थाओं के शिक्षण स्तर का अन्तर हमारे सामने है, अस्तु।

कानोड़ियाजी रचनात्मक, साहित्यिक एवं लोक-सेवा के कार्यों में सदा अग्रसर रहते हुए भी अपने स्वयं के विज्ञापन, ख्याति, प्रचार से दूर रहते थे। शायद ही उन्होंने किसी जातीय, सांस्कृतिक या अन्य किसी सम्मेलन का सभापतित्व किया हो। ऐसा करना उनके लिए बहुत सुलभ था परन्तु वे सदा इससे दूर रहे। वे अपनी सामर्थ्य के अनुसार सहायता करके व्यक्ति को समाज में अधिक चरित्रवान, शीलवान, विद्वान और समाज के उपयोगी बनाने का प्रयास करते थे। उनके सान्निध्य में पवित्रता, सरलता और शुद्ध विचारों की लहर बहती थी। उनकी निश्छल आत्मीयता सदा ही मिलनेवाले को अपनी ओर आकर्षित करती रही। उनके सम्पर्क से कितने ही लोगों ने अपने जीवन में प्रेरणा ली, कितनी ही संस्थाएं स्थापित हुईं कितनी ही संस्थाओं को बल मिला। साहित्यकारों की रचनाओं और प्रवृत्तियों को प्रेरणा मिली और लोक-कल्याण का कार्य आगे बढ़ा। झुंझनू के 'श्री मातादीन खेतान अस्पताल' व सीकर के सावली टी० बी० सेनिटोरियम उनकी ही प्रेरणा व सहयोग से अस्तित्व में आये हैं। श्री कानोड़ियाजी का दान सविवेक एवं त्रिगुणात्मक था। श्री भर्तृहरि के कथनानुसार "मन्यामहे मलयमेव यदाश्रयेण कंकोल निम्बकुटजाः अपि चन्दनाःस्युः" उनके सम्पर्क से उनके सद्गुणों का प्रसार दूसरे व्यक्ति में संक्रमित हो कर उसे मंगल मार्ग की ओर अग्रसर करता था। कानोड़ियाजी का बाल्यकाल मुकुन्दगढ़ शेखावटी में बीता और यहां ही उन्होंने शिक्षा प्राप्त की। कलकत्ता और बंगाल उनका व्यापारिक क्षेत्र था। वैसे इस क्षेत्र में धनीमानी व्यक्तियों की कमी नहीं है परन्तु साधारण जनता के लिए सहज सुलभ व सहानुभूति रखनेवाला व समय-समय पर उनके दुख दर्द में काम आनेवाला कानोड़ियाजी जैसा दूसरा व्यक्ति मिलना कठिन है। उनके स्वर्गवास से इस क्षेत्र की एक ऐसी हस्ती चली गई जिसकी पूर्ति नहीं हो सकती। वे अपने सुख व सुविधा की अभिलाषा न करके लोगों की कल्याण साधना करते थे। उनकी श्रद्धांजलि में महाकवि कालिदास की निम्न उक्ति चरितार्थ होती है:—

स्वसुखनिरभिलाषः खिद्यसे लोकहेतोः
प्रतिदिनमथवा ते वृत्तिरेवंविधैव।

—:०:—

समाज-सेवी, प्रमुख सॉलीसीटर
श्री भगवतीप्रसाद खेतान

युग-पुरुष

श्री भागीरथजी कानोड़िया की जीवन-यात्रा की समाप्ति का समाचार हृदय को स्तंभित कर देनेवाला समाचार था। यों तो जो जन्म लेता है, उसका एक दिन अन्त होता ही है, किन्तु भागीरथजी जैसे व्यक्ति जब दिवंगत हो जाते हैं, तो समाज में एक ऐसी शून्यता छोड़ जाते हैं, जो सहजता से भरी नहीं जा सकती। अपने जीवन-काल के सत्कर्मों के प्रकाश के द्वारा वे दुखी, दलित और उत्पीड़ित मानवता का एक ऐसा आधार बन गए थे कि उनका अभाव उन लोगों के लिए तो एक काल-रात्रि के समान ही हुआ है। मनुष्य कितना जिया यह उसने कितना जन-हित का काम किया, इस कसौटी पर आंका जाता है। इस दृष्टिकोण से उन्हें दीर्घजीवी ही कहना उपयुक्त होगा। उनकी सेवाओं का लेखा बहुत लम्बा है। जिस किसी भी संस्था से उनका सम्पर्क हुआ, वह इतना गहरा था कि उनकी अनुपस्थिति उन्हें हमेशा खलेगी।

मेरा उनके साथ वर्षों से घनिष्ठ सम्बन्ध था। कई न्यासों में हम न्यासियों के रूप में सम्बन्धित थे। मैंने देखा है कि न्यास की राशि का सदुपयोग और याचकों की आवश्यकताएं पर्याप्त मात्रा में तत्काल पूरी हों इसके लिए वे कितने आतुर, उदार और सम्वेदनशील थे। आर्त और दुखियों के प्रति उनके मन में सहज करुणा की भावना थी और उनकी पीड़ा दूर करने के लिए वे कितने व्यग्र और प्रयत्नशील हो उठते थे, यह जो उनके निकट सम्पर्क में रहा है, वही जान सकता है क्योंकि उनमें प्रदर्शन की भावना बिलकुल नहीं थी, बल्कि कभी ऐसी सम्भावना होती तो वे सचेष्ट हो कर उससे दूर हो जाते थे। सेवा करके उन्हें आध्यात्मिक तृप्ति मिलती थी। यह एक मणिकांचन योग ही कहना चाहिए कि जितनी गहराई में उनमें सेवा-भावना थी, उसी अनुपात में उन्हें साधन भी सुलभ थे, जिनका अपनी क्षमता के साथ उन्होंने सदैव उचित उपयोग किया।

कलकत्ता का सामाजिक-जीवन आज उनके अभाव में शून्य हैं। यहां की प्रत्येक प्रकार की राष्ट्रीय, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक प्रवृत्तियों में उनके अवदान की अमिट छाप है। पीड़ित मानवता की सेवा का अवसर वे कभी नहीं चूके, सदा आगे रहे, और जहां यश या नाम की बात आई उन्होंने अपना पग पीछे हटा लिया। राजस्थान की समस्याओं के समाधान और उसके विकास की भूमिका में तो भागीरथजी का नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा ही जाएगा। वे सच्चे अर्थ में युग-पुरुष थे। वे अब हमारे बीच नहीं हैं, किन्तु उनकी प्रेरणा सदा हमारा पथ-प्रदर्शन करती रहेगी।

—: ० :—

सामाजिक कार्यकर्ता,
मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी के भूतपूर्व प्रधानमंत्री
श्री सीताराम केड़िया

न्यायनिष्ठ सरपंच

यों तो समाज की गाड़ी चलती ही रहती है, किन्तु वीच-वीच में कुछ ऐसे लोग जन्म लेते हैं, जिन्हें लोग याद ही करते रहते हैं। ऐसे लोग समाज को गौरवान्वित तो करते ही हैं वर्षों तक ऐसे व्यक्ति के जीवन की घटनाओं का उदाहरण भी दिया जाता रहता है। ऐसे ही व्यक्ति थे श्रद्धेय स्वर्गीय श्री भागीरथजी कानोड़िया। उनसे मिलनेवाला व्यक्ति प्रथम मुलाकात में ही महसूस करने लगता था कि ये तो मेरे ही हैं। यही उनकी सबसे बड़ी विशेषता थी। मेरा श्री कानोड़ियाजी से सन् १९३८-३९ में मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी को लेकर प्रथम परिचय हुआ था। इसके बाद दिन-प्रति-दिन मेरे ऊपर उनका स्नेह बढ़ता ही गया। श्री कानोड़ियाजी मृदुभाषी, मिलनसार एवं बहुत ही हंसमुख व्यक्ति थे। वे किसी को कड़ी बात भी कहते थे, तो उनकी कहने की ऐसी शैली थी कि वह सुननेवाले को बुरी नहीं लगती। हर बात के साथ राजस्थानी कहावतों की याददाश्त रखना एवं समयानुसार उनका उपयोग करना उनकी विलक्षण प्रतिभा थी।

श्री कानोड़ियाजी के पास बहुत से व्यक्ति किसी-न-किसी प्रकार की आकांक्षा ले कर जाते थे एवं वे तन-मन-धन से यथासम्भव आनेवाले की आकांक्षा पूरी करने की चेष्टा करते थे, तो भी गाते नहीं थे। कारण जैसे कि आजकल के अधिकांश लोगों में है, उनके मन में नाम की भावना नहीं थी। न फोटो का शौक, न प्रचार की भावना। मन में सेवा की भावना थी एवं दूसरे के दुःख को महसूस करते थे, यही उनकी प्रमुख विशेषता थी।

श्री कानोड़ियाजी ने अपने जीवन-काल में जितनी आपसी पारिवारिक पंचायतें की थीं, शायद ही किसी ने की हों। इन पंचायतों के जरिये कितने परिवार नष्ट होने से बचे, कितने घरों में कलह का सूत्रपात हो कर वापस सद्भावना और प्रेम हो गया, उसकी गिनती नहीं है। उनके जीवन-काल का बड़ा समय पंचायतियां सलटाने में लगा है। मारवाड़ी समाज में घरेलू झगड़ा पंचायतों द्वारा सलटानेवालों में दो नाम ही आते हैं—प्रथम, श्रद्धेय श्री जयदयालजी गोयनका एवं दूसरे श्री भागीरथजी कानोड़िया। मैंने उनके ही मुंह से सुना था कि कभी-कभी पंचायत करने में भी बड़ा संकट उपस्थित हो जाता था। एक बार जब वे बिरला ब्रदर्स में काम करते थे, तो एक पंचायती पाट के सौदे के झमेले की थी। उसमें पंचायत करने के लिये जिन्होंने उनका नाम दिया था वे श्री जुगलकिशोरजी बिड़ला के नजदीकी व्यक्तियों में थे। फैसला जब उनके विरुद्ध हुआ तो वे इतने नाराज हो गये, कि पहले तो उन्होंने भागीरथजी को काफी खरी-खोटी सुनाई और कहा कि तुमको घर का समझ कर तुम्हारा नाम दिया था। यदि ऐसा ही फैसला कराना था तो बहुत नाम थे। उन्होंने काफी समझाया तो भी सन्तोष न कर के श्री बिड़लाजी के पास शिकायत ले गये और कहा कि "हमने तो

भागीरथ का नाम घर का समझ कर दिया था, और उन्होंने तो हमें डुबो दिया।" इस पर श्री बिड़लाजी ने उनको बुला कर पूछा और उन्होंने सारी बात उन्हें समझाई, तब उन्होंने कहा कि तुमने ठीक ही किया है। फैसला हमेशा वाजिव ही होना चाहिये। तो भी वह पक्ष वर्षों तक उनसे बहुत नाराज रहा। सोचता हूं, वह भी जमाना था, ऐसे भी व्यक्ति थे जिन्होंने निर्भीक हो कर फैसला दिया, जरा भी नहीं सोचा कि वाबू नाराज होंगे या राजी। आज तो लोग वावू को राजी करने के लिये किसी प्रकार का भी अन्याय करने से नहीं हिचकते हैं। सभी बड़े प्रतिष्ठानों में ऐसे बहुत लोग भरे पड़े हैं।

इसी तरह की एक दूसरी पंचायत के वारे में उनसे सुना था। आपस में दो भाइयों के अलग होने की पंचायती थी। करीव २० लाख के एस्टेट का बंटवारा उस सस्ती के जमाने में करना था। सारा काम सलट गया। दोनों भाई राजी हो गये किन्तु एक हीरे की अंगूठी को लेकर दोनों में जिद हो गयी—अंगूठी तो मैं ही लूंगा। बड़ा भाई कहता: मेरा हक है। छोटा कहता: मेरा। सलटे-सलटाये काम में धर्म-संकट पैदा हो गया। आखिर भागीरथजी ने अलग-अलग ले कर दोनों को आश्वासन दिया कि अंगूठी तुम्हें ही मिलेगी लेकिन ३-४ महीने बाद और इस शर्त पर कि तुम इसका ५ साल तक न तो इस्तेमाल कर सकोगे तथा न किसी को कह सकोगे कि अंगूठी तुमको दी गई है। इस तरह दोनों को अलग-अलग इस बात की सौगन्ध दिलवाई गई, और अंगूठी अपने पास रख कर सारी लिखा-पढ़ी करवा कर सारा मामला सलटाया गया। बाद में चुपचाप किसी तरह उसी प्रकार की दूसरी अंगूठी बनवा कर उसे इस्तमाल के द्वारा पुरानी कर के, करीब ४ महीने वाद दोनों भाइयों को अलग-अलग बुलवा कर पुरानी सौगन्ध दोहराते हुए (दोनों को) अंगूठी दे दी गई। कुछ दिनों के बाद दोनों भाइयों में आपसी प्रेम वापस हो गया और पहले से भी ज्यादा सद्भावना हो गयी तो छोटे भाई ने अपनी अंगूठी बड़े भाई को ले जा कर दी और कहा—मेरी भूल थी यह अंगूठी आप ले लीजिये। इस पर भेद खुला और दोनों ने ही अपनी-अपनी अंगूठी देखी। दोनों भाई काफी लज्जित हुए और पंच के पास जा कर क्षमा याचना की तथा मयव्याज के अति आग्रहपूर्वक अंगूठी की लागत दी जो करीब ५-६ हजार की थी। कितनी ही पंचायतों में तो दोनों ही पक्ष उनके विरोधी हो जाते थे। ऐसी थी यह समाज-सेवा जिसे करने का सौभाग्य विरलों को ही मिलता है, क्योंकि पंचायती करानेवालों का विश्वास अर्जन करना भी मामूली बात नहीं है। श्री भागीरथजी ने अपने जीवन-काल में सैकड़ों पंचायतियां कर अपना अमूल्य समय देकर आर्थिक नुकसान भी उठाया, पर साथ ही बहुत परिवारों को नष्ट होने से भी बचाया। मैंने भी उनसे दो पंचायतियां करवाई थीं। पहली, मेरे परिवार में दो भाइयों के झगड़े की थी जिसमें उनको ६-७ महीने तक कष्ट उठाना पड़ा। उन्हें बहुत कष्ट हुआ था किन्तु उनके प्रयत्न से वास्तव में वे परिवार नष्ट होने से बच गये। करीब १५ वर्ष पहले मेरा उनसे थोड़ा व्यापारिक सम्बन्ध हो गया था। एक बार उन्हीं की प्रभा कॉटन मिल का एक झमेला एक्साइज ड्यूटी को लेकर मिलवालों ने डाल दिया। कानूनन मिलवालों की गलती थी, किन्तु लोभ सब कुछ करा देता है। आखिर मैंने कहा कि बड़े बाबू को सारा मामला समझा कर उनसे फैसला करा लें, वे जैसा कहेंगे मेरे व्यापारियों को मन्जूर होगा। अब मिलवालों

को बोलने की गुंजाइश नहीं रह गई। श्री भागीरथजी ने ५ मिनट में सारी बात समझ कर फैसला कर दिया। मिल का कार्य श्री आत्मारामजी कानोड़िया देखते थे, उन्हें साफ कह दिया कि आत्माराम इसमें मिलवालों की बड़ी भूल है, ऐसा नहीं करना चाहिये।

व्यापारिक सम्बन्ध होने के कारण मुझे उनके पास जाने का काफी अवसर मिलता था। कभी-कभी तो घंटों गपशप लग जाती थी। इसी सन्दर्भ में एक दिन की बात याद आती है। उस दिन शायद उनका मूड कुछ आफ था। मैं करीब १२ बजे उनके पास कार्यालय में पहुंच गया था। उस दिन मेरे बैठे-बैठे करीब ४-५ याचक याचना लेकर आये। उनसे बात करने में आधा घंटा समय व्यतीत हो गया तो बोले कि ये लोग हैरान कर देते हैं। दिन भर दिक करते रहते हैं। मैंने कोई उत्तर नहीं दिया, तो बोले कि आप बोले कैसे नहीं? तब मैंने कहा कि बाबू, क्या बोलूं। यही तकलीफ मुझे है। आपको तो यह लोग फुरसत नहीं लेने देते तथा मेरे पास आते नहीं हैं। इस पर बोले यह क्या तकलीफ है, कल से ही इन्हें आपके पास भेज दूंगा। तब मैंने कहा कि बाबू, इससे बड़ा और कोई उपकार नहीं होगा। यदि आप इनको मेरे पास भेज सकें तो मैं अपने को महान भाग्यशाली समझते हुए जिंदगी भर आपका अहसासमन्द रहूंगा। मेरी बात सुन कर एक बार तो चुप हो गये, बाद में बोले कि आप ठीक कहते हैं। जिस पर भगवान की कृपा होती है उसी के पास याचक आते हैं। कभी-कभी भाई रामेश्वरजी टांटिया के साथ जब भागीरथजी से बात करने का मौका मिलता था, तो वह समय तो याद रखने योग्य ही होता था क्योंकि जैसे श्री कानोड़ियाजी खुशमिजाज थे, वैसे ही भाई टांटियाजी भी बड़े मजाक-पसन्द, सेवाभावी तथा अपने मित्रों के लिये उदार-हृदय थे। सार्वजनिक सेवा में इन लोगों का बड़ा योगदान था। मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी तथा मारवाड़ी आरोग्य भवन, जसीडीह तथा कल्याण आरोग्य सदन, सीकर के तो प्राण थे। वैसे शायद ही कोई सार्वजनिक कार्य हो जिसमें किसी न किसी रूप में भागीरथजी का योगदान नहीं रहा हो। यों तो कानोड़िया परिवार के कई सदस्यों से मेरा काफी परिचय है, किन्तु श्री भागीरथजी तो एक अलग ही व्यक्तित्ववाले व्यक्ति थे। समाज में उनके स्थान की पूर्ति असम्भव है। प्रकृति के नियमानुसार जो जन्म लेता है उसे जाना ही पड़ता है, किन्तु इस तरह जाना भी अपने आप में शान रखता है। विरले ही लोगों को इस तरह अपना पार्ट पूरा करके जाने का अवसर मिलता है। उन्होंने अपने जीवनकाल में जितनी समाज-सेवा की उसकी आज के युवक तो स्वप्न में भी नहीं सोच सकते। राजस्थान के भयानक अकाल में उन्होंने श्री सोढाणी, श्री टांटिया एवं अन्य मित्रों के साथ जिस तरह कड़कती धूप में गांव-गांव घूम कर सेवा की, वह भुलाई नहीं जा सकती है। कुछ महीने पहले उदयपुर के एक सार्वजनिक वयोवृद्ध कार्यकर्ता आये थे। उन्होंने बातों ही बातों में कहा, श्री कानोड़ियाजी चले गये। मैं उनकी आफिस में गया था। चेष्टा करने पर भी किसी ने एक मिनट का भी मिलने के लिये समय नहीं दिया। चिट भिजवाने पर भी यही उत्तर मिला, अभी कार्य में व्यस्त हैं। कानोड़ियाजी के पास तो बिना चिट के ही चला जाता था, और वे बड़े प्रेम से मिलते थे। मैंने तो उन्हें यही कहा, कि उनकी बात उनके साथ चली गई। आपको विचार नहीं करना चाहिये। आजकल का धन्धा ही ऐसा है लोगों के पास समय का बहुत अभाव रहता है। उनका उत्तर था 'ठीक ही है।'

—: ० :—

सामाजिक कार्यकर्ता, राजस्थान जल बोर्ड में भागीरथजी के सहकर्मी

श्री मातादीन खेतान

सेवामय प्रेम-स्रोत

समाज-सेवा, शिक्षा, मानव-सेवा और इसी प्रकार की अन्य प्रवृत्तियों में कोई जब अपने को समर्पित कर देता है तो वह एक ऐसे मनुष्य की कोटि में पहुंच जाता है जो समाज की अन्य धरोहर की भांति ही एक मूल्यवान धरोहर बन जाता है। ऐसे व्यक्ति के व्यक्तित्व से समाज को प्रेरणा प्राप्त होती है और सद्वृत्तियों की परम्परा में एक और कड़ी जुड़ जाती है। भागीरथजी कानोड़िया, मेरी दृष्टि में, व्यक्ति नहीं, ऐसे ही एक व्यक्तित्व थे। उन्होंने जीवन पर्यन्त समाज-सेवा में संलग्न रह कर जितना किया, उससे कहीं अधिक उन्होंने समाज के लिए समाज से ही करवाया। उनका यह एक विशेष गुण था।

मेरा उनका परिचय यों तो लम्बे अरसे से था पर उनके निकट सम्पर्क में आने का अवसर मुझे सन् १९५०-५१ में, जब राजस्थान में भीषण अकाल से वहां की जनता त्राहि-त्राहि कर रही थी, तब मिला। उस समय मैं मारवाड़ी रिलीफ़ सोसाइटी की ओर से अकाल पीड़ितों की सेवा के लिये बीकानेर गया हुआ था। संस्थाओं के साथ सरकार भी इस सेवा कार्य में बड़ी तत्परता से जुटी थी। फिर भी कुछ उल्टा प्रचार किसी राजनीतिक दल के द्वारा यह किया गया था कि बीकानेर में लोग भरूट खाकर जी रहे हैं।

इन सम्बन्ध में मुझे भागीरथजी का एक पत्र वहीं मिला। उस पत्र में उन्होंने लिखा था—हम लोगों को, जो मानव-सेवा जैसे पुनीत कार्यों में संलग्न है, राजनीति से दूर रहना चाहिए। हमें सरकार से मिल कर अकाल पीड़ितों की सेवा करनी चाहिए। मैं वहां लगभग दो महीने रहा और इन दो महीनों में मुझे वे बराबर पत्र द्वारा सलाह देते रहे। दूसरी बार राजस्थान में जल-बोर्ड में उनके साथ मुझे काम करने का काफ़ी मौका मिला। हमलोगों ने राजस्थान भर में सभी २४ जिलों में करीब-करीब १० हजार कुएं बनवाये। १९५६-५७ की बात होगी। श्री बद्रीनारायणजी सोढाणी का मेरे पास पत्र आया : 'मैं सीकर के पास एक टी० बी० सेनेटोरियम करना चाहता हूं, उसके लिए आप मुझे ३५ हजार रुपये इकट्ठा करवा दें।' कुछ दिनों बाद बद्रीनारायणजी कलकत्ता आ गये। बद्रीनारायणजी मेरे पास २ महीना रहे। भागीरथजी ने लोगों से २-३ लाख इकट्ठा करवा दिये। कुछ दिनों बाद टी० बी० सेनेटोरियम बना तथा उसका उद्घाटन शास्त्रीजी से कराया गया। उस अवसर पर सुखाड़ियाजी से बात-बात में भागीरथजी ने जयपुर में एक लड़कियों की शिक्षा संस्था की स्थापना कर दी। आज वह बहुत बढ़िया काम कर रही है। सीकर का टी० बी० सेनेटोरियम धीरे-धीरे बढ़ रहा था। रुपये की कमी के कारण अन्य दिक्क़तें हो रही थीं। १९७० के करीब में बद्रीनारायणजी ने भागीरथजी को आ कर कहा कि उनसे इसका काम अब नहीं सम्भल सकेगा। भागीरथजी ने उस काम को खुद सम्भालना शुरू कर दिया और पिछले दस वर्षों में ५० लाख रुपया लोगों से दिलाया तथा अन्तिम समय तक अस्पताल की चिन्ता उन्हें बनी रही। बीमार होने के पहले वे कहा करते थे कि सीकर के सेनेटोरियम का काम सम्भालने में उन्हें बड़ी खुशी होती है।

—:०:—

शिक्षा-प्रेमी, साहित्यिक संस्था अर्चना के संचालक

श्री नथमल केड़िया

देवोपम चरित्र

एक पौराणिक गाथा याद आ रही है। देव और दानवों ने मिल कर समुद्र का मंथन किया। उसमें से अन्य तेरह रत्नों के साथ अमृत से भरा एक कुम्भ भी निकला। उस अमृत-कुम्भ को पाने के लिये देव और असुरों में भयंकर संग्राम हुआ। उस संग्राम के दौरान आपस की छीनाझपटी के बीच उस अमृत कुम्भ से अमृत की कुछ बूंदें हमारी इस पृथ्वी पर छलक पड़ीं। जहां-जहां ये बूंदें गिरी वे स्थान तीर्थ बन गये। प्रयाग, नासिक, हरिद्वार और उज्जैन के इन्हीं तीर्थों में आज सैकड़ों-हजारों वर्षों की लम्बी अवधि के बाद भी हम 'कुम्भ' पर्व मनाते हैं और वहां स्नान कर नये प्राण और नयी ऊर्जा ग्रहण करते हैं।

कई लोग कहते हैं कि जो रूप, आकार और साज-सज्जाएं पौराणिक गाथाएं धारण किए हुए दिखायी देती हैं वैसी ही वे नहीं होतीं। कथाकार कोई और सत्य उद्‌घाटित करना चाहता था पर चूंकि उसने जान लिया था कि जब मनुष्य नामक प्राणी ने ईश्वर को भी निराकार से साकार होने के लिये बाध्य कर दिया है तब सत्य भी मनमोहक रूप, सुरुचिपूर्ण साज-सज्जा एवं सुन्दर वस्त्र व आभूषण धारण कर के ही सामान्यजन में प्रतिष्ठित हो सकेगा, अतः इस निष्कर्ष की पृष्ठभूमि पर हमारी पौराणिक गाथाओं की रचना हुई। इसलिये इन गाथाओं के प्राण या आत्मा को पहचानना जरूरी है।

पर, ऐसी गाथाओं की आत्मा किस सत्य की ओर इशारा कर रही है? यही कि देव और दानव प्रत्येक युग में होते हैं और अमृत की प्राप्ति केवल देव-प्रकृति के लोगों को ही हो सकती है। इसका उदाहरण अभी कुछ ही दिनों पहले हमारे देश में घटा देवासुर-संग्राम है। असुरों की बात छोड़िये, पर उसमें देव के रूप में थे 'महात्मा गांधी'। उस समय भी हमारे देश में अमृत की बूंदें छलकी थीं—वे थीं सेवा, परोपकार, त्याग और तपस्या के रूप में। हां, हम यह कह सकते हैं कि वे बूंदें किसी खास भूमि पर नहीं गिरीं बल्कि उनका संस्पर्श हुआ अनेकानेक व्यक्तियों को। पर उन बूंदों की प्राणवत्ता ऐसी थी कि जिन-जिन व्यक्तियों की चेतना से उनका संस्पर्श हुआ, वे मानो एक अदृश्य सूत्र द्वारा आजीवन आस्था के एक ऐसे अजस्र सोत से जुड़े रहे जो उनमें नये प्राण, नयी ऊर्जा और गहरी से गहरी संवेदना का संचार करता रहा। तभी तो आज की इन सारी विपरीत परिस्थितियों एवं स्वार्थ बुद्धि द्वारा अपनायी गयी नयी-नयी भाषा, परिभाषाओं के जोरदार आक्रमणों के बावजूद वे व्यक्ति पथ से डिगे ही नहीं, बल्कि जनता की सेवा में गहरी और गहरी दिलचस्पी लेते गये। इसी तरह के व्यक्तियों में से एक थे भागीरथजी कानोड़िया।

सार्वजनिक क्षेत्र में सेवा-कार्य करनेवाले ऐसे सैकड़ों कार्यकर्ता होंगे जिनके साथ उनका व्यक्तिगत परिचय था। यह ऐसा परिचय था कि वे कार्यकर्ता उनसे अपनी

समस्याओं की चर्चा कर यथासम्भव उसका निराकरण प्राप्त करने में संकोच नहीं करते थे। ये समस्याएं उनके सार्वजनिक जीवन की भी होती थीं और पारिवारिक भी। एक कार्यकर्ता द्वारा दूसरे कार्यकर्ता को अपने परिवार का सदस्य मानना और उसको सम्मान देना गांधी-युग का वातावरण था, जो पीछे जा कर कुछ लोगों का स्वभाव हो गया। लोग कहते हैं, यह बड़ी खूबी थी, कानोड़ियाजी में। पर यह बड़ी खूबी और भी बड़ी इसलिये थी कि उनके मन में कार्यकर्ता के प्रति आदर-भाव बहुत रहता था। मैं एक उदाहरण दे रहा हूं। साहित्यिकों में मान्य एक संस्था बनारस में है, नाम है 'ठलुआ क्लब'। यह बनारस की मस्ती, विनोद और साहित्य तीनों के समन्वय का मूर्त रूप है। मेरे मन में 'अर्चना' के अन्तर्गत इस साहित्यिक संस्था के मंत्री श्री विश्वनाथ मुखर्जी का अभिनन्दन करने और २१ हजार की राशि भेंट करने की बात आयी तो सबसे पहले इसकी चर्चा मैंने कानोड़ियाजी से ही की। उन्होंने तुरन्त कहा कि विश्वनाथजी स्वाभिमानी हैं, फक्कड़ हैं, ऐसे साहित्यिक का सम्मान होना चाहिये। फिर पूछा, "आपने रुपया किस तरह से इकट्ठा करना सोचा है?" मैंने उनसे कहा कि २१ व्यक्तियों से एक-एक हजार ले लेंगे। इस पर उन्होंने कहा कि २१ व्यक्तियों से बात होनी क़ठिन हो जायगी। आप दो-दो हजार रुपये इकट्ठा करें और मेरे दो हजार रुपये तो आज ही मंगवा लें। बस इतनी सी ही बात हुई और कार्य आगे बढ़ गया। मुझे उस समय लगा कि किसी भी अच्छे काम में सहयोग और प्रेरणा किस तरह दी जाती है। उसके कुछ दिनों बाद का एक प्रसंग तो मैं भूल ही नहीं पाता। मैंने किसी साहित्यिक व्यक्ति के सहयोग के लिये २५०/- रुपये के लिए उनसे पूछा। उत्तर मिला, "आप २५०/-, ५००/- के लिये पूछा मत करिये, मंगवा लिया करें।"

पिछले कई वर्षों से वे सुबह विक्टोरिया मेमोरियल घूमने के लिये आते थे इसलिये हमलोगों को सौभाग्यवश उनके सान्निध्य और उनकी बातें सुनने का लाभ मिल जाता था। बातें उनकी सारगर्भित रहती पर होती बहुत ही संक्षिप्तता लिये हुए। शब्दों के इतने संयमी व्यक्ति कम देखने में आते हैं। हां, चूंकि साहित्य में उनकी गहरी रुचि और पैठ थी इसलिये बातों में कभी-कभी विनोद का पुट रहता था पर व्यंग्य नहीं। राजस्थानी कहावतों, मुहावरों और लोकोक्तियों को उन्होंने अपना पूरा समय और ध्यान दे कर देखा, सुना और परखा था, इतना कि उनके साथ अपना अपनापा पैदा कर लिया था। कैसी भी कहावत या लोकोक्ति क्यों न हो, उसका सही संदर्भ वे ढूंढ़ लेते थे। 'बहता पानी निर्मला' और 'राजस्थानी कहावत कोश' इसके सुन्दर प्रमाण हैं।

कानोड़ियाजी की कई विशेषताओं का जिक्र किया जा सकता है। पर आज के युग में व्यक्ति की सबसे बड़ी विशेषता, अपनी प्रशंसा सुनने की ऐषणा से अपने को दूर रखना है। मुझे मालूम है वे इस ओर बहुत सचेत थे। 'ठलुआ क्लब' वाले उनका अभिनन्दन करने की बड़ी इच्छा रखते थे। मुझसे भी उन्होंने भागीरथजी से स्वीकृति प्राप्त करने को कहा था, पर कई बार आग्रह करने पर भी उन्होंने स्वीकृति नहीं दी। उनके जीवन के आरम्भिक दिनों की बात तो मैं नहीं जानता, परन्तु सम्प्रति तो उनका सारा ध्यान केवल गरीबों की सेवा में ही बीतता था। इस ओर उन्होंने

अपनी गतिविधियों को केन्द्रित कर रखा था और कार्य करने का माध्यम 'कल्याण आरोग्य सदन' और 'जनकल्याण समिति' (सीकर) को बना रखा था। मैं तो इतना भी मानता हूं कि राजस्थान के इस तबके के अभावग्रस्त व्यक्तियों की टिप्पणी में सौभाग्य का एक योग कानोड़ियाजी और वहां के कर्मठ गांधीवादी श्री बदरीनारायणजी सोढाणी का साथ होना था। व्यवस्था, प्रभाव और सेवा-परायणता का सम्मिलन लोगों को कितना लाभ पहुंच सकता है, यह सीकर जिले की इन संस्थाओं में जा कर दिखायी पड़ता है।

एक बार की बात है—वे बहुत बीमार हो गये, हमलोग उनसे मिलने गये। बातचीत के दौरान उन्होंने कहा कि "मं तो मेरी जान मः चाकरी मः कोई चूक कोनी करी, जिको काम मालिक सौंप्यों बनः इमानदारी क सागः निभार्‌यो थो। बि कः बाद भी वो चाकरी से क्यूं हटायो?" इस वाक्य को कहते समय उनकी आंखों में जो वेदना और विषाद झलक रहा था उसकी अभिव्यक्ति कोई भाषा या शब्द नहीं कर सकते हैं।

कानोड़ियाजी के जीवन-दर्शन को दर्शानेवाली महात्मा गांधी की एक बात मुझे याद आ रही है जो सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री रामनरेशजी त्रिपाठी (अब स्वर्गीय) ने सुनायी थी। त्रिपाठीजी उस समय गांधीजी के २१ दिनों के उपवास के समय उनके दर्शन करने और उनसे मिलने पूना गये थे। गांधीजी ने बातों के दौरान उनसे कहा— "रामनरेश! रामायण में से कुछ सुनाओ।" त्रिपाठीजी ने उनको निम्न दोहा सुनाया :—

दुगुने तिगुने चौगुने, पंच षष्ठ औ सात।
आठ हुए पुनि नौ गुने, नव के नव रहिजात॥

दोहा सुनकर गांधीजी ने पूछा—"अच्छा बताओ, तुमने इसका क्या अर्थ लगाया? रामनरेशजी ने कहा—"बापू! मैंने तो इस दोहे का यह अर्थ समझा कि मनुष्य को अपनी प्रत्येक अवस्था में, नवपन (यौवन) बरकरार रखना चाहिये जैसा नौ दूना अठारह—एक आठ नव। नौ तीये सताइस—दो और सात नव। इस तरह तिरसठ—बहत्तर एक्कासी। सब में जैसे दोनों अंकों के योग में 'नव' विद्यमान रहता है उसी तरह मनुष्य भी प्रत्येक अवस्था में उत्साह और नवपन से भरपूर रहे। यही गोस्वामीजी कहना चाहते थे।" रामनरेशजी ने कहा कि गांधीजी को यह अर्थ बताते समय उनके मन में यह भावना थी कि वह बहुत ही अच्छा और सटीक अर्थ बता रहे हैं। पर जब गांधीजी ने उनको उपर्युक्त दोहे का अपना अर्थ बताया तो वे चमत्कृत हो गये कि इतनी गहराई लिए हुए भी कोई अर्थ हो सकता है। तो गांधीजी ने उनको जो कहा वह जहां तक मुझे याद है, त्रिपाठीजी के मुंह से सुने हुए शब्दों में ही लिख रहा हूं :—

"गांधीजी लेटे हुए थे। उपवास ने उनकी बोलने की शक्ति क्षीण कर दी थी। उनकी आवाज धीमी पर प्रवाहयुक्त थी। उन्होंने मेरा अर्थ सुन कर कहा, "नहीं, मैं तुम्हें इसका अर्थ बताता हूं। यह दोहा तो ऐसा है कि प्रत्येक गृहस्थ को इसे अपने दरवाजे पर लिख कर टांग लेना चाहिये। फर्ज करो, नौ एक आदमी है। वह जब अठारह वर्ष का होता है तब वह आत्म-विश्लेषण करता है और सोचता है कि

देखें, मेरे में गुण कितने हैं और अवगुण कितने। तब वह पाता है कि मेरे में गुण तो एक है और अवगुण आठ। बस तभी से वह अच्छा होने का प्रयत्न शुरू कर देता है। उसके बाद जब वह दूसरी अवस्था मतलब २७ वर्ष का होता है तब वह पाता है कि मेरे में गुण दो हो गये और अवगुण सात रह गये। तीसरी अवस्था आयी तब गुण तीन हो गये और अवगुण छह ही रह गये। चौथी अवस्था में गुण चार हो गये अवगुण पांच रह गये। पांचवीं अवस्था में आकर गुण पांच हो गये और अवगुण चार रह गये। और गांधीजी कहते गये कि यदि मनुष्य लगातार अच्छा और अच्छा होने का प्रयत्न करे तो अन्तिम अवस्था में आकर उसमें गुण पूरे नौ हो जाते हैं और अवगुण, शून्य।"

और, कविवर रामनरेशजी त्रिपाठी ही क्यों? हम सब भी जो उस समय उनकी यह बात सुन रहे थे गांधीजी के चिन्तन की गहराई और अनोखी सूझ से अभिभूत थे। उस समय हमें लगा था जैसे नौ का पहाड़ा खुद महात्मा गांधी हैं और हमारे सौभाग्य से उनकी जीवन-पुस्तक का सार हम त्रिपाठीजी के मुंह से सुन रहे हैं। पर उसके बाद तो लगा कि इसका नायक आत्मशुद्धि के प्रयास में लगा कोई भी व्यक्ति हो सकता है। मुझे कानोड़ियाजी की बातें सुन कर और उनके द्वारा किये गये कार्यों को देख कर इस दोहे और गांधीजी द्वारा दी गयी व्याख्या की कई बार याद आयी है। मुझ में इतनी क्षमता नहीं है कि मैं इस बात का आकलन कर सकूं कि कौन पूर्णता के किस स्तर तक पहुंच गया है। बड़ी बात इसमें यह है कि व्यक्ति लगातार उसी ओर प्रयत्नशील है, उसी का चिन्तन कर रहा है कि नहीं। मुझे याद है जब वे राजस्थान में 'पीपुल्स वेलफेयर सोसाइटी के अन्तर्गत अकालग्रस्त लोगों में बहुत बड़ा राहत कार्य कर के आये, तब सुबह के वक्त घूमते हुए मैंने उनसे कहा कि 'अब की बार तो आप बहुत बड़ा काम कर आये' तो उन्होंने कहा—"नथमलजी! मैं तो 'धमकड़ो' लगार्‌यो हूं।" मैं और वे दो ही व्यक्ति थे। मैं चुप रह गया। उन्होंने पूछा: "धमकड़ो को अर्थ समझ्या कि नहीं?" मेरे ना कहने पर उन्होंने बताया कि "देशः में लुगायां तडकः तीन बजे उठकर ही पीसनो शुरू कर देती और सारः परिवार को पीसनों पीसती। उनान नींद आती रहती और नींद की उंघ में धीमो-धीमो ही पीसनो पीसो जातो पर जब उनान लागतो कि अरे! दिन तो उगन की तैयारी में है तब परात में जिका बाकी बंचेड़ा गेहूं या बाजरो रहतो उनान जल्दी-जल्दी पीस कर काम सलटाती। वः जल्दी पीसन न ही 'धमकड़ो' क्यो जावः। सो मैं तो वो ही धमकड़ो लगार्‌यो हूं।'

मैं उनकी ओर देखता ही रह गया। उनकी वह वृद्धावस्था और उनका सार्वजनिक कार्यों में दिन पर दिन ज्यादा से ज्यादा रत होना—उनके कथन के सत्य को प्रभासित कर रहा था। सचमुच उसके बाद वे बहुत दिन नहीं जिये पर जितने दिन जिये "धमकड़ो" ही लगाते रहे क्योंकि वे जानते थे कि 'मालिक ने परात में गेहूं ही ऐसे डाले हैं जो कभी खत्म नहीं होते। मेरा काम तो उन्हें पीसने भर का है। हां, जितने उत्साह, लगन एवं परिश्रमपूर्वक इस कार्य को करूं उतनी ही मेरी सफलता है। किसी की चाकरी पर जो हूं।'

—: ० :—

सुप्रसिद्ध उद्योगपति, समाज-सेवी

श्री नन्दलाल टांटिया

वात्सल्य-मूर्त्ति

कानोड़िया परिवार के साथ हमारा सम्बन्ध बहुत ही पुराना रहा है। बाबू (स्व० भागीरथजी) के साथ पिताजी (स्व० श्री रामेश्वरजी टांटिया) की बैठक रोज हुआ करती। अक्सर जब पिताजी के मित्रों का फोन आता या घर पर मिलने आते तो उन्हें न पा कर वे सबसे पहले बाबू के यहां सम्पर्क करते। मुझे याद नहीं, कब और कैसे मैं बाबू के सम्पर्क में आया। जब से होश सम्भाला उन्हें देखता रहा हूं और उनका वात्सल्यपूर्ण स्नेह पाता रहा। जुलाई, सन् १९७७ में पिताजी का शरीर शान्त हुआ। उस समय कहे गये बाबू के प्यारभरे शब्द आज भी मेरे कानों में गूंजते हैं, "नन्दू, रामेश्वरजी चले गये, पर जब तक मैं हूं, उनकी कमी तुम्हें नहीं अखरनी चाहिये।" पता नहीं इन शब्दों में क्या जादू था, मेरे मन से मायूसी का पर्दा अपने आप हट गया। ये शब्द मौके पर कहे गये केवल सांत्वना के नहीं थे, उनमें गहराई थी। बाबू ने इसे अन्त तक निभाया। सचमुच, मुझे अहसास तक न होने दिया कि पिता का साया मेरे सिर पर से उठ चुका है। तब से कभी ऐसा नहीं हुआ कि रोजाना उन्होंने मुझे एक-आध घंटा न दिया हो। सहानुभूति के औपचारिक शब्द तो बहुतों से मिलते हैं, किन्तु जो विश्वास-व्यवहार बाबू से मिला, मुझे खयाल नहीं आता कि उसकी बराबरी और किसी के विश्वास-व्यवहार से हो सकती है।

बाबू व्यापारी-व्यवसायी थे। लगन-मेहनत से लक्ष्मी के कृपा-पात्र बने। अक्सर देखा जाता है कि लोग ऊंचे उठने पर नीचे नहीं देखता चाहते, आगे बढ़ने पर पीछे मुड़ कर नहीं देखते। बाबू इसके अपवाद थे। नीचे गिरे और पीछे खड़े न जाने कितनों को उन्होंने उठाया, सहारा दिया और आगे बढ़ाया।

एक बार किसी विशिष्ट व्यक्ति के यहां विवाह था। बाबू भी आमन्त्रित थे। विवाहवाले सज्जन ने कहा, "आइये भागीरथजी, आपको जगजीवनराम से मिला दूं।" परिचय कराने बढ़े ही थे कि जगजीवनरामजी ने झुक कर बाबू को प्रणाम करते हुए कहा, "आप, इनसे मेरा क्या परिचय करा रहे हैं? इन्हीं की छात्रवृत्ति से तो मैं पढ़ा हूं।"

बाबू में विशेषता थी कि वे कभी आत्म-प्रशंसा नहीं करते, सुनना भी नहीं पसन्द करते थे। समाज सुधार और शिक्षा के क्षेत्र में उन्होंने जो बड़े-बड़े काम किये, उनका जिक्र कभी नहीं किया और न अपने सामने किसी को दुहराने दिया। सार्वजनिक कामों में उनकी रुचि इतनी जबरदस्त थी कि जिस काम को हाथ में लेते, उसको पूरा अंजाम देते। मैंने पिताजी से सुना था कि सन् १९४३/४४ के बंगाल के भीषण अकाल में रात-दिन एक कर उन्होंने राहत का कितना बड़ा काम किया था। केवल कलकत्ता नहीं, बंगाल के सुदूर गांवों तक अन्न पहुंचा कर लोगों की जान बचायी। व्यवस्था ऐसी पक्की थी कि इतने बड़े पैमाने के काम में हिसाब की गड़बड़ी नहीं रहती, समय की पाबन्दी के साथ मुस्तैदी से काम होते रहे। उनमें संगठन की अद्भुत

क्षमता थी। इसे मैंने स्वयं राजस्थान के अकाल के समय देखा। एक ओर जहां लोगों के घर जा कर चन्दा मंडाते, दूसरी ओर राजस्थान में जाकर कुंए खुदवाने, जोहड़ मरम्मत करवाने के काम देखते। बाड़मेर और जैसलमेर जैसी वीरान सूखी जगहों में जा कर पानी की व्यवस्था कराना आसान काम नहीं था। बड़े गहरे कुंए खुदवाए जाते। बाबू स्वयं जाकर सम्भाल रखते। पोकरण के जिस कुएं में अणु-विस्फोट का परीक्षण हुआ था, बाबू ने बताया कि वह गहरा कुआं सूखे के जमाने में बनवाया गया था और पिताजी उसमें पानी के स्रोत की जांच के लिये उतरे थे। किसी भी व्यापारी के लिये बाबू की तरह सार्वजनिक काम में समय देना असाधारण बात है। धन की सहायता तो बहुत लोग कर देते हैं, किन्तु समय देना कठिन हो जाता है। बाबू तन, मन, धन से लग जाते थे। एक दिन सुबह मैंने जिक्र किया कि यादवपुर में लड़कियों का एक हाई स्कूल है, वहां कच्चे मकान में लड़कियां पढ़ती हैं और यदि आपको जंचे, तो पक्के मकान की सोची जाय। उसी वक्त बाबू ने गाड़ी मंगायी और स्कूल देखने चले गये। इसी तरह ही बाबू से रामकृष्ण सेवा प्रतिष्ठान की बात चली। वे तुरन्त ही स्वामीजी से मिलने और उनकी भावी-योजना समझने के लिये चल पड़े। बाबू से बात होने के बाद स्वामीजी को लगा कि योजना पार पड़ जायगी।

आज के सम्पन्न समाज में छोटे-बड़े की भावना देखी जाती है। बाबू में ऐसी बात नहीं थी। उनमें समता का सहज भाव था। एक दिन बाबू के पास मैं बैठा था, उनका स्वास्थ्य शेष दिनों में तेजी से गिर रहा था। समाज के और भी जाने-माने विशिष्ट व्यक्ति बैठे थे। इसी बीच श्री कल्याण आरोग्य सदन के शास्त्रीजी पहुंच गये। वे कुछ संकोच-सा महसूस कर रहे थे कि बाबू ने पास बुला कर बैठा लिया और उन्हें कहा, "शास्त्रीजी, चिन्ता न करें, मैं जल्द ही ठीक हो जाऊंगा।"

कभी-कभी मुझे सीकर अस्पताल के काम से लोगों के पास भेजते। दो-तीन दिन ऐसा हुआ कि मैं अपने ऑफिस समय पर नहीं पहुंचा। संयोग से उन्हीं दिनों बाबू का फोन मेरे यहां आया। चौथे दिन बहुत सख्ती से उन्होंने मुझे उलाहना दिया, "आफिस समय पर क्यों नहीं आते? क्या तुम्हारी नौकरी नहीं कटती? ऑफिस के समय बाहर की भाग-दौड़ नहीं करनी चाहिये।" मैं नहीं कह सकता कि स्नेह, आदेश, अनुशासन से भरे ये शब्द मेरे मन को किस तरह छूने लगे।

बाबू का मन बहुत ही कोमल था। दूसरों के दुख-दर्द से उनका मन बहुत जल्द पसीज उठता था। कोमल मन के लोगों पर बात-व्यवहार का असर बहुत जल्द होता है। बाबू के मन की विशेषता थी कि उनमें अहम् नहीं था। इसलिये रोष, क्षोभ या द्वेष जरा भी नहीं था। मुझे एक बार एक विशिष्ट व्यक्ति के यहां ले गये। उनके दरवान ने कहा कि मालिक घर पर ही हैं। बैठक में हम प्रतीक्षा के लिये बैठ गये। थोड़ी देर में उनके पुत्र ने आकर कहा, "पिताजी घर पर नहीं हैं, बाहर गये है।" बाबू ने कुछ कहा नहीं। मैंने विस्मय से बाबू की ओर देखा। मुझे बुरा लग रहा था। किन्तु, बाहर निकलते हुए बाबू ने मुस्कुरा कर कहा, "कोई खास बात नहीं, मेरे साथ तो ऐसा बहुत बार हुआ। जो देवे उसका भला, जो न देवे उसका भी भला।"

—: o :—

जीवन साहित्य के सम्पादक,
सस्ता साहित्य मण्डल में भागीरथजी के सहकर्मी

श्री यशपाल जैन

मानवीय मूल्यों के उपासक

जानता हूं इस धरा पर जो जन्म लेता है, उसे एक-न-एक दिन मृत्यु की गोद में जाना ही होता है। इसमें किसी के लिए भी अपवाद नहीं होता। फिर भी कुछ व्यक्तियों के सम्बन्ध में इच्छा रहती है कि वे चिरकाल तक हमारे बीच बने रहें। इसलिए नहीं कि उनकी भौतिक काया के प्रति हमारा मोह होता है, बल्कि इसलिए कि उन्हें लोकमंगल अभीष्ट होता है और उनके हाथों सदा जनहित के कार्य सम्पादित होते रहते हैं।

स्व० भागीरथजी कानोड़िया उन्हीं विरल व्यक्तियों में से थे। वह बड़े उद्योगपति थे; लेकिन उससे भी कहीं बड़े लोक-सेवी थे। पन्द्रह वर्ष की अल्पायु में वह अपनी जन्मभूमि मुकुन्दगढ़ (राजस्थान) को छोड़ कर उद्योगनगरी कलकत्ता चले गये थे, जहां उन्होंने विपुल धन अर्जित किया और एक सामान्य कार्यकर्ता की पंक्ति से उठ कर देश के विख्यात धनपतियों के वर्ग में अपना स्थान बनाया। उन्होंने कमाई की और खूब की, लेकिन कमाई तो बहुत लोग करते हैं, किन्तु भागीरथजी उन व्यक्तियों में से नहीं थे, जो केवल कमाई के लिए जीते हैं। उनमें अदम्य उत्साह था, अनोखी सूझ-बूझ थी और परिश्रमी भी वह खूब थे। अपने इन गुणों का अधिष्ठान उन्होंने नीति को बनाया। यही कारण है कि उनके पास जो धन आया, वह अनीति की विकृति को नहीं लाया। अपने ४२ वर्ष के सम्पर्क के आधार पर मैं कह सकता हूं कि उन्होंने अपने सामने एक ऊंचा आदर्श रखा और धन को उसकी पूर्ति का साधन माना।

सुप्रसिद्ध अध्यात्म योगी बाबा मुक्तानन्द परमहंस ने एक बार कहा था कि प्रभु ने हमें दो हाथ इसलिए दिये हैं कि हम एक हाथ से अर्जन करें और दूसरे हाथ से विसर्जन करें। एक पक्षी के दृष्टान्त से उन्होंने अपनी बात को स्पष्ट करते हुए बताया कि पक्षी के दो पंख होते हैं तभी वह उड़ सकता है। यदि एक पंख को काट दें तो वह उड़ नहीं सकेगा, फड़फड़ा कर रह जायगा। यही बात व्यक्ति के साथ है। यदि वह केवल अर्जन करेगा और विसर्जन नहीं करेगा अथवा केवल विसर्जन करेगा और अर्जन नहीं करेगा तो उसकी स्थिति पंख कटे पक्षी की भांति हो जायगी। दोनों पंखों के संतुलन से जिस प्रकार पक्षी, हल्का हो कर, ऊंचे-से-ऊंचे उड़ जाता है, उसी प्रकार व्यक्ति भी अर्जन-विसर्जन के संतुलन से उत्तरोत्तर ऊंचा उठता जाता है।

एक दिन भागीरथजी को जब मैंने यह प्रसंग सुनाया तो उनकी आंखें तरल हो उठी थीं। सच यह है कि जब से उन्होंने होश संभाला, उनकी दृष्टि निरन्तर जीवन के ऊंचे ध्येय पर केन्द्रित रही। धन आया उसे उन्होंने अस्वीकार नहीं किया, लेकिन

उसे मुट्ठी में बन्द भी नहीं किया। मुट्ठी को सदा खुला रखा। फिर धन के साथ जो आता है—अहंकार, आडम्बर, विलासिता, आदि-आदि—उसे उन्होंने प्रयत्नपूर्वक दूर रखा। सादगी का जीवन जिया, सात्विक वृत्ति रखी, दूसरे के स्वाभिमान को भरपूर आदर दिया, आत्म-प्रचार से कोसों दूर रहे और सेवा के कार्यों में सदा अग्रणी रहे। हमारे धर्म-ग्रन्थों में राजा जनक को 'विदेह' कहा गया है। जिस प्रकार देह के होते हुए भी किसी व्यक्ति को देह का गुमान न हो, उसी प्रकार राजा जनक के चारों ओर वैभव होते हुए भी उसमें उनकी आसक्ति नहीं थी। भागीरथजी का जीवन कुछ वैसा ही था। जाने कितने घण्टे प्रतिदिन हम लोगों के साथ बीतते थे। देखता था, सवेरे से लेकर रात तक एक क्षण को भी वह मोह या मूर्च्छा-ग्रस्त नहीं होते थे। न पैसे का मोह, न यश का और न परिवार का। उनमें वात्सल्य था। जब कभी कोई परिवार का व्यक्ति उनके सामने आता था—छोटा या बड़ा—वे बड़े मुक्त स्वर से बात करते थे। बच्चों से विनोद करते थे, लेकिन उनके मोह का भार अपने दिल पर नहीं रखते थे। सबको प्यार देते थे और सबका प्यार लेते थे। बस।

मैंने हजारों रुपये उनसे जरूरतमन्दों को दिलवाये, किसी छात्र की फीस जमा नहीं हुई, उसका नाम कटने वाला है; किसी के घर में विवाह है, पर पास में पैसा नहीं है, कोई बीमार है, इलाज की व्यवस्था नहीं है, भागीरथजी को लिखा कि उन्होंने तत्काल सहायता की। लेकिन दाएं हाथ से ऐसे दिया कि बाएं हाथ को भी पता नहीं चल पाया।

उनकी एक बड़ी विशेषता को देखकर मेरा मन विभोर हो उठता था। उनके पास अपनी कठिनाइयों को ले कर सभी वर्गों के लोग आते थे। भागीरथजी उनकी बात को बड़े ध्यान से सुनते थे। कभी-कभी तो पूरा दिन ऐसे व्यक्तियों के बीच गुजर जाता था। पर क्या मजाल कि भागीरथजी एक क्षण को भी ऊब जायं, खिन्न हो उठें, अथवा कोई तेज शब्द मुंह से निकल जाय! मन और वाणी का ऐसा असामान्य संयम मेरे देखने में बहुत कम आया है वस्तुतः वह संकट या अभावग्रस्त व्यक्ति की स्थिति में अपने को रखकर स्वयं उसकी पीड़ा अनुभव करते थे और इस प्रकार उस व्तक्ति के साथ उनका गहरा तादात्म्य स्थापित हो जाता था। ऐसा व्यक्ति दूसरे की व्यथा या कठिनाई के प्रति उदासीन कैसे हो सकता था!

उनके दरवाजे पर जो भी हाथ फैलाकर आया, उन्होंने उसे कभी निराश नहीं जाने दिया। वह मुक्तहस्त से सहायता देते थे। एक बार आपसी चर्चा में श्री सीतारामजी सेकसरिया ने कहा था कि दानशीलता में भागीरथजी का कोई भी मुकाबला नहीं कर सकता। अधिकांश धनिक अपने बढ़ते धन को इस प्रकार देते हैं, जैसे नाखून और बालों के बढ़ने पर उन्हें काटना आवश्यक हो जाता है, पर भागीरथजी ने ऐसा कभी नहीं किया। धन के साथ उन्होंने अपनी संवेदनशीलता दी। बाइबिल में कहा गया है कि यदि दान के साथ दाता का हृदय न हो तो वह दान व्यर्थ है। उससे देने वाले को गर्व होता है और लेने वाले के अंदर हीनता की भावना पैदा होती है। भागीरथजी ने कभी किसी को हीन या दीन नहीं बनने दिया।

मेरा उनके साथ लगभग ४२ वर्ष पुराना परिचय था। कोई तीन दशक से तो उन्हें बहुत निकट से देखने और समझने का सुयोग मिला। वह राग-द्वेष से ऊपर उठ गये थे। उनका कोई शत्रु नहीं था। वह सच्चे अर्थों में अजातशत्रु थे।

आज समाज में धन और पद की प्रतिष्ठा है। भागीरथजी ने धन कमाया, लेकिन इस दृष्टि से नहीं कि धनी बनकर प्रतिष्ठा प्राप्त करें। वह प्रत्येक क्षेत्र में लोकप्रिय थे। बड़े-से-बड़े राजनेता उनका सम्मान करते थे। उनके तनिक से इशारे पर वह पश्चिम बंगाल में या राजस्थान में मन्त्री बन सकते थे, अथवा संसद सदस्य हो सकते थे; पर इसकी उन्होंने स्वप्न में भी आकांक्षा नहीं की। इतना ही नहीं, अवसर आये तो उन्होंने दूसरों को आगे कर दिया, स्वयं पीछे हट गये।

उन्होंने अनेक संस्थाएं स्थापित कीं। बहुतों को सहायता देकर जमाया-बढ़ाया; लेकिन किसी भी संस्था के साथ अपने नाम को नहीं जुड़ने दिया। राजस्थान में सरकार के अनुरोध पर जल की व्यवस्था का दायित्व अपने ऊपर लिया और उस बड़े कार्य को बड़े ही सुचारु रूप से किया। वहां भी अपने नाम को कभी आगे नहीं आने दिया। पश्चिम बंगाल और राजस्थान की अधिकांश रचनात्मक संस्थाओं की वह आधार-शिला थे। उन्हें बराबर सींचते रहे। लेकिन किसी भी संस्था का नाम अपने नाम पर नहीं होने दिया।

विस्मय होता है कि वह प्रचार और यश के प्रति इतने निस्पृह कैसे रहे? सम्भवतः इसका मूल कारण यह था कि आरम्भ से ही उनका झुकाव महात्मा गांधी और उनके आदर्शों की ओर रहा। उन्होंने सेवा को सर्वोपरि माना और स्वार्थ को कभी उभरने नहीं दिया। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मानवीय मूल्यों का समावेश कराने के लिए वह अहर्निश प्रयास करते रहे।

कुछ महीने पहले जब मैं कलकत्ते की 'गांधी दर्शन समिति' की भाषण-माला में व्याख्यान देने के लिए वहां गया तो अधिकांश समय उन्हीं के साथ बीता। चौरासी वर्ष की आयु में भी वे इतना काम करते थे कि कोई युवक भी क्या करेगा। सबेरे ५॥ बजे उठकर विक्टोरिया मैदान में घूमने जाते थे। ७॥ बजे लौटते कि मुलाकातियों का आना-जाना आरम्भ हो जाता। भोजन करके ११ बजे दफ्तर जाते, शाम को ६ बजे घर लौट कर भोजन करके लगभग १० बजे तक बातचीत करते या कुछ पढ़ते रहते। एक क्षण को भी विश्राम नहीं लेते थे। मैंने उनसे कहा, "दिन में आप थोड़ी देर के लिए आराम कर लिया करें, लेट जाया करें।" बोले, "मुझे इसकी आदत नहीं है।" बराबर कुर्सी पर बैठे रहते थे।

स्कूली शिक्षा उनकी अधिक नहीं हुई थी, लेकिन उन्होंने खूब पढ़ा था। उन्हें प्रत्येक विषय की गहरी जानकारी थी। उनकी रुचि अत्यन्त व्यापक थी। हिन्दी, संस्कृत, बंगला, राजस्थानी, अंग्रेजी इन सब भाषाओं में उनकी बहुत अच्छी गति थी। राजस्थान के लोक साहित्य के प्रति उनका विशेष अनुराग था। दिवंगत डा० कन्हैयालाल सहल तथा मेरे विशेष आग्रह पर उन्होंने राजस्थान की कहावतों पर कहानियां, लोक कथाएं तथा बोध कथाएं लिखीं। उनका संग्रह 'बहता पानी निर्मला' के नाम से प्रकाशित होने को हुआ तो उन्होंने मुझसे आग्रह किया कि मैं उसकी भूमिका लिखूं। मैंने विस्तृत भूमिका

लिखी। उसे पढ़कर बहुत प्रसन्न हुए। बाद में उन्होंने बहुत-सी कहानियां लिखीं, जिन्हें पुस्तक के दूसरे संस्करण में सम्मिलित कर दिया गया। उस पुस्तक को पढ़कर पता चलता है कि भाषा पर उनका कितना अधिकार था और वह जो कुछ लिखते थे, कितना प्रामाणिक होता था। राजस्थानी कहावतों का एक कोश भी उन्होंने बड़ी लगन से तैयार किया।

उन्हें अनेक महापुरुषों के निकट सम्पर्क में आने का अवसर मिला था। उनके बहुत-से संस्मरण वह समय-समय पर सुनाते थे। मैंने उनसे अनुरोध किया कि उन संस्मरणों को लिख डालें। गांधीजी के संक्षिप्त संस्मरण उन्होंने लिखे भी, लेकिन बात आगे नहीं बढ़ी। बहुत-सी मूल्यवान स्मृतियां उनके साथ ही चली गईं।

राजस्थान के प्रति प्रेम तथा गांधी-विचार के प्रति आकर्षण होने के कारण वह 'सस्ता साहित्य मंडल' की ओर आकर्षित हुए और उसकी संचालक समिति के सदस्य बने, बाद में जब श्री घनश्यामदासजी बिड़ला ने अध्यक्ष-पद छोड़ा तो उन्होंने उस पद पर भागीरथजी को बिठा दिया। 'मंडल' को उन्होंने आगे बढ़ाने में सब प्रकार से सक्रिय सहयोग प्रदान किया। जब कोई नई योजना बनाई जाती थी अथवा आर्थिक कठिनाई आती थी, हम लोग दौड़ कर कलकत्ता जाते थे और भागीरथजी थे कि बड़ी आत्मीयता से हमारा स्वागत करते थे। 'सहायक सदस्य योजना' के सदस्य बनाने के लिए हम लोग कलकत्ता गये और बाद में जब मैं जम कर वहां बैठा तो एक दिन उन्होंने मुस्करा कर कहा "यशपालजी, कलकत्ता तो कामधेनु है। जितना चाहो, दुह लो।" उन्होंने सम्पर्क करने के लिए विस्तृत सूची तैयार कराई और बहुत-से व्यक्तियों को पत्र लिखे।

जब कुछ व्यक्तियों ने उनके अनुरोध पर ध्यान नहीं दिया तो मैंने एक दिन उनसे कहा, "भाईजी, कोई आपकी बात नहीं मानता तो आपको बुरा नहीं लगता?"

बोले, "सार्वजनिक कामों के लिए मैं हमेशा झोली फैलाये रहता हूं। यदि कोई उसमें कुछ डाल देता है तो ठीक, नहीं डालता तो ठीक। बुरा क्या मानना!"

मुझे 'मंडल' की पुस्तकों के कुछ सेट भारत में और अन्य देशों में भिजवाने थे। सोचा, आठ सौ रुपये के सेट के लिए जो चार सौ रुपये देंगे, वह सेट उन महानुभाव की ओर से भेज दिया जायगा। भागीरथजी ने इस उपक्रम में पूरे उत्साह से मदद की। अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक वह 'मंडल' के अध्यक्ष रहे और उसकी गतिविधियों में पूरी दिलचस्पी लेते रहे, उसका मार्गदर्शन करते रहे।

मानवीयता उनमें कूट-कूट कर भरी थी। अपनी चिट्ठियों में वह पूरे परिवार की कुशलता पूछते रहते थे। जब मिलते थे तो एक-एक का नाम लेकर बात करते थे किसी को बीमारी होती थी, उन्हें सूचना मिलती तो अपनी ओर से पत्र लिखकर पूछताछ करते थे।

राजनीति में उनकी रुचि थी, पर रस उनका रचनात्मक कार्यों में था। समाज संस्कृति, साहित्य, कला, शिक्षा आदि विधायक प्रवृत्तियां उनके अधिक निकट थीं। मानव को शुद्ध और प्रबुद्ध करने वाला प्रत्येक उपक्रम उन्हें प्रिय था।

उनके निधन के पश्चात कलकत्ते में श्री सीतारामजी सेकसरिया से मिलने गया तो उन्होंने अपनी आंतरिक व्यथा व्यक्त करते हुए एक बड़ी मार्मिक बात कही,

"भागीरथजी के पास जाकर मैं अपनी मन की कह आता था और वह सहमत हों या नहीं, बड़े ध्यान और धीरज से मेरी बात सुन लेते थे और मदद करते थे। उनके जाने के बाद अब ऐसा कोई व्यक्ति नहीं रहा।"

ईश्वर की कृपा से उन्होंने भरा-पूरा परिवार छोड़ा है। उनकी पत्नी हैं, लड़के हैं, लड़कियां हैं, जिनके अपने बालबच्चे हैं। लड़कों के अपने-अपने उद्योग-धंधे हैं। भागीरथजी का व्यक्तित्व सरल होते हुए भी इतना प्रखर था कि उनके कुटम्बी जन उनके सात्विक संस्कारों से बाहर नहीं जा सके। सभी सदस्य विनयशील और सादगी-प्रिय हैं। संभवतः वे अपनी पैतृक परम्परा को 'खंडित' नहीं होने देंगे।

पर भागीरथजी की जो जगह थी, वह ऐसी थी कि उसे शायद ही कोई भर सके। उन्होंने लोक-हृदय में अपना स्थान बनाया था और यही कारण है कि उनके निधन से असंख्य व्यक्ति अनुभव करते हैं कि उनका अपना प्रिय जन चला गया। ऐसे व्यक्तियों की भी संख्या कम नहीं है, जो कभी उनसे मिले नहीं थे, लेकिन पत्र लिख देने पर ही उनसे सहायता प्राप्त हो गई थी। भागीरथजी ने परिचित-अपरचित के बीच कभी भेद नहीं किया। कहीं से कराह आई कि वह द्रवित हो उठे।

उन्होंने अपने नाम को सार्थक किया। धर्म-ग्रन्थों में हम पढ़ते हैं कि भागीरथ गंगा को लाये थे—उस गंगा को, जो भारत के कोटि-कोटि नर-नारियों के जीवन को पवित्र और समृद्ध करने वाली है। भागीरथजी ने सेवा के क्षेत्र में एक ऐसी पावनधारा प्रवाहित की, जिसमें अवगाहन कर जाने कितने व्यक्तियों ने शीतलता अनुभव की और अपने कष्टों का निवारण किया।

मैं उनकी स्मृति को प्रणाम करते हुए प्रभु से कामना करता हूं कि उनकी आगे की यात्रा सुखद हो और वह जहां भी रहें, सुखी रहें।

—: o :—

लोक संस्कृति शोध संस्थान नगर श्री, चूरू के मन्त्री

श्री सुबोधकुमार अग्रवाल

मोट्यार कै खोलिये में—माँ

बात सन् ७६ की है, मैं कलकत्तै गयोड़ो हो जणा पुज भागीरथजी स्यूं मिलण नै गयो। मनै वेरो कोनी हो'क डाक्टर मिलणो मना कर राख्यो है। कोठी पूंच्यो तो एक मोटी सी नर्स बैठी ही, बोली—"बाबू को मिलना मना है"। आप आलो पैली बुरी चींतै। मैं देख्यो'क काम तो क्यूईं कोनी, पण कठै दरसणां सें बंचित न रह ज्यावां, सो मैं एक परची पर मेरो नांव मांड कर बाबू नै देणै बेई नर्स न दी। बा बड़बड़ाती सी परची लेकर गई।

बा परची देकर पाछी न पूगी, इतणै में देख्यो'क बहोत ही झीणी सी आधी बायां की कमेच अर पजामो पहर्यां, चसमैं मांय कर लांबी निजर नाखता, ब्यायोड़ी गाय बाछड़िये कानी आवै ज्यूं, डोकरा चिटियो टेकता टिक-टिक करता आ रैया है।

मैं पाँवाधोक करी। वै पैली मनै बैठायो, फेर आप बैठ्या। मेरै ताईं रस को गिलास मंगायो। मनै घणो संकोच होयो, मैं बोल्यो, "बाबू! मैं कोई मेहमान हूं के"? बोल्या, "मेहमान तो कोनी, पण टाबर तो है नी। थे दोनूं भाई बहोत आछो काम कर रैया हो।" मैं कैयो, "थारी आसीस सिर पर है क्यूंईं होज्या सो ठीक है।" दो-एक मिन्ट पछै मैं बोल्यो, "आप आराम करो, मैं औरूं आस्यूं।" बोल्या, "कठै ठैरया हो? मेरै स्यूं बिना मिले मत जायो।" "आछ्योजी" कह कर अर धोक खाकर मैं बारै नीकल्यो। पुज भागीरथजी स्यूं रूबरू मिलणै को मेरो यो पैलो मौको हो।

कलकत्तै आलै ईं मिलाप स्यूं मेरै मन की सरधा कालजै स्यूं अयां छलक-छलक कर पड़ै लागी'क मेरै स्यूं दो आखर लिखे बिना कोनी रैयो गयो। वो चितराम "मरु श्री" में छप्यो। म्हारी घणी जिज्ञासा रैई क पुज भागीरथजी राजस्थान में किसी-किसी साल कुण-कुण सा काम करया, ईं बात की उनां स्यूं निघै करां, पण फेरूं मन में आई'क मां कद गिण कर राखै है'क मैं आज टाबर नै कै बार बोबो दियो। भागीरथजी तो मोट्यार कै खोलिये में ममतामयी माँ ई है।

x x x

इब कालै मई, ८० में कलकत्तै गयो जणां भाई मोहनजी वर्मा मनै घरे लेज्यातां थकां रस्तै में हीरालालजी सरावगी स्यूं मुलाकात कराई। "मरु श्री" कै संरक्षकां में भागीरथजी कानोड़िया को नांव देख, हीरालालजी वांनै निरलेप बतावतां एक आप बीती सुणाई—

"सन् १९३९ में अकाल पीड़ित राजस्थान की सेवा-सारू गयोड़ा भागीरथजी सादुलपुर भी आया था। निसकाम भाव स्यूं वांकी करयोड़ी लूंठी सेवा नै आदरणै खातर सुरजमलजी मोहता वांको सार्वजनिक सतकार करणै की मनस्या स्यूं सादुलपुर

कै वजार आलै चोक में गांव नै भेलो करयो अर एक अभिनन्दन-पत्र-छपवायो। अभिनन्दन-पत्र नै कोई ऊंची अवाज में सुद्ध पढदे, इसै मिनख की टोह ही, क्यूंकै वीं वगत ताईं अै भूंकला (माइक) चाल्या को हानी। मैं पिलाणी में दसवीं में पढ़तो अर वीं वगत सादुलपुर आयोड़ो हो। अभिनन्दन पत्र पढणै खातर मनै कैयो तो मेरै मन में यो गुमान हिलोरा लेवण लाग्यो'क इत्ती बड़ी सभा में दियो जाणै आलै अभिनन्दन-पत्र नैं मैं पढस्युं। चाव-चाव को मारयो मैं वींनै दो-तीन बार चोखी तरियां पढ कर घोख लियो। मोहताजी मनै बुलाकर मेरै पां वंचवायो अर सुण कर भोत राजी होया, मेरी पीठ थापड़ी।

"सभा में सादुलपुर-राजगढ अर आसै-पासै कै गांवां का मिनख मोकला हा, पण भागीरथजी अपणै आपनै ईं लायक गिण्यो नईं, न वै मंजूर कर्‌यो, न अभिनन्दन-पत्र लियो। वास्तव में जसकी लालसा सें दूर रह कर निसकाम भाव सें सेवा करणियां हा भागीरथजी।"

X X X

सुणतां पांण अकाल, भाग्यो आतो देस नै।
अब कुण बांधै पाल, तेरै विन भागीरथा॥

हजार कोस परै राजस्थान में अकाल पड़ै अर कलकत्तै में घरा बैठे डोकरै की छाती में सूक्योड़ी जोहड़ती की कांप में पड़ै ज्यूं तराड़ पड़ै। चामड़ो चिप्योड़ी गायां का कंकाल अर सूकी डैरयां की पालां ऊपर टोपै-टोपै पाणी नै तरसतै टोगड़ियां को सीन आंख्यां में तिरै।

गांवां में धन, धीणै का धिराणा सरतरिया लोग भी डांगरां का जेवड़ा काट, फलसां कै भींटखा छाप, लुगाई-टाबरां नै सागै लेकर रोटी-रोटी करता गैलो नापै लाग्या। डोकरियां हलवां-हलवां हालती, लारलो अकाल किसौक दौरो काढयो, याद करती, आपस री में वतलावती वगै—

"माजी, थे पग मतना छोडियो, डांगरां ताणी फूस-फरड़ो अर मिनखां ताणी वाजरी की जापड़-थापड़ होण लाग रैई है, या कैवणियो भागीरथ कानोड़ियो भी अैस वापरयो कोनी।"

"के होवै काकीजी. अैस भागीरथजी ही काल करग्या नीं।"

"हां, विरा—जणाईं तो गांव छूटग्यो। डीक्या, डीक्या पण को बापरयोनी जणां मैं टाबरियां नै कैयो'क मोटयारियो मुकनगढ-सीकर कानी निघै तो करो, रामजी तो रूसग्यो, पण वा रामजी की गाय भी कियां कोनी आई?"

"वाई दादीजी! वो तो मिनख के हो, साचलो भागीरथ ही हो, आणो तो चाये हो।"

"के आवै बेटा, बापड़ै को सुरगां में वासो होयो, विसा मिनख अब कठै पड़्या है। मिनखां की तो वात ही के है, जिनावरां को दुख देख कर ही वींको कालजो भरया तो। पराई पीड़ नै देख कर वीं को मन चूंटिये की ज्यूं पिंघल ज्यातो। वो तो मोट्यार के खोलिये में मां ई थो।"

—: ० :—

'मरु श्री' के सम्पादक,
राजस्थानी कहावत कोश के सह-सम्पादक
श्री गोविन्द अग्रवाल

एक पुण्य स्मरण

कोई आदमी चाहे कितना ही बड़ा हो और चाहे देश भर में उसने कितना ही यश अर्जित कर लिया हो, फिर भी उसके अपने गांव में तो उसके आलोचक अवश्यमेव मिल जायेंगे। लेकिन स्व० श्री भागीरथजी कानोड़िया इसके अपवाद कहे जा सकते हैं। मैं उनसे मिलने हेतु कई बार उनके गांव मुकुन्दगढ़ गया, अनेक अपरिचित लोगों से बात-चीत भी हुई, लेकिन कभी किसी के मुंह से एक शब्द भी उनकी आलोचना के रूप में नहीं सुना, बल्कि सब के मन में श्री कानोड़ियाजी के प्रति हार्दिक सम्मान एवं श्रद्धा की भावना ही देखने को मिली। मैं इस बात को उनके जीवन की एक बड़ी उपलब्धि मानता हूं।

मैं जब भी उनसे मिलने हेतु मुकुन्दगढ़ जाता तो प्राय: उन्हें अपनी हवेली की बैठक में अनेक लोगों के साथ बैठे पाता। श्री बदरीनारायणजी सोढानी भी बहुधा सीकर से वहां आया करते थे। अकाल-पीड़ित लोगों की सहायता के लिए क्या किया जाना अपेक्षित है; दुर्भिक्ष के कारण मरती हुई गायों को बचाने हेतु क्या कुछ होना चाहिए; टी० बी० अस्पताल (कल्याण आरोग्य सदन, सांवली) में क्षय रोगियों के लिए और अधिक शय्याओं का प्रबन्ध अथवा रोगियों की सुख-सुविधा बढ़ाने हेतु क्या उपाय किये जाएं जैसी चर्चाओं में ही वे निरत रहते थे।

अनेक जरूरतमन्द लोग अपनी निजी समस्याओं को लेकर भी उनके पास आते रहते थे। श्री कानोड़ियाजी उनकी बातों को सहानुभूतिपूर्वक सुनते और उनकी समस्याओं का निराकरण करने का प्रयत्न करते थे। ऐसा करने में उन्हें सुख व सन्तोष की अनुभूति होती थी। किसी का उपकार करके वे उस पर कोई एहसान नहीं जताते बल्कि सहृदयता-वश इसे अपना पुनीत कर्तव्य ही मानते थे। 'नेकी कर और दरिया में डाल' के सिद्धान्त को उन्होंने अपना लिया था।

मैंने कभी उन्हें गुस्सा करते या तेज आवाज में बोलते नहीं सुना। वे औरों को तो यथोचित सम्मान देते थे, किन्तु स्वयं के लिए मान-बड़ाई की अपेक्षा नहीं रखते थे। 'सबहि मानप्रद आपु अमानी' के वे जीवन्त प्रतीक बन गये थे। श्री कानोड़ियाजी के प्रशंसक और श्रद्धालु स्नेहीजन उनकी विद्यमानता में ही उनका एक वृहत् अभिनन्दन ग्रन्थ निकालने के प्रबल आकांक्षी थे। लेकिन उन्होंने कभी इस बात को स्वीकार नहीं किया। उनका यह इन्कार महज औपचारिक या दिखावटी नहीं, बल्कि हार्दिक था। आज के युग में जब अपना-अपना अभिनन्दन ग्रन्थ छपवाने की होड़ सी लगी हुई है तो अपने अभिनन्दन ग्रन्थ के प्रति श्री कानोड़ियाजी की यह विरक्ति आदर्श एवं अनुकरणीय ही कही जा सकती है।

अभिनन्दन ग्रन्थ तो दूर, वे अपना संक्षिप्त परिचय या फोटो छपवाना भी पसन्द नहीं करते थे। मेरे सह-सम्पादन में जब उनका "राजस्थानी कहावत कोश" छप कर तैयार हो गया तो मैंने कोश के जैकट पर उनका फोटो व संक्षिप्त परिचय देना चाहा। इसके लिए मैंने उन्हें पत्र लिख कर फोटो व परिचय यथाशीघ्र भिजवा देने हेतु निवेदन किया। इसके उत्तर में कलकत्ता से दिनांक १५ फरवरी, १९७९ को उनके हाथ का लिखा जो पत्र मिला, वह उनकी हार्दिक भावना को प्रतिविम्बित करता है। पत्र का अविकल पाठ इस प्रकार है—

प्रिय श्री गोविन्दजी,

आपने अपने पहिले एक पत्र में मेरा पासपोर्ट फोटो मांगा था। लेकिन फोटो न तो मैं अपना रखता ही हूं और न कहीं छापा जाना पसन्द ही करता हूं। परिचय मेरा क्या पड़ा है—एक व्यापारी हूं, कमाने-खाने का काम करता हूं। मेरा भी कोई परिचय होता है क्या ?

आपका
भागीरथ कानोड़िया

श्री कानोड़ियाजी का यह पत्र मुझे कुछ विलम्ब से प्राप्त हुआ था, अतः मैंने इस बीच फोटो व परिचय शीघ्र भिजवाने के लिए उन्हें दूसरा पत्र लिखा एवं तार भी दिया। लेकिन वे इसके लिए कतई राजी नहीं हुए और उन्होंने अपने पत्र दिनांक १९ फरवरी, ७९ के द्वारा फोटो व परिचय छापने के लिए पुनः मना कर दिया।

श्री कानोड़ियाजी का दृष्टिकोण यथार्थवादी एवं व्यावहारिक था। मैं एक बार उनसे मिलने हेतु मुकुन्दगढ़ गया तो खाने की मेज पर ही मेरे मझले लड़के राजू की सगाई की बात चल पड़ी। चि० राजू एक-दो बार श्री कानोड़ियाजी के दर्शन कर चुका था और वे उसे जानते थे, अतएव बोले कि राजू की सगाई के लिए एक लड़की मैं आपको वतलाऊंगा। उस समय तो मैंने 'वहुत अच्छा' कह दिया, लेकिन फिर सोचा कि वहू कहीं इतने 'ऊंचे-स्तर' की न आ जाए कि दिन भर पलंग पर बैठी फरमाइशें ही किया करे। इसलिए चूरू आकर मैंने श्री कानोड़ियाजी को एक पत्र लिखा कि मैं एक सामान्य गृहस्थ हूं, इसलिए मुझे तो घर का काम-धंधा करने वाली वहू (पुत्रवधू) ही चाहिए, फरमाइशें करने वाली नहीं; कहीं ऐसा न हो कि—

भेड़'ज ल्याया ऊन नै, बैठी चरै कपास।
वहू'ज ल्याया काम नै, बैठी करै फरमास॥

इसके उत्तर में मुकुन्दगढ़ से ही श्री कानोड़ियाजी ने दिनांक ३०-११-७७ के पत्र में मुझे लिखा, "बहू आपको सुझाऊंगा तो 'फरमास' करने वाली नहीं, काम करने वाली ही होगी।" उनका उत्तर पाकर मुझे बड़ा संकोच हुआ क्योंकि उनकी विवेकशीलता एवं जागरूकता को जानते हुए भी मैंने उन्हें ऐसा लिखा, जो नहीं लिखना चाहिए था।

एक सफल उद्योगपति एवं गांधीवादी कर्मठ समाजसेवी के रूप में तो वे विश्रुत थे ही, राजस्थानी लोक साहित्य से भी उनका गहरा लगाव था। उनकी लेखन शैली प्रसादगुण युक्त थी। सरल, सुबोध एवं लालित्यपूर्ण भाषा में प्रकाशित उनके कहानी संग्रह "बहता पानी निर्मला" के तीन संस्करण बड़ी जल्दी-जल्दी निकल गये जो उनकी लेखन-शैली की लोकप्रियता का प्रमाण है।

श्री कानोड़ियाजी एक बहुत अच्छे पत्र-लेखक भी थे। सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, सामयिक एवं साहित्यिक विषयों की आंशिक चर्चा भी उनके पत्रों में रहती ही थी, जिससे उनके चिन्तन की एक यथार्थ झलक देखने को मिल जाती है। सन् १९७१ से १९७९ तक की अवधि में उनके द्वारा मुझे लिखे गये लगभग दो सौ पत्र मेरे संग्रह में हैं जिनमें से आधे से अधिक स्वयं उनके हाथ से लिखे हुए हैं। इन पत्रों में से कुछ को इसी स्मृति ग्रन्थ में ही अलग से प्रकाशित किया जा रहा है, अतः उदाहरणस्वरूप केवल दो पत्रों के कुछ अंश यहां दे रहा हूं—

(१)

मदनगंज-किशनगढ़
५-४-१९७३

"अनाज की किल्लत और दिक्कत सभी जगह हो रही है। इस सरकार की व्यवस्था इतनी अपूर्ण है कि कुछ कहने की बात नहीं, लेकिन किया क्या जाय। तुलसीदासजी ने कहा तो है कि 'जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी, सो नृप अवस नरक अधिकारी।' लेकिन प्रजा को तो नित्य ही नरक भोगना पड़ रहा है, नृप का तो कब क्या होगा, भगवान जाने।"

(२)

कलकत्ता
२१-१०-७४

"हाल की वर्षा से सीकर, झुंझनू जिलों में तो फायदा हुआ है। खड़ी फसल में भी तथा रबी की साख की उम्मीद भी अच्छी हो गई है।

मध्यवर्गीय समाज आज नितान्त उपेक्षित है, यह बात ठीक है। इसका एक कारण तो यह है कि उनका अपना कोई संगठन नहीं है। दूसरा यह कि यह समाज चाहे दुःख कितना ही झेलना पड़े, सहज ही हाथ नहीं पसारता। याचना करना तो दूर अमूमन अनायास मिलने वाली सहायता स्वीकार करते भी इसे संकोच और ग्लानि का अनुभव होता है।"

स्व० श्री कन्हैयालालजी सहल द्वारा सम्पादित—बिड़ला एज्यूकेशन ट्रस्ट के राजस्थानी शोध विभाग की मुख-पत्रिका "मरु-भारती" में श्री कानोड़ियाजी जब-तब लिखते रहते थे। उक्त पत्रिका में मैं भी लिखता आया हूं और एक बार मैंने राजस्थानी भाषा

में बहु-व्यवहृत कोई आठ सौ दोहरे-शब्द इसमें प्रकाशित करवाये। इन दोहरे शब्दों के विषय में श्री कानोड़िया जी का मदनगंज-किशनगढ़ से दिनांक ३०-११-७१ का लिखा एक लम्बा पत्र मिला जिसमें उन्होंने कतिपय दोहरे शब्दों के रूप-भेद आदि के विषय में लिखा था। मरु-भारती में प्रकाशित दोहरे शब्दों में मैंने एक शब्द "बास-बलियो" लिखा था। इसके लिए श्री कानोड़ियाजी ने अपने पत्र में लिखा कि मेरे गांव की तरफ यह शब्द "बास-पलियो" बोला जाता है।

श्री कानोड़ियाजी का पत्र मिलने पर मैंने कुछ लोगों से पूछ-ताछ की तो उन्होंने 'बास-बलियो' ही बतलाया, लेकिन मेरी पत्नी के अनुसार 'बास-पलियो' अधिक सही था। मैंने श्री कानोड़ियाजी को पूरी बात लिख दी और यह भी लिखा कि स्थान-भेद आदि के कारण लोक भाषा के शब्दों में थोड़ा-बहुत अन्तर आ ही जाता है। श्री कानोड़ियाजी सही बात को अविलम्ब स्वीकार कर लेते थे, अतः लोक भाषा के शब्दों में स्थानीय अन्तर को तो उन्होंने स्वीकार कर लिया, लेकिन अपनी विनोदी प्रकृति के कारण वे एक चुटकी लेने से भी नहीं चूके। मदनगंज-किशनगढ़ से ही दिनांक २२ दिसम्बर, १९७१ ई० के पत्र में उन्होंने मुझे लिखा—

"शब्दों में स्थानीय फर्क होता ही है। अपने यहाँ एक कहावत है, "चार कोस पर पानी बदले, बारा कोस पर बाणी।" चूरू तो मेरे गांव से १२ कोस से भी अधिक ही है, इसलिए वह फर्क मैं स्वीकार कर लेता हूं। आपकी पत्नी 'बास-पलियो' ठीक समझती है तो मैं इतना ही कहूंगा कि वह आप से अधिक सयानी है। बुरा मत मानना और यह भी मत समझ लेना कि मैं आप लोगों के बीच भेद उत्पन्न कर रहा हूं।"

श्री कानोड़ियाजी अपने पत्रों में कभी-कभी ठेठ राजस्थानी शब्दों का प्रयोग इतने उपयुक्त ढंग से करते थे जो सोने की अंगूठी में सच्चे नगीने की तरह दमकते थे। मेरी लड़की कमलकान्ता की सगाई की बात चल रही थी, लेकिन काम पार नहीं पड़ रहा था। एक बार बात कुछ आगे बढ़ी तो मैंने इसकी सूचना श्री कानोड़ियाजी को दे दी। इस पर उन्होंने दिनांक ६-७-७८ को कलकत्ता से मुझे लिखा—"बाई के सम्बन्ध में समाचार लिखे सो ठीक, सम्बन्ध तो करना ही है। २-५ हजार का अधिक 'चरका' खाना होगा तो उपाय नहीं है।" यहां यह 'चरका' शब्द अपने-आप में इतना उपयुक्त और सार्थक है कि कोई भाषा-शास्त्री भी इससे अधिक उपयुक्त शब्द नहीं बतला सकता।

'लोक संस्कृति शोध संस्थान, नगर-श्री, चूरू' द्वारा प्रकाशित शोध-त्रैमासिकी "मरु श्री" का प्रकाशन इन पंक्तियों के लेखक के सम्पादन में अक्तूबर, सन् १९७१ ई० से शुरू हुआ था। श्री कानोड़ियाजी ने प्रारम्भ से ही इसमें रुचि ली और अन्त तक इसके परामर्शक मण्डल में रहते हुए वे हमारा मार्ग दर्शन करते रहे।

तेरापंथी आचार्य श्री तुलसीजी की एक पुस्तक 'अग्नि-परीक्षा' के किसी अंश को लेकर कुछ विवाद खड़ा हो गया था और इसी बात को लेकर चूरू में पारस्परिक तनाव की सी स्थिति पैदा हो गई थी। श्री कानोड़ियाजी का दृष्टिकोण अत्यन्त उदार था और इस तनाव को मिटाने की दृष्टि से वे श्री नथमलजी भुवालका एवं श्री जय-प्रकाश शर्मा के साथ चूरू आये थे। उसी अवसर पर दिनांक १९-१०-७२ को श्री

कानोड़ियाजी एवं श्री भुवालकाजी ने संस्था (नगर-श्री) के कार्यों का अवलोकन करके अपनी संयुक्त सम्मति लिखी थी।

श्री कानोड़ियाजी राजस्थानी कहावतों के मर्मज्ञ थे और उन्हें बहुत सी कहावतें कंठस्थ थीं। श्री विजयदानजी देथा के सह-सम्पादन में वे "राजस्थानी हिन्दी कहावत कोश" की एक जिल्द प्रकाशित भी करवा चुके थे जिसमें अ से लगा कर घ तक की कहावतें थीं। लेकिन श्री कानोड़ियाजी राजस्थानी कहावतों का एक ऐसा संग्रह निकालना चाहते थे जिसमें चूरू-शेखावटी के क्षेत्र में प्रचलित कहावतें अपने मूल आंचलिक स्वरूप में अर्थ सहित प्रकाशित की जाएं और कुछ कहावतों की कहानियां भी उनके साथ दी जाएं।

इस प्रयोजन हेतु उन्होंने अपने संग्रह की १६७९ कहावतें मुझे भेजी और ११ अक्तूबर, सन् १९७७ के पत्र में मुझे लिखा कि जितनी कहावतें आपको याद आवें या आप संग्रहीत कर सकें, वे इनमें और जोड़ लें। यदि २५०० कहावतें हो जाएं तो मैं अच्छा संग्रह मान लूंगा, किन्तु २००० हो जाएंगी तो उससे भी मुझे सन्तोष होगा। कहावतों की सौ कहानियाँ देने से काम चल जाएगा। इसके बाद तो वे प्रायः अपने हर पत्र में दो-पांच कहावतें लिखते ही रहते थे। दिनांक १७-७-७८ को उन्होंने अपने हाथ से १६ पृष्ठों का एक लम्बा पत्र लिखा, जिसमें लगभग एक सौ कहावतें होंगी।

यही नहीं, कहावतों वाला काम शुरू करने के बात तो श्री कानोड़ियाजी जब भी राजस्थान आते तो कहावतों के सम्बन्ध में विचार-विमर्श करने हेतु मुझे आवश्यक रूप से मुकुन्दगढ़, सीकर या किशनगढ़ बुला लिया करते। लेकिन चूरू और मुकुन्दगढ़ के बीच की डाक-तार सेवा भी बहुत सुव्यवस्थित नहीं थी। कभी तो चूरू से डाला हुआ साधारण पत्र भी अगले दिन मुकुन्दगढ़ पहुंच जाता था और कभी आवश्यक तार के पहुंचने में भी ४-५ रोज लग जाते थे। इसलिए कई बार बड़ी परेशानी होती थी और यथा-समय मिलना भी नहीं हो पाता था।

एक बार चूरू से १३ अगस्त, १९७८ को डाला हुआ मेरा पत्र उन्हें मुकुन्दगढ़ में १४ को ही मिल गया तो उन्होंने उसी दिन मुझे पत्र लिखा : "इस बार पत्र मिलने में जरा भी विलम्ब नहीं हुआ है। सतजुग की तरह काम हुआ है, आप रोज-रोज शिकायत करते थे न, इसलिए। २० तारीख को आप सीकर आ जाएं, मैं वहीं मिल जाऊंगा।" लेकिन १४ को मुकुन्दगढ़ से लिखा हुआ उनका यह पत्र मुझे चूरू में २० तारीख को तब मिला कि जब सीकर जाने वाली गाड़ी कभी की जा चुकी थी, अतः मैं नहीं जा पाया।

इसके बाद उनका २९-८-७८ का मुकुन्दगढ़ से लिखा हुआ पत्र मुझे ४ सितम्बर को मिला कि आपको जिस दिन और जहां भी सुभीता हो, मुकुन्दगढ़ या सीकर मिल लें। मैंने पत्र मिलते ही उन्हें मुकुन्दगढ़ आवश्यक तार दे दिया कि मैं कल सीकर पहुंच रहा हूं और मैं अगले दिन सीकर चला गया। लेकिन श्री कानोड़ियाजी को मेरा तार नहीं मिला था, अतः वे सीकर नहीं पहुंचे और मैं उनसे बिना मिले ही चूरू लौट आया। मेरा यह आवश्यक तार उन्हें ८ तारीख को मिला जिसके अनुसार वे

९ को सीकर पहुंचे। लेकिन मैं तो ५ की शाम को हो चूरू लौट आया था अतः वहां मिल पाने का प्रश्न ही नहीं था। इस पर मुकुन्दगढ़ जाकर उन्होंने मुझे पत्र लिखा—

"कल आपका तार मिला था। उसके अनुसार मैं आज आपसे मिलने के लिए सीकर गया, किन्तु आप वहां नहीं पहुंचे। लगता है, वहां कोई खास काम हो गया है। आते तो मिलना हो जाता। अब आपका कार्यक्रम किस तारीख का बन सकता है, कृपया लिखें।

पुनः

अभी अभी आपका ६ ता० का पत्र यहां मिला। मैं ८ तारीख को यहां आ गया था। मुझे खेद है कि आप ५ ता० को सीकर गये भी तथा मिलना भी नहीं हुआ। नाहक ही 'फोड़ा पड़या'। खैर, अब आपका किसी दिन सीकर या मुकुन्दगढ़ आना हो सके तो मुझे पहले से सूचित करना ताकि मैं अपना कार्यक्रम तय करके उसके अनुसार आपको तार से सूचना दे सकूं।"

मार्च, १९७९ में जब मैं श्री कानोड़ियाजी से पुनः मिलने के लिए मुकुन्दगढ़ गया तो मेरे साथ इंगलैण्ड निवासी श्री इले कूपर भी थे जो चूरू-शेखावटी के भित्ति-चित्रों के फोटो लेने के उद्देश्य से यहां आये हुए थे। उसी दिन शाम को वहां शारदा सदन कालेज में किसी विदेशी महिला को व्याख्यान देने के लिये बुलाया गया था, लेकिन शाम हो चली थी अतः हम दोनों ने कालेज के बाहर ही श्री कानोड़ियाजी से विदाई ले ली। पिछली बार की तरह श्री कानोड़ियाजी ने अपनी गाड़ी में हमें चूरू छोड़ने के लिए भेज दी थी और यही मेरी उनके साथ अन्तिम भेंट थी।

'राजस्थानी कहावत कोश' छप कर तैयार हो चुका था जिसमें ३२०९ कहावतें एवं लगभग ३५० कहावतों की कहानियां भी थीं। कहावत कोश की मुद्रित प्रति को देख कर उन्होंने सन्तोष प्रकट किया था।

इधर मेरी लड़की कमलकान्ता का विवाह हो गया था और कुछ ही दिनों बाद चि० राजू का विवाह भी सम्पन्न हो गया था एवं राजू से बड़े लड़के चि० प्रेम-प्रकाश को पुत्री की प्राप्ति हुई थी। ये सब समाचार मैंने श्री कानोड़ियाजी को लिखे थे। इस पर उन्होंने अपने ४-७-७९ के पत्र में लिखा—

"आपका २६ का पत्र मिला। साधारण सी अस्वस्थता के कारण मैं ५-६ दिन से आफिस नहीं गया, इसलिए पत्र का उत्तर जाने में देरी हुई। दोनों विवाह सानन्द सम्पन्न हो गये, जानकर सन्तोष हुआ। मारवाड़ी बोली में विवाह को 'टाबर बिणजना' कहते हैं, हमारी तरफ। आपकी तरफ यह शब्द चालू है या नहीं, मालूम नहीं। आज तो शायद हमारी तरफ भी नहीं बोलते हैं, लेकिन मैं ५०-६० वर्षों पहले की बात लिख रहा हूं। उन दिनों यह शब्द सार्थक था या नहीं लेकिन आज तो अक्षरशः सत्य है। बाई की विदाई और पोती के आगमन, दोनों के लिए बधाई।"

श्री कानोड़ियाजी के हाथ का लिखा यह अन्तिम पत्र था। इसके बाद दिनांक १३-७-७९ का कलकत्ता से लिखा उनका जो पत्र मुझे मिला, वह उन्होंने किसी अन्य व्यक्ति से लिखवाकर उस पर अपने हस्ताक्षर कर दिये थे। इसमें लिखा था—

"मेरा स्वास्थ्य अभी वैसा ही चल रहा है। इस बार कमजोरी अधिक है, लेकिन ठीक हो जाऊंगा। इस वार तो हिन्दुस्तान में सारे ही प्रान्तों में फसल की शिकायत है। अगर अकाल पड़ गया जिसकी कि सम्भावना बढ़ रही है, तो बड़ी मुश्किल होगी।"

श्री कानोड़ियाजी की ओर से मुझे मिला, यह अन्तिम पत्र था। यद्यपि उन्होंने ठीक हो जाने की आशा व्यक्त की थी, लेकिन दिन-ब-दिन उनका स्वास्थ्य गिरता ही गया जिसकी जानकारी मुझे श्री नथमलजी भुवालका, श्री जयप्रकाश शर्मा, श्री कन्हैयालालजी सेठिया, श्री रतन शाह एवं श्रीमती उमादेवी कानोड़िया के पत्रों से समय-समय पर मिलती रही। लेकिन उनके स्वास्थ्य में निरन्तर गिरावट के ही समाचार प्राप्त होते रहे और अन्त में उनके दिवगंत होने का वह अत्यन्त पीड़ाजनक समाचार भी मिल ही गया, जिसकी आशंका कुछ समय से बढ़ चली थी। मेरे ऊपर श्रद्धेय श्री कानोड़ियाजी का स्वाभाविक स्नेह था, इसलिए मुझे तो इस समाचार से हार्दिक दुःख होना ही था, लेकिन इससे भी अधिक दुःख इस वात का था कि इस धरती से एक सच्चा इन्सान उठ गया।

—:०:—

समालोचक, 'तटस्थ' के सम्पादक

डा० कृष्णबिहारी सहल

साहित्योपासक संत

आज से २७ वर्ष पहले की बात है, पिताजी (डा० कन्हैयालालजी सहल) के साथ सफेद खादी का कुर्ता और धोती पहने हुए एक व्यक्ति पिलानी स्थित 'सहल सदन' में आया। व्यक्ति का आना कोई नई बात नहीं थी पर उसका ड्राइंग रूम में न जाकर सीधा घर के अन्दर जाना हम भाई-बहिनों को थोड़ा अटपटा सा लगा। पर चूंकि पिताजी साथ में थे इसलिए सब-कुछ ही क्षणों में सहज सा हो गया। उन्हें जानने को हमारी जिज्ञासा बढ़ती जा रही थी। देखते-देखते तो वे अन्दर रसोई के पास जा खड़े हुए और मेरी माताजी को कहने लगे "क्यां, पिलाणी मांय मन लाग्यौ कि नहीं?" इस पर पिताजी को हल्की सी हंसी आई और कहने लगे कानोड़िया जी आये हैं--इस पर माताजी ने कहा 'आ बात आज कंइयां पूछी बीस बरसा के पाछे।' इस पर भागीरथजी भी हंसने लगे और हम लोगों की ओर देखते हुए बोले—यह बात ठीक है। बीस वर्ष बाद मन लगने की बात पूछना तो मजाक ही रहा।

तब पिताजी हम लोगों को बताया १९३९ में वह मुकुन्दगढ़ से पिलानी आ गये थे। कानोड़ियाजी की इच्छा पिताजी के अध्ययन-कक्ष को देखने की थी और सम्भतः वे घर पर आये भी इसीलिए थे। कहने लगे—कन्हैयालालजी, यह मकान तो आपने अच्छा ले लिया—आपका अपना कमरा कौन सा है। इस पर पिताजी उन्हें ऊपर ले गये और अपने दो कमरे दिखलाये जिनमें वे दिन के १८ घण्टे व्यतीत किया करते थे। हजारों पुस्तकों के बीच स्थित "मूड़ढे" को देख कर कानोड़ियाजी कहने लगे 'क्या आप इसी पर बैठ कर लिखते-पढ़ते हैं?' पिताजी ने कहा, 'हां मैं कभी टेबिल कुर्सी का प्रयोग नहीं करता। कानोड़ियाजी को आश्चर्य हुआ—मूड्ढे पर बैठकर इतना सारा लिखने का कार्य कैसे कर लेते हैं? कानोड़ियाजी कहने लगे, "कन्हैयालालजी आप तपस्या कर रहे हैं। मुझे इस कमरे में बड़ी शान्ति मिली है।' उस कमरे के फर्श पर अस्त-व्यस्त ढंग से पड़ी हुई ढेरों फाइलों, पत्र पत्रिकाओं को देखकर कानोड़िया-जी शायद कुछ कहने को ही थे—तभी पिताजी बोले नीचे जो सामग्री पड़ी है उसे मुझे आज देखना है लेख लिखते समय कई सन्दर्भ देने होते हैं। जब कोई नयी चीज मिलती है तो मैं उसे नोट कर फाइल में लगा देता हूं। दोनों साहित्यानुरागी उस कमरे में थोड़ी देर रहे और फिर नीचे ड्राइंग रूम में आगये। श्री कानोड़ियाजी का पिताजी पर बड़ा स्नेह था। वे उनका आदर भी बहुत करते थे।

बात उन दिनों की है जब पिताजी मुकुन्दगढ़ में कानोड़िया स्कूल में प्रधानाध्यापक थे। उन्हीं दिनों मुकुन्दगढ़ में ठाकुर बाघसिंहजी के ठिकाने की ओर

से भी एक विद्यालय चला करता था। सम्मान के किसी प्रश्न को लेकर ठाकुर वाघसिंह तथा कानोड़िया विद्यालय परिवार में मतभेद की स्थिति उत्पन्न हो गई थी। शनिवासरीय सांस्कृतिक सभा के समय ठाकुर वाघसिंहजी की ओर से एक चोपदार हुक्म सुनाने के लिए आया और कहा—"ठाकुर वाघसिंहजी के हुक्म से कन्हैयालालजी को अगले २४ घण्टों में मुकुन्दगढ़ छोड़ देना होगा।" विद्यालय समाप्ति पर पिताजी ने अपनी संस्था के संचालक श्री गंगावक्सजी एवं भागीरथजी कानोड़िया को इस सारी घटना से अवगत करा दिया। कानोड़ियाजी ने अपनी संस्था के कर्मचारी की इज्जत पर हुए हमले को अपने परिवार पर हुए आक्रमण की तरह गम्भीर समझ कर उद्योगपति सेठ घनश्यामदासजी विड़ला को मुकुन्दगढ़ से तार लगा कर पूछा कि आप कहां है? जल्दी लिखिये।' घनश्यामदासजी को तार देने की सूचना मिलने पर परिस्थिति की गम्भीरता को समझ कर ठाकुर वाघसिंहजी कानोड़ियों की हवेली पर भागीरथजी आदि से मिलने पधारे। गंगावक्सजी एवं भागीरथजी ने ठाकुर साहव का आदर भाव किया। उन्होंने ठाकुर साहव को शालीनतापूर्वक तार देने का कारण वताते हुए व्यंग्य में कहा— "अव तो हमें २४ घण्टों में मुकुन्दगढ़ छोड़ना है कहीं रहने की भी व्यवस्था तो करें।" नीति-कुशल ठाकुर वाघसिंहजी ने बात को न बढ़ने देने के लिए माफी मांगते हुए भागीरथजी से समस्या को सुलझाने के लिए उपाय पूछा। इस पर कानोड़ियाजी ने जवाब दिया: "आगे होनेवाली 'शनिवासरीय सभा' में आपका भेजा हुआ पहलेवाला चोपदार ही विद्यालय में जाकर कन्हैलालजी से आपकी ओर से माफी मांगे तथा अपने शव्द वापिस ले।" इस पर ठाकुर साहब "मुझे आपको मुकुन्दगढ़ से नहीं निकालना है" कहते हुए हवेली से चलने लगे कि वीच में ही भागीरथजी ने उनको रोकते हुए पुनः कहा कि 'आपका माफी मांगना आपका वड़प्पन है। हमसे मांगी गई माफी कन्हैयालालजी से मांगी गई माफी के वरावर ही है। अव आप चोपदार को कन्हैयालालजी के पास न भेजें।" भागीरथजी की नीति-कुशलता तथा स्वाभिमान से ठाकुर साहब द्रवित हो गये। उनकी आंखों में पश्चाताप के आंसू झलक आये। भागीरथजी ने पिताजी के देहान्त पर अपने किसी एक पत्र में मुझे लिखा था—"कन्हैयालालजी के स्वभाव में भारत की आजादी की लगन उस जमाने में भी गहरी थी। उनकी इस तरह की प्रवृत्ति के कारण एक वार मुकुन्दगढ़ के तत्कालीन ठाकुर साहव वाघसिंहजी ने उन्हें गांव छोड़ने का आदेश भी दे दिया था किन्तु वाद में उन्हें वैसा करना नहीं था। इसके पीछे एक लम्बी और रोचक कहानी है फिर कभी लिखूंगा।"

श्री कानोड़ियाजी से मेरा कई बार मिलना हुआ पिलानी, मुकुन्दगढ़, कलकत्ता में। उनके सरल सहज स्वभाव से मैं बड़ा प्रभावित था। मुकुन्दगढ़ में जब उनके मकान पर मिलने गया तो बड़े स्नेह से अपने पास बैठाया, कहने लगे 'कृष्णबिहारी, लोक कथाएं टाइप हो रही हैं तुम भी इन्हें पढ़ लो भाषा सम्बन्धी कोई कमी हो तो बतलाओ।' मुझे बड़ा संकोच हो रहा था, मैं जानता था मुझे इनमें कोई सुधार नहीं करना है। यह तो उनकी निराभिमानता ही है। अभिमान उन्हें छू भी नहीं गया था। समृद्धि, वैभव प्राप्त करके भी विनम्र रहना कानोड़ियाजी जैसे व्यक्ति के लिए ही सम्भव था। मेरे मन पर जो गहरी छाप पड़ी वह थी उनकी विनम्रता एवं सादगी

की। जब-जब मैंने उन्हें अपनी पुस्तकें भेजी उन्होंने बराबर प्रशस्तिसूचक पत्र दिये। कभी अपने लेख का रिप्रिंट भेज देता तो उसे भी पढ़ कर अपनी प्रतिक्रिया अवश्य भेजते।

श्री भागीरथजी कानोड़िया की समाज को बहुविध देन है। उन्होंने शिक्षा, संस्कृति, साहित्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया। साहित्य के प्रति विशेषकर राजस्थानी साहित्य के प्रति उनकी जो गहरी पैठ थी, वह श्लाघनीय थी। इतने व्यस्त होते हुए भी उन्होंने राजस्थानी लोककथा, राजस्थानी कहावतों पर जो कार्य किया वह स्मरणीय रहेगा। पिताजी के साथ उनके सैकड़ों पत्राचार हुए हैं, पर सभी पत्रों में लोक साहित्य की चर्चा के अलावा और कुछ नहीं है। पत्रों में वे कहीं राजस्थानी साहित्य के गवेषक के रूप में हैं तो कहीं भाषा वैज्ञानिक दृष्टि लिए अर्थ-विमर्श करते हुए मिलते हैं, तो कहीं शोध कार्य में तल्लीन शोधार्थी के रूप में पाठालोचन कर रहे हैं, तो कहीं अपनी स्मृतियों के सहारे राजस्थानी संस्कृति, त्योहारों पर गाये जाने वाले गीतों के शुद्ध रूप की चर्चा करते हैं। वस्तुतः भागीरथजी कानोड़िया राजस्थानी भाषा साहित्य के चलते-फिरते कोश थे। यह सब उनके प्रबुद्ध पाठक के व्यक्तित्व का एक रूप था। 'मरु भारती' के एक-एक पृष्ठ को वे पढ़ते थे और जहां उन्हें कोई बात खटकी, वे तुरन्त कलम को पकड़ अपने 'प्रिय कन्हैयालालजी' को पत्र लिख डालते थे। ऐसे अनेक पत्र हैं। कुछ एक पत्र यहां दे रहा हूं :

मुकुन्दगढ़
९-३-७१

प्रिय श्री कन्हैयालालजी,

'रैसी देवी काठ की के पत्थर को पारसनाथ' इसमें मात्रा का हिसाब नहीं बैठता। सही रूप यह है "रैसी देवी काठ की (के) बावो पारसनाथ।" कहानी इस तरह है कि एक गांव में चोर आये। पास-पास में दो मन्दिर थे, एक जैनियों का और एक वैष्णवों का। वैष्णवों के मन्दिर में एक मूर्ति देवी की ऐसी थी जिसे आभूषणों से अभी तक अलंकृत नहीं किया गया था, काठ का ढांचा मात्र ही था। बाकी देवी-देवताओं की मूर्तियां वस्त्राभूषणों से अलंकृत थी। अतः चोर उस काठ की देवी को छोड़ कर सारी मूर्तियां चुरा कर ले गये। पास के जैन मन्दिर में वे गये तो सही, लेकिन वहां पारसनाथजी की मूर्ति थी, वह भी आभूषणों और अलंकारों से शून्य थी, इसलिए चोर उस मूर्ति को भी छोड़ गये। सुवह दर्शनार्थी मन्दिर में पहुंचे और पुजारी से पूछा तो उसने उपरोक्त कहावत कही। आशा है सानन्द होंगे।

आपका
भागीरथ कानोड़िया

कानोड़ियाजी की स्मरण शक्ति भी गजब की थी। वे उद्योग में जरूर रहे, पर उनका मन राजस्थानी भाषा, साहित्य, संस्कृति की श्रीवृद्धि में ही लगा रहा।

पिताजी के साथ उनका बड़ा लगाव था, बड़ा स्नेह था, वे उनके साहित्यिक कार्यों में बड़ी रुचि लेते थे। उनकी इच्छा थी पिताजी को कोई राष्ट्रीय पुरस्कार

मिले—ऐसा मुझे उनके पत्रों से लगा है। हजारीप्रसादजी द्विवेदी को ९-७-१९७५ कलकत्ता से पत्र लिखते हैं :

प्रिय श्री पण्डितजी,

आपका २ तारीख का पत्र मिला। साथ ही आपने कन्हैयालालजी सहल को जो पत्र लिखा उसकी प्रतिलिपि भी।

यह जान कर मन को अच्छा लगा कि आपको 'निहालदे सुलतान' नामक ग्रन्थ पसन्द आया। मुझे सन्तोष है कि मैंने आपको योग्य व्यक्ति के लिए पुरस्कृत कराने का प्रयत्न करने के वारे में सिफारिश की।

आशा है आप सानन्द होंगे।

आपका
भागीरथ कानोड़िया

कानोड़ियाजी उद्योगपति जरूर थे पर मूलतः वे साहित्यकार थे। साहित्यकारों से उनका वरावर सम्पर्क रहा है। शायद ही कोई उनकी पीढ़ी का साहित्यकार रहा होगा जिसका उनसे सम्पर्क न-हुआ हो। सम्पर्क भी आत्मीयतापूर्ण। डा० सत्येन्द्र को उन्होंने पत्र लिखा था। सत्येन्द्रजी ने जो उत्तर भेजा उससे लगता है सम्पर्क कितना आत्मीय था।

परम श्रद्धेय कानोड़ियाजी,

आपका ९-८-७१ का कृपा पत्र डा० सहल के पत्र के साथ प्राप्त हुआ। मैं शब्दों में प्रकट नहीं कर सकता कि कितना कृतज्ञ हूं।

मैं चाहे बहुत दिनों से आपसे मिलने का कोई सुयोग नहीं प्राप्त कर सका हूं फिर भी आपको मैं अपने जीवन में निरन्तर अत्यन्त निकट वरदहस्त उठाये हुए देखता हूं। अतः आपकी इच्छा मात्र भी आदेश के समान है। उधर डा० कन्हैयालाल सहल का भी स्नेह और कृपा मेरे ऊपर दीर्घकाल से रही है। फिर जिस कार्य को करने का आदेश हुआ है वह मेरे मन का सा है। अतः इसे अवश्य करूंगा। प्रार्थना शब्द लिख कर आपने मुझ पर कुछ अन्याय ही किया है। मैं तो आपके आदेश का अधिकारी हूं।

सूचनार्थ डा० कन्हैयालाल सहल के सुपुत्र चिरंजीव डा० कृष्णबिहारी सहल ने मेरे सुझाव पर ही निहालदे सुलतान पर मेरे निर्देशन में पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की है। इस शोध प्रबन्ध के प्रकाशन की यदि कोई व्यवस्था हो जाय तो बहुत अच्छा हो।

आपका जयपुर भी आना-जाना रहता होगा। आप इस बार जयपुर आयें तो मुझे सूचित कर दें जिससे मैं दर्शनों का लाभ उठा सकूं।

विनीत
सत्येन्द्र

साहित्यकारों से कानोड़ियाजी के बहुत ही मधुर सम्बन्ध रहे हैं। मैं इस तथ्य को रेखांकित करना चाहता हूं। हजारीप्रसादजी द्विवेदी ने २-७-७५ को वाराणसी से लिखा :

आदरणीय कानोड़ियाजी,

डा० कन्हैयालालजी सहल द्वारा लिखा निहालदे सुलतान कथानक ग्रन्थ मिल गया है। मैंने बड़ी रुचि के साथ उसे पढ़ा है। यह कई दृष्टियों से बहुत महत्वपूर्ण पुस्तक है। लोक कथानकों के अध्ययन के लिए तो शायद यह सबसे उपयोगी पुस्तक है। जिन लोगों को निहालदे सुलतान गेय रूप में सुनने का अवसर नहीं मिला है उनके लिए सहलजी ने बहुत कुछ रस इसमें सुरक्षित रखा है। निःसन्देह वे बधाई के पात्र हैं।

बहुत वार कथानक में रूढ़ियों और अभिप्रायों का प्रयोग किसी उत्तम उद्देश्य के लिए नहीं होता परन्तु 'निहालदे सुलतान' में उनका प्रयोग ब्रह्मचर्य, सत्यनिष्ठा और आदर्श की ओर उन्मुख करने के लिए हुआ है। यहां 'प्रकृति', 'विकृति' की ओर न जाकर 'संस्कृति की ओर जाती है। इस दृष्टि से भी इस कथानक का महत्व है। मैंने सहलजी को जो पत्र लिखा है उसकी एक प्रति अवलोकनार्थ आपके पास भेज रहा हूं। आशा है आप स्वस्थ और प्रसन्न हैं।

आपका
हजारीप्रसाद द्विवेदी

ऐसे निर्मल और विनम्र व्यक्तित्व के प्रति जितना लिखा जाय कम है। श्री कानोड़ियाजी के चले जाने के कारण मुझे अपने परिवार में एक और रिक्तता लगी थी। अभी जब मैंने "डा० कन्हैयालाल सहल हिन्दी राजस्थानी शोध संस्थान" के अन्तर्गत "अखिल भारतीय शोध सर्जन समर्पित सम्मेलन" का आयोजन पिलानी में किया तो कानोड़ियाजी को पत्र लिखा था। उन्होंने मेरे प्रस्ताव को न केवल स्वीकार ही किया बल्कि आर्थिक सहायता भी की। ऐसे उदारमना व्यक्ति का अभाव सदैव खटकता रहेगा।

साहित्य, संस्कृति, समाज व राष्ट्र के विविध पक्षों को सजाने-संवारने और उन्हें उन्नत करने में श्री कानोड़ियाजी ने जो योगदान दिया है वह सदैव रेखांकित किया जायेगा।

—: ० :—

राजस्थान के गांधीवादी कार्यकर्ता
श्री रामेश्वर अग्रवाल

महामानव

पूज्य भागीरथजी से मेरा परिचय और सम्पर्क लगभग ५० वर्ष तक रहा। उनसे जो आत्मीयता, स्नेह और मित्रतुल्य-प्रेम प्राप्त किया उसीके बल पर शुरू में कलकत्ता में, फिर शेखावाटी के क्षेत्र में मैंने खादी और ग्रामोद्योग की सेवा का कार्य किया।

अपने जीवन के पिछले वर्षों में रचनात्मक कामों को करते समय उनसे निजी सम्पर्क व पत्रों द्वारा कठिनाई के समय में सहयोग व मार्ग-दर्शन प्राप्त करता रहा। जो कठिनाइयां आईं उन्हें उनकी प्रेरणा से सहज ही दूर करके साहस के साथ उसी काम में जुटे रहने का सम्बल मिलता रहा। वे अपनी फोटो खिंचवाने में इतना परहेज करते थे कि पिछले अकाल के समय गो-सेवा संघ के कार्य के निमित्त कलकत्ता के राजस्थान सूचना केन्द्र में एक मीटिंग हुई थी उसमें उन्होंने काफी आग्रह के बाद भी फोटोग्राफर को अपना फोटो नहीं खींचने दिया।

सन् १९३२ में जब जयपुर राज्य युवक सम्मेलन रींगस में करना तय हुआ तो उसके लिये मैं उनसे सलाह और सहयोग के लिये कलकत्ता गया तब उन्होंने किसी भी पद के लिए अपने नाम की स्वीकृति नहीं दी। किन्तु उसी समय मेरी डायरी में ५-६ आदमियों के नाम लिखकर आवश्यक सहयोग दिला दिया। ऐसे उदाहरण बहुत बार मिले हैं कि संस्था में किसी पद पर न रहते हुए भी उन्होंने संस्थाओं को दिल खोलकर पूरा सहयोग दिया। राजस्थान की सभी रचनात्मक संस्थाओं और खासकर खादी ग्रामोद्योगों की सभी संस्थाओं से उनका लगातार सहयोग व सम्पर्क रहा और उन्हें चलाने में सैकड़ों राजनीतिक व रचनात्मक कार्यकर्ताओं को उनका सक्रिय सहयोग और समर्थन तथा सहायता मिलती रही। कठिनाइयों के अवसर पर स्पष्ट मार्ग-दर्शन भी मिला। मैं तो इतना ही कह सकता हूं कि मेरे जैसे अनेक कार्यकर्ता आज जहां भी खड़े हैं और जो भी कुछ रचनात्मक कार्य हो रहा है उसमें उनका बड़ा भारी सहयोग है।

कई संस्थाओं को कठिनाई के समय तथा डगमगाती अवस्था में, जैसे कि सीकर का कल्याण आरोग्य सदन, उन्होंने संकट से उबारा। सदन आज पूरे हिन्दुस्तान के बड़े व अच्छे अस्पतालों में एक है। वे जाते-जाते भी उसके बारे में चिंता करते रहे और उसकी नींव पक्की कर गये। इसी तरह के अनेक उदाहरण हैं किन्तु मैं ज्यादा न लिखकर इतना ही लिखूंगा कि उनके जैसा व्यक्ति आज मिलना दुर्लभ है।

—:०:—

बंगाल के प्रमुख गांधीवादी कार्यकर्ता
श्री क्षितीश रायचौधरी

मूल्यों के प्रति समर्पित व्यक्तित्व

महान मानवतावादी, हृदय से देशभक्त, एक दुर्लभ कार्यकर्ता और जीवन के समस्त मानवीय मूल्यों के प्रति समर्पित भागीरथजी कानोड़िया की दुःखद मृत्यु का समाचार सुन कर मैं मर्माहत हो गया। विभिन्न गांधीवादी रचनात्मक प्रवृत्तियों में उनका परामर्श और आदेश पाने के लिए मुझे उनसे कई बार मिलने का अवसर मिला था। बंगाल में बाढ़ और अकाल के वक्त खासकर मेदिनीपुर जिले में अकाल राहत समिति द्वारा पीड़ित लोगों की उन्होंने जो सेवा की, उसकी बार-बार याद आती है। जहां भी आर्त्त आदमी सहायता के लिए पुकारा करता, भागीरथजी वहां दौड़े-दौड़े पहुंचते। बंगाल की बाढ़ और अकाल सहायता समितियों के तो वह प्राण थे। मेदिनीपुर के तटवर्ती इलाकों में भयानक तूफान आने के बाद भीषण अकाल पड़ा था। इसमें उन्होंने जिस तरह से काम किया, उसकी जितनी प्रशंसा की जाय कम है। इससे उनकी अद्भुत संगठन क्षमता और चन्दा इकट्ठा करने की क्षमता का तो पता लगता ही था, साथ ही यह भी मालूम पड़ता था कि पीड़ित और आर्त्त आदमी के प्रति उनके मन में कितनी करुणा थी। भागीरथजी के जैसे लोग मिलने मुश्किल हैं। गांधीवादी रचनात्मक कार्यकर्ताओं को वह हमेशा हर प्रकार से मदद किया करते—सलाह देते, पैसे देते। बलरामपुर के अभय आश्रम की उन्होंने जो मदद की, उसकी याद आने पर लगता है कि आज एक गांधीवादी रचनात्मक केन्द्र के रूप में उसकी प्रसिद्धि उनके बिना सम्भव नहीं होती। इस संस्था से अपने निकट सम्बन्ध के कारण मैं यह जानता हूं कि वह उसके कितने बड़े आधार स्तम्भ थे।

१९७२ से १९७९ के बीच विनोबा भावे के नाम से ग्राम-स्वराज्य-कोष और जयप्रकाश-अमृत-कोष के काम को लेकर मेरा उनसे सम्पर्क ज्यादा बढ़ा। विनोबा भावे और जयप्रकाशजी के प्रति उनके मन में अपार श्रद्धा थी। वे हमें रचनात्मक कार्यों और दलितों के उद्धार-कार्यों के लिए बराबर चन्दा उगाहने के लिए प्रेरित करते रहते थे। मुझे बार-बार याद याद आता है कि वह हमें सामान्यजनों के पास से चन्दा इकट्ठा करने को कहते थे ताकि अच्छे कामों में उनकी भागीदारी बढ़े और उनकी चेतना का प्रसार हो।

उन्हें मैंने हमेशा शान्त और विनम्र पाया; जब वह बोलते तो लगता कि उनकी वाणी से सज्जनता टपक रही है। उनकी कमी पूरी होनी कठिन है। युवा पीढ़ी शायद यह नहीं जानती कि वह कितने महान व्यक्ति थे। यह आशा करनी चाहिए कि व्यापारी समाज उनसे प्रेरणा ग्रहण कर अपनी सामाजिक जिम्मेवारी के प्रति सचेत होगा।

—: ० :—

बिहार के भूतपूर्व मुख्यमंत्री

श्री महामाया प्रसाद

अजातशत्रु

अजातशत्रु स्व० श्री भागीरथजी कानोड़िया भारत माता के एक सच्चे सपूत और सादगी, सरलता तथा त्याग की प्रतिमूर्ति थे। अपनी देशसेवा, दानशीलता, मृदुलता, दूरदर्शिता और कुशाग्र बुद्धि से उन्होंने एक अमिट छाप छोड़ी है। उन्होंने सन् १९२१ ई० से ही महात्मा गांधी और देशरत्न डा० राजेन्द्र प्रसाद का सदा साथ दिया। वे गांधीजी के अनन्य भक्त थे। अमीरी के जीवन को ठुकराते हुए उन्होंने जेल-यातना भी सही थी। उनकी पैनी बुद्धि का लोहा सभी मानते थे। मनुष्यत्व और सज्जनता के तो वे मानो प्रतिरूप ही थे। वे अहिंसा के सच्चे पुजारी थे। प्रलोभन उन्हें अपने सन्मार्ग से कभी नहीं डिगा सकता था।

उनकी कुंदन सी खरी ईमानदारी ने किसका नहीं चकित किया? उनके रोम-रोम में देशभक्ति और समाज-सेवा फूट पड़ी थी। उनकी प्रथम दर्जे की ईमानदारी ठीक ही उनके समृद्ध पुत्रों ने बपौती-धन के रूप में पायी है। निस्संदेह ऐसे महत् पुरुष के उठ जाने से बहुत बड़ी क्षति हुई है और समाज में उनका स्थान रिक्त हो गया है। मेरा उनसे पारिवारिक सम्बन्ध था और मैंने अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर ही उनका यह मूल्यांकन किया है। उनके पुत्रों के साथ भी मेरा वह सम्बन्ध बना हुआ है। उनके महाप्रयाण से मुझे भारी व्यक्तिगत क्षति हुई है। उनके प्रति मैं अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं।

—:०:—

लेखक, राजस्थान हरिजन सेवक संघ के भूतपूर्व मंत्री
श्री जवाहरलाल जैन

हरिजन-उद्धारक

भागीरथजी कानोड़िया एक कर्मठ तथा सहृदय समाजसेवक थे। उनके मन में समाज के पीड़ित और दलित वर्ग के लिए बहुत करुणा थी। खासकर हरिजनों की सेवा और सहायता की भावना सदा ही उनके मन में तीव्र रही। राजस्थान हरिजन सेवक संघ के वे लगातार २० वर्ष तक अध्यक्ष रहे। वे संघ की आर्थिक सहायता प्रति वर्ष ही करते थे और कलकत्ते के अपने मित्रों तथा परोपकारी संस्थाओं और ट्रस्टों से भी बराबर करवाते थे। इसके साथ ही राजस्थान में तथा खासकर मुकुन्दगढ़ में वे हरिजनों से सीधे संपर्क में आते थे। उनसे मिलते थे। उनकी कठिनाइयों को देखते और समझते थे और उनकी सहायता करते थे। हरिजनों की शिक्षा में भी उनकी बहुत रुचि थी। पाठशालाओं और आश्रमों आदि की वे मुक्तहस्त से सहायता करते थे।

भागीरथजी की साहित्यिक रुचि भी बहुत परिष्कृत थी और मानवीय संवेदनाओं को वे बहुत मार्मिक ढंग से प्रकट करते थे। राजस्थानी भाषा पर भी उनका अच्छा अधिकार था। संपन्न व्यक्ति समाज की सेवा में किस प्रकार तत्पर रह सकते हैं, इसके श्रेष्ठतम उदाहरण भागीरथजी हैं।

राजस्थान हरिजन सेवक संघ के लगभग २० वर्ष तक भागीरथजी अध्यक्ष रहे और मैं १२-१३ वर्ष तक मंत्री। इस नाते मुझे उन्हें निकट से जानने और समझने का मौका मिला तथा उनके सम्पर्क में आने का अवसर मिला। इसे मैं अपना सद्‌भाग्य मानता हूं। दूसरे की कठिनाई और कष्ट को समझनेवाले और उसमें हार्दिकता से सहायता करनेवाले बहुत कम लोग होते हैं। भागीरथजी ऐसे ही विरल लोगों में से थे।

—:०:—

राजस्थान की राजनीतिक कार्यकर्तृ, भूतपूर्व मंत्री
श्रीमती सुमित्रा सिंह

बहुमुखी प्रतिभा के धनी

सामन्तशाही के खिलाफ संघर्षरत जिस परिवार में मैं पैदा हुई तथा देशभक्ति के रंग के जिन हालात में मैं पली उसमें बहुत पैसेवाले साधन-सम्पन्न व्यापारी वर्ग के प्रति एक विरक्ति तथा विद्रोह की भावना मेरे मन में थी कि बड़ा व्यापारी शोषण का प्रतीक है क्योंकि बिना शोषण के धन संचित नहीं हो सकता, लेकिन भागीरथजी कानोड़िया के प्रति प्रारम्भ से ही मेरे दिल में आदर एवं अपनत्व का भाव था।

जब मैं छोटी थी, भागीरथजी कई बार हमारे गांव में तथा हमारे घर आया करते थे और मैं बड़े कौतूहल एवं जिज्ञासा से एक धनी सेठ को देखा करती थी। वे बड़ी रुचि से ग्रामीण रहन-सहन को परखते थे, साधारण किसान के ग्रामीण खानपान का स्वाद चखते थे, ग्रामीण संस्कृति का अध्ययन करते, ग्रामीण हस्तकला की प्रशंसा करते और गांव की कढ़ी हुई कई वस्तुओं के संग्रह करने के भी शौकीन थे।

कानोड़ियाजी निर्धन, गरीब छात्रों की यथासम्भव विद्याध्ययन के लिए मदद करते थे। तारीफ की बात तो यह है कि वे लक्ष्मीपुत्र होने के साथ ही साथ सरस्वती के उपासक भी थे। शिक्षा के प्रति उनके प्रेम एवं शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार के लिए उनके द्वारा की गयी सेवाओं के प्रतीक के रूप में शारदा सदन कालेज, मुकुन्दगढ़ तथा कानोड़िया महिला कालेज, जयपुर सदैव उनकी स्मृति दिलाते रहेंगे। झुंझनू जिले के गांवों में आज से ४०-४५ वर्ष पूर्व जगह-जगह, ग्राम-ग्राम में संचालित प्राथमिक स्कूल, जो आज क्रमोन्नत होते होते हाई स्कूल बन गये हैं और असंख्य लोगों को शिक्षित बना चुके हैं, उनकी कीर्त्तिगाथा गा रहे हैं।

मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी के प्रमुख पदों पर रहते हुए राजस्थान के रेगिस्तानी क्षेत्रों के पशुओं की अकाल के समय जो सेवा उन्होंने की है तथा ग्रामों में पीने के पानी की समस्या के निदान स्वरूप जल-बोर्ड के माध्यम से रेगिस्तानी जिलों में उन्होंने जिस तरह कुओं का निर्माण कराया है, वह नज़रअन्दाज नहीं किया जा सकता।

भागीरथजी कानोड़िया उच्च कोटि के देशभक्त थे। मुझे याद है कि स्वाधीनता के संघर्ष के दौरान तथा सामन्तशाही के जोर-जुल्म को सहनेवालों के प्रति उनकी न केवल हमदर्दी थी, अपितु वे ऐसे लोगों को सब प्रकार की मदद करते थे तथा देशी रियासतों के समय राजनैतिक गतिविधियों वाले प्रजामंडल के पोषक थे। सरदार हरलालसिंहजी के प्रति उनकी श्रद्धा एवं सहानुभूति इसी वजह से थी कि उस समय सरदारजी प्रजामण्डल के अग्रणी नेताओं में थे।

एक कुशल उद्योगपति, देशभक्त, समाजसेवी तथा शिक्षाप्रेमी के साथ वे स्वयं भी अच्छे साहित्यकार एवं लेखक थे। मैंने उनके द्वारा लिखित एक पुस्तक "बहता पानी निर्मला" पढ़ी है। छोटी-छोटी सी कथाओं के माध्यम से ग्रामीण जीवन और खासतौर से विभिन्न जातियों की परम्पराओं तथा रीति-रिवाजों तथा चरित्र का जो अंकन उसमें किया गया है, वह बेमिसाल है। भारत की ग्रामीण संस्कृति का जो सूक्ष्म एवं गहन अध्ययन इसमें मिलता है वह अद्वितीय है। छोटी-छोटी कथाओं एवं आख्यानों में मनोरंजन तथा उपदेश तो हैं ही परन्तु ग्रामीण संस्कृति दर्शन और पौराणिक कथाओं से जोड़कर ऐतिहासिक एवं धार्मिक स्वरूप देकर उन्होंने पाठक के लिए उसे अविस्मरणीय बना दिया है।

कुल मिलाकर उनके व्यक्तित्व के बारे में यही कहा जा सकता है कि वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। अपनी वणिक बुद्धि के बल पर श्रेष्ठि-पुत्र की श्रेणी प्राप्त की तो सरस्वती की आराधना ने उन्हें अमर बना दिया।

उनकी पुस्तक पढ़कर नन्हें-मुन्ने आल्हादित होकर पौराणिक आख्यान तथा ग्रामीण संस्कृति का रसास्वादन करते रहेंगे और लक्ष्मीपुत्र होने के नाते समाज का लब्ध प्रतिष्ठित उद्योगपति समाज सदैव एक धनी-मानी साधनसम्पन्न उद्योगपति के रूप में याद किया करेगा परन्तु शेखावटी का ग्रामीण समाज उन्हें एक महामानव के रूप में याद करेगा। वे मानवीय गुणों से भरपूर थे। संकट के समय जो कोई पहुंचा, राष्ट्रीय कर्तव्य करते जिस किसी ने उनसे मदद चाही, मुक्तहस्त से उसे मदद मिली, इसीलिए उन्हें मेरी तथा शेखावटी के असंख्य संवेदनशील लोगों की हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित है।

—: ० :—

प० बंगाल के भूतपूर्व उप मुख्यमंत्री
श्री विजयसिंह नाहर

सच्चे सेवक

कलकत्ते के मारवाड़ी समाज में कम व्यक्ति पाये जाएंगे जो व्यवसाय, समाज सेवा एवं राजनीति में सादगी से भाग लेते हैं। श्री भागीरथजी कानोड़िया ऐसे ही एक व्यक्ति थे जिन्होंने व्यवसाय में खूब उन्नति की, सम्मान के साथ उद्योग धंधे किए और साथ-साथ समाज की कुरीतियां हटाने के आन्दोलन में भाग लिया तथा स्वतंत्रता आन्दोलन में पूरा हिस्सा लिया। महात्मा गांधी के साथ उनका संपर्क था एवं अहिंसक क्रान्ति में विश्वास रखते हुए ग्राम-विकास कार्यों में भी वे पूरी दिलचस्पी लेते थे एवं सहयोग देते थे। बंगाल के गांधीवादी अनेक कार्यकर्ताओं से उनका संपर्क रहा जिन्हें उन्होंने सर्वदा सहयोग प्रदान किया।

अजातशत्रु, अल्पभाषी, सदा हंसते हुए भागीरथजी से जो भी मिलता था उसे वे अपना बना लेते थे। बंगाल प्रान्तीय कांग्रेस कार्यकारिणी कमेटी की सभा में आते परन्तु जब जरूरत होती स्पष्ट और उचित अपना मत देते। किसी से वाद-विवाद नहीं किया, इसलिए सब कार्यकर्ता उनका सम्मान ही करते।

भागीरथजी कार्यक्षेत्र में किसी को भी छोटा-बड़ा नहीं मानते थे। छोटी-बड़ी सब संस्थाओं में सहयोग देते। 'तरुण संघ' सामाजिक क्रान्ति की छोटी-सी संस्था थी उसमें भी बराबर हिस्सा लेते थे। समाज में उनके जैसे निरंहकारी, त्यागी सच्चे सेवकों की आवश्यकता है।

—: ० :—

५० बंगाल के भूतपूर्व राज्य-मंत्री

श्री रामकृष्ण सरावगी

दुर्लभ चरित्र के देव पुरुष

सन् १९४३ के आखिर की बात है। उन दिनों मैं मद्रास रहने लगा था और कार्यवश कलकत्ता दस-बारह दिनों के लिए आया था। एक दिन पूज्य पिताजी (स्व० तुलसीरामजी सरावगी) के पास बिड़ला ब्रदर्स की ऑफिस ८, रायल एक्सचेंज प्लेस में बैठा था कि श्रद्धेय भागीरथजी भी वहीं आ गये और मेरे प्रणाम करने के साथ-साथ ही बोले कि तुम बड़े मौके पर आये हो। बंगाल रिलीफ कमेटी का काम, जब तक कलकत्ता में हो तब तक जरा सम्हाल दो। भगदड़ के कारण कार्यकर्ता नहीं मिल रहे हैं। पिताजी और भागीरथजी के सम्बन्ध अत्यन्त ही निकट के थे और इधर मुझे भी १९४१-४२ के वर्मा शरणार्थी सेवा कार्य में संलग्न रहने के कारण सार्वजनिक कार्यों में रुचि रहने लगी थी। भागीरथजी की आकर्षण-शक्ति मुझे बंगाल रिलीफ कमेटी के सेवा कार्य में खींच ले गयी। उनके साथ मेरा यह प्रथम सार्वजनिक सेवा कार्य में सम्पर्क था।

बंगाल के मानव-रचित उक्त दुर्भिक्ष की अपनी एक दर्दनाक कहानी है, जब कलकत्ते की सड़कों पर लाखों की संख्या में बंगाल के ग्रामीण अंचलों से आये भूखे-अधनंगे स्त्री-पुरुष और बच्चे तड़प-तड़प कर मर गये थे। यद्यपि अनेक सेवा-संस्थाओं ने अपनी अपनी सामर्थ्य के अनुसार सेवा कार्य प्रारम्भ किया था किन्तु गैरसरकारी स्तर पर बंगाल के चुने हुए नेताओं और समाज-सेवकों ने बड़े पैमाने पर बंगाल रिलीफ कमेटी के नाम से सहायता कार्य शुरू किया था और इसके मन्त्री थे श्री भागीरथजी कानोड़िया। मद्रास से आदरणीय श्री रंगलालजी जाजोदिया भी कलकत्ता आकर इस सेवा कार्य में जुट गये थे। भागीरथजी की आफिस ८, रायल एक्सचेंज प्लेस ही उक्त समिति का कार्यालय थी।

भागीरथजी एक तरफ प्रतिदिन अर्थ-संग्रह की व्यवस्था करते, दूसरी तरफ कैम्पों में जाकर शरणार्थियों की चिकित्सा, भोजन और वस्त्रों का प्रबन्ध करते। केवल कलकत्ता शहर ही ग्रामीण जनता के लिए रोटी पाने का एकमात्र केन्द्र न बन जाय, इस निमित्त डॉ० श्यामाप्रसाद मुखर्जी और भागीरथजी बंगाल के गांवों-गांवों में जाकर निःशुल्क चावल वितरण की व्यवस्था करते। सरकारी और अर्ध-सरकारी गोदामों में लाखों टन अनाज भरा था किन्तु बाहर लोग भूखों मर रहे थे। यह डॉ० श्यामाप्रसाद मुखर्जी और भागीरथजी का ही श्रेय था कि राहत कार्य इतने बड़े क्षेत्र में हुआ कि भूखी जनता विप्लव और अराजकता की ओर नहीं झुकी। सस्ते के उस जमाने में इस राहत कार्य में चालीस लाख रुपये से अधिक की राशि खर्च हुई।

बंगाल उन दिनों मौत की घाटी वन चुका था और भागीरथजी को एक देव पुरुष की तरह उस मौत की घाटी के हर कोने में अपनी सहायता का हाथ पहुंचाते मैंने देखा था। मन में अपार करुणा लिए इस व्यक्ति को मैंने अपनी सुध-बुध खो कर बंगाल वचाने में बंगाल की जनता को वचाते हुए निकट से देखा था और जो श्रद्धा भक्ति उनके प्रति मन में जन्मी, वह सदैव वनी रही।

श्री भागीरथजी ने सेवा को अपने जीवन का प्रधान लक्ष्य वनाया किन्तु सेवा-संस्थाओं से चिपके रहने की पद-लिप्सा उनमें कभी नहीं आई। सामाजिक सुधारों में वे सदैव अग्रणी रहे किन्तु परिवर्तन और सुधारों की सीमाओं का उल्लंघन उन्होंने कभी नहीं किया। राजनैतिक क्षेत्र में उनका अवदान महत्वपूर्ण था, स्वतन्त्रता संग्रामी वे रहे, अपने सभी समकालीन नेताओं के निकट सम्पर्क के व्यक्तियों में वे थे किन्तु कभी भी राजनीति को अपने व्यक्तिगत या व्यापारिक लाभ का साधन नहीं बनने दिया। एक व्यक्ति में इतने गुणों का एक साथ समावेश दुर्लभ होता है।

वे सार्वजनिक संस्थाओं की नींव के पत्थर थे। उनकी गतिविधियां मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी, श्री शिक्षायतन अथवा मारवाड़ी बालिका विद्यालय तक ही सीमित नहीं रहीं, कवि गुरु रवीन्द्रनाथ के शान्तिनिकेतन और हरिजन सेवक संघ तथा सस्ता साहित्य मण्डल भी उनके अवदान से अछूते नहीं रहे। व्यक्ति और संस्थाएं उनसे उपकृत हुईं, अनेक उनकी छत्रछाया में बढ़े, फूले किन्तु भागीरथजी के लिए जैसे यह सब सामान्य बात थी। कहीं चर्चा नहीं, कहीं प्रचार नहीं, कहीं स्वागत और अभिनन्दन नहीं। विदेशी सरकार थी तब भी और राष्ट्रीय सरकार रही तब भी।

भागीरथजी अपने कृतित्व और अवदान के लिए स्वागत और अभिनन्दन, पद और ओहदे, प्रशस्तियां और उपाधियां लेने के लिए रुके नहीं, मानव कल्याण के लिए वे सदैव चलते ही गये और उनके साथ अपने जीवन के प्रायः ४० वर्षों के निकट सम्बन्ध में मैंने देखा कि उनके मार्ग में सदैव ही फूल खिलते रहे।

दुर्लभ चरित्र के इस देव पुरुष को कोटिशः प्रणाम।

—:०:—

भारत सरकार के भूतपूर्व शिक्षा मन्त्री

श्री कालूलाल श्रीमाली

सच्चा जन-सेवक

दिसम्बर १९३२ में मैं काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के ट्रेनिंग कालेज में अध्ययन कर रहा था। विश्वविद्यालय के होस्टल में जिसमें इतने लोग रहते थे, बिजली नहीं थी। महामना मालवीयजी ने आदेश दिया कि यदि विद्यार्थी इसके लिये चन्दा करें तो बिजली के तार लग जाएंगे। हम लोगों को चन्दा करने के लिये कूपन दिये गये। मेरे मित्र स्वर्गीय वेश गोपाल झिंगरन के साथ मैं कलकत्ता गया हुआ था। उन्होंने श्री भागीरथजी कानोड़िया से मेरा परिचय कराया। भागीरथजी उन दिनों जकरिया स्ट्रीट में रहते थे। चन्दा तो उन्होंने दिया ही, परन्तु उन्होंने भोजन के लिए भी हम दोनों को आमन्त्रित किया। यह भागीरथजी से मेरी प्रथम भेंट थी। उनके रहन-सहन, वेश-भूषा और सरल स्वभाव से मैं बड़ा प्रभावित हुआ और धीरे-धीरे यह प्रथम भेंट घनिष्ठ मैत्री में परिणत हो गई। उनके घर पर ही ठहरता था। भागीरथजी के स्नेह और कृपा का मैं पात्र बन गया था।

विद्या भवन के संचालन के लिये मुझे प्रायः चन्दे के लिये कलकत्ते जाना पड़ता था। भागीरथजी स्वयं तो चन्दा देते ही थे, परन्तु दूसरों से दिलवाने में भी सहायता करते थे। एक भी बार ऐसा नहीं हुआ होगा कि उन्होंने सहायता नहीं की हो। मुझे यह मालूम था कि कई लोग उनके पास सहायता के लिए आते और कोई भी उनके दरवाजे से खाली हाथ नहीं जाता था। एक बार जब वे आर्थिक कठिनाई में थे तब भी उन्होंने दान दिया। अधिकतर लोग तो दान देकर अपना नाम उनके साथ जोड़ना चाहते हैं परन्तु भागीरथजी कभी अपना नाम नहीं चाहते थे। विद्या भवन को जो उन्होंने दान दिया वह कुल मिला कर इतनी रकम हो गई थी कि एक इमारत उनके नाम से की जा सकती थी। मैंने जब यह प्रस्ताव उनके सामने रखा तो उन्होंने एकदम अस्वीकार कर लिया। इस माने में भागीरथजी विरले ही व्यक्ति थे।

राजस्थान के सार्वजनिक-जीवन में भागीरथजी का विशेष स्थान रहा। स्वतन्त्रता के पहले कई संस्थाओं को उन्होंने अपनी सहायता से सींचा और पुष्ट किया। पिछले कुछ वर्षों में उनका स्वास्थ्य गिरने लगा था। उनको कई बार मैंने कहा कि उन्हें अब विश्राम करना चाहिए परन्तु अन्त तक वे जन-सेवा में लगे रहे। जहां-जहां लोगों को पीड़ा होती या अकाल पड़ता वहां भागीरथजी पहुंच जाते और लोगों के कष्ट-निवारण में लग जाते। गर्मी के मौसम में जब सेठ लोग प्रायः पहाड़ों पर या ठण्डे देशों में घूमने के लिए जाते हैं, उस समय भागीरथजी राजस्थान के रेतीले हिस्सों में लू का सामना करते हुए दौरा करते थे। उनके देहावसान से राजस्थान ने एक बहुत बड़ा जन-सेवक खो दिया है।

—: ० :—

साप्ताहिक हिन्दुस्तान के

संयुक्त सम्पादक, स्व० मोतीलालजी केजड़ीवाल के पुत्र

श्री गोविन्दप्रसाद केजड़ीवाल

ऊंचाई के हिमालय

मानव के प्रति मानव की सहज जिज्ञासा मानव की आदिम वृत्ति है। लेकिन यह सहजता मनुष्य अपने अहम्, कुण्ठा और यान्त्रिकता की बोझिलता से विह्वल होने के कारण बिसारता जा रहा है। स्व० भागीरथजी कानोड़िया में यह सहजता अपने प्रकृत स्वरूप में अन्त तक विद्यमान थी। उनकी यह सहजता मुझे बड़ी महंगी पड़ती थी। हर बार मिलने पर वह मेरा कच्चा चिट्ठा विस्तार से सुनना पसन्द करते थे। हर बार एक ही तरह का चिट्ठा सुनाना मुझे अखरता भी था, लेकिन कष्ट इसलिए नहीं होता था कि वह मुझे बारम्वार सुनाते-सुनाते कण्ठस्थ हो गया था।

वह मेरे पूज्य पिताजी (स्व० मोतीलालजी केजड़ीवाल) के मित्र थे। वय में भागीरथजी मेरे पिताजी से बड़े थे, लेकिन वे पिताजी का सम्मान अपने अग्रज की भांति करते रहे।

भागीरथजी को मेरी कुछ बातें पसन्द नहीं थीं। वे उनकी स्पष्ट शब्दों में तीखी आलोचना भी करते। कई बार विरक्ति की सीमा तक भी मैंने उनको अपने प्रति पाया, फिर भी कुछ ऐसी बात थी कि घूम-फिर कर उनकी मुझ में सहज जिज्ञासा अपने प्रकृत स्वरूप में सदा पलट आती थी।

मैं उनको अपना जीवन-दर्शन कभी समझा नहीं पाया। उन्होंने कभी इसका मुझे मौका भी नहीं दिया। वे खांटी राष्ट्रीय वृत्ति के व्यक्ति होते हुए भी बहुत ही व्यावहारिक थे। व्यावहारिक होना उन्हें पसन्द था। वे चाहते थे कि मनुष्य अपनी भावुकता के साथ अपनी रोजी-रोटी के मामले में भी चौकन्ना रहे। वह स्वयं इसके उदाहरण थे।

मेरी वय १७ वर्ष रही होगी। शिक्षा भी अधूरी थी। द्वितीय विश्व-युद्ध का जमाना था। भागीरथजी जेल से वापस आ चुके थे। मेरे पिताजी जेल में ही थे। अपनी सहज वृत्तिवश भागीरथजी ने मेरे लिए एक बड़ी अच्छी नौकरी एक भारत-प्रसिद्ध फर्म में तय कर दी। काम था कैशियर का। वेतन भी खासा था। मेरी झक का खयाल रखते हुए उन्होंने मुझे पहले बताने की आवश्यकता नहीं समझी। सिर्फ यह आदेश दिया कि फलां व्यक्ति से मैं मिल लूं। फलां व्यक्ति भी प्रथम श्रेणी के उद्योगपति थे। मैं उन दिनों बड़ी मलंग तबीयत का था। आत्म-सम्मान के बोझ से उचक कर चलता था। 'तुम' शब्द से चौंकता था। अन्ततोगत्वा यही 'तुम' मेरे आड़े आ गया। मैंने स्पष्ट रूप से 'तुम' शब्द पर आपत्ति की और बाहर निकल आया।

जाहिर था मुझ-जैसे कूढ़मग्ज को भेजने पर उन्होंने भागीरथ जी को फोन किया होगा। मैं वहां से लौटकर भागीरथजी के दफ्तर के बाहर उनके चपरासी के पास बैठ गया। वह भी मेरी उम्र का था। मुझसे यारी मानता था। इतने में घनघनाती हुई घंटी बजी। मैं समझ गया। मैंने उससे कहा, 'यदि मुझे बुलाएं तो कह देना कि मैं नहीं हूं।' फिर कई बार घंटी बजी। अन्ततोगत्वा मुझे उनके दरबार में पेश होना पड़ा। उनकी मुद्रा कठोर थी। मुझे देखते ही कुर्सी से उठ खड़े हुए। बोले—'आप, इधर आकर मेरी कुर्सी पर बैठिए।' 'आप' पर बहुत जोर था। फिर डांट कर बहुत-कुछ कहा।

मैंने तत्काल कलकत्ता छोड़ दिया और अपनी प्रियनगरी वाराणसी में आकर, पढ़ने-लिखने लगा। कुछ वर्षों के बाद जब मैं उनसे फिर मिला, तब वे उसी सहज जिज्ञासा-वृत्ति से मिले। उस घटना को एकदम भुला बैठे थे। इसके बाद मैं न जाने कितनी बार मिला होऊंगा। वही सहजता, वही वात्सल्य।

मैं कहना यह चाहता हूं कि मनुष्य में दूसरों के दुख-दर्द और खामखयाली को समझने की जितनी क्षमता होती है, वह उतना ही बड़ा मनुष्य होता है। जिसमें यह नहीं होता उसे ही ओछा कहा जाता है। भागीरथ जी इस ऊंचाई के हिमालय थे।

मैं उनसे अन्तिम बार ३० जून, १९७९ को कलकत्ता में मिला था। मेरी भतीजी अलका का विवाह था। उन्हें निमन्त्रित करने गया था। वे अस्वस्थ थे। पैर में भी कष्ट था। फिर भी आए। आते ही बोले—'गोविन्द, तुम इतने दिन दिल्ली में रहे, अभी तक मिनिस्टर नहीं बन पाए। न जाने कितने ऐरे-गैरे बन गए!" मैंने छूटते ही कहा—'ताऊजी, मैं ऐरे-गैरों में नहीं हूं।'

—: ० :—

कलकत्ता विश्वविद्यालय में हिन्दी-प्राध्यापक,
पं० बंगाल विधान सभा के सदस्य
श्री विष्णुकान्त शास्त्री

सहज सरल भागीरथजी

स्वर्गीय भागीरथजी कानोड़िया सरलता की प्रतिमूर्त्ति थे। मैं उनसे बहुत बार मिला हूं किन्तु कभी ऐसा नहीं लगा कि उनकी बातचीत या व्यवहार में कहीं कोई दांव-पेंच है। बराबर यही लगता रहा जो है, प्रत्यक्ष है, सहज है, समक्ष है। उनकी आदत ही थी उपकार करते रहने की। वे जो कर सकते थे, तुरन्त कर देते थे। 'ना' कहने में उन्हें संकोच होता था किन्तु वे मिठास के साथ 'ना' कहने की कला जानते थे। और मजा यही था कि 'ना' सुननेवाले भी उनसे सादर सम्बन्ध बनाये रखते थे।

मेरा उनका सम्बन्ध १९५३ से ही रहा है। तब तक मैं कलकत्ता विश्वविद्यालय में प्राध्यापक हो चुका था। वे मेरे पिताजी के सुहृदों में थे और उस नाते भी मुझसे स्नेह रखते थे। मैं भी उनका आदर करता था। मिलना-जुलना कम होने पर भी आत्मीयता में कमी नहीं थी। कलकत्ता विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के विकास के प्रति उनकी दिलचस्पी थी। १ पूर्णकालिक और १ अंशकालिक प्राध्यापक वाला हिन्दी विभाग श्रद्धेय कल्याणमलजी लोढ़ा के अथक प्रयास से १ रीडर, ३ पूर्णकालिक और २ अंशकालिक प्राध्यापकों के विभाग के रूप में १९५३ में ही विकसित हुआ था। हलवासिया ट्रस्ट के अध्यक्ष की हैसियत से भागीरथजी ने 'रीडरशिप' के लिये अपेक्षित धनराशि दिलाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। हिन्दी के प्रति उनकी भक्ति देशभक्ति का ही अंग थी। वे उसकी उन्नति को सब उन्नतियों का मूल समझते थे। हिन्दी की विविध संस्थाओं को उनका उदार सहयोग था। अब ऐसे निःस्वार्थ हिन्दी प्रेमी कम होते जा रहे हैं।

श्री रामचरित मानस के प्रति उनका गहरा लगाव था। इस नाते भी वे मुझसे स्नेह करते थे। जब भी मैं उनसे मिलता वे अन्य चर्चाओं के साथ ही मानस की चर्चा अवश्य करते। राम से राम का नाम या राम का सेवक क्यों बड़ा माना जाये, इस पर उन्होंने बहुत रस लेकर एक बार मुझ से बातचीत की थी। मैंने इस सूची में राम के चरित को भी जोड़ दिया था। गीतावली में तुलसीदास ने लिखा है :

नित नये मंगल मोद अवध सब, सब बिधि लोग सुखारे।
तुलसी तिन्ह सम तेउ जिन्ह के प्रभु तें प्रभुचरित पियारे॥

राम का नाम, राम का चरित, राम का सेवक ये तीनों हमें राम से जोड़ते हैं और इसी क्रम में हम में अनजाने ही दिव्य गुणों का समावेश कर देते हैं। हमलोगों के

लिये ये तीनों राम से भी अधिक हैं क्योंकि इन्हीं के कारण राम हमें मिलते हैं। वास्तव में देखा जाये तो यह बड़ा कहना भी सरसता-वृद्धि का एक उपाय भर है। आखिर ये तीनों राम के होने के फलस्वरूप ही बड़े माने गये हैं अतः बड़प्पन तो राम का ही है। इनमें अपूर्वता यह है कि इनका अवलम्बन ग्रहण करने पर हम राम तक पहुंच सकते हैं अन्यथा कहां राम और कहां हम। मुझे याद है उस दिन की चर्चा से वे बहुत प्रसन्न हुए थे।

कठोर परिश्रम, ईमानदारी और समझदारी के बूते पर ही वे अत्यन्त साधारण स्थिति से उठते हुए अत्यन्त असाधारण स्तर तक पहुंचे थे। अपने अभ्युदय के साथ-साथ सामाजिक अभ्युदय के लिये भी वे प्रयासशील रहे। समर्पित सेवा भाव उनकी पहचान थी। जीवन के अन्तिम समय तक वे बीसियों लोक मंगलपरक संस्थाओं से जुड़े हुए थे।

काश, आज की पीढ़ी भी उनके इन गुणों को अपने में उतार पाती। उनकी पावन स्मृति को मेरी विनीत श्रद्धांजलि।

—:०:—

प्रसिद्ध पत्रकार, लेखक

श्री विश्वनाथ मुखर्जी

अजातशत्रु–कानोड़ियाजी

कलकत्ता जाने पर श्री नथमल केडिया की सराय में ठहरता हूं और मेरा सबसे पहला कार्य होता है—श्रद्धेय सीतारामजी सेकसरिया का दर्शन। इस कार्य में पिछले १६ वर्षों में कोई व्यतिक्रम नहीं हुआ। नथमल केडिया नित्य सुबह विक्टोरिया गार्डेन जाते हैं जहां अनेक मित्र एकत्रित रहते हैं। सेकसरियाजी आदि कुछ लोग कुर्सी पर बैठते हैं और शेष लोग नीचे दरी पर।

इन्हीं आगन्तुकों में मैंने एक वृद्ध सज्जन को देखा, जिनका रंग-रूप और आकृति सरदार पटेल की तरह थी। पूछने पर पता चला कि आप ही श्री भागीरथ कानोड़िया हैं। कानोड़ियाजी के नाम से परिचित था, पर उनकी आवाज और शक्ल देखकर मुझे निराशा हुई। जिस प्रकार अन्य लोगों के चेहरे की बनावट, बात करते समय बननेवाली मुद्राएं, गले की मिठास व्यक्ति को प्रभावित करती है, यह सब गुण कानोड़ियाजी में नहीं थे। लेकिन यह बराबर देखा करता कि उस मण्डली में जब वे आते, तब प्रत्येक व्यक्ति के मन में श्रद्धा की भावना उत्पन्न हो जाती। लोग बड़े मनोयोग से उनकी बातें सुनते और अपनी राय देते थे। उस समय ऐसा लगता कि इस नक्षत्र-मण्डली के वे एकमात्र चांद थे जो पूर्ण आकाश को आलोकित कर रहे हैं। मैं उनके प्रत्येक क्रिया-कलाप का अध्ययन करता रहता था।

कई बार इण्डिया एक्सचेंज स्थित उनके आफिस में आचार्य सीताराम चतुर्वेदीजी के साथ गया तो पाया कि इस व्यक्ति की तीक्ष्ण दृष्टि है। संक्षेप में अपनी बात इस ढंग से कह देते हैं जैसा अन्य कोई नहीं कह पाता। यह कला उनमें उच्च कोटि की थी। कानोड़ियाजी के सहयोगी मित्रों ने भी मेरी इस धारणा की पुष्टि की है।

इस प्रकार जब भी कलकत्ता जाता तब उनके दर्शन सुबह विक्टोरिया मैदान के पूर्वी क्षेत्र में होता। न जाने क्यों इच्छा हुई कि उनका अभिनन्दन किया जाय। जिस व्यक्ति के प्रति इतने लोग श्रद्धावान हैं, उनके अभिनन्दन में मुझे सहयोग मिलेगा। जब मैंने उनसे आग्रह किया तब उन्होंने तुरत इनकार कर दिया।

बाद में १० वर्ष बाद हिन्दी-जगत के मूर्धन्य कथाकार भाई राधाकृष्ण ने लिखा कि अगर आप अपने प्रयोजन में सफल हो जाते तो सोचता कि मंगल ग्रह की यात्रा करके लौट आये हो। सन् १९३८ में जिन दिनों मैं कलकत्ता में कार्यरत था, तब उनके अभिनन्दन की चर्चा चली थी। वे अपना अभिनन्दन करवाना दूर रहा, फोटो तक छपवाना पसन्द नहीं करते थे। ऐसा सन्त पुरुष मैंने जीवन में नहीं देखा। आपके पहले मैं कोशिश कर चुका हूं। लेकिन मुझे सफलता नहीं मिली। वे जो कुछ करते हैं, चुपचाप करते हैं। आत्म प्रशंसा का लोभ उनमें नहीं है। मैं स्वयं उनकी कृपा से दबा हूं।

भाई राधाकृष्णजी की बातों की सत्यता का पता आगे चलकर हो गया। जिस उत्साह और लगन से उन्होंने तुलसी ग्रन्थावली और सूर ग्रन्थावली के प्रकाशन में सहयोग दिया, उसकी प्रशंसा आज भी पण्डित सीताराम चतुर्वेदी करते हैं। अगर वे स्वयं इस महान कार्य में भाग न लेते तो यह कार्य सम्पन्न न होता।

सन् १९७३ ई० के दिनों मुझसे एक अपराध हो गया। भारत की एक अनोखी संस्था है—ठलुआ क्लब। इस संस्था का प्रारम्भ से मन्त्री हूं। संस्था की ओर से कभी-कभी महत्वपूर्ण स्मारिकाएं प्रकाशित की जाती हैं। सन् १९७३ के सितम्बर माह में "यह बनारस है" नामक एक स्मारिका प्रकाशित की गयी जिसमें देश के विभिन्न फर्मों से विज्ञापन मांगे गये। भाई नन्दलाल कानोड़िया की एक फर्म से बिना मांगे विज्ञापन आ गया। हम किसी लाभ के लिए यह कार्य नहीं करते। अब तक प्रकाशित स्मारिकाओं में से अनेक अप्राप्य हैं।

अवैतनिक पद पर कार्य करने पर पदाधिकारी जरा झुंझलाया-सा रहता है। इसी झुंझलाहट में मैंने एक पत्र फर्म को लिखा। बात यह हुई कि सभी जगहों से रुपये आ गये थे। हिसाब बन्द करना था। कई स्मृति-पत्र भेजने पर भी उत्तर प्राप्त नहीं हो रहा था। तब मन में शंका उत्पन्न हुई।

मेरा सख्त पत्र पाते ही श्री नन्दलालजी कानोड़िया ने तूफान मचा दिया। श्रद्धेय सीताराम सेकसरिया, रामेश्वर टांटिया, आदरणीय बाबूजी (श्री भागीरथ कानोड़िया) तथा बनारस के मुरारीलाल केडिया और पं० सीताराम चतुर्वेदी को पत्र लिखा। तब तक मुझे यह ज्ञात नहीं था कि श्री नन्दलाल कानोड़िया कौन हैं, और श्री भागीरथजी कानोड़िया से उनका क्या रिश्ता है। सभी लोगों ने मेरी बुरी तरह फजीहत की। जब यह ज्ञात हुआ कि श्री नन्दलाल कानोड़िया बाबूजी के सुपुत्र हैं तब मैं लज्जा और ग्लानि से त्रस्त हो उठा।

लेकिन अजातशत्रु कानोड़ियाजी की उस महानता को कभी नहीं भूलूंगा जिसे उन्होंने पत्र में व्यक्त किया। उन्होंने लिखा था—आप लेखक और विद्वान हैं। किसी भी व्यक्ति को ऐसा पत्र कदापि नहीं लिखना चाहिए जिससे उसे क्लेश प्राप्त हो। नम्रता ही मानवता का आभूषण है।

इन दो लाइनों ने मेरी आत्मग्लानि को दूर कर दिया। सिर्फ यही नहीं, भाई नन्दलाल कानोड़िया का भी स्नेह बराबर प्राप्त होता आ रहा है। इसके बाद जब कभी उनसे मिला, कभी इस घटना का जिक्र नहीं हुआ।

काशी में जब कभी कोई बड़ा समारोह होता है और मुझे उसमें सहयोग देना पड़ता है, तब स्मारिका के प्रकाशन का भार भी मुझे दिया जाता है। ठलुआ क्लब के अलावा अन्य संस्थाओं की ओर से जब स्मारिका का सम्पादन करता, तो उन्हें स्मरण करता। एक बार उन्होंने लिखा कि आपको इतना अधिकार है कि आप मुझसे बिना अनुमति लिए दो पेज विज्ञापन छापकर बिल मेरे नाम भेज दें—बोरसिला टी इस्टेट और आदित्य मिल्स। कभी-कभी तो मुकुन्दगढ़ से भी पत्र देते रहे। उनके इस व्यवहार के कारण उनके व्यक्तित्व की छाप गहरी होती गयी। वह इसलिए कि मैंने कभी भी निजी स्वार्थ के लिए उनसे किसी किस्म की याचना नहीं की और न कभी वे मेरे व्यवहार से असन्तुष्ट हुए।

कैंसर से पीड़ित होने के बाद मैं जब कलकत्ता गया तो न जाने किसके माध्यम से मुझे सहायता देने का प्रस्ताव रखा। मैंने उसे इनकार कर दिया। मैंने कहलाया कि उत्तर प्रदेश सरकार और कलकत्ता के कई उद्योगपतियों की सहायता मैंने नहीं ली। क्या होगा? बहुत होगा, मर जाऊंगा।

कुछ दिनों तक शायद १९७७ ई० के प्रारम्भ में मैं श्री नन्दलाल टांटिया के भवन में ठहरा था। वे नित्य मुझे साथ लेकर बाबू के पास जाते। देर तक बातें होती। अचानक एक दिन कानोड़ियाजी ने प्रस्ताव रखा कि मैं टांटियाजी द्वारा निर्मित होनेवाले अस्पताल में जाऊं और वहां की व्यवस्था देखूं। प्रस्ताव अच्छा था और उन दिनों मैं बेकार भी था। लेकिन उतनी दूर जाने की इच्छा नहीं हुई।

सहसा एक दिन मेरे पास नथमल केडिया का पत्र आया कि भागीरथजी कानोड़िया नहीं रहे। याद आती है श्री रामकुमार भुवालका की बातें। एक चित्र दिखाते हुए उन्होंने कहा था—कलकत्ता के हम पंच पाण्डव हैं। इनमें भाई बसन्त मुरारका नहीं है। उस चित्र में सर्वश्री भागीरथ कानोड़िया, मोतीलाल लाठ, सीताराम सेकसरिया, प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका और रामकुमार भुवालका खड़े थे।

उन्हें यह ज्ञात हुआ कि मैं रामेश्वरजी टांटिया की एक पुस्तक का सम्पादन कर रहा हूं तो 'बहता पानी निर्मला' की प्रति भेजते हुए लिखा कि इस पुस्तक के बारे में अपनी राय भेजें। उस पुस्तक में प्रयोग की गयी कहावतों का काशी के राजस्थानी नाटकों में उपयोग हुआ था।

श्री कानोड़ियाजी के निधन के बाद जब कलकत्ता गया तो नथमल केडिया ने कहा—शायद आपको नहीं मालूम कि आपको सम्मानित करने का विचार जब मेरे मन में आया और मैंने उनके सामने प्रस्ताव रखा तो कानोड़ियाजी बोले—निस्सन्देह मुखर्जी अभिनन्दन के लायक है। कभी किसी से कुछ नहीं चाहता। इस तंगदस्ती में भी हमेशा मस्त रहता है। एक काम करो, मेरे नाम दो हजार लिख लो और मंगवा लेना।

मैं यह सुनकर अवाक रह गया। शायद जनवरी १९७७ को अर्चना की ओर से मेरा अभिनन्दन हुआ था। अनेक लोगों के भाषण हुए। जब भागीरथजी बोलने के लिए खड़े हुए तब मैंने सोचा कि देखूं, क्या कहते हैं, क्योंकि मैं यह जानता था कि उनसे मेरी घनिष्ठता नहीं हुई और न वे मेरे व्यक्तित्व और कृतित्व से परिचित हैं।

पुरस्कार का चेक देते समय उन्होंने कहा—"मैं मुखर्जी के व्यक्तित्व और कृतित्व से भलीभांति परिचित नहीं हूं, पर एक साहित्य सेवी का सम्मान करने में गौरव का अनुभव कर रहा हूं। यह एक शुभ कार्य है।"

इस गोष्ठी में अनेक लोगों के भाषण हुए। काफी बढ़ा-चढ़ा कर मेरी प्रशंसा की गयी, पर इन चन्द शब्दों ने सभापति तक के भाषण को भी रसहीन कर दिया।

श्री भागीरथजी का शरीर नश्वर था। बुढ़ापे ने आक्रमण कर रखा था, पर उनकी स्मृतियां इसलिए कचोटती हैं कि वे बहुत भले आदमी थे। किसी भी सत्कार्य के लिए आना-कानी नहीं करते थे। न जाने कितने लोग उस महान आत्मा से प्रभावित हुए हैं। आम तौर पर मैं उनसे प्रभावित नहीं होता, जो अपने को महान समझते हैं या धन का जिन्हें अहंकार रहता है। कारण मैंने जीवन में अर्थ को हमेशा ठोकर मारी है, पर आत्मीयता और प्यार जिससे प्राप्त करता हूं, उसकी अनुपस्थिति की रिक्तता बराबर अनुभव करता हूं। भागीरथजी कानोड़िया आज नहीं हैं। उनके जीवन-काल में कुछ नहीं हो सका, पर ये सुमनांजलि हमेशा उनकी याद दिलाती रहेगी।

—: ० :—

प्रसिद्ध मजदूर-नेत्री, सामाजिक कार्यकर्त्री

डा० मैत्रेयी बोस

सौम्य और प्रेमल

मैं १९४२-४३ के बंगाल के अकाल के दिनों में भागीरथजी के निकट सम्पर्क में आई। उस वक्त वह बंगाल रिलीफ कमेटी के सेक्रेटरी थे। डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी की पहल पर यह कमेटी बनी थी। भागीरथजी और श्यामाप्रसाद बाबू के बीच इस तरह का सहयोग और सद्भाव था कि आज उसकी कल्पना करना भी कठिन है। बंगाल रिलीफ कमेटी ने अविभाजित बंगाल में अकाल पीड़ित लोगों की सहायता के लिए जो काम किया, उसकी जितनी प्रशंसा की जाए थोड़ी है। देश के विभिन्न प्रान्तों से अकाल में राहत-कार्य करने बहुत से लोग स्वयंसेवक के रूप में बंगाल आए। ये लोग भागीरथजी के व्यक्तिगत निर्देशन में ही काम करते थे।

अत्यधिक कार्यभार और आवागमन की भारी कठिनाइयों के बावजूद भागीरथजी ने सारे अकालग्रस्त क्षेत्रों की यात्रा की। मुझे याद आता है एक बार हम जाड़े में सुबह चार बजे एक भीड़ भरी ट्रेन से बीच के एक स्टेशन पर उतर कर एक भीड़ भरी बस में सवार होकर और फिर तीन मील पैदल चलकर बंगाल सहायता कमेटी द्वारा स्थापित एक शिशु-गृह की एक सामान्य घटना की जांच करने गये थे। यह शिशु-गृह अ० भा० शिशु रक्षा समिति को सौंपा जा रहा था। मैं अ० भा० शिशु रक्षा समिति की बंगाल शाखा की सेक्रेटरी थी। बंगाल रिलीफ कमेटी सिर्फ अकाल में राहत कार्यों के लिए बनाई गई थी। राहत-कार्य के दौरान उसने शिशु-गृह खोले थे। अकाल के बाद कमेटी के तहत चलनेवाले मेदिनीपुर के तीन शिशु-गृहों को चलाने के लिए भागीरथजी ने हमारे संगठन को चुना। इन शिशु-गृहों को हमें सौंपते वक्त उन्होंने बड़ी उदारता का परिचय दिया। मेरे साथ उन्होंने जिस सहानुभूति और सद्भाव के साथ व्यवहार किया, उसके लिए मैं उनकी हमेशा कृतज्ञ रहूंगी।

बंगाल का अकाल जब अपनी चरम अवस्था में था तब बंगाल रिलीफ कमेटी ने काशीपुर में एक सस्ता भोजनालय और अछिपुर व धापा के इलाकों में सस्ते अनाज की दुकानें खोलने के लिए मुझे २६००० (किस्तों में) रु० दिए। सस्ते अनाज की इन दो दुकानों से कपड़ा भी सस्ती कीमत पर बेचा जाता था। अकाल की स्थिति के सुधरने पर भोजनालय और दुकानें बन्द कर दी गईं तो मैं एक दिन बंगाल रिलीफ कमेटी के कैशियर के पास ११००० रु० (जो सस्ते भोजनालय और दुकानों से इकट्ठा हुए थे)

का चेक लेकर गयी तो कैशियर को वड़ा आश्चर्य हुआ। भागीरथजी पास ही बैठे थे, उन्होंने कैशियर को कहा, "मैंने आपसे कहा था न, सस्ती दुकानों से कुछ रुपया जरूर वापस आएगा। मैत्रेयी वहन ने मेरी आशा पूरी की है।"

१९५८ में मोटर दुर्घटना के वाद स्वास्थ्य के निरन्तर बिगड़ते जाने की अवस्था में भी भागीरथजी ने हमारी शिशु रक्षा समिति की हमेशा मदद करने की कोशिश की। अ० भा० शिशु रक्षा समिति की स्थापना के समय से ही वह उसकी प्रबन्ध-समिति के सदस्य थे और कुछ समय तक उसके कोषाध्यक्ष भी रहे। स्वास्थ्य के कारण जब उनके लिए हमारी बैठकों में भाग लेंना सम्भव नहीं रहा तब भी वह हमारी भरसक मदद करते रहे।

सामाजिक कार्यकर्तृ के रूप में १९४३ में उनके निकट सम्पर्क में आने के पहले भी उन्होंने मेरी चिकित्सक के रूप में वहुत मदद की और मुझे अपने परिचित और सम्बन्धियों के केस दिए। उनके परिवार में प्रसूति का एक कठिन केस मेरे जिम्मे था। परिवार की महिलाएं चाहती थीं कि किसी बड़े डाक्टर की सलाह ली जाए लेकिन भागीरथजी ने कहा कि उन्हें मेरी योग्यता पर पूरा विश्वास है और रोगी को मेरे सुपुर्द कर दिया जाए और जैसी भी मेरी सलाह हो उसे माना जाए। मैं तब जर्मनी से लौटी ही थी और नई-नई प्रैक्टिस शुरू की थी। उनकी इस आस्था से मेरा आत्म-विश्वास वढ़ा। प्रसूति का यह केस अच्छी तरह हो गया और सबको बड़ी खुशी हुई।

मैं भागीरथजी को अत्यन्त आदर और कृतज्ञता के साथ याद करती हूं।

—: ० :—

सुप्रसिद्ध समाज-सेवी, राष्ट्रकर्मी

श्री राधाकृष्ण नेवटिया

मूक सेवाव्रती

अगली पंक्ति के क्रम में तीन लोकव्रती समाजसेवी हमारे बीच से चले गये। ये महान आत्माएं इस शताब्दी के प्रथम दशक से ही लोकयज्ञ में कूद पड़ी थीं और जहां इन्होंने देश के औद्योगिक, व्यावसायिक और निजी वैभव का सम्वर्द्धन किया, वहीं समाज की नई जागृति में अपनी अमूल्य भूमिका भी प्रदान की। इनमें अहंकार का लेश भी नहीं था। ये थे भाई भागीरथजी, भाई रामकुमारजी और भाई ईश्वरदासजी। इनमें भाई भागीरथजी तो भागीरथ ही थे। आज उनका स्मरण होते ही लगता है कि कहीं कुछ ऐसा दरक गया है, जो भरा नहीं जा सकता। अब तो बस यादें ही यादें हैं।

सादा जीवन, विचारों की ऊंचाई और निष्काम कर्म का समुच्चय थे भागीरथजी। मैं उन्हें ६०-६५ वर्षों से जानता था। उनके साथ काम करने का अवसर मिला है। तब, यानी आधी शताब्दी पहले भी, वे जब एक साधारण व्यक्ति थे, साधारण खादी के धोती-कुर्ते में रहते थे और ६० वर्ष बाद भी जब वे वैभव के शिखर पर थे तब भी वही साधारण पोशाक थी। समाज-सेवा का व्रत एक रफ्तार से चलता रहा। उसमें किसी भी क्षण न तो कोई कमी आयी, न मन में ही किसी प्रकार का विकार-भाव आया। समय का चक्र तीव्र गति से समाज में अहंवादी परिवर्तन और प्रदर्शन लाता रहा है, जीवन के नैतिक और सम्वेदनात्मक मूल्य तीव्रता से बदलते जा रहे हैं, आत्म-प्रदर्शन जितना बढ़ रहा है, आन्तर-मूल्य उतने ही घटते जा रहे हैं, किन्तु भागीरथजी तो भागीरथ थे जो आदर्श की लीक से हटना नहीं जानते थे।

लम्बे कद के सांवले भागीरथजी को देख कर कोई भी नहीं कह सकता था कि यह व्यक्ति वैभव और सेवा के चरम बिन्दु पर आसीन है। उन्हें देखने से यही लगता था कि एक औसत भारतवासी जो गांवों में रहता है, उन्हीं में से एक होगा कोई। यह उनके चरित्र की महत्ता थी। वस्त्रों से या दम्भ से कोई महान नहीं होता। झोपड़ी से महल तक की मंजिल लांघते हुए भी जो व्यक्ति बदला न हो यानी उसमें दर्द झोपड़ियों का हो, महलों का दम्भ न हो, वही थे भागीरथजी।

वे जो देते थे, उसे हम दान नहीं कह सकते। दान में एक दम्भ होता है, ऊंचाई-निचाई का भाव होता है। हम देते हैं, चूंकि हमारे पास है और लेनेवाला छोटा है, दरिद्र है, कुछ ऐसा ही भाव आदर्शहीन-दान में होता है। मेरे सामने देनेवालों के कई चित्र हैं, उनमें दो चित्र उज्ज्वल और अति उज्ज्वल हैं। देना जिनका धर्म और स्वभाव

बन गया हो तथा जो अपने को केवल माध्यम मानते हों कि अपना तो कुछ भी नहीं है, जो देता हूं, गोविन्द का दिया हुआ गोविन्द को ही देता हूं। ऐसे दान में हृदय होता है, विनम्रता होती है, ज्यों-ज्यों हाथ ऊपर उठते हैं, आंखें नीची होने लगती हैं। इन चित्रों में भाई भागीरथजी और भाई राधाकृष्ण कानोड़िया का चरित्र उज्जवल है। भागीरथजी के भीतर देने की ऐसी वृत्ति बन गयी थी कि अगर किसी दिन कोई लेने नहीं आया तो वे व्यग्र हो जाते थे और कहते थे कि आज का दिन व्यर्थ और खराब हो गया। कोई लेनेवाला नहीं आया। धन्य है यह दान की वृत्ति, जो देने के लिए दुकान खोले बैठा हो और पुकार रहा हो—प्यारे, मुझसे कुछ लेकर मुझे शांति दो।

भागीरथजी क्रांति के मूक संवाहक थे, उस क्रांति के जिसे महात्मा गांधी ने प्रवर्तित किया था। वे राजनीति से दूर थे किन्तु समाज-क्रांति के संवाहक थे। रूढ़ियों से वे जीवन भर लड़ते रहे। पर्दा प्रथा के वे कट्टर विरोधी थे। एक घटना याद आती है, जो उनके जीवन की सर्वोत्कृष्ट घटना मानी जा सकती है। जमुनादासजी खेमका का बड़ा सम्मानित परिवार था और रूढ़ियों के लिए भी विख्यात था। हमलोग रूढ़ियों को तोड़ते थे और खेमकाजी के समान्तर एक समाज था जो इसे बनाए रखना चाहता था। भागीरथजी की लड़की सौभाग्यवती सावित्री के विवाह का प्रश्न उठा। खेमका परिवार भागीरथजी की लड़की अपने परिवार में लाना चाहता था, किन्तु आड़े आ रही थी पर्दा-प्रथा। भागीरथजी अटल थे कि पर्दे के भीतर उनकी बेटी का ब्याह नहीं होगा। खेमका परिवार भागीरथजी को छोड़ना नहीं चाहता था। अतः लड़की वाले की शर्त के सम्मुख लड़का वाला झुक गया। भागीरथजी की बेटी खेमका परिवार में आयी और उस परिवार से पर्दा ही उठ गया। खेमका परिवार में मेरी बहन ब्याही गयी थी और सौ० सावित्री इस प्रकार मेरी भाग्नेय पुत्रवधू हुई।

जहां तक मुझे याद है—भागीरथजी से मेरी प्रथम भेंट जकरिया स्ट्रीट स्थित बिड़लों के मकान पर हुई थी। राजस्थान से कुछ समाज-सेवक आए थे और राजस्थान में शिक्षा प्रसार की योजना उस दिन ही बनी थी। भागीरथजी इस योजना के मन्त्री निर्वाचित हुए थे। उस सभा में मैं भी गया था। तभी से भागीरथजी से मेरी मित्रता उनके जीवन पर्यन्त रही। फिर तो वे मेरे सम्बन्धी भी बने और हम प्रायः एक साथ समाज के काम में भी रहते आए थे। राजस्थान में शिक्षा प्रचार का श्रेय भागीरथजी को अधिक मिलता है।

१९४३ में बंगाल के अकाल में भागीरथजी ने खुलकर सेवा का कार्य किया था। वे एक सुचिन्तक और सुलेखक थे। राजस्थानी कहावतों के संग्रह के लिए उन्होंने बड़ा परिश्रम किया था। वे प्रेरणादायी कथाओं के लेखक थे और उनका एक संग्रह 'बहता पानी निर्मला' के नाम से प्रकाशित भी है।

भागीरथजी के चले जाने से हमें ऐसा लगता है कि समाज का एक मूक और अनन्य साधक चला गया जिसकी स्थान-पूर्ति नहीं हो सकती। मुझे आशा है उनके उत्तराधिकारी उनके आदर्शों की रक्षा करेंगे और समाज के युवक उनका अनुकरण करते हुए अपना जीवन धन्य बना सकेंगे।

—:०:—

प्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्ता,
मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी के भूतपूर्व प्रधानमंत्री
श्री बजरंगलाल लाठ

सेवा ही जिनका लक्ष्य था

स्व० भागीरथजी कानोड़िया से मेरा सर्वप्रथम परिचय १९३७ में हुआ, जब मैं स्व० जमनालालजी बजाज के कारण मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी की कार्यकारिणी में चुना गया। वैसे तो भागीरथजी का मकान मेरे मकान के बहुत नजदीक था, इस कारण मैं उन्हें बचपन से ही देखता रहता था लेकिन मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी की कार्यकारिणी में निर्वाचित होने के बाद उनके सान्निध्य में काम करने का अवसर मिला। कुछ महीनों तो मैं सोसाइटी का स्थानापन्न प्रधानमंत्री भी रहा जब वे सोसाइटी के अध्यक्ष थे। उसके बाद तो एक बार ऐसा भी अवसर आया कि सोसाइटी के दो गुटों में एक की ओर से वे और दूसरे की ओर से मैं प्रधानमन्त्री के पद के लिए खड़ा हुआ था। दूसरे गुट ने सहृदयतापूर्वक हमारे गुट को काम करने का अवसर दिया और वे लोग सोसाइटी से पृथक हो गये।

मुझे उस गुट ने प्रधानमन्त्री बनाया तो स्व० ओंकारमलजी सराफ ने मुझे कहा: "बजरंग, सोसाइटी के मंत्री-पद को सफल बनाना चाहते हो तो भागीरथजी से सम्पर्क रखना। जहां तक हो उनसे बराबर मिलते रहना।" मैं उनकी बात सुनकर हैरान हो गया क्योंकि वे उस गुट के थे जो सोसाइटी से पृथक हो गया था, वे मुझे भला किस प्रकार अपनायेंगे। राजस्थान में एक कुएं का जीर्णोद्धार करना था, मैं हिम्मत करके उनसे सहायता लेने गया। बड़े स्नेह से मुझसे बात की, सोसाइटी का हाल पूछा। कुएं के लिए सहायता दी। मैं गद्‌गद् हो गया।

इसके बाद तो उनके साथ काम करने के अनेक अवसर आये। ऐसे अवसर भी आये जब मैं संयोजक रहता और वे अध्यक्ष। मैं उनकी राय और उनका मार्ग-दर्शन प्राप्त करता रहता था। उनमें किसी प्रकार का दिखावटीपन नहीं था। उनके मन में सेवा की भावना ही प्रधान रहती थी। सेवा ही उनका दर्शन थी।

स्व० किशनलालजी जालान एक बड़े समाजसेवी थे। उन्होंने अनाथालयों के माध्यम से दीन-दुखियों की बड़ी सहायता की। ८५ वर्ष की उम्र तक वे मन्त्री के रूप में लिलुआ और फतेहपुर के अनाथालयों का काम देखते थे। इन्हीं जालानजी ने मुझे एक दिन कहा: "बजरंग, भागीरथजी मारवाड़ी कर्ण हैं।" रोज दो-चार जनों या संस्थाओं को दान रूप में कुछ न देने पर उन्हें अच्छा नहीं लगता था।

वैसे तो उन्होंने सारे देश की ही सेवा की, लेकिन राजस्थान के प्रति उनके हृदय में विशेष तड़प थी। जब भी राजस्थान में अकाल पड़ा, भागीरथजी निज की तथा समाज की थैली लेकर वहां पहुंच जाते। वे खुद तथा कार्यकर्ताओं को साथ लेकर

गांव-गांव में घूम कर मनुष्यों तथा गायों की सेवा करते। राजस्थान में वैसे तो उनके अनेक साथी रहे, लेकिन सीकर के भाई बदरीनारायणजी सोढानी उनके दाहिने हाथ थे। कल्याण आरोग्य सदन की आर्थिक स्थिति जब कमजोर हो गयी और सदन डावांडोल होने लगा तब भागीरथजी ने उसे संभाला ही नहीं, उसके कार्य-क्षेत्र को भी बढ़ाया। एक दिन मैंने उनसे कहा कि भागीरथजी, आप टी० बी० सेनोटोरियम को इतना बड़ा बना रहे हैं, आपके बाद इतने बड़े भार को कौन संभालेगा? हंस कर बोले: प्रभुदयालजी (हिम्मतसिंहका) भी ऐसा ही कहते हैं लेकिन मैं आपको कहता हूं कि आप संभालेंगे। उनका कहना ठीक ही था अगर कर्मठ व्यक्ति कार्य को पहले से ही तौलना प्रारम्भ कर दे तो वह अपने जीवन में बड़ा काम कर नहीं सकता। अगर बापू सोचते कि स्वराज के लिए मैं प्रयत्न तो कर रहा हूं, लेकिन इतने बड़े देश को मेरे बाद कौन संभालेगा तो स्वराज शायद कल्पना ही रह जाता।

मेरा कई मामलों में भागीरथजी से मतभेद हुआ, जैसे गायों की रक्षा और यज्ञ के बारे में। लेकिन मैंने उन्हें यह कहते भी सुना कि गाय की रक्षा होने में देश का कल्याण है। पहले वे उपयोगी गाय के मसले में फंसे हुए थे। जब वे इस दिशा में साथ हुए तो कस कर पूर्ण गो वध बन्दी के लिए तन, मन, धन से काम किया। उनके साथ काम करके बड़ा आनन्द मिला।

मैं अपनी बात कहूं कि मैं जब भी किसी सार्वजनिक मसले में अटकता था, चाहे वह मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी का हो या और कुछ, मैं उनके पास जाता था और उनसे बात करके मुझे रास्ता दिखलायी पड़ने लग जाता था। कई वर्षों से तो मेरी हालत थी कि यदि महीने-बीस दिन उनसे बिना मिले हो जाते तो बेचैनी महसूस होने लगती थी। जीवन में अनेक कार्यकर्ताओं के साथ काम करने का अवसर मिला लेकिन भागीरथजी जैसा त्यागी, सेवा ही जिसके जीवन में प्रधान हो और हर समय सेवा के लिए तैयार (एवररेडी) व्यक्ति नहीं मिला। सेवा उनके जीवन का लक्ष्य बन गयी थी।

उनको अनेक बार इस श्लोक को कहते सुना था:

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरांमयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद दुखमाप्नयेत्॥

—: ० :—

समाजवादी कार्यकर्ता

श्री विजय ढांढनिया

ताऊजी : स्मृतियों की सुगन्ध

श्रद्धेय ताऊजी आफिस से उतर कर गाड़ी में बैठ रहे थे, मैं उधर से गुजर रहा था, उन्हें प्रणाम किया तो पूछा "कहीं कोई खास काम से जा रहे हो ?" मेरे "ना" कहने पर बोले "बैठो, चलो मेरे साथ।" "कहां ?" "चलो पता चल जायेगा।"

हम लोग पहले महात्मा गांधी रोड पर खादी भण्डार गये, वहां उन्होंने कुछ कपड़ा खरीदा। फिर हम चल पड़े हावड़ा की ओर। बाली ब्रिज पार कर गाड़ी एक छोटी-सी गली के सामने रुकी। धीरे-धीरे पैदल चल कर एक खस्ताहाल मकान में गये। एक खादीधारी वृद्धा ने हमारा स्वागत किया। वह एक स्वतन्त्रता सेनानी थीं। जब देश आजाद नहीं हुआ था तब आजादी के लिए मीरा की तरह बावली थीं। विदेशी कपड़ों की दुकानों पर पिकेटिंग करतीं, सभाओं में जातीं, जेल को मंदिर समझतीं। सम्पन्न घर की थीं। पति को उनका आजादी-प्रेम पसन्द न था। बहुत वर्षों पहले पति से अलग हो गयी थीं। अपनी स्कूल-अध्यापिका भतीजी के साथ रहती थीं। स्वाभिमानी इतनी कि वर्षों जेल में रहने के बावजूद पेंशन के लिए दरखास्त नहीं दी। ताऊजी को अपना भाई मानती थीं। और ताऊजी भी अपनी इस बंगालिन बहन के प्रति अपना कर्त्तव्य निभा रहे थे। उन्होंने बहन को रुपये-कपड़े दिये। बहुत से पुराने लोगों की चर्चा चली। वहीं मुझे पता चला कि ताऊजी का पुराने लोगों से सम्पर्क बना हुआ है। मतलब कि इसी तरह कई लोगों को चुपचाप कपड़ा-रुपया पहुंच जाया करता है। इस बीच भतीजी भी स्कूल से आ गयी। चाय पिलाने में संकोच कर रही थी, खाली चाय कैसे दे, प्याले भी साबुत नहीं थे। संकोच ताऊजी ने ही तोड़ा, "चा खावाबे ना, आमि तो तोमार हाथेर चा खेते एसेचि।" तब उसने हमें चाय पिलायी। लौटते समय सारे रास्ते ताऊजी वृद्ध महिला का इतिहास, उसके त्याग की कहानी कहते रहे।

x x x

अब्दुल कयूम, चावल के दानों और पत्तों पर चित्र बनाने का काम बड़ी सफाई से करता है। इस लड़के को मैं कई वर्षों से जानता हूं, चाह कर भी उसकी कोई खास मदद नहीं कर पाया। एक दिन उसे ताऊजी के पास बैठा देखा। कैसे उनके पास पहुंचा, नहीं जानता। लेकिन उसकी यह ताऊजी से दूसरी मुलाकात थी। ताऊजी ने उसे छोटे-छोटे दो लाइन के बीसियों पत्र और पते दिये। अब्दुल कयूम उन पत्रों के साथ गया, उसकी कला बिकी। ताऊजी ने मुझसे कहा, "मैं इस लड़के को रुपया भी दे सकता था पर इससे इसमें आत्म-विश्वास नहीं आयेगा। चिट्ठियों से इसका सामान

विकेगा, सम्पर्क बढ़ेगा और आत्म-विश्वास आयेगा।" ताऊजी की सहायता से अब्दुल ने अपनी शिक्षा पूरी की और उन्हीं के सम्पर्क से नौकरी भी प्राप्त की। ताऊजी जब अस्वस्थ हुए, तो वह कई बार उन्हें देखने गया पर डाक्टरी-सलाह के कारण उनसे मिलना सम्भव नहीं था। एक दिन धर्मतल्ला में वह मुझसे मिल गया और मुझसे यह जानकर कि 'ताऊजी नहीं रहे', मेरा हाथ पकड़ कर बच्चों की तरह रोने लगा। मैं अवाक्! रास्ते पर लोग इकट्ठा होने लगे, पूछने लगे, मैंने बड़ी कठिनाई से उसे चुप कराया और वहां से भाग खड़ा हुआ।

x x x

ताऊजी का कमरा सबके लिए खुला रहता था, वहां स्लिप संस्कृति नहीं पहुंच पायी थी। देश भर से उनके पास पत्र आते रहते थे, खासतौर पर पुराने गांधीवादियों के, हरिजन संघ, गो-सेवा संघ, सर्वोदय आश्रमों के। गांवों में कहां क्या हो रहा है, कहां कोई पुराना कार्यकर्ता बीमार है, यह जानने और मदद देने को व्यग्र वह पचासों पोस्टकार्ड और अन्तरदेशीय लेकर बैठते, सबका उत्तर अपने हाथ से लिखते। लिखावट उनकी सुन्दर नहीं थी, पर मन तो था। पत्र लिखने के बीच बीसियों व्यक्ति आते—किसी को राशन का पैसा चाहिए, किसी को दवा का, किसी को कुछ, किसी को कुछ। मेरे जानते, एक भी व्यक्ति खाली हाथ नहीं लौटा। यों उनकी अनुभवी दृष्टि जान लेती कि कौन सही मांग रहा है और कौन गलत। जरूरतमन्द को ज्यादा मिलता। कुछ को मैंने पहचाना भी, कि वे आदतन मांगते हैं, पर ताऊजी को बताने पर इसका कोई असर नहीं हुआ। वह देने के आदी हो गये थे। कई लोगों को जो छोटा-मोटा धन्धा करके, कुछ बेच कर काम करना चाहते, उन्हें सामान खरीद दे कर मदद करते।

x x x

ताऊजी से कबसे घनिष्ठता हुई, ठीक याद नहीं। छोटी उम्र से ही उन्हें सभा-संस्थाओं में देखता था, बुजुर्ग होने के नाते नमस्कार भी करता था लेकिन बात नहीं हुई। मुझे तारीख याद नहीं है—एक प्रसिद्ध संस्था ने गांधीजी के सचिव प्यारेलाल का भाषण करवाया था। वह गांधीजी के अन्तिम दिनों की मनःस्थिति पर बोले थे। भाषण के बाद प्रश्न पूछने को कहा गया। मैंने कुछ कड़े सवाल पूछे, खासतौर पर विभाजन और कांग्रेस पार्टी को विघटित करने के गांधीजी के अन्तिम आदेश के बारे में। मेरा सवाल पूछना था कि सभा में जैसे हड़कम्प मच गया। उस आभिजात्य वातावरण में सब मेरे ऊपर बरस पड़े। न जाने क्या-क्या कहा गया। मुझ पर तो लोग बरसे ही, उन्होंने डॉ लोहिया को भी बहुत कुछ कहा। खैर, दबा तो मैं भी नहीं, लेकिन उस वातावरण में मुझे सिर्फ दो व्यक्तियों की सहानुभूति मिली—एक ताऊजी की और दूसरे श्री लक्ष्मीनिवास झुनझुनवाला की। ताऊजी ने पीठ भी ठोकी पर यह भी कहा, 'प्रश्न तुम्हारे ठीक थे, पर तुम्हें उत्तेजना में नहीं, कड़े शब्दों में नहीं, संयमित-भाषा में शांति से दृढ़ता के साथ पूछना चाहिए था।' मेरे ऊपर असर पड़ा। ताऊजी की बात का मैं कायल था पर आदत और स्वभाव से लाचार।

x x x

विनोबा भावे कलकत्ता आये, अपनी भूदान यात्रा के सिलसिले में। उनका जम कर स्वागत हुआ। ताऊजी को मैंने बाबा के लिए कहा कि गांधी का सबसे बड़ा दुश्मन आया है। सत्ता-पक्ष के फायदे के लिए विनोबा गांधीजी की क्रान्तिकारिता, का गलत भाष्य कर गांधी-विचार को मार रहे हैं। ताऊजी की बाबा पर भक्ति थी। उन्होंने मुझे अपने दफ्तर बुलाया। यह पहला मौका था उनके दफ्तर जाने का। मैं अपने साथ दो हथियार ले गया था—एक थी लुई फिशर की छोटी सी किताब, जिसमें लुई फिशर के प्रश्न का उत्तर देते हुए गांधीजी ने कहा था कि आजाद भारत में जमीन उसकी होगी जो जोतेगा, उस पर मेहनत करेगा, जमीन का एक पैसा मुआवजा नहीं दिया जायेगा। दूसरी पुस्तक थी डा० राममनोहर लोहिया की पुस्तक 'सरकारी, मठी एवं कुजात गांधीवादी'। पहली बार ताऊजी से मेरी बहस हुई। वह अपने तर्क बड़ी शांति से देते थे, मैं उत्तेजित होकर। मेरी बातें सुनकर कहा : "तुम्हारे तर्कों में दम तो है लेकिन किसी को किसी का दुश्मन नहीं कहना चाहिए। गांधीजी को तो मानते हो न? वह अपने बड़े दुश्मन को भी प्यार से ही जवाब देते थे।" ताऊजी में संयम था, शांति थी, धीरज था, मुझ में क्रोध, उत्तेजना और विपक्षी पर तीक्ष्ण प्रहार करने की आदत। लेकिन कैसे, क्यों ताऊजी का इतना स्नेह मिला, नहीं जानता। यह उनकी महानता ही थी। ताऊजी ने हंस कर कहा भी था "इसमें तुम्हारा दोष नहीं, पीढ़ी का अंतर है, गुरु का भी। मेरे नेता गांधीजी थे, तुम्हारे डा० लोहिया।" बाद में वह मुझे विनोबा व सर्वोदयी साहित्य देते तो मैं उन्हें डा० लोहिया की पुस्तकों और अन्य समाजवादी पुस्तकों से पढ़कर सुनाया करता। मैं देखता कि ताऊजी शान्त होकर सब सुनते। मारवाड़ी समाज के दो-चार लोगों को छोड़कर सभी का मुंह का स्वाद डा० राममनोहर लोहिया का नाम सुनते ही बिगड़ जाया करता था।

x x x

एक दिन ताऊजी ने मुझसे मजाक में कहा 'तुम यहां समाज-सुधार के आंदोलनों में क्यों भाग नहीं लेते?' इस पर मैं गुस्से में उबल पड़ा और न जाने क्या-क्या कह गया। मैंने कहा—"ये कैसे समाज सुधारक हैं जो बालीगंज के आलीशान के 'आलयों' और 'निकेतनों' को छोड़कर बड़ाबाजार के मध्यवर्गी और गरीब लोगों के यहां विवाह-शादी में फिजूलखरची बंद करवाने के लिए प्रदर्शन करते हैं। विवाहों में दिखावा और फिजूलखरची बन्द करने व परदा प्रथा उठाने के लिए समाज के रूढ़िवादियों के हाथों पुरानी पीढ़ी के कम-पढ़-लिखे समाज सुधारकों ने जो अपमान सहा था, उसका लोगों पर असर पड़ा था। लेकिन आज के तथाकथित सुधारक ज्यों-ज्यों प्रस्ताव पास करते हैं, प्रदर्शन करते हैं, मर्ज बढ़ता ही जाता है। ऐसा क्यों होता है? इन तथाकथित समाज सुधारकों में से अधिकांश तो परिचय बढ़ा कर अपना धन्धा बढ़ाने वाले हैं और कुछ को नेता बनने का शौक है।" इतना कहने के बाद मैंने उनसे पूछा "ताऊजी आपके यहां अगर कोई ब्याह हो तो क्या ये समाज-सुधारक उसमें फिजूलखरची होने पर नहीं आयेंगे?" ताऊजी ने कहा : "सभी आयेंगे, तुम भी आओगे।" मैंने कहा "मैं अवश्य आऊंगा पर आपके यहां तथा अन्य लोगों के यहां शानशौकत वाले ब्याह में भाग लेने के बाद मुझे क्या इस बात का नैतिक अधिकार

रह जायेगा कि जिन्हें मैं नहीं जानता उनके यहां शानशौकत के खिलाफ प्रदर्शन करूं ?" दूसरा कोई होता तो इस पर भड़क उठता लेकिन ताऊजी ने मेरी पीठ ठोंकी और एक किस्सा भी सुनाया कि कैसे एक नेता ने अपने पुत्र की सगाई में मांग कर 'स्टीरियो' लिया। यह १५-१६ वर्ष पहले की बात थी, जब देशी स्टीरियो नहीं बनते थे, विदेशों से चोरी-छिपे लाये जाते थे।

x x x

एक दिन मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी और सेवा के काम की बात चलने पर ताऊजी ने कहा : "एक समय था जब चन्दा देने वाले, लाने वाले और बाढ़-भूकम्प में काम करने वाले एक ही लोग होते थे। अब यह बात नहीं रही। देने वाले और लाने वाले बाढ़, भूकम्प में काम करने नहीं जाते। दरार बहुत बढ़ गयी है। स्वाभिमानी लोगों का इस माहौल में काम करना कठिन है। ऊपर के लोग कार्यकर्ताओं पर मन्त्रियों की सिफारिशों के अनुसार काम करने का दबाव डालते हैं।"

x x x

ताऊजी का सबसे बड़ा गुण था—दूसरे के दृष्टिकोण को समझने का और सही होने पर उसे स्वीकार करने का। यह गुण मैंने तो अपने समाज में किसी में नहीं पाया। उन्होंने किसी की निन्दा की हो, मुझे याद नहीं आता। उनके स्वभाव से एकदम विपरीत होने के बावजूद उनका बहुत स्नेह मिला। कभी दस-पन्दरह दिन मिल नहीं पाता तो मेरी भतीजी चि० मंजु ढांढनिया को वह फोन करते, पूछते, तुम्हारा चाचा कहां है ? कहते, उसे कहो आकर मिलेगा।

x x x

मेरे संकोची मन ने उनसे कभी सार्वजनिक काम के लिए पैसे नहीं मांगे। मेरा उनसे चन्दे का रिश्ता नहीं रहा। लेकिन वह इतने उदार थे कि तीन मौकों पर उन्होंने बिना मांगे पैसे दिये, पूछा भी "कम तो नहीं हैं।" कहा, "जब भी तुमको आवश्यकता हो निःसंकोच मांग लेना।" मेरी ही उनसे मांगने की हिम्मत नहीं होती थी। यों अपने हम उम्र दोस्तों में मैंने किसी को भी छोड़ा नहीं है, वहां मैं बहादुर हो जाता हूं। हमलोग अहमदाबाद में साबरमती आश्रम में "अंगरेजी हटाओ सम्मेलन" कर रहे थे। यह सम्मेलन मेरे गुरु डा० राममनोहर लोहिया का प्रारम्भ किया हुआ था। उस बार लोहिया की स्मृति में आयोजन जरा जोर से किया जा रहा था। मेरे हाथ में सम्मेलन के परचे थे। ताऊजी ने पूछा, तुम्हारे पास क्या कागज है। मैंने सम्मेलन और अंग्रेजी हटाओ आन्दोलन के बारे में उन्हें बताया कि हम चाहते हैं कि भारतीय भाषाओं की स्थापना हो और अंगरेजी को हटाया जाय। इस पर उन्होंने कहा, 'एक समय था जब गांधीजी के निर्देश पर हमलोगों ने हिन्दी का बहुत काम किया। सब खतम हो रहा है। अब तो मेरे पोते भी मुझसे अंगरेजी में बात करते हैं। क्या हो गया है हम सबको ?" क्या इस काम के लिए तुमको रुपये नहीं चाहिए ?' मैंने कहा, "कुछ तो कर रहा हूं लेकिन मेरे दोस्तों की भी इस आन्दोलन में रुचि नहीं है, मजाक उड़ाते हैं, यह भी कोई आन्दोलन है।" ताऊजी ने अपने आप रुपये दिये और कहा, "मुझसे मांगने में संकोच क्यों ? अपने लिए मांगने में शर्म, मैं

समझ सकता हूं। सार्वजनिक कार्य में क्यों हो ? मेरे पास तो व्यवसाय है पर मैं मांगता रहता हूं। सीकर के टी० बी० अस्पताल के लिए तुम देखते ही हो मैं मांगता रहता हूं। संकोच मत करो।"

एक और मौके पर उन्होंने अखिल भारतीय वनवासी सम्मेलन के लिए अपने आप तो दिये ही, पास बैठे एक सज्जन से उसी समय दिलवाये। पटना से निकलने वाली पत्रिका 'सामयिक वार्ता' में घाटा रहता है। उसमें छपे एक लेख के कारण वह उसके सम्पादक श्री किशन पटनायक से मिलना चाहते थे। मैंने उन्हें मिलाया भी। मुझे पूछा, कितनी प्रतियां निकलती हैं, कैसे निकलती हैं ? मैंने घाटा बताया और संकेत से एक विज्ञापन की बात की तो ताऊजी ने एक साल के लिए १२ विज्ञापन दिये और तुरन्त उसकी चिट्ठी भी बनवा कर दे दी।

x x x

उनके बारे में जितना भी लिखूंगा, थोड़ा ही होगा। कितनी ही बातें याद आती हैं; कितने ही लोगों से मेरा उन्होंने परिचय कराया होगा (पैसेवालों से नहीं)। रामकृष्ण मिशन के साधुओं से लेकर अलग-अलग क्षेत्रों में काम करनेवाले लोगों से। इनमें श्री बदरीनारायण सोढानी भी थे। मेरे ऐसे कई मित्र हैं जिन पर मैं गर्व कर सकता हूं लेकिन मारवाड़ी समाज में इक्के-दुक्के व्यक्ति ही हैं जिन पर मेरी श्रद्धा है। इनमें से एक थे मेरे बड़े भाई जैसे श्री बालकृष्ण गुप्त, ज्ञान के उत्तंग शिखर और एक थे ताऊजी, शांत, संयमित और गंगा की तरह पवित्र और निर्मल।

अगर उनके गुणों में से एकाध भी मिल जाय तो अपने को धन्य मानूंगा। उन्होंने जो स्थूल धन कमाया उस पर अधिकार उनके पुत्र-पौत्रों का होगा। लेकिन सेवा, निष्ठा, उदारता, सहिष्णुता और परदुखकातरता के गुणों की जो सुगन्ध उन्होंने बिखेरी उस पर अधिकार उन सभी का है जिनको प्यार से उन्होंने अपना बनाया था।

—: ० :—

सुप्रसिद्ध चित्रकार
श्री दिनकर कौशिक

दीनवत्सल

भागीरथजी से मेरा परिचय अल्प था किन्तु उसकी स्मृति स्नेहिल व गहरी है।

शान्तिनिकेतन से भागीरथजी का बहुत घना सम्बन्ध था। मुक्तहृदय और मुक्ततर कर कमलों से उन्होंने हिन्दी भवन की सहायता की थी। एक बार जब भागीरथजी शान्तिनिकेतन आये तो उन्हें एक युवा चित्रकार की खोज थी, जो उनके श्रीनगर के कालीन कारखाने में डिजायन का काम करने को राजी हो। उन्होंने आचार्य नन्दलाल वसु से अपनी आवश्यकता बतायी। नन्दबाबू ने मुझे कहा "दिल्ली में एक सज्जन, सिंघीजी तुम्हारी प्रतीक्षा करेंगे। तुम्हें उनसे मिलना है। नौकरी के लिए हमारी ओर से तुम्हारा नाम भेजा गया है। मन लगाकर काम करना। रोजी के लिए हर शख्स काम करता है। स्वधर्मानुसार काम करना हमारा कर्त्तव्य है।" इसके एक दिन बाद ही भंवरमलजी सिंघी का पत्र भी मेरे पास आ पहुंचा। मैं नियत दिन सिंघीजी से मिला, उनसे नियुक्ति-पत्र लेकर डिजाइनर के पद पर काम करने श्रीनगर पहुंच गया।

श्रीनगर में कारखाने के मैनेजर पं० दीनानाथजी से मेरी मित्रता हो गयी। वह कहा करते "हमारे पुराने मालिक हेडो साहब कानूनी आदमी थे, उनका सारा काम नियम कायदों और कानून से बंधा होता। वे सबसे सख्ती से पेश आते। उनसे बात करने की आसानी से हिम्मत नहीं होती। लेकिन हमारे नये मालिक भागीरथजी बड़े रहमदिल इन्सान है। उनके सामने जाने के लिए हिम्मत की जरूरत नहीं। कोई भी उनके पास जा सकता है, अपनी बात सुना सकता है। उनको यदि लगे कि आदमी कष्ट में है, तो वह सहानुभूति प्रकट करते हैं।" मैं सारी बातें सुना करता। मैं हेडो साहब से भी कई बार मिल चुका था और उनके कर्मठ स्वभाव से परिचित था।

श्रीनगर में मेरे पहुंचने के बाद राजनीतिक घटनाएं बहुत तेजी से तूफान का रूप लेने लगी। १९४७ के कुछ महीनों में बड़ी उथल-पुथल हुई। गांधीजी श्रीनगर आये, अनेक कार्यकर्ताओं से मिले। अगस्त में पाकिस्तान ने बारामूला पर हमला किया। नागरिकों में भगदड़ मची। गांधी आश्रम के कुछ कार्यकर्ताओं की मदद से हवाईजहाज में मुझे किसी प्रकार एक सीट मिली। मैं दिल्ली होते हुए कलकत्ता पहुंचा।

मैं सोचता रहा, अब क्या करूं ? हिम्मत करके डलहौसी स्क्वायर में जनरल फाइबर लिमिटेड के दफ्तर में गया, सिंघीजी से मिला। कालीन का कारखाना जनरल फाइबर के तहत था और उसका काम भागीरथजी के सुपुत्र नन्दलालजी एवं

निर्देशक सिंघीजी चलाया करते थे, सिंघीजी, भागीरथजी और नन्दलालजी से बात करने गये। भागीरथजी दीनवत्सल थे ही, उन्होंने कहा "यह लड़का जब हमारे यहां काम करने लगा, तो यह हमारा ही हो गया। ज्वायंट फैमिली की तरह उसका दाना-पानी हमारे जिम्मे है। करने दो कुछ काम।"

कुछ दिनों बाद कलकत्ता के किसी विशाल उपवन में एक अखिल भारतीय शिल्प प्रदर्शनी का अयोजन हुआ था। वहां जनरल फाइबर का स्टाल सजाने का भार मुझे दिया गया। इस प्रकार के काम का मुझे रत्तीभर भी अनुभव नहीं था, पर काम करने से ही अनुभव होता है। मैंने बड़ी मेहनत की। एक सुन्दर विवरण-पुस्तिका छपवायी जिसका आवरण मेरे मित्र सत्यजित राय ने बनाया। उन दिनों वह कीमर कम्पनी के प्रधान आर्टिस्ट थे। फिर स्टाल के लिए कुछ अच्छी कालीनों का चयन किया। इस तरह स्टाल की काफी अच्छी सजावट हुई। एक शाम की बात है। चारों ओर लाउडस्पीकर बज रहे थे, शोर ही शोर था। मैं एक भारी कालीन समेट कर ठीक तरह से रखने की कोशिश कर रहा था। वजन बहुत ज्यादा था, समेटने में दिक्कत हो रही थी। अचानक देखा कि भागीरथजी हाथ बंटा रहे हैं। उनको समेटते देख और दस हाथ आगे बढ़े, और कालीन सही तरह से रखा गया। मैं देखता ही रह गया। इसके बाद वह कुछ समय स्टाल पर बैठे। सबके लिए शीतल पेय मंगवाया। सबका कुशल पूछा। हंसते-हंसते सबसे व्यक्तिगत रूप से विदा ली।

उनकी ऐसी अनेक छोटी-छोटी बातें हैं। जो अब याद नहीं रह गयी हैं। यही लगता है कि सहस्त्र योजनों की उनकी दीर्घ तीर्थ यात्रा में ऐसे कितने ही छोटे-छोटे कदम रहे होंगे।

कालीनों के डिजाइनर से अपना कर्म-जीवन प्रारम्भ कर मैं शान्तिनिकेतन में अध्यापक के रूप में काम करने लगा। मेरे कर्म-जीवन का प्रारम्भ भागीरथजी की पुण्य स्मृति से आंतरिक रूप से जुड़ा हुआ है। उनके प्रति अपनी सादर श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं।

—: ० :—

प्रसिद्ध हिन्दी कवि
श्री गुलाब खण्डेलवाल

समर्पित व्यक्तित्व

भागीरथजी के सम्बन्ध में कुछ भी लिखना उतना ही कठिन है जितना ठोस सोने से आभूषण का निर्माण करना। सेवा इतनी मौन हो सकती है, अनुराग इतना निस्पृह हो सकता है और व्यक्तित्व इतना विवादरहित हो सकता है, इसकी कल्पना भागीरथजी को देखे बिना नहीं हो सकती है। वेदों में वाणी को छान कर बोलने का निर्देश है। वे वाणी को इतना छान कर बोलते थे कि उनका शब्द-शब्द मन्त्र का रूप ग्रहण कर लेता था। उनकी गिरा में अर्थ की ही नहीं क्रिया की भी अभेदता थी और इसलिए जो भी वे कहते उसका चमत्कारिक असर श्रोताओं के मानस पर होता था। भागीरथजी गांधी-युग के अन्यतम प्रसूनों में थे। उनके कुम्हलाने से बाटिका में जो स्थान रिक्त हुआ है उसका भरा जाना कठिन है। न अब वे माली ही हैं और न वैसी हवा ही है जिसने फूल खिलाए थे।

मैं जब भी भागीरथजी की बातें सुनता था या उनके सम्पर्क में आता तो मन में सदैव यही विचार आता था कि गांधीजी ने सेवा के पथ में जो अपने आपको शून्य बना देने की बात कही थी उसे भागीरथजी ने अपने जीवन में उतार लिया है, और शायद यही कारण है कि चुप रह कर भी इतना काम कर पाते हैं। ऐसे व्यक्ति उस दीपक के समान होते हैं जो स्वयं जल कर प्रकाश तो देता ही है, दूसरे दीपकों को ज्योतित करने का भी काम करता है। मुझे विश्वास है भागीरथजी की प्रेरणा का स्रोत उनके शरीर के नहीं रहने से भी सूखेगा नहीं क्योंकि वे अपने जीवनकाल में ही अपने कृश, दुर्बल शरीर से ऊपर उठे हुए लगते थे और उनके भगीरथ-संकल्पों और उनके विराट क्रिया-कलापों की छाया उनके भौतिक शरीर से हजारों गुना बड़ी लगती थी।

मुझे याद है कितनी कठिनाई से अपनी पुस्तक "अहल्या" के समर्पण के लिये मैं उन्हें राजी कर पाया था। जब उन्हें विश्वास हो गया कि यह समर्पण उन्हें प्रसन्न करने के लिये नहीं, केवल अपने हृदय की सन्तुष्टि के लिये ही मैं करना चाहता हूं, तभी वे इसके लिये राजी हुए थे। "सबहिं मानप्रिय आप अमानी" की उक्ति उन पर पूर्णतः चरितार्थ होती थी।

बाहर से अत्यन्त शान्त, गम्भीर और शुष्क से दिखाई देने पर भी भागीरथजी के अधरों में सदैव एक विनोदपूर्ण मुस्कुराहट छिपी रहती थी और कभी-कभी वे इतना

सूक्ष्म और सटीक विनोद करते थे कि पण्डित रामचन्द्र शुक्ल की विनोदपूर्ण उक्तियों की याद आ जाती थी। एक बार जब सीकर में स्वर्गीय रामेश्वरजी टांटिया की स्मृति में टी० बी० के नये अस्पताल का शिलान्यास हो रहा था तो उस आयोजन में भागीरथजी भी हमलोगों के साथ गये थे। मैं सीकर से अपने गांव मंडावा घूम आने के लिये नथमलजी केडिया को साथ लेकर जा रहा था। भागीरथजी ने पूछा—"आपलोग कहां जा रहे हैं ?" मैंने कहा कि मंडावा जा रहे हैं। भागीरथजी ने धीरे से कहा कि ठीक है, आपके साथ रहने से नथमलजी को अच्छी खातिर हो जायगी। हमलोगों की मोटर जब थोड़ी दूर आगे बढ़ गई तभी मैं भागीरथजी की बात का अर्थ समझ सका। मंडावा मेरा पैतृक गांव है और नथमलजी की वहां ससुराल है। इसी बात को लक्ष्य करके भागीरथजी ने मुझसे मधुर विनोद किया था।

कलकत्ता के विक्टोरिया मैदान में सुबह जमने वाली गोष्ठी के भागीरथजी और सीतारामजी सेकसरिया प्रेरणा-स्रोत रहे हैं। भागीरथजी के अभाव में वहां सारी मण्डली उदास लगती है। जीवन की यही नियति है। महाभारतकार को भी अन्त में जीवन की यही परिणति दिखाने के लिए शान्ति-पर्व की रचना करनी पड़ी थी फिर भी उससे उद्योग-पर्व की महत्ता कम नहीं हो जाती। मैंने अपने एक गीत में जीवन की इसी विवशता को लक्ष्य कर के एक स्थान पर कहा है—

"शब्दों का कोई यहां अर्थ नहीं
तम से लड़ने में ये समर्थ नहीं
फिर भी यह जलना था व्यर्थ नहीं
माना सब लिखा अनलिखा है
बुझते हुए दीपक की शिखा है"

इन्हीं पंक्तियों के साथ भागीरथजी को मैं अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं।

—:०:—

प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री, वनस्थली विद्यापीठ के आचार्य,
राजस्थान के भूतपूर्व शिक्षा-मन्त्री
श्री प्रेमनारायण माथुर

पारदर्शी व्यक्तित्व

श्री भागीरथ कानोड़िया से मेरा सम्पर्क सन् १९३८ में हुआ, जब शास्त्रीजी (पं० हीरालाल शास्त्री) के निमंत्रण पर मैं वनस्थली देखने आया। उसी समय श्री भागीरथजी भी वनस्थली आए हुए थे। मार्च, १९३९ में मैं वनस्थली आ गया और तब से वरावर भागीरथजी से मेरा सम्पर्क रहा। अधिकांश में हमारा मिलना तभी होता था जब भागीरथजी वनस्थली आते थे। इस सम्पर्क के दौरान उनके व्यक्तित्व की जो छाप मुझ पर पड़ी उसका संक्षिप्त विवेचन करने का प्रयत्न मैं निम्न पंक्तियों में करूंगा।

व्यक्ति के व्यक्तित्व का विश्लेषण तीन दृष्टियों से किया जा सकता है: (१) व्यक्ति के रूप में, (२) व्यक्ति का जो भी धंधा अथवा व्यवसाय हो उसकी दृष्टि से और (३) व्यक्ति की सामाजिक (राजनीतिक सहित) चेतना की दृष्टि से।

भागीरथजी एक व्यक्ति के नाते सीधे, सच्चे, सरल और मितभाषी व्यक्ति थे। उनके जीवन में कोई आडम्बर नहीं था और उनका जीवन आइने जैसा स्वच्छ था। परिस्थितियों के अनुकूल वे अपनी व्यक्तिगत सुविधा-असुविधा में आवश्यक समायोजन कर लेते थे और अपने आतिथेय को कभी भी यह अनुभव नहीं होने देते थे कि वह किसी सम्पन्न व्यक्ति का आतिथ्य कर रहा है। जिन व्यक्तियों में इस प्रकार की सरलता का गुण होता है उनका सरल व्यक्तित्व सभी को आकर्षक और सराहनीय लगता है। भागीरथजी इसका एक अच्छा उदाहरण थे। उनकी यह सादगी और सरलता मुझे बड़ी पसन्द आती थी।

भागीरथजी के व्यक्तित्व का दूसरा पक्ष था उनके व्यवसायी होने का। वह एक कुशल और सफल व्यवसायी थे और इस क्षेत्र में उन्होंने अच्छी ख्याति प्राप्त की थी। सफल व्यवसायियों का यह गुण कि काम की और मुद्दे की बात कम से कम समय में जान लेना, उनमें पर्याप्त मात्रा में था। व्यापार-व्यवसाय के विषय में उनकी दृष्टि और सूझ-बूझ का सबसे बड़ा प्रमाण इस क्षेत्र में जो उन्होंने प्रगति की, वह है। मेरा यह भी विश्वास है कि भागीरथजी उन व्यक्तियों में से थे जो व्यक्तिगत ईमानदारी और सच्चाई तथा सामाजिक वृत्ति का व्यापार के क्षेत्र में भी यथासम्भव अधिक से अधिक पालन करते हैं।

भागीरथजी के व्यक्तित्व का तीसरा महत्वपूण पक्ष उनकी सामाजिक चेतना से सम्बन्ध रखता है। मूलतः एक व्यवसायी होते हुए भी राष्ट्रीय भावना और सामाजिक सुधार के प्रति जो उनका आग्रह था वह उनसे परिचित लोग भलीभांति जानते हैं। यदि उदाहरण गिनाने हों तो अनेक उदाहरण गिनाए जा सकते हैं पर उससे कोई लाभ नहीं। चाहे स्वाधीनता की लड़ाई हो, चाहे समाजसुधार का कार्यक्रम हो और चाहे सामूहिक कष्ट-निवारण या अकालपीड़ितों की सेवा जैसा कोई कार्यक्रम हो, सभी में भागीरथजी का सहयोग, क्रियात्मक सहयोग और समर्थन प्राप्त होता था। सार्वजनिक कार्यकर्ताओं की वे इस सिद्धान्त को निभाते हुए सहायता करते रहे कि दाएं हाथ से दिया दान बाएं हाथ को न मालूम पड़े। राष्ट्र के कई नेताओं से उनका निकट का सम्पर्क था। ऐसा लगता था कि देश के नेताओं का आतिथ्य करना वह अपना कर्तव्य और सौभाग्य दोनों ही मानते थे। उनका सहयोग और समर्थन किसी व्यक्ति या संस्था विशेष तक सीमित नहीं था। वह सबके लिए उपलब्ध था। यही उनकी उदारता और उनकी विशेषता थी।

भागीरथजी के व्यक्तित्व के जिन पहलुओं का ऊपर वर्णन किया गया है उससे स्पष्ट है कि भागीरथजी न केवल एक सहृदय और सेवाभावी व्यक्ति तथा जागरूक और कर्तव्यपरायण नागरिक ही थे पर एक कुशल और सफल व्यवसायी भी थे जिन्होंने व्यापार के सामाजिक दायित्व को समझा और साथ-साथ व्यवहार में निभाने का भी प्रयत्न किया।

—: ० :—

भारतीय भित्ति-चित्रों के अध्येता इंग्लैंड-निवासी

श्री इल्लै कूपर

आतिथ्यपरायण

मैं सेठ भागीरथजी कानोड़िया से एक ही बार मिला लेकिन एक बार का यह मिलना मुझे हमेशा याद रहेगा। मैं उन दिनों चूरू में था और सेठों द्वारा शेखावाटी में निर्मित हवेलियों और अन्य इमारतों की चित्रकारी का अध्ययन कर रहा था। श्री गोविन्द अग्रवाल भागीरथजी से मिलने मुकुन्दगढ़ जा रहे थे। उन्होंने मुझे कहा: "मेरे साथ चलिये, आप एक और कसबा देख लेंगे।" तो हम मुकुन्दगढ़ पहुंचे, वहां मेरी भागीरथजी से मुलाकात हुई। मुझे उनकी एक ऐसे व्यक्ति के रूप में याद है जो शारीरिक रूप से वृद्ध हो जाने के बावजूद बहुत सचेत था। आसपास क्या हो रहा है, इसका उन्हें पूरा एहसास था।

यद्यपि वह बहुत व्यस्त थे और बहुत से लोग उनसे मिलने आये हुए थे फिर भी उन्होंने मेरा बड़ा सत्कार किया। उन्होंने मुझे अपनी हवेली और उसकी चित्रकारी के बारे में बताया और भोजन पर आमन्त्रित किया। भोजन बहुत ही सादा और अच्छा था। भोजन के बाद उन्होंने मुझे मुकुन्दगढ़ दिखाने की व्यवस्था की। जब मुकुन्दगढ़ देखकर हम लौटे तो उन्होंने पास ही में डुन्डलोड का किला देखने के लिए अपनी गाड़ी ले जाने को कहा। लेकिन बहुत देर हो चुकी थी इसलिए हम न जा सके। उनको स्थानीय कालेज में जाना था। यह कालेज, मुझे पता लगा कि उनके द्वारा खोली गयी बहुत सी परोपकारी संस्थाओं में एक था। हम उनके साथ कालेज गये। कालेज पहुंचने पर उन्होंने हम से कहा कि उनकी गाड़ी और ड्राइवर हमारे जिम्मे है और हम चूरू उनकी गाड़ी ले जायं। इस एक संक्षिप्त मुलाकात की मेरे ऊपर मुख्य छाप एक ऐसे व्यक्ति की है, जिसका दिमाग उमर के बावजूद पूरी तरह सचेत था और जिसकी उदारता और सहृदयता के लिए मुझे कृतज्ञ रहना चाहिए।

—:०:—

बालमन्दिर, जयपुर की संचालिका
श्रीमती गीता बजाज

यथा नाम तथा गुण

भागीरथजी का जेल से छूट कर आने पर वनस्थली विद्यापीठ की छात्रा के नाते स्वागत-सत्कार करने का मुझे अवसर मिला। उनके साथ देवमूर्ति श्री श्रीनिवासजी बगड़का भी थे। ये दोनों साथ-साथ वनस्थली आये थे और मुझे सौभाग्य मिला था इनके आतिथ्य, सान्निध्य और सेवा का। आंखें सजल हो जाती है भावुकतावश। ईश्वर ऐसी आत्माओं को पुनः पुनः मानव सेवा हेतु अवतरित करे इस देश की धरती पर। स्व० श्री बगड़काजी का भी बम्बई के राजस्थानी समाज में करुणा, सादगी और त्याग-तपस्या के क्षेत्र में अद्वितीय स्थान था।

कलकत्ते के प्रमुख उद्योगपतियों में होते हुए भागीरथ बाबू अपने पैतृक धन्धे से भी अधिक निष्ठावान देश-सेवा के प्रति थे। गांधीजी ने देश की धरती को छान-छान कर जो कुछ हीरे बटोरे थे, उनमें वे भी एक थे। प्रातःस्मरणीय श्री जमनालालजी बजाज, श्रद्धेय श्री घनश्यामदासजी बिड़ला और न जाने कितने धरती के लाल गांधीजी के सम्पर्क में आये और सदा-सदा के लिये उन्हीं के हो गये। इन सबका देश-प्रेम, सादगी और त्याग अनुकरणीय रहा। आज कलकत्ते के राजस्थानी समाज में जो प्रतिष्ठा भागीरथजी की बनी हुयी है उस स्थान की पूर्ति कौन कब कर सकेगा, कहा नहीं जा सकता। स्वतन्त्रता संग्राम में जूझे, जेल जीवन के अनुभव लिये किन्तु सत्ता की राजनीति तथा पदलोलुपता से सदा दूर रहते हुए गांधीजी द्वारा छोड़े गये अधूरे कामों को आगे बढ़ाने में सदा संलग्न रहे। रामराज्य के सपने को साकार करने की दिशा में सतत् प्रयत्नशील रहे। इस दिशा में जितने भी कार्यक्रम गांधीजी द्वारा चलाये गये तथा समाज में अन्य लोगों ने जो कार्य देश के विकास के लिए, समाज की उन्नति के लिये किये व किये जा रहे हैं, लगभग बहुतों में आपका तन, मन, धन से योग रहा। कलकत्ते में अनेक संस्थाओं के संस्थापक रहे और श्री सीताराम सेकसरिया साथ-साथ उनकी छाया की तरह सभी में संलग्न रहे। कलकत्ता में शुद्ध खादी भण्डार की स्थापना की। खादी संस्थाओं को न केवल पूरा योग दिया, बल्कि स्वयं ने भी खादी का व्रत का जीवन भर पालन किया।

गांधीजी के रचनात्मक कार्यों में हरिजन-सेवा का कार्य उन्हें सबसे प्रिय था। आजादी की लड़ाई के दिनों में राजनीति से सम्बन्ध अवश्य था किन्तु उनका कार्यक्षेत्र हरिजन बस्तियों में कार्य करना ही रहता था। राजस्थान हरिजन सेवक

संघ के वे वर्षों तक अध्यक्ष रहे और हरिजनों के हितों के लिये सतत् प्रयत्नशील रहे। भूदान, ग्रामदान में भी उनका अटूट विश्वास रहा। शायद ही कोई सर्वोदय सम्मेलन ऐसा रहा होगा जिसमें बाबूजी उपस्थित न रहे हों। गो-सेवा संघ का कार्य तो आप छोड़ ही नहीं सकते थे। यह कार्य आपके प्रिय कार्यों में से था। वे विशेषकर बंगाल एवं राजस्थान के कामों में सदैव ही योग देते रहे, चाहे वह बंगाल का महा-अकाल रहा हो, चाहे राजस्थान का जल-संकट। वे अपने आपको सक्षम सेवक के रूप में समाज को समर्पित कर देते थे और अपना कर्तव्य पूरा करके ही सुख अनुभव करते थे।

पिछले कुछ वर्षों से जबसे किशनगढ़ में 'आदित्य मिल्स' स्थापित हुई आपका राजस्थान में भी काफी समय बीतता था। वनस्थली विद्यापीठ से तो आप आरम्भ से ही जुड़े हुए थे। किन्तु धीरे-धीरे अन्य संस्थाओं से भी जुड़ गये। श्री कल्याण आरोग्य सदन, टी० बी० सेनेटोरियम सांवली, सीकर के आप पिछले कुछ वर्षों से अध्यक्ष थे और आपकी अध्यक्षता के दौरान सदन को न केवल अच्छा आर्थिक लाभ हुआ बल्कि सभी प्रकार के मार्ग दर्शन का लाभ मिला। मुझे तो कभी-कभी ऐसा अनुभव होता था कि जैसे उस आरोग्य सदन के वे ही संस्थापक रहे हों। निरन्तर उसे आगे बढ़ाने का चिन्तन चलता ही रहता था।

वनस्थली, महिला शिक्षा के प्रति उनकी अटूट श्रद्धा का द्योतक है। उसी श्रृंखला में बाल मन्दिर मोतीडूंगरी जो कि महिला-शिक्षक प्रशिक्षण का कार्य भी उठाये हुए हैं उससे भी आपका सम्बन्ध-सहयोग आरम्भ से ही रहा। लगभग दो वर्ष पहले जब बाबूजी के सामने बाल मन्दिर सम्बन्धी अपनी कठिनाई रखी तो थोड़ी दबी आवाज में कहने लगे, 'अभी तो आरोग्य सदन का काम ही अधूरा है।' जिन भी कार्यों में उनका सहयोग रहता था उनमें वे एक छिपी शक्ति के रूप में कार्य करते थे। अपने नाम की चाह उनमें कभी नहीं रही। मैंने जब आग्रहपूर्वक सहयोग चाहा और उनकी शक्ति का रूप उनके सामने रखते हुये बम्बई से जो धन संग्रह आरोग्य सदन के लिये हुआ था उसकी बात कही, तो कहने लगे 'यह सब मैं नहीं करता। मैं तो इशारा करता हूं। कोई मेरे इशारे को समझ कर कुछ कर देता है। श्रेय मुझे मिल जाता है। तुम्हें भी ऐसा इशारा चाहिये तो कुछ समय बाद ही प्रयत्न करेंगे।' इस वचन को उन्होंने पूर्णतया निभाया। मेरा पत्र-व्यवहार निरन्तर उनसे चलता ही रहता था। बाल मन्दिर की प्रगति से वे खुश व प्रभावित थे। जब भी राजस्थान आते भले ही थोड़ी देर ही आते, संस्था में अवश्य आते थे। उनके आने से मुझे बल मिलता था। २० अक्टूबर, १९७८ को जिस दिन मैं विदेश से लौटी थी अचानक बाल मन्दिर पहुंच गये। यहां वे कार्यक्रम में एक सामान्य व्यक्ति की भांति सम्मिलित हुए। इतने बड़े व्यक्तित्व का इस प्रकार आनन्दित होना मैं भुला नहीं पाती। कलकत्ते में उनके साथ बिताये कुछ माह सदैव ही स्मरणीय रहेंगे। वहां मैं लगभग उन्हीं के पास ठहरती थी या पूज्य श्री सीतारामजी सेकसरिया के पास, जो कि उनके बाल्यकाल से अभिन्न मित्र रहे हैं। सभी प्रकार की सुविधाएं उपलब्ध कराते थे, जैसे मैं कोई विशेष व्यक्ति

हूं। घर से साथ ले जाते थे, साथ लाते। कार्यालय में बहुत बार तो मेरी प्रतीक्षा भी करते। जी भर आता है उनके स्नेहयुक्त व्यवहार को याद करके। जितना लिखा जाय, कम ही लगता है। जनवरी, १९७९ पूरा माह उनके साथ बीता। मैं किन शब्दों में व्यक्त करूं अपनी अनुभूति को? वे मानव की देह में देवत्व को समेटे हुए साधारण से पुरुष लगते थे। उनके साथ घण्टों बैठकर भी मन उठने को नहीं करता था। हंसोड़ स्वभाव के धनी, बातचीत में हंसाते ही रहते थे। बात-बात में मुहावरों, कहावतों का प्रयोग कर न केवल मनोरंजन करते थे, बल्कि ऐसा अनुभव होता था मानो अनौपचारिक शिक्षा का धरातल तैयार करते हों। इतने व्यस्त रहते हुए भी अधिकतर पत्र व्यवहार का लेखन कार्य अपने हाथ से ही करते। वे न केवल साहित्य पढ़ते थे, बल्कि साहित्य सृजन की ओर रुचि भी रखते थे। राजस्थानी कहावतों का संग्रह और 'बहता प्रानी निर्मला' उनकी कृतियां हैं।

इस व्यक्तित्व की कृति का श्रेय मेरी अपनी दृष्टि में उनकी धर्मपत्नी श्रीमती गंगा चाचीजी को भी कम नहीं जाता। करुणा के आगार, मृदुभाषी बाबूजी न भाने वाली बात भी मीठे से सूत्रों से समझा देते थे। मुझे याद है वह प्रसंग जब उन्होंने मुझसे पूछा, 'मैं अमुक अंक से बालमन्दिर का चन्दा आरम्भ कर दूं यदि तुम मुझसे एक साथ पूरा रुपया न मांगो', मैंने भी सहज भाव से आश्चर्य में उत्तर दिया 'बाबूजी, आपके रुपये की क्या चिन्ता, कभी भी मिल जायेगा'। इतनी जोर से हंसे, और बोले 'तुमने काल को जीत लिया।' मैं तो यकायक समझ न सकी। बोले 'तुम्हें विश्वास है कि तुम्हारा रुपया चुकने तक मेरा यह शरीर रहेगा ही?' कितना सत्य था उनके कथन में। बहुत स्वस्थ थे तब तो बाबूजी। इतनी जल्दी हम लोगों के बीच से चले जायेंगे, और हम उन्हें सदा-सदा याद करते ही रह जायेंगे, ऐसा सोचा भी न था। ऐसी पुण्य आत्मा पुनः पुनः भारत की धरती को पवित्र करे। उन्हें शत् शत् प्रणाम!

...

—: . :—

राजस्थान के उदीयमान उद्योगपति
श्री लक्ष्मीनिवास झुनझुनवाला

सुगन्धित व्यक्तित्व

बाबू श्री भागीरथजी कानोड़िया के जीवनकाल में अनेक बार अभिनन्दन की चर्चा हुई, पर उन्होंने न केवल उदासीनता दिखाई पर अपना तीव्र विरोध स्पष्ट रूप में बताया। उनके जीवन ने बहुतों को प्रभावित किया है—बहुतों के जीवन का उन्होंने निर्माण किया है—उनके प्रशंसकों का एक बहुत बड़ा परिवार है। जीवन काल में तो उनके बारे में कुछ छापा नहीं जा सका—पर अब उनके स्मृति-ग्रन्थ से इस सारे परिवार को मानसिक सन्तोष मिलेगा।

कई बार इस ग्रन्थ के लिये अपने संस्मरण लिखने बैठा। कुछ लिखा—सन्तोष नहीं हुआ—कागज फाड़ कर फेंक दिये। कितने अवसर याद आते हैं—जब निराशा का मानस ले बाबू भागीरथजी के पास गया। उनके पास जाकर बैठा। वे अन्य लोगों से वार्तालाप कर रहे थे। मैं भी बैठ गया—सुनता रहा। मुझसे भी कुछ चर्चा हुई और निराशा का मानस बदल गया। जब लौटा तो मन में उत्साह था। मेरे लिये तो यह बहुत बड़ी घटना है—पर इसको शब्दों में व्यक्त करने की कला मैं कहां से लाऊं? उन्होंने कोई उपदेश नहीं दिया। मैंने उन्हें अपनी निराशा की बात बतायी भी तो नहीं थी—और बताता भी क्या? मुझे भी मालूम थोड़े ही था कि क्यों मन निराश है? पर यह मालूम है कि लौटा तो मन में उत्साह था। अब कैसे लेख में इसका विश्लेषण करूं।

बाबू भागीरथजी की स्मृति आती है तो उनका अभाव मन में विषाद पैदा करता है। दूसरी ओर जीवन के ४५ वर्ष के भिन्न-भिन्न अवसरों के उनके सम्पर्क के प्रसंगों की याद मन में प्रेरणा भी उत्पन्न करती है।

१९३४ साल में पहले-पहल उनके दर्शन पूर्वी बंगाल के छोटे से ग्राम सीरसाबाड़ी में हुए जब मैं छः साल का था। एक अमिट छाप उस समय उनकी पड़ी जो आज तक विद्यमान है। उस समय जो वेशभूषा और जो कृषकाय शरीर देखा, वही १९७९ के अंतिम दर्शन में भी था। १९३६ में सिराजगंज में फिर दर्शन हुए—मेरे चाचाजी उनके प्रतिष्ठान में एक कर्मचारी थे तथा उन्हीं के काम से पाट खरीदने के लिए उनके केन्द्रों में रहा करते थे। मैं उनके साथ रहता। जब भागीरथजी कार्यालय में कर्मचारियों को मार्गदर्शन देने के लिए आते, हमारे घर ठहरते। उन्होंने अपनी सादगी व सरल स्वभाव का संस्कार मुझे दिया।

हमलोग भागीरथजी के ही ग्राम मुकुन्दगढ़ में रहते। १९४१ में द्वितीय महायुद्ध से कलकत्ता शहर एकदम त्रस्त था। भागीरथजी के परिवार के समस्त सदस्य तथा हमारे परिवार के समस्त सदस्य मुकुन्दगढ़ भेज दिए गये थे। कुछ कार्यरत लोग ही कलकत्ते रह गये थे। एक युग बीत गया लगता है। ऊंच-नीच का भेद

आज की तुलना में नगण्य सा था। उनका पुत्र और उनका भतीजा तथा मैं एक साथ पढ़ते। एक साथ मैट्रिक की परीक्षा दी। एक साथ पिलानी में भर्ती हुए।

१९४३-४४ में अध्ययन के साथ-साथ जब व्यापार की प्रारम्भिक शिक्षा का प्रश्न आया, तो भी भागीरथजी के दफ्तर में ही कालेज के उपरान्त दो घंटे जाया करता—एक तरह से दूरी का अनुभव नहीं के बराबर होता था। यह सब क्या आज के वातावरण में सम्भव है ?

१९६० में जब मेरा मन भी बड़े उद्योगों की ओर आकर्षित होने लगा, उनकी सक्रिय सहायता की आवश्यकता पड़ी। बड़े उत्साह से उन्होंने सहायता दी। सम्पर्क में घनिष्ठता आती ही गई। कोई ऐसा सप्ताह नहीं जाता जब एक आध घण्टे बाबू के पास नहीं बैठता। उनकी जीवन शैली में एक अद्‌भुत सरलता थी। चाहे प्रात: और संध्या घर में हो या दोपहर कार्यालय में हो, सब कोई उनके पास आ सकते थे—कोई रोक-टोक नहीं थी। बाबू के पास दो व्यक्ति बैठे हों—आप भी चले जाइये—बैठ जाइये—वार्तालाप का आनन्द लीजिए। अत्यन्त निकटता की भावना आ जाती थी। छोटे-छोटे मन के कष्ट उनको मैं सुनाया करता था। ऐसा भान होता था कि यह व्यक्ति जितना मेरे निकट है शायद ही किसी के हो। यह अभिमान मेरा तब टूटा जब एक दिन मालूम हुआ कि बाबू कई वर्षों से सिर के दर्द से पीड़ित रहते हैं तथा दिन में उन्हें ७-८ बार दर्द को भूलने के लिये गोलियां लेनी पड़ती हैं। मैं दंग रह गया कि कितना गाम्भीर्य इनमें है। हम अपने कष्टों की चर्चा सबसे करते हैं तथा जिन्हें थोड़ा भी अन्तरंग मानते हैं उनसे तो अत्यधिक करते हैं। पर अपने कष्टों को औरों पर न लादने की प्रवृत्ति के दर्शन उनमें हुए। कोई भी व्यक्ति उनसे बात कर यह अनुमान नहीं लगा सकता था कि इतनी पीड़ा उनके हैं।

शारीरिक कष्टों तक ही यह सीमित नहीं था। उनका बाह्य जीवन एक साधारण व्यक्ति का सा जीवन लगता था—उसमें कुछ भी बाह्य रूप से असाधारण नहीं था। अपने व्यापार में हम सब की तरह वे भी समय देते—उतनी ही तल्लीनता से उसमें भी लगे रहते। पर जहां हमें छोटी-छोटी बातों से उत्तेजना होती है, राग-द्वेष का इतना प्रभाव रहता है, वहां वह बड़े से बड़े व्यापारिक धक्कों का चेहरे पर असर भी नहीं आने देते थे।

एक ओर ५ करोड़ रुपये के उद्योग पर निर्णय ले रहे हैं—दूसरी ओर, नए बी-ए पास लड़के को नौकरी दिलवानी हो तो भी अपने हाथ से पत्र लिख रहे हैं—कोई छोटे-बड़े का भेदभाव नहीं, कोई काम बड़ा नहीं—कोई काम छोटा नहीं। इतना बड़ा व्यक्ति एक साधारण आदमी को ४००) महीने की नौकरी के लिए किसी की सिफारिश का पत्र लिखे—यह साधारणतया होता नहीं है।

आपसी होड़, प्रतिद्वन्द्विता, सबसे अधिक शक्तिशाली होने की प्रवृत्ति आदि व्यापार में प्रमुख रहती है। बाबू इन सबकी चर्चा करते पर अपने आपको इनसे ऊपर रखते। कभी-कभी बाबू से चर्चा होती कि जीवन के मूल्यों का किस प्रकार उत्तरोत्तर ह्रास हो रहा है। उस समय वे अपनी एक प्रिय राजस्थानी कथा, जिसमें तीन पीढ़ियों में दो परिवार के व्यक्ति किस प्रकार व्यवहार करते हैं, बताया गया है, सुनाया करते।

उनका जीवन जितना बाह्य था, उससे कई गुना अन्तरंग था। बाह्य तो एक छोटा सा भाग दीखता था। व्यापार व उद्योग के क्षेत्र में ऐसा व्यक्ति दूसरा तो नहीं दीखता।

उनके कृतित्व में ऐसा कुछ नहीं है जिसका बाह्य रूप देखकर व्यक्ति प्रभावित हो सके पर उनके व्यक्तित्व में एक सुगन्ध थी ; जो भी उनके पास आया सुगन्धित होकर गया तथा उस सुगन्ध को भूल नहीं सका। ऐसे व्यक्ति पर लिखना अत्यन्त कठिन काम है।

—: ० :—

सामाजिक कार्यकर्ता

श्री हरिप्रसाद माहेश्वरी

सादर प्रणाम !

शान्त, सौम्य मुख
हंसती हुई आंखें।
बोलते तो अपनी बात स्पष्ट शब्दों में—
अपनत्व भरी मीठी चुटकी लेते हुए।
आज भी जब श्री भागीरथजी कानोड़िया की याद आती है
तो ये बातें तस्वीर की तरह सामने आ जाती हैं।
और याद एक बार नहीं अनेक बार आती है।
उनके जैसा स्नेह देनेवाला, ममत्व रखनेवाला
व्यक्तित्व अन्य मिलना दुर्लभ है।
सार्वजनिक जीवन में उनके द्वारा
अनेकों को मार्ग-दर्शन मिला।
उलझनें सामने आतीं और मिनटों में
बहुत स्पष्ट निराकरण उनके द्वारा होता।
आक्रोश, विक्षोभ, झुंझलाहट से दूर—
सीधी, सरल, सच्ची, बेलाग बात—
और वह सदा मन पर प्रभाव छोड़ती।
वर्षों पहले माहेश्वरी विद्यालय के सभापति-पद
पर जब वे थे तो पहला परिचय हुआ।
उसी दिन से ऐसा लगा कि अपने परिवार
के ही एक वरिष्ठ व्यक्ति का
सिर पर हाथ हो गया है।
'जसीडी आरोग्य भवन' के
रख-रखाव के प्रति हार्दिक सक्रियता
'मोहन कोठी' के स्थान पर नई कोठियों
के निर्माण के प्रति उनकी जागरूकता—
फिर श्रीशिक्षायतन के सभापति पद से
विद्यालय की उन्नति के लिए उनकी ममता—
सदा से प्रेरणाप्रद रही—
'भारतीय भाषा परिषद' की कल्पना

और उसे साकार रूप देने का श्रेय
श्री सीतारामजी सेकसरिया के साथ
उन्हें भी है।
सदा यह लगा कि ये दोनों व्यक्ति
एक दूसरे के इतने निकट हैं—
उनकी आत्मीयता इतनी प्रगाढ़ है कि
जब वे दोनों साथ होते हैं
तो दो नहीं ग्यारह आदमी बोलते हैं।
कलकत्ते के सार्वजनिक जीवन एवं राजस्थान
के जन-जीवन में मूक कर्मयोगी की तरह
काम करने वाला यह व्यक्तित्व—
साहित्य-सेवा, साहित्यिकों की सहायता
समाज सुधार और उत्पीड़ित व्यक्तियों
को सहयोग—
अकाल, बाढ़, गो-सेवा आदि कार्यों में
इस तरह रमा हुआ था कि जैसे ये सब सेवा-कार्य
उसके जीवन के ही अंग हों।
आज—वे हमारे बीच नहीं हैं
यह अभाव कभी दूर न होगा
पर उनकी अदृश्य-उपस्थिति का अहसास
कार्यकर्ताओं को सदा प्रेरणा देगा।
इस दृढ़ विश्वास के साथ
दिवंगत आत्मा को सादर प्रणाम।

—: ० :—

अ॰ भा॰ मारवाड़ी सम्मेलन के अध्यक्ष

श्री रामप्रसाद पोद्दार

कर्मठ समाजसेवी

श्रद्धेय भागीरथजी कानोड़िया एक कर्मठ कार्यकर्ता एवं सक्रिय समाजसेवी थे। समाज सुधार के हर कार्य में वे आगे रहते थे। अखिल भारतीय मारवाड़ी सम्मेलन के तो वे प्राण ही थे। उनके सहयोग से सम्मेलन ने कई समाज-सुधार के कार्य हाथ में लिए और उनमें सफलता प्राप्त की। धर्मार्थ सचालित संस्थाओं की वे तन, मन और धन से सेवा करते थे। अभी कुछ ही समय पहले सीकर अस्पताल के लिए उन्होंने स्वयं आगे होकर एक अच्छी धनराशि एकत्रित की। और भी कितनी ही धार्मिक, शैक्षणिक एवं सामाजिक संस्थाओं को उनका आशीर्वाद प्राप्त था।

व्यक्ति रूप से वह मधुरभाषी एवं सम्वेदनशील व्यक्ति थे। जो भी उनके सम्पर्क में आया उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहा।

जहां वे सफल उद्योगपति एवं व्यवसायी थे वहां लिखने-पढ़ने का भी उन्हें बहुत शौक था—विशेषकर लोककथाएं सुनने और सुनाने का। उनके द्वारा लिखित एवं सम्पादित पुस्तकों को पढ़ने से ज्ञात होता है कि उनका लगाव विशेष रूप से राजस्थानी समाज एवं राजस्थानी भाषा से था। 'बहता पानी निर्मला' एवं 'राजस्थानी कहावत कोश' इसके प्रमाण हैं। 'बहता पानी निर्मला' में अनेक बोधगम्य कहानियों का समावेश है जो उन्होंने बहुत ही सरल भाषा में लिखी हैं परन्तु पाठक पर उनका प्रभाव बहुत गहरा पड़ता है।

'राजस्थानी कहावत कोश' में उन्होंने लोकोक्तियां, कहावतें एवं मुहावरों का संकलन किया है और साथ ही उनकी सन्दर्भ-कथाएं भी दी हैं जिससे उन लोकोक्तियों तथा कहावतों को समझने में और उनका उपयोग करने में सहूलियत रहती है। इस प्रकार बहुमुखी प्रतिभा के धनी श्रद्धेय भागीरथजी कानोड़िया अपने आप में एक संस्था थे जिनके माध्यम से साहित्य, समाज तथा संस्कृति का विकास हुआ तथा उनकी जड़ें मजबूत हुईं। ऐसे व्यक्ति के निधन से समाज की जो क्षति हुई है उसकी पूर्ति होना कठिन है।

—:०:—

सामाजिक कार्यकर्त्ता, व्यवसायी

श्री माधोदास मूंधड़ा

रचनात्मक प्रवृत्ति के विशिष्ट पुरुष

श्री भागीरथजी कानोड़िया हमारे समाज के एक पुराने सार्वजनिक कार्यकर्ता, समाज सेवक, देशप्रेमी व रचनात्मक प्रवृत्ति के एक विशिष्ट पुरुष थे। उनसे हम जैसे प्राय: सभी लोग कमोवेश परिचित थे।

वे साहित्य के अनुरागी थे। इतना ही नहीं, उनमें राजस्थानी साहित्य की, विशेषतः लोक-साहित्य की, गहरी पकड़ थी। वे राजस्थान व राजस्थानी-संस्कृति के परम प्रेमी थे और साथ ही जानकार भी।

काफी सम्पन्न होने पर भी श्री कानोड़ियाजी के रहन-सहन में एक आकर्षक सादगी थी। वे मितभाषी थे और जब भी जो कुछ कहते, उसके पीछे उनके सुचिन्तित विचार झांकते थे।

—: ० :—

भारतीय भाषा परिषद के मन्त्री

श्री परमानन्द चूड़ीवाल

'बहता पानी निर्मला'

'बहता पानी निर्मला' के माध्यम से सहज भाव से अनजाने, जिन्होंने अपनी जीवन-गाथा को तीन शब्दों में समेट लिया—:ऐसे थे अजातशत्रु, प्रणम्य भागीरथजी कानोड़िया।

भागीरथजी की जीवन-यात्रा में परम पावन गंगा के 'बहता पानी निर्मला' की तरह परम्परा की पकड़ तथा प्रगति के प्रवाह का अद्भुत सामंजस्य था। मरुधरा राजस्थान के लोक-साहित्य व लोक-संस्कृति की परम्परा से जुड़े हुए, पर साथ ही जीवन की दैनन्दिनी में अकाल-पीड़ित आर्त मनुष्य तथा मूक पशुओं की क्षुधा-तृषा निवारण के लिए सदा समर्पित। आर्त-सेवा, बीमारों की सेवा उनकी जीवन-यात्रा की ध्रुव-तारिका थी।

"परोपकाराय पुण्याय" इस व्यास-वाणी के वे जीवन-भाष्य थे। व्यवसायिक कुशलता की सहज समस्त क्षमताओं, प्रयासों व चिन्तन को उन्होंने सर्वतोभावेन आर्त-सेवा, साहित्यिक व शिक्षण संस्थाओं व सार्वजनिक न्यासों के मार्ग-दर्शन तथा दैनन्दिन गतिविधियों के प्रति समर्पित कर दिया। उनके व्यक्तित्व तथा कृतित्व के पारस-स्पर्श से अनगढ़ लौहतुल्य विभिन्न संस्थाएं व न्यास प्रगति व विकास के शिखर पर पहुंच गये। कल्याण आरोग्य सदन (सीकर), हलवासिया ट्रस्ट, शिक्षायतन, भारतीय भाषा परिषद प्रभृति संस्थान व न्यास उनके कृतित्व से सदैव सुरभित होते रहे।

भारतीय भाषा परिषद—संस्था की स्थापना की परिकल्पना, को मूर्त रूप देने के लिए श्री सीतारामजी सेकसरिया के साथ महीनों तक प्रतिदिन अर्थ-संग्रह का प्रयास, उसके बाद संस्था का गठन, भवन-निर्माण तथा गतिविधियों को आकार देने में उनकी अथक प्रचेष्टाएं चिर-स्मरणीय रहेंगी।

राजस्थानी लोक-साहित्य, लोक-संस्कृति, कहावतें, मुहावरें—उनके हृदय व मानस, दोनों से इन सबका इतना तादात्म्य था कि अन्य सार्वजनिक सेवा-कार्यों की अत्यधिक व्यस्तता होते हुए भी, "बहता पानी निर्मला", 'राजस्थानी मुहावरा कोश" के माध्यम से उनका साहित्यकार-स्वरूप उमड़ पड़ा।

त्याग व सेवा के प्रति समर्पित लोक-सेवकों को कभी उपलब्धि की स्वीकृति के रूप में, कभी प्रेरणा-पाथेय के रूप में प्रशंसा व प्रणाम के स्वर मिलते हैं। प्रायः लोक-सेवक, यश-कामना के मधु-स्पर्श से अपने को अलग नहीं रख पाते पर भागीरथजी को यश-कामना व प्रशस्ति के स्वरों का मोहक रूप कभी स्पर्श नहीं कर पाया। अपनी प्रशंसा की चर्चा होते ही वे ग्लानि से भर जाते तथा उनका मुख क्लान्त व म्लान हो जाता। जीवन के संध्या-काल में मित्रों, सहयोगियों के अनवरत प्रयास के बावजूद उन्होंने सार्वजनिक-अभिनन्दन को शाप-तुल्य मानकर कभी स्वीकृति नहीं दी।

जीवन में अनेक भयंकर आघात लगे—शारीरिक व मानसिक, पारिवारिक व सामाजिक, लेकिन शरशय्याशायी भीष्म पितामह की तरह उन्होंने स्थितप्रज्ञवत् सबको प्रसन्न-मुद्रा से झेला, यंत्रणा का भाव न कभी चेहरे पर आया, न पीड़ा की अभिव्यक्ति कभी वाणी में। अपने कष्टों को उन्होंने कभी स्वीकारा नहीं, दूसरों के कष्ट-निवारण की सेवा के अवसर को कभी नकारा नहीं।

देवता भी मनुष्य बन कर जिस प्रकार के जीवन जीने की स्पृहा करें, तथा मनुष्य बन कर भी वैसा जीवन जीने में असमर्थता का बोध करें, ऐसे थे भागीरथजी।

—: ० :—

प्रसिद्ध उद्योगपति

श्री जयदयाल डालमिया

सेवाभावी व्यक्तित्व

कहावत है कि 'यस्य कीर्तिः सः जीवति' अर्थात् जिसकी कीर्ति है वह सदा जीता है। दिवंगत भागीरथजी कानोड़िया के लोक-सेवी कार्यों की पावन स्मृतियां आज उन सबके हृदयों पर अंकित हैं जो उनके सम्पर्क में आये थे। वे परम कर्मठ, समयनिष्ठ उदारमना और सेवाभावी व्यक्ति थे। उनसे सर्वप्रथम मेरा परिचय मेरे स्वर्गीय बड़े भ्राता श्री रामकृष्णजी डालमिया ने मेरी किशोरावस्था में कलकत्ते में यह कहकर करवाया था कि यह मेरा छोटा भाई है। तभी से वह भी मुझे अपना छोटा भाई ही मानते थे और उसी प्रकार का स्नेह भी देते थे।

अपनी कमाई का एक बड़ा अंश उन्होंने सदा परोपकार और लोक-सेवी कार्यों पर व्यय किया। जो भी कोई उनके पास अपनी समस्या लेकर जाता था, उसका यथोचित समाधान पाकर ही वह उनके पास से लौटता था।

न जाने कितनी समाज-सेवी संस्थाएं उनसे उपकृत हुईं। कलकत्ते की मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी तो उनकी चिर-ऋणी रहेगी। उसके माध्यम से उन्होंने आवश्यकता पड़ने पर देश भर में लोक-राहत के कार्यों को फैलाया। लोक-सेवा के कार्यों के लिए वह समाज से पैसा जुटाने में हिचकते नहीं थे। स्वयं अपना पैसा देते और सम्पत्तिशालियों को भी उस परोपकार के काम में दान देने को प्रवृत्त करते।

वे अद्भुत व्यक्तित्व के धनी थे। जिस प्रकार वे सेवा-कार्य में दक्ष थे, उसी प्रकार से वे व्यापार में भी पूर्ण पारंगत थे। उन्होंने जिन-जिन कार्यों को भी अपने हाथ में लिया पूरी लगन और दक्षता के साथ उनको पूरा किया। साहित्य से उन्हें विशेष प्रेम था। 'बहता पानी निर्मला' के नाम से उनकी रचनाओं का एक प्रकाशन भी हुआ है। सस्ता साहित्य मण्डल के साथ उनका अत्यन्त निकट का सम्बन्ध था और उसके संचालन में उन्होंने अपना भरपूर सहयोग दिया एवं दिलाया।

सचमुच श्री भागीरथजी कानोड़िया वर्तमान युग के भगीरथ ही थे। जहां भगीरथ ने गंगा अवतरण करवाकर प्राणदान दिये, वहां श्री भागीरथजी कानोड़िया ने जरूरतमन्दों को अपने सेवा-कार्यों से सींच-सींच कर सदा हरा-भरा रखा। आज जब वह नहीं रहे हैं, तो उनका अभाव उन सभी संस्थाओं और व्यक्तियों को खल रहा जिनके स्रोत उनसे परिप्लावित थे। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वह उपकार ग्रहणकर्त्ता को अपने निरहंकार और सेवाभाव से इतना अभिभूत कर देते थे कि वह उन्हें उपकारकर्त्ता न मान कर अपना आत्मीय ही मानता था।

हमारे देश की युवा पीढ़ी को उनके जैसे व्यक्तित्व से सीख लेनी चाहिये। उनकी सच्ची स्मृति उनकी जैसी सेवावृत्ति को अपनाकर ही कायम रखी जा सकती है।

—: ० :—

अ० भा० मारवाड़ी सम्मेलन के भूतपूर्व प्रधानमन्त्री,

श्री दीपचन्द नाहटा

परहित धर्म के पथिक

भागीरथजी कानोड़िया के इस संसार से महाप्रयाण से करीब ६ महीने पहले की बात है। मैं उनसे उनके घर मिलने गया था। मुझे देख कर उन्होंने बहुत स्नेह से अपने पास की कुर्सी पर बैठने के लिए कहा। बातों के सिलसिले में उन्होंने मुझ से कहा—दीपचन्दजी, धर्म की परिभाषा बताइए। मैं इस प्रश्न का उत्तर उनसे ही सुनना चाहता था। मैंने कहा—आप ही बताइए। इस पर उन्होंने कहा—यों तो धर्म के बारे में बहुत कहा गया है, पर धर्म का सार तो इन पंक्तियों में भरा पड़ा है :—

परहित सरिस धरम नहिं भाई। पर-पीड़ा सम नहिं अधमाई॥

आज जब मैं कानोड़ियाजी को याद करता हूं, तो मुझे यही लगता है कि उनका जीवन मानो इन दो पंक्तियों की साधना का ही मूर्तिमान स्वरूप था।

श्री कानोड़ियाजी का जीवन-व्रत था—परोपकार। यही उनके जीवन का धर्म था। देश भर के सार्वजनिक सेवा-भावी कार्यकर्त्ता जो भी कलकत्ता आते तो उनको उनसे सहयोग मिलता और उससे भी अधिक मिलता अपनत्व।

श्री कानोड़ियाजी में पीड़ितों, अभावग्रस्तों व जरूरतमन्दों के प्रति विशेष बन्धुत्व का भाव था। वे सबसे घुलमिल जाते थे और उनको अपना बना लेते थे। उद्योग एवं व्यवसाय में व्यस्त रहते हुए भी साहित्य के प्रति उनका गहरा लगाव था। वे राजस्थानी-साहित्य, विशेषतः लोक-साहित्य के मर्म के रसग्राही संग्राहक थे। बातचीत में, लिखने में लोक-साहित्य का यह अनुराग छलकता रहता था। 'बहता पानी निर्मला' इसका सरस प्रमाण है।

साल में कई बार उनसे मिलने का मुझे सौभाग्य मिलता रहा। उनकी अनुभव भरी बातें मेरे लिए मार्ग-दर्शन का काम करती रही हैं। वृद्धावस्था में भी युवकोचित उत्साह था। राजस्थान में एक बार अकाल के समय उन्होंने दूर-दूर तक कठिनाई भरी यात्राएं कीं और सेवा-कार्य को सुव्यवस्थित रूप से संचालित कर अपनी प्रबन्ध-पटता का परिचय दिया जिसकी गहरी छाप राजस्थान के लोक-मानस पर है। उस समय जीप दुर्घटना में उनकी कई हड्डियां टूट गईं और अन्य कई गहरी चोटें आईं लेकिन उस सारे कष्ट को उन्होंने निर्लिप्त भाव से सहन किया।

श्री कानोड़ियाजी समाज-सुधारक, रचनात्मक कार्य को गतिशील करने वाले राष्ट्र-सेवी, हरिजन प्रेमी, शिक्षा-प्रसारक व नारी-जागरण के हिमायती थे। सादगी व सरलता तो उनमें कूट-कूट कर भरी थी। वे मित भाषी थे, धीमे बोलते थे। विचार सुलझे हुए, सुचिन्तित व सुस्पष्ट थे। लोग उनसे आर्थिक सहयोग पाते, सलाह पाते, मार्ग दर्शन पाते, विचार पाते और प्रेरणा-प्रोत्साहन भी। वे हमारे समाज के गौरव थे।

—:०:—

महिला मण्डल, उदयपुर के संस्थापक-संचालक

श्री दयाशंकर श्रोत्रिय

शिक्षा संस्थाओं के परम सहायक

श्री बागड़ोदियाजी का फोन आया कि श्री भागीरथजी कानोड़िया नहीं रहे। इस दुःखद समाचार से महिला मण्डल परिवार को गहरा धक्का लगा। परिवार एकत्रित हुआ और शोक सभा हुई। सब विभागों में अवकाश हो गया। रक्षक, पोषक और संरक्षक श्री कानोड़ियाजी के तैल चित्र के समक्ष बारह दिन दोनों वक्त धूप, दीप और माल्यार्पण के बाद भजन, राम धुन तथा श्रद्धा सुमन चढ़े।

संस्था के सम्पूर्ण भाई-बहिनें श्री कानोड़ियाजी से कई बार मिल चुकी थीं। कलकत्ते प्रवास में भी अनेक बार उनके स्नेह, सहानुभूति और संस्था के विकास के प्रति लगन और मार्गदर्शन से हम लाभान्वित हो चुके थे, अतः संस्था उनके निधन को अपने ही परिवार की क्षति मान रही थी। मैंने कुछ बहिनों को सजल नेत्रों से श्रद्धांजलि देते देखा। शोक सभा में मैंने कहा कि साबरमती आश्रम और प्रयाग निवास के बाद मैं विद्याभवन उदयपुर में सन् १९३४ में सेवाएं दे रहा था, तब कलकत्ते के एक दानदाता ने बाल मन्दिर भवन का निर्माण करा कर उद्घाटनार्थ आने की स्वीकृति प्रदान की। ये उद्घाटनकर्ता ही सेठ भागीरथजी कानोड़िया थे।

श्वेत, धवल खादी वस्त्र पहिनने वाला मैं अकेला सेवक श्री कानोड़ियाजी को दिखाई दिया और मेरी ड्यूटी भी अतिथि भवन में उनकी सेवा में थी, अतः उनका मेरे प्रति आकर्षित होना स्वाभाविक ही था। मेरा नाम, गांव, शिक्षा, दीक्षा, परिवार और जीवन का उद्देश्य श्री कानोड़ियाजी ने जानना चाहा। अतः सविस्तार कहा कि "मैं भाई साहब (डा० मेहता), काकाजी (जमनालालजी बजाज) और श्रद्धेय महात्मा गान्धी के आशीर्वाद और आज्ञा से दक्षिण राजपूताने में बहिनों की सेवार्थ बैठा हूं। साबरमती आश्रम अहमदाबाद, अखिल भारतीय सेवा समिति इलाहाबाद और विद्या भवन उदयपुर मेरे भावी जीवन के लिये अनुभव प्राप्त करने हेतु पाठशालाएं हैं। उनके संकेत पर अपनी महिला सेवा योजना लिखी जो पिछले ८ वर्ष से दिमाग में चक्कर काट रही थी। लेखनी द्वारा कागज पर उतर आई। अतः कानोड़ियाजी ने कार्यारम्भ के लिये मुझे बिना रसीद के तीन हजार रुपये के नोट देकर प्रोत्साहित किया। यह प्रथम मिलन अथवा प्रथम परिचय था।

भगवत्-प्रेरणा से प्राप्त साधनों से योजना छपी, अपील प्रकाशित हुई, साहित्य बना, कार्यकर्ता जुटे और कार्यारम्भ हुआ। चर्खा-द्वादशी पर श्रीमती राधादेवी गोयनका, अकोला, के नेतृत्व में पर्दा निवारक दिवस मनाया और जुलूस सभा के रूप में परिवर्तित हो गया। सर्वश्री सीतारामजी सेकसरिया और भागीरथजी कानोड़िया अध्यक्ष तथा उद्घाटक थे। यही महिला मण्डल के ४५ वर्ष के पूर्व के जन्म का इतिहास है।

संस्था की मासिक रिपोर्ट प्रति मास भागीरथजी को भेजी जाती रही अतः उन्होंने लिखा कि एक दफा यहां (कलकत्ता) आ जाओ। अस्तु मैं गया। राजस्थान के सार्वजनिक कार्यजनिक कार्यकर्ताओं के ठहरने के लिये शुद्ध खादी भण्डार, हरिसन रोड

पर एक कमरे की व्यवस्था कर रखी थी। अतः भण्डार के व्यवस्थापक नवलजी मुझे ले गये। उन दिनों श्री कानोड़ियाजी जकरिया स्ट्रीट स्थित बिड़ला भवन में निवास करते थे। संयोग ही था कि इसी बीच सेठ जमनालालजी बजाज अपने ज्येष्ठ पुत्र श्री कमलनयनजी बजाज के विवाह की बारात लेकर आये। मुझे देखते ही विवाह में सम्मिलित होने का आग्रह हुआ। अतः पोद्दारों के यहां जो बारात गई उसमें मैं भी शरीक हुआ। स्नेहपूर्ण निमन्त्रण मानना मैं अपना कर्तव्य मानता हूं। बजाजजी ने भागीरथजी को उस अवसर पर मेरे विषय में कहा कि दयाशंकर को बापू के आदेश से मैंने महिला सेवादल के लिए दक्षिण राजपूताना में बैठाया है। अपना व्यक्ति है। ध्यान रहे। इस चर्चा से मेरी श्रद्धा भी श्री कानोड़ियाजी के प्रति अधिक बढ़ गई, जिसका मेरे मन पर यह प्रभाव पड़ा कि मुझे समर्पण की भावना से कार्य करना चाहिये।

कानोड़ियाजी कम बोलने वाले प्रशंसा से दूर, सद्-विचारवान, आदतन दानी, अतिनिकट के व्यक्तियों में देने की रुचि पैदा करने वाले, अत्यन्त विनयी, नम्र, सरल, सादे, राष्ट्रीय विचारों से ओत-प्रोत, वयोवृद्ध समाजसेवी स्वतन्त्रता संग्राम के सैनिक, लेखक, साहित्यकार परिश्रमी, स्वदेश प्रेमी, परदुःख कातर, शिक्षाप्रेमी और मानवीय गुणों के धनी थे।

सर्वश्री सीताराम जी सेकसरिया, प्रभुदयालजी, हिम्मतसिंहका, रामकुमारजी भुवालका, वसन्तलालजी मुरारका, रामेश्वरजी टांटिया इत्यादि श्री कानोड़ियाजी के अनन्य मित्र थे। यह टोली सार्वजनिक कार्यों में, संस्थाओं की स्थापना में, संचालन में, समाज-सुधार के कार्यों में अग्रणी रहती थी। मैंने इस टोली को घर-घर जाकर शिक्षा हेतु कन्याएं एकत्रित करते, खादी प्रचार करते और प्रतिनिधिमण्डल बनाकर संस्थाओं के लिये धन एकत्रित करते हुए भी देखा है।

उदयपुर यात्रा में मेरे परिवार से मिलना, बच्चों की पढ़ाई, स्वास्थ्य, शिक्षा, विकास, कठिनाई, सामाजिक बन्धनों की जानकारी आदि लेते। मार्ग-दर्शन देकर कानोड़ियाजी प्रेरणा और उत्साह दिलाते। एक बच्चे को अपने गांव मुकुन्दगढ़ ले गये। भोजन, वस्त्र, निवास, पुस्तकें इत्यादि की समुचित व्यवस्था निःशुल्क। चि० रमेश ने मुकुन्दगढ़ से लिखा कि यहां अधिकांश विद्यार्थी सार्वजनिक कार्यकर्ताओं और कानोड़िया साहब के कर्मचारियों के बच्चे हैं।

मुझे एक बार मुकुन्दगढ़ ले गये। कसबे में कालेज, छात्रावास, कन्याशाला, औषधालय, पुस्तकालय, धर्मशाला, नल, बिजली, सड़क और रेलवे स्टेशन तक के दोनों तरफ छायादार वृक्ष और छोटे वृक्षों की रक्षा और पानी पिला कर बड़े हों तब तक भिश्ती तैनात—सम्पूर्ण व्यवस्था भागीरथजी द्वारा की हुई। सम्पूर्ण शेखावाटी घुमाया। देश, विदेश में अध्ययन को जाने वाले छात्र-छात्राओं को आपके ट्रस्ट की ओर से छात्रवृति उदारतापूर्वक देने की व्यवस्था देखकर मैं दंग रह गया। प्रो० वंशगोपाल झींगरन, धाड़ीजी, नवलजी और झुनझुनवालाजी इत्यादि से आपके कसबे में सम्पर्क हुआ तो उन्होंने श्री कानोड़ियाजी के आर्थिक सहयोग के अनेक संस्मरण सुनाये।

मेरी एक कन्या को टी० बी० हो गई। किसी के द्वारा कानोड़ियाजी को ज्ञात हुआ और तत्काल एक हजार रुपये का इन्श्योर्ड चेक आया। मैंने वापिस कर

दिया तो पुनः तीन हजार रुपये आये। यह रकम भी वापिस कर दी तो स्नेहपूर्ण पत्र आया जिसमें लिखा था कि भेजने की क्रिया में क्या कोई त्रुटि थी ? जब मैंने नम्रतापूर्वक धन्यवाद देकर उत्तर में लिखा कि मैं अपने निजी कार्य में किसी प्रकार का आर्थिक-सहयोग स्वीकार नहीं करता। केवल संस्था के लाभार्थ ही भिक्षा ग्रहण करता हूं। तब उत्तर आया कि यह रकम भी तो आपकी ही है।

अनेक वार संस्था का प्रतिनिधि-मण्डल आर्थिक सहायता प्राप्त करने हेतु कलकत्ते गया, तो सर्वप्रथम हम भागीरथ बाबू की सेवा में ही जाते। स्नेह एवं सहानुभूति से परिवार की कुशलता पूछते। पिता तुल्य आत्मीयता दिखा कर थकान दूर करने को कह कर जलपान कराया जाता। संस्था के विकास की पूछताछ होती। अन्त में मधुर-मुस्कान के साथ यह कहते कि कितनी रकम की आवश्यकता है। संस्था का पैड का कागज मांगते और कलकत्ते के दानियों के नाम ५-६ पंक्तियों में मार्मिक अपील लिखते यह भी लिखना कभी नहीं भूलते कि संस्था मेरी देखी हुई है। अच्छा काम कर रही है। सहायता कर अपनी रकम का सदुपयोग कीजिये। इसके पश्चात अपने चार-पांच मित्रों के नाम लिख कर रकम चढ़ा कर झुनझुनवालाजी से रकम दिला कर चिट्ठा चालू कर देते। प्रतिदिन ३-४ बजे हमसे रिपोर्ट मांगते। परिचय कराने के लिये हमें सुवह विक्टोरिया बुलाते। दफ्तर हर रोज एक व्यक्ति को फोन करके कहते कि ये महिला मण्डल उदयपुर वाले हैं। महिला मण्डल के हमारे ऐसे संरक्षक स्त्री शिक्षा-प्रेमी, दानवीर और महामानव भागीरथजी का संस्था के अनेकों कार्यकर्ताओं से निकट का सम्पर्क हो गया था। उनके नाम अलग से पत्र-पत्रादि भी आते। प्रत्येक को हाथ का लिखा ही पत्र मिलता। मैंने उनके नाम का कोई पत्र टाइप किया हुआ नहीं देखा। आज उनके हाथ के लिखे पत्रों का संग्रह ही उनकी याद बन गया है। एक पत्र में मैंने छात्रावास भवन की मांग की तो शीघ्रताशीघ्र उत्तर आया कि भवन का ब्ल्यू प्रिन्ट बनवाओ। शीघ्र ही उदयपुर आगमन का योग बन रहा है। मैंने पत्र भाई श्री सुखाड़ियाजी को बताया।

श्री नन्दलाल भुवालका तपेदिक अस्पताल के उद्‌घाटनार्थ तपोधन राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू पधारे, तब इस शुभ अवसर पर सर्वश्री भागीरथजी कानोड़िया, रामकुमार भुवालका, शिवकुमारजी भुवालका, भानमलजी भुवालका, नथमलजी भुवालका, मोहन लालजी जालान, इत्यादि अनेक सज्जनों की मण्डली यहां आई। इन उद्योगपतियों की टोली को कानोड़ियाजी ससम्मान महिला मण्डल में लाये। संस्था देखी निरीक्षण के वाद सराहना की, और आगमन के स्मरणार्थ श्रीमान् मोहनलालजी जालान से पुस्तकालय का उद्‌घाटन कराया तथा श्रीमान् माननीय मोहनलालजी सुखाड़िया, मुख्यमन्त्री राजस्थान की अध्यक्षता में भागीरथजी ने 'श्री रामकुमार भुवालका कस्तूरबा कन्या छात्रावास' का शिलान्यास किया। श्री रामकुमारजी भुवालका ने छात्रावास-भवन के लिए आर्थिक सहायता की घोषणा की।

श्री भागीरथजी कानोड़िया कलकत्ते में बैठे-बैठे भी सदैव महिला मण्डल को स्मरण रखते। वहां से जो भी उदयपुर यात्रार्थ आता तो उसे महिला मण्डल देखकर आने का स्मरण दिलाते। श्री कानोड़ियाजी ने तो अपने परिवार को महिला मण्डल

में ही ठहरने का आग्रह किया अतः उनकी पत्नी, बहन गंगादेवी कानोड़िया महिला मण्डल में ही ठहरीं।

महिला मण्डल के प्रतिनिधि मण्डल को एक बार कलकत्ता में उन्होंने रात्रि-भोज में आमन्त्रित किया और भोजनोपरान्त परिवार एकत्रित हुआ। परिचय कराया गया और अन्त में सबके नामसे एक एक सौ रुपये सहायतार्थ दिये अतः मैंने कहा कि कानोड़िया हाऊस से तो सहायता प्राप्त हो गयी है। इस पर कानोड़ियाजी ने कहा कि इनका सबका बैंक में खाता है। इन सबको भी देना सीखना चाहिये। इनके पैसे का यही सदुपयोग है। आप महिलाओं की सेवा का कार्य कर रहे हैं, आपने तो जीवन लगा रखा है। हम तो आपके साथ में लगे हैं। आपकी कठिनाई यदि धनिक वर्ग समझ जाय तो आपको इस वृद्धावस्था में पैसे के लिये घर-घर नहीं फिरना पड़े। आप तो हमारा पुण्य बढ़ाने आये हैं। सुनकर हम सजल और अवाक हो गये।

राजस्थान और अन्यत्र, मैं जहां भी जाता हूं भागीरथजी की सहायता की चर्चा होती है। उनके पास जो भी गया निराश होकर खाली हाथ नहीं लौटा। बिना नाम चुपचाप देते थे। यहां भी अनेक छात्र है जिन्हें छात्रवृत्ति प्राप्त हुई। श्री मोहन बहिन ने उनका चित्र मांगा। काफी प्रयत्न करने पर भी नहीं मिला। 'मेरी छोटी सी रकम आपके सर्मपित-जीवन के सामने तुच्छ है।' सत्य तो यह है कि उनको देने का शौक ही था। मना करना सीखा ही नहीं था। ४-५ दिन तक कोई लेने वाला नहीं आता, तो पूछते कि क्या आजकल कलकत्ते में किसी संस्था का प्रतिनिधिमण्डल धन संग्रहार्थ नहीं आया है।

देश में कहीं बाढ़, दुष्काल भूकम्प आया हो तो उसके सहायतार्थ प्रयत्न करने में उन्हें चिन्तित देखा। राजस्थान के दुष्काल में मेवाड़ क्षेत्र में मीलों के घर-घर जाकर सहायता करते मैंने उन्हें देखा है। वाटर बोर्ड में उनके प्रयत्न से सैकड़ों कुएं खोदे गये हैं। गांवों में दुष्काल में कैम्प लगे तो उन्होंने गो-रक्षा को भारत के इतिहास में पहिला और उच्चकोटि का कार्य बताया। राजस्थान राज्य में बाड़मेर, जैसलमेर क्षेत्र से मालगाड़ियों में गौओं को लाकर, एक-एक हजार गायों के अनेक कैम्प लगाये, तो इस कार्य की बड़ी सराहना हुई। श्री मोहनलालजी सुखाड़िया, मुख्यमन्त्री, राजस्थान, को गो सेवा के इस पुण्य कार्य को पवित्र कार्य मानकर आर्थिक सहायता की और मेरे सामने धन्यवाद दिया। कानोड़ियाजी की मेवाड़ की अन्तिम यात्रा भी बड़ी स्मरणीय है। भूपाल नोबल्स कालेज की स्वर्ण जयन्ती पर कानोड़ियाजी आये। सैनिकों को वीर चक्र, राष्ट्रपति पुरस्कार-प्राप्त अध्यापकों और ताम्रपत्र-प्राप्त स्वतन्त्रता-संग्राम के सैनिकों का सम्मान उनके हाथों से स्वर्णपत्र देकर किया गया। स्वतन्त्रता संग्राम के सैनिकों को उन्होंने अपनी ओर से दुशाला ओढ़ा कर सम्मान दिया। मुझे दुशाला ओढ़ाते हुए पूछा कि आप कहां-कहां जेल में रहे। मैंने अहमदाबाद, इलाहाबाद, अजमेर और उदयपुर का कहा तो पुनः प्रश्न किया कि आपका मेरा परिचय कितने वर्ष पूर्व हुआ, तो मैंने विनोद में कहा कि आपकी और मेरे मिलन की स्वर्णजयन्ती है। समय निकाल कर महिला-मण्डल आये। भाव विभोर होकर आशीर्वाद दिया और कहा कि महिला-मण्डल अब वट-वृक्ष हो गया है।

—: ० :—

सर्वोदय-नेता

श्री देवदत्त निडर

ग्रामीणों के सेवक

शेखावाटी में जब से आजादी के लिए आन्दोलन चला तब से ही मुकुन्दगढ़ निवासी श्री भागीरथजी कानोड़िया उसमें भाग लेने लग गए थे। एक बार किसानों ने मुकुन्दगढ़ में जुलूस निकाला तब वहां के जागीरदार ठाकुर साहब ने नहीं निकालने दिया तथा कई प्रकार की दिक्कतें पैदा कीं और आने वालों को डराया और धमकाया, फिर भी किसानों ने खुब सामना किया।

उस समय इस क्षेत्र में श्री कानोड़ियाजी ने शिक्षा का प्रचार किया और ग्रामीण जनता को यह समझाने लगे कि 'आप लोग बच्चों को पढ़ाओ तथा जुल्म-ज्यादती करने वालों का सामना करो।' श्री कानोड़ियाजी को भी कई प्रकार के कष्ट दिए गए, फिर भी उन्होंने हिम्मत करके सब प्रकार से उनका सामना किया और किसानों को तथा हरिजनों व मजदूरों को ऊपर उठाने में हर प्रकार से सहयोग देते रहे। गरीब बच्चों को आर्थिक सहायता भी वह समय-समय पर करते रहते थे। उस समय नवलगढ़ के सीतारामजी सेकसरिया तथा मंडावा के श्री देवीबक्सजी सराफ तथा किसान नेता सरदार हरलाल सिंहजी इत्यादि सब ही आजादी की लड़ाई में लगे हुए थे। देश आजाद हुआ, गरीब जनता सामन्तवाद की ज्यादतियों से काफी दुखी हो गई थी। कुछ आराम मिला।

आजादी के बाद श्री कानोड़ियाजी साहित्य पर भी ध्यान देने लगे तथा राजस्थानी-भाषा और लोक कथाएं प्रकाशित करवायीं। गरीब ग्रामीण जनता को रोजगार मिले. इसके लिए खादी वालों को भी प्रोत्साहन दिया तथा सहयोग करने लगे। खादी संस्थाओं में जब भ्रष्टाचार तथा वेईमानी फैलने लगी, तब वे उनसे धीरे-धीरे दूर होने लग गए क्योंकि इन संस्थाओं में सुधार होने की उन्हें आशा नहीं रही।

श्री बदरीनारायणजी सोढानी को भागीरथजी ने सहयोग दिया और सीकर में श्री कल्याण आरोग्य सदन के नाम से एक बड़ा अस्पताल चालू करवा दिया, जिससे गरीब जनता को काफी लाभ हो रहा है। भागीरथजी ने देश सेवा में तथा गरीबों के सुधार में सब प्रकार का सहयोग दिया है। उनके चले जाने से देश को नुकसान हुआ है।

देश के नवयुवकों को कानोड़ियाजी के जीवन से शिक्षा लेकर के कुछ रचनात्मक काम करना चाहिए।

—: ० :—

भूतपूर्व संसत्सदस्य, प० बंगाल के भूतपूर्व मंत्री
श्री सुशील धाड़ा

अत्युच्च राहत-संगठक

भागीरथजी कानोड़िया का नाम कलकत्ता के दो अन्य गैर-बंगाली सज्जनों श्री सीताराम सेकसरिया एवं श्री बसन्तलाल मुरारका के साथ जुड़ा हुआ है, जो मेदिनीपुर जिले के नमक अभियान आन्दोलन से अनवरत संपृक्त रहे। उस समय मैं महज एक किशोर, जिले के सब-डिवीजन तामलुक में स्वयंसेवक था। तामलुक में यह आन्दोलन बड़ा प्रसिद्ध हुआ और स्थानीय आन्दोलनकारियों में ये मारवाड़ी सज्जन बड़ी श्रद्धा के पात्र बने। इस तरह मैं उस समय के कलकत्ता के एक प्रख्यात व्यवसायी भागीरथजी के नाम से परिचित हुआ।

समय बीतने के साथ, यह नाम अपनी आत्मीयता, निष्कलंक चरित्र एवं उदार हृदयता के कारण बहुत लोकप्रिय हुआ। १९४२ की अगस्त-क्रांति, बंगाल में आंधी के प्रकोप एवं १९४३ के अकाल के दौरान भागीरथजी ही थे, जो हमारे निकट पीड़ित मानवता की सेवा में समर्पित एक सच्चे गांधीवादी के रूप में आये। राहत कार्यों के एक अद्वितीय संगठक के रूप में भागीरथजी का सभी आदर करते थे।

१९४२-४४ में जब तामलुक की 'ताम्रलिप्त जातीय सरकार' एवं 'विद्युत वाहिनी और भगिनी सेना' के नाम से प्रसिद्ध वहां की राष्ट्रीय सरकार और राष्ट्रीय सेना के अविभाज्य अंग के रूप में मुझे वर्षों भूमिस्थ होकर जीवनयापन करना पड़ा था, तब भागीरथजी के राहत कार्यों ने ब्रिटिश प्रशासन द्वारा उत्पीड़ित लाखों भूखे और बेघरबार पुरुषों और स्त्रियों का जीवन और प्रतिष्ठा बचाई। अधिकांश मामलों में राहत का सामान उक्त राष्ट्रीय सरकार के भूमिस्थ कार्यकर्ताओं द्वारा ही इधर-उधर पहुंचाया जाता था, जिसकी पूरी जानकारी भागीरथजी को थी। अपने स्वयं के ऊपर ब्रिटिश-उत्पीड़न की संभावना से वे निर्भय थे, और लगभग एक वर्ष तक उन्हें कारावास भी भोगना पड़ा। वे धार्मिक वृत्ति के पुरुष थे और दीन एवं उत्पीड़ित मानवता की सेवा उनके धर्म का अंग थी। कलकत्ता के उपद्रवों में या कलकत्ता के विशाल हत्याकांड में महात्माजी के आदेश पर भागीरथजी की निर्भीक सेवाएं, सच्चे अर्थ में उनके गांधीवादी चरित्र का औचित्य प्रस्तुत करती हैं।

वे बंगाल को प्यार करते थे और प्यार करते थे हृदय की अन्तरतम भूमि से। भागीरथजी का नाम मुझे महाभारत के उस भगीरथ का स्मरण दिलाता है, जो कठिन परिश्रम, त्याग तथा मनन के द्वारा करुणा, समृद्धि और हरियाली की धारा गंगा या जाह्नवी को इस भूतल पर ला सका था। पार्थिव भागीरथजी कानोड़िया की भी हमारे इस देश में और इस सीमित काल-मान में वही देन है।

आदर्शों से भरे हुए हृदय वाले भागीरथजी एक मौन कार्यकर्ता एक अत्युच्च राहत-संगठक के रूप में स्मरण किए जाएंगे।

—: ० :—

शिक्षा-शास्त्री, राजस्थान विद्यापीठ के संस्थापक

श्री जनार्दनराय नागर

समाज-सेतु

तब मैं विद्याभवन में एक अध्यापक था, मेवाड़-सरकार की एक वर्ष तक चाकरी कर शिक्षक बनने के लिये विद्याभवन में शिक्षक बना था। इधर विद्यापीठ की स्थापना और उसके प्रारम्भिक विकास का काम, उधर ब्रिटिश साम्राज्य की गुलामी के विरुद्ध संघर्ष, प्रजामण्डल, कांग्रेस, महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू; राष्ट्र, राष्ट्रीय स्वतंत्रता, राष्ट्रभाषा हिन्दी, राष्ट्रलिपि देवनागरी और महात्माजी का मुक्ति-मोर्चे का रचनात्मक कार्यक्रम। तब पच्चीस रुपयों की सेकेण्डहैंड साइकल पर सवार मैं स्वप्नों से भरा हुआ विद्याभवन नौकरी पर जाता और विद्यापीठ का आयोजन करता चलता। तब विद्याभवन का नई शिक्षा का सन्देश मेवाड़ में फैलने लगा था और नई चेतना की शिक्षा को हम शिक्षक, माता-पिता और अभिभावक जानने लगे थे। कीर्ति-कार्य भागीरथजी कानोड़िया तब विद्याभवन के संरक्षक के समान ही थे। विद्याभवन के विकास में डॉ० कालूलालजी श्रीमाली ने जितनी देन दी है, उतनी ही भागीरथजी कानोड़िया ने विद्याभवन के आर्थिक संघर्ष को हल्का करने में मदद की है। परन्तु भागीरथजी कानोड़िया ने उस समय के राजपूताना और बाद के वृहत् राजस्थान की सभी राष्ट्रीय शिक्षा, संस्कृति और समाज कल्याण की संस्थाओं, प्रवृत्तियों और व्यक्तियों की मौन सहायता की गंगा बहाये रखी।

राजस्थान के उत्थान के रचनात्मक और उत्कर्ष के शिक्षात्मक सत्कार्यों के लिये वह भगीरथ ही थे। अभाव में डोलते तथा अपनी गृहस्थी की गरीबी सहते हुए अनेक कर्मठ कार्यकर्ताओं के लिये तो भागीरथजी पिता-तुल्य ही थे। निस्संदेह राजस्थान के श्रेष्ठियों की निष्काम आर्थिक सहायता के बिना भारत के दिव्य घोष और मानव घोष मन्दिरों का जीर्णोद्धार नहीं होता और ना ही जनता में जनतंत्रीय-राजस्थान के सामाजिक शौर्य की सद्भावना ही फैलती। राजस्थान के श्रेष्ठियों ने भारतीय धर्म-समन्वय और संस्कृति के उद्धार तथा प्रसार के लिये सदैव सन्तों, महन्तों, मठों, मन्दिरों, यज्ञों आदि की दिल खोल कर सहायता की है।

सामाजिक श्रेय की इस गंगा का मार्ग प्रशस्त करने वाले महाजन व्यक्तियों में हमारे समाज सेतु भागीरथजी कानोड़िया अग्रगण्य थे। बिड़ला, बांगड, सोमानी, कमानी, डालमिया, तापड़िया, मोहता गिनाने लगूं तो सभी आदि वरेण्य श्रेष्ठियों ने निस्संदेह मन्दिरों के दीपक संजोये रखे हैं और सामाजिक राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं तथा उनकी प्राणापन्न संस्थाओं को समय-समय पर सहायता कर उनका सदैव परित्राण किया है। महात्मा गांधी के रचनात्मक कार्यक्रम के बहुविध मोर्चों को इन मतिमानों ने सक्रिय रखा है तथा

राष्ट्र-पुरुषों की निधियां भरपूर रखी हैं। भागीरथजी इस सामाजिक श्रेय के विशाल क्षेत्र के संरक्षक मित्र तथा साथी थे। निर्विवाद भागीरथजी कानोड़िया राजस्थान के भारतीय समाज सेतु थे—अपने सौजन्य, अपने शील, अपने जाग्रत विवेक और बुद्धिमान चैतन्य द्वारा भागीरथजी कानोड़िया विना कहे और माने समाज के सेतु बनते चले गए। तभी उनके स्वर्गारोहण को लेकर राजस्थान की प्रत्येक वास्तविक संस्था और प्रत्येक धीर-वीर सामाजिक कार्यकर्ता आह भर कर रह गया है। भागीरथजी कानोड़िया राजस्थान के विशाल रचनात्मक कार्य के पितामह हो गए थे। उनका संसार से विदा लेना सैकड़ों कार्यकर्ताओं तथा पचासों संस्थाओं को एक प्रकार से अनाथ कर गया है। किन्तु सज्जन तो आने पर प्रसन्नता और जाने पर आंसू ही प्रदान करते हैं। भागीरथजी कानोड़िया राजस्थान के ऐसे ही सज्जन थे।

मेरे जैसे अभाव-ग्रसित और संघर्षरत एक मध्यम श्रेणी के सामाजिक कार्यकर्ता की ओर वह सहज ही खिचे। विद्याभवन के ओपन एयर सेशन में तब मैं अपने ग्रुप के साथ अरूणोदा गांव में था। शिविर में प्रसन्नता फैली कि भागीरथजी कानोड़िया आए हैं। विद्याभवन का यह ओपन एयर शिक्षा कार्यक्रम यद्यपि पश्चिम से उधार लिया कार्यक्रम था तथापि हम लोगों के लिए यह एक विशिष्ट देन थी। विद्याभवन के आजीवन अध्यक्ष डॉ० मोहनसिंह मेहता का तम्बू ऊंचाई पर गड़ा था और प्रधानाध्यापक का शिविर उसके नीचे सुशोभित था। भागीरथजी कानोड़िया वहीं टिके थे। सभी ग्रुपों के कार्य को देखते हुए भागीरथजी कानोड़िया मेरे तम्बू के द्वार पर आ खड़े हुए। वह अकेले ही थे। मैं अपने विद्यार्थियों के साथ था—कुछ कर रहा था। सहसा मैंने देखा भागीरथजी द्वार पर खड़े हैं। मेरे देखते ही भागीरथजी तम्बू में आ गए। मैं उठा, मैंने उनको नमस्कार किया। भागीरथजी बोले—"मन्दिर में मैं देवता का दर्शन करने आया हूं।" मैं अवाक् सा उनका शान्त प्रसन्न मुख-मण्डल देखता खड़ा रहा। भागीरथजी ने पुनः कहा—"विद्याभवन की सेवा जी लगाकर कर रहे हो, किन्तु विद्यापीठ का दीपक बुझने न देना। उसको अपने आंसुओं से सींचे रखना।" किसे पता था, भागीरथजी का यह विधाता का संकेत था। तब से विद्यापीठ के दीपक को आंसुओं से ही नहीं कार्यकर्ताओं के रक्त से सींचे रखना पड़ा है। आज भी राजस्थान विद्यापीठ का कार्यकर्ता-कुटुम्बियों का यह प्रथम भारतीय जनतंत्रीय कुल देश काल के विषाद में डूबा अपने भाग्य और भविष्य के संघर्ष में पड़ा हुआ है। किन्तु आंधियों और तूफानों में, निराशा की अंधेरी रातों में मुझे भागीरथजी का वही शान्ति, धैर्य और साहस प्रदान करने वाला प्रसन्न किन्तु गम्भीर स्वर सुनाई देता है। भागीरथजी कानोड़िया विद्यापीठ के एक ही पितामह थे, जिन्होंने अपने इस गरीब कुल की शुभकामना ही नहीं की, उसकी रक्षा के लिये निरन्तर सहायता की है और करवाई है। आज मैं अपने चित्ताकाश में भागीरथजी से विद्यापीठ के भविष्य का आश्वासन ही पाता हूं। देह त्याग कर भागीरथजी हमारे चित्ताकाश में एक आशा से भरा आश्वासन ही हो गए हैं।

तभी राजस्थान विद्यापीठ कुल सम्बोधिनी ने उनको भारत का समाज सेतु पुकारा। भागीरथजी मरणासन्न रुग्ण हैं—यह धक् करने वाला समाचार मैंने-

हमने सुना। एक टीस उठी विद्यापीठ के अन्तःकरण में, और हमने भगवती परमेश्वरी जगदम्बा से प्रार्थना कर उनको भारत का समाजसेतु कहा—घोषित किया। भागीरथजी को कदाचित् इसका पता नहीं चला। कुटुम्बियों ने उनको यह बताया नहीं, किन्तु उनके सम्बन्धी बागड़ोदियाजी ने इस सम्बोधन को झेला। मुझसे कहा— "भागीरथजी वास्तव में समाजसेतु ही थे।"

भागीरथजी सम्मान नहीं चाहते थे। मैंने कई बार निवेदन किया। उदयपुर पधारो और हमारी श्रद्धा के सुमन स्वीकारो। भागीरथजी ने मुस्करा कर मना कर दिया। मैंने कहा "कलकत्ता आकर हम आपको भारत का समाजसेतु पुकारेंगे।" भागीरथजी ने अवसर ही नहीं दिया। भारत के सेवकों की पुरानी पीढ़ी के भागीरथजी कानोड़िया निष्काम कर्म योग में ही निष्ठा रखने वाले उदारचेता मानव थे। पंचम बिड़ला कहे जाने पर भी श्री-समृद्धि से घिरे रहने पर भी भागीरथजी को मैंने एक सरल, जाग्रत, विवेकशील उदारचेता मानव ही पाया है। भागीरथजी लेखक थे, समाज-सेवक थे, राष्ट्रीय पुरुष थे। किन्तु सर्वोपरि वह हमारे विशाल भारतीय समाज कल्याण के जलधियों के सेतु भी थे। मैं भागीरथजी कानोड़िया को कभी भी 'सेठ' नहीं मान सका, उनको कभी भी मैं पंचम बिड़ला नहीं कह सका। कभी उनको कलकत्ते के राजस्थानी महाजन के रूप में स्वीकार नहीं कर सका। सीतारामजी सेकसरिया और भागीरथजी कानोड़िया को हमने सदैव समाज-सेवक ही माना है। भागीरथजी कानोड़िया ने क्या नहीं किया है इस उदीयमान भारत राष्ट्र के लिए राजस्थानियों द्वारा कठिन परिश्रम और विचक्षण दाक्षिण्य से अर्जित भूति को उन्होंने पुण्य की गंगा की ओर मोड़ा तथा भारतीय राष्ट्रीय श्रेय को उन्होंने भारतीय जनता का तीर्थ बना दिया। अवश्य, भागीरथजी कानोड़िया ने विद्यापीठ को स्वयं लाख नहीं दिए, लाख एकत्र करवाए। किन्तु भागीरथजी कानोड़िया ने हमें संघर्ष में साहस, निर्माण में आलोक तथा निराशा में गहन आशा दी है। भागीरथजी कानोड़िया को इसीलिये हम सामाजिक कार्यकर्ता अपना पितामह मानते हैं।

भागीरथजी कानोड़िया का नश्वर देह पंचभूतों में मिल गया है। अवश्य, भागीरथजी कानोड़िया संसार से बिदा ले गए हैं, किन्तु मुझे आज भी भागीरथजी राजस्थान विद्यापीठ की कुटियाओं के द्वार पर खड़े दिखते हैं। आज भी विद्यापीठ की रक्षा, हित और विकास के निराश संघर्षों की अंधेरी एकान्त रातों में मैं भागीरथजी को पुकारता हूं और सच मानिये, भागीरथजी दिव्य कीर्ति-शरीर में व्यक्त होकर मुझे धैर्य बंधाते हैं—आशा जगाते हैं और मैं अपना अरण्य-रुदन बन्द कर भविष्य के अन्धकार में मुस्कराने लगता हूं।

—: ० :—

विश्वभारती विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष
श्री रामसिंह तोमर

सज्जनोत्तम

कीर्तिशेष कानोड़ियाजी की शिक्षा और सांस्कृतिक कार्यों में विशेष रुचि थी, इसी कारण उनका इस शती के द्वितीय दशक से ही शान्तिनिकेतन के साथ घनिष्ठ सम्पर्क रहा। रवीन्द्रनाथ ठाकुर और चार्ली फ्रियर एण्ड्रूज के वे विशेषरूप से प्रिय व्यक्ति थे। एण्ड्रूज अन्त समय तक कानोड़ियाजी को नहीं भूले। कानोड़ियाजी विश्व-भारती की संसद के सदस्य थे। मुझसे स्वर्गीय श्री सुधीरंजन दास (विश्वभारती के वाइस-चांसलर और भारत के उच्चतम न्यायालय के प्रधान विचारपति) ने कानोड़ियाजी की चर्चा करते समय कहा था कि वे निर्भीक और सच्ची बात करते हैं। विश्वभारती की संसद में वे स्पष्ट बात कहते थे, जो प्रधान सचिव श्री रथीन्द्रनाथ ठाकुर को अच्छी नहीं लगती थी, फलतः कुछ दिनों बाद उन्हें संसद में शामिल नहीं किया गया।

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर की इच्छा थी कि हिन्दी भाषा और साहित्य के क्षेत्र में शोधकार्य, अध्यापन की व्यवस्था विश्वभारती में हो। एण्ड्रूज साहब ने इस प्रसंग में कानोड़ियाजी से सहायता चाही और उनके प्रयत्न से हलवासिया ट्रस्ट द्वारा प्रदत्त आर्थिक सहायता से हिन्दी-भवन स्थापित किया गया। पं० जवाहरलालजी नेहरू ने हिन्दी भवन का उद्घाटन किया। उद्घाटन समारोह के अवसर पर जो निमन्त्रण पत्र भेजा गया था उसमें कानोड़ियाजी का नाम आमन्त्रणकर्ता के रूप में था।

कानोड़ियाजी का हिन्दी भवन के प्रति विशेष प्रेम था। चीन-भवन के साथ भी उनका विशेष प्रेम था। ये संस्थाएं कैसा काम कर रही हैं, विश्वभारती की प्रगति तथा स्थिति के विषय में पूरी जानकारी वे मिलने पर प्राप्त करना चाहते थे। अपने योगदान के विषय में बात करना तो दूर, वे कुछ सुनना भी पसंद नहीं करते थे। हिन्दी-अध्यापन की व्यवस्था हिन्दी-भवन की स्थापना के पहले ही हो चुकी थी। पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी को वेतन देने के लिए सुनिश्चित व्यवस्था नहीं थी। एक बार गुरुदेव ने द्विवेदीजी के गुणों की प्रशंसा करते हुए कानोड़ियाजी से कहा था कि 'मुझे एक हीरा मिला है किन्तु मैं उसे अपने पास रखने में असमर्थता का अनुभव कर रहा हूं।' कानोड़ियाजी ने उदार आर्थिक व्यवस्था की और द्विवेदीजी को रखने में गुरुदेव को कोई कष्ट नहीं हुआ। हिन्दी-भवन बन गया लेकिन कई वर्षों तक खाली पड़ा रहा। शोध-संस्था के रूप में कार्य करना अर्थाभाव के कारण संभव नहीं था। कानोड़ियाजी ने आवश्यकता को समझा और सन् १९४५ से १९४८ तक हलवासिया-ट्रस्ट से अनुदान स्वीकृत कराया, फलस्वरूप हिन्दी-भवन अपने सुनिश्चित कार्यक्रम के

अनुसार काम करने लगा। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के द्वारा अन्य विभागों के समान हिन्दी भवन को भी अनुदान मिलता रहा है, फिर भी अनेक योजनाएं अपूर्ण रह ही जाती हैं। कानोड़ियाजी उदार दृष्टिकोण के थे, किन्तु उनकी उदारता का लाभ वे ही लोग उठा सकते थे जो उन्हें आश्वस्त कर सकें कि जिस काम के लिए उनसे सहायता करने के लिए कहा जा रहा है वह वास्तव में उचित और आवश्यक है। हिन्दी भवन के पुस्तकालय का विस्तार आवश्यक था, कानोड़ियाजी ने उसे उचित समझा और हिन्दी भवन का विस्तार कराया।

किन-किन विषयों पर कार्य होना चाहिए, कई बार इसकी चर्चा मुझसे हुई। हिन्दी-भवन की स्थापना का उद्देश्य था, आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं और विशेष रूप से हिन्दी की मूल आधारभूत समस्याओं पर शोध कार्य करना, अपभ्रंश, व्रजभाषा, नाथपंथ, संतमत जैसे पहलुओं का प्रामाणिक अध्ययन। मैंने उनका ध्यान आकर्षित किया—भारतीय मध्य-युगीन इतिहास के कुछ पहलुओं को समझने के लिए अन्य भाषाओं में सुरक्षित आधारभूत सामग्री का प्रामाणिक हिन्दी-अनुवाद, जैसे भक्ति-धारा को समझने के लिए आलवारों की वाणियों का प्रामाणिक हिन्दी अनुवाद, ग्रीक-भाषा में प्राप्त ऐतिहासिक-विवरणों का अंग्रेजी में तो अनुवाद है किन्तु हिन्दी में मूल ग्रीक-भाषा से अनुवाद कराना चाहिए। सूफी-मत को समझने के लिए मूल अरबी, फारसी, तुर्की में प्राप्त सूफियों के साहित्य का अनुवाद और चीनी यात्रियों के विवरणों का हिन्दी अनुवाद। कानोड़ियाजी ने मेरे प्रस्ताव को पसन्द किया और आलवारों की वाणियों के मूल तमिल से हिन्दी रूपान्तर कराने की व्यवस्था की। प्राचीन तमिल, संस्कृत, वैष्णव धर्म और दर्शन, हिन्दी, इतनी भाषाओं का प्रामाणिक ज्ञान रखनेवाला विद्वान प्राप्त करना कठिन था। यह योजना प्रायः पूरी हो गई है। पूरे व्यय की व्यवस्था उन्होंने ट्रस्ट से कराई। मैं नहीं सोचता इस श्रृंखला की अन्य योजनाएं कानोड़ियाजी जैसे प्रभावशाली व्यक्तित्व के अभाव में पूरी हो सकेंगी।

अन्तिम वर्षों में उनके साथ कलकत्ता में 'हिन्दी-भवन' की स्थापना के सम्बन्ध में अनेक बार चर्चा हुई। मैंने उन्हें सुझाव दिया था कि हिन्दी-भवन तो एक है ही, और हिन्दी-भवन स्थापित होगा तो उसका इतना स्वागत नहीं होगा। भावात्मक एकता के लिए भारतीय भाषा परिषद जैसा कोई नाम देकर संस्था स्थापित होती तो अच्छा होता। उन्होंने कहा 'मेरा विचार तो हिन्दी भवन बनाने का था, आप जो कहते हैं, वही ठीक है। मैं तो बना दूंगा, काम तो आप ही लोगों को करना है।'

कानोड़ियाजी को शान्तिनिकेतन के प्रति श्रद्धा थी, शान्तिनिकेतन के समावर्तन समारोहों में वे प्रायः सम्मिलित होते थे। उनके ठहरने के लिए विश्वविद्यालय की ओर से अतिथि-भवन में व्यवस्था रहती थी, किन्तु उसको छोड़कर वे हिन्दी-भवन में या मेरे साथ ही ठहरते थे जहां अपेक्षाकृत असुविधाएं अधिक थीं। हम लोग उनसे कहते भी थे कि असुविधा होगी—उनका हम लोगों पर अपार-स्नेह था, और वे कहते थे 'अपने घर में ही ठहरना ठीक है।' हमारे घर में हाथ धोने का 'बेसिन' नहीं था, नल पर हाथ धोते समय कपड़े भींग जाते थे, हम उन्हें सतर्क कर देते थे। उन्होंने कहा 'बेसिन लगवा लें।' जब मैंने कहा विश्वभारती के सभी घरों की यही हालत है, इस

पर उनका कथन था कि 'तब ठीक है'। एक बार उनके साथ उनकी पुत्री भी आई थी, छोटे-से कमरे में उन्हें बहुत कष्ट हुआ और तब उन्होंने प्रस्ताव किया कि पंखा, बेसिन से युक्त एक कमरा अतिथियों के लिए बनाना चाहिए और वह उनकी कृपा से बन भी गया। हिन्दी-भवन के अतिथि उसी में ठहरते हैं। कानोड़ियाजी दूसरी बार आए तो उसी में ठहरे।

सन् १९७१ में विश्वेश्वरलाल हलवासिया स्मृति ग्रन्थ का प्रकाशन-समारोह हिन्दी-भवन में आयोजित किया गया, विश्वभारती के वाइस-चांसलर तथा अनेक विद्वान उपस्थित थे। कानोड़ियाजी की विनम्रता असाधारण थी—उन्होंने कुछ इस प्रकार कहा था, 'गुरुदेव और एण्ड्रूज की जो मेरे ऊपर कृपा थी वह मेरे लिए बहुत बड़ी चीज थी। हम लोग तो ट्रस्ट के धन के व्यवस्थापक हैं। आप लोग सहायता के लिए हमारे पास आते हैं इसके लिए हम कृतज्ञ हैं।' जब भी वे शान्तिनिकेतन आते थे तो पुराने परिचितों से अवश्य मिलते थे। सुधाकान्त रायचौधुरी, प्रो० तानयुनशान के घर जाकर मिलते थे, क्योंकि वे लोग चल-फिर नहीं सकते थे। शान्तिनिकेतन के आचार्य पं० नेहरू थे। उनसे उनका परिचय था। दिन के भोज में कानोड़ियाजी विशिष्ट अतिथि के रूप में आमन्त्रित रहते थे और वे एक दूसरे को अभिवादन निवेदित करते थे। जब इन्दिराजी आचार्य हुईं, तब भी कानोड़ियाजी दो बार समावर्तन समारोहों में सम्मिलित हुए। एक बार जन-सम्पर्क-विभाग की ओर से भेजे गए निमंत्रण पत्र में उनके नाम के पूर्व 'सेठ' शब्द जोड़ दिया था, उन्होंने इस पर आपत्ति की और जब तक 'सेठ' के स्थान पर श्री लिख कर नहीं आया वे निश्चिन्त नहीं हुए।

कानोड़ियाजी का स्वभाव गम्भीर था, किन्तु साथ ही वे बड़े विनोदी थे। समावर्तन समारोह समाप्त होने के कुछ घण्टे बाद प्रधानमंत्री चले जाते थे और बहुसंख्यक आगन्तुक भी। हम लोग बैठे हुए बात कर रहे थे, कानोड़ियाजी से एक सज्जन ने सहज भाव से कहा कि खास-खास आदमी चले गए हैं, ऐसे-वैसे लोग रह गए हैं। कानोड़ियाजी इस कथन का अभिप्राय समझ कर हंसते हुए कह रहे थे 'यह आपने अच्छा कहा।' वे सज्जन भी कुछ संकोच में पड़ गए और अपने कथन की व्याख्या करने लगे, आखिर 'ऐसे-वैसे' का अर्थ क्या है? प्राचीन युग में 'ऐसे-वैसे' व्यक्ति का अर्थ विशिष्ट व्यक्ति रहा होगा और अब अर्थ परिवर्तन होने के कारण उसका अर्थ 'सामान्य व्यक्ति' हो गया है।

उनके साथ उनकी श्रीमती बराबर आती थी, एक बार बड़ी लड़की भी आई थी। सब लोग शान्तिनिकेतन से देवघर जा रहे थे, जल-कलश में पानी भर कर एक भद्र महिला रास्ते के लिए दे रही थी, कानोड़ियाजी कहा 'इसमें क्या दूध भर कर दिया है?' उनकी आत्मीयता हमारे लिए अनुकरणीय थी। वे हमारे अपने घर के सदस्य थे जितनी बार वे हिन्दी-भवन आए, बड़े स्वाभाविक और सहज भाव से हमारी कम सुविधाओं और अधिक असुविधाओं के साझीदार हुए। काठ के तख्त पर सोना, देहाती स्नानागर में स्नान करना, शीत-काल में ठंडे पानी से ही हाथ-मुंह धोना, और छोटे से कमरे में दिन बिताना।

राजनीतिक और साहित्यिक समस्याओं पर उनके विचार संतुलित, तटस्थ और महत्वपूर्ण होते थे। यह सर्वविदित है कि वे गांधीजी के आदर्शों के प्रति श्रद्धावान थे,

खादी पहनते थे। कांग्रेस के प्रति उनका झुकाव था। पिछले वर्षों की सिद्धान्तहीन राजनीतिक परिस्थिति से वे चिन्तित थे, अनेक व्यक्ति उनके पास परामर्श और सहायता के लिए पहुंचते थे। हिन्दू-मुस्लिम एकता, अन्तर्जातीय सद्भावपूर्ण सम्बन्धों के पक्षपाती थे।

पुरानी कहानियों, उक्तियों, शब्दों की व्युत्पत्ति को लेकर प्रायः चर्चा होती थी। मैं जब भी कलकत्ता जाता था, कानोड़ियाजी से मिलने का कार्यक्रम अवश्य रहता था। पाणिनि के जीवन का अन्त किस प्रकार हुआ। मेघों के कितने पर्यायवाची संस्कृत में है? भक्ति का उद्गम कब हुआ? महाभारत के शान्ति-पर्व में कहीं-कहीं विचित्र उपदेश क्यों है? ऐसे नाना प्रसंगों पर चर्चा होती थी और 'बहता पानी निर्मला' नामक उनकी कृति में जो लोक कथाएं प्रस्तुत की गई हैं उनके स्रोतों के विषय में वे प्रायः मनन किया करते थे। शब्द का गलत प्रयोग उन्हें अच्छा नहीं लगता था। मेरे साथ एक विद्वान उनसे मिलने गए, वे बिना प्रयोजन के 'परस्पर' शब्द का प्रयोग बातचीत में कर रहे थे। किसी व्यक्ति की चर्चा होती वे कह उठते 'हमारा उनसे परस्पर है'। कानोड़ियाजी ने उनसे पूछा 'परस्पर' क्या है?' शायद बंगला के प्रभावस्वरूप वे सज्जन परस्पर का अपूर्ण प्रयोग कर रहे थे।

आत्म-प्रशंसा कानोड़ियाजी सुनना पसन्द नहीं करते थे। अनेक संस्थाओं की उन्होंने निस्पृह भाव से सहायता की, और अनेक व्यक्ति उनसे उपकृत हुए। प्रशंसा और निन्दा, सुख और दुःख उनके लिए समान थे। सी० एफ० एण्ड्रूज ने उनके सम्बन्ध में लिखा है कि, 'वे इस प्रकार लोगों की सहायता करते थे कि सहायता पाने वाले व्यक्ति को भी ऐसा लगे जैसे सहायता लेकर वह देने वाले का उपकार कर रहा हो। उनका बायां हाथ यह नहीं जान पाता था कि दाहिना क्या कर रहा है?' पण्डित हजारीप्रसादजी द्विवेदी ने एक बार कहा था कि कानोड़ियाजी मारवाड़ियों में नर-रत्न हैं। वे उन सज्जनोत्तमों में से थे जिनके विषय में यह उक्ति सही लगती है:

क्षणमिह सज्जनसंगतिरेका
भवति भवाणव तरणे नौका।

अपने कल्याणमित्र की पुण्य स्मृति में मैं विनम्र श्रद्धांजलि समर्पित करता हूं।

—: ० :—

कलकत्ता विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष

श्री कल्याणमल लोढ़ा

पुण्य स्मरण

जोधपुर विश्वविद्यालय के कुलपति पद को स्वीकार करने के पूर्व स्मृति शेष भागीरथजी कानोड़िया से मिलने जब मैं उनके निवास पर गया तब उन्होंने कहा, 'लोढ़ाजी, आप कलकत्ता छोड़कर भले ही जाएं पर यह ऐसी मोह नगरी है कि सारी असुविधाओं के वावजूद इससे कभी मोह भंग नहीं होता।" मैंने उनके इस कथन पर गम्भीरता से विचार किया और पाया कि सचमुच इस मोह के भंग नहीं होने का कारण कलकत्ता से अधिक कलकत्ता के वे प्रभावी पुरुष हैं, जिनका सान्निध्य और सम्पर्क मनुष्य को बार-बार उसकी ओर निरंतर आकर्षित करता रहता है। पुण्य श्लोक भागीरथजी कानोड़िया भी ऐसे ही 'प्रभावी पुरुष' थे। जब जोधपुर में उनके स्वर्गवास का समाचार सुना तो मुझे मर्मान्तिक पीड़ा पहुंची और ऐसा लगा कि सचमुच एक 'प्रभावी पुरुष' चला गया है, जिसकी मनस्विता, तेजस्विता, सरसता और उदारता कभी विस्मृत नहीं हो सकेगी।

आचारो विनयो विद्या प्रतिष्ठा तीर्थदर्शनम्।
निष्ठा वृत्तिः तपो दानं नवधा कुललक्षणम्॥

ये नव कुललक्षण तो उनमें थे ही—ये उनके व्यक्तित्व की भी विशेषताएं थीं।

भागीरथजी से मेरा प्रथम परिचय सन् १९४५ में मारवाड़ी विद्यालय की तुलसी-जयन्ती के समारोह में हुआ था। उन दिनों मैं कलकत्ता आया ही था। वह हमारी पहली मुलाकात थी। उस दिन उनका व्यक्तित्व ऐसा आकर्षक लगा कि मैं उनके निकट सम्पर्क में आता गया और मृत्यु पर्यन्त यह निकटता घनीभूत होती गयी। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ की योजना एवं उसके प्रकाशन के समय मैंने पहली बार उनके निकट सम्पर्क में रह कर कार्य किया। तब मैंने उनकी विवेक शक्ति और हृदय की विशालता के साथ-साथ उनकी आन्तरिक सरलता और गम्भीरता का प्रचुर अनुभव किया। अभिनन्दन ग्रन्थ के प्रस्तुतीकरण और समर्पण समारोह के दौरान कुछ अप्रत्याशित विरोध उपस्थित हो गये थे, परन्तु जिस औदार्य, शान्ति और धैर्य के साथ उन्होंने सारी स्थिति सम्भाली, वह उनकी सूझबूझ, वैचारिक दृढ़ता और गम्भीरता का प्रमाण थी। पूज्य दद्दा ने अभिनन्दन समारोह में दिए गए अपने वक्तव्य में भागीरथजी की प्रशस्ति में निम्नोक्त शब्द कहे थे—

'भगीरथ प्रयत्न' फलें आपके
ले आ सकते हैं यहां गंगा से प्रवाह जो

आप अनुवाद की ही योजनाएं कर दें
तो कह सकें हम सगर्व-विश्वभर के
वाङ्मय में जो है वह चुन लिया हमने
और जो हमारा अपना है अतिरिक्त है
उस रस धारा के समक्ष रौप्य धारा क्या।
लक्ष्मी सरस्वती का मंगल मिलन हो।

राष्ट्रकवि के मुख से कहे गये ये शब्द उनके व्यक्तित्व की गरिमा और महिमा के स्पष्ट प्रमाण है।

एक और घटना सुनाऊं। श्री कन्हैयालालजी चितलांगिया और मैं भागीरथजी से एक बौद्ध भिक्षु के साथ राजगृह में बौद्ध मन्दिर और कृषि भूमि के लिए आर्थिक सहायता प्राप्त करने के लिए गए। उस बौद्ध भिक्षु से श्री कन्हैयालालजी का अच्छा परिचय था, पर मेरा उतना नहीं। भागीरथजी ने उदारभाव से सहायता की पर न जाने क्यों चलते-चलते यह कहा, "लोढ़ाजी, इसके सदुपयोग को देख लीजिएगा।" पीछे पता चला कि वह बौद्ध भिक्षु गृहस्थ बन गया और समस्त राशि का दुरुपयोग हुआ। कुछ दिनों के अनन्तर जब मैंने और श्री चितलांगियाजी ने उन्हें वस्तुस्थिति से अवगत कराकर क्षमा मांगी, तब उन्होंने कहा कि यह न सदुपयोग है और न दुरुपयोग, केवल एक "प्रयोग" है। आप इसकी कुछ भी चिन्ता न करें। ये सब मनुष्य को नए-नए अनुभवों से युक्त करते हैं।

ऐसे अनेक संस्मरण उनके साथ जुड़े हैं। हमलोग लेक पर प्रातःकालीन चंक्रमण साथ-साथ करते थे और उनसे विविध विषयों पर विचार-विमर्श होता रहता था। वहीं मुझे उनके गम्भीर साहित्यिक अध्ययन के प्रचुर प्रमाण मिले—उसकी गहराई के। भारतीय संस्कृति और उसकी महान परम्परा में उनकी गहरी आस्था थी। राजस्थानी साहित्य और उसकी लोक संस्कृति के वे निष्णात और अधिकारी विद्वान थे पर उनका यह वैदुष्य आरोपित और कृत्रिम नहीं था। कबीर, तुलसीदास, सूरदास और अन्य मध्ययुगीन कवियों का उन्होंने अध्ययन किया था। कई बार वे उनके पद और दोहे सुनाते थे। एक बार उन्होंने निम्नोक्त दोहा सुनाया, जिसमें राधा के अनिन्द्य रूप एवं सौन्दर्य का अद्‌भुत वर्णन हुआ है—

सब तिथियन को चन्द्रमा देखि लेहु तुम आज।
धीरे धीरे खोलियो, घूंघट तुम ब्रजराज॥

उनका पुत्र सन्तोष कुमार हमारे हिन्दी विभाग का विद्यार्थी था। प्रारम्भ में कभी-कभी मैंने सन्तोष के साहित्यिक अनुराग और उसकी काव्य प्रतिभा की उनसे चर्चा की। वे सुनकर मुक्तभाव से हंस देते थे, पर कहते कुछ भी नहीं थे।

मेरी यह दृढ़ मान्यता है कि आचार व विचार की एकता और व्यक्तित्व की अन्तर्बाह्य स्वच्छता ही मनुष्य को महान बनाती है। सरलता का अर्थ निरभिमान और

निरहंकार तो होता ही है पर आत्म बल और निश्छल रागात्मक संश्लेष की वह शक्ति भी उसमें निहित रहती है, जो मनुष्य को विनम्र रखते हुए उसे महान बनाकर स्वस्थ मानसिकता प्रदान करती हुई व्यक्ति-मन की सामाजिक चेतना को प्रकृत भावभूमि से जोड़ती है। यहीं लोक मन का उदय होता है और उससे उद्भूत सच्ची लोक सेवा और लोक भावना का वास्तविक स्वरूप हमें दिखाई पड़ता है। श्रद्धेय भागीरथजी का व्यक्तित्व इसी लोक मन का प्रतीक था।

उन्होंने कलकत्ते के नवजागरण और सामाजिक अभ्युदय में जो अवदान दिया, वह सर्वविदित है। तुलसी पुस्तकालय जो १९४६ के दंगों में पूर्णतः नष्ट कर दिया गया उन्हीं के द्वारा स्थापित किया गया था। बंगीय हिन्दी परिषद् की स्थापना में उनका प्रमुख हाथ रहा। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के कार्यों में उन्होंने सदैव रुचि ली। अनेक साहित्यिक संस्थाओं से उनका सम्बन्ध था और यह सम्बन्ध अखिल भारतीय स्तर पर व्यापक और प्रतिष्ठित रहा। सस्ता साहित्य मण्डल में उनकी रुचि और उसके विकास में उनका योगदान सर्वविदित है। कलकत्ता विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में हलवासिया रीडरशिप की स्थापना उन्हीं के सत्संकल्प का परिणाम थी। विश्वभारती के हिन्दी भवन का भी श्रेय उन्हीं को देना चाहिए। यह तो हुई उनके साहित्य-प्रेम और लगन एवम् निष्ठा की वात। इतनी साहित्यिक संस्थाओं से सम्बद्ध रहकर भी वे कभी इसका गुमान नहीं करते थे। साहित्य सेवा, साधना और साहित्यकारों का सम्मान उनकी वह अनन्य विशेषता थी, जिसने उन्हें समस्त प्रख्यात साहित्यकारों का आत्मीय वना दिया। हिन्दी ही नहीं, समस्त भारतीय साहित्यकारों और विद्वानों के मध्य भी वे अत्यन्त समादृत थे। डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, डा० कालीदास नाग, पं० विधुशेखर भट्टाचार्य भागीरथजी की प्रशंसा करते थकते नहीं थे। उनका यह साहित्य-प्रेम भी नैसर्गिक था। साहित्य मानवीय सम्वेदनाओं को रचनात्मक अभिव्यक्ति और संकल्प प्रदान करता है। स्व० भागीरथजी का सम्पूर्ण जीवन इसी सम्वेदनशीलता का रचनात्मक और घनीभूत संकल्पात्मक जीवन था, जिसमें राग-विराग का भी विचित्र मणिकांचन संयोग विद्यमान था। राग स्वतः स्पष्ट है, पर विराग, हां, इस दृष्टि से वे निःस्पृह व वैरागी भी थे। सेवा को उन्होंने अपना साध्य गिना—साधन नहीं। वह उनकी प्रकृति का ही एक अंग थी। साहित्य-साधना जिन उच्चतर मानवीय मूल्यों की मांग करती है, भागीरथजी में वे सभी मूल्य स्वतः सिद्ध थे।

वे सांस्कृतिक जागरण के भी अग्रदूत थे। कलकत्ते की अनेक सांस्कृतिक संस्थाओं के वे सूत्रधार थे। नारी शिक्षा आन्दोलन और समाज सुधार की कई योजनाएं उन्होंने क्रियान्वित कीं। मैं व्यक्तिशः अच्छी तरह जानता हूं कि जब भी कोई व्यक्ति उनके पास अपनी दुःखभरी कहानी लेकर पहुंचता, वे मुक्त भाव और सहज सम्वेदनशीलता से उसके दुःख के भागीदार बनते थे। यह सब होते हुए भी उन्होंने कभी आत्मश्लाघा या प्रचार की भावना से कार्य नहीं किया और न उन्होंने अपनी करनी का ढिंढोरा ही पीटा। आत्मप्रचार से विरति उनके व्यक्तित्व और स्वभाव की वह अद्भुत विशेषता थी—जो आज अत्यन्त

दुर्लभ है। मुझे स्मरण नहीं आता कि उन्होंने कभी अपना सार्वजनिक अभिनन्दन कराया हो या किसी अभिनन्दन ग्रन्थ की योजना को स्वीकार किया हो। वे सही अर्थ में गांधीवादी थे। गांधीवाद मानवीय मूल्यों और नैतिक आदर्शों के साथ-साथ जीवन के सत्य और शिवत्व पर विश्वास रखता हुआ उसे लोकमंगल के सौन्दर्य से समन्वित करता है। लगता है, यही भागीरथजी का जीवन-दर्शन भी था—'परहित सरिस धर्म नहीं, भाई'। उनके जीवन का मूलमन्त्र कर्त्तव्य था, अधिकार नहीं, सेवा था, प्रभुता नहीं। भारतीय भाषा परिषद् की स्थापना का समस्त श्रेय उनको और श्रद्धेय सीतारामजी सेकसरिया को ही है। सारी योजना को पूर्ण कर वे तटस्थ भाव से एक साधक की भांति ही उससे जुड़े रहे और कभी इस बात का डंका नहीं पीटा कि यह सब उनकी चेष्टा और दूरदर्शिता का ही परिणाम था। सौजन्य, सारल्य और सारस्वत जीवन का इससे अधिक और क्या प्रमाण हो सकता है?

'प्रकृति, खलु सा महीयसां सहते नान्य समुन्नति चया'
(किरातार्जुनीय)

गर्व दूसरों की उन्नति नहीं देख सकता। भागीरथजी अपनी नहीं, दूसरों की उन्नति देखते थे और इसी से वे सभी अर्थ में श्रद्धास्पद थे।

—: o :—

वरिष्ठ लेखक तथा पत्रकार

श्री गौरीशंकर गुप्त

भागीरथ-काम

भागीरथ कानोड़िया नहीं व्यक्ति का नाम।
संस्था से बढ़कर किया जिसने अनुपम काम ।।
धन्य भगीरथ धन्य तुम धन्य तुम्हारा नाम।
मर कर भी तुम अमर रहो, अमर भगीरथ काम ।।

—:०:—

प्रसिद्ध साहित्यकार, भारतीय भाषा परिषद के निदेशक

श्री प्रभाकर माचवे

'बहता पानी निर्मला' के लेखक

स्व० भागीरथजी के निकट सम्पर्क में आने का सौभाग्य मुझे बहुत कम मिला। एक बार गांधी शताब्दी वर्ष में मैं, १९६९ में कलकत्ता आया था। तब उनके दर्शन किये थे। फरवरी २०, १९७९ से इधर कलकत्ते में आया तो जिस संस्था से मैं जुड़ा हूं उस भारतीय भाषा परिषद के वे उपाध्यक्ष थे, इस नाते उनसे सम्बन्ध आता रहा। पर इधर वे अस्वस्थ ही चल रहे थे और परिषद भवन के उद्घाटन के समारोह के बाद वे बहुत कम हमारे आयोजनों में आ पाये और आते भी थे तो मौन मुस्कराकर रह जाते थे। यह उनके स्वभाव का एक सहज गुण था। सबको अच्छी तरह से और सूक्ष्मता से देखते थे। उनकी निरीक्षण-परीक्षण शक्ति अद्भुत थी। निर्मल पानी में जैसे अपने आसपास का प्रतिबिम्ब बहुत स्वच्छ रूप से पड़ता है। वैसे ही उनका हृदय भी एक 'आदर्श' (जिसका संस्कृत में एक अर्थ 'दर्पण' भी होता है) था।

अब मैं जब उस व्यक्ति को बहुत निकट से नहीं जानता था, पर जिनके बारे में मैंने आदरणीय सीताराम सेकसरिया से लगाकर छोटे से छोटे कार्यकर्ता और लेखक से इतनी बातें सुनी हैं, उन गुणों का आकलन, उनकी दो पुस्तकों 'बहता पानी निर्मला' और 'राजस्थानी कहावत कोश' के द्वारा करता हूं तो इस बात की पुष्टि ही होती है। सबसे पहली बात तो यह है कि भागीरथजी बहुत सरल-चित्त, सम्वेदनशील, सहृदय और सर्वहितरत सेवाभावी सज्जन थे। यह बात उनकी भाषा और शैली से व्यक्त होती है। उनकी भाषा गांधी-युग के अनेक लेखकों और कार्यकर्ताओं की तरह सादगी पसन्द थी। उसे अलंकरण और शब्द-बहुलता से एकदम घृणा थी। ऐसी कृत्रिमता उनके सहज विचार-व्यवहार में आ ही नहीं सकती थी। 'बहता पानी निर्मला' के 'दो शब्द' इस दो टूक और निर्व्याज भाव के उत्तम उदाहरण हैं।

जो व्यक्ति जिस प्रदेश, अंचल या भूमि से निर्मित होता है, उससे उसका सम्बन्ध कमल और कमल-नाल का सा होता है। वहीं से वह व्यक्ति अपना सारा पोषण और रस पाता है। परन्तु मानव-जीवन की विकास-गति ऐसी है कि बच्चा जैसे मां की गोद में सदा नहीं रह सकता—धीरे-धीरे उसे अपना कार्यक्षेत्र उस मूल भूमि या उत्स से दूर ले जाता है, उस मूल-बिन्दु के प्रति आकर्षण, अनुरक्ति और कभी-कभी अतिरिक्त आसक्ति भी बराबर बनी रहती है—वह चेतन से अचेतन में स्थान करती जाती है। इसी कारण से क्या पूर्व में और क्या पश्चिम में, अपने मूल स्रोतों की ओर साहित्य का पुनरावर्तन एक महत्वपूर्ण घटना और आन्दोलन माना गया है। गांधी-युग के भारत में, समाजवाद की ओर उन्मुख भारत में, यह स्रोतोन्मुखी धारा कई भाषा और साहित्य के उपासकों को 'पुनःग्रामांचल की ओर' ले गई। जैसे इस ग्रन्थ में, राजस्थानी लोक कथाओं का इतना दिलचस्प और अनूठा संग्रह, कहावतों के मूल में पायी गई मान्यताओं और विश्वासों का संकलन हुआ है; और इस पुस्तक की लोकप्रियता

देखिये कि देखते-देखते तीन संस्करण हो गये; वैसा ही कार्य भारत में अफ्रीका से गांधी के आने के बाद दूसरे दशक से अब तक, बराबर चला आ रहा है अलग-अलग रूपों में।

मुझे कुछ अन्य भारतीय भाषाओं में समानान्तर कार्यों की याद आ रही है, पंजाब में देवेन्द्र सत्यार्थी ने 'मैं हूं खानाबदोश' लिखा, असम में (स्व०) डा० विरिंचि कुमार बरुआ ने इसी तरह चा-बागानों में जाकर वहां के मजदूरों की भाषा और गानों को अपने उपन्यासों में उतारा; बंगाल में तो बड़े पैमाने पर पूर्व और पश्चिम दोनों बंगालों में इस तरह के लोक-कथा संग्रह, लोकगीतों के संग्रह किये गये—इन्हीं के प्रभाव क्षितिमोहन सेन के संस्कृति विषयक अध्ययनों और रवीन्द्रनाथ की कविता पर भी मिलते हैं; उड़ीसा में डा० कुंजविहारी दास ने इस तरह का बड़ा काम किया; आंध्र में मल्लिकार्जुन राव और उनकी 'किन्नर' पत्रिका ने, कर्नाटक में राघव अय्यंगार और शिवराम कारन्त ने; महाराष्ट्र में साने गुरुजी, कमलाबाई तिलक, दुर्गा भागवत, सरोजनी बाबर, प्रभाकर मांडे आदि ने, गुजरात में झवेरचन्द मेघाणी और मधुकर रांडेरिया आदि ने—ऐसी यह सूची बढ़ाई जा सकती है। हिन्दी की विविध क्षेत्रीय उपभाषाओं पर जो कार्य हुआ उसका पूरा ब्यौरा हिन्दी साहित्य के बृहद इतिहास में राहुल सांकृत्यायन द्वारा सम्पादित खण्ड में मिलता है। राजस्थानी में भी टेस्सीटोरी और टॉड, नरोत्तम स्वामी और सूर्यकरण पारीक से लगाकर डा० महेन्द्र भाणावत और आदर्शकुमारी जैन तक बड़ा काम हुआ है और हो रहा है।

परन्तु इस पुस्तक की विशेषता यह है कि लोक-प्रचलित कथाओं को बोध-कथा लोक-कथा, कहावतों की कथा, ऐतिहासिक कथा और मनोरंजक कथाओं में विभाजित कर प्रकाशित करने पर भी उनमें अंतःप्रवाह एक सा है। उस जनपद की विशेषताओं, की, जिन्हें सांस्कृतिक नृतत्व विज्ञान (कल्चरल·एन्थ्रोपौलाजी) में विशेष चरित्रों, 'टाइपों' और उनकी मनो-ग्रन्थियों का अध्ययन कहा जाता है, छटा देखते ही बनती है। वस्तुत: राजस्थान प्रदेश के समाज-मनोविज्ञान का अध्ययन करनेवालों के लिए यह एक बहुत ही उपयोगी सन्दर्भ-ग्रन्थ है।

मैं इतिहास का विद्यार्थी रहा हूं, और दर्शन शास्त्र का भी। मेरी मान्यता है इतिहास भूत को देखता है तो दर्शन भविष्य को—साहित्य वर्तमान में इन दोनों को जोड़नेवाली कड़ी है। अत: इतिहासवाली कहानियों के खण्ड में मुझे टोडरमल, घाघ, शाहजहां, अमरसिंह आदि के बारे में नयी जानकारी इन कहानियों को पढ़कर मिली। इतिहास केवल तिथि और घटनाओं की क्रमबद्ध सूची नहीं, लोक मानस में किसी भी ऐतिहासिक व्यक्ति का पड़नेवाला प्रतिबिम्ब (इमेज) भी उतनी ही महत्वपूर्ण वस्तु होती है। वह इससे स्पष्ट होती है।

हास्य-व्यंग का एक अध्येता और विनम्र हिन्दी लेखक होने के नाते अन्तिम खण्ड मुझे बहुत ही अच्छा जान पड़ा। इनमें नर्म-विनोद है। लोक-कथाकार कभी सीधे डंडेमार आलोचना नहीं करता, पर बड़ी 'कान्तासम्मत तदोपदेशयुजे' ढ़ंग से वह बनिया-बुद्धि पर चौबेजी पर या जमाई पर या स्त्री-सुलभ कमजोरियों पर रोचक समीक्षा प्रस्तुत करते जाता है। यह खण्ड अपने आपमें साहित्य को एक बड़ी देन है। और इसमें से भागीरथजी के विनोदप्रिय स्वभाव के भी दर्शन होते हैं। वे मन्द मुस्कुराकर बहुत सा कह डालते थे, जो लम्बे भाषणों से साध्य नहीं होता था।

उनकी स्मृति को प्रणाम।

—:०:—

राजस्थानी कवि

श्री कन्हैयालाल सेठिया

नमन

सतत कर्म-रत मूर्त भगीरथ
यथा नाम-गुण सुज्ञ नमन,
सेवा-कामी, सम परिणामी
गीता के स्थित-प्रज्ञ नमन,
ऊंचा चिन्तन, सादा जीवन
पीड़ित जन के बन्धु नमन
सत् के साधक, चित् आराधक
मर्यादा के सिन्धु नमन।

—: ० :—

प० बंगाल के प्रसिद्ध गांधीवादी नेता
स्व० अन्नदाप्रसाद चौधरी की पत्नी
श्रीमती हिरणबाला चौधरी

दीनन के हितकारी

भागीरथजी मेरे पति स्वर्गीय अन्नदाप्रसाद चौधरी के घनिष्ठ मित्र थे। मेरे पति ने अपने राजनीतिक जीवन के बाद खीरपाई, मेदिनीपुर में लोक सेवा समिति की स्थापना की तो भागीरथजी ने उन्हें पूरा सहयोग दिया। वह लोक सेवा समिति की संचालन समिति के एकदम प्रारम्भ से ही सदस्य रहे। हमारे बालक भवन (अनाथाश्रम) के संचालन में भी उन्होंने नाना प्रकार से मदद की। वह बालकों और हमारे विद्यालय की लड़कियों को वस्त्र दिया करते थे। हमारे इलाके की महिलाओं और पिछड़े वर्ग के निरन्तर लोगों के बीच शिक्षा और संस्कृति का प्रचार करने में उन्होंने गहरी दिलचस्पी ली।

समाज-सेवा और शिक्षा-प्रसार के कार्यों में उनकी सहायता की बरबस याद आती है और उनकी कमी महसूस होती है।

—:०:—

अ० भा० मारवाड़ी सम्मेलन के प्रधानमंत्री
श्री बजरंगलाल जाजू

अनूठा व्यक्तित्व

स्व० भागीरथजी कानोड़िया पिछली पीढ़ी के ऐसे व्यक्ति थे, जिनको अपनी प्रशंसा करने या करवाने की कभी भूख ही न रही। पिछले ५० वर्षों में वे कलकत्ते के मारवाड़ी समाज में एक शुभ नक्षत्र की तरह छाये रहे। आज का सार्वजनिक कार्यकर्ता उनसे सीख ले सकता है और उनके पद्-चिह्नों पर चल कर सेवा का आदर्श कायम कर सकता है।

काफी वर्ष पहले की बात है, एक ऐसा प्रसंग आ पड़ा था, जिसमें संगीन अभियोग लगाये जाने की बातें चल रही थीं। दुर्भाग्यवश मुझे भी एक गवाह के रूप में भागीरथजी कानोड़िया के सामने उपस्थित होने का अवसर मिला था। जिस शालीनता से, सहृदयता से उन्होंने सारी बात को सुना व समझा, वह मैं आज भी भूल नहीं सकता। उनके मन में दोषी के प्रति उतनी ही करुणा थी, जिसका कि वर्णन गीता में किया गया है। इसी तरह एक अन्य मामले में, जहां पर एक नव-विवाहिता को छोड़ दिया गया था, उन्होंने बहुत शान्ति से एवं अन्दर ही अन्दर सहायता करने की अनोखी भूमिका निभाई। आज जब हर व्यक्ति थोड़ा-सा कार्य करके भी अपना ढोल खुद पीटना चाहता है तब इस वातावरण में स्व० भागीरथजी कानोड़िया की याद एवं उनकी आवश्यकता महसूस हुए बिना नहीं रहती।

"सबहिं मानप्रद आप अमानी,
भरत प्राण सम मम ते प्राणी ॥"

विनम्रता के वह ज्वलन्त एवं मूर्तिमान उदाहरण थे। मैं विश्वास करता हूं कि उनकी जाति पृथ्वी पर बनी रहेगी, वरना समाज में एक बहुत बड़ा अभाव दृष्टिगोचर होगा।

—: ० :—

अ० भा० मारवाड़ी सम्मेलन के भूतपूर्व प्रधानमंत्री
श्री जगन्नाथप्रसाद जालान

जन-जीवन के अग्रणी पृष्ठपोषक

स्व० श्री भागीरथजी कानोड़िया कलकत्ते के जन-जीवन के लिए एक बहुत बड़ा सहारा थे। अपने नाम के अनुरूप ही राजस्थान के लिए तो वे भगीरथ ही सिद्ध हुए। राजस्थान जैसे जलाभाव-ग्रस्त प्रान्त में जल की अजस्र धारा प्रवाहित करने में उनका बहुत बड़ा योगदान रहा। इतना ही नहीं राजस्थान में शायद ही कोई ऐसा जन-हितैषी कार्य हुआ हो जिसमें भागीरथजी का हाथ न रहा हो।

सार्वजनिक कार्य हेतु मैं कई बार उनके सम्पर्क में आया और उन्होंने सदैव बड़े प्रेम के साथ हम कार्यकर्ताओं को अपनाया और उचित परामर्श दिया। जब-जब किसी सहयोग की कामना की गयी, उन्होंने सदैव अपना सहयोग प्रदान किया और हम लोगों का साहस बढ़ाया। आज उनको खोकर हम एक बहुत बड़े अभाव का अनुभव कर रहे हैं। इस अभाव की पूर्ति सम्भव प्रतीत नहीं होती। क्या कलकत्ता, क्या राजस्थान, सभी जगह के जन-जीवन के वे एक बहुत बड़े पृष्ठपोषक रहे। उनसे सारे सार्वजनिक क्षेत्र को सहारा मिलता रहा। परम पिता परमेश्वर से प्रार्थना है कि उनकी आत्मा को सद्गति प्रदान करें। सार्वजनिक जीवन उनका सदैव ऋणी रहेगा।

—:०:—

समाजसेवी, मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी के भूतपूर्व प्रधानमंत्री

श्री चिरंजीलाल केजड़ीवाल

युवा वर्ग के प्रेरक

मेरा पूज्य भागीरथजी से, जब से मैं रानीगंज (प० बंगाल, मेरा जन्मस्थान) से कलकत्ता सन् १९३६ में आया, तब से बड़ा निकट का सम्बन्ध रहा, यह मेरा बड़ा सौभाग्य था। पू० भागीरथजी से, मेरे मामाजी स्व० केदारनाथजी पाडिया (पिलानी निवासी) एवं मेरे श्वसुर स्व० बद्रीदासजी खेमानी (मंडावा-राजस्थान निवासी) के विशिष्ट मित्र होने के नाते, मुझे असीम स्नेह प्राप्त हुआ एवं उनकी सदैव बड़ी कृपा रही। सामाजिक एवं राजनैतिक विषयों पर ही उनसे सलाह-मशविरा करने का अवसर मुझे अधिक प्राप्त हुआ। उस समय पूज्य भागीरथजी, पू० वसन्तलालजी मुरारका, पू० सीतारामजी सेकसरिया, पू० रामकुमारजी भुवालका आदि ही समाज-सुधार एवं समाज-कल्याण एवं राजनैतिक क्षेत्र में मारवाड़ी समाज के ही नहीं बल्कि देश के अग्रगण्य नेताओं में से थे। मारवाड़ी समाज का शिक्षित युवा वर्ग इनकी दैनिक गतिविधियों से बड़ा प्रेरित होता था। इन दोनों क्षेत्रों में कार्य करने के लिए मुझे पू० भागीरथजी ने बड़ा प्रोत्साहित किया। रानीगंज कलकत्ता के बिल्कुल नजदीक होने के कारण एवं वहां मारवाड़ी समाज के लोगों की बड़ी जन-संख्या होने के कारण पू० भागीरथजी की रानीगंज के प्रति विशेष दिलचस्पी रही एवं वहां के कार्यकर्ताओं से गहरा सम्बन्ध रहा। प्रत्येक जन-हितकारी कार्यों में उनका हर तरह से पूरा सहयोग प्राप्त हुआ। रानीगंज के मारवाड़ी समाज के लोग एवं उस क्षेत्र के अधिवासी उनके हृदय से आभारी हैं।

चूंकि मैं कलकत्ता ही बरावर रहा, उनके साथ पत्र-व्यवहार का अवसर कभी प्राप्त नहीं हुआ। ज्यादातर उनके निवासस्थान या कार्यालय में ही समय-समय पर उनसे सलाह-मशविरा करने के लिए उनकी सेवा में उपस्थित हुआ करता था। उनका विनयशील एवं हल्की सी मुस्कान से भरा चेहरा, किसी भी दुःखी व्यक्ति की मदद करने के लिए तत्परता, आदि सब बातें मुझे जीवन भर आनन्द देती रहेंगी एवं दूसरों के लिए जीवन जीने का एक मात्र उद्देश्य रखने में सहायक रहेंगी।

—:०:—

श्री रमेशचन्द्र ओझा

राजस्थान के सेवक

आज से प्रायः चालीस वर्ष पूर्व सन् ३८-३९ में राजस्थान में भीषण दुर्भिक्ष पड़ा था। मवेशी तड़प-तड़प कर मर रहे थे और गरीब-भूखे-किसान बेकारी और भुखमरी के शिकार हो रहे थे। उन दिनों राजस्थान छोटी-छोटी रियासतों में बंटा हुआ था। अलग-अलग राज्यों में अकाल राहत कमेटियां बनी थीं। शेखावाटी में जयपुर रियासत का शासन था। भीषण दुर्भिक्ष की समस्या को रियासती सरकार हल करने में समर्थ नहीं थी। शेखावाटी के प्रवासी राजस्थानी सम्वेदनशील व्यक्तियों का ध्यान इस ओर गया और उन्होंने समस्या को हल करने का मार्ग ढूंढ़ने का प्रयत्न किया। श्री भागीरथजी कानोड़िया इन व्यक्तियों में अग्रणी थे। उन दिनों राजस्थान में खादी कार्य अखिल भारत चरखा संघ की राजस्थान शाखा द्वारा चलाया जा रहा था जिसका मुख्य कार्यालय गोविन्दगढ़ (जयपुर) में था और श्री वलवन्त देशपाण्डे उसके मन्त्री थे। श्री कानोड़ियाजी ने अपने ग्राम मुकुन्दगढ़ और आसपास के क्षेत्र के गरीव वेकार लोगों की वेवसी को देख कर उन्हें काम देने और इसके साथ-साथ चरखे के माध्यम से उनका भरण-पोषण करने में मदद पहुंचाने की शुरुआत की। चरखा संघ के कार्यकर्ता श्री रामेश्वर अग्रवाल इस काम में सक्रिय हुए और श्री चिरंजीलाल शर्मा को इस काम के लिए मुकुन्दगढ़ में वैठाया। श्री कानोड़ियाजी की इस अगुआई ने शेखावाटी के विभिन्न कसबों के कई अन्य सेठों को भी प्रेरित किया और उन्होंने भी कानोड़ियाजी की तरह इस कार्य में पूंजी लगा कर कताई केन्द्रों के माध्यम से गांवों की भुखमरी-बेकारी को कम करने में सहयोग देना प्रारम्भ किया।

सन् १९५०-५१ की बात है। राजस्थान सेवक संघ की बैठक जयपुर में हो रही थी। स्व० ठक्करबापा उसके अध्यक्ष थे किन्तु उनकी अस्वस्थता के कारण स्व० श्रीकृष्णदास जाजू ने बापा की अनुपस्थिति में बैठक की अध्यक्षता की थी। राजस्थान सेवक संघ के निर्माण के बाद जब उसका व्यापक स्वरूप बनने लगा तो कानोड़ियाजी ने खुले हाथ इस काम में सहयोग-सहायता प्रदान की थी। हां, तो इस बैठक में भाग लेने के बाद जब श्री राधाकिशनजी बजाज ने सहज भाव से मेरा परिचय कराते हुए बताया कि यह भाई मेवाड़ में गरीब ग्रामीण लोगों की सेवा में लगे हैं, दोनों पति-पत्नी अपने ढंग से काम कर रहे हैं। स्नेह और सौहार्द भाव से उन्होंने काम की संक्षेप जानकारी ली और तत्काल ही कहा कि आपको ढाई हजार रुपये भिजवा रहा हूं, इनमें पांच सौ संस्था की सहायता हेतु तथा दो हजार आपकी संस्था के कार्य चलाने हेतु पूंजी स्वरूप। बाद में इन दो हजार रुपयों को भी उन्होंने सहायता स्वरूप प्रदान कर दिया। यही इन पंक्तियों के लेखक का उनसे प्रथम परिचय था।

राजस्थान हरिजन सेवक संघ की अध्यक्षता ग्रहण करने के साथ ही उन्होंने इस काम को व्यापक और सघन रूप से चलाने में तथा संघ को सुनियोजित रूप से गठित करने में तत्कालीन हरिजन सेवक संघ के मन्त्री श्री भंवरलाल मदादा को

प्रोत्साहित किया। संघ की ओर से एक हरिजन छात्रावास शाहपुरा, नगर (मेवाड़) में चालू किया। उन दिनों ठक्करबापा का देहावसान हो गया था और पं० वियोगी हरिजी अखिल भारतीय हरिजन सेवक संघ के अध्यक्ष थे। उसी वर्ष शाहपुरा के हरिजन छात्रावास के निरीक्षण का कार्यक्रम बना। कानोड़ियाजी और वियोगीजी ने छात्रावास को देखा। काम-काज, छात्रों की दिनचर्या, प्रार्थना, सामूहिक कताई और भोजनादि की व्यवस्था से बड़े प्रभावित हुए। स्थान के अभाव को अपनी आंखों तथा छात्रों से उनकी कठिनाइयों को समझने के बाद कानोड़िया साहब ने मुझे कलकत्ता आने को कहा और आश्वस्त किया कि बच्चों के रहने, तथा संस्था के लिए मकान की व्यवस्था के लिए वहां आने पर कुछ मदद हो जायेगी। कलकत्ता में कानोड़ियाजी ने छात्रावास भवन के लिए आवश्यक राशि एकत्र करवाने में अपनी ओर से शुरुआत करके अच्छा सहयोग प्रदान किया। हलवासिया ट्रस्ट के व्यवस्थापक श्री गणेशमल वैद ने पूरा समय देकर मेरा सहयोग किया था।

राजस्थान की रियासतों का एकीकरण हुआ। विभिन्न रियासतों के स्थानीय राजनैतिक संगठनों-संस्थाओं के, जो उस समय प्रजामण्डलों अथवा लोक परिषदों-प्रजा परिषदों के नाम से बनी हुई थी, अलग-अलग स्थानीय नेता गण थे। जयपुर रियासत के श्री हीरालाल शास्त्री, जोधपुर-मारवाड़ के श्री जयनारायण व्यास, मेवाड़ के श्री माणिकलाल वर्मा, सिरोही के श्री गोकुलभाई, अजमेर के ब्रिटिश इलाके में कांग्रेस के स्थानीय लोगों में गांधी विचारक और बापूभक्त दा, साहब हरिभाऊ उपाध्याय थे। जब तक देश आजाद नहीं हुआ था, तब तक ये सब सम्मानीय जन-नेता मिल जुल कर अपनी-अपनी स्थानीय समस्याओं पर विचार करते और सामूहिक रूप से उन्हें हल करने का उपाय ढूंढ़ते। देश की आजादी के बाद रियासती सीमाओं की दीवारें टूट गईं और विविध रियासतों का अस्तित्व समाप्त होकर राजस्थान एक प्रदेश हो गया तो जो राजनीतिक संगठन विभिन्न नेताओं के अलग-अलग क्षेत्रों में विविध नामों में चलते थे, वे भी समाप्त होकर प्रदेश कांग्रेस में मिल गए। संगठन जहां एक हुआ, राज्य सत्ता भी राजाओं और सामन्तों के हाथों से जनता अर्थात् कांग्रेस संगठन के पास आई, तो इन जन नेताओं की एकरूपता में दरारें लेकर भी आई। ये लोग अपनी-अपनी तानने लगे। इतना उल्लेख करना आवश्यक समझता हूं कि इन सभी विभिन्न क्षेत्रीय नेताओं और कार्यकर्ताओं का सम्पर्क निष्पक्ष रूप से श्री भागीरथजी के साथ बना रहा। श्री कानोड़ियाजी की ओर से सभी लोगों के प्रति आदर भाव रहा। वे सभी को योग्य और उपयोगी मानकर सबका सम्मान, सहयोग करते रहे।

राजस्थान के रचनात्मक सेवाकार्यों में उनका जो भरपूर योगदान रहा है वह एक प्रकार से अद्वितीय माना जायगा। वे जिनको भी जो सहायता प्रदान करते, सोच समझ कर विचारपूर्वक देते और सत्पात्र एवं उपयोगी कार्य के लिए अपने हाथों को मुक्त कर के देते थे। उनके निधन से जो अभाव राजस्थान की रचनात्मक सेवा भावी संस्थाओं के लिए हो गया है उसकी पूर्ति होना कठिन प्रतीत होता है। उनकी पावन स्मृति में एक विनम्र रचनात्मक कार्यकर्ता की यह हार्दिक श्रद्धांजलि।

—:०:—

प्रसिद्ध व्यवसायी

श्री आर० बी० शाह

कुसुमादपि कोमल हृदय

स्वर्गीय भागीरथजी कानोड़िया को मैं पिछले ३५ वर्षों से जानता था। उनसे मेरा प्रथम परिचय एक उद्योगपति एवं व्यवसायी के रूप में हुआ और बाद में परोपकारी एवं समाज-सेवक के रूप में। वह एक खरे व्यक्ति थे। उनकी जिस बात ने मुझे सबसे ज्यादा प्रभावित किया, वह यह थी कि वे व्यापारिक कार्यों में हमेशा ईमानदारी, सत्यता और स्पष्टवादिता पर जोर देते थे। वह यह भी आशा करते थे कि उनके कर्मचारी और सम्बन्धी भी व्यवसाय में इन सिद्धांतों का अनुकरण करेंगे और इस मामले में मामूली चूक होने पर भी वह उन्हें बख्शते नहीं थे।

दानी तो वह बहुत बड़े थे। उनकी तिजोरी हमेशा खुली रहती। सत्कार्यों में सहर्ष दान देते, खुद ही नहीं देते, दूसरों से भी दिलवाते। जिस किसी भी सामाजिक संस्था को उन्होंने संभाला, उसे पूरी निष्ठा के साथ संभाला और उसे अपनी व्यापारिक प्रतिभा का पूरा लाभ दिया। कई बार कितनी ही संस्थाओं को, चाहे वह स्कूल का छात्रावास हो या कोई राहत-कार्य हो या श्री रामकृष्ण मिशन की कोई संस्था हो, उन्होंने अपनी व्यक्तिगत गारण्टी पर ऋण दिलाया ताकि वह संस्था अपने पैरों पर खड़ी हो सके। कोमल हृदय तो इतने थे कि किसी के भी कष्ट की बात सुनते ही उनका हृदय द्रवित हो उठता था। कलकत्ता और भारत के अन्य स्थानों में उनके द्वारा खड़ी की गयी कई संस्थाएं उनकी निःस्वार्थ सेवाओं एवं उदाराशयता की जीवित स्मारक हैं। उनका जीवन नयी पीढ़ी के लिए, व्यापार हो या सामाजिक सेवा, दोनों ही क्षेत्रों में प्रकाश स्तम्भ है।

—: ० :—

बम्बई के प्रतिष्ठित समाजसेवी और व्यवसायी

श्री गुरदयाल बेरलिया

प्रेरणादायक व्यक्तित्व

स्व० भागीरथजी कानोड़िया से मेरा परिचय कलकत्ता से ही था और उनका स्नेह मुझे बराबर ही समय-समय पर मिलता रहा। सामाजिक जीवन में वह बड़े ही पक्के थे, यदि किसी को समय दिया तो उस पर वह अडिग रहते थे। मैं यह अवश्य कह सकता हूं कि जिस भी व्यक्ति ने उन्हें पत्र लिखा होगा उसका जवाब उसे समय से तथा समस्या के निराकरण सहित ही मिला होगा। आज शिक्षायतन जैसी लड़कियों की जो संस्था कलकत्ता में चल रही है उसके संस्थापकों में श्रद्धेय श्री सीतारामजी सेकसरिया तो हैं ही परन्तु उसके पीछे स्व० कानोड़ियाजी की दूरदर्शिता भी है। वह यह मानते थे कि लड़कियों का सुशिक्षित होना समाज में परम आवश्यक है।

समृद्धि की चर्चा चलने पर वह कहा करते थे कि समृद्धि कोई लेकर नहीं आता वह तो अर्जित की जाती है। वही समृद्ध व्यक्ति सार्थक है जिसकी कमाई हुई समृद्धि समाज के कार्य में लगे। अल्फ्रेड नोबल के जीवन की वह कई बार चर्चा किया करते थे कि प्रति वर्ष विज्ञान, साहित्य आदि क्षेत्रों में महत्वपूर्ण सेवा करनेवालों को दिया जानेवाला नोवल पुरस्कार आज संसार का सबसे बड़ा पुरस्कार है। नोवल पुरस्कार से तो अधिकांश लोग परिचित हैं परन्तु उसके प्रवर्तक अल्फ्रेड नोबल का जीवनवृत्त जिन्हें मालूम है, वे जानते हैं कि उनके पिता एक जहाज में एक केबिन-ब्वाय थे। आगे चलकर उनकी रुचि विस्फोटक पदार्थों के आविष्कार की तरफ हुई तथा उसी में उन्होंने प्राण गंवा दिये। अब बच रहे अल्फ्रेड नोबल और उनकी विधवा मां, जिन्हें बड़े कष्ट और अभाव में अपने दिन गुजारने पड़े।

अल्फ्रेड भी हमेशा बीमार रहते थे लेकिन उनमें प्रचण्ड मनोबल था और इसी मनोबल के सहारे ही उन्होंने रोग तथा बीमारियों की कभी परवाह नहीं की तथा पुरुषार्थ और अध्यवसाय द्वारा इतनी सम्पत्ति अर्जित की कि उनकी गणना संसार के समृद्धतम व्यक्तियों में की जाने लगी। मरने तक उनके पास करोड़ों पौण्ड से भी अधिक की सम्पति हो चुकी थी, जिसके ब्याज से ही टैक्स आदि चुकाने के बाद छह लाख पौण्ड की विशुद्ध आय होती थी। अल्फ्रेड नोबल ने वह सारी सम्पति प्रतिवर्ष ऐसे पांच व्यक्तियों को पुरस्कृत करने के लिये दे दी जो मानवता की विशिष्ट सेवा में लगे हों। कानोड़ियाजी कहा करते थे कि यह पुरस्कार-परम्परा एक ओर जहां विभूतियों का सम्मान करती है, वहीं धनवान तथा सम्पन्न व्यक्तियों के लिये प्रेरणा-स्रोत भी है। संसार में जब तक मानव जाति रहेगी तब तक अल्फ्रेड नोबल 'नोबल पुरस्कार' के माध्यम से जीवित रहेंगे। भागीरथजी बराबर कहा करते थे कि व्यक्ति के कार्य

जीवित रहते हैं व्यक्ति नहीं। अतः आदमी वही सच्चा है जो समाज के लिये कुछ करता है। मेरा विशेष सम्पर्क स्व० श्री कानोड़ियाजी से टी० बी० सेनोटोरियम, सीकर को लेकर हुआ। उन्हीं की प्रेरणा से मैं सीकर (राजस्थान) भी गया। मैंने देखा कि वास्तव में इसके माध्यम से श्री बद्रीनारायणजी सोढाणी टी० बी० के रोगियों की बहुत बड़ी सेवा कर रहे हैं। स्व० श्री कानोड़ियाजी की प्रेरणा से बम्बई में टी० बी० सेनोटोरियम के लिये लाखों रुपया इकट्ठा हुआ तथा बम्बई के समृद्धशाली व्यक्ति भी अब सदन के काम में लगे हैं। मेरा विश्वास है कि इस संस्था के माध्यम से राजस्थानवासियों की ही नहीं देशवासियों की भी बहुत बड़ी सेवा हो रही है।

एक बार की घटना है उनसे मिलने के लिये कलकत्ता के कविराज रामाधीन शर्मा 'वशिष्ठ' और मैं साथ-साथ गये। कुशल-क्षेम पूछने के बाद स्व० श्री कानोड़ियाजी वशिष्ठजी से बोले कि कविराजजी आप अपने रोगियों को दवाएं कम देकर पथ्य-परहेज ही अधिक बताया कीजिये क्योंकि असली दवा तो पथ्य-परहेज ही है। वह कहने लगे कि इससे कविराजजी की और भी ख्याति बढ़ेगी क्योंकि लोग कहेंगे कि ये तो बिना दवा के ही रोगियों को ठीक कर देते हैं।

वह हमेशा ही कहा करते थे कि अभावग्रस्त दीन-हीन अवस्था से उठ कर समृद्धि और सम्पन्नता के शिखर तक पहुंचनेवालों की आज संसार में कमी नहीं है परन्तु समाज उन्हें ही याद करता है जो समाज के लिये कुछ करते हैं। अपने आस-पास बैठने वालों को तो प्रेरणा वह देते ही थे परन्तु कभी-कभी लेखनी के माध्यम से भी प्रेरणादायक प्रसंग लिखा करते थे। मेरी श्रद्धांजलि है कि उनकी आत्मा उनके परिवार वालों को और सामाजिक कार्यकर्ताओं को सतत् प्रेरणा देती रहे, जिससे उनके द्वारा लोक मंगल के लिए छेड़े गये कार्य पल्लवित तथा सुगन्धित होते रहें।

—: o :—

राजस्थानी एवं हिन्दी के कवि, फिल्मी गीतकार

श्री भरत व्यास

युग के भागीरथ

(१)

मन के सच्चे, धुन के पक्के,
रक्षक अपनी आन के
भारत-सेवक, वीर सिपाही
तुम थे राजस्थान के।

(२)

सादा जीवन, उच्च विचारक
सौम्य-सरलता की सूरत
मुख मण्डल पर सदा झलकती
'बापू' जैसी ही मूरत।

(३)

जिये राष्ट्र-हित, गये राष्ट्र-हित
तुम युग की स्वर्णिम रेखा
'नेता' बहुत मिले, पर तुमसा
'सेवक' कभी नहीं देखा।

(४)

जन सेवा के बृहत क्षेत्र हित
तुमने अपनी कसी कमर
मृत्यु मिटा नहिं सकती प्रियवर
तव "चरणों" के "चिन्ह" अमर।

(५)

पावनता की वही 'गंग' तुम
व्यक्ति नहीं थे, 'तीरथ' थे
लघु तन, किन्तु प्रयास प्रबल
तुम इस युग के 'भागीरथ' थे ॥

—: ० :—

प्रसिद्ध आय-कर विशेषज्ञ

श्री रामनिवास लखोटिया

विलक्षण मानव

श्री भागीरथजी कानोड़िया एक विलक्षण मानव थे। पिछले लगभग १९ वर्षों से उनसे मिलने एवं सामाजिक विषयों पर विचारों के आदान-प्रदान करने के मुझे कई अवसर प्राप्त हुए। उनके सादगीपूर्ण एवं सेवाभावी व्यक्तित्व ने मुझे सर्वदा प्रभावित किया।

दो-तीन वर्ष पहले की बात है कि एक दिन सबेरे-सवेरे मेरे चेम्बर की घंटी टन-टन करके बज उठी। फोन उठाने पर दूसरी ओर से आवाज सुनाई दी—'मैं भागीरथ कानोड़िया बोल रहा हूं।' मुझे विश्वास नहीं हुआ कि फोन के दूसरी ओर महान समाजसेवी एवं कलकत्ते के प्रसिद्ध उद्योगपति श्री भागीरथजी कानोड़िया हो सकते हैं। कुछ क्षण फोन पर मैं हतप्रभ-सा निस्तब्ध रहा। पुनः आवाज आई—'मैं भागीरथ कानोड़िया बोल रहा हूं। रामनिवासजी, क्या आपने मुझे पहचाना नहीं?' मुझे तब पूरा विश्वास हो गया कि फोन के दूसरी तरफ स्वयं श्री भागीरथजी कानोड़िया ही थे। मैंने बड़े आदरपूर्वक कहा—'नमस्कार, भागीरथजी! फरमाइये मेरे योग्य क्या सेवा है? आज आपने कैसे याद किया?' चूंकि उनका पहली बार फोन आया था इसलिए उनका उत्तर मिलने के पहले क्षण भर के लिए मन में यह विचार आया कि ऐसी कौन सी बात हो सकती है कि जिसके कारण श्री भागीरथजी कानोड़िया को चला कर फोन करना पड़ा है। मेरे भ्रम का निवारण करते हुए उन्होंने कहा—'लखोटियाजी, आप तो लायन्स क्लब के डिस्ट्रिक्ट गवर्नर हैं। बड़ी-बड़ी सेवा का काम करते हैं। कुछ गरीब-असहाय व्यक्तियों की भी सेवा करनी चाहिए। मेरे पास एक गरीब टी० बी० का मरीज आया है। उसके पास पैसे नहीं हैं, आपसे मैं कहता हूं कि इसके लिए दवाई आदि का इन्तजाम किसी लायन्स क्लब से करवा दें। मैं इसे आपके पास भेज रहा हूं।'

मैं मन ही मन सोचने लगा कि श्री भागीरथजी स्वयं इतनी सेवा के कार्य करते हैं और स्वयं बहुत ही धनाढ्य व्यक्ति हैं। इतनी छोटी सी बात के लिए उन्होंने मुझे क्यों फोन किया? इस विस्मय को अन्दर ही अन्दर छिपाये रखना चाहता था। लेकिन मैं अपनी शंका को छिपा नहीं सका और हृदय के भीतर छिपे हुए विस्मय के निवारणार्थ मैंने उनसे पूछ ही डाला—'भागीरथजी आप क्षमा करेंगे, मेरे मन में एक विचार—या विस्मय कहिए—उठ रहा है। इतनी छोटी सी सेवा के लिए जो आप स्वयं ही कर सकते थे, आप स्वयं नहीं करके यह छोटा सा सेवा-कार्य आपने मुझे सौंपा है? यह कैसे?'

फोन के उस पार उनकी धीमी-धीमी हंसी सुनाई दी। फिर. रहस्योद्घाटन करते हुए श्री भागीरथजी कानोड़िया बोले—'आपका प्रश्न पूछना वाजिब है। मेरे सामने हर समय सैकड़ों गरीब एवं असहाय व्यक्तियों की अर्जियां और मांगें रहती हैं। मैं स्वयं चाहूं तो यह कार्य अपने चैरिटी ट्रस्ट से करवा सकता हूं। लेकिन मैं अधिकाधिक व्यक्तियों को सेवा-कार्य में प्रेरित करना चाहता हूं। इसलिए रोज किसी न किसी को फोन कर कोई न कोई छोटा सा सेवा का कार्य उन्हें सुपुर्द कर देता हूं।'

धन्य हैं श्री भागीरथजी कानोड़िया और उनका महान् सेवा-कार्य। श्री भागीरथजी कानोड़िया के द्वारा स्वयं फोन करने का कारण जानने पर उनके प्रति मेरे मन में और श्रद्धा जाग गई। उनके द्वारा सौंपा हुआ छोटा सा सेवा-कार्य तो अवश्य ही पूरा कर दिया गया और वह बात आई-गई हो गयी। लेकिन श्री भागीरथजी कानोड़िया के चरित्र का यह विशेष पहलू—सेवा के लघु कार्यों द्वारा अधिकतर लोगों को इस प्रकार प्रेरित करना, मुझे पहली बार ज्ञात हुआ। चूंकि श्री भागीरथजी कानोड़िया इस प्रकार के सेवा-कार्यों का प्रचार नहीं करते थे, इसलिए उनके अनगिनत प्रशंसकों को उनके जीवन-चरित्र के इस विशेष पहलू के बारे में जानकारी देने की भावना से मैंने यह संस्मरण लिखा है। श्री भागीरथजी कानोड़िया का सादा एवं सेवा से ओत-प्रोत जीवन वर्षों तक मानव समाज के लिए प्रेरणा बिन्दु बना रहेगा।

—:०:—

दैनिक नवज्योति के संचालक

श्री दुर्गाप्रसाद चौधरी

सार्वजनिक संस्थाओं के प्राण

भाई भागीरथजी कानोड़िया से मेरा वर्षों सम्पर्क रहा है। वे एक मिलनसार, भले और दयालु व्यक्ति थे। मुझे मालूम है कि उनके पास राजस्थान का कोई भी सार्वजनिक सेवक मदद के लिये कलकत्ता आता था तो वे उसे कभी खाली हाथ नहीं लौटाते थे। बल्कि मैं तो यहां तक जानता था कि राजस्थान की कोई भी सार्वजनिक संस्था ऐसी नहीं होगी जिसे उन्होंने समय-समय पर सहायता न दी हो। अखबार हो चाहे कांग्रेस हो, चाहे शिक्षक-संस्था हो चाहे धार्मिक-संस्था हो, उसे हमेशा सहायता देते रहते थे। गो सेवा, अकाल, बाढ़, आदि में आपने काफी सहयोग दिया है। सांवली में टी० बी० के अस्पताल में आपने काफी मदद की है। ऐसी ही और भी संस्थाएं हैं जिनसे उनका व्यक्तिगत सम्बन्ध रहा है और जिनकी वे सहायता करते रहते थे। राजस्थान की सार्वजनिक संस्थाएं उनका कभी अहसान नहीं भूलेंगी।"

—:०:—

समाजिक कार्यकर्ता

श्री कन्हैयालाल दूगड़

जन-सेवा के प्रखर धुनी

मारवाड़ी समाज के उज्जवल रत्न, श्रीमान भागीरथजी कानोड़िया उन विशिष्ट सेवा भावी लोगों में से थे जिनको जन-सेवा की तीव्र धुन थी। किसी जाति, वर्ग, धर्म, मान्यता और क्षेत्र विशेष का ध्यान किये वगैरह मानव मात्र की सेवा उन्हें अभीष्ट थी। जहां भी कष्ट हो, वहीं सेवा कार्य में जुट जाना उनका स्वभाव बन गया था।

जब से उनके सम्पर्क में आया तब से मैंने देखा कि वे स्थानीय कार्यकर्ताओं को साथ लेकर जैसे-तैसे सहायता कार्यों को सम्पादित करवा ही लेते थे। हमारे सरदार शहर से कुछ दूर एक ग्राम में पानी खारा था। जल-कष्ट से लोग बहुत दुखी थे, मैंने कानोड़ियाजी से वहां की स्थिति बता दी और उन्होंने तुरन्त आर्थिक सहयोग देकर पहले वहां मीठे जल के स्रोत का पता लगाया और फिर एक पक्का कूप बनवा कर समस्या को हल कर दिया।

इसी प्रकार एक नहीं, अनेक बार अनेक कार्यों में उनका योगदान अनेक रूपों में होता रहता था। मिलनसारिता, व्यवहार-कुशलता, मिष्टभाषिता आदि उनके गुणों से तो निकट आने वाले सभी लोग प्रभावित थे ही, पर सेवा के गुण से उन्होंने बहुत बड़े जन-समाज पर अपनी अमिट छाप छोड़ी है। मुझ पर उनका बहुत स्नेह था। हमारी गांधी विद्या मन्दिर संस्था को वे जी जान से चाहते थे और सहयोग देते थे। उनके चले जाने से समाज को अपूरणीय क्षति हुई है। मैं आशा करता हूं कि उनके परिवार के लोग उनकी परम्परा को कायम रखेंगे।

—: ० :—

प्रसिद्ध वैद्य, सामाजिक कार्यकर्ता

कविराज रामाधीन शर्मा 'वशिष्ठ'

श्रद्धा और विश्वास के धनी

श्री भागीरथजी कानोड़िया के जीवन में मुझे जो देखने को मिला वह संस्मरण के रूप में यहां प्रस्तुत कर रहा हूं।

श्री कानोड़ियाजी टी० बी० सेनेटोरियम सीकर (राजस्थान) के अध्यक्ष थे। एक बार मैं तथा श्री रामनिवास ओझा, एडवोकेट उनसे मिलने तथा एक टी० बी० के रोगी को सीकर भिजवाने के लिए चिट्ठी लेने के लिए गये। मैंने श्री रामनिवासजी ओझा का जब परिचय कराया तो वह मुस्कराते हुए बोले कि यह जब छात्र थे तभी से मैं जानता हूं। इस पर श्री ओझाजी ने कहा कि वह छात्र जीवन में दो-तीन बार उनसे मिले थे तथा उनके चाचाजी से भागीरथजी का अच्छा सम्बन्ध था। यह था उनकी स्मरण-शक्ति का चमत्कार। उस टी० बी० के रोगी के लिए उन्होंने चिट्ठी भी लिखी तथा यह भी कहा कि यदि उसे पूर्ण श्रद्धा और विश्वास रहेगा तो वह अवश्य ठीक हो जायगा। दवाइयों से अधिक पथ्य और विश्वास रोगी को फायदा करता है।

मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी का मामला हो या अन्य किसी संस्था का, वह बड़े स्नेह से उसे सुनते थे तथा सुलझाते थे। १९७९ मई की घटना है—एक जगह श्री कानोड़ियाजी को किसी विशेष व्यक्ति ने कहा कि मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी के इस चुनाव में तो इस बार कविराज रामाधीन शर्मा 'वशिष्ठ' निर्विरोध सभापति हो गये हैं, उन्होंने तुरन्त ही कहा कि कविराजजी तो योग्य हैं। सोसाइटी के संविधान के अनुसार उसका कोई भी सदस्य सभापति हो सकता है। यह थी उनकी उदारता तथा निष्ठा समाज के प्रति।

मैं कई बार उनसे विशेष समारोहों में तथा अकेले में मिला परन्तु जब भी मिला कुछ न कुछ उनसे पाया ही। श्री गुरुदयालजी बरेलिया भी उनके कई संस्मरण बराबर ही सुनाया करते हैं। श्रद्धेय श्री सीतारामजी सेकसरिया, श्री कन्हैयालालजी सेठिया भी कई घटनाएं उनके जीवन काल की प्रसंग चलने पर बताते रहते हैं। इन घटनाओं से पता चलता है कि उनकी हर क्षेत्र में सफलता के रहस्य के मूल में श्रद्धा, श्रम और विश्वास ही था जिन्होंने उन्हें सतत् आगे बढ़ाया।

श्रद्धा और विश्वास को आत्मसात् किया था स्व० श्री भागीरथजी कानोड़िया ने। इसलिए वह जीवन पर्यन्त विकासोन्मुखी हो रहे। उनका जीवन अन्यों को प्रेरणा देता रहेगा।

—: ० :—

राजस्थानी प्रचारिणी-सभा के मंत्री,
अ० भा० मारवाड़ी सम्मेलन के उप प्रधानमंत्री
श्री रतन शाह

अनेक में एक : एक में अनेक

यह संस्मरण मुझे बहुत पहले लिखना था परन्तु यह वस्तुपरक बन सके, भावनाओं का अतिरेक न हो, इसलिये जान-बूझ कर देर करता रहा। सुन रखा है समय गुजरने के साथ घाव भर जाते हैं। कहते हैं रिक्तता प्रकृति के नियमों के प्रतिकूल है, अतः दूसरा व्यक्ति आ जाता है वहां। समय गुजरा है, गुजरेगा। समाज में यह रिक्त स्थान कैसे भर रहा है, यह टकटकी लगाये देख रहा हूं। दस महीने कोई लम्बी अवधि नहीं है जिसमें ये दोनों काम हो जाते, परन्तु यह अवधि छोटी भी नहीं है। राजस्थान का शोधकर्त्ता आया, किसने उसके सिर पर हाथ रखा—किसने उसकी असली पीड़ा का अर्थ समझा ? निराश होकर चला गया, क्योंकि भागीरथजी का स्थान कोई दूसरा ले नहीं सकता। छोड़िये ! राजस्थान का जन-इतिहास लिखना चाहनेवाला मूल तथ्यों की जानकारी के लिये कलकत्ता अब नहीं आना चाहता क्योंकि भागीरथजी अब नहीं हैं। गांवों और गुआड़ों की गायों को ही नहीं, कितने ही अन्य सांसरों को सालों साल जिन्दगी बख्शनेवाला, घास की भरोट्टियों का इन्तजाम करनेवाला व्यक्ति फोटो तक नहीं छपवाये, कहां है अब ? उन लोगों के घाव हरे के हरे हैं जो जन-सेवा में या आन्दोलन में चले आये हैं परन्तु परिवार के लिये अब रोटी का जोगाड़ नहीं हो रहा है। लोग राजस्थानी भाषा के कार्य का बीड़ा उठाने को बिल्कुल तैयार हैं परन्तु अर्थ के अभाव में अब पांव वापिस खींच रहे हैं। लगता है घाव नहीं भरते हैं—जिनके घाव होते हैं वे खतम हो जाते हैं। "सभी नियमों के अपवाद होते हैं" यदि इस तरह गली निकाल लें तब तो अलग बात है, वरना मुझे तो दोनों ही, घाव भर जाने वाली व रिक्तता खतम हो जाने वाली बात गलत लग रही है। जिन ऊंचाइयों पर हम पहुंचे थे, उनके जाने से हम एक नहीं, दस-बारह सीढ़ियां नीचे आ गये हैं। दिल को तसल्ली दे लेते हैं सीढ़ियों पर ही तो खड़े हैं; वे भी खड़े थे हम भी खड़े हैं। "क्या हो गया उनके जाने से ?" कहां खड़े थे—कहां खड़े हैं—यह नहीं देखते। भागीरथजी अनेकों में एक थे एवं अकेले ही अनेक थे।

पिछले ३-४ बरसों में आदरणीय भागीरथजी का अटूट स्नेह मिला मुझे—रोज सुबह एक-डेढ़ घण्टा घूमते-घूमते एक लम्बी जीवन-यात्रा से, जो सामाजिक एवम् मानवीय घटनाओं के इतिहास क्रम की साक्षी ही नहीं सहभागी रही थी—विभिन्न पड़ावों और चौराहों के जरिये मुझे साक्षात्कार कराते रहे। बीते कल को दर्पण में दिखाते रहे। सैकड़ों संस्मरण हैं जो लिखे जा सकते हैं—अलीपुर जेल में खुदीराम बोस को माली के भेष में जाकर पिस्तौल देने वाला राजस्थानी कौन था ? प्रसिद्ध

क्रान्तिकारी बटुकेश्वर दत्त उनके जकरिया स्ट्रीट निवास-स्थान पर किसलिये आये थे ? पण्डित नेहरू के चांदी के बर्तन जो बिकने आये थे उनमें कमला जी का मंगलसूत्र भी था, पण्डितजी के यज्ञोपवीत के समय की चांदी की खड़ाऊं भी थी, उनका क्या हुआ ? लाला लाजपतराय की मां की स्मृति में मन्दिर के निर्माण हेतु क्या करना पड़ा था ? शान्तिनिकेतन में अध्यापन-कार्य करते समय हजारीप्रसादजी द्विवेदी की आर्थिक स्थिति कितनी बोझिल थी—सुहरावर्दी ने बंगाल के अकाल के समय क्या कहा था उनसे ? एक ही संस्मरण अपने आप में इतिहास है। इनको मैं इसलिये नहीं लिख रहा हूं कि और भी बहुत लोग उनके निकट में आये हैं उनके पास भी ऐसे कितने ही संस्मरण होंगे, अतः उनके लिये मेरा लेख दुहरावट होगा।

स्व० भागीरथजी ने कितनी ही बातें बताई। चाहते थे मैं और ज्यादा जानूं, किताबें देते थे कि पढ़ूं—मेरे पास रखूं। श्री घनश्यामदासजी बिड़ला के दोनों प्रकाशन मुझे दिये तो साथ में तोता मैना का किस्सा और वैताल-पचीसी भी दी कि इनको भी पढ़ो। पहले के जमाने में क्या पढ़ाई होती थी इसका ज्ञान होगा। गम्भीर से गम्भीर चर्चा करते हुए एक दिन बोले, 'तुमने शनीचरजी की कथा सुनी है कि नहीं ?' 'मेरा कभी काम नहीं पड़ा', मैंने कहा, तो बोले "नहीं, इन चीजों की भी जानकारी बहुत जरूरी है। मैं सुनाता हूं तुमको।' पूरी कथा सुनाई। समाप्त होने पर कहने लगे, 'एक तांबे को पीसो दे'—मैं सकपका गया। 'छोड़, पण शनीचरजी की कथा सुणनै के बाद ताम्बे को पीसो नई दैवे तो सुणणियै और सुणाणियै दोनूवां नै दोस लागै, अब तेरे कारण दोस लागैगो तो लागैगो'। यह घटना ज्यों ही मेरी स्मृति में आती है मैं दहल जाता हूं। सोचता हूं जिस व्यक्ति ने केवल परमार्थ के लिये जिन्दगी जियी थी उसे जिन्दगी के अन्तिम ३-४ माह में तकलीफ क्यों मिली ? उन्होंने तो ऐसा कुछ नहीं किया था—कहीं मैं तो दोषी नहीं हूं ? उनसे शनीचरजी की कथा सुनी। मैं नहीं तो कोई और होगा, परन्तु वे खुद नहीं थे। जो व्यक्ति असहाय लोगों की दैनिक पीड़ा बांट लेता था निश्चित रूप से उसने किसी की दैहिक पीड़ा भी अपने मत्थे ले ली होगी—अड़ गया होगा भगवान से किसी की पीड़ा कम करवाने के लिये और खुद ने ले ली होगी।

इतने महान व उदार पुरुष के संस्मरण तो बहुत है परन्तु उनका 'सोच' भी होगा—उनके खुद के विचार भी तो होंगे। मैं व्यक्तिगत रूप से चाहता हूं उनके 'सोच' पर कुछ सोचा जाये—दिक्कत जरूर है क्योंकि उन्होंने अपने विचारों को ना तो कभी जोरदार शब्दों में रखा और ना ही किसी पर थोपा। एक रास्ता है, उनसे हुई बातों व उनसे सम्बन्धित घटनाओं को लेकर एक प्रयास किया जाये। १९४३ के आस-पास हरिजन मण्डल की बंगाल शाखा के तीन अधिकारी थे। अध्यक्ष शायद डा० विधानचन्द्र राय थे, एक अन्य सज्जन और कानोड़ियाजी। वे बता रहे थे कि एक व्यक्ति रुपये इकट्ठे करने के लिये रखा गया था। उसने रुपये इकठ्ठे किये परन्तु संगठन को नहीं दिये। गांधीजी को पता चला तो उन्होंने कहा तीनों अधिकारी बराबर-बराबर रुपया अपनी जेब से दें। भागीरथजी कहने लगे कि उस व्यक्ति से जब पूछताछ की, तो उसने बताया, उसका छोटा भाई क्रांतिकारी है, उसके मुकदमे व सम्बन्धित कामों में रुपया

लग गया—बेचारा क्या करता। मैंने झट से कहा 'लेकिन उसकी गलती है—भारी गलती है। जिस काम का रुपया था उसे वहां ही लगाना था।' भागीरथजी बोले 'भई ठीक है पण......।।' 'तो के बो क्षम्य है ?' 'भई की काम खातर वो यो कर्यो या तो देखणी ही चाहें', इस घटना से स्पष्ट है, भागीरथजी लक्ष्य को बहुत महत्व देते थे—साधन उस हेतु थोड़े उन्नीस-बीस भी हों तो ठीक है।

श्री भागीरथजी कानोड़िया के लेखक की तरफ मेरा ध्यान जाता है। कुल तीन पुस्तकें सामने हैं—'बहता पानी निर्मला' और राजस्थानी कहावतों के दो कोश। तीनों ही पुस्तकें राजस्थानी लोक साहित्य की अनुपम निधि हैं। प्रथम पुस्तक में लोक-कथाओं पर आधारित आम बोलचाल की भाषा में लिखी गयी कहानियां हैं और बाकी की दो पुस्तकों में राजस्थानी कहावतों का हिन्दी अर्थ है। राजस्थानी साहित्य में उनकी कितनी गहरी पैठ थी, इन पुस्तकों के द्वारा स्पष्ट है। परन्तु साथ ही साथ एक और भी बात उभर कर आती है। श्री कानोड़ियाजी राजस्थानी को हिन्दी से अलग मानते थे और वे चाहते थे कि इस भाषा की भी समृद्धि अन्य भाषाओं की तरह ही हो। यह प्रसंग, विशेष रूप से इसलिये स्पष्ट करना चाहता हूं कि श्री कानोड़ियाजी, आदरणीय सेकसरियाजी के साथ-साथ भारतीय भाषा परिषद के संस्थापक थे। इतनी बड़ी संस्था के संस्थापक का भाषा सम्बन्धी 'सोच' जानना जरूरी है। राजस्थानी और हिन्दी अलग-अलग है यह उनकी पुस्तक 'राजस्थानी हिन्दी कहावत कोश' के नामकरण से ही स्पष्ट है। इस सम्बन्ध में कुछ घटनाएं लिख रहा हूं।

श्री कानोड़ियाजी गॉल-ब्लैडर ऑपरेशन के बाद बेल व्यू नर्सिंग होम में थे। उस समय भारतीय भाषा परिषद् द्वारा एक पंजाबी भाषा की गोष्ठी का आयोजन किया गया था। बैठक के बाद मैं और आदरणीय सेकसरियाजी नर्सिंग होम गये। बैठक की चर्चा हुई। मैंने स्वाभाविक रूप से कहा कि पंजाबी भाषा की तो आपलोगों ने गोष्ठी करायी एवं पंजाबी साहित्यकारों की शंकाओं का निवारण भी किया, लेकिम राजस्थानी भाषा प्रेमियों के लिए आपका क्या जवाब है ? बीमारी की अवस्था में भी श्री कानोड़ियाजी ने कहा 'सीतारामजी, हमें इस तरफ भी ध्यान देना ही चाहिए।' यही भाषा प्रसंग फिर एक दफा उठा और उस समय इन दो व्यक्तियों के अतिरिक्त श्री नथमलजी भुवालका भी थे। परिषद ने भाषाओं का चुनाव अपनी इच्छा के अनुसार किया है। 'सन्दर्भ भारती' के पुराने अंक इसके गवाह थे। संवैधानिक मान्यता प्राप्त भाषाओं के अतिरिक्त मणिपुरी के श्री नीलकण्ठ सिंह का नाम परामर्श-मण्डल में होना इस बात का द्योतक है। अतः राजस्थानी को नहीं लेने का संचालकों का निर्णय गलत लगता था। आदरणीय सेकसरियाजी की मान्यता-सी है कि राजस्थानी के लिये जाने से हिन्दी का अहित होगा। श्री कानोड़ियाजी और भुवालकाजी की राय में जब इतनी और अन्य भाषाएं हैं तो केवल राजस्थानी के कारण हिन्दी के पक्ष को आघात पहुंचेगा, यह डर मात्र है। आगे बात चली कि हमलोग राजस्थानी को मान लें, तो फिर हिन्दी किसकी है। इस पर श्री कानोड़ियाजी ने बहुत ही सहज बात कही थी कि हिन्दी या तो सबकी है या किसी की नहीं क्योंकि यदि हिन्दी कुछ की है तो निश्चित रूप से बाकी के 'कुछ' की नहीं है, वे इसका विरोध

करेंगे। अतः हिन्दी को यह पूर्वाग्रह छोड़ना पड़ेगा कि यह 'कुछ' की है। ऐसा स्वरूप बनकर आना चाहिए कि हिन्दी सभी की हो, तभी राष्ट्रभाषा के रूप में वह सार्थक बन सकेगी।

उपरोक्त बातों से श्री कानोड़ियाजी के राजस्थानी के सम्बन्ध में जो विचार थे वे स्पष्ट हो जाते हैं। प्रश्न उठ सकता है कि इतना स्पष्ट होने के बाद भी उन्होंने भारतीय भाषा परिषद में राजस्थानी को अलग से भाषा के रूप में क्यों नहीं स्वीकार करवाया। मुझे व्यक्तिगत रूप से लगता है कि उनकी यह स्वाभाविक प्रवृत्ति थी। उन्होंने विचार बता दिये, थोपे नहीं। स्वयं उसमें ढल गये, परन्तु दूसरे भी ढलें इस बात पर जोर नहीं दिया। दूसरा कारण आदरणीय सेकसरियाजी की इच्छाओं का सत्कार करना भी हो सकता है।

श्री कानोड़ियाजी में व्यक्तिगत रूप से निस्पृह रहने का 'सोच' गहरा समा गया था। बड़े से बड़े संस्थान उन्होंने बनाये लेकिन उनमें जी नहीं अटकाया। काल की गति के अनुसार समाज की नियति के अनुसार कल जो होगा 'होगा' उसके लिए चिन्ता क्या, वे इस तरह सोचते थे। आरोग्य भवन सीकर एवं शिक्षायतन का कल क्या होगा, इसके लिए वे चिन्तित नहीं थे। ऐसे महान व्यक्ति युगों में होते हैं। 'नेकी कर कुए' में डाल' वाली बात उन्होंने गांठ बांध कर पास रखी थी। जितना कुछ किया उसका २-४ प्रतिशत भी लोगों को पता नहीं है क्योंकि वे चाहते नहीं थे कि 'की हुई नेकी का' किसी को पता लगे। ऐसे व्यक्तियों की तुलना किसके साथ की जाय ? शब्द महान होते हैं परन्तु शब्दों की जानकारी एवं सही उपयोग हर व्यक्ति के काबू की बात नहीं है और यही स्थिति इस समय मेरी है। 'अलख निरंजन' को कैसे लखा जाय। श्री कानोड़ियाजी को शब्दों में कैसे व्यक्त किया जाय............। मैंने कभी एक राजस्थानी प्रेमी के प्रति श्रद्धा सुमन के रूप में दो लाइनों का प्रयोग किया था। अन्य सटीक पंक्तियां ध्यान में नहीं आने के कारण मैं श्री कानोड़ियाजी हेतु राजस्थानी की वे ही दो लाइनें प्रयोग में ला रहा हूं। लेकिन वे और भी महान थे :

ओर घणांई आवसी चिड़ी कमेडी काग।
हंसा फेर ना आवसी सुण सरवर मंदभाग ॥

—: ० :—

श्री सन्हैयालाल ओझा

अमृत-पुत्र

जिसने जन्म लिया है उसकी मृत्यु ध्रुव है। सृष्टि के आदि काल से यही नियम चला आ रहा है। कहना चाहिए, सृष्टि और काल, सर्जन और विसर्जन, जन्म और मृत्यु, अन्योन्य ही नहीं, परस्पर पर्याय माने जाने चाहिए। हमारी संस्कृति में 'समय' बोधक शब्द 'काल' का दूसरा अर्थ मृत्यु अहेतुक और अकस्मात नहीं है। इसीलिए जब कई सार्वजनिक संस्थाओं के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, कोषाध्यक्ष, ट्रस्टी आदि रूपों में संपृक्त स्वनामधन्य श्री भागीरथ कानोड़िया अपनी ८५ वर्ष की, पार्थिव पैमाने से लम्बी अवस्था में, बीमार हो गए तो यह आशंका तो हो ही चली थी कि शीघ्र ही कहीं हमें उनका अभाव न सहन करना पड़ जाए, किन्तु जो पर-हित के लिए अपना जीवन समर्पित कर चुके होते हैं, उनके जीवन की किसी भी पैमाने से कितनी ही दीर्घ अवधि क्यों न हों, वह सतत संताप पीड़ित मानवता के लिए बहुत ही अल्प अवधि है, और उनका अभाव एक सदैव खलने वाला अभाव, एक रिक्तता पैदा कर देता है। स्व० श्री भागीरथ कानोड़िया एक ऐसी ही विभूति थे, जो गत २९ अक्टूबर, १९७९ को अपने पार्थिव-शरीर की कारा से मुक्त हो गए।

यह शरीर ही तो मरणधर्मा है, क्षण-भंगुर। वरना मनुष्य तो अमृत-पुत्र है। जन्म लेते समय यह शरीर अनन्त सम्भावनाओं से युक्त रहता है, किन्तु सृष्ट होकर ही वह मानो काल का ग्रास बन जाता है, प्रत्येक क्षण काल उसको क्षय करता रहता है। पार्थिव-आयामों में वह बढ़ता है, विकसित होता है, किन्तु यदि उसकी चेतना भी उसी रूप में बढ़ती रह कर 'क्षण' की चुनौती को स्वीकार न करे तो शरीर तो केवल कारागृह ही बन कर रह जाता है, चाहे जितना दृढ़, और विशाल क्यों न हो। और नष्ट तो एक दिन होना ही है। जातस्य हि ध्रुवोमृत्य!—समय-काल उसे बराबर जीर्ण करता रहता है, और वे जीर्ण दीवारें एक दिन ढह ही जाती है। हम पास खड़े हुए तब एकाएक उस अभाव को अनुभव करते हैं। दीवारें नहीं रहतीं, तब हमें दिखाई देती है, वह सृष्टि, वे कृतियां जो देह के भीतर रहने वाली अप्रतिम चेतना हमारे लिए निर्मित कर जाती हैं। वे कृतियां ही उस व्यक्ति की मृत्यु पर विजय की सूचक है! क्षण ने उसे क्षय नहीं किया, बल्कि उसी ने क्षण को क्षय कर दिया। वह अमर हो गया। यही तो रहस्य है उनके अमृत-पुत्र होने में।

स्व० भागीरथजी सदैव मानव-मूल्यों के लिए जीवित रहे। अपने को उन्होंने कभी माना ही नहीं, वे सदा दूसरों के लिए जीवित रहे। उनकी कृश किन्तु अनाविल काया, सामान्य-सा सहज परिधान, सहज ही स्पष्ट कर देता था कि वे कितने अनासक्त

हैं। इन सभी बाह्य उपकरणों को वे एक कारागृह का प्रतीक ही तो समझते थे। इतने निस्पृह थे वे कि अपनी की हुई कृतियों की स्वीकृति तक की उन्होंने कभी चिन्ता नहीं की। वे सचेतन होकर प्रसिद्धि से दूर रहे। किसी उपलब्धि के साथ कहीं उनका नाम न जोड़ दिया जाए, कहीं कोई उनके अभिनन्दन का प्रयत्न न कर ले! वे मानव-सेवा को ही अपना चरम-लक्ष्य मानते थे। सेवा के सभी कार्यक्रमों में वे आगे रहकर भी पीछे-पीछे हो चले। राजस्थान, सीकर का श्री कल्याण आरोग्य सदन, जिसमें टी० बी० सेनेटोरियम के अतिरिक्त कृषि-विकास की अन्य कई बहुमुखी-प्रवृत्तियां प्रचलित हैं, पीड़ित-मानचता के प्रति उनकी चेतना का मूर्तिमान प्रतीक है। नारी शिक्षा के क्षेत्र में उनकी प्रेरणा से स्थापित कई विद्यालय उनकी कीर्तिगाथा सहस्र जिह्व होकर मुखर कर रहे हैं। साहित्य के प्रति उनका प्रेम उनके अन्यतम वरिष्ठ सहयोगी तद्गत प्राण श्री सीताराम सेकसरिया की सहयोगिता से स्थापित भारतीय भाषा परिषद के रूप में साकार है। 'बहता पानी निर्मला' उनका एक साहित्यिक अवदान है, जो कह रहा है कि उनका जीवन भी सतत बहता रहा, आगे ही आगे बढ़ता रहा, और प्रवाह की अनवरत प्रक्रिया में ही निर्मल होता रहा, निर्मल हो रहा! क्यों न हो, स्वयं वे जो भागीरथ थे! जो भी उनके सम्पर्क में आया, मानों उसने पुण्य सलिला भागीरथी में अवगाहन का ही लाभ पा लिया! ऐसे व्यक्ति क्या कभी मर सकते हैं? श्री भागीरथ कानोड़िया मर कर भी अमर हैं। वे सच्चे अर्थ में अमृत पुत्र हैं।

—:०:—

नेत्र-चिकित्सक

श्री गोपालकृष्ण सराफ

प्रेरणा के स्रोत

१२ दिसम्बर, १९४५ मेरे जीवन में बहुत महत्वपूर्ण दिन रहा है। मैं उस दिन प्रथम बार कलकत्ता आया था। उस समय मेरी अवस्था बीस वर्ष की थी। मैं आगरा मेडिकल कालेज का छात्र था और उस विवाह में आया था, जिसमें पूज्य सीतारामजी सेकसरिया की लड़की विजया और मेरे भाई परमानन्द पोद्दार दाम्पत्य-सूत्र में अनुबन्धित हो रहे थे। कुल ग्यारह व्यक्तियों की बारात आई थी और मेरे फूफा श्री महावीरप्रसादजी पोद्दार की आज्ञानुसार मैं उनमें एक था। आप सोचिए कि वह छोटी-सी बारात कहां ठहराई गई होगी, जबकि सारा विवाह ऐसी सादगी से हुआ जो आज भी कल्पना से परे हैं। उस समय पूज्य भागीरथजी कानोड़िया २३ नं० ओल्ड बालीगंज रोड में रहते थे जो कि आज श्री राधाकृष्णजी कानोड़िया का निवास-स्थान है। हम ग्यारह व्यक्ति भी उसी मकान में ठहरे थे और मेरे मानस-पटल पर आज भी वह पुल अंकित है जिसपर से होकर हम भोजन करने जाया करते थे। उनके उस मकान में मैंने जिन महान पुरुषों के दर्शन और हस्ताक्षर प्राप्त किए, वे मेरे लिए अमूल्य निधि हैं। उसमें विशेष उल्लेखनीय हैं—सरदार बल्लभभाई पटेल, असचार्य नरेन्द्र देव, खान अब्दुल गफ्फार खां, श्री गोविन्दवल्लभ पंत, पट्टाभि सीतारमैया, ठक्करबापा, घनश्यामदास बिड़ला आदि। इनमें से कई उसी मकान में हमारे साथ ही ठहरे हुए थे।

मैं दुबारा कलकत्ता आया सन् १९६० ई० में और आते ही पूज्य भागीरथजी कानोड़िया के दर्शन करने गया और उनसे आशीर्वाद लेकर कलकत्ता को अपना कार्यक्षेत्र बनाया। पूज्य भागीरथजी कानोड़िया मेरी सगी भाभी के सगे फूफा थे और इसलिए मैं उनको सदा फूफाजी ही कहा करता था। मैं उनसे मिलता रहता था और उनका आशीर्वाद मुझे सदा मिलता रहा। उनके सुलझे हुए विचार, उनकी पैनी दृष्टि, उनका लम्बा अनुभव मेरे लिए सदा सहायक रहा। जब मैंने कलकत्ते में निःशुल्क नेत्र शिविर लगाना आरम्भ किया, तब सोसाइटी बेनीफिट सर्किल ने हिन्दुस्तान क्लब में मेरा स्वागत किया था, जिसमें पूज्य फूफाजी ने सभापति का आसन ग्रहण करके मेरा उतसाह बढ़ाया और मुझे नेत्र-शिविर लगाने के लिए बराबर उकसाते रहे। उनके स्वर्गवास से देश और समाज की अपार क्षति तो हुई ही, मेरे जीवन में भी एक सच्चे मार्ग-प्रदर्शक का स्थान रिक्त हो गया है।

—: ० :—

सामाजिक कार्यकर्ता

श्री नन्दलाल सुरेका

दान की महिमा के प्रतिष्ठाता

नित्य प्रातः भ्रमण के बाद विक्टोरिया मेमोरियल उद्यान में एक गोष्ठी लगती है। आदरणीय भागीरथजी कानोड़िया भी उसमें आते थे। एक बार किसी कुष्ठ संस्था के लिए भी प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका चन्दा इकट्ठा कर रहे थे। मैंने भी सकुचाते हुए कुछ भेंट दी। चन्द दिनों बाद ही श्री रामेश्वरजी टांटिया सीकर के टी० बी० सेनेटोरियम के लिये चन्दा इकट्ठा कर रहे थे, मैंने फिर सकुचाते हुए श्रद्धानुसार कुछ भेंट दी। श्री भागीरथजी ने मुझे दोनों बार ही देखा। मेरी परेशानी को समझ गये, बोले 'क्या बात है ?' मैंने कहा, "सोच रहा था, इतने बड़े-बड़े दान के बीच मेरी यह छोटी सी भेंट क्या माने रखती है, बस इसीलिये सकुचा रहा था।" भागीरथजी ने कहा, "दान छोटा या बड़ा नहीं होता। दान देने की प्रवृत्ति ही बड़ी है। इसमें सकुचाने की कोई बात नहीं।" मुझे बड़ी हिम्मत हुई और मन भी प्रसन्न हुआ। उन्होंने कहा, "दान देकर मान पाने की इच्छा से दान की कीमत आधी हो जाती है और कहीं मान मिल गया तो फिर कीमत चौथाई हो जाती है।" ऐसे थे वे महान ! जिन्दगी में कितना दान दिया, कितनी संस्थाओं को जीवन-दान दिया, कितनी विधवाओं के आंसू पोंछे, कितने अनाथ बच्चों को शिक्षा दी, कितने लोगों के जीविकोपार्जन की व्यवस्था की, वे ही जानते थे, कभी चर्चा नहीं की।

वे प्रचार-प्रसार से दूर रहने वाले थे। उन्होंने कभी भी अपने अभिनन्दन के लिये इजाजत नहीं दी। सदा यही कहते रहे, "मैंने क्या किया है, सो अभिनन्दन हो" ऐसे थे वे शीलवान। सदा हंसमुख, हाजिर जवाब। उसके साथ मिलने वाला हंसे बिना नहीं रहता था। सब यही समझते थे कि वे मेरे हैं। उनका कोई भी विरोधी या शत्रु न था। वे अपने आप में एक संस्था थे।

उनके परिवार वालों को तो उनके स्वर्गवास से दुःख होगा ही, पर सारा समाज उनकी मृत्यु से मर्माहत है। सदियों में कभी-कभी ऐसे महान पुरुष आते हैं। अपनी सेवा समाज को अर्पित कर कूच कर जाते हैं।

ईश्वर उनकी आत्मा को शांति प्रदान करें और समाज में उनकी कमी को पूरा करने के लिये कुछ लोग प्रेरणा लें।

—: ० :—

राजस्थानी कवि
श्री विश्वनाथ विमलेश

सजग-सतर्क

वैसे तो आदरणीय श्री कानोड़ियाजी का सैकड़ों बार सान्निध्य प्राप्त हुआ और मुझे हमेशा ही उनका अपार-प्यार मिला लेकिन उनसे अपनी प्रथम मुलाकात को मैं कभी भी नहीं भूल सकता। बात लगभग ३० वर्ष पुरानी है। वे शारदा सदन मुकुन्दगढ़, में संचालक की हैसियत से हाईस्कूल के अध्यापकों के बीच बैठे बातचीत कर रहे हैं। मैं भी इसी वर्ष (१९५०) सहायक अध्यापक के रूप में आया था और मात्र इण्टर पास। शारदा सदन हाई स्कूल को अगले वर्ष कालेज बनाना है। तत्कालीन प्रधानाध्यापक, या यों कहिये भावी प्रिन्सिपल साहब श्री राधेश्यामजी भटनागर बोल रहे हैं—'हमारे सामने सा'ब सबसे बड़ी समस्या लाइब्रेरी की होगी, क्योंकि कालेज स्तर की प्राय: सभी पुस्तकें विदेशों के प्रकाशकों की होती है, और वे रुपयों में कीमत न लिखकर पुस्तकों पर छपवा देते हैं ५ डालर। अब उन्हें क्या पता भारत में इसकी कीमत १००) रु० हो जाती है।'

'पांच डालर का कितना रिपिया बताया राधेश्याम ?' कानोड़ियाजी माथे को उंगली से पोंछते हुए पूछते हैं। राधेश्यामजी सोचते हैं कुछ ज्यादा बता गये क्या? बोले '७५-८० तो होंगे ही।' श्री ईश्वरसिंह यादव जो प्राइमरी स्कूल के प्रधानाध्यापक हैं—श्री कानोड़ियाजी की नजरों से नहीं बच पाते हैं—उनके पुराने साथी जो ठहरे!

'तू बता ईश्वरसिंह, पांच डालरां की कीमत भारत में के होनी चाये ?'

यादव खड़े होते-होते अपने ऐनक को पोंछते हैं। चारों ओर नजर दौड़ाते हैं कि शायद कहीं से कोई संकेत मिल जाय—पर निराश, हताश। लगभग एक मिनट बाद बोलते हैं—'पांच डालरां का, कम से कम २० बीस रिपिया तो होगा ही।' यादवजी की बगल में ही बैठे हैं श्री विश्वम्भरलालजी गुरु, और ठीक उनके पास मैं, गुरुजी सोचते हैं—मुझे धीरे से कचोटकर कान में फुसफुसाते हैं, 'तन्नै मालूम है के ?' पर गुरुजी तक नौबत नहीं आती, कानोड़ियाजी खुद ही कहने लगते हैं—ल्यो एक जण ५ डालरां की कीमत १०० रु० बतार्‌यो है, एक जण बीस—थे लोग अखबार कोनी बांचों के ?

भटनागरजी को थोड़ा ताव आ जाता है, 'आप तो सोने चांदी के सट्टों के कारण डे-टु-डे भाव मालूम करते रहते हो ? हमें क्या मालूम डालर··· ।

'राधेश्याम, सुण, मास्टरानैं आं बातां को तो बेरो होणू हीं चाये।

उस समय मैं सोचता हूं कि कानोड़ियाजी को अपने पैसे का बहुत ही घमण्ड है··· पर उसी रात कोठी पर गोठ हो रही है। सभी अध्यापक व नगर के गणमाण्य व्यक्ति हैं। मेरा कवि के रूप में परिचय कराया जाता है और मुझे कुछ कविताएं सुनाने का आदेश मिलता है। श्री कानोड़ियाजी व श्री सेकसरियाजी इस अकिंचन की सराहना करते हैं और आनन्दित होते हैं। दूसरे दिन मुझे प्रात:काल कोठी पर फिर बुलाया जाता है, मैं "प्राणों की छाया" कविता संग्रह को प्रकाशित कराने का प्रस्ताव रखता हूं, और मुझे अविलम्ब २००) रु० का अनुदान मिल जाता है।

मेरी कल को धारणा कितनी गलत थी। घमण्ड तो लेशमात्र भी नहीं दिखाई देता।

—:०:—

हिन्दी के प्राध्यापक
डॉ० प्रतापसिंह राठौड़

प्रेरक व्यक्तित्व

शेखावाटी के सपूत श्री भागीरथ कानोड़िया का जन्म मुकुन्दगढ़ में २५ जनवरी, १८९५ ई० में हुआ था। श्री गंगाबक्सजी और भागीरथजी कानोड़िया ने इस छोटे से कस्बे को शिक्षा का प्रमुख क्षेत्र बनाया। अपनी जन्मभूमि के दर्शनार्थ कानोड़ियाजी कलकत्ता से साल में एक बार आना नहीं भूलते थे। सेकन्डरी स्कूल के पासवाली हवेली में उनका जन्म हुआ था, जिसकी वे यदाकदा चर्चा करते थे। निश्चय ही यहां आकर लोगों से मिलने में उनको असीम आनन्द का अनुभव होता था, क्योंकि वे प्रायः हर प्रकार के लोगों से घिरे ही रहते थे। लोगों के दुख-दर्द की पूछताछ करना और गरीबों की मदद करना उनका स्वभाव था। लेखक का भी उनसे वर्षों का सम्पर्क था।

कानोड़ियाजी अपनी समाज-सेवा, लोकोपकारिता, कर्मठता, सदाचार, शिक्षा प्रेम, हरिजनोद्धार, नारी-जागरण, विनम्रता, सादा जीवन एवं उच्च विचार आदि विशेषताओं के कारण भौतिक शरीर त्याग कर भी सदा के लिए अमर रहेंगे। प्रेरणा के स्रोत, लोकोपकारी कर्मवीर, इस महान आत्मा को समाज भूल नहीं सकता। उनकी सारी सेवाएं समाज को समर्पित थीं। उनका व्यक्तित्व विराट था और चरित्र महान् था। सदाचार को वे जीवन के लिए अनिवार्य मानते थे। भारत में तो "आचारः प्रथमो धर्मः" पर बल दिया गया है। उनकी इस सूत्र में पूर्ण आस्था थी। सदाचार ही उदात्त-चरित्र की कसौटी है, जिसमें सरलता, सत्य, करुणा, दया, मृदुता, धैर्य, सहिष्णुता, संयम, कर्त्तव्यनिष्ठा, अभय, स्वावलम्बन और अनासक्ति आदि गुणों का समाहार होता है। वे सदाचार की साक्षात् प्रतिमा थे। भारतीय धर्म-साधना एवं संस्कृति में उनकी पूर्ण निष्ठा थी।

समाज सेवा एवं मानवता-प्रेम उनके जीवन का अभिन्न अंग था। गांधीजी के निकटतम सहयोगी होने से उनकी समाज-सेवा एवं मानव-प्रेम की भागीरथजी पर अनूठी छाप थी। उन्होंने जीवन भर गांधीजी के जीवन-आदर्शों को व्यावहारिक रूप देने का प्रयास किया। समाज की शिक्षा, संस्कृति, राजनीति आदि विविध क्षेत्रों में जो सेवा उन्होंने की है, वह अनुकरणीय है। आज इस अवसरवादिता, आपाधापी, भाई-भतीजावाद और संकीर्ण-स्वार्थपरता के युग में मानव-मूल्यों एवं सिद्धान्तों के लिए अडिग रहनेवाले कानोड़ियाजी जैसे व्यक्ति विरले ही मिलते हैं। भारत में—मुख्यतः राजस्थान व पश्चिमी बंगाल में—उन्होंने राष्ट्रीय-सेवा की।

वे अपनी हवेली में लोगों से सहज आत्मीय भाव से मिलते थे। लोगों से बातचीत करते हुए ही गरीब, वृद्ध, जरूरतमन्द लोगों से उनकी कठिनाइयां पूछते रहते

थे। कोई कह रहा है, 'बाबू ! बूढ़ों हूं, फिरे-टुरे जाय कोनी। कमाण की हीमत कोनी। मेरो बी को परबन्ध हुणों चाये।' दूसरा कह रहा है—'बाबू, जापो हुयो है। घर में की आथ कोनी। थारै तो हाथ को मैल है। थोड़ी मदद होणी चाये।' और कानोड़ियाजी गम्भीरता से सोचते हुए बिना नाक पर सल (सवटल)डाले पूछ रहे हैं, "तनै कतीक मदद चाये ?' तुरन्त ही अपने मुनीम से कह मदद कर देते हैं। आज के व्यस्त-युग में बड़ी आत्मीयता से ऐसे गरीबों का दुःख-दर्द सुनना और तुरन्त यथोचित सहायता कर देना साधारण बात नहीं है। दुनिया में धनीमानी बहुत हैं, किन्तु गरीबों के सच्चे साथी कम ही होंगे। एक बार लेखक ने भी पत्र लिखकर एक विधवा को आर्थिक मदद दिलाई थी। अपने जीवन में इस मानवता के पुजारी, करुणा के सागर, सम्वेदनशील सज्जन ने न मालूम कितने लोगों की सहायता की होगी। 'दीन-हृदय ईश्वर का मन्दिर और दीनों की सेवा ही ईश्वर की सच्ची सेवा है,' इस उक्ति में उनकी गहरी आस्था थी। इसी कारण वे जीवन भर जनता-जनार्दन की सेवा में तत्पर एवं तल्लीन रहे।

आज सस्ती लोकप्रियता एवं राजनीतिक लाभ के लिए लोग लम्बे-चौड़े भाषण करते हैं, पर उनको तो कभी किसी से लाभ उठाना नहीं था, अतः हरिजनोद्धार ही परम ध्येय था। उनकी करनी व कथनी में अन्तर नहीं था। उनके शिक्षा-प्रेम एवं अस्पृश्यता-निवारण का एक प्रसंग अनायास ही स्मरण हो आता है। बात लगभग पचास वर्ष पूर्व की है। मुकुन्दगढ़ में पाठशाला खुली, तो हरिजन बच्चों को भरती कराने वे गांवों में घर-घर गए। निकटवर्ती ग्राम छोड़ीवारा से श्री सागरमल रविदास को प्रवेश दिलाया (जो गत वर्ष ही शारदा सदन स्कूल से सेवा-निवृत्त हुए हैं) तो लोगों ने अपने बच्चों को स्कूल जाने से रोक लिया। पर दृढ़ संकल्पी एवं साहसी, धुन के धनी भागीरथजी अडिग रहे। धीरे-धीरे लोगों को भी समझाया व छात्र पढ़ने आने लगे। आज यह सामान्य-सी बात है, पर अर्द्धसदी पहले मामूली घटना नहीं थी। यह उनकी दृढ़ता, साहस, हरिजन-सेवा और मानवता-प्रेम की परिचायक घटना है। सचमुच समाज के अग्रदूत, दूरदर्शी कानोड़ियाजी सच्चे समाज-सेवी व सुधारक थे। यों आज हरिजनों के प्रति झूठी सहानुभूति दिखाने वाले अनेक राजनीतिज्ञ मिल जायेंगे, जिनकी बातें मात्र दिखावा एवं ढोंग हैं।

भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम से उनकी पूरी सहानुभूति थी। १९४२ में उन्हें जेल-यात्रा भी करनी पड़ी। अनेक सामाजिक संस्थाओं के वे संस्थापक, अध्यक्ष एवं सदस्य रहे, चाहे वह शिक्षण-संस्था हो, हरिजन-सेवा-संघ या अस्पताल हो, महिला-सदन या अकाल-राहत समिति हो, पुस्तक-प्रकाशन संस्था या जल बोर्ड हो। सुप्रसिद्ध समाज-सेवी श्री सीतारामजी सेकसरिया के साथ उन्होंने स्थायी महत्व के अनेक रचनात्मक कार्य किए। मुकुन्दगढ़ की शिक्षण संस्थाएं, आरोग्य-सदन सीकर, श्री शिक्षायतन, अभिनव भारती, हिन्दी भवन (शान्तिनिकेतन) मातृ-सेवा-सदन और मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी आदि से सम्बद्ध रहकर उन्होंने अविस्मरणीय सेवाएं की हैं। नारी शिक्षा, गरीबी-उन्मूलन, हरिजनोद्धार एवं मानव-सेवा ही उनके जीवन का परम लक्ष्य था। गांधीजी, टैगोर, संत तुलसीदास उनके जीवन के आदर्श थे। ऐसे समाजसेवी, परदुःखकातर, विनम्रता एवं शील की सौम्य मूर्ति, साहित्य-प्रेमी, मूक

साधक एवं सुधारक युगों में विरले ही होते हैं। गीता के अनासक्तियोग को इस निष्काम कर्मयोगी ने जीवन में पूर्णतः अपना लिया था। मान-सम्मान की भूख से दूर रहने वाले, वीतरागी एवं निरभिमानी कानोड़ियाजी जीवट के व्यक्ति थे। ऐसी विशुद्धात्मा ही समाज के लिए प्रेरणा-स्रोत बन सकती है। इस व्यक्ति के प्रति लोगों में श्रद्धा है क्योंकि उसके कर्म महान थे।

साहित्य-प्रेमी एवं सरस्वती-समाराधक कानोड़ियाजी हिन्दी व राजस्थानी दोनों में लिखते थे। 'बहता पानी निर्मला' तथा 'राजस्थानी कहावत कोश' उनकी अक्षुण्ण कीर्ति के सूचक हैं। उन्होंने अनेक फुटकर लेख एवं कहानियां लिखी हैं। अनेक साहित्यकारों, साहित्य-संस्थाओं एवं पत्र-पत्रिकाओं को उन्होंने आर्थिक सहायता दी है। सामान्य बातचीत में भी वे गांधी, टैगोर, व्यास, तुलसी, नेहरू, जयप्रकाश, डा० राजेन्द्रप्रसाद, निराला, महादेवी एवं हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि को नहीं भुला पाते थे। राजनीतिज्ञों एवं साहित्यकारों के संस्मरण सुनाना उन्हें बहुत पसंद था।

'सर्वे भवन्तु सुखिनः' में विश्वास रखने वाले उदारमना भागीरथजी ने मानवता-प्रेम एवं सेवा की गंगा बहाकर, सचमुच अपना नाम सार्थक सिद्ध कर दिया। इस अनास्था के युग में जीवन- मूल्यों के हिमायती, संस्कृति के संरक्षक कानोड़ियाजी जैसे व्यक्ति का अभाव विशेषकर खलता है। अध्ययनशील, श्रमनिष्ठ, प्रेरक व्यक्तित्व वाले कानोड़ियाजी भावी पीढ़ियों द्वारा निस्सन्देह स्मरण किए जाते रहेंगे। लोकेषणा पुत्रैषणा, वित्तैषणा से उनका जीवन सम्पन्न रहा है, शतायु के वे लगभग निकट थे, अतः एषणा-चतुष्टय की दृष्टि से भी वे बड़े भाग्यशाली थे। वे शिक्षित, सम्पन्न एवं सुसंस्कृत भरा पूरा परिवार छोड़ गए हैं। परिवार, समाज एवं देश के प्रति उन्होंने कोई कर्त्तव्य अधूरा नहीं छोड़ा। ऐसे प्रेरक व्यक्ति को कोटिशः नमन्।

—: ० :—

सामाजिक कार्यकर्ता, भागीरथजी के सहयोगी

श्री चिरंजीलाल ढांचोलिया

पीढ़ियों का सम्पर्क

जब भी स्व० भागीरथ बाबू के विषय में बात चलती है तो सहज ही हृदय उद्वेलित हो उठता है। उनसे सम्पर्क, सम्बन्ध की बात करूं तो स्मृति को बहुत पीछे ले जाना पड़ता है, क्योंकि उनका मेरा सम्पर्क सिर्फ हमारा दोनों का ही नहीं, अपितु पीढ़ियों का सम्बन्ध है। तब इतिहास के पन्ने लगभग २०० वर्ष पूर्व से उलटने पड़ते हैं। हरियाणा में कालूंड नामक गांव था, जो अब जिला मुख्यालय है और महेन्द्रगढ़ के नाम से जाना जाता है। भागीरथ बाबू के पूर्वज इसी कालूंड गांव के रहनेवाले थे। कालूंड के पास ही ढांचोली नामक गांव है, मेरे पूर्वज इसी गांव के रहनेवाले थे, जो भागीरथ बाबू के परिवार के निजी ब्राह्मण थे। २०० वर्ष पूर्व भागीरथ बाबू के पूर्वजों ने कालूंड गांव को छोड़ दिया, और साथ ही मेरे पूर्वजों ने भी ढांचोली ग्राम छोड़ दिया। इस तरह दोनों साथ-साथ ही राजपूताना की ओर चल पड़े। सर्वप्रथम फतेहपुर (शेखावाटी) में आकर हमारे पूर्वजों ने निवास किया। चूंकि हमलोग कालूंड व ढांचोली नामक गांवों से उठ कर आये थे, अतः बाबू लोग कालूंडिया (वर्तमान में यही नाम 'कानोड़िया' हो गया है) कहलाये और हमलोग ढांचोलिया कहलाये।

थोड़े समय बाद इन लोगों ने फतेहपुर भी छोड़ दिया और साथ-साथ ही नवलगढ़ आकर बस गये। भागीरथ बाबू के पूर्वज श्री जोखीरामजी ने नवलगढ़ में एक कुंआ तथा शिव-मन्दिर बनवाया। यह कुंआ अब भी 'जोखीरामजी का कुंआ' के नाम से प्रसिद्ध है। तदुपरान्त श्री परमानन्दजी ने मंडी दरवाजे के बाहर एक सुन्दर बगीची का निर्माण करवाया। इस बगीची में ही उन लोगों के अन्तिम संस्कार होते थे। उनकी स्मृति में एक छतरी भी इस बगीची में बनी हुई है। नवलगढ़ में ये लोग काफी समय तक रहे और विभिन्न प्रकार के पुण्य-कार्य करने से शीघ्र ही उनका यश फैल गया था।

इसी समय मुकुन्दगढ़ शहर बसा था, और वि० सं० १९१६ में बसंत पंचमी के दिन गढ़ की नींव रखी गयी। नींव की पूजा हेतु मेरे प्रपितामह श्री हुकुमीचन्दजी को लाया गया था। ठीक इसी दिन भागीरथ बाबू के पितामह श्री जयनारायणजी ने यहां हवेली की नींव दिलवायी जिसकी पूजा भी मेरे पूर्वज श्री हुकुमीचन्दजी ने करवायी। पूजा करवाने की दक्षिणा के रूप में उनको मुकुन्दगढ़ के सरदारों ने ११ बीघा जमीन का पहला पट्टा दिया और सेठों ने रहने के लिए पूरा मकान बनवा कर दिया। इस प्रकार हमारे पूर्वज साथ-साथ ही नवलगढ़ से आकर मुकुन्दगढ़ में बस गये।

श्री जयनारायणजी के चार संतान हुई जिनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं :— श्री जानकीदासजी, श्री हरीरामजी, श्री हरदेवदासजी तथा श्री रामदत्तजी। श्री रामदत्तजी के तीन पुत्र हुए, श्री गंगाबक्सजी, श्री प्रह्लादजी तथा श्री भागीरथजी। श्री गंगाबक्सजी कलकत्ता गये और वहीं बिड़ला ब्रदर्स के यहां रहने लगे। कालांतर में भागीरथ बाबू भी कलकत्ता चले गये। मुझे याद है कि स्वयं जुगलकिशोरजी बिड़ला उनका बहुत आदर करते थे। धीरे-धीरे जहां भगवती महालक्ष्मी की कृपा बढ़ती गयी, वहीं कानोड़िया परिवार द्वारा पुण्य कार्यों में भी वृद्धि होने लगी।

मेरे अब तक के जीवन का सबसे अधिक समय भागीरथ बाबू के साथ गुजरा है। भागीरथ बाबू ने जो आदर तथा स्नेह मुझे दिया वह मुझे किसी से नहीं मिला। वे मेरी सभी समस्याओं के हल थे। कभी उन्होंने मुझे चिन्तित नहीं होने दिया। इतना सर्वगुण सम्पन्न और उदार व्यक्ति मैंने कभी नहीं देखा। यदि यह कहूं तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि मौनी अमावस्या (माघ) वि० सं० १९५१ को भागीरथ बाबू के रूप में साक्षात 'धर्म' ने जन्म लिया था।

सन् १९३७ के सितम्बर की बात है। भागीरथ बाबू हरिजनोद्धार में लगे हुए थे। उसी सिलसिले में उन्होंने मुकुन्दगढ़ में हरिजनों को स्कूल में प्रवेश दिलवाने का कार्यक्रम बनाया। स्वाभाविक था कि उस समय में ऐसा काम करना बहुत जोखिम भरा था। परन्तु वे तो सोच-समझ कर निर्णय लेते थे और निर्णय लेने के बाद उस पर अटल रहते थे। हरिजन-प्रवेश का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ तो पूरे गांव में विरोध की लहर उमड़ पड़ी। सवर्ण बच्चों ने स्कूल का बहिष्कार कर दिया। सिर्फ ५-७ विद्यार्थी रह गये। मुझ पर भी विभिन्न लोगों द्वारा दबाव पड़ने लगा, परन्तु मैंने तो भागीरथ बाबू के साथ रहने का अंतिम निर्णय ले लिया था। मुकुन्दगढ़ के सरदारों ने जब मुझ पर बहुत दबाव डाला तो मैंने उनके द्वारा प्रदत्त जमीन का पट्टा व तांबा-पत्र लौटा दिया (बाद में भागीरथ बाबू को जब यह घटना ज्ञात हुई तो उन्होंने मुझे अपनी जमीन में से जमीन प्रदान कर दी)। अब हमलोगों के विरुद्ध तनावपूर्ण वातावरण तेजी से बनने लगा। अन्त में ठाकुर साहब की सहमति से भागीरथ बाबू को और मुझको जाति से बहिष्कृत (जो कि उस समय बहुत बड़ा दंड होता था) कर दिया गया। परन्तु बाबू ने इसकी परवाह नहीं की, और अपने कार्यक्रम को जारी रखा।

सन् १९३९ में नागरिक अधिकार दिलवाने के लिए भागीरथ बाबू की सहमति से आंदोलन चलाया गया था। उस समय श्री राधाकिशनजी बजाज ने शेखावाटी का दौरा किया था, जबकि जयपुर राज ने श्रीयुत् जमनालालजी बजाज के जयपुर-राज्य की सीमा में प्रवेश पर रोक लगा दी थी। परन्तु सत्याग्रह चलता रहा। मार्च, १९३९ को किसान-दिवस मनाया गया। इस अवसर पर मुकुन्दगढ़ में भी जुलूस निकाला गया। जब जुलूस के बारे में मुकुन्दगढ़ के ठाकुर बाघसिंहजी को मालूम हुआ तो वे क्रोधित हो उठे, और उन्होंने पूरे जुलूस को बुरी तरह पिटवाया। जो किसान-युवक उसका नेतृत्व कर रहा था, वह बुरी तरह घायल हो गया था। भागीरथ बाबू ने उसे बाद में पूरा संरक्षण दिया। उस समय इस तरह के कार्यक्रमों

में जो लोग भाग लिया करते थे, उन्हें बाबू पूरी तरह सहयोग और संरक्षण दिया करते थे।

ऐसे ही पंचपाना (उस समय उदयपुरवाटी, चिराणां, गुढा, पूंख आदि गांवों को पंचपाना नाम से सम्बोधित किया जाता था) के क्षेत्र में जागृति लाने का कार्यक्रम बनाया गया था। परन्तु भौम्याओं (पंचपाना के गांवों के सरदार लोगों) ने अपने क्षेत्र में निषेधाज्ञा लगा रखी थी, इसके बावजूद भागीरथ बाबू, नरोत्तमजी जोशी, महादेवजी, मैं और अन्य कार्यकर्ता चिराणां गये। भागीरथ बाबू ने सभा का आयोजन किया तो भौम्यां लोग भड़क उठे और लाठियां ले-ले कर सबको पीटने लगे। महादेवजी बुरी तरह घायल हो गये। सभी लोगों को चोटें आयीं। भागीरथ बाबू की पसली में गम्भीर चोट आयी, परन्तु वे उसे इतने सहज-भाव से सह गये कि हमलोग आश्चर्यचकित रह गये। बाद में लोगों ने पुलिस केस बनाने के लिए कहा तो भागीरथ बाबू ने मना कर दिया। हद की सहनशक्ति थी उनमें।

यदि यह कहा जाए, तो उचित ही होगा कि इस क्षेत्र में नव-जागरण की लहर लाने का बहुत सारा श्रेय भागीरथ बाबू को जाता है। उन्होंने असल में जन-जागरण का आधार तैयार किया था। सन् १९१९ में मुकुन्दगढ़ में उन्होंने 'गांधी वाचनालय' की स्थापना की थी, जिसका अब 'सार्वजनिक पुस्तकालय' नाम है। उसी समय में चर्खा-संघ, सहकारी संघ जैसी संस्थाओं की स्थापना की। उन्होंने एक ग्राम शिक्षा विभाग की स्थापना की थी, जिसके तहत विभिन्न गांवों में पाठशालाएं खोली गयी थीं, जो इस शेखावाटी क्षेत्र में शिक्षा का सूत्रपात थीं। वे हर समय लोगों में नई चेतना लाने के लिए उत्सुक रहते थे।

मुझे याद नहीं कि कभी ऐसा हुआ हो, कि कोई उनके पास सहायता प्राप्त करने हेतु आया हो और खाली हाथ लौटा हो। ऐसा ही एक छोटा सा रोचक संस्मरण और याद आ गया है: हमारे गांव में एक धूणांराम नामक ब्राह्मण था, जो गरीब था परन्तु सनकी भी था। जब भी बाबू मुकुन्दगढ़ आते वह उन्हें बाजार में गाली-गलौज देता। जब कोई व्यक्ति उन्हें यह बात बताता तो बाबू धूणां को हवेली में बुलाते और अनाज, रुपये, कपड़े आदि कुछ न कुछ देकर ही घर भेजते। धन्य है ऐसी महानता।

अन्त में, आज भी मुझे वे ३-४ दिन याद आते हैं तो रोमांचित हो उठता हूं जब १९४१ में भागीरथ बाबू, देशरत्न राजेन्द्रप्रसादजी को लेकर मुकुन्दगढ़ आये थे। तब वे तीन-चार दिन यहां रुके थे। उस समय उनको दमा की शिकायत थी और वे यहां आकर बहुत खुश हुए थे। उन तीन-चार दिन के दौरान हर समय देश सेवा और उच्चादर्शों की बातें होती रहती थी। कितने महान लोगों का संसर्ग करने का अवसर मुझे मिला, इसका गर्व है मुझे। अस्तु।

भागीरथ बाबू के साथ बीता हुआ समय मेरा सबसे अधिक मूल्यवान समय था। ईश्वर हमें उनके पद-चिन्हों पर चलने की प्रेरणा दें।

—: ० :—

राजस्थानी साहित्य संस्थान, झुंझुनूं के मंत्री

श्री मोहन सिंह

गांव और गरीब का संबल

धन कुबेरों की जन्मस्थली शेखावाटी में शिक्षा, समाज और सेठाई का सौहार्दपूर्ण समन्वय किसी में था तो वह था स्व० भागीरथजी कानोड़िया में। प्यार और अपनत्व लिये 'भागीरथजी' नाम छोटे-बड़े, गरीब-अमीर, शहरी और ग्रामीण, सबमें समान रूप से श्रद्धेय रहा है।

उन्नीस सौ चवालीस। भारत की आजादी के स्पष्ट आसार नजर आने लगे थे। उस वक्त मुकुन्दगढ़ में कानोड़िया हाई स्कूल था। कॉलेज नहीं बना था। छात्रावास का खर्च आठ-दस रुपये महीना प्रति छात्र आता था। फिर भी देहात के मुझ जैसे गरीब विद्यार्थी इतना भी वहन करने की स्थिति में नहीं थे। एक उपाय सोचा गया कि एक नया छात्रावास और बनाया जाय। उसमें जो विद्यार्थी रहें वे अपने-अपने घर से आटा लाएं। मकान, लकड़ी, रसोइया, लालटेन, किरासिन तेल, पानी आदि का सारा खर्च ट्रस्ट का। दाल-साग सामूहिक और आटा अपना-अपना था ही। पुस्तकें स्कूल से मिलती ही थीं। स्कूल फीस भी माफ हो जाती थी। ट्यूशन फीस थी नहीं। महीने भर का खर्च सिर्फ रुपया सवा रुपया। मैं सोचता हूं इससे सस्ती पढ़ाई कहीं क्या होती होगी? २०-२५ विद्यार्थी और एक वार्डन। व्यवस्थित दिनचर्या में लगा हुआ छात्रावास।

भागीरथजी मुकुन्दगढ़ पधारे। उनके शिक्षा प्रेम को केवल महसूस किया जा सकता है, वर्णन नहीं। शाम के पांच बजे थे। आ पहुंचे छात्रावास में। देखने लगे एक-एक चीज को बारीकी से। बनता हुआ खाना, पानी का हौद और फिर देखे कमरे। कमरों में खिड़कियां नहीं थी केवल दरवाजे थे। बात करने लगे हमसे। हम देहाती बालक अन्डरवियर पहने हुए थे। नेकर सिर्फ स्कूल के लिए थी जिसे सम्भाल कर रखते थे। बोले—'नेकर कोनी थार कनैं?' हमने कहा—'है।'

"तो पैरणो चाये। ओ जांगियो तो नेकर कै नीचै पैं' रण को हुवै है," उन्होंने कहा। "म्हे इस्कूल जावां जद नेकर पैहर जावां। अठै पैंरणों सूं मैंलो हुज्यावै," हमने उत्तर दिया।

उन्होंने प्रसंग बदला और वार्डन साहब से कहा, "कमरां मं अंधेरो है। हवा क्रौस कोनी हुवै। टाबरां रै स्वास्थ्य पर बुरो असर पड़ै है। अर ओ मकान कीं को है?" वार्डन साहब ने उन्हें काफी बातें बतलायी होंगी। वे उनके साथ ही बाहर निकल गये।

दो दिन बाद हमें सिला-सिलाया एक-एक नेकर मिल गया। छात्रावास के तमाम कमरों में खिड़कियां और रोशनदान लग गये। सारा व्यय वहन किया

भागीरथजी ने। ऐसे थे उदारमना भागीरथजी जिनके कोमल दिल में अशक्त और गरीब के आत्मसम्मान को सशक्त बनाने की एक सुदृढ़ लगन थी।

x x x

गर्मी आ चुकी थी लेकिन सतानेवाली नहीं थी। प्रीपेरेशन-लीव चल रही थी। दिन भर पढ़ाई करने के बाद हम छात्रावास के चौक में तख्ते डालकर हवा का आनन्द ले रहे थे। छात्रावास का चौक काफी खुला था। शाम के सात बजे होंगे। हम वापिस अपने-अपने कमरों में जाने की तैयारी कर रहे थे कि अचानक भागीरथजी आ गये। एक सौम्य वातावरण का अवतरण उनके आगमन के साथ हुआ। चेहरे खुशी से चमक उठे। उठकर उनका अभिवादन किया। वे एक तख्ते पर बैठ गये और हम उनके चारों ओर। एक-एक का नाम व गांव पूछा। फिर लगे तलाशने ग्रामीण जीवन की झांकी, लोक-साहित्य के माध्यम से। बोले, "गांव की नेपै खेडा बतावै" मुहावरै को के अरथ हुवै ? किसी ने कुछ अर्थ बताया और किसी ने कुछ। स्वयं उन्होंने इसे स्पष्ट किया और फिर कहा कोई ग्रामीण कहानी सुनाने को। हमारे एक साथी ने एक लोककथा सुनाई। परन्तु कहानी का उद्देश्य पूछा तो चुप। खैर पहले उन्होंने उस कहानी का उद्देश्य बतलाया और फिर एक लोककथा सुनाई। वह आज तक हमारे मानस पर अंकित है। आज भी जब हम मिलते हैं तो भागीरथजी के साथ वह लोककथा याद आती है। कथा सार इस प्रकार है—"एक समै की बात है कै देस में चारूं कूंटा कठे भी बिरखा कोनी हुयी। मिनख, जिनावर अर पखेरू घणां दुखी होगा। नोबत अठै ताणी आ पूंची कै चातक भी घबरा उठयो। थावस की भी अेक हद हुवै है पण जद पिराण जाणैं लागै तो कठै तक थावस राख्यो जावै। आखर हार'र चातक फैसलो करयो कै स्वाति-बूंद तो मिलै कोनी कोई साफ सुथरी तलायी को पाणी ही पी लियो जावै जिसूं पिराण तो बचै। मन नैं मसोस वो चातक उत्तराखण्ड मांय पाणी की तलास में चाल पड़यो। उड़ता-उड़ता रात हुयी जद अेक पेड़ पर बासो लियो। बी पेड़ पर अेक हंस-हंसणी को जोड़ो भी बिसराम कर‍र्यो हो। बै बतलाया—बिरखा न होणैं सूं जीवां को धरम डिग चुक्यो है। सै आप आप की मरजादा छोड़ चुक्या है पण चातक ओजूं अयां को पखेरू बच्यो है जी आपकी मरजादा कोनी छोड़ी। पिराण भलै ही जावै पण चातक धरती को पाणी कद पीवै। चातक जद आ बात सुणी तो बी नै आपरै बंस की मरजादा अर सम्मान को ग्यान हुयो। पाछो ही उडगो आपरै देस जठै सूं आयो हो।"

कथा सुनाने के बाद उन्होंने कहा—"देखो, पपीहे की ज्यूं मिनख नैं आपकी मान-मरजादा राखणी है चाहे पिराण चल्या जावै।"

x x x

शेखावाटी और अकाल, अकाल और शेखावाटी इतना मेल बैठ गया था कि एक दूसरे के पर्याय से नजर आने लगे। यहां का आदमी भी अकाल का इतना अभ्यस्त हो गया था और है कि भयंकरतम परिस्थितियों में भी धैर्य नहीं छोड़ता है और राह भटके मृग की तरह इधर-उधर जीने की राह तलाशता रहता है। अकाल और

आदमी सदैव एक दूसरे से जूझते रहे परन्तु अकाल और पशु जूझने लगें तो गांवों के 'जोहड़' और 'खेड़ों' में पशुओं के अस्थि पंजर ही अस्थि पंजा नजर आयेंगे।

ऐसी ही स्थिति थी अकाल की। एक समिति बनी अकाल समिति। उसमें एक बड़ी धनराशि स्व० भागीरथजी द्वारा की गई थी। भागीरथजी समिति के अध्यक्ष थे। जगह-जगह राहत के नाम पर राशि बांटी गयी। प्रत्येक गांव और प्रत्येक घर त्रस्त था। कलकत्ता से चलकर अकाल राहत कार्य देखने भागीरथजी आये। मुकुन्दगढ़ ठहरे। सुबह सात बजे ही निकल पड़े गांवों में। करीब नौ बजे होंगे कि एक घर पर 'गोबर बुहारी' करके एक बुढ़िया (हरिजन) 'छाछ राबड़ी' और रोटी लेकर घर जा रही थी। ज्योंही वह गुवाड़ से में पहुंची कि एक जीप से उतरा एक आदमी, काली टोपी पहने, दुबला-पतला सा परन्तु आवाज का धनी। वह तपाक से बुढ़िया के पास गया और 'हांडी' पर से रोटी उतार ली। उसमें से एक छोटा सा टुकड़ा तोड़ा और लगा खाने। बाकी रोटी वापिस दे दी। फिर बोले—"बाजरी मिट्ठी है पण रोटी करड़ी है।" देखने वाले अवाक रह गये। भागीरथजी ने चमारीं की हाथ की रोटी खाई। उनके प्रति गांव वालों की अटूट श्रद्धा थी। बात दो तीन दिन में सारे गांव में फैल गयी। ज्यों-ज्यों बात फैलती जा रही थी समाज से छुआछूत मिटती जा रही थी।

प्रणाम ऐसे मानव को जिसकी वाणी से वायुमण्डल शुद्ध हो और जिसका कर्म इतिहास बनता जाये।

—:०:—

राजस्थान सरकार में उप सचिव, लेखक
श्री पदमचन्द सिंघी

मेरे ताऊजी

सुबह-सुबह बिस्तर छोड़ कर उठा ही था कि टेलीफोन पर किसी ने खबर दी कि कलकत्ते में पिछली रात ही (२९ अक्टूबर १९७९) श्री भागीरथजी कानोड़िया का देहावसान हो गया है। सुनकर स्तब्ध रह गया। एक गहरा धक्का लगा। मन और मस्तिष्क में अनेकों बातें और घटनाएं ताजा होने लगीं।

राजस्थान से केवल लोटा-डोर लेकर कलकत्ते में कमाई के उद्देश्य से जानेवाले सैकड़ों-हजारों मारवाड़ियों में से विरले ही ऐसे हैं जिन्होंने धन के साथ-साथ जन-सेवा के क्षेत्र में अपने व्यक्तित्व और कृतित्व से यश भी कमाया हो। श्री भागीरथ कानोड़िया उन इने गिने व्यक्तियों में से एक हैं जो नाम से आगे बढ़ कर वास्तव में एक संस्था ही बन गये थे। शिक्षा का क्षेत्र हो, समाज-सुधार का क्षेत्र हो, स्वास्थ्य एवं चिकित्सा का क्षेत्र हो या राजनैतिक क्षेत्र हो—हर क्षेत्र में भागीरथजी की प्रेरणा, उनका योगदान सर्वप्रथम उपलब्ध हुआ। उन्हें स्कूली या कालेजी शिक्षा नहीं मिली थी। गांधीजी के निकट सम्पर्क में आने मात्र से ही उनके जीवन-संस्कार उदात्त हुए और वे कलकत्ते के एक प्रमुख व्यक्ति बन गये। वे स्वभाव से बड़े शान्त, बुद्धि से बड़े तीक्ष्ण, मन से बड़े संवेदनशील और व्यवहार में बड़े कोमल एवं मधुर थे। जो भी उनके सम्पर्क में एक बार आया, वही सदा-सर्वदा के लिये उनका हो गया—उनके व्यक्तित्व की छाप उसके मन पर जम गई।

मेरे बड़े भाई श्री भंवरमल सिंघी के माध्यम से, जो स्वयम् कलकत्ते में पिछले-लगभग ४५ वर्षों से रहते हैं और वहां के राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक तथा शैक्षणिक जगत में होनेवाले कार्य-कलापों में ओत-प्रोत हैं, मुझे श्री भागीरथजी के सम्पर्क में आने का मौका मिला था। मैं उन्हें ताऊजी कहता था। सन् १९४६ का वर्ष याद आया जब भागीरथजी जयपुर में कांग्रेस अधिवेशन के समय हमारे घर पर आये थे और मैंने उन्हें शायद पहली बार देखा था। होठों पर मुस्कान और वाणी में अत्यन्त मिठास भर कर उन्होंने मुझसे पूछा था—"पदम, तू कांई पढ़ै हैं?" मैंने बताया था कि मैं अब मैट्रिक की परीक्षा दूंगा। उन्होंने पीठ थपथपायी और कहा था—"पढ़ाई नींका मन लगाकर करजे ताकि डिविजन चोखो आवे। भंवरमलजी थारी तारीफ करया करै" और उसके बाद पहली बार मुझे कलकत्ते आने का अवसर मिला तब उनके फिर दर्शन किये। पास बैठा, आने-जाने वाले लोगों के साथ उनके द्वारा की जानेवाली चर्चाएं सुनीं—और यह क्रम जब-जब कलकत्ते जाता तब-तब चालू रहता। मैं श्री भागीरथजी को "ताऊजी" कह कर सम्बोधित करता था, क्योंकि वे मेरे बड़े भाई श्री भंवरमलजी से उम्र में काफी बड़े थे और मैं अपने भाई साहब से १५ वर्ष छोटा हूं।

सन् १९५३ की बात है, जब मैंने बम्बई विश्वविद्यालय से एम० ए० की परीक्षा पास कर दिल्ली में श्री काका साहब कालेलकर की अध्यक्षता में भारत सरकार द्वारा गठित पिछड़े वर्ग आयोग में रिसर्च आफिसर के पद पर काम शुरू किया था। अगले वर्ष १९५४ में कमीशन की रिपोर्ट समाप्त होने पर मैं कलकत्ते आ गया था। सामने प्रश्न था कि अब क्या करना है ? बड़े भाई उन दिनों भागीरथजी के साथ उनके व्यावसायिक प्रतिष्ठान "दी जनरल फाइबर डीलर्स" में चीफ एक्जीक्युटिव डाइरेक्टर के रूप में काम तो कर रहे थे, पर उस सम्बन्ध से अधिक गहरा सम्बन्ध कानोड़ियाजी से उनका इसलिये था कि भाई साहब कलकत्ते के राजनैतिक, सामाजिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक और शैक्षणिक जीवन में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना चुके थे तथा भागीरथजी भी उस क्षेत्र में इने-गिने मारवाड़ियों में से एक थे। दोनों का कार्य-क्षेत्र एक था और इसलिये मालिक-नौकर के बीच की दूरी या सम्बन्ध का कोई अस्तित्व ही नहीं था। कानोड़िया परिवार और हमारे परिवार के सम्बन्ध समानता के स्तर पर थे, रहे और आज भी हैं। अतः जब मैं अपनी पत्नी लीला के साथ कलकत्ते में भाई साहब के पास था तो एक दिन ताऊजी ने मुझे पूछा—"तू अब के करणोरीं सोचै है ?" मैंने कहा "अभी कुछ तै नहीं किया" तो वे बोले—"तू बगहा (विहार प्रदेश) में आपणी जो शुगर की फैक्टरी है, ऊमें चलोजा। ठीक रैही। एसिस्टेन्ट मैनेजर बण जासी।" मैंने कहा "सोचूंगा और आपको बताऊंगा" उसके बाद उसी दिन उन्होंने नियुक्ति पत्र और साथ में एक सप्ताह बाद का रेल्वे रिजर्वेशन और टिकट मुझे भिजवा दिया। मैं सोच ही नहीं पाया था, पर उन्होंने मुझे अपना मान कर स्वयं ही मेरे भविष्य का निर्णय कर दिया था। यह उनके मन में मेरे प्रति होनेवाले स्नेह का प्रमाण था। खैर मेरी नियति तो मुझे राजस्थान में खींच रही थी, इसलिये मैंने ताऊजी की बात नहीं मानी और मैं राजस्थान आ गया—राजकीय सेवा स्वीकार कर ली। किन्तु ताऊजी का स्नेह वैसा ही बना रहा। राजस्थान में जब भी आते जरूर मिलते, मेरे परिवार के बारे में पूछते और मेरे द्वारा राजस्थान के ग्रामीण क्षेत्र में किये जाने वाले कार्य की चर्चा करते तथा प्रशंसा भी।

मुझे याद आती है, सन् १९७३ की बात, जब मैं सीकर जिले में अतिरिक्त-जिलाधीश के पद पर काम कर रहा था। ताऊजी वहां आये थे। ५-६ दिन ठहरे थे। उन्हें "पीपुल्स वेलफेयर सोसाइटी" के अन्तर्गत श्री बद्रीनारायणजी सोढाणी द्वारा किये जाने वाले कार्यों का निरीक्षण करना था। वे सांवली में ठहरे थे। मैं भी वहां गया था। काफी भीड़ थी उनसे मिलने वालों की। पर मुझे देखते ही पास बुलाया। अपने नजदीक बिठाया और क्षेम-कुशल पूछने के बाद कहने लगे—"पदम, थारो अठै रो काम खूब चोखो है। सोढाणी जी कवै था। मनै खूब खुशी हुई। तू सरकारी अफसर की तरै काम न कर, सेवा की भावना सूं करै है तो काम हुवै है।" और फिर अनेक प्रकार की चर्चा होती रही। कुछ गांवों की कठिनाइयां उन्होंने बताई और चाहा कि मैं उन्हें हल करने की चेष्टा करूं। मुझे सन्तोष है कि मैं कर पाया।

ताऊजी स्त्री-शिक्षा के बड़े कट्टर प्रचारक थे। उनकी मान्यता थी कि स्त्रियां जब तक शिक्षित नहीं होंगी तबतक हमारे देश का विकास अधूरा रहेगा। वे स्त्री-शिक्षा

ही नहीं स्त्रियों द्वारा घर से बाहर के क्षेत्र में काम करने के भी बड़े समर्थक थे। मेरी पत्नी लीला जयपुर ओसवाल समाज की प्रथम स्नातिका थी। उन्होंने वनस्थली विद्यापीठ जैसी संस्था से बाल्यकाल में शिक्षा ली और जयपुर के महारानी कालेज़ से स्नातक बनी। विवाह के बाद उन्होंने अध्यापन का कार्य करना तय किया। ताऊजी इसके लिये हमेशा उनकी तारीफ करते रहे। कहते थे "लुगायां भी घर से बाहर मोट्यार (मर्द) की नाई काम करै तो वांनै ज्यादा मुशकिल पड़ै। वांको त्याग मर्द सू ज्यादा होवै। लीला जैसी संस्कारी स्त्रियां बच्चा लोगों ने पढ़ावै तो टाबर अच्छा संस्कारी बणैगा। या बड़ी खुशी की बात है। मैं लीला ने धन्यवाद देऊं।" लीला के बारे में वे बराबर पूछते रहते और प्रशंसा करते थे। ताऊजी स्त्री-शिक्षा के बड़े भारी पोषक थे इसीलिये उन्होंने जयपुर में कानोड़िया महिला महाविद्यालय जैसी श्रेष्ठ संस्था की स्थापना की, जो राजस्थान में अपना सानी नहीं रखती।

एक और घटना याद आती है तब मैं राजकीय सेवा कार्य के अतिरिक्त बजाजनगर स्थित राजस्थान विद्यालय (बाल भारती) के सचिव, के रूप में भी काम कर रहा था। ताऊजी जयपुर आये थे। मैं उन्हें विद्यालय का काम दिखाने ले गया। देखा, चर्चा की और प्रशंसा भी। बोले—"चोखी सार्वजनिक संस्थाओं में पीसां की मुशकिल हमेशा ही रवै। पर चोखा काम करनिया नै पीसा मिल भी जावै।" उन्होंने कलकते जाकर स्कूल के लिये शायद दो हजार रुपयों का चेक भेज दिया।

ताऊजी को कोई नियमित शिक्षा नहीं मिली थी। जीवन-संघर्ष के माध्यम से और गांधीजी के सम्पर्क से उन्होंने अपना व्यक्तित्व स्वयम् निखारा था। उनकी बुद्धि अत्यन्त तीक्ष्ण थी और अनुभव सिद्ध कहावतें, मुहावरे और कहानियों का उनके पास अथक भण्डार था। बातचीत के दौरान अपनी बात की पुष्टि और उसको अभिव्यक्त करने में वे उस खजाने का खुलकर प्रयोग करते थे। ताऊजी नहीं रहे—उनकी भौतिक अनुपस्थिति हमें महसूस होती है, पर उनके व्यक्तित्व की छाप उनके द्वारा चलाई गई संस्थाओं और उनकी प्रेरणा से विकसित अन्य व्यक्तियों में आज भी सर्वत्र दिखलाई देती है और यही महत्व की बात भी है। आदमी शरीर से जीवित नहीं रहता, जीवित तो उसे उसके कार्य रखते हैं। ताऊजी कर्मठ व्यक्तित्व के धनी थे। वे "यथानाम तथा गुण" की कहावत चरितार्थ करते थे। कोई भी काम हो, हाथ में लिया तो भगीरथ-प्रयत्न के द्वारा उसे पूरा करते या कराते थे। तन-मन और धन से उसमें सहयोग देते थे। दानी थे—प्रकट और गुप्त दोनों प्रकार के दान उन्होंने दिये। आजादी के युद्ध में कूदे—जेल गये किन्तु आजादी के बाद कभी भी पद और सत्ता की राजनीति में नहीं फंसे। परन्तु सेवा—देश और समाज की सारी जिन्दगी करते रहे। ताऊजी आज नहीं हैं उनकी यादें हमारे साथ हैं। उनके प्यार और प्रेरणा भरे शब्द और वाक्य आज भी कानों में गूंजते हैं। गूंजते रहें—यही कामना है। उनके प्रति हमारी श्रद्धांजलि तभी पूर्ण होगी जब हम उनके द्वारा चलाये कामों को आगे बढ़ायें।

—:०:—

जैन साध्वी
श्री गुलाब कंवरजी

सामाजिक क्रान्ति के अग्रदूत

सज्जन व्यक्ति की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए शास्त्रकारों ने कहा है—

धर्मे तत्परता, मुखे मधुरता, दाने समुत्साहिता
मित्रेऽवंचकता, गुरौ विनयिता, चित्तेऽति गम्भीरता।
आचारे शुचिता, गुणे रसिकता, शास्त्रेऽति विज्ञानिता
रूपे सुन्दरता, हरौ भजनिता, सत्सेव सदृश्यते ॥

अर्थात् धार्मिक प्रवृत्ति का होना, वाणी में माधुर्य, दान में उत्साह-सम्पन्नता, मित्रों के साथ विश्वासघात न करनेवाला, गुरु के प्रति विनम्र भावना, चित्त में गम्भीरता, आचार की पवित्रता, गुण ग्रहण में अति रुचि, शास्त्र-ज्ञाता, आकृति में लावण्य और हरि का भजन करने वाला—ये सब गुण सज्जन व्यक्ति में विद्यमान रहते हैं।

भागीरथजी कानोड़िया उपर्युक्त सभी गुणों से युक्त थे। धार्मिकता, दयालुता, आचार-निष्ठा उन्हें संस्कारलब्ध थीं। उनकी सबसे बड़ी जो विशेषता थी, वह थी दयालुता। जिस किसी के साथ भी वे अन्याय होता देखते, उसके प्रतिकार में तुल जाते। वहां वे यह नहीं सोचते, कौन-सा पलड़ा भारी है, कौन-सा हलका है। प्रायः देखा जाता है कि व्यक्ति हमेशा झुकते पलड़े के ही साथी होते हैं, पर कानोड़ियाजी इसके अपवाद थे। उनका पक्ष सदैव सत्य व न्याय के साथ रहता। मेरी अपनी आपबीती घटना है—उदयपुर में हम तीनों साध्वियों के साथ जो कुछ अनुचित घटित हुआ, उसका समाचार कानोड़ियाजी को मिला। वे यह सुनकर स्तब्ध रह गये। उन्होंने कहा—अबला साधिकाओं के साथ भी कभी ऐसा घटित किया जा सकता है? उन्होंने आचार्य तुलसी को पत्र लिखा कि आपने जो यह निर्णय लिया है, वह व्यवहार एवं मानवता के विरुद्ध है। आपको अपने निर्णय पर पुनर्विचार करना चाहिए। सामान्य स्थिति में भी ऐसा निर्णय अनुचित है, जबकि उन तीनों साध्वियों में से एक साध्वी पूर्णतया अस्वस्थ है, रुग्ण हैं। उन्होंने एक पत्र उदयपुर के श्रावकों के नाम भी लिखा कि साध्वीश्री से कह देना कि वे तनिक भी चिन्ता न करें, मैं आपके साथ हूं। जो भी अन्याय हुआ है, उसका हमें डटकर प्रतिकार करना है। उसके पश्चात् कई बार उनके पत्र आये। वे स्वयं भी आने के लिए बड़े उत्सुक थे, किन्तु, वार्धक्य एवं शारीरिक दौर्बल्य के कारण वैसा सम्भव नहीं हो सका।

एक अजनबी, अपरिचित व्यक्ति किसी के दुःख में इतना हमदर्द हो जाये, यह सहसा विश्वास नहीं होता, किन्तु, यह सत्य है। कानोड़ियाजी से हमारा कभी साक्षात्कार

तक भी नहीं हुआ। उनके नाम और काम से यद्यपि हम परिचित अवश्य थीं, पर, इस अवसर पर हमने उनके नाम और काम की वास्तविक सार्थकता देखी।

कानोड़ियाजी सम्प्रदायातीत व्यक्ति थे। उन्हें किसी सम्प्रदाय, समाज या व्यक्ति से कोई मोह नहीं था। अच्छी बात जहां भी देखते, वे उसका समर्थन करते तथा जहां अन्याय होता देखते, उसके विरोध में खड़े हो जाते। उनका संघर्ष किसी व्यक्ति से नहीं होता, अपितु, बुराइयों से होता। वे सदैव विशुद्ध धर्म एवं स्वस्थ समाज की संरचना चाहते थे।

उपाध्याय मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' के साथ बनारस में जो कुछ घटित हुआ, उसके प्रतिकार में कानोड़ियाजी ने प्रशंसनीय भूमिका का निर्वाह किया। अभिनिष्क्रमण के पश्चात् उपाध्यायश्री जब प्रथम बार कलकत्ता पधारे, उनका विराट् अभिनन्दन समारोह कानोड़ियाजी की अध्यक्षता में रखा गया था। उस अवसर पर उन्होंने जो उद्‌गार व्यक्त किये थे, वे कठोर से कठोरतर मानस को भी पानी-पानी कर देने वाले थे।

उन्होंने अपना सारा जीवन समाज सेवा में समर्पित कर दिया था। कहना चाहिए, सामाजिक क्रान्ति के वे भागीरथ थे। जब यह सुनने को मिला कि कानोड़ियाजी अब इस संसार में नहीं रहे, तो मन पर एक आघात-सा लगा। उनकी कमी समाज को सदैव खटकती रहेगी।

—: ० :—

जैन आचार्य

पूज्यपाद मुनिश्री नगराजजी

सूझबूझ के धनी

अनेक बार के साक्षात् सम्पर्क से जाना स्व० भागीरथजी कानोड़िया दूरदर्शी, निडर व सूझबूझ के धनी पुरुष थे। जहां भी अन्याय व उत्पीड़न होता, वे पीड़ित-पक्ष के सहयोग में खड़े होते। स्व० उपाध्याय मुनि महेन्द्रकुमारजी एवं विदुषी साध्वी श्री गुलाब कंवरजी आदि भगिनी-त्रय के साथ घटित प्रसंग ज्यों ही सामने आया, उन्होंने स्पष्ट-स्पष्ट बातें आचार्य श्री तुलसी को लिखीं—इन लोगों के प्रति अन्याय हुआ है, आप दुबारा अपने निर्णयों पर विचार करें, आदि-आदि। जबकि अन्याय हुआ है, यह सारे समाज ने माना था, पर सम्बन्धित बड़ी शक्ति के निर्णय को गलत बताकर उसे नाखुश करने की जोखिम कानोड़ियाजी ने ही उठाई।

सामाजिक संघर्षों को वे कितनी सूझबूझ से पटा दिया करते थे, उसका ज्वलन्त उदाहरण है—ओसवाल बिरादरी में श्रीसंघ-विलायती का झगड़ा पराकाष्ठा पर था। कोठारी व सुराणा उसके मुख्य बिन्दु थे। एक बार होली के दिनों में एक पक्ष 'चंग मण्डली' एक प्रमुख कोठी पर चढ़ कर दूसरे पक्ष के प्रति मजाकिया व घटिया स्तर के आक्षेपात्मक गीत गाने लगी। फिर क्या था। दूसरे पक्ष से लोग भी 'चंग' ले लेकर पास वाली कोठी पर मच गये। आक्षेपात्मक व भद्दे गीतों का समा बंध गया। अपने-अपने पक्ष की भीड़ जमा हो गई। गाने व नाचने वालों में जोश भरने लगा। मिठाई, पूड़ी, कचौरी, पकौड़ी सब कुछ वहां पहुंचने लगे। पहले नीचे कौन उतरे, यही हार-जीत की बाजी हो गई। समाज के अनेक बड़े बुजुर्ग आनें लगे और दोनों को हटाने का प्रयत्न करने लगे, पर, सब व्यर्थ। रात पड़ने लगी। अन्त में कानोड़ियाजी व उनके सहकर्मी आये। दोनों पक्ष एक ही बात कहते—पहले उनको उतारिये। अन्त में कानोड़ियाजी ने एक समान हल दोनों को मनवा ही दिया। उन्होंने कहा—दोनों पक्षों का साथ-साथ उतरना होगा। दोनों कोठियों पर रस्सा ले-लेकर मध्यस्थ लोग पहुंच गये। दोनों उन्मत्त मण्डलियों को अपनी कोठी से नीचे उतारा। झगड़ा सिमट गया। न कोई ऊंचा न कोई नीचा। ऐसे थे सूझबूझ के धनी कानोड़ियाजी!

—:०:—

राजस्थान गोशाला पिंजरापोल संघ के मंत्री

श्री ज्ञानचन्द मोदी

गो-सेवक भागीरथजी

भागीरथजी के साथ मेरे भी कुछ आत्मीय सम्बन्ध थे और वे बने थे गोमाता के माध्यम से। कहना न होगा कि एक हृदयशील गो सेवक हमसे बिछुड़ गया। ६ मार्च, १९७९ की बात है राजस्थान गोशाला पिंजरापोल संघ के वार्षिक अधिवेशन की गोसम्वर्धन गोष्ठी में वह पधारे थे। पूरे एक दिन का समय दिया था।

इस गोष्ठी में कानोड़िया जी ने अपना आशीर्वाद देते हुए कहा : हिन्दू संस्कृति गो प्रधान संस्कृति है। यह देश कृषि प्रधान संस्कृति का देश है। आज भारत में कृषि का ह्रास हो रहा है जो अनाज पैदा किया जा रहा है उसमें वह स्वाद आज ढूंढने से भी नहीं मिलता क्योंकि आज जो अनाज पैदा किया जा रहा है वह नकली खाद द्वारा किया जाता है। गोबर की खाद द्वारा पैदा हुए अनाज का स्वाद हमने चखा है इसलिए यह फर्क हम अनुभव करते हैं। आज गोबर की खाद नहीं मिलती। अतः गायों का पालन एवं वर्धन आवश्यक हो गया है। गाय हमारे लिये उपयुक्त पशु है। गाय हमारा धन है। हमारी संस्कृति गोधन शब्द का ही प्रयोग करती आ रही है। वेद में कहा है कि गाय अवध्य है उसका वध नहीं होना चाहिये लेकिन दुःख से कहना पड़ता है कि आज गो सेवकों के देश में, गोपालकों एवं गो पूजकों के देश में यह सब हो रहा है। यह भारतीय संस्कृति के लिए अमिट लांछन है। अनुपयोगी गोधन के लिये गो सदन खोलने होंगे। उनमें गायों का संगोपन करना होगा। गोमाता के हम पर अनंत उपकार हैं। हजारों साल से उसकी वंश परम्परा हम पर उपकार किये जा रही है। उसका बदला हमें चुकाना होगा। मतलब उसकी रक्षा होनी चाहिये। गोवध निषेध कानून बनाने के साथ साथ गाय के पालन-पोषण की भी व्यवस्था होनी चाहिये। उसके संतुलित आहार की व्यवस्था में भी हमें सक्रिय बनना चाहिये। गो विकास एवं गो वंश वर्धन में मेरी रुचि है। मैंने जितनी गोशालाएं देखी है उनमें जयपुर की गोशाला अपने ढंग की एक अच्छी उदाहरण है।

आज से लगभग ४० वर्ष पहले की बात है भागीरथजी ने कलकत्ते में गो सेवा के लिये एक कमेटी बनाकर सारे राजस्थान की गोशालाओं की सक्रिय सहायता की थी। तब राजस्थान में अकाल पड़ा था और उन्होंने लाखों की धनराशि भेजकर स्थान-स्थान पर पानी और चारे का प्रबंध किया था। उनकी गो सेवा की यह लगन कभी भुलाई नहीं जायेगी। उनकी नम्रता भी भुलाई नहीं जा सकती। एक दिन की बात है कल्याण आरोग्य सदन सीकर में एक सभा में रामेश्वरजी टांटिया ने उन्हें कहा 'बाबू, आप तो बद्रीनारायणजी को बहुत मानते हैं।' तो उन्होंने कहा 'मैं तो मुनीम हूं सेठ तो बदरीनारायणजी हैं।'

—: ० :—

प्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्री, विद्याभवन उदयपुर से संलग्न
श्री केसरीलाल बोर्दिया

लोक-सेवी संस्थाओं के प्राण

श्रद्धेय भागीरथजी कानोड़िया ने राजस्थान की स्वयंसेवी संस्थाओं की जो सेवा की है, वह भुलाई नहीं जा सकती। किसी भी प्रगतिशील शैक्षिक संस्था को जब वित्तीय संकट का सामना करना पड़ता था तब पहले सहायता के लिए उनसे निवेदन किया जाता था और जहां तक मेरी जानकारी है, संस्था की अपील कभी व्यर्थ नहीं जाती थी। मुझे याद है कि विद्याभवन, उदयपुर की ओर से जब कभी उनसे अनुरोध किया गया उन्होंने हर समय उसे स्वीकार किया।

वित्तीय सहायता के अतिरिक्त राजस्थान की कई संस्थाओं को उनका मार्गदर्शन भी प्राप्त होता रहता था। कुछ विशिष्ट संस्थाएं तो उनकी प्रेरणा से स्थापित हुईं हैं। उनकी उदारता का प्रतीक जयपुर का कानोड़िया कॉलेज आज राजस्थान के सर्वोत्तम महाविद्यालयों में गिना जाता है।

समाज-सुधार के क्षेत्र में भी श्रद्धेय भागीरथजी की देन अत्यन्त महत्वपूर्ण रही है। राजस्थान हरिजन सेवक संघ को कई वर्ष तक उनका मार्गदर्शन प्राप्त होता रहा है। कई विद्यार्थियों और रचनात्मक कार्यकर्ताओं को अपने जीवन-निर्माण और सेवा कार्य में भागीरथजी से अपार सहायता और समर्थन प्राप्त होता रहा है।

मैं जब भी कलकत्ते जाता तो लेक के किनारे उनके दर्शन हो जाते थे और वे विद्याभवन तथा यहां की अन्य संस्थाओं के बारे में तथा स्वयं मेरे लिये सहानुभूतिपूर्वक पूछताछ करते थे। जो भी उनके सौम्य व्यक्तित्व से सम्पर्क में आये हैं वे उन्हें कभी भूल नहीं सकेंगे।

मैं उन्हें सम्मानपूर्वक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं।

—:०:—

विद्या-भवन उदयपुर के भूतपूर्व कार्यालय-सचिव

श्री केशवचन्द्र शर्मा

सम्पदा के मात्र ट्रस्टी

सन् १९४६ में मैं डॉक्टर श्रीमाली साहब के साथ कलकत्ता गया तब भागीरथजी के प्रथम दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उसके बाद कई बार उनसे मिलता रहा। उनका मार्गदर्शन प्राप्त करता रहा। विद्यालय को जब भी आर्थिक संकट आया—हमलोग श्री कानोड़िया साहब के पास अपनी पुकार पहुंचा देते, वे अपनी ओर से और जहां से भी सम्भव होता योगदान दिलाते।

एक बार शेखावाटी में श्री कानोड़िया साहब की चोरों से मुठभेड़ हुई। उनको चोट आई है, यह सूचना पाकर मैं मुकुन्दगढ़ उनसे मिलने गया तो उन्होंने कहा, "अरे, इस छोटी सी बात के लिए तुमने यहां आने का कष्ट किया" लेकिन मुझे मुकुन्दगढ़ जाने पर जो व्यापक कार्य श्री कानोड़िया साहब ने जन-सेवा का हाथ में ले रखा था, उसकी जानकारी मिली—उस समय ५८ गांवों में बच्चों की शिक्षा का कार्य उन्होंने अपने हाथ में ले रखा था। इसके अलावा मुकुन्दगढ़ में उन्होंने बालिकाओं का माध्यमिक स्कूल तथा बालकों के लिए एक महाविद्यालय चला रखा था। उनके जीवन से हम लोग बहुत कुछ ग्रहण कर सकते हैं। वे रुपया कमाते थे किन्तु उसका सदुपयोग भी करते थे। उनका रहन-सहन बड़ा सादा था भावनाएं बड़ी ऊंची थी। वे सार्वजनिक क्षेत्र में कार्य करने वालों से बड़ी अपेक्षा रखते थे और जो व्यक्ति चरित्र की दृष्टि से ऊंचा लगता सदैव उसकी सहायता करते थे। वे अपने को रुपये का ट्रस्टी मानते थे और उसका अधिक उपयोग अपने पर कभी नहीं करते थे। राजस्थान में कोई सार्वजनिक सेवा का क्षेत्र नहीं है जहां श्री भागीरथजी ने उदारतापूर्वक सहायता न की हो।

पहले तो वे सदैव दूसरों से मदद कराने का भी यत्न करते थे लेकिन बाद में वे कहने लगे "लोगों की आँख में अब कार्य नहीं है इसलिए मेरी ओर से जो कुछ करना है कर देता हूं। और लोगों से कहने को मेरा जी नहीं करता—"

अपने जीवन से उन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि व्यक्ति अपनी व्यावसायिक प्रगति के साथ-साथ सार्वजनिक क्षेत्र में पूर्ण योग दे सकता है। उनका जीवन सदैव आने वाली पीढ़ी का पथ प्रदर्शन करता रहेगा। उन्होंने अपने जीवन में गीता के तीसरे अध्याय के २१ वें श्लोक को चरितार्थ किया है :—

यद्यदा चरति श्रेष्ठ स्तत्त देवेतरो जनः
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ।।२।।

—: ० :—

भूतपूर्व संसत्सदस्य, पत्रकार
श्री ओंकारलाल वोहरा

आलोक-स्तंभ

स्वाधीनता संग्राम का माहौल था। देशी रियासतों में भी जगह-जगह प्रजामण्डलों के मंच से आजादी की चेतना और उत्तरदायी शासन की मांग जोर पकड़ रही थी। इसी प्रसंग में सन् १९४० के आसपास महात्मा गांधी का सन्देश लेकर जमनालालजी बजाज उदयपुर के महाराणा से मंत्रणा करने आये थे। लोकनायक माणिक्यलालजी वर्मा द्वारा इन्हीं दिनों मेवाड़ प्रजामण्डल की स्थापना हुई थी और उनके मार्गदर्शन में अनेक कार्यकर्ता राष्ट्रीय जनजागरण में सक्रिय होने लगे थे। इसके पूर्व सन् १९३१-३२ के आसपास बापू से आशीर्वाद प्राप्त कर शिक्षाविद् डा० मोहनसिंहजी मेहता ने आधुनिक शिक्षण के उद्देश्य से विद्याभवन की स्थापना की थी। इसी तरह जयपुर प्रजामण्डल के संस्थापक पं० हीरालालजी शास्त्री द्वारा वनस्थली विद्यापीठ और महामना मालवीयजी से प्रेरित होकर पं० जनार्दनराय नागर द्वारा राजस्थान विद्यापीठ आदि अनेक राष्ट्रीय शिक्षण संस्थाओं का विस्तार हुआ। इस तरह शैक्षणिक एवं रचनात्मक कार्यों के द्वारा सामान्य लोगों में राष्ट्रीय चेतना का तेजी से प्रचार और प्रसार प्रारम्भ हुआ।

राष्ट्र और समाज के बदलते हुए इस वातावरण में मैं अपने जन्म-स्थान उण्ठाला (अब वल्लभनगर) से हाई स्कूल एवं आगे की पढ़ाई करने के लिए १९३९-४० में उदयपुर पहुंच गया था। भागीरथजी कानोड़िया व्यवसायी और उद्योगपति परिवार के होते हुए भी बापू के आदर्शों से प्रेरित एवं राष्ट्रीय आन्दोलन की धारा से प्रभावित थे और बंगाल एवं राजस्थान के राष्ट्रीय नवजागरण में गहरी दिलचस्पी रखते थे। राजस्थान और विशेषकर उदयपुर की रचनात्मक संस्थाओं को प्रारम्भ से ही उनका सक्रिय सहयोग मिलने लगा। तभी से मैं उनके बारे में सुनता आ रहा था और उनके व्यक्तित्व से प्रभावित होने लगा था। व्यवसायी तथा उद्योगपति से अधिक वे स्वाधीनता संग्राम के सेनानी थे। सन् १९४२ के राष्ट्रीय आन्दोलन में वे जेल भी गये। उन्हीं दिनों बंगाल के भीषण अकाल में उनकी महान सेवाओं से ब्रिटिश सरकार तक प्रभावित हुई और वे देश के विश्वस्त एवं उच्च कोटि के नेताओं में सम्मानित एवं लोकप्रिय होते रहे।

परन्तु उनके दर्शन मैं सन् १९४८ में ही कर पाया। देशी रियासतों के प्रसिद्ध नेता लोकनायक श्री जयनारायण व्यास ने राजस्थान की रियासतों के एकीकरण की आवाज बुलन्द करने के लिए कलकत्ता में "रियासती लोक संघ" की स्थापना की और "रियासती आवाज" साप्ताहिक पत्र के प्रकाशन की योजना बनी। इसी "रियासती

आवाज" साप्ताहिक के सम्पादन के लिए मुझे सेकसरियाजी का आमंत्रण मिला। तब से सन् १९४८ से कानोड़ियाजी के निकटतम सम्पर्क में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। अनेक ऐसे प्रसंग और संस्मरण हैं जिनमें उनकी महान उदारता, त्याग और मूक सेवा की स्मृतियां उजागर होने लगती हैं। उनकी मानवता, निष्पक्षता एवं प्रगतिशील दृष्टिकोण का परिचय मिलता है। उन दिनों मारवाड़ी समाज में पर्दा-प्रथा, दहेज, अंधविश्वास एवं अन्य सामाजिक कुप्रथाओं के विरोध में बसन्तलालजी मुरारका, विश्वमित्र संचालक मूलचन्दजी अग्रवाल, कर्मठ कार्यकर्ता भंवरमलजी सिंघी आदि अनेक समाजसेवकों के नेतृत्व में प्रबल आन्दोलन जारी था। सारे देश पर उसका व्यापक प्रभाव पड़ रहा था। भागीरथजी समाज सुधार के इन प्रयत्नों में उदार सहयोग के लिये तथा इनके सक्रिय समर्थक के रूप में प्रख्यात थे।

ऐसा ही एक प्रसंग है जिसमें उनके उदार चरित्र एवं विचार-स्वतंत्रता के प्रति उनकी निष्ठा का अद्भुत उदाहरण मिलता है। नई पीढ़ी के युवकों और साथियों ने भाई भंवरमलजी को सन् १९५२ के प्रथम आम चुनाव में कलकत्ता के बड़ाबाजार क्षेत्र से प्रगतिशील विचारक के रूप में लोकसभा के लिए उम्मीदवार वनाया, जहां कांग्रेस के अधिकृत उम्मीदवार प्रसिद्ध सोलिसीटर समाजसेवी प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका थे। सिंघीजी कानोड़ियाजी के औद्योगिक प्रतिष्ठान में वरिष्ठ पद पर काम करते थे। हिम्मतसिंहकाजी, कानोड़ियाजी के सहकर्मी एवं जीवन-साथियों में गिने जाते थे। बिड़ला परिवार का भी उनपर वरदहस्त था। तब भी चुनाव के सम्पूर्ण अभियान में किसी तरह का मनोमालिन्य उनके मन में नहीं आया। वे हिम्मतसिंहकाजी के साथ थे लेकिन सिंघीजी और हम सब साथियों को निर्भय होकर चुनाव अभियान चलाने में कोई दिक्कत नहीं आयी। विचार-स्वतंत्रता के सम्मान का ऐसा उदार उदाहरण अन्यत्र कम ही मिलेगा।

इसी तरह मारवाड़ी बालिका विद्यालय, शिक्षायतन, भारतीय भाषा परिषद आदि अनेक शैक्षणिक और राष्ट्रीय संस्थाओं में कानोड़ियाजी का योगदान आंका नहीं जा सकता। वे प्रचार-प्रकाशन की महत्वाकांक्षा से हमेशा दूर रहे जबकि वे इन संस्थाओं के प्राण थे।

आजादी के बाद राजस्थान सरकार ने भागीरथजी के संचालन में पीने के पानी की समस्या का हल करने के लिए जल-बोर्ड का गठन किया। उन्होंने प्रचण्ड लू एवं गर्मी में राजस्थान के रेतीले धोरों में गांव-गांव घूम कर पीने के जल की व्यवस्था के लिए कुओं के निर्माण में पूरी शक्ति लगा दी। समाजसेवी रामेश्वरजी टांटिया व कर्मठ कार्यकर्ता बदरीनारायणजी सोढाणी इस काम में उनके सक्रिय सहयोगी थे। इसी दौरान अचानक जीप एक्सीडेन्ट के कारण भागीरथजी को प्रायः ६ माह तक बिस्तर पर रहना पड़ा। भगवान की दया एवं पुण्यों के प्रताप से ही बच पाये। राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसादजी भी तब अपने पुराने सहयोगी का कुशलक्षेम पूछने आये थे।

बाबू भागीरथजी अत्यन्त संवेदनशील थे। दूसरों की व्यथा-पीड़ा सुन-समझ कर भावविह्वल हो जाते थे। उनकी आन्तरिक मानवता मुखर हो उठती थी। मानव स्वभाव के गहरे पारखी भागीरथजी का द्वार सामान्य से सामान्य जन के लिए

खुला रहता था। गम्भीर प्रकृति एवं चिन्तनशील होते हुए भी विनोद और हास्य भी उनके स्वभाव में कम नहीं था। बड़े से बड़े उद्योगपति और उच्चतम राजनेता से लेकर सामान्य व्यापारी और कार्यकर्ता से वे समान स्तर पर सहज भाव से मिलते थे। देश की बढ़ती हुई जनसंख्या के प्रति न केवल चिन्तातुर थे बल्कि उसके समाधान के लिए परिवार नियोजन के अभियान में सक्रिय सहयोगी बन गये थे।

साहित्यकारों विद्वानों कलाकारों एवं सांस्कृतिक पुरुषों के प्रति उनकी श्रद्धा और सम्मान किससे छिपा है। हरिभाऊ उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त, रायकृष्ण दास, महादेवी वर्मा आदि उनके घनिष्ठ मित्रों में रहे। यों वे स्वयं भी साहित्य प्रेमी थे। राजस्थानी भाषा, लोकगीत, लोककथा एवं लोक संस्कृति के मर्मज्ञ एवं सिद्धहस्त लेखक थे। भाषा पर उनका अपना अधिकार था।

हिन्दी जगत का शायद ही कोई मूर्धन्य विद्वान और साहित्यकार हो जिसे उनके स्नेह और आतिथ्य का अवसर न मिला हो। अपने औद्योगिक प्रतिष्ठान के कार्यों में व्यस्त रहते हुए भी सार्वजनिक सेवा कार्यों से सम्बन्धित पत्रों का उत्तर वे अपनी हस्तलेखनी से प्रायः हिन्दी में ही दिया करते थे, चाहे पत्र सामान्य कार्यकर्ता का ही हो। वे हरदिल अजीज थे। समाज के सभी वर्गों का उनके प्रति आदर और श्रद्धाभाव था। अपनी निष्पक्ष दृष्टि एवं न्यायप्रियता के लिए उन्हें सर्वत्र ख्याति मिली। जिससे भी मिलते उसके दुख-दर्द, परिवार, क्रियाकलाप एवं गतिविधियों का परिचय प्राप्त कर निकटता एवं आत्मीयता का सम्बन्ध जोड़ लेते। फिर मिलने वाला व्यक्ति सदा के लिए समर्पित हो जाय, इसमें आश्चर्य ही क्या ?

राजस्थान में विशेषकर मेवाड़ की विद्याभवन, महिला मंडल, लोक कला मंडल, विद्यापीठ आदि सभी संस्थाओं से उनका ऐसा पारिवारिक नाता था कि वे सहज रूप से सभी के संरक्षक के रूप में प्रतिष्ठित थे। रचनात्मक संस्थाओं को वे न केवल स्वयं मुक्तहस्त से सहयोग देते थे बल्कि अग्रणी होकर अन्य न्यासों (ट्रस्टों) एवं धनी-मानी उदार पुरुषों को भी देने को प्रेरित करते थे। उनका नाम ही एक बड़ा सम्बल था, सहारा था। उनके अवसान से कई संस्था-संचालक एवं अनेकों कार्यकर्ता अनाथ सा अनुभव करने लगे हैं।

स्व० कानोड़ियाजी उन क्षेत्रों में भी विशेष सहयोग प्रदान करते थे जिनका कोई धनी-धोरी या जहां का कोई बड़ा उद्योगपति नहीं था। स्व० नन्दलालजी भुवालका की स्मृति में राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद उदयपुर के निकट टी०बी० सेनिटोरियम का उद्घाटन करने आये थे तब कलकत्ता और बम्बई के कई प्रवासी उद्योगपतियों के साथ शिलान्यास समारोह में भाग लेने के लिए बाबू कानोड़ियाजी पधारे थे। मैं उनके साथ था। प्रायः उदयपुर की सभी संस्थाओं तथा कार्यकर्ताओं से आत्मीयतापूर्वक मिले और उन्हें प्रोत्साहन दिया। इसी तरह हाल ही में भूतपूर्व राष्ट्रपति गिरि उदयपुर के सरदारों की संस्था "भोपाल नोबल्स कालेज" की हीरक जयन्ती के समारोह में पधारे थे तब आपने संस्था के निमंत्रण पर पधार कर मेवाड़ के स्वतंत्रता संग्राम के सेनानियों का सम्मानपूर्वक स्वागत किया था।

उदयपुर क्षेत्र उन्हीं दिनों अकाल की चपेट में था। स्थानीय जिलाधीश से बात कर वे आसपास के क्षेत्र में अकाल की स्थिति का जायजा लेना चाहते थे। मुझ

भी साथ ले गये थे। झोपड़ियों में घुसकर जिस तरह उन्होंने आदिवासियों की स्थिति और उनके दुख दर्द को नजदीक से देखा और राहत-कार्य चालू कराये, वह वे ही कर सकते थे। उनके ऐसे राष्ट्रसेवक अब कहां हैं ?

वे देश की नैतिक गिरावट के कारण मन ही मन दुःखी थे। उनकी दृष्टि निरंतर रचनात्मक रही। वर्तमान राजनीतिक वातावरण से वे उदासीन थे। चरित्र निर्माण एवं विकास के कार्यों में उनकी गहरी दिलचस्पी थी।

राजस्थानी समाज के तो वे गौरव-स्तम्भ थे ही। मैं प्रायः हर सप्ताह उनसे उनके कार्यालय में भेंट करके विचार-विनिमय करने का सौभाग्य प्राप्त करता था जहां प्रायः स्वतंत्रता संग्राम के कार्यकर्ता अपने दुख दर्द की समस्याएं लेकर उन्हें घेरे रहते थे।

इधर अन्तिम वर्षों में सीकर के आरोग्य सेवा सदन और कलकत्ता की भारतीय भाषा परिषद भवन की योजना के क्रियान्वयन में ही वे अधिक सक्रिय रहे। अपने उद्योग-व्यवसाय से एक तरह से अलग वानप्रस्थ का ही जीवन जी रहे थे।

वे पुरानी पीढ़ी के उन देशभक्तों में थे जिनकी सेवाएं त्याग और बलिदान की भावना सहज रूप से स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी के नाते राष्ट्र के लिए समर्पित थीं। महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, सुभाषचन्द्र बोस, राजर्षि टंडन, जयप्रकाशनारायण, गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर जैसे कई राष्ट्रीय नेताओं के सम्पर्क में वे आये। उद्योगपति और व्यवसायी होते हुए भी श्री कानोड़ियाजी ने अपनी देश-सेवा और त्याग को भुनाने का कभी खयाल तक नहीं किया। उन्हें राज्य सभा का सदस्य अथवा राष्ट्रीय अलंकार से अलंकृत करने की बात कभी उठती तो वे तुरन्त अपने को बचा लेते थे। जीवन भर यश-लिप्सा और प्रचार-प्रकाशन से वे बिल्कुल दूर रहे। अन्त तक भी अपना अभिनन्दन दृढ़तापूर्वक नकारते रहे। उनके मन में अपार करुणा थी। क्या हरिजन और क्या मुसलमान, सभी वर्गों एवं दरिद्र-नारायण के प्रति उनकी सेवाएं मुक्तभाव से प्रस्तुत रहीं। वे वर्षों तक राजस्थान हरिजन सेवा संघ के अध्यक्ष भी रहे। पूर्वांचल में राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार के लिए वर्षों तक कार्य करते रहे। वैश्य कुल में जन्म लेकर भी वे सचमुच ज्ञान और तप से ओतप्रोत साधुपुरुष थे। अहंकार एवं बड़प्पन की भावना से कोसों दूर सहज सरल सबके लिए सुलभ वे सादगी एवं सरलता की प्रतिमूर्ति थे। ऐसे ही तपोभूत पुरुषों को धारण कर धरा धन्य होती रही है।

उनसे पुत्रवत् स्नेह आशीर्वाद एवं मार्गदर्शन प्रारम्भ से ही मुझे मिलता रहा और उनकी लम्बी बीमारी के बाद अन्तिम यात्रा में भी शामिल हो सका। ऐसे "महाजन" समाज और राष्ट्र के लिए आलोक-स्तम्भ की तरह सदा प्रेरणापुंज बने रहेंगे। उनको मेरे शत् शत् प्रणाम।

—:०:—

दैनिक विश्वमित्र के संचालक-सम्पादक

श्री कृष्णचन्द्र अग्रवाल

सेवा-समर्पित व्यक्तित्व

आंवला नवमी के पवित्र दिन २९ अक्तूबर, १९७९ को सायंकाल सुप्रसिद्ध समाजसेवी श्री भागीरथजी कानोड़िया का उनके कलकत्ता निवास-स्थान पर पचासी वर्ष की आयु में स्वर्गवास हो गया। वह कुछ समय से अस्वस्थ थे। दुवला-पतला मुट्ठीभर हड्डियों का शरीर पिछले साठ वर्षों से जिस प्रकार कलकत्ता और राजस्थान के सांस्कृतिक, राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा शैक्षणिक क्षेत्र से अन्तरंग रूप से जुड़ा रहा. कर्म करता रहा, नेतृत्व देता रहा और सवेरे से रात्रि-पर्यन्त जन-जन की समस्याओं को लेकर चिन्तन करता रहा, उनको समझता रहा, उसकी बड़ी लम्बी कहानी है; किन्तु हमारे वार-वार प्रयत्न करने पर भी आजन्म प्रचार-प्रसार से सदैव दूर रहने वाले भागीरथजी को अपनी कहानी लिखना मंजूर नहीं हुआ।

जब मैंने होश संभाला, स्वतंत्रता-संग्राम के महान अवतार महात्मा गांधी को जहां जब भी जिस आन्दोलन को छेड़ते देखा, उनके सैनिकों की अग्रिम पंक्ति में श्री सीताराम सेकसरिया और उनके साथ अटूट रूप से संवद्ध श्री भागीरथ कानोड़िया, बसंतलाल मुरारका और मेरे पिताजी (स्व० मूलचन्दजी अग्रवाल) को पाया। चारों व्यक्तियों की टोली ने कलकत्ता में आन्दोलन के क्षेत्र में समस्त देश के हिन्दी-भाषी समाज को नेतृत्व प्रदान किया। गांधीजी ने हरिजन आन्दोलन छेड़ा तो भागीरथजी वापू के साथ गली-गली, गांव-गांव चंदे की झोली लटकाए घूमते फिरे। श्री जमनालाल वजाज ने राजस्थान में रजवाड़ों के विरुद्ध आन्दोलन शुरू किया और राजस्थान का सीकर जिला इस आन्दोलन का हेड क्वार्टर बना, तब से भागीरथजी इस जिले के साथ अभिन्न रूप से संबंधित हो गए और जीवन की अंतिम सांस तक उनका सीकर के प्रति अटूट अनुराग बना रहा। इस नेह की याद में छोड़ गए हैं वे प्रसिद्ध टी० बी० सेनिटोरियम। राजस्थान में पंडित हीरालाल शास्त्री से लेकर ऐसा कौन-सा कार्यकर्ता है, जो भागीरथजी के सहयोग से उपकृत नहीं हुआ। राजस्थान में आज अनेक संस्थाएं उनके सहयोग की कहानी कहती हैं। यद्यपि भागीरथजी मुकुन्दगढ़ के थे, किन्तु समस्त राजस्थान और उसके कार्यकर्ता उनके कुटुम्बी थे। मुझे वह दिन याद आता है जब राजस्थान पर आजकल की तरह ही भयंकर दैवी विपत्ति आई और पीने का पानी उपलब्ध नहीं था। तत्कालीन मुख्य मंत्री श्री मोहनलाल सुखाड़िया ने भागीरथजी से उस वृहत् कार्य को संभालने के लिए कहा और गांव-गांव में घूम-घूम कर भागीरथजी ने राजस्थान जलबोर्ड के अंतर्गत व्यवस्था करवाई।

भागीरथजी केवल ढोल पीटने वाले समाज-सुधारक नहीं थे। उन्हें सदैव दिखावे से परहेज था। कलकत्ता में जब हिन्दी-भाषी और राजस्थानी समाज की

बालिकाओं की शिक्षा का महत्व समझा गया तो मारवाड़ी बालिका विद्यालय से लेकर शिक्षायतन कालेज तक उनके कदम बढ़ते गए और आज नगर में हजारों बालिकाएं शिक्षा का प्रकाश पा रही हैं। बापू ने खादी आन्दोलन छेड़ा तो शुद्ध खादी भंडार की स्थापना हुई। बड़ाबाजार में विदेशी वस्त्रों की स्मरणीय होली जली। बापू ने कहा, भारत की राष्ट्र-भाषा हिन्दी होनी चाहिए तो बंगाल, उड़ीसा, असम और मद्रास में राष्ट्र-भाषा प्रचार का अद्‌भुत आन्दोलन हुआ और प्रतिवर्ष हजारों गैरहिन्दी-भाषी स्नातक बने।

देश के सुप्रसिद्ध देशभक्त परोपकारी बिड़ला-परिवार के साथ प्रारम्भ से भागीरथजी का सम्बन्ध सोने में सुहागा बना और उनके आह्वान पर बिड़ला-बन्धुओं ने सदैव मुक्तहस्त होकर सार्वजनिक कार्यों के लिए दान देकर उनका उत्साह बढ़ाया। जीवन के अन्तिम क्षणों में उनका पुनः हिन्दी और भारतीय भाषाओं की समृद्धि और विकास की तरफ ध्यान गया और उन्होंने 'भारतीय भाषा परिषद' की स्थापना की।

ईश्वर की कृपा से आज कानोड़िया-परिवार देश के अग्रणी उद्योगपति परिवारों में से है। भागीरथजी की आत्मा को अन्तिम क्षणों में सन्तोष था कि उनके उठाये गए कार्यों को उनके परिवार के अन्य सभी सदस्य उसी भावना के साथ पूरा करने में सदैव सहयोगी रहते हैं।

—: ० :—

भक्ति-साहित्य व संगीत प्रेमी

श्री बलवन्त मिश्र

मेरे शुभचिन्तक

स्व० भागीरथजी कानोड़िया के प्रथम दर्शन मुझे सन् १९३१ में कलकत्ता में हुए थे। उसी समय से वह मेरे शुभचिन्तक रहे। सन् १९३८ से ४१ तक के दिनों में महामना मालवीय कलकत्ते में ठहरे थे। वह काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के विश्वनाथ मन्दिर के लिए धन संचय कर रहे थे। एक दिन मैं सितार लेकर मालवीयजी के पास गया और उन्हें कुछ भजन सुनाये। फिर तो उन्होंने मुझे अपने साथ ठहरा लिया। रात अपने रसोइये से कहकर मेरे भोजन की व्यवस्था भी करवा दी।

एक दिन रात को मालवीयजी बोले, "मिश्रजी, मीरा का पद सुनाओ—'नींद तोहि बेचूंगी, जो कोई ग्राहक होय।" मुझे यह पद आता नहीं था। मैंने कहा, "महाराज, यह पद मुझे याद नहीं है।" कहने को कह तो दिया, पर मुझे मन-ही-मन बड़ा बुरा लगा। तबसे मैंने मीरा के बहुत से पद कंठस्थ किये।

संयोग से मालवीयजी के दोनों सचिव बीमार पड़ गये और बनारस लौट गये। मालवीयजी को ऐसा आभास हुआ कि मैं अंग्रेजी जानता हूं। इसलिए एक दिन मुझसे बोले, "चिट्ठी लिखो।" मैंने कागज-पेंसिल ले ली और लिखने को तैयार हो गया। वह अंग्रेजी में बोलते रहे और मैं देवनागरी लिपि में लिखता रहा। फिर एक बुड्ढे टाइपिस्ट को बुलाकर मैंने चौदह पत्र अंग्रेजी में टाइप कराये। मालवीयजी ने उन पर हस्ताक्षर कर दिये। मैंने उन्हें डाक में डाल दिया।

एक दिन श्री भागीरथजी कानोड़िया मालवीयजी से मिलने आये और कुछ देर तक मालवीयजी का अंग्रेजी में पत्र बोलना और मेरा देवनागरी में लिखना देखते रहे, पर कुछ कहा नहीं। मिलकर वह नीचे आये और बैठ गये। तभी मैं किसी काम से नीचे आया। उन्होंने मुझसे बात की। मैंने उन्हें बता दिया कि मैं कैसे मालवीयजी के पास आया और अब क्या कर रहा हूं। सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। बोले, "पंडितजी के पास रहोगे ?" मैंने कहा, "रहना तो चाहता हूं, पर इनसे पैसे तो लूंगा नहीं। फिर बच्चों की पढ़ाई का खर्च कैसे चलेगा ?" भागीरथजी ने पूछा, "कितना खर्च है ?" मैंने कहा, "डेढ़ सौ रुपया मासिक।" बोले, "आप चिन्ता न करें। पंडितजी के पास रहें। रुपये की व्यवस्था मैं कर दूंगा।"

इस प्रकार दो वर्ष तक वह डेढ़ सौ रुपये महीना बराबर भेजते रहे। मैं दिन-रात मालवीयजी के साथ रहा। उनकी दवा लाता, भजन सुनाता, दूसरे काम करता। जब मालवीयजी को भागीरथजी की इस उदारता की बात मालूम हुई तो वह बहुत प्रसन्न हुए। बोले, "मैं तुमको अंग्रेजी पढ़ाऊंगा।" और वह मुझे रोज 'लीडर'

के द्वारा अंग्रेजी पढ़ाने लगे। श्री भागीरथजी के कारण मैं मालवीयजी के साथ रह सका। मेरा भाग्य चमका। वह जहां भी जाते, मुझे साथ ले जाते। महात्मागांधी, पं० जवाहरलाल नेहरू आदि नेताओं के दर्शन हुए।

भागीरथजी से जो सम्बन्ध जुड़ा, वह फिर कभी टूटा नहीं। व्याह-शादी, सुख-दुःख सब में भागीरथजी ने मेरी सहायता की। बड़े उदार और सदाशयी व्यक्ति थे। अपने हाथ से मुझे पत्र लिखते थे। उनकी याद करके मेरा हृदय उमड़ आता है। मेरी अवस्था अब ७९ वर्ष की हो गई है। कहीं भी आने-जाने में असमर्थ हूं। पीछे मुड़कर देखता हूं तो भागीरथजी जैसा परदुःखकातर व्यक्ति मेरे देखने में नहीं आता। जहां भी उन्होंने अभाव देखा, तत्काल मुक्तहस्त और मुक्तहृदय से सहायता की।

ऐसे व्यक्तियों की भौतिक काया भले ही चली जाय, लेकिन उनका यशःशरीर अमर रहता है।

—: ० :—

व्यवसायी, सामाजिक कार्यकर्ता

श्री शिवभगवान गोयनका

सर्वजन हिताय

श्रद्धेय भागीरथजी कानोड़िया मानव गुणों से परिपूर्ण थे। वे साधारण-मानव से परे थे, उनमें मानवता कूट-कूट कर भरी हुई थी। वे सच्चे अर्थ में मानव थे, परदुःखकातर थे, सहृदय थे, परमार्थी थे।

उनके जीवन का चरम लक्ष्य था—दीन-दुःखियों की सेवा करना, उनको सुख पहुंचाना एवं उनके जीवन में आशा का संचार करना। पश्चिम-बंगाल में एवं विशेषकर राजस्थान में उनकी जनसेवा चिरस्मरणीय रहेगी। शारीरिक दुःख-कष्टों की अवहेलना करके वृद्धावस्था में भी वे राजस्थान में जाकर सेवाकार्य में लग जाते थे। सेवा उनका परम धर्म था। ऐसे समय आए, जब उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं था, फिर भी राजस्थान के वीरान एवं बीहड़ स्थानों का भ्रमण करते हुए सेवा करते रहते थे। इन सबमें एक ही अन्तर्निहित उद्देश्य था—दीन, दुखी, रोगी एवं पीड़ित लोगों की अधिक से अधिक सेवा करना।

भागीरथजी सरल, सीधे किन्तु कार्यपटु एवं समझदार व्यक्ति थे। उनका जीवन था सादगीपूर्ण, वेश-भूषा थी अत्यन्त साधारण और हृदय अत्यन्त कोमल एवं स्वभाव मृदुल था। वे दिखावे से बहुत दूर रहते थे। प्रेम और मित्रता को वे निभाना खूब जानते थे। साहस एवं धैर्य के साथ निजी दुःख एवं कष्टों का उन्होंने सामना किया।

समाज-सेवा में वे अग्रणी थे। जिस समय समाज अनेकानेक रूढ़ियों एवं कुरीतियों से घिरा हुआ था, उस समय वे अपने कतिपय मित्रों के साथ उनको दूर करने में अत्यन्त जोश एवं तीव्रता के साथ लग गए। वे समाज की बुराइयों को मिटाने में सक्रिय रहे। समाज-सेवा में उनकी करनी एवं कथनी में अन्तर नहीं था। वे नियमों के कठोर थे। अपने घर में भी नियमों का भलीप्रकार पालन करते थे। यह सब मैंने उनको अपने घर में अपनी कन्या के विवाह में भी पालन करते हुए देखा। अन्य लोगों की तरह उनको धन का लोभ घेरे हुए नहीं था। वे सत्कार्य में अपने से दान देते भी थे, एवं दूसरों से भी दिलवा देते थे। मान एवं झूठी मर्यादा से वे आक्रान्त नहीं थे। उनका कार्य-कलाप, उनका पुरुषार्थ एवं उनकी उपलब्धियां कभी भुलाई नहीं जा सकती। उन्होंने सरकारी एवं अन्य ऊंची उपाधियों से अपने को दूर रखा, जबकि उनके लिए वह सब सहज ही उपलब्ध थीं।

वे दूसरों के लिए जिये। उनका जीवन भावी पीढ़ी को प्रेरणा देता रहेगा। उनका जीवन अन्त तक सर्व सुखाय एवं सर्व हिताय रहा।

—:०:—

व्यवसायी, सामाजिक कार्यकर्ता
श्री देवीप्रसाद मस्करा

एक मानवीय व्यक्तित्व

मनुष्य जब समाजहित के कार्यों के प्रति अपने को समर्पित कर देता है तब उसे हम समाज-सेवक के पद से अभिहित करते हैं। ऐसे लोगों में देवत्व का विकास उत्तरोत्तर होता जाता है। ये लोग जीवन पथ में आने वाली सुख-दुःखमूलक परिस्थितियों के बीच से अपने पथ का संधान करते हुए अग्रगामी रहते हैं। वे साधन की चिन्ता से परे रहते हैं। आत्मविश्वास उनका सम्बल होता है, विवेक, बुद्धि तथा सिद्धान्त-निष्ठा और दूरदर्शिता उनके मार्ग निर्देशक। आधुनिक मानदण्डों के अनुसार उनकी विवेक-बुद्धि और उनके कर्म-चातुर्य को मापने वालों को निराश होना पड़ता है। यहां सीमाएं टूट जाती हैं, उनका अन्तर्जगत् ज्ञान और भाव ज्योति से आलोकित हो उठता है। प्रत्येक प्राणी का साधारण दुःख भी उनकी करुणा के प्रवाह को वेगवान बना देता है। सामाजिक सम्बन्धों को अपने इसी प्रकार के रागात्मक प्रभाव से विस्तार प्रदान करते हुए, ऐसे ही लोग महामानव के रूप में प्रतिष्ठित होते हैं। उनकी चेतना विमल हो उठती है, उनका मानस सात्विक भावों के लिये, आधार भूमि बन जाता है। भागीरथजी कानोड़िया ऐसे ही विशिष्ट पुरुषों में से एक थे।

वैसे तो कानोड़िया परिवार समाज में एक प्रतिष्ठित परिवारों में गिना जाता है परन्तु भागीरथजी ऐसे नररत्न थे जो कि परिवार को आलोकित करके चले गये। २९ अक्तूबर १९७९ को जब मैंने उनकी मृत्यु का दुःखद सम्वाद सुना तो मेरे मुंह से सहसा निकल पड़ा—"ऐ अजल तुझसे बड़ी नादानी हुई, फूल वह तोड़ा जिससे गुलशन में वीरानी हुई"। एक सफल उद्योगपति के साथ-साथ वे निष्काम कर्मी और समाज-सेवक थे। शिक्षा, साहित्य, संस्कृति एवं राजनीति के क्षेत्र में उनका अनुदान प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय रहा है। जन-सेवक के रूप में उन्होंने जो ख्याति अर्जित की वह तो अक्षुण्ण है ही, उनका तेजस्वी व्यक्तित्व और क्रान्तिकारी स्वरूप कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता।

उनके जीवन की सबसे बड़ी सार्थकता इस बात में है कि आज समाज को उनका अभाव खटक रहा है। ऐसे लोगों का कभी नाश तो होता ही नहीं। भगवान् श्री कृष्ण के शब्दों में "शुचीनाम् श्रीमतां गेहे योग भ्रष्टोऽभिजायते।" जो शुभ कर्म करता है उसका पतन कभी किसी प्रकार भी नहीं होता।

—:०:—

बंगाल रिलीफ कमेटी में भागीरथजी के निकटतम सहयोगी

श्री कृष्णचन्द्र महापात्र

उन जैसा नहीं देखा

स्वामी विवेकानन्द ने लिखा है, "मनुष्य में हृदय ही है जो सदैव प्रेम उत्प्रेरित करता है। बुद्धि जो उपकरण दे सकती है उससे बड़े प्रेरणा के उपकरण का अनुसंधान हृदय ही करता है।"

भागीरथजी एक प्रेमल व्यक्ति थे। पीड़ित व्यक्ति के लिए उनका विशाल हृदय प्रेम से लबालब रहता था। इस प्रेम के वशीभूत होकर उन्होंने पीड़ित जनों की चुपचाप जो सेवा की, वह उन सब के लिए प्रेरणा की वस्तु है जो सचमुच में मानव-सेवा करना चाहते हैं। इस तरह की निष्काम मानव-सेवा रामकृष्ण मिशन, भारत सेवाश्रम संघ और ईसाई मिशनों के साधुओं और कार्यकर्ताओं का आदर्श है। लेकिन भागीरथजी गृहस्थ थे, व्यापारी और स्वतंत्रता संग्राम के योद्धा थे, गेरुआ वस्त्रधारी साधु नहीं। इसके बावजूद वह ऐसे पीड़ित और दलित जनों के, जिन्हें तत्काल सहायता पहुंचाने की आवश्यकता होती, सच्चे सेवक थे। इसीलिए हम उन्हें हमेशा विपत्ति में फंसे लोगों की सहायता के लिए दौड़े-दौड़े जाते हुए देखते थे।

सार्वजनिक काम करने वाले, खासकर आजकल राजनीति करने वाले लोग, प्रचार के शिकार हो रहे हैं—ये लोग अपने कार्य को अतिरंजित रूप में रखते हैं या उसके बारे में झूठे दावे करते हैं। ऐसे लोग अपने अहम् और अपनी व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं को त्याग नहीं सकते। आज की संस्थाएं भी इस रोग से नहीं बची हैं। वे भी अपने कार्य के बारे में अतिरंजित सूचनाएं देती हैं, झूठे दावे करती हैं। भागीरथजी में इस तरह के अहम् और प्रचार की ललक का सर्वथा अभाव था। वह एक विनम्र सामाजिक कार्यकर्ता थे, जिन्हें वे सहायता देते, उनके प्रति उनके मन में सम्मान और सहानुभूति होती।

१९४३ के बंगाल के अकाल के वक्त मैं उनके सम्पर्क में आया और तब से मैं उनके बहुत से सेवा-कार्यों से जुड़ा रहा। १९४२ के आन्दोलन में मेदिनीपुर जिले के भयानक 'मसूरिया बलात्कार कांड' के विरोध में डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने बंगाल मंत्रिमंडल से इस्तीफा दे दिया था। बंगाल में अकाल की स्थिति दिनोंदिन उग्र रूप धारण कर रही थी। डा० मुखर्जी अकाल से पीड़ित लोगों के लिए सहायता कार्य शुरू करना चाहते थे। उनकी कोशिशों से १९४३ में बंगाल रिलीफ कमेटी की स्थापना हुई। इस वक्त मैं कलकत्ता में ताम्रलिप्त जातीय सरकार (मेदिनीपुर की राष्ट्रीय सरकार जो १९४२ के आंदोलन में कायम हुई थी) के सम्पर्क-अधिकारी के रूप में काम कर रहा था। कलकत्ता के गणमान्य नागरिकों से सम्पर्क रखना मेरा काम था। मैं डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी, प्रो० हुमायूं कबीर, प्रो० विनयरंजन सरकार, प्रो० प्रियरंजन सेन, प्रो० अनाथनाथ बसु, डा० जे०पी० नियोगी,

श्री धीरेन्द्रनारायण मुखर्जी, श्री सुरेशचन्द्र मजुमदार (आनन्दबाजार पत्रिका) श्री विवेकानन्द मुखर्जी (युगान्तर) श्री हेमेन्द्रप्रसाद घोष (वसुमती) श्री सजनीकांत दास (शनिवारेर चिठी) श्री केदारनाथ चटर्जी (प्रवासी और माडर्न रिव्यू) प्रो० निर्मलकुमार बसु और श्री ज्ञानरंजन नियोगी (जिनका जयप्रकाशनारायण और अरुणा आसफ अली से सम्पर्क बना हुआ था) जैसे लोगों को हमारी गुप्त पत्रिका (विप्लवी) नियमित रूप से देता और उन्हें हमारे कार्य-कलाप की जानकारी देता, ये लोग जो सुझाव देते, उन्हें अपनी सरकार तक पहुंचाता। पुलिस की निगरानी से बचने के लिए (क्योंकि हमारे शंकर घोष लेन के मकान पर पुलिस का १३ बार छापा पड़ चुका था) डा० मुखर्जी ने मुझसे कहा कि अकाल पीड़ितों की सहायता के लिए बंगाल रिलीफ कमेटी बनने जा रही है, अच्छा हो, तुम उसके कार्यालय-अधिकारी के रूप में काम करो ताकि तुम्हारा गुप्त कार्य अच्छी तरह चल सके। इस तरह मेरा भागीरथजी से सम्पर्क हुआ। वह तभी जेल से छूट कर वाहर आये थे। डा० मुखर्जी और मैंने, दोनों ने ही, भागीरथजी को यह बात नहीं बतायी कि मैं मेदिनीपुर की राष्ट्रीय सरकार का काम करता हूं। भागीरथजी को उनके साथ मेरे काम करने के कई वर्ष बाद इस बात का पता लगा। शायद पता लगने पर मेरे प्रति उनका प्रेम और भी ज्यादा बढ़ गया और इसीलिए उन्होंने बाद की सभी सहायता कमेटियों में मुझे साथ रखा और कुछ व्यक्तियों के मामले भी सौंपे। १० वर्षों तक मैंने उनकी आफिस में भी काम किया। इन व्यक्तिगत बातों को लिखे विना मैं यहां रह नहीं सका। मैंने अपनी जान में उनके स्नेह और विश्वास के योग्य बनने की पूरी चेष्टा की। उनका भी मुझ पर स्नेह और विश्वास अंतिम समय तक बना रहा। १९७१ में शिकागो विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के डा० पाल ग्रीनहो १९४३ के बंगाल के अकाल के बारे में अनुसंधान करने आये तो भागीरथजी से मिले। भागीरथजी ने उन्हें सीधे मेरे पास भेज दिया कि बंगाल रिलीफ कमेटी के बारे में उन्हें जो भी जानकारी प्राप्त करनी हो, वह मुझसे प्राप्त करें। डा० ग्रीनहो ने मेरे घर पर एक महीने से भी ज्यादा बैठ कर मेरे पास जो कागजात थे, उनका अध्ययन किया। कमेटी में भागीरथजी ने जो काम किया उसकी डा० ग्रीनहो ने मुझसे बड़ी प्रशंसा की।

इस लेख में मैं उन विभिन्न कमेटियों के काम की चर्चा करूंगा जिनमें मैंने भागीरथजी के साथ काम किया। यहां मुझे अपने आदरणीय सहयोगी और मित्र कृष्णदेवजी शर्मा का भी जिक्र करना चाहिए। जिन कमेटियों की आगे चर्चा आयेगी उनमें प्रायः सभी में हमने साथ काम किया। कृष्णदेवजी काशी विद्यापीठ के स्नातक और बिहार के प्रसिद्ध किसान नेता स्वर्गीय कार्यानन्द शर्मा के छोटे भाई हैं। उन्होंने जिस निष्ठा, आदर्शवादिता और देशप्रेम के साथ इन कमेटियों में काम किया, वह मुझे हमेशा याद रहेगा।

बंगाल रिलीफ कमेटी :

१९४२ के भारत-छोड़ो आंदोलन के सिलसिले में भागीरथजी प्रेसीडेन्सी जेल में नजरबंद थे। जब वह रिहा हुए तो बंगाल की स्थिति अत्यन्त चिन्ताजनक थी।

जापानी हमले की आशंका के कारण अनाज के लाये-ले जाने पर प्रतिबन्ध, बंगाल सरकार की गलत और भ्रष्ट खाद्य नीति, अक्टूबर ४२ में मेदिनीपुर और २४ परगना में आये भयानक तूफान और भारत छोड़ो आंदोलन में सभी कांग्रेसी नेताओं की गिरफ्तारी आदि के कारण बंगाल में भयानक अकाल की स्थिति पैदा हो गयी थी। सभी जिलों से भुखमरी के हृदयविदारक समाचार आ रहे थे। सारा सामाजिक जीवन गड़बड़ा रहा था—स्त्रियां शरीर बेचने को बाध्य हो रही थीं, पति अपनी पत्नी को छोड़ कर चला जा रहा था, मां अपने बच्चे को बेच रही थी और लाखों लोग भूख से बिलबिलाते हुए अपने परिवारों को गांवों में असहाय छोड़ कर शहरों की ओर भाग रहे थे। इस मानव निर्मित अकाल में ३५ लाख से भी अधिक लोग मरे। ऐसी स्थिति में अकाल-पीड़ितों की सहायता करने के लिए गैरसरकारी प्रयत्न करने की आवश्यकता तीव्रता से महसूस की जा रही थी। डॉ० श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने भागीरथजी से उनके जेल से छूटते ही सम्पर्क किया और १९ जुलाई, १९४३ को प्रमुख नागरिकों की एक बैठक बुलायी। इस बैठक में अकाल पीड़ितों की सहायता करने के लिए बंगाल रिलीफ कमेटी के नाम से कमेटी बनायी गयी—अध्यक्ष : सर बदरीदास गोयनका, उपाध्यक्ष : डॉ० श्यामाप्रसाद मुखर्जी, मंत्री व कोषाध्यक्ष : श्री भागीरथजी कानोड़िया, सदस्य : डॉ० विधानचन्द्र राय, सर अब्दुल हलीम गजनवी, सर्वश्री नलिनीरंजन सरकार, गगनबिहारी लाल मेहता, रंगलाल जाजोदिया, रामकुमार भुवालका, मोहनलाल जालान, मोहनलाल शाह, गोविन्दलाल बांगड़, माधवप्रसाद बिड़ला, इन्द्रचन्द भुवालका, मंगतूराम जयपुरिया और रामेश्वरलाल नोपानी। भागीरथजी की आफिस बंगाल रिलीफ कमेटी की आफिस बनी।

कमेटी, अकाल पीड़ितों के लिए अनाज और चन्दा इकट्ठा करने के काम में तुरन्त जुट गयी। कमेटी की ओर से देश-विदेश के अखबारों में चन्दे के लिए अपील निकाली गयी। देश और विदेश, (श्री लंका, दक्षिण अफ्रीकी नगरों जोहानीसवर्ग, नटाल, डरबन और डंडी, सैलिसबरी, जंजीबार, चीन आदि से) से कमेटी की आफिस में बाढ़ की तरह चन्दा आने लगा। देश के प्रमुख अखबारों दिल्ली के 'हिन्दुस्तान टाइम्स' जिसके प्रबन्ध सम्पादक गांधीजी के पुत्र देवदास गांधी थे, मद्रास के 'इण्डियन एक्सप्रेस', बनारस के 'आज' और 'संसार' इलाहाबाद के 'लीडर' पटना के 'इण्डियन नेशन', बम्बई की 'जन्मभूमि', हुबली के 'संयुक्त कर्नाटक' और करांची के 'संसार-समाचार'—आदि ने बंगाल सहायता कोष खोले। बम्बई, नागपुर, धमतरी, लखनऊ, गोरखपुर, शिमला, भटिण्डा, रावलपिण्डी आदि स्थानों में बंगाल सहायता कमेटियां बनायी गयीं। बंगाल रिलीफ कमेटी अकाल पीड़ितों की सहायता का सबसे बड़ा गैरसरकारी संगठन बनी, उसने ३० लाख रु० चन्दे के बतौर और १२ लाख रु० की कीमत का अनाज तथा अन्य वस्तुएं इकट्ठा कीं। कमेटी ने (१) मुफ्त खाना देने के लिए लंगर खोले। (२) मुफ्त अनाज बांटा (३) अनाज की सस्ती दुकानें खोली (४) मुफ्त दूध बांटने के केन्द्र खोले (५) बच्चों के केन्द्र स्थापित किये (६) छात्रों की पढ़ाई जारी रखने के लिए सहायता दी और स्टूडेन्ट्स होम खोले (७) कपड़ों और कम्बलों का वितरण किया (८) अपने रोग निरोधक विभाग के अन्तर्गत चिकित्सा केन्द्र खोले (९) अन्य सहायता

संस्थाओं को अनुदान दिया आदि। महामारियों, खासकर मलेरिया के निरोध के लिए कमेटी के रोग निरोधक विभाग ने सभी जिलों में केन्द्र खोले। सरकार से ५००० पौण्ड कुनैन प्राप्त कर कमेटी ने डा० विधानचन्द्र राय से एक नयी गोली 'ए० बी० एन०-६१' बनवाई। इस गोली के द्वारा कुनैन की कम-से-कम मात्रा से ज्यादा-से-ज्यादा फायदा उठाया गया। यह गोली कुनैन की मूल गोली से ज्यादा असरवाली भी साबित हुई।

ऊपर जिन कामों की चर्चा की गयी है उनसे पाठकों को पता लग गया होगा कि कमेटी ने कितना बड़ा काम किया। भागीरथजी बहुत रात बीतने तक एक मिनट भी आराम किये बिना लगातार महीनों काम करते रहे। विभिन्न जिला कमेटियों के प्रतिनिधियों से मिलते, पत्रों और तारों का जवाब देते, अकाल-पीड़ित क्षेत्रों की यात्रा करते, सारे राहत कार्यों पर निगरानी रखते। मध्यवित्त परिवार लोक-लज्जा के कारण लंगरों में जाने और मुफ्त सहायता लेने से हिचकते थे। ऐसे परिवारों के लिए भागीरथजी ने सस्ती कीमत पर १० रु० मन चावल सप्लाई करने की योजना चालू की। अकाल का वेग कम होने पर कमेटी ने पुनर्वास के लिए खादी केन्द्र और कुटीर उद्योग खोलने और तालाब खोदने जैसे रचनात्मक कार्य शुरू किये।

इतना बड़ा काम करते हुए मैंने भागीरथजी को एकदम निकट से देखा। उन्होंने बंगाल के अकाल में किस तरह काम किया, यह तो वही लोग जानते हैं जो उसे देख चुके हैं। काम के बोझ से भागीरथजी आकंठ डूबे रहते थे पर मैंने उन्हें एक बार भी चिड़चिड़ाते हुए या नाराज होते नहीं देखा। सारे समय वह लोगों से घिरे रहते—इस घेराव के बावजूद शांत, स्थिर चित्त से टेलीफोन सुनते, चिट्ठियां लिखवाते, कार्यकर्ताओं को चिट पर निर्देश भेजते। उन्हें देखना सचमुच एक अनुभव था। रोज की डाक रोज निपटाते। काम के इतने बोझ में भी उन्हें छोटी-छोटी बातें याद रहतीं।

अकाल पीड़ितों के प्रति उनकी सम्वेदना का एक उदाहरण देना चाहूंगा। एक बार पूर्व बंगाल की यात्रा के दौरान मैं उनके साथ था। केला खाने के बाद भागीरथजी ने छिलका बाहर फेंका तो भूखे लोग उस छिलके को प्राप्त करने झपटे। यह दृश्य उन्हें असह्य लगा; उनकी आंखें भर आयीं। इसके बाद वह ३-४ दिन तक अच्छी तरह भोजन न कर सके। क्या हमारे देश में आज कोई ऐसा नेता है जो पीड़ित के प्रति इस तरह की संवेदना अनुभव करे? मेरे खयाल में मदर टेरेसा को छोड़ कर कोई ऐसा नहीं है। स्वामी विवेकानन्द ने कहा था, 'दूसरों की देह में अपने को अनुभव करो कि हम सब अकेले हैं।' मुझे लगता है कि स्वामी विवेकानन्द की इस उक्ति को भागीरथजी ने अपने जीवन में पूरी तरह उतारा था।

बंगाल सेन्ट्रल रिलीफ कमेटी :

नोआखाली में भयानक दंगों के बाद अक्टूबर, १९४६ में बंगाल सेन्ट्रल रिलीफ कमेटी की स्थापना हुई। इसके स्वर्गीय शरतचन्द्र बोस अध्यक्ष, श्री प्रभुदयालहिम्मतसिंहका सेक्रेटरी और भागीरथजी कोषाध्यक्ष बनाये गये। कमेटी के अन्य प्रमुख सदस्य थे: डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी, सर्वश्री सुरेन्द्रमोहन घोष, सत्यरंजन बक्सी, किरणशंकर राय,

करमचन्द थापड़, मोहनलाल शाह, रामेश्वरलाल नोपानी, केशवदेव जालान, बी० के० रोहतगी आदि।

कमेटी ने नोआखाली के दंगा पीड़ितों की सहायता के लिए ८६४००० रु० और लगभग २ लाख रु० के कीमत के कपड़े, कम्बल तथा अन्य वस्तुएं इकट्ठा कीं। कमेटी का पुनर्वास और सहायता कार्य मुख्यतया, दंगाग्रस्त इलाकों में स्थापित की गयी स्थानीय कमेटियों के माध्यम से किया जाता था। स्थानीय कमेटियों से तालमेल कायम करने और सहायता वितरण का काम भागीरथजी ही करते थे। स्थानीय कमेटियों में नोआखाली और त्रिपुरा जिलों की कमेटियां प्रमुख थीं। गांधीजी शांति और हिन्दू-मुस्लिम भाईचारा कायम करने के लिए जनवरी, १९४७ में नोआखाली पहुंचे और उन्होंने गांव-गांव की यात्रा की। काजिरखिल गांव से सारे गांधी कैम्प संचालित होते थे। कमेटी का इन कैम्पों के अतिरिक्त हरिजन सेवक संघ, मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी, इण्डियन मेडिकल एसोसिएशन, अ० भा० महिला सम्मेलन तथा श्रीमती सुचेता कृपलानी द्वारा चलाये जाने वाले कैम्पों से भी सम्वन्ध था। इन सारे संगठनों को कमेटी ने रुपये (६ लाख से भी अधिक) और कपड़े, कम्बल, दवाएं व मिल्क पाउडर (डेढ़ लाख रु० से भी ज्यादा कीमत का) आदि सामान दिया। कमेटी ने विस्थापित छात्रों को छात्रवृत्ति और सहायता देने में लगभग ५०००० रु० खर्च किये। नोआखाली तथा अन्य स्थानों के दंगा पीड़ितों में विश्वास और साम्प्रदायिक भाईचारा पैदा करने के लिए गांधीजी ने अपने प्राणों की बाजी लगा दी थी; नोआखाली उनके सत्य के प्रयोगों का अन्तिम परीक्षण स्थल था। नोआखाली पहुंचने पर गांधीजी ने अपने सब साथियों को अलग-अलग गांवों में भेज दिया और खुद अपने लिए श्रीरामपुर गांव को चुना। इस गांव में उनके साथ सिर्फ उनके बंगला शिक्षक और सेक्रेटरी प्रो० निर्मलकुमार बोस और टाइपिस्ट परशुराम थे। उनके अन्य साथी कनु गांधी, डा० सुशीला नायर, प्यारेलाल, आभागांधी, अमतुससलाम, सुशीला पाई आदि—नोआखाली के गांवों में जाकर काम करने लगे। खादी प्रतिष्ठान के श्री सतीशचन्द्र दासगुप्त काजिरखिल के गांधी कैम्प से विभिन्न गांवों में काम कर रहे इन लोगों से सम्बन्ध रखते। कमेटी ने गांधीजी के प्रयत्नों और उनके कैम्पों को पूरा सहयोग दिया।

हर स्थान की अपनी-अपनी समस्याएं थीं। इन समस्याओं की जानकारी मिलते ही भागीरथजी स्थानीय कमेटी द्वारा अनुरोध किए जाने की प्रतीक्षा किए बिना सीधे मदद भिजवाते। उन्होंने काजिरखिल के गांधी कैम्प के लिए एक जीप की व्यवस्था की ताकि अन्य स्थानों से सम्पर्क रखने में सहूलियत हो। प्यारेलालजी कोई भी जरूरत होने पर भागीरथजी को लिखते और उन्हें तुरन्त उनकी आवश्यकता का सामान भेजा जाता। एक बार बीबी अमतुलसलाम के अनुरोध पर मैं बहुत जोखिम उठाकर ५ सेर सिन्दूर, २००० शांखा और २५०० नोआ (बंगाली महिलाएं सौभाग्य सूचक चिह्न के रूप में शंख की जो चूड़ी पहनती है उसे शांखा और जो लोहे का कड़ा पहनती हैं उसे नोआ कहा जाता है), गीता की प्रतियां और कुछ जपमालाएं लेकर नोआखाली के एक बहुत ही दूरदराज कैम्प (छटखिल हाई स्कूल) में गया था। इस

कैम्प में बहुत सारी स्त्रियों को आश्रय दिया गया था। इन महिलाओं के साथ अत्यन्त नृशंसतापूर्ण व्यवहार किया गया था—इनका जबरदस्ती धर्मांतरण किया गया था; इनके शांखा और नोआ तोड़ दिये गये थे, सिन्दूर पोंछ दिया गया था, जबरदस्ती गोमांस खिलाया गया था, इनके घर जला दिये गये थे और इनके साथ बलात्कार किया गया था। बीवी अमतुलसलाम ने सिन्दूर और शांखा आदि इन्हीं महिलाओं में बांटने के लिए मंगाया था। जब इन महिलाओं को शांखा सिन्दूर आदि दिया जाने लगा तो वे इतनी भयभीत और आतंकित थीं कि बीवी अमतुलसलाम ने हरिनाम और हरेकृष्ण का उच्चारण शुरू किया। डर के मारे महिलाओं के मुंह से पहले हरिनाम और हरेकृष्ण का उच्चारण नहीं हुआ पर बीवी अमतुलसलाम लगातार उच्चारण करती रहीं तो धीरे-धीरे इन महिलाओं में साहस आया और वे सब उच्चारण करने लगीं। हरिनाम और हरेकृष्ण कहते उनकी आंखों से अविरल आंसू बह रहे थे। यह एक ऐसा दृश्य था जिसकी याद मुझे इतने वर्षों बाद भी पूरी तरह है।

तो नोआखाली में गांधीजी के काम करने का यह तरीका था। सेन्ट्रल रिलीफ कमेटी के मुख्य कार्यकर्ता और गांधीजी के सच्चे अनुयायी के रूप में भागीरथजी ने सहायता-कार्य को सिर्फ सहायता-कार्य के रूप में ही नहीं, गांधीजी के आदर्शों के अनुरूप भी चलाया।

शांति समिति :

१६ अगस्त, १९४६ को मुस्लिम लीग के 'सीधी कारंवाई दिवस' पर कलकत्ता में भीषण साम्प्रदायिक दंगा हुआ। इसके बाद शहर में बहुत दिनों तक सामान्य स्थिति नहीं हो पायी। इस दंगे के बाद देश की राजनीति में बहुत द्रुत परिवर्तन हुए और अन्ततः भारत-विभाजन का आत्मघाती प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया और १५ अगस्त को भारत आजाद हुआ। दंगाग्रस्त कलकत्ता में १५ अगस्त के दिन हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच भाईचारा और प्रेम दिखायी पड़ा लेकिन यह अत्यंत क्षणिक साबित हुआ। दो एक दिन बाद ही शहर के विभिन्न हिस्सों में छिटपुट घटनाएं होनी शुरू हो गयीं। इस वक्त गांधीजी बेलियाघाटा मेन रोड में एक मकान में रह रहे थे। देश के विभाजन के कारण वह अत्यंत दुखित थे। देश का स्वतंत्रता दिवस उन्होंने उपवास कर और चरखा कातते हुए ही बिताया। विभाजन के कारण पैदा हुई अपने मन की व्यथा का वह सार्वजनिक इजहार तो नहीं करते थे, लेकिन कुछ निकट के सहयोगियों के समक्ष उसे व्यक्त किए बिना नहीं रह पाते थे। श्री हसन शहीद सुहरावर्दी, जिनके प्रति हिन्दुओं के मन में बहुत असंतोष था, स्वतंत्रता दिवस के दिन गांधीजी के साथ ही रहे। यह दिखाकर कि वह साम्प्रदायिक एकता के लिए काम करना चाहते हैं, सुहरावर्दी शायद अपनी बिगड़ी हुई राजनीतिक छवि सुधारना चाहते थे।

गांधीजी हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच एकता कायम करने की कठिनाइयों को समझ रहे थे। वह यह जानते थे कि ऐसा वातावरण बन गया है जिसमें सहायता और पुनर्वास के काम में भी हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच आपसी सहयोग प्राप्त

करना कठिन हो गया था। वह दंगाग्रस्त लोगों की सहायता और उनके पुनर्वास के काम को सुचारु रूप से चलाने की व्यवस्था करके ही कलकत्ता छोड़ना चाहते थे। इस समय कलकत्ता के मेयर सुधीरचन्द्र रायचौधरी की अध्यक्षता में एक केन्द्रीय शांति कमेटी गठित की गयी थी। लेकिन यह कमेटी पुनर्वास का काम नहीं कर रही थी। गांधीजी चाहते थे कि पुनर्वास के काम के लिए इस कमेटी के तहत एक अलग समिति बनायी जाय। इस तरह ६ सितम्बर को बेलियाघाटा में गांधीजी ने शहर के प्रमुख नागरिकों को लेकर पुनर्वास के काम के लिए एक कमेटी बनायी। उन्होंने भागीरथजी को कहा कि मैं कमेटी के बारे में जो बातें कहूं उसे आप (भागीरथजी) लिखते चलें; गांधीजी ने डा० प्रफुल्लचन्द्र घोष और भागीरथजी को इस कमेटी का अध्यक्ष और मंत्री-कोषाध्यक्ष बनने को कहा। कमेटी के अन्य सदस्य थे—हसन शहीद सुहरावर्दी, नलिनीरंजन सरकार, के० डी० जालान, एम० एच० इस्पहानी, ए० पी० बेंथल, सुधीरचन्द्र रायचौधरी, एम० एल० शाह, डी० एन० सेन, कासिम ए० मोहम्मद, माधवप्रसाद बिड़ला, रामकुमार भुवालका, करमचन्द थापड़, आर० के० जैदका आदि।

इस कमेटी ने ४६३००० रु० इकट्ठा किये। इस रकम को उसने मुख्य रूप से (१) उजाड़ी गयी बस्तियों में रहने वाले हिन्दू और मुसलमानों के घरों की मरम्मत और उनका पुनर्निर्माण करने और (२) एक-एक लाख रु० की लागत से दो आदर्श बस्तियों का निर्माण करने के कार्यों पर खर्च किया। कमेटी ने दिलखुशा स्ट्रीट और नारकेलडांगा रोड में ये दो नयी आदर्श बस्तियां बनायीं। कलकत्ता कारपोरेशन ने इन बस्तियों के लिए जमीन मुफ्त दी थी।

इन कार्यों को करने में भागीरथजी बहुत बार आवेदनकर्ता बस्ती-निवासियों से खुद मिलने जाते और कभी-कभी श्री रामकुमार भुवालका या कमेटी के अन्य सदस्य उनके साथ होते। ऐसी यात्राओं में मैं हमेशा उनके साथ रहता था। वह बस्तियों में रहने वाले लोगों की बात बहुत ध्यान और सहानुभूति के साथ सुनते और उनसे मरम्मत और पुनर्निर्माण के बारे में सलाह मशविरा करते। बस्तियों में भयंकर गंदगी रहती लेकिन भागीरथजी का सारा ध्यान लोगों की बात सुनने में ही रहता।

आदर्श बस्तियों का निर्माण करने की बात के पीछे यह कल्पना थी कि भविष्य में बस्तियों का निर्माण करते वक्त सरकार, कलकत्ता कारपोरेशन, इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट इनका (आदर्श बस्तियों का) अनुकरण करें। शायद कलकत्ता में बेहतर किस्म की बस्तियां बनाने की दिशा में यह पहली शुरूआत थी। कमेटी के सदस्यों के नाम अपने अंतिम सर्कुलर (२२ जुलाई, १९५२) में भागीरथजी ने लिखा कि शायद इन बस्तियों में हमारे कुछ ऐसे "अभागे भाइयों में से कुछ को, जो अभी गंदी और नारकीय बस्तियों में रह रहे हैं, आदमियों की तरह रहने लायक स्थान मिले। महात्माजी की प्रेरणा से १९४७ में यह कमेटी बनी थी। उन्होंने इस बात पर बहुत जोर दिया था कि हमारी बनायी गयी बस्तियां भविष्य के निर्माताओं के लिए अनुकरणीय बनें।"

हिन्द सेवा संघ :

कलकत्ता में अगस्त, १९४६ के दंगे के बाद शहर का हिन्दू और मुसलमान इलाकों में विभाजन हो गया था, इसलिए इससे उत्पन्न समस्याओं के हल के लिए ३० मार्च, १९४७ को हिन्द सेवा संघ की स्थापना की गयी। स्थापना का मुख्य उद्देश्य—सियालदह और हवड़ा के बीच तथा नारकेलडांगा, राजाबाजार और पार्क सर्कस आदि उपद्रवग्रस्त स्थानों में मुफ्त परिवहन व्यवस्था उपलब्ध करना, घिरे हुए लोगों और परिवारों को निकालना तथा उपद्रवग्रस्त इलाके के उन मकानों की रक्षा करना जहां लोग उपद्रव के बावजूद रहने को तैयार थे, घटनाओं के स्थान पर पहुंचना, घायल लोगों को अस्पताल पहुंचाना और रक्षा कमेटियों के मारफत कानूनी सहायता चाहने वालों को कानूनी सहायता देना—था। संघ ने १३९००० रु० इकट्ठा किया और उसे उपरोक्त कामों में खर्च किया। उसके पास ७ जीप, ३ वेपन कैरियर्स, २ स्टेशन वैगन, एक एम्बुलेंस और १२५ नेपाली दरबानों का दल था। हरीसन रोड की मोड़ पर मारवाड़ी छात्र निवास में नियुक्त किए गये एक ऐसे दरवान की गुण्डों ने हत्या भी कर दी थी। श्री केशवदेव जालान संघ के अध्यक्ष और श्री रामेश्वरलाल नोपानी मंत्री थे लेकिन कोषाध्यक्ष के रूप में ज्यादातर काम भागीरथजी ने ही किया। संघ की आफिस उनके ही जिम्मे थी।

पश्चिम बंगाल प्रदेश रिलीफ कमेटी :

पश्चिम बंगाल में १९५३ में भयंकर बाढ़ आयी। बाढ़ की स्थिति से निपटने के लिए जुलाई, १९५३ में पश्चिम बंगाल प्रदेश रिलीफ कमेटी का गठन किया गया। मुख्यमंत्री डा० विधानचन्द्र राय इसके अध्यक्ष और भागीरथजी सेक्रेटरी बनाये गये, अन्य प्रमुख सदस्य थे : सर्वश्री अतुल्य घोष, प्रफुल्लचन्द्र सेन, अजयकुमार मुखर्जी, नरेशनाथ मुखर्जी, शैलकुमार मुखर्जी (विधान सभाध्यक्ष) सीताराम सेकसरिया, बसंतलाल मुरारका, आभा माइती, रामकुमार भुवालका, रामेश्वर टांटिया आदि। यह कमेटी मुख्य रूप से चंदा इकट्ठा करने के लिए बनायी गयी थी। मंत्री के रूप में भागीरथजी ने इसका काम बहुत ही कुशलता से किया। शुरू में चंदा इकट्ठा न हो पाने पर भागीरथजी ने अपनी आफिस से सहायता कार्य के लिए एडवांस रूपये दिये।

गांधी नैशनल मेमोरियल फंड :

गांधीजी की हत्या के बाद देश में राष्ट्रीय गांधी निधि की स्थापना हुई। बंगाल में श्री सुरेन्द्रमोहन घोष की अध्यक्षता में चंदा इकट्ठा करने के लिए एक प्रांतीय समिति गठित की गयी। श्री असीमकृष्ण दत्त, अमरकृष्ण घोष, देवेन सेन, धीरेन्द्र नाथ मुखर्जी इसके मंत्री और भागीरथजी कोषाध्यक्ष बनाये गये। अन्य प्रमुख सदस्य थे, डा० प्रफुल्लचन्द्र घोष, डा० विधानचन्द्र राय, डा० सुरेशचन्द्र बनर्जी, सर्वश्री किरणशंकर राय, शरतचन्द्र बोस, हसन शहीद सुहरावर्दी।

यह चंदा इकट्ठा करने वाली कमेटी थी। चंदा इकट्ठा कर इसे दिल्ली में गांधी निधि को भेजना होता था। फंड का काम बहुत मंदा चल रहा था।

चंदा इकट्ठा करने की अंतिम तारीख जनवरी, १९४९ थी। बंगाल कमेटी का लक्ष्य पूरा नहीं हो रहा था। ऐसे में भागीरथजी ने दिन रात भाग-दौड़ कर लक्ष्य पूरा करवाया।

ट्यूनिसिया सहायता समिति :

१९५२ में ट्यूनिसिया के स्वातन्त्र्य आन्दोलन के लिए मदद प्राप्त करने को श्री ताएब सलीम (अभी सुरक्षा परिषद के अध्यक्ष) और कुमारी मार्गरेट पोप ने भारत की यात्रा की। उनकी यात्रा के फलस्वरूप श्री अतुल्य घोष की अध्यक्षता में ट्यूनिसिया सहायता कमेटी गठित की गयी, भागीरथजी इसके कोषाध्यक्ष बनाये गये। भागीरथजी ने समिति की ओर से बंगाल की सहायता के रूप में १० हजार रु० ट्यूनिसिया की डेस्तेऊर पार्टी के सेक्रेटरी जनरल सलाह बेन युसुफ को काहिरा भेजे। कमेटी का काम जल्द ही समाप्त हो गया। प्रचार के काम में दिलचस्पी न होने के कारण इस कमेटी को भागीरथजी ने राजनीतिज्ञों पर छोड़ दिया।

भागीरथजी लेडी अबला बोस मेमोरियल फंड, रायबहादुर विश्वेश्वरलाल मोतीलाल हलवासिया ट्रस्ट, रघुमल चैरिटी ट्रस्ट, जनसेवा समाज कोष आदि ट्रस्टों से जुड़े थे। एक बार बातचीत के दौरान उन्होंने मुझे कहा कि वह इन ट्रस्टों का रुपया आदर्श शिक्षा संस्थाएं स्थापित करने में लगाना चाहते हैं। उनके पास विभिन्न प्रकार के लोग विभिन्न प्रकार की सहायता के लिए आते थे। कई बार ऐसे लोगों और उनकी आवश्यकताओं के बारे में वह मुझे पता लगाने को कहते। अगर जांच के बाद उन्हें लगता कि सहायता देनी चाहिए तो वह अपने पास से मदद देते या दूसरों से दिलवाते।

भागीरथजी ने अकाल-बाढ़ आदि के वक्त भारी काम किया। वह कितने ही प्रमुख नेताओं, व्यक्तियों और जरूरतमन्द लोगों की गुप्त सहायता करते थे। वह यह सब चुपचाप बिना प्रकट किए करते रहते। अदृश्य रहकर सहायता करना ही उनकी आदत थी। आज ऐसी विशेषता एकदम दुर्लभ है। वह इतने उदार और परदुख-कातर थे कि व्यापारी आदमी में रुपये-पैसों के मामले में जो सख्ती रहती है, वह उनमें नहीं थी। एक व्यापारी और उद्योगपति के रूप में उनकी सफलता या असफलता का मैं मूल्यांकन नहीं करना चाहता। मेरे मन में तो पीड़ित मानवता के साथी के रूप में उनकी जो छवि अंकित है, वह अमिट है। उनका परदुखकातर स्वभाव, उदार और प्रेमल व्यवहार, जो भी उनके सम्पर्क में आता था उसे अपना बना लेता था। राहत कार्य के बारे में अपने दृष्टिकोण को उन्होंने इंडिया फेमिन रिलीफ फंड, जोहानीसबर्ग के मंत्री को १८ फरवरी, १९४४ को लिखे अपने पत्र में बहुत अच्छी तरह रखा था, उन्होंने लिखा था "मैं आपको पूरे भरोसे के साथ कहना चाहता हूं कि सहायता-कार्य करते हुए हम, लोगों को उनके कष्ट में मदद देने के सिवाय कोई दूसरी भावना नहीं रखते।"

ऐसे थे हमारे भागीरथजी! राहत और सामाजिक कार्यों में उनके साथ काम करने का अवसर पाकर मैं धन्य हुआ हूं। उनके साथ १९४३ में जो सम्बन्ध बना, वह उनकी मृत्यु पर्यन्त बना रहा। मैंने बहुत से नेताओं और सामाजिक कार्यकर्ताओं को देखा है लेकिन उन जैसा परदुखकातर और स्नेही न किसी को पाया, ना ही देखा।

—: ० :—

श्री कल्याण आरोग्य सदन के एक अधिकारी

श्री दामोदर प्रसाद

सेवा ही जीवन

एक दिन उन्हें गहरी अचेत अवस्था में देखा तो भीतर ही भीतर आशंकाओं और दुश्चिन्ताओं के धागे बुरी तरह उलझने लगे। उनका शान्त चेहरा, कांपते हुए हाथ और ध्यानस्थ मुद्रा में बन्द आंखें तथा खुले हुए होंठ ··· ··· अपनी ही श्वास से धीमे धीमे कह रहे थे, "मृत्यु का भय नहीं। डरने की कोई बात नहीं। कल के खर्च व्यवस्था नहीं, कितना काम फैला रखा है, कितना खर्च बांध लिया है ?—"

उस उदासीपूर्ण वातावरण में उनकी ये बातें कानों में गूंजीं। एकटक होकर मैं उनकी तरफ देखता रहा। वे भी निर्विकार भाव से देखने लगे। हाथ में घड़ी बांधने की कोशिश करने लगे। परन्तु शरीर में शक्ति नहीं थी। मैंने उनके हाथ में घड़ी बांधी। वैसी हालत में भी उन्हें चिन्ता थी उन गरीबों की जो आर्थिक परेशानीवश शिक्षा नहीं ले पाते, इलाज नहीं करा पाते।

उनके परिवार के लोग उन्हें मुकुन्दगढ़ से थोड़ी देर बाद ही कार में दिल्ली ले गये। हम लोग घबड़ाहट और बेचैनी से घर लौटे। दो दिन बाद सुना, वे काफी स्वस्थ हैं। डाक्टरों की मेहनत और लोगों की शुभकामनाओं से वे स्वस्थ हो गये। उसके बाद करीब ५ वर्ष जीवित रहे और समाज-सेवा करते रहे।

राजस्थान के विकास में उनकी गहरी रुचि थी। राजस्थान में उन्होंने शिक्षा, चिकित्सा, समाजसेवा, पेय-जल की व्यवस्था, हरिजन सेवा आदि क्षेत्रों में काफी कार्य किये।

उनका नाम वर्षों से सुनता आ रहा था। सन् १९६७ में प्रथम बार उनसे मिलना हुआ। गरीबों की चिकित्सा के लिए निर्मित सांवली का आरोग्य सदन तथा हर्षपर्वत की मूर्तियां उन्हें दिखलायीं। उनको चलने में तकलीफ थी फिर भी काफी बीमारों से वे मिले, उनसे बहुत बातें पूछीं तथा आवश्यकतानुसार उनकी आर्थिक मदद भी की।

आरोग्य सदन आर्थिक परेशानी से गुजर रहा था। कार्यकर्ताओं में मनमुटाव था। बदरीनारायणजी सोढ़ाणी सदन के मंत्री पद से त्यागपत्र देना चाहते थे। मैं भी दूर भागना चाहता था। ऐसी स्थिति में भागीरथजी को सदन का अध्यक्ष बनाया गया। उन्होंने सदन के सभी अधूरे कार्यों को पूरा करवाया, अस्पताल के कार्यों को काफी बढ़ाया। जब वे ३० दिसम्बर, १९७१ को अध्यक्ष बने, सदन में १०० रोगियों को रखने की व्यवस्था थी। उन्होंने ३८० बीमारों को रखने का प्रबन्ध करवाया। १९७१ में सदन पर कई प्रकार के कर्ज थे। उन्होंने कर्ज चुकाये और काफी विकास करवाकर क्षय चिकित्सालय के साथ साथ आयुर्विज्ञान अनुसन्धान केन्द्र, जनरल अस्पताल, नर्सेज ट्रेनिंग सेण्टर, गौशाला, विद्यालय, शिशुगृह, तरण-ताल, नहर, मन्दिर आदि को चालू करवाया। इस तरह के काम केवल सीकर में ही नहीं देश के विभिन्न भागों में उन्होंने करवाये परन्तु कहीं भी अपना नाम लिखवाने की इच्छा जाहिर नहीं की।

सामाजिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक, स्वतन्त्रता आन्दोलन, औद्योगिक, जनहित आदि विभिन्न क्षेत्रों में उनकी काफी बड़ी देन रही है। ऊंच-नीच, छोटे-बड़े, गरीब-

अमीर आदि का उनके मन में कोई भेद नहीं था। सभी को समान भाव से देखते हुए वे विचार-विमर्श करते रहते थे। एक बार की बात है कुछ कर्मचारियों ने गोशाला, वाटर वर्क्स, खेती आदि का काम बन्द करके हड़ताल कर दी। वे उनसे बात करने के लिये चार बार स्वयं आये। उन्होंने कहा कि प्रबन्धकों को प्रतिष्ठा का सवाल नहीं बनाना चाहिये। कर्मचारियों को कुछ और सुविधाएं देनी चाहिये। जीत हमेशा मजदूरों की होती है। दीन-दुखी की सेवा और उसे सहयोग करने से आत्मा को शान्ति मिलती है। मन में प्रसन्नता रहती है। कोई भी व्यक्ति उन्हें पत्र लिखता तो वे उसे उत्तर जरूर देते थे। वृद्धावस्था में भी अधिकतर पत्रों के उत्तर वे अपने हाथ से लिखकर ही देते थे।

एक दिन वे सांवली के बाग़ में घूम रहे थे। कुछ बीमार उनसे मिलने आये। बीमारों से बातें हुई। उनसे व्यक्तिगत रूप से अलग-अलग भी बातें हुई। उनमें से ८ बीमारों की पूर्ण निःशुल्क चिकित्सा तथा ६ बीमारों को १२ महीनों तक निःशुल्क दवा देने की उन्होंने तुरन्त व्यवस्था की। पास में बैठे सज्जन बोले, बाबू बहुत खर्च बांध लिया। उन्होंने बड़ी नम्रता से कहा, "क्या इनमें चिकित्सा खर्च वहन करने की शक्ति है? रुपयों के अभाव में आदमी चिकित्सा नहीं करवा पाये, दवा नहीं ले पाये और लोगों में क्षय रोग फैलाये यह बड़ी शोचनीय बात है। इतना बड़ा अस्पताल है। इसमें गरीबों की सेवा होनी ही चाहिये। पता है लालबहादुर शास्त्री ने क्या कहा था? एक गरीब आदमी और एक सफेदपोश आये तो प्राथमिकता गरीब को मिलनी चाहिये, तभी यह अस्पताल सही मायने में सार्थक होगा। मेरी तो यही इच्छा है कि कोई गरीब यहां से निराश नहीं लौटे। सदैव उनकी सेवा होती रहे। अभी सदन में २५५ रोगी दवा, भोजन, दूध आदि सुविधाएं मुफ्त प्राप्त कर रहे हैं और ४२३ बीमार आउटडोर से मुफ्त दवा ले रहे हैं। कभी वह दिन भी आये जब किसी को दवा लेने की जरूरत ही नहीं हो। सभी स्वस्थ रहें। उसके लिये प्रयास होना चाहिये।"

कभी उन्हें क्रोध करते हुए नहीं देखा। कार्यकर्ताओं को काफी सम्मान देते हुए देखा। सैकड़ों संस्थाओं और हजारों कार्यकर्ताओं को उन्होंने सहयोग दिया। लोग उनके पास सहयोग प्राप्त करने के लिए बिना हिचक के पहुंचते थे। किसी की कोई गलती भी होती तो उस पर बिना क्रोध किये यही कहते सुना कि संभाल रखें। कहीं भूल तो नहीं हुई। गलती करनेवाले को स्नेहपूर्वक बातचीत करते हुए ही स्थिति से अवगत करवा देते थे। उदारता, सहनशीलता, नम्रता, कर्मठता, स्नेह आदि गुणों से वे ओतप्रोत थे।

बहुत बड़ा संसार था भागीरथजी का। उसमें विभिन्न प्रकार के लोग शामिल थे। विद्वान, गुणी, कलाकार, समाजसेवी, लेखक, कवि, राजनीतिज्ञ और साधारण जन। महात्मा गांधी, मदनमोहन मालवीय, लाला लाजपतराय, मीरा, कबीर, तुलसी आदि का उन पर काफी प्रभाव पड़ा था।

काफी दिनों तक कानोड़ियाजी का सान्निध्य मिला। उनके मार्गदर्शन में काम करने का अवसर मिला। उनसे बहुत सीखा और बहुत पाया। २९ अक्टूबर, १९७९ की रात में अस्पताल से घर पहुंचा ही था कि ट्रंककाल की घंटी बजी। जयपुर से रामकृष्णजी पारीक बोले "कानोड़ियाजी चल बसे…।" टेलिफोन पर बात नहीं कर पाया। टेलिफोन हाथ से छूट गया। जिसने भी निधन का समाचार सुना वह दुखी हुआ और दुख प्रकट किया। दुखियों का सहारा चला गया। रह गयी है उसकी मधुर याद।

—:०:—

श्री प्रह्लादनारायण पुरोहित

दीनबन्धु काकोजी

काकोजी (भागीरथजी कानोड़िया-अपने परिवार में इसी नाम से सम्बोधित किये जाते थे।) से मेरा पहले से कोई विशेष परिचय नहीं रहा। सन् १९३९ में वनस्थली पहुंचने पर वहां उनका नाम सुनने को मिला। थोड़े अरसे वाद वहीं पर पू० आपाजी (पण्डित हीरालालजी शास्त्री) का सान्निध्य मिलने पर मुझे लगने लगा कि वनस्थली की स्थापना और संचालन में पू० आपाजी तथा पू० भाभूजी (श्रीमती रतन शास्त्री) के अलावा उनके दो अभिन्न मित्रों श्री भागीरथजी कानोड़िया और श्री सीतारामजी सेकसरिया का भी पूरा हाथ है और वनस्थली की स्थापना के पूर्व से ही ये एक परिवार जैसे स्नेह-सूत्र में गुंथे हुए हैं। यही नहीं, यह भी आभास होता रहता कि ये चारों मानों एक ही परिवार के अंग जैसे हैं और राजस्थान बालिका विद्यालय (उस समय आज के वनस्थली विद्यापीठ का यही नाम था) और "जीवन कुटीर" के संचालन में इन चारों व्यक्तियों के एकात्मभाव का एक अद्वितीय चतुरभुज है, जिसकी प्रत्येक भुजा का अपने स्थान पर अपना अनोखा महत्व है। अतः इन दोनों विभूतियों के प्रति भी मेरे मन में सम्मान और श्रद्धा का भाव जगा।

अक्टूबर, १९४० में देशरत्न डॉ० राजेन्द्रप्रसादजी की अध्यक्षता में विद्यालय का पांचवा वार्षिकोत्सव आयोजित किया गया था। उस अवसर पर कलकत्ता से भागीरथजी और सीतारामजी साथ-साथ ही वनस्थली पहुंचे। उस जमाने में वनस्थली में न मोटर थी और न ही निवाई रेलवे स्टेशन से वनस्थली गांव तक पहुंचने के लिए पक्की सड़क ही। वनस्थली से निवाई स्टेशन तक जाने-आने की ५ मील की दूरी को पार करने के लिए बैलगाड़ी ही सवारी का एक मात्र साधन थी। बैलगाड़ी से वनस्थली से निवाई स्टेशन पहुंचने में सवा-डेढ़ घण्टे का समय लग जाता था। ये दोनों सज्जन भी निवाई रेलवे स्टेशन से विद्यालय के सगगड़ (एक प्रकार की परिष्कृत और छायादार गाड़ी) द्वारा उत्सव के एक दिन पूर्व वनस्थली पहुंचे। इन दोनों व्यक्तियों के वनस्थली पहुंचने पर विद्यालय-परिवार ने विद्यालय द्वार उनका हार्दिक स्वागत किया। अपने इन आत्मीय जनों को देख कर पूरे विद्यालय परिवार में हर्ष और उत्साह की लहर दौड़ गयी। मैंने देखा कि चाचाजी (सीतारामजी) और काकोजी (भागीरथजी) दोनों ही हाथ जोड़कर हल्की मुस्कान के साथ सबका अभिवादन स्वीकार कर रहे हैं। मुझे उस समय लगा दोनों ही विभूतियों का व्यक्तित्व सेठ के व्यक्तित्व से सर्वथा विपरीत पण्डितों जैसा है और सेवा ही उनका धर्म है। यह मेरा चाचाजी और काकोजी का वनस्थली के प्रांगण में प्रथम दर्शन था।

समय बीतता चला गया। चाचाजी और काकोजी समय-समय पर कभी दोनों साथ तो कभी अकेले भी वनस्थली आते-जाते रहे। उनके प्रति मेरे मन में आत्मीयता और श्रद्धा के भाव दृढ़ से दृढ़तर होते चले गये। जहां तक मुझे याद है, अगस्त, १९४५ में मुकुन्दगढ़ से वापस कलकत्ता लौटते समय काकोजी अकेले ही एक दिन के लिए वनस्थली पहुंचे थे। उस समय आपाजी ने काकोजी से परामर्श करके मेरे लिए यह निश्चित कर दिया कि उनके कलकत्ता पहुंचने के बाद, वनस्थली के लिए आर्थिक सहायता जुटाने के काम की दृष्टि से मैं भी उनके पास कलकत्ता पहुंच जाऊं। तदनुसार आपाजी के निर्देश से मैं वनस्थली से कलकत्ता के लिए चल पड़ा। वह लड़ाई का जमाना था। हावड़ा स्टेशन से जब मैं उनकी बालीगंज स्थित कोठी पर पहुंचा, तब काकोजी उस समय कोठी पर ही मौजूद थे। मुझे देख कर वे बोले, "अच्छा! थे आ पूग्या। शास्त्रीजी को पत्र डाकसूं काल ही मिल्यो। यात्रा आराम की रही या तकलीफ उठाणी पड़ी? थाने पहिचाने वाला अठे कोई आदमी न होणे से स्टेशन पर कोई ने पूगाकोनी सक्यों।" उत्तर में मैंने उनको बताया कि मैं बिना किसी कठिनाई के यहां तक आराम से आ पहुंचा हूं। इसके बाद वे स्वयं मुझे उस कमरे तक ले गये, जहां मुझे ठहरना था। उन्होंने दरवान को मेरा सामान और बिस्तर आदि ठीक करने को कहा और स्वयं साथ जाकर मुझे स्नान-घर आदि दिखा लाये। भाई तुलसीदासजी से मेरा परिचय कराने के बाद उन्होंने मुझसे कहा: "स्नान-भोजन करने के बाद आज तो यहीं पर आराम करो। कल आफिस चलना"। उनकी इस सरलता और अपने प्रति उनकी इस आत्मीयता और स्नेह-भाव को देख कर मैं गद्गद् हो गया। बिना जल-स्नान किये ही उनके स्नेह-सलिल-स्नान से मेरी यात्रा की सब थकान दूर हो गयी।

इस अवसर पर शुरू में कोई दसेक दिन मैं काकोजी के सान्निध्य में कलकत्ता रहा। प्रतिदिन वे मुझे अपने साथ आफिस ले जाते और वहां से अपने साथ ही वापिस ले आते। इन दिनों मैंने देखा कि वे निश्चित समय पर आफिस पहुंच जाया करते थे। दो दिन ऐसा भी हुआ कि ड्राइवर समय पर कोठी पर नहीं पहुंच पाया और गाड़ी पर ड्राइवर को न पाकर काकोजी मुझे साथ लेकर ट्राम गाड़ी पर सवार होकर ही आफिस जा पहुंचे थे। उनकी इस सादगी, आफिस में उनकी व्यस्तता, तत्परता, कार्यकुशलता को देख कर मैं दंग रह जाता था। वे निर्लिप्त भाव से अपने काम में लीन रहते थे। उन्हें किसी पर नाराज होते अथवा बिगड़ते मैंने नहीं देखा। इसके विपरीत जो कोई व्यक्ति अपनी जरूरत को लेकर पास पहुंच जाता था, अपनी इस व्यस्तता में भी वे ध्यान रखकर उसकी बात सुनते और उसका यथोचित सत्कार करके स्नेह और सहानुभूति प्रकट करते हुए आत्मीयता के साथ उसे बिदा करते। जब कभी वे ऐसे किसी आगन्तुक से बात करते होते तो मुझे लगता रहता था कि वे उससे शाब्दिक सहानुभूति ही नहीं जतला रहे होते पर अपनी सजग दृष्टि से उसके भीतर के दुःख दर्द को भी अनुभव कर रहे होते थे।

एक रविवार को उन्होंने मेरा बाहर जाने का कार्यक्रम निश्चित कर दिया। रांची, चाईबासा, टाटानगर, रानीगंज, झरिया और भागलपुर स्थित अपने मित्रों के

नाम पत्र लिख कर मुझे दे दिये। पहले रांची जाने का सुझाव दिया और मुझे समझाया कि कौन स्थान दिशा में एक दूसरे से विपरीत पड़ते हैं; प्रवास में सचेत रहना चाहिये; अपरिचित स्थान पर न ठहर कर जाने-माने व्यक्ति के घर पर ठहरना ठीक होगा।

अपने इस प्रवास काल में जहां-जहां भी मैं गया मैंने देखा कि समाज में काकोजी के प्रति उनके मित्रों की, स्नेहीजनों की एक प्रकार की अमिट आस्था, श्रद्धा और गजब का प्रेम और आदर भाव है। वे उन्हें अपना मार्ग-दर्शक मानते हैं। यह सब उन्होंने राष्ट्र और समाज के प्रति अपने समर्पित सेवा-भाव और त्याग के बल पर ही अर्जित किया था।

बिहार, बंगाल के इन शहरों की यात्रा से मैं अक्टूबर में वापस कलकत्ता लौट आया। काकोजी को जब मैंने अपने इस प्रवास और इन स्थानों से विद्यालय के लिए प्राप्त सहायता का विवरण दिया तो मेरा उत्साह बढ़ाते हुए उन्होंने मुझसे कहा कि "यह इतना रुपया आपको किसने दे दिया ?" मैंने उत्तर दिया कि "जो रुपया मिला है वह तो आपकी चिट्ठी के बल पर और उन लोगों द्वारा किये प्रयास के फलस्वरूप ही मिला है। मुझे तो जानता ही कौन था ?" पर वे मेरी बात को काटते हुए बोले : "इस काम में युक्ति और प्रयास तो आप ही का है। इसलिए यह आपकी ही सफलता है।" उनका इस प्रकार कहना मेरी प्रति उनकी उदारता और महानता का ही परिचायक तो था।

इसके बाद कलकत्ता में फिर एक बार और डेढ़ मास के लिए मुझे उनका सान्निध्य प्राप्त करने का अवसर मिला। इस अर्से में मैं कलकत्ते में भी कुछ जाने-माने व्यक्तियों के पास विद्यालय के लिए आर्थिक सहायता प्राप्त करने के प्रयोजन से पहुंच जाया करता था। एक दिन मैं एक ऐसे सज्जन के पास जा पहुंचा, जो शायद स्वयं कम उदार थे। मेरी बात को सुनकर उन्होंने कहा, "पण्डितजी, थे मेरे पास तो कोई गलती सूं ही आ पूग्या दीसो हो। थाने त भागीरथ कानोड़िया रै पास पूगणू चाये जिणा की आंट में देणे वास्ते खुजाल चालती रहवे है। दिन में जद तक उणा के पास पांच-सात आदमी चन्दा लेण्या न पूग जावे और रोजीना उणके पास पूग्योड़ां की बो आस (आशा) पूरी न करें, उणा की आंट की खुजाल नहीं मिट्या करे है। थे सीधा उठे चलया जाओ। थारो काम तो बठे सोरो बणसी।" उन्हें यह कहां पता था कि मेरा तो डेरा ही उनके शब्दों में ऐसे उदारमना भागीरथजी कानोड़िया की कोठी पर था। उनके इस प्रकार के कथन में काकोजी की अंगीकृत दानशीलता और उदारता के रहस्य का ही तो यथार्थ उद्घोष था।

पू० आपाजी के सान्निध्य में रहते मैंने काकोजी के बारे में बराबर यह अनुभव किया कि वे किस तत्परता से पत्रों का उत्तर दिया करते थे। उनके द्वारा भेजे गये उत्तर अत्यन्त सारगर्भित और संक्षिप्त होते थे। उनके पास पहुंचे लम्बे से लम्बे पत्र का उत्तर वे कम से कम शब्दों में लिखकर भेजा करते थे, जिसमें पत्र की कोई बात छूटने नहीं पाती थी। यह उनका चातुर्य और उत्तर लिखने की अपनी मौलिकता थी। किन्हीं पत्रों का उत्तर तो केवल डेढ़-दो पंक्तियों में ही लिखा होता था। लगभग सभी पत्रों का उत्तर वे स्वयं अपनी कलम से (अपने हाथ से) ही लिख कर भेजा करते थे।

काकोजी एक ऐसे सम्पन्न उद्योगपति थे जिन्होंने एक राष्ट्र-सेवक, समाज-सेवक और दीन दुखियों के सेवक के अलावा अपने आपको और कुछ माना ही नहीं। वे इस सारे वैभव और सम्पन्नता में जल कमलवत-निर्लिप्त भाव से रहते थे। वे सागर की गहराई की तरह अत्यन्त गम्भीर, वटवृक्ष की सघन शीतल छाया की तरह सब के लिए सुखदायी थे। सेवा का कोई क्षेत्र उन्होंने अछूना नहीं छोड़ा था। जहां जब, जैसी सेवा की जरूरत होती थी, वहीं वे अपने आपको स्वेच्छा से झोंक दिया करते थे। उन जैसा सच्चा, कर्मनिष्ठ, निष्ठावान, राष्ट्रसेवी, समाज-सेवी, समाज-सुधारक, दीनहीन को गले लगाने वाला, लेखक, उद्योगी, उद्यमी, उद्योगपति, गो सेवक, हरिजन सेवक, राष्ट्रभाषा हिन्दी की मूक भाव से सेवा करने वाला दूसरा कौन होगा ? सेवा का ऐसा कौन सा क्षेत्र है जिसमें उनका दखल न रहा हो ! देश में ऐसी कौन-सी बड़ी संस्थाएं हैं जिसमें उनका योगदान न रहा हो ? 'वहता पानी निर्मला' उनकी ऐसी कृति है जिसकी प्रत्येक कहानी अत्यन्त बोधप्रद और प्रेरक है।

महिलाओं, विद्यार्थियों, विद्वानों, सार्वजनिक, सामाजिक एवं राष्ट्रकर्मियों की सहायता करते वे कभी अघाते नहीं थे। दीन-दुःखियों और जरूरतमन्दों की बिना किसी प्रकार के भेद भाव के सहायता पहुंचाने तथा उनके कष्टों को दूर करने या कम करने के लिए वे सदा तत्पर और लालायित रहते थे। उनका जीवन ही सेवामय था। उनकी सदा यही भावना बनी रहती थी कि—

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं न पुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनाम् आर्तिनाशनम्॥

न मैं राज्य की कामना करता हूं न स्वर्ग की और न ही मोक्ष की। मैं तो दुःखी प्राणियों के दुःख का विनाश चाहता हूं।

ऐसे थे दीनबन्धु काकोजी !

—:०:—

मारवाड़ी बालिका विद्यालय, कलकत्ता के भूतपूर्व कार्यालय-अधिकारी

श्री द्वारका प्रसाद

उदार और कर्मठ

श्रद्धेय भागीरथजी कानोड़िया को मैंने लगभग पचास वर्ष पहले पहली बार देखा था। उन दिनों हरिजन-उत्थान का कार्य जोरों पर था। भागीरथजी, सीतारामजी सेकसरिया और बसंतलालजी मुरारका ने बड़ाबाजार में हरिजन उत्थान समिति की स्थापना की थी। मैं समिति के आफिस-इन-चार्ज और समिति द्वारा संचालित हरिजन पाठशालाओं के निरीक्षक पद पर नियुक्त हुआ था। समिति की ओर से कलकत्ता की बस्तियों में २२ पाठशालाएं—दिन की और रात्रिकालीन—चलायी जाती थीं। पाठशालाओं और समिति के काम से पदाधिकारियों के पास जाने की मुझे जरूरत पड़ती रहती थी। सभी पदाधिकारी सुबह से रात तक व्यस्त रहते, लेकिन भागीरथजी की व्यस्तता तो गजब की थी। वह चार-पांच टेलीफोनों से घिरे रहते; एक न एक की घण्टी टनटनाती ही रहती; सामने बैठे लोगों से बात करते जाते; टेलीफोन गर्दन के सहारे रख सुनते जाते और हाथ से लिखते जाते और यह क्रम ५ बजे तक तो रहता ही।

आफिस के काम में इतनी व्यस्तता के बावजूद भागीरथजी समिति का काम ऐसे इतमीनान से देखते मानो घर से चल कर पहले-पहल काम कर रहे हों। कभी-कभी बस्तियों की किसी रात्रि-पाठशाला में पहुंच जाते। हरिजन बच्चों से प्रेमपूर्वक बातचीत करते और उनसे उनके अभिभावकों के बारे में जानकारी प्राप्त करते। किसी बच्चे की बात से उन्हें यदि अनुमान होता कि उसके अभिभावक विशेष रूप से कष्ट में हैं तो उस अभिभावक से स्वयं बात करते; अर्थाभाव के कारण इलाज न करा पानेवाले हरिजन भाइयों की सहायता करते; दुखियों की सहायता इस तरह करते कि कोई दूसरा जान भी न पाता। समिति का आफिस-इन्चार्ज और पाठशालाओं का निरीक्षक होते हुए भी मैं उनकी सहायता का पता नहीं पा सकता था। पाठशालाओं के निरीक्षण के सिलसिले में सहायता का प्रसंग उठने पर कोई भागीरथजी की सहायता की बात बतलाता तो मुझे कभी-कभी पता लगता। कितने दुखी हरिजन भाई तो उनके निवास-स्थान पर पहुंच जाते; उन्हें वह कहते यह ले जाओ पर किसी से कहना नहीं। असल में वह बड़े गुप्त दानी थे।

हरिजन उत्थान समिति में काम करने के बाद सन १९३६ में मुझे मारवाड़ी बालिका विद्यालय के दफ्तर का भार सौंपा गया। तब से मैं अपने नाम के बजाय 'दफ्तर बाबू' नाम से ही ज्यादा जाना जाता हूं। विद्यालय के प्रमुख पदाधिकारी वे ही सुधारवादी, समाज सेवक और देशभक्त कार्यकर्त्ता थे जो हरिजन उत्थान समिति

के भी पदाधिकारी थे। इस तरह श्रद्धेय भागीरथजी से मेरा सम्पर्क पूर्ववत रहा। मेरे विद्यालय में काम शुरू करने के कुछ दिनों बाद एक सज्जन दो लड़कियों के साथ आये कहा कि कानोड़ियाजी ने इनको भरती कराने भेजा है। लड़कियां जिस क्लास के लायक थीं, भरती कर ली गयीं। लेकिन वह सज्जन प्राय: विद्यालय में आते, कुछ समय बैठते भी। मुझे दम लेने की फुरसत नहीं रहती कि उनसे कोई चर्चा कर सकूं। एक दिन वह देर से आये और मुझे फुरसत में देख कर बोले, मेरा विचार है कि जल्दी लड़कियों को पढ़ाकर उनकी शादी कर दूं। समय बीतता गया, जब कभी यह सज्जन आते तो शादी के लिए अर्थाभाव से चिंतित दिखते लेकिन उनकी बात से कहीं लगा कि भागीरथजी ने उन्हें मदद करने का आश्वासन दिया है। वर्षों बाद एक दिन वह प्रसन्न मुद्रा में मुझे बता गये कि पिछली शाम कानोड़ियाजी ने बड़ी लड़की की शादी के लायक रुपये दे दिये हैं और छोटी लड़की के लिए बाद में देखेंगे। उनके मन पर से चिन्ता का बोझ हटते देख मुझे अपार संतोष और आनन्द मिला।

भागीरथजी की सहृदयता की एक घटना का मुझे किसी तरह पता चला। यह घटना न समिति की है और न विद्यालय की। एक आदमी ने मोतिया बिंद का आपरेशन करवाया; चश्मा लगाने का समय आया तो उसके पास पैसे नहीं थे। किसी ने उसे भागीरथजी के पास जाने को कहा। वह उनके लेक स्थित निवास-स्थान पर गया, वहां किसी सज्जन ने उसे उनसे मिलने नहीं दिया बल्कि तेज आवाज में डांट कर कहा कि यहां चश्मे का पैसा-वैसा नहीं मिलता। आदमी निराश होकर जा रहा था कि भागीरथजी तेजी से बगल के कमरे से बाहर निकले; उन्होंने 'डांट' सुन ली थी। उन्होंने डांटने वाले सज्जन को कहा: "किसी को कुछ दे नहीं सकते तो उससे आदमियत का व्यवहार तो कर ही सकते हो।" उन्होंने उस आदमी को बुलाया और चश्मे का दाम दिया। आज भी वह आदमी वही चश्मा लगाकर अपनी जीविका चला रहा है।

काम पड़ने पर मैं उनसे फोन से न पूछ कर स्वयं जाकर समझ आना बेहतर समझता था। एक बार जल्दी में कोई जरूरी काम पड़ा। मैंने उन्हें फोन किया। मैंने उन्हें अपना अभिप्राय बताना प्रारम्भ किया, लेकिन मैं उत्तेजना में कुछ ऊंची आवाज में बताने लगा, तो इतने में वह बोले इतनी जोर से क्यों बोलते हो। मुझे तत्काल अपनी असभ्यता का एहसास हुआ, मैं संभल गया और सदा के लिए संभल गया। उनकी सीख मौके-मौके पर मिल जाती थी जिससे मुझ में सुधार हो जाता था। इसी तरह की एक और घटना है। एक बार विद्यालय की मीटिंग हो रही थी। बहुत ज्यादा गरमी थी। मैं मीटिंग की कार्यवाही नोट करने बैठा था। मैंने कुरते की बांह ऊपर तक चढ़ा रखी थी। भागीरथजी अध्यक्ष थे। उनकी निगाह मेरी चढ़ी हुई बांह पर गई। उन्होंने अपनी कलम की छोर से मेरे कुरते की मुड़ी बांह की ओर इशारा किया और मैंने उसे सीधा कर दिया।

एक बार मैंने उनसे कहा विद्यालय के मासिक चन्दादाताओं के पास वसूली के लिए रसीदें भेजनी हैं। उन्होंने कहा, आफिस में ले आना, साइन कर दूंगा। दूसरे दिन मैं उनकी आफिस गया तो वह बहुत ज्यादा व्यस्त थे, बोले, रजिस्टर और

रसीदें रख जाओ परसों मंगा लेना। वापस लौटते वक्त सोच रहा था कि रसीदें जल्दी बना कर रख तो आया लेकिन सही-गलती दुहरायी नहीं। इसके बाद रसीदों की रकम पर ध्यान दौड़ाने लगा तो ख्याल आया कि शायद एक रसीद का टोटल गलत हो गया है। सोचा वापस लौटकर रसीदों को फिर देख कर भ्रम दूर कर आऊं, लेकिन आफिस बन्द होने का समय हो रहा था। मैंने यही अच्छा समझा कि परसों भागीरथजी ने रसीदें मंगाने को कहा है, कल जल्दी ही उनकी आफिस पहुंच कर तसल्ली कर लूंगा। तो दूसरे दिन मैं जल्दी ही आफिस पहुंच गया, देखते ही भागीरथजी ने पूछा "क्यों।" मैंने कहा "एक रसीद में गलती मालूम हुई, वही देखने आया हूं।" उन्होंने कहा "मैंने ठीक करके सब साइन कर दिया है, ले जाओ।" मैंने रसीदों को उलट कर देखा, सचमुच एक रसीद में मेरी भूल थी। भागीरथजीने उसे सुधार कर उस पर अपने हस्ताक्षर कर दिये थे। उन्होंने मुझे एक शब्द भी नहीं कहा। अपनी गलती स्वतः क्षमा होते देखकर मैं पानी-पानी हो गया। उनके बड़प्पन पर श्रद्धा तो हुई ही, साथ यह भी सोचा कि इतनी व्यस्तता में उन्होंने कल का काम आज ही कर रखा था।

स्वतंत्रता आंदोलन और समाज-सुधार के उन दिनों में एक से एक बात जुड़ती थी— मारवाड़ी बालिका विद्यालय में एक साहित्य विभाग भी चलता था जिसके अन्तर्गत प्रयाग महिला विद्यापीठ की विद्याविनोदिनी, विदुषी व सरस्वती आदि तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन की प्रथमा, मध्यमा और उत्तमा की परीक्षाओं की पढ़ाई कराई जाती थी। ये परीक्षाएं देकर कितनी ही विधवा, परित्यक्ता और निराश्रित महिलाएं अध्यापिका बन कर रोजी-रोटी कमाने लायक बनीं। इनके अलावा स्कूल भेजने से कतराने वाले पुराने विचारों के घरों की कन्याओं और विवाह हो जाने के कारण पढ़ाई छोड़ देने को बाध्य हुई लड़कियों ने भी इन परीक्षाओं से बहुत लाभ उठाया। इस तरह मारवाड़ी बालिका विद्यालय सिर्फ बालिकाओं की ही शिक्षा का काम नहीं कर रहा था, स्त्रियों को स्वावलम्बी बनाने का भी प्रयत्न कर रहा था।

परीक्षाओं के लिए विद्यालय परीक्षा केन्द्र के रूप में भी मान्य था। महिला परीक्षार्थियों की संख्या कम होने के कारण सम्मेलन ने विद्यालय से परीक्षा-केन्द्र हटाने का निश्चय किया। इससे परीक्षार्थिनियां परेशानी में पड़ गयीं; पुरुषों के साथ बैठ कर परीक्षा देने में उन्हें हिचक थी। भागीरथजी ने दिन के तीन बजे मुझे फोन करके अपनी आफिस बुलाया और कहा कि तुम पुनः केन्द्र स्थापित कराने के लिए आज ही इलाहाबाद चले जाओ। मैंने कहा कि अब तो परीक्षा को एक सप्ताह भी नहीं रह गया है, तो उन्होंने कहा कि कोई बात नहीं। भागीरथजी और सीतारामजी ने मुझे सम्मेलन के पदाधिकारियों के नाम पत्र दिये। मैं शाम को इलाहाबाद रवाना हुआ। इलाहाबाद पहुंचा तो पाया कि उस दिन सम्मेलन बंद था। रजिस्ट्रार के मकान पर गया। उन्होंने कहा यह काम इतनी जल्दी होने वाला नहीं है, इसके लिए मीटिंग की स्वीकृति लेनी होगी और पदाधिकारीगण शहर से बाहर हैं। बड़ी कठिनाई है पर आप ऐसे व्यक्ति विशेष के पत्र लाये हैं कि कुछ करना ही होगा। रजिस्ट्रार साहब ने दूसरे दिन ११ बजे

अरजेंट मीटिंग बुलाई और दो बजे तक परीक्षा केन्द्र के पुनः स्थापित किये जाने की स्वीकृति मिल गयी। लेकिन प्रश्न-पत्र भेजने का सारा प्रवन्ध लखनऊ से होता था। मैंने रजिस्ट्रार साहब से कहा कि आप मुझ पर विश्वास करें, लखनऊ के लिए मुझे पत्र दे दें ताकि वहां के लोग मुझे प्रश्नपत्र का पैकेट दे दें। अगर मुझे कल प्रश्नपत्र मिल गये तो मैं समय पर पहुंच कर कलकत्ता में परीक्षा आरम्भ करा लूंगा। लोगों को बात जंची, मैं लखनऊ रवाना हुआ और वहां प्रश्नपत्रों के पैकेट तैयार करवाये और तुरंत कलकत्ता रवाना हुआ। यह प्रसंग मैंने यह बताने के लिए लिखा है कि भागीरथजी की कर्त्तव्यनिष्ठा और तत्परता उनसे साथ काम करने वालों को किस तरह प्रेरित करती थी। कलकत्ता-इलाहाबाद-लखनऊ-कलकत्ता करते हुए मेरे मन में एक ही बात थी कि अगर परीक्षा केन्द्र पुनः स्थापित नहीं हुआ तो भागीरथजी को बड़ा दुख होगा।

मारवाड़ी बालिका विद्यालय की प्रगति होती ही गयी। एक वक्त था जब पांचवीं से ऊपर की कक्षाओं को, लड़कियों की कमी के कारण चलाना मुश्किल होता था और फिर एक वक्त आया जब स्थान की कमी के कारण लड़कियों को भरती करना मुश्किल हो गया। भागीरथजी और सीतारामजी को यह समस्या परेशान करने लगी। लार्ड सिन्हा रोड पर सर आग़ा खां की ३ बीघा ८ कट्ठा जमीन बिकाऊ थी। भागीरथजी ने अपने पास से जमीन का बयाना देकर सौदा पक्का कर लिया। जमीन के दाम, इमारत बनाने के खर्च और फर्नीचर के लिए वड़ी रकम की जरूरत थी। भागीरथजी और सीतारामजी चंदा इकट्ठा करने रोज सुबह नियम से निकलते और दिन में ११-१२ बजे घर लौटते। यह क्रम १५ दिन चला होगा कि ७-८ लाख के करीब चंदा आ गया। इस तरह १९५४ में इस जमीन पर श्री शिक्षायतन का निर्माण हुआ। आज श्री शिक्षायतन कलकत्ता की विशालतम शिक्षा-संस्थाओं में एक है।

ये तो कुछ बातें मैं जैसे-जैसे याद आती गयीं लिखता गया, लेकिन भागीरथजी के चले जाने से मेरे जैसे लोगों को जो अभाव महसूस हो रहा है, उसे लिख पाना तो असंभव है।

—: ० :—

चार्टर्ड एकाउंटेन्ट, प्रबन्ध-सलाहकार

श्री नन्दलाल शाह

एक 'सामाजिक उद्योगपति'

मुझे श्रद्धेय भागीरथजी के साथ उनके औद्योगिक प्रतिष्ठानों के लिए कुछ समय काम करने का अवसर मिला। इस दौरान उद्योगों के सामाजिक उत्तरदायित्व सम्बन्धी उनके विचारों से अवगत हुआ। उनकी प्रेरणा से मजदूर-कानूनों और बोनस के प्रश्नों पर मैंने कुछ लेख पत्र-पत्रिकाओं में लिखे। भागीरथजी बराबर मेरा मार्ग-दर्शन करते रहे। यहां एक ऐसे प्रसंग का जिक्र कर रहा हूं जिससे मुझे बहुत प्रेरणा मिली।

आदित्य मिल्स लिमिटेड सूत की एक बड़ी मिल है। यह मदनगंज-किशनगढ़ (जयपुर और अजमेर के मध्य) में स्थित है। भागीरथजी इसके बोर्ड आफ डाइरेक्टर्स के सभापति थे। बात १९६५-६६ की है। कम्पनी की वार्षिक साधारण-सभा का सभापतित्व भागीरथजी कर रहे थे। कम्पनी के मैनेजिंग डाइरेक्टर अश्विनीकुमारजी कानोड़िया और अन्य निदेशकगण—महाराजा मानसिंह, सरोत्तमभाई हत्थीसिंह और राजस्थान सरकार के प्रतिनिधि—उपस्थित थे। कम्पनी का उत्पादन १९६३-६४ में ही प्रारम्भ हुआ था। प्रथम दो-चार वर्षों में डेप्रिसियेशन और अन्य छूट इतनी अधिक होती है कि वितरण के लिए लाभ बचना सम्भव नहीं होता है। अतएव उस साधारण सभा में भी हिस्सेदारों के लिए लाभांश देने का कोई प्रावधान नहीं था।

मदनगंज-किशनगढ़ सूत की बड़ी मंडी रही है। आज तो इसका स्थान रुई के सूत के पावरलूम के लिए देश में प्रथम है। मिल की ख्याति इतनी थी कि अधिकांश व्यापारी कुछ न कुछ इस मिल के शेयर जरूर खरीद कर रखते थे। हर एक व्यापारी की इच्छा रहती थी कि मदनगंज-किशनगढ़ के लिए कम्पनी की स्थानीय एजेन्सी मिल जाये। लेकिन एजेन्सी तो केवल एक ही फर्म के लिए हो सकती थी। उस समय कम्पनी के स्थानीय ऐजेन्ट मेसर्स मोतीलाल रामस्वरूप थे।

जैसा कि बड़ी कम्पनियों की वार्षिक साधारण-सभा में होता है, इस सभा में भी हिस्सेदारों ने अपना विरोध जोर से करने की योजना बना रखी थी। सैकड़ों व्यापारी सभा में उपस्थित थे। यहां यह जान लेना आवश्यक है कि कानोड़िया परिवार और उसके मित्रों के पास कम्पनी के शेयर इतने अधिक थे कि उनके किसी प्रस्ताव के गिरने का कोई प्रश्न ही नहीं था।

भागीरथजी की अध्यक्षता में सभा की कार्यवाही आरम्भ हुई। एक-एक करके प्रस्तावों पर विचार शुरू हुआ। एक प्रस्ताव यह था कि डायरेक्टर-मीटिंग फीस ७५ रु० से बढ़ा कर २५० रु० कर देने का अधिकार बोर्ड आफ डायरेक्टर्स को दे दिया जाय। यह प्रावधान कम्पनी कानून के नये परिवर्तन के अनुसार रखा गया था।

हिस्सेदारों ने एतराज किया कि जब अभी तक उन्हें लाभांश नहीं दिया गया है तब मीटिंग-फीस क्यों बढ़ायी जा रही है। भागीरथजी ने हिस्सेदारों की बात का औचित्य समझा। उन्होंने कहा कि हम कम्पनी-कानून में नये परिवर्तन के अनुसार बोर्ड आफ डायरेक्टर्स को फीस बढ़ाने की अनुमति सिर्फ अधिकार स्वरूप दे रहे हैं, लेकिन मैं इसकी व्यक्तिगत जिम्मेवारी लेता हूं कि कम्पनी जब तक लाभांश नहीं देगी तब तक बोर्ड आफ डायरेक्टर्स यह फीस नहीं बढ़ायेगा। प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हुआ। हिस्सेदारों की जीत हुई। भागीरथजी को ऐसी जीत से हमेशा खुशी होती थी।

दूसरा प्रस्ताव था कि दो वर्ष के लिए मेसर्स मोतीलाल रामस्वरूप को स्थानीय एजेन्ट नियुक्त किया जाय। अनेक हिस्सेदारों ने इसका विरोध किया कि मोतीलाल रामस्वरूप को ही एजेन्ट क्यों बनाया जा रहा है। इस पर कम्पनी की ओर से कहा गया कि ये अच्छे व्यापारी हैं और कम्पनी के पास उनके खिलाफ कोई शिकायत नहीं है। एक हिस्सेदार ने कहा मोतीलाल रामस्वरूप एजेन्ट की हैसियत में स्थानीय व्यापारियों में भेद-भाव करते हैं, एक ही समय में अलग-अलग व्यापारियों को अलग-अलग भाव में माल बेचते हैं। इस वक्ता ने एक खास तारीख और दो व्यक्तियों के नाम भी बताये जब कि एक ही समय पर अलग-अलग भावों पर सौदे किये गये थे। कम्पनी कानून के अनुसार साधारण सभा में कम्पनी के खाते दिखाना आवश्यक नहीं होता। लेकिन भागीरथजी ने कहा कि कानून अपनी जगह है और सामाजिक औचित्य अपनी जगह है। अतएव उन्होंने सेल-कंट्राक्ट के रजिस्टर सभा में मंगवाने का आदेश दिया और कहा कि बात सबके सामने साफ होनी चाहिए। रजिस्टर, बिल आदि सब मंगवाये गये। इनमें देखा गया कि दोनों व्यापारियों को एक ही भाव पर माल बेचा गया था। लेकिन इसके बावजूद कई हिस्सेदारों ने कहा कि मोतीलाल रामस्वरूप की नियुक्ति दो साल के बजाय एक साल के लिए की जाय। छह महीने बीत चुके थे। एक साल के लिए नियुक्ति करने से इसी प्रस्ताव को फिर अगले वर्ष रखना आवश्यक हो जाता था। साधारणतया ऐसी नियुक्ति ३ से ५ वर्ष तक के लिए होती है लेकिन भागीरथजी ने कहा : जहां तक हो, सभी हिस्सेदारी की सहमति प्राप्त करनी चाहिए अतएव प्रस्ताव में संशोधन हुआ और नियुक्ति एक वर्ष के लिए ही हुई। यह भी हिस्सेदारों की जीत थी और भागीरथजी उनकी जीत से प्रसन्न थे।

अगला प्रस्ताव था कि मेसर्स जी० पी० केजड़ीवाल एण्ड कम्पनी को फिर से आडीटर्स नियुक्त किया जाय। हिस्सेदारों का कहना था कि राजस्थान में चार्टर्ड एकाउंटेंट रहते कलकत्ते की फर्म को क्यों नियुक्त किया जा रहा है। इस पर पूरी बात समझने के बात भागीरथजी ने कम्पनी की ओर से जवाब दिया कि शुरू से ही मेसर्स जे० पी० केजड़ीवाल एण्ड कम्पनी आडिटर्स हैं अतएव उन्हें कम्पनी के विषय में पूरी जानकारी है। इसलिए आडिटर तो उन्हें सर्वसम्मति से ही नियुक्त किया जाना चाहिए। इसके साथ ही उन्होंने यह भी आश्वासन दिया कि कम्पनी के इन्टरनल आडिट और टैक्स आदि के कार्य राजस्थान के चार्टर्ड एकाउंटेंटों को ही दिये जायेंगे। इससे उपस्थित राजस्थानी चार्टर्ड एकाउंटेंट बहुत खुश हुए। इसके पश्चात इन्टरनल

आडिट का काम मेसर्स ए० एल० चनानी एण्ड कम्पनी, भीलवाड़ा को और इनकम टैक्स का काम आर० एस० दानी एण्ड कम्पनी, अजमेर को मिला।

सभा में और भी कई अन्य प्रस्ताव थे जो सर्वसम्मति से ही पास हुए। सभा में हिस्सेदारों की बातों को उतना ही महत्व दिया गया जितना कि परिवार के सदस्यों की बात को दिया जाता है। पबलिक कम्पनियां आज भी पबलिक कहलाते हुए भी जनता की नहीं समझी जाती हैं। १५ वर्ष पूर्व तो बात ही और थी। उस समय बड़े औद्योगिक प्रतिष्ठानों में हिस्सेदारों की बात को इतना महत्व देना, भागीरथजी की ही सूझ-बूझ थी। बाहर से आये कम्पनी के सभी डायरेक्टरों ने इस प्रकार हिस्सेदारों की बात मानने के लिए भागीरथजी की प्रशंसा की। भागीरथजी ने मिल के अधिकारी वर्ग को कहा कि मुझे इस बात की खुशी है कि स्थानीय लोग मिल की कार्य-प्रणाली में इतनी दिलचस्पी लेते हैं। उन्होंने निर्देश दिया कि मिल में लोगों की दिलचस्पी बनाये रखने के लिए सतत् प्रयास करना चाहिए। वे मानते थे कि हिस्सेदारों की हर उचित बात को स्वीकार करना चाहिए और अनुचित बात को भी सुनकर उन्हें समझाने की कोशिश करनी चाहिए।

इसके फलस्वरूप उनकी प्रेरणा से कम्पनी के मैनेजिंग डायरेक्टर श्री अश्विनी कुमार कानोड़िया ने मदनगंज, किशनगढ़ में स्थानीय लोगों को पावरलूम बैठाने के लिए प्रोत्साहित किया और हर प्रकार की मदद की। आज किशनगढ़ में ७ हजार पावरलूम हैं। एक हजार से अधिक परिवार इसके फलस्वरूप लघु-उद्योगों के मालिक हैं। किशनगढ़ आज रूई के सूत के पावरलूमों की हमारे देश की सबसे बड़ी मण्डी है।

—: ० :—

भागीरथजी के व्यवसाय-प्रतिष्ठान में अधिकारी
श्री शिखरचन्द सरावगी

समदर्शी व्यक्तित्व

श्रद्धेय भागीरथजी कानोड़िया से मेरा सम्पर्क सन् १९२४ में हुआ। यों सामान्य-सा परिचय तो सन् १९२३ में ही हो गया था, जब मेरे बड़े भाई बिड़ला ब्रदर्स लि० में उनके गनी एक्सपोर्ट डिपार्टमेंट में काम करते थे, परन्तु सन् १९२४ में मैं भी बतौर प्रशिक्षणार्थी के बिड़ला ब्रदर्स में काम करने लगा था। उन दिनों रामकुमारजी खेमका अमेरिका से वापस लौट कर आये थे तथा बिड़ला ब्रदर्स के अन्तर्गत उन्होंने एक एक्सपोर्ट-इम्पोर्ट डिपार्टमेंट खोला था। कुछ ही समय बाद वह डिपार्टमेंट बन्द कर दिया गया क्योंकि आयात किये गये मालों का भाव निरंतर गिरता जा रहा था और वह डिपार्टमेंट घाटा दे रहा था। फलतः मुझे भी उस काम से छुट्टी मिल गयी और तब मैंने हैसियन बोरों की दलाली करनी शुरू की और उस काम से भागीरथजी के पास भी आने-जाने लगा। एक दिन उन्होंने हठात् मुझसे कहा...."यदि तुम हमारे यहां काम करना चाहो, तो मैं तुम्हें काम दे सकता हूं...।" मैंने कुछ सेकेण्डों में ही उन्हें 'हां' में उत्तर दिया और पूछा कब से काम शुरू करूं। उन्होंने कहा "अभी से।" मैंने तुरन्त ही दलाली सम्बन्धी अपने कागजात अपनी जेब में रखे और उन्होंने जूट एक्सपोर्ट डिपार्टमेंट में काम करनेवाले चिरंजीलालजी मिश्र को बुलाकर कहा कि वह मुझे डिपार्टमेंट के काम से अवगत करा दें। यहीं से भागीरथजी से मेरा सम्पर्क हुआ।

उनके कई गुणों पर मैंने बड़ी गौर से ध्यान दिया और मन ही मन उनके प्रति मेरी श्रद्धा बढ़ने लगी। मुझे सबसे बड़ा और असाधारण गुण जो उनमें दिखाई दिया, वह था उनकी क्षमाशीलता एवं क्रोध का सर्वथा अभाव। वे बिड़ला ब्रदर्स में एक अति उच्च पदासीन अधिकारी थे। उनके अधीन छोटे-बड़े पचीसों कर्मचारी काम करते थे। कर्मचारियों से भूल होना अत्यन्त स्वाभाविक बात थी, किन्तु मेरे ४७ वर्षों के सम्पर्क में मैंने उन्हें किसी पर भी क्रोधित होते नहीं देखा। यह मेरे लिये महान् आश्चर्य की बात थी और आज भी जब मैं उनके इस असामान्य गुण को याद करता हूं तो मुझे उनमें जैन-शास्त्रों में वर्णित धर्म के १० अंगों में प्रधान 'क्षमा' अंग का पूर्ण समावेश प्रतीत होता है। इस विषय की एक विशेष घटना का मैं जिक्र करता हूं।

उन दिनों बिड़ला ब्रदर्स का कार्यालय १३७, कैनिंग स्ट्रीट से उठकर नं० ८ रॉयल एक्सचेंज प्लेस में आ गया था। भागीरथजी जूट तथा गनी, दोनों ही डिपार्टमेंट का काम देखते थे। उन दिनों एक्सपोर्ट का काम यद्यपि बहुत जोरों पर था, किन्तु व्यावसायिक प्रतियोगिता इतनी तीव्र थी कि मुश्किल से ही थोड़ा लाभ होता था या कभी नहीं भी होता था। शाम के समय वे हमें जूट की अनेक किस्मों की दरें भारतीय

मुद्रा यानी रुपयों में लिख कर दे जाते थे और मैं उनमें से प्रत्येक में कई तरह के खर्च, एक्सपोर्ट ड्यूटी इत्यादि जोड़ कर उन्हें मुद्रा-विनिमय की दरों से पाउन्ड एवं डालर के भावों में परिवर्तन कर लन्दन एवं अमेरिका को तार भेजने के लिये आफिस के एक सुदक्ष एवं विश्वस्त कर्मचारी श्री ज्योतिप्रसन्न गांगुली को दे दिया करता था। इसी तरह हैसियन और बोरों के भावों के दरों की लिस्ट वे गनी डपार्टमेंट के एक सुयोग्य कर्मचारी मोहनलालजी खत्री को दे जाते थे जो उन्हें उपरोक्त तरीकों से विदेशी मुद्राओं में परिवर्तित कर श्री गांगुली बाबू को दे जाते थे। काम की अधिकता के समय में मैं और मोहनलालजी भी कभी-कभी गांगुली बाबू की सहायता कर दिया करते थे। सभी तारों के उत्तर हमें दूसरे दिन सवेरे ही मिल जाया करते थे।

एक दिन बहुत बड़े परिमाण में अमेरिका से हैसियन की बिक्री का समाचार हमारे तार के उत्तर में मिला। भागीरथजी को कुछ आश्चर्य हुआ कि उस दिन इतना ज्यादा माल कैसे बिक कर आया जबकि रुपयों में उनके द्वारा दी गई दरें खास नीची तो थीं नहीं। उन्होंने मोहनलालजी खत्री को बुलाकर उनसे अपने हाथ का लिखा कागज लाने को कहा जिसमें पिछली शाम को उन्होंने दरें लिख कर मोहनलालजी को दी थीं। जांचने पर उन्हें अपनी कोई भूल नहीं मालूम दी। तब उन्होंने मोहनलालजी से कहा कि डालर में दिये हुए भावों को फिर अच्छी तरह जांच लें। जांचने पर पता चला कि मोहनलालजी ने एक बड़ी भूल कर दी थी, जिसके कारण अमेरिका में हैसियन की दरें डालर की करेन्सी में नीची दे दी गयी थीं, फलतः बहुत-सा माल बिक आया था। उस दिन कम्पनी को हजारों रुपयों का नुकसान हो गया। मुझे भय था कि इतनी बड़ी भूल के कारण मोहनलालजी को सिर्फ दुत्कार ही नहीं पड़ेगी वरन् काम से भी हाथ धोना पड़ेगा, किन्तु मेरे आश्चर्य और खुशी का ठिकाना न रहा जब भागीरथजी ने मोहनलालजी से सिर्फ इतना ही कहा—"देखो, तुम्हारी जरा-सी असावधानी के कारण कितना बड़ा नुकसान हो गया। भविष्य में विशेष सावधान रहने की आवश्यकता है।"

यहां मैं एक और घटना का वर्णन करता हूं जो मुझसे ही सम्बधित थी। उस घटना से उनकी सहनशीलता, धैर्य एवं शान्त-प्रकृति का स्पष्ट चित्र मेरे हृदय में अंकित हुआ। उन दिनों काम की अधिकता के कारण जूट एक्सपोर्ट डिपार्टमेन्ट के प्रायः सभी लोगों को अक्टूबर से जनवरी तक या कभी-कभी बाद के किसी महीने में भी काम करते हुए रात में ९ बज जाते थे। किसी-किसी दिन तो कुछ बचा हुआ काम घर पर भी ले जाना होता था ताकि दूसरे दिन ११ बजे के पहले ही आवश्यक कागजात तैयार कर जल्द ही बैंकों में भेज दिये जांय और उनके बाबत उसी दिन बैंकों से रुपये मिल जांय। उन्हीं दिनों एक दिन शाम के करीब ६-३० बजे थे और सारा स्टाफ सरगर्मी से काम करता हुआ अत्यन्त व्यस्त था। तभी लंदन से एक बड़ा-सा तार मिला। तार गुप्त भाषा में ही आते-जाते थे जिनका अनुवाद बड़ी-बड़ी अनुवाद करने वाली पुस्तकों से किया जाता था। इस सम्बन्ध में कुछ निजी तैयार की हुई पुस्तकें भी अनुवाद करने में साथ-साथ काम में लाई जाती थीं। अनुवाद करने में समय तथा सावधानी की काफी आवश्यकता रहती थी। भागीरथजी ने मुझे अपने कमरे में बुलाया और कहा कि यह अर्जेन्ट तार अभी-अभी आया है, इसे अनुवाद करके ले आओ। मैं काम की अधिकता

से दिन भर का थका हुआ परेशान तो था ही—साथ ही बहुत-सा और भी काम सामने पड़ा था, जिसे उसी दिन कर डालना अत्यन्त आवश्यक था ताकि दूसरे दिन सवेरे कागजात तैयार कर बैंकों में पहुंचा दिये जांय।

मैंने कुछ झुंझलाते हुए उत्तर दिया कि मुझसे तार के अनुवाद का काम अभी नहीं होगा। उन्होंने शान्त भाव से कहा, "कोई बात नहीं है। तुम अनुवाद करने की सारी पुस्तकें मेरे पास भेज दो, मैं स्वयं इसे थोड़ी देर बैठकर कर लूंगा।" मैंने पुस्तकें उनके कमरे में भेज दीं तथा अपनी मेज पर काम करने बैठ गया। किन्तु मेरे मन में कई तरह के विचार उत्पन्न होने लगे और मैं अपने काम में पूरा मन नहीं लगा सका। मैं सोचने लगा, "इस डिपार्टमेंट के सारे काम का दारोमदार इन तारों पर ही निर्भर करता है। यदि हम इसकी ही अवहेलना करें, तो यह काम चलेगा ही क्योंकर? मैंने बड़ी गलती की।" मैं उठकर शीघ्र ही उनके कमरे में गया और लज्जित होते हुए बोला—"लाइये, मुझे तार दे दीजिए मैं अभी अनुवाद कर लाता हूं।" उन्होंने कहा, "मैं इस बात को जानता हूं कि तुम लोगों के पास आजकल काम का बड़ा बोझ है। और फिर तार के अनुवाद होने तक तो मुझे भी उसका उत्तर देने के लिए आफिस में ठहरना ही पड़ता। अतएव यह उचित ही है कि मैं इस काम को कर लूं और तुमलोग भी अपना काम पूरा करने में लगे रहो।" उनकी इस शान्त भाव से कही गयी बातों का मुझ पर गहरा प्रभाव पड़ा जिसे मैं कभी भूल नहीं सकता। बाद में जब उन्होंने तार का उत्तर लिख दिया तो मैंने कहा "मैं इसे अनुवाद कर तार आफिस में भिजवा दूंगा— आप निश्चिन्त होकर घर जांय।" उस समय रात के करीब साढ़े सात बजे थे। हमलोगों को रात के साढ़े नौ बज गये।

उनमें उदारता और सहृदयता तो थी ही साथ ही किसी के दोष को भी प्रकट करना उनके स्वभाव के विपरीत था। इस विषय की एक घटना का वर्णन मैं करता हूं। उनके पास प्रायः ही बंगाली एवं मारवाड़ी जाति के लोग किसी न किसी प्रकार की सहायता लेने के लिये आते रहते थे। वे उन्हें जैसी उचित समझते थे, सहायता देते थे। कई लोग तो उनसे यह कह कर रुपये मांग कर ले जाते थे कि वे उन रुपयों से कोई छोटा-मोटा काम धन्धा कर के अपने जीवन-निर्वाह का रास्ता निकाल लेंगे और समय पाकर उन्हें उनके रुपये भी लौटा दे सकेंगे। इस तरह करते उन्हें कई साल बीत गये, तो एक दिन मैंने उनसे कहा कि इन रुपये ले जानेवालों में कई तो अवश्य ही धूर्त और धोखेबाज होंगे जो झूठी बातें बनाकर आपसे रुपये ले जाते हैं। उन्होंने उत्तर दिया—"फिर भी मैं सोचता हूं कि यदि १० में से एक मनुष्य भी इन रुपयों के सहारे अपने पैरों पर खड़ा हो जाय तो मैं अपने यत्न को सफल समझूंगा।" एक भारत-विख्यात व्यक्ति के परिवार से उन्हें यह समाचार मिला कि वह विपन्न अवस्था में हैं तो उन्होंने मेरे हाथ से गुप्त सहायता भिजवायी। इस तरह कितनी ही बार हुआ।

उनसे रुपये ले जाने वालों में एक सज्जन ऐसे भी थे जो बंगाल की कांग्रेस कमेटी के एक प्रमुख कार्यकर्ता थे। वे अक्सर ही उनसे रुपये ले जाया करते थे। यह सिलसिला एक लम्बे अरसे से चल रहा था। एक दिन मैंने उन्हें स्वभावतः ही

टोक दिया कि आप इन महानुभाव को रुपये तो बराबर ही देते रहते हैं, पर क्या आपने कभी यह जानने की भी चेष्टा की है कि इन रुपयों का समुचित प्रयोग होता है अथवा नहीं। उन्होंने कहा कि वे पूरे विश्वसनीय व्यक्ति हैं। सन्देह करने की कोई बात नहीं है। इस बात को २-४ महीने बीत गये। एक दिन मैं किसी कार्यवश उनके कमरे में उनकी मेज के पास खड़ा था और वे टेलीफोन से बातें कर रहे थे। मेरा ध्यान एक पत्र पर पड़ा जो उनकी मेज पर मेरे करीब ही रखा हुआ था। जब उनकी दृष्टि मेरी ओर पड़ी तो उन्होंने उस पत्र को उलटा कर वहां पर रख दिया और उस पर एक पेपरवेट रख दिया। मुझे कुछ उत्सुकता हो गयी कि उस पत्र में ऐसी कौन सी बात थी जिसे वे मुझे जानने देना नहीं चाहते थे। उत्सुकता प्रतिक्षण बढ़ती ही गयी। किन्तु तत्काल ही मुझे उस पत्र को पढ़ने का अवसर प्राप्त हो गया। वे टेलीफोन से बातें कर चुकने के बाद पत्र को अपनी मेज की ऊपरवाली दराज में रख कर बाथरूम में गये। मैं पत्र का समाचार जानने के लोभ को रोक न सका। दराज को खोलकर जल्द ही उस पत्र की खास बातें पढ़ लीं (यद्यपि मैं जानता था कि मेरा यह काम सर्वथा अनुचित था)। पत्र पढ़कर मन ही मन मुझे कुछ हंसी आयी। उपरोक्त पत्र महात्मा गांधी के परम भक्त और अनुयायी श्री सतीशचन्द्र दासगुप्त ने उन्हें लिखा था और उसका सारांश यह था कि अमुक व्यक्ति (जिनका नाम मुझे अच्छी तरह याद है किन्तु मैं लिखना उचित नहीं समझता) को अब आप और रुपये न दें, क्योंकि उन्होंने बहुत सी रकम गबन कर ली है। ये व्यक्ति वही सज्जन थे जिनके बारे में मैंने उन्हें एक दिन टोका था।

घरेलू नौकरों की सुख-सुविधा का उन्हें हमेशा खयाल रहता था। इस विषय से सम्बन्धित एक छोटी सी घटना का मुझे आज भी अच्छी तरह स्मरण है। वे वर्ष में १-२ बार घूमने-फिरने कलकत्ते के बाहर जाया करते थे। कभी पूजा की छुट्टियों के आस-पास और कभी बड़े दिन की छुट्टियों में। कई बार तो रांची जाना होता था। अक्सर मुझे भी साथ ले जाया करते। एक बार की बात है। जाड़े के दिनों में वे सपरिवार रांची गये। साथ में मैं भी था। शायद कुछ और लोग भी आ गये थे। जनवरी के दिन थे। कड़ाके की सरदी पड़ रही थी। हमलोग रांची में बिड़लाजी की लालपुर की कोठी में ठहरा करते थे। कोठी का अहाता बहुत बड़ा था। मुख्य द्वार से अन्दर कुछ दूर जा कर कोठी बनी हुई थी एवं पीछे एक बहुत बड़ी जमीन में फलों के वृक्ष दूर-दूर तक लगे थे। सामने एक छोटा सा बगीचा था। रात में जाड़ा इतनी जोर का पड़ता था कि कभी हमलोग सूर्योदय के पहले उठकर कोठी के बाहर निकलते तो देखते कि घास पर ओस की बूंदें जमकर हिम के छोटे-छोटे कणों में परिवर्तित हो गई है। कोठी के बीचोबीच एक बड़ी बैठक तथा उससे सटे हुए दोनों ओर सोने के लिए बड़े-बड़े कमरे थे, जिनमें चार-चार मनुष्य भी पलंग डालकर सुविधापूर्वक सो सकते थे। ऊपर एक तल्ले पर भी सोने के कमरे बने हुए थे। भागीरथजी तथा उनकी स्त्री और छोटे बच्चे ऊपर सोते थे तथा बाकी लोग नीचे। पीछे की ओर कोठी के दरवाजे से निकल कर और बरामदा पार कर कुछ खाली जमीन को पार करने के बाद फलों का बगीचा शुरू होता था। खाली जमीन

की एक ओर कुछ नये कमरे एवं बाथरूम भी बन रहे थे। उन दिनों, आजकल की तरह कमरों से संलग्न बाथरूम नहीं थे। कोठी की दूसरी ओर सटा हुआ एक बड़ा सा स्थान था जिसमें रसोईघर, भण्डारघर, भोजन के लिए टाइल्स से छाया हुआ एक बड़ा दालान और दालान के सामने एक बहुत बड़ा आंगन था। कोठी के अन्दर से उस ओर जाने के लिए एक दरवाजा था, जिसमें से होकर हमलोग भोजन के लिये जाया करते थे। रसोईघर से फलों के बगीचे में जाने के लिए भी पीछे की ओर एक दरवाजा बना हुआ था।

हम लोग सभी शाम को एक साथ घूमने के लिए निकलते थे तथा कुछ देर बाद लौटकर आते थे तो रात हो जाती थी क्योंकि जाड़े के दिन छोटे होते हैं। लौटकर कुछ देर विश्राम कर भोजन कर के कोठी की बैठक में बैठे हुए गप-शप करते या किसी दिन कोई धार्मिक पुस्तक लेकर पढ़ने बैठ जाते थे। सोने के पहले हमलोग कोठी के बाहर पीछे की ओर बगीचे में ही एक-एक कर मूत्र त्याग करने के लिए जाते और फिर अन्दर आकर सो जाते थे। एक दिन रात को करीब साढ़े नौ बजे होंगे जब हमलोग बैठक से निकल कर सभी कामों से निवृत्त हो कोठी के अन्दर आए तो संयोगवश मैं सबसे पीछे था। वे वरामदे में खड़े थे और अन्दर घुसते ही उन्होंने मुझसे पूछा "तुम पीछे से आ रहे हो, तुम्हें बगीचे के पास कुछ दिखाई दिया?" प्रश्न मुझे कुछ अटपटा-सा जान पड़ा क्योंकि उन्हें अच्छी तरह मालूम था कि मैं भूत-प्रेत आदि पर विश्वास नहीं करता। मैंने सोचा कि इस प्रश्न में कुछ गूढ़ रहस्य अवश्य है। जरा सी देर के बाद ही मैंने उत्तर दिया "हां एक चीज तो दिखलाई पड़ी और वह यह कि इस कड़ाके की सर्दी में हमलोग जब गरम कपड़े लादे हुए सोने के लिए रजाई और कम्बलों के अन्दर घुसने के लिए तैयार हैं, तब वह बेचारा 'मंगरू' खुले आकाश के नीचे जमीन पर बैठा हुआ बर्तन मांज रहा है और ठन्डे पानी से उन्हें धो कर अन्दर लाकर रखने के बाद ही खाना खायेगा।" मंगरू वहां का मुंडा जाति का नौकर था जो कोठी में ही रहता था। यह सुनकर वे कुछ गम्भीर हो कर सीढ़ियों से चलकर ऊपर सोने चले गये और मैं नीचे अन्दर आकर बैठक का दरवाजा बन्द कर अपने स्थान पर सो गया। दूसरे ही दिन सबेरे उन्होंने आदेश दिया कि शाम का भोजन जल्दी तैयार हो जाना चाहिए, तथा जल्द ही सभी को भोजन से निवृत्त हो जाना चाहिए, तथा मंगरू के लिए जूठे बर्तन मलने तथा उन्हें धोने के वास्ते गरम पानी की व्यवस्था हो जानी चाहिए। मुझे भी यह आदेश मिला कि मैं बाजार जाकर एक मोटा और अच्छा सा ऊनी स्वेटर लाकर दूं। कहना अनावश्यक है कि उनके इन आदेशों का पूरी तौर से पालन हुआ।

अस्पृश्य लोगों के प्रति उनके हृदय में कैसे विचार थे, इसका भी एक दृष्टान्त मेरे सामने आया। रांची के जिस स्थान का मैंने ऊपर वर्णन किया है, वहां के रसोई-घर के पिछले दरवाजे से निकलने तथा दाहिनी ओर मुड़ने पर पास ही कोठी के भंगी की कोठी बनी थी, जिसमें भंगी सपरिवार रहता था। वह राजस्थान का रहने वाला था। एक दिन रात को भोजन करने के पश्चात मैंने देखा कि भागीरथजी सदा की भांति कोठी के अन्दर न जाकर पिछले दरवाजे से बाहर निकले। मैंने सोचा कि शायद नौकरों को देखने गये होंगे। जब कुछ देर तक लौट कर नहीं आये, तो मैं भी

पीछे की ओर उन्हें देखने के लिए चला गया। अंधेरा था। उन दिनों रांची में बिजली नहीं थी। सामने एक लालटेन रखे हुए मंगरू बर्तन मांज रहा था। जब नजर इधर-उधर दौड़ाई तो वह दिखायी तो न दिये किन्तु उनकी धीरे-धीरे बोलने की आवाज मुझे सुनाई पड़ी जो कोठरियों की ओर से आ रही थी। मैं भी वहां पहुंचा। देखा, भंगी बीमार पड़ा है और वे उसके पास जाकर उससे उसकी बीमारी की बाबत पूछ-ताछ कर रहे थे। मेरे वहां पहुंचने पर उन्होंने कहा कि इससे बीमारी के विषय में बातें पूछो, ताकि पता लगे कि क्या बीमारी है। मुझे होमियोपैथी की पुस्तकें पढ़ने में बहुत रुचि रहती थी (आज भी है)। इसलिए बीमारियों के विषय में कुछ-कुछ जानकारी रखता था। भंगी की बातें सुनकर मैंने उन्हें कहा कि इसे मलेरिया है। इसकी व्यवस्था कल हो जायेगी। दो-तीन दिनों में ही वह ज्वर से मुक्त हो गया।

चोर जैसे अपराधी के प्रति भी उनमें मानवता के भाव रहते थे। एक बार की बात है, जब वे जकरिया स्ट्रीट स्थित बिड़ला बिल्डिंग में रहा करते थे। जाड़े के दिन थे। रात के समय सड़क पर किसी भारी वस्तु के गिरने का शब्द सुना। दौड़कर बाहर गये तो पता चला कि सामने के मकान से एक व्यक्ति जो सम्भवतः चोरी करने के लिए चढ़ रहा था, फिसल कर नीचे गिर पड़ा। लोग इकट्ठे हो गये। किसी ने उसे गालियां दी, किसी ने उसे पीटने की सलाह दी, किसी ने कुछ और किसी ने कुछ कहा। उन्होंने सबको रोककर कहा कि इसे चोट तो लगी है ही, यह जाड़े से भी ठिठुर रहा है। मैं इसे कम्बल लाकर ओढ़ाता हूं— और उन्होंने घर के अन्दर से एक कम्बल लाकर उसे ओढ़ा दी। लोगों का क्रोध शायद शान्त हो चला। मुझे पता नहीं कि बाद में क्या हुआ।

अपरिचित साधारण मनुष्यों के प्रति भी उनके भाव सम्मानपूर्ण रहते थे। पूजा की छुट्टियों के दिनों में हमलोग रांची गए हुए थे। दोपहर में भोजन के उपरांत कोठी के सामने वाले मैदान में एक छायादार जगह पर दरी और चादरें बिछाकर गप-शप कर रहे थे कि एक मनुष्य साधारण से कपड़े पहने हुए नजदीक आया और उसने दुर्गापूजा के लिए कुछ चंदा मांगा। उन्होंने मुझसे अन्दर जाकर उनकी जाकेट की जेब से दो रुपये निकालकर उसे दे देने को कहा। मैं रुपये निकाल लाया तथा नजदीक आकर उसकी ओर जरा दूर से ही रुपये फेंक दिए। वह उन्हें रसीद देकर चला गया। बाद में वे मुझसे बोले "देखो, किसी के कुछ मांगने पर देना या न देना तो दाता की इच्छा पर निर्भर करता है, किन्तु यदि दिया जाय तो इस तरह से दिया जाय कि दाता के मन में अभिमान एवं लेने वाले के मन में हीनता का भाव उत्पन्न न हो। तुमने उसे रुपये दिये, वह देने का उचित तरीका नहीं था।"

सार्वजनिक उपयोगी संस्थाओं में न केवल स्वयं ही दान देते थे, बल्कि दूसरों से भी दिलवाते थे। कई शिक्षण संस्थाओं एवं चिकित्सा कार्य करने वाली संस्थाओं के लिए तो वे अनवरत कुछ न कुछ करते ही रहते थे। इनमें राजस्थान में हीरालालजी शास्त्री द्वारा स्थापित वनस्थली विद्यापीठ एवं सीकर स्थित यक्ष्मा सेनेटोरियम ऐसी ही संस्थाएं हैं। वे जिस दिन बीमार हो कर शैयाशायी हुए उसके तीन चार दिनों

पहले मैं अचानक उनसे आफिस में मिलने चला गया था। बातचीत के सिलसिले में उन्होंने मुझसे कहा कि वे तीन-चार दिनों बाद सीकर जाएंगे।

वे जब कलकत्ते में रहते तो प्राय: ही दोपहर के बाद आफिस में आकर बैठते और कई लोग उनसे मिलने आ जाया करते थे। मैं भी अक्सर ८-१० दिनों से उनके पास चला जाया करता था। पिछली बार जब मैं उनसे मिलने गया था और उन्होंने मुझसे कहा था कि वे ३-४ दिनों में सीकर जाएंगे तो मैंने यह सोचकर कि वे सीकर चले गये होंगे, उनसे मिलने की कोई चेष्टा न की। करीब एक महीने बाद उनके पुत्र तुलसीदासजी से वे बातचीत के सिलसिले में मुझे यह जानकर दुःख और आश्चर्य हुआ कि वे एक महीने से घर में बीमार पड़े हुए हैं और कमजोर भी इतने हो गए हैं कि बातचीत करने में भी कष्ट का अनुभव करते हैं। मैं तत्काल घर पर उनसे मिलने गया और मुझे उनसे मिलकर और भी दुःख हुआ कि मैंने उन्हें कष्ट दिया ही क्यों? मेरे आने की खबर पाकर वे नर्स की सहायता से अपने कमरे से बाहर बरामदे में कुर्सी पर आकर बैठें और मुझे बुलवाया। कुछ मिनटों तक बहुत धीरे-धीरे बातचीत की। पर मैं जल्दी ही उठकर चला आया क्योंकि उन्हें बोलने में कष्ट हो रहा था। बाद में मैं कई बार उनके घर गया किन्तु समाचार पूछ कर ही दुःखित मन से लौट आया करता था। इस बीमारी से वे छुटकारा नहीं पा सके।

व्यावसायिक क्षेत्र में भी वे एक अति सम्मानित व्यक्ति माने जाते थे। इसका कारण जो मैं समझता हूं वह यह था कि वे कभी गलत बात कह कर या किसी से छल-कपट की बातें कर क्रय-विक्रय का काम नहीं करते थे। स्पष्टवादिता के कारण व्यवसायीगण उनकी बात का पूरा विश्वास करते थे।

मैं करीब ४० वर्षों से श्री नथमलजी सेठी के नलिनी सेठ रोड स्थित मकान में सपरिवार रहता हूं। वे पाट के एक कुशल व्यवसायी, व्यवहार के अति उत्तम एवं शिष्टभाषी, सम्मानित सज्जन हैं। अतएव उनका एवं भागीरथजी का परस्पर आकर्षण रहना स्वाभाविक ही था। मैं जब उनसे मिलने जाता था तो वे अक्सर नथमलजी के बारे में पूछा करते।

नथमलजी के ज्येष्ठ भ्राता (स्वर्गीय) गणपतरामजी सेठी भी पाट के एक कुशल एवं बड़े व्यवसायी थे। अस्वस्थता के कारण बाद में उन्हें व्यवसाय से अवकाश ग्रहण कर कलकत्ते से दूर स्वास्थ्यप्रद स्थानों में रहना पड़ता था। कभी-कदाचित यहां भी आ जाया करते थे। नथमलजी ने पहली बार उनसे मेरा परिचय कराते हुए कहा कि मैं भागीरथजी के पास वर्षों से काम करता आ रहा हूं और उनके विश्वस्त एवं प्रधान कर्मचारियों में से हूं तो वे बड़े ही प्रसन्न हुए। एक बार जब वे भागीरथजी से मिलने गए तो मुझे भी साथ लेते गए। रास्ते में उनके विषय में बातें होती रहीं। उनकी भागीरथजी के प्रति इतनी बड़ी श्रद्धा थी कि बातचीत के सिलसिले में उन्होंने मुझसे कहा कि वे उन्हें "छोटा गांधी" ही समझते हैं।

विनोदप्रियता तो भागीरथजी के स्वभाव का एक अंग ही बन गयी थी। विषाद के समय भी कभी अवसर आ जाता था तो वे विनोद करने से चूकते नहीं थे। आफिस में काम करते समय भी वे कभी-कभी अवसर के उपयुक्त चुटकुले हमलोगों

को सुना दिया करते थे। मुस्कुराहट तो उनके मुख पर सदा ही बनी रहती थी। किसी आगन्तुक के साथ मुस्कुराहट से ही बात आरम्भ करते।

एक बार की बात है। वर्षा के दिन थे। शाम को घर जा रहे थे। बीच में गाड़ी से उतर कर टहल लिया करते थे। संयोगवश एक दिन उन्होंने मुझे भी साथ ले लिया। दोनों ही गाड़ी से उतर कर पगडंडी छोड़ बीच मैदान में चलने लगे। मैदान में कुछ कीचड़ भी हो गया था। उन्होंने कहा "शिखरचंद, सावधान होकर चलना, कीचड़ बहुत है, कहीं फिसल न जाना" इतना कहना था कि वे स्वयं ही कीचड़ में फिसल कर गिर गए। चोट तो जरा भी नहीं आयी, किन्तु कपड़े खराब हो गए। हंसकर बोले "उपदेश देना तो सहज है किन्तु उस पर अमल करना मुश्किल है।"

सच पूछिए तो सार्वजनिक काम के सिलसिले में ही उनकी आयु में क्षीणता आयी। राजस्थान जलबोर्ड के काम से जीपगाड़ी द्वारा (स्वर्गीय) रामेश्वरजी टांटिया के साथ गांवों में भ्रमण किया करते थे। एक बार वे दोनों ही एक बड़ी दुर्घटना में फंस गए। उनकी जीपगाड़ी किसी एक सामने से आती हुई ट्रक से टकरा गई। फलत: दोनों ही जीप से उछल कर दूर जा गिरे। भागीरथजी के एक पैर की जांघ की हड्डी टूट गई। रामेश्वरजी को भी काफी चोट आयी किन्तु सांघातिक नहीं। जांघ की हड्डी टूट जाने से उन्हें एक लम्बे अरसे तक पलंग पर सीधे पड़े रहकर, उसमें एक बोझ लटका कर रहना पड़ा जो अत्यन्त कष्टकर था। यद्यपि चिकित्सा से वे एक प्रकार से अच्छे हो गए किन्तु इस दुर्घटना के बाद ही उनका स्वास्थ्य गिरता गया जो कभी सुधरा नहीं। फिर भी वे सीकर के यक्ष्मा आरोग्य भवन के लिए काफी परिश्रम करते रहते, वहां जाकर उसे संभालते और उसके विस्तार के लिए सतत् प्रयत्नशील रहते थे। देश या समाज में ऐसे महान व्यक्तियों का स्थान रिक्त होने से उसकी पूर्ति असम्भव नहीं तो भी अति कठिन होती है।

एक शायर ने कहा है :—

यूं तो जीने के लिये सभी जिया करते हैं।
मगर लाभ जीवन का कितने लिया करते हैं।
मृत्यु से पहले भी मरते हैं हजारों लेकिन।
जिन्दगी उनकी है जो मर कर जिया करते हैं।

—:०:—

श्री शिक्षायतन की भूतपूर्व प्राचार्या

श्रीमती लतिका नाग

नारी समाज के सेवाव्रती

भागीरथजी चले जायेंगे, इसके लिए मैं प्रस्तुत नहीं थी। जानती हूं आदमी अमर नहीं है, लेकिन क्या हमारे अभागे देश से सभी पुण्यात्माएं उठती जायेंगी? मेरा मन तो यह मानना नहीं चाहता कि भागीरथजी से कभी फिर भेंट नहीं होगी और आवश्यकता पड़ने पर उनका उपदेश अब नहीं मिलेगा।

भागीरथजी हमारे शिक्षायतन के अध्यक्ष ही नहीं थे, उसमें ओत-प्रोत भी थे। सीतारामजी और भागीरथजी बचपन के मित्र थे। एक ने जो काम शुरू किया, दूसरे ने उसमें पूरी तरह योग दिया; उसे अपना ही काम माना। श्री शिक्षायतन के काम के सिलसिले में आज से २५ वर्ष पहले मेरा उनसे परिचय हुआ था। इस दौरान उनके निकट आने के बहुत अवसर भी नहीं मिले, लेकिन यह जानने में कोई कठिनाई नहीं हुई कि वे मूक सेवक थे; अत्यन्त अल्पभाषी थे किन्तु काम में उनका उत्साह अपरिसीम था।

हमारे देश में जिन्होंने नारी समाज की सेवा का व्रत लिया था, उन सभी की दृष्टि सजग थी और हृदय था उदार। ऐसे लोगों ने असंख्य कठिनाइयों और विपत्तियों के बावजूद अपने पैर वापस नहीं मोड़े और अपनी शक्ति के बल पर देश के नारी समाज को उन्नत करने की चेष्टा जारी रखी। श्रद्धेय भागीरथजी इसी गोत्र के व्यक्ति थे। हम में से जिनको उनको जानने का अवसर मिला, वे निश्चय ही सौभाग्यशाली हैं।

हमारे समाज में आज भी नारी लांछित और प्रताड़ित है। भागीरथजी की मृत्यु से समाज को तो क्षति हुई ही है लेकिन नारी समाज की क्षति ज्यादा है। क्या कभी ऐसा हुआ कि विपत्ति में किसी नारी ने उनसे सहायता मांगी हो और उसे न मिली हो?

एक छोटी सी घटना की यहां चर्चा करूंगी। घटना छोटी सी है लेकिन यह उनके संवेदनशील मन की थोड़ी झलक जरूर दे जायेगी। बहुत वर्ष पहले की बात है। एक दिन किसी विशेष कारण से शिक्षायतन की कार्यकारिणी की सभा बहुत देर तक चलती रही। रात हो गयी थी। मैं मन ही मन सोच रही थी कि इतनी रात अकेले टैक्सी में घर लौटना ठीक नहीं होगा। कैसे घर जाऊं, सोच नहीं पा रही थी। तब भागीरथजी और कार्यकारिणी के सदस्यों से बहुत सामान्य सा परिचय था। भागीरथजी कार्यकारिणी के सदस्यों से बातचीत कर रहे थे। मैं धीरे-धीरे शिक्षायतन के फाटक की ओर मन ही मन क्या करूं, सोचते हुए बढ़ रही थी। ऐसे में भागीरथजी ने मुझे बुलाया और कहा कि मैं अकेली नहीं जाऊं, उनकी गाड़ी में ही जाऊं। वे

अपने सहयोगियों से बात कर रहे थे किन्तु उनकी दृष्टि सजग थी। क्या संवेदनशीलता और सहृदयता न होने पर उन्हें मेरी कठिनाई का आभास होता ? छोटी घटना है पर उसका तात्पर्य बड़ा है।

आज यह सब लिखते हुए यही लगता है कि उनके प्रति श्रद्धांजलि तभी सार्थक होगी जब हम अपने कर्मक्षेत्र और सामाजिक जीवन में उनके आदर्श से अनुप्राणित हों तथा अपनी शक्ति के अनुसार हमारे अभागे नारी समाज की सेवा कर सकें। हमारे नारी समाज की सभी समस्याएं तो बनी हुई हैं। दहेज प्रथा असहाय, निरपराध और अल्पवयस्क किशोरियों के लिए जीवन-मरण की समस्या बनी हुई है। इस समस्या से जूझने के लिए भागीरथजी जैसे पुरुषों की जरूरत है। उनकी कमी बहुत तीव्रता से महसूस होती है। क्या हम भारत के अभागे नारी समाज के लिए कुछ भी नहीं कर पायेंगी ?

बचपन में स्कूल में एक अंगरेजी कविता पढ़ी थी जिसका भाव यह है कि 'जिस तरह एक दीपक दूसरे दीपक को आलोकित करता है, लेकिन अपने आलोक को कम नहीं करता, उसी तरह सत्य व उदारता दूसरों में भी सत्य व उदारता को जन्म देती है।' हमारे जीवन में भी भागीरथजी के जीवन से यही आलोक आये। हम में साहस के साथ अन्याय के विरुद्ध खड़े होने का संकल्प जगे।

—: o :—

कानोड़िया महिला महाविद्यालय, जयपुर की प्राचार्या
श्रीमती हेमलता प्रभु

अकृत्रिम व्यक्तित्व

भागीरथजी कानोड़िया ने अपने पीछे एक गौरवमय स्मृति छोड़ते हुए लम्बे जीवन से विदा ली है। कानोड़िया महाविद्यालय की स्थापना के दिन वह किसी जरूरी कारण से उपस्थित नहीं हो सके थे। लेकिन एक महीने के भीतर ही वह कालेज आये। अपने सीधे-सादे स्वभाव और स्पष्टवादिता की उन्होंने उस दिन हम पर जो अमिट छाप छोड़ी थी उसकी मुझे बराबर याद है। हम सब को उनके अकृत्रिम और बिना रोब-दाब वाले व्यक्तित्व के पीछे जो सच्चाई और दृढ़ता थी, उसका आभास मिल गया था। हमें लगा कि कालेज इस महान व्यक्ति के मार्गदर्शन में उज्ज्वल भविष्य की आशा कर सकता है।

इसके बाद वह कई बार कालेज आये। उसकी संचालन समिति की बैठकों की तब तक अध्यक्षता करते रहे जबतक कि शारीरिक रूप से असमर्थ न हो गये। हम जब भी उनसे मिलते हमारा हृदय खिल उठता। वह एक दरियादिल व्यक्ति थे।

कालेज, उसके कर्मचारियों और छात्राओं के प्रति उनकी हित-चिंता की मुझे हमेशा याद आती रहेगी। एक बार किसी ने सुझाव दिया कि कालेज को अब फीस लेना शुरू कर देना चाहिए तो उन्होंने जोर देकर कहा कि राजस्थान जैसे राज्य में लड़कियों के लिए शिक्षा मुफ्त होनी ही चाहिए। जब कालेज में छात्राओं की संख्या बढ़ने लगी और स्थान की कमी होने लगी तो उन्होंने मुझसे कहा कि आशा है आप गरीबों और विधवाओं की संतानों को प्रवेश देने से इन्कार नहीं करेंगी। इनके लिए प्रवेश के जो कड़े नियम हैं, वे लागू होने नहीं चाहिए। सम्पन्नता के परिवेश में रहने के बावजूद दीन दुखियों के कष्ट की आज की दुनियां में उनकी यह आत्मानुभूति एक विरल वस्तु है।

कालेजों के संस्थापक व्याख्याताओं की नियुक्ति और छात्रों के प्रवेश के बारे में दखलंदाजी करते देखे गए हैं। भागीरथजी ने कभी ऐसा नहीं किया। कालेज में नौकरी चाहने वाले, नौकरी न मिलने पर असंतुष्ट हो उन्हें शिकायत करते तो उस शिकायत को वह मेरे पास जानकारी के लिए भेज देते। उन्होंने इस तरह के मामलों में मुझसे कभी सफाई नहीं मांगी। उनका यह रुख हमारे आत्मविश्वास को बढ़ाने और उनके विश्वास के अनुरूप हमारे काम करने में जबरदस्त रूप से सहायक रहा।

भागीरथजी की अकृत्रिमता, सहजता और सरलता उनके साधु स्वभाव के कारण थी। इस महान व्यक्ति को कालेज हमेशा श्रद्धा सहित याद करता रहेगा।

—: ० :—

श्री शिक्षायतन कालेज की प्राचार्या

श्रीमती लीना राय

हमारे अध्यक्ष

"जीवन एक यात्रा है जो घरकी तरफ मुखातिब है (लाइफ इज ए वायेज दैट इज होमवार्ड बाउंड) ।" कानोड़ियाजी अब नहीं हैं।

उनको अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए जब मैं यह लिख रही हूं तो मेरा मन भरा आ रहा है। अब हमारे उत्सवों और आयोजनों में वह लम्बा विनम्र बुजुर्ग कभी नहीं दिखेगा। स्वाधीनता-दिवस, गणराज्य-दिवस और हमारे वार्षिकोत्सव पर उनकी हमेशा याद आयेगी। अपने जर्जर स्वास्थ्य के बावजूद इनमें वह हमेशा उपस्थित रहते। उपस्थित रहना "अनिवार्य" था, क्योंकि वह उस पीढ़ी के थे, जो आचरण के कुछ सिद्धान्तों पर अडिग थी। मुझे याद आता है कि अपनी मृत्यु से एक वर्ष पहले जब वह स्वाधीनता-दिवस के उत्सव में शामिल होने आये तो उन्होंने देखा कि हमारे दफ्तर के बहुत कम कर्मचारी उपस्थित हैं। उन्होंने मुझसे पूछा कि इतने लोग अनुपस्थित क्यों हैं। मैं कोई जवाब नहीं दे पाई। उत्सव के बाद जब वह कार में बैठने लगे तो उन्होंने बहुत दुखी होकर कहा "हम कभी ऐसे अवसरों पर अनुपस्थित रहने की सोच भी नहीं सकते थे।"

मैं उन्हें हमारे कालेज की संचालन समिति के अध्यक्ष के रूप में ही जानती थी। उनके व्यवहार से कभी मुझे मालूम ही नहीं हुआ कि वह कोई बड़े आदमी हैं। उनकी समाज-सेवाओं का बहुत कम लोगों को पता है क्योंकि वह प्रचार से दूर भागते थे। आज के आत्म-प्रचार के इस युग में उनके जैसे व्यक्ति दुर्लभ होते जा रहे हैं। संचालन समिति की बैठकों में मुझे यह देखकर अचरज होता था कि उनके जैसा बुजुर्ग एकदम नये विचारों को इतनी सहजता और खुशी से कैसे स्वीकार कर लेता है।

कालेज का नतीजा यदि किसी साल खराब रहता तो वह चिंतित हो उठते, पूछते ऐसा क्यों हुआ। कभी-कभी वह मेरे पास दफ्तर में आ जाते और पूछते, क्या कुछ नम्बरों से फेल हुई उस गरीब लड़की को अगली कक्षा में चढ़ाया नहीं जा सकता? एक बार इस तरह का अवसर आने पर मैंने उनसे कहा, हमारे अध्यक्ष के रूप में आप जानते हैं कि एक बार परीक्षा-फल निकाल देने के बाद हम कुछ नहीं कर सकते। मेरे यह कहने पर धीरे से अपनी कुरसी से उठे और अपने हमेशा के शांत व संयत लहजे से बोले जानती हो, "एक गरीब लड़की का फेल होना उसकी माता-पिता को कितनी मुसीबत में डाल देता है।" ऐसे अवसरों पर उनके शांत और संयत व्यक्तित्व के पीछे करुणा की जो अजस्र धारा बहती रहती थी, उसकी अनायास झलक मिल जाया करती थी। यह सोचते हुए दुख होता है कि जब कालेज अपने जीवन के २५ वर्ष पूरे करेगा, तब वह हमारे बीच नहीं होंगे, लेकिन जानती हूं कि उनका आशीर्वाद हमेशा रहेगा।

जीवन का लक्ष्य पूरा हुआ, जो किया वह अच्छी तरह किया, अब विश्राम।

—: ० :—

संस्कृति की आचार्य, सामाजिक कार्यकर्त्री
श्रीमती सरस्वती कपूर

'पद्म पत्र मिवाम्भसा'

शान्ति निकेतन में "हिन्दी भवन" के निर्माण के सिलसिले में पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदी जी हिन्दी प्रेमियों की एक टीम के साथ शान्तिनिकेतन गये थे। वहीं स्व० भागीरथजी कानोड़िया के साथ मेरा प्रथम साक्षात्कार हुआ था। स्व० हजारीप्रसादजी ने कृपापूर्वक अतिथेय की भूमिका निबाही थी। पुण्यश्लोक रवीन्द्रनाथ ठाकुर के श्रीमुख से वैशाख पूर्णिमा के शुभ दिन आम्र कुंज में छोटी सी दीपिका के प्रकाश में वहां की अन्तेवासिनियों के नृत्य-गीत-वादित्र के जो मधुर स्वर उस दिन सुने थे वे सदा के लिये अविस्मरणीय हैं।

अगले दिन पूज्य चौबेजी अपने सभी यजमानों के साथ पूज्य गुरुदेव के उत्तरायण में गये; सभी का उनसे परिचय कराया। प्रसंगवश अंग्रेजी में वार्तालाप का निषेध करते हुए पूज्य गुरुदेव ने कहा कि या तो आपलोग बंगला में बातचीत कीजिये, नहीं तो फिर हिन्दी में ही बात कीजिये, हिन्दी मैं समझ तो ठीक सकता हूं—हां, उत्तर बंगला में ही दूंगा। चौबेजी बोले "मैं थोड़ी-थोड़ी बंगला बोलना सीख गया हूं"। पूछने पर उन्होंने बताया "आमरा मे मानुष" (हम लोग स्त्री हैं, बंगला में 'मे मानुष' का अर्थ स्त्री जाति होता है)। उत्तरायण में हंसी का झरना फूट निकला, परिणामस्वरूप सभी लोग परस्पर निःसंकोच मित्रवत् हो गये। हमारी शान्ति-निकेतन की यात्रा सुखद और अविस्मरणीय रही।

समय बीतता गया, ऐसा भी एक अवसर आया जब मैं "कांदिशीक" सी विषम परिस्थितियों में थी। उस समय मैं सोच भी नहीं सकती थी कि मेरी विपन्न अवस्था में स्वर्गीय भागीरथजी को मेरी याद आयेगी। क्रमशः मैंने श्री कानोड़ियाजी की इस अविस्मरणीय विशेषता का अनुभव किया कि जिसे वे पात्र समझ लेते थे, उसकी सहायतार्थ स्वतः प्रस्तुत हो जाते थे।

ऐसा भी समय आया कि मैं उनके यहां प्रतिदिन जाती थी। एक दिन प्रसंगवश घर की बहू-बेटियों के साथ वैदिक-साहित्य, उपनिषद्, दर्शन, आदि पर चर्चा चल पड़ी। आर्यसमाजी विचार धारा से जुड़ी होने के कारण इस विषय में मैं कुछ साधिकार बता सकती थी। 'ईशावास्योपनिषद' यजुर्वेद का चालीसवां अध्याय है, उस दिन इसी उपनिषद् पर मेरी वाणी प्रस्फुटित हो गई। आंखें मूंदकर कई मंत्रों की व्याख्या-समीक्षा कर दी। परिणामस्वरूप सभी बहनें बहुत प्रभावित हो गईं। सम्भवतः इसकी चर्चा कुछ पूज्य कानोड़ियाजी से हुई होगी, अगले दिन सायंकाल कानोड़िया-हाउस से प्रस्थित होते समय पूज्य कानोड़ियाजी अपने लम्बे आंगन में टहलते हुए मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। देखते ही बोले—

"आज तो अपने गुणों की गठरी का कुछ प्रसाद हमें भी देना होगा।" सांझ ढल चुकी थी, रात घिरी आ रही थी, मैं कुछ अप्रस्तुत-सी ही बोली—

"एकोहि दोषो गुण सान्निपाते,
निमज्जतीन्दो रिति यो बभाषे,
नूनं न दृष्टं कविनाऽपि तेन
दारिद्र्य-दोषो गुण राशि नाशी।"

पूछने पर मैंने बताया कवि कहता है कि "गुणों के धनी व्यक्ति में बड़े से बड़ा दोष भी छिप जाता है, जैसे चन्द्रमा में कलंक, पर उन कवि महोदय ने यह कभी नहीं सोचा कि दारिद्र्य-गरीबी एक ऐसा दोष है, जिसके चलते गुणों की राशियां भी नष्ट हो जाती हैं।"

स्व० कानोड़ियाजी भावुक हो उठे, अन्तिम पद का अर्थ उन्होंने दुबारा सुना। मैं आगे बढ़ गई। मैंने देखा कि वे मुझसे पूछे बिना ही प्रायः मेरे हित के लिये प्रस्तुत रहते थे। मेरी तीनों कन्याएं विभिन्न विद्यालयों में पढ़ रही थीं। एक दिन उन्होंने कहा, "अगले रविवार को संगीत श्यामला शिक्षायतन, में चली जाना, लड़कियों को भी साथ ले जाना।"

मैं वहां गई। वहां की मुख्य संचालिका श्रीमती सोमा तिवारी जी ने पूछा, कन्याएं क्या-क्या सीखना चाहती हैं? मैंने बताया तो उन्होंने मेरे घर का पता पूछा, संगीत श्यामला की बस उन लोगों को घर से लाने पहुंचाने को थी। इसके अतिरिक्त प्रवेश-फीस, शिक्षा-फीस, बस-फीस, इत्यादि के विषय में उन्होंने कुछ भी नहीं पूछा। निश्चय ही स्व० कानोड़ियाजी ने उन्हें यही निर्देश दिया होगा। मेरी लड़कियां वहां सालों गईं, और विभिन्न ललित कलाओं में विशेष योग्यता प्राप्त कर सम्मानित हुईं।

स्वर्गीया भगवानदेवीजी सेकसरिया का अकारण ही मुझ पर स्नेह था, मैं जब-तब उनके दर्शनार्थ जाया करती थी। उनके स्वर्गवास का समाचार पाकर मैं पूज्य सेकसरियाजी के यहां गई थी। वहां से लौटते समय मन बहुत खिन्न था। मैं सीधी बाहर निकल ही रही थी कि स्वर्गीय रामेश्वरजी टांटिया, स्वर्गीय भागीरथजी कानोड़िया एवं पूज्य श्री सीतारामजी सेकसरिया सामने बैठक में ही दिखाई दिए। औपचारिक वार्तालाप के अनन्तर स्व० टांटिया जी बोले—"अब तो आपके बेटे-बेटियों के विवाह आदि भी हो गये, गृहस्थी भी हल्की हो गई। अब तो आप छोड़िये घर-द्वार और जैसिडीह में प्राकृतिक चिकित्सा-भवन का चार्ज सम्हालिये। प्राकृतिक चिकित्सा में आपकी पुरानी रुचि भी है, बस अब आप तत्काल स्वीकृति दीजिये।"

मैं निरुत्तर। दो मिनट तो बीते ही होंगे, कानोड़ियाजी बोले, "सरस्वती बहन कहीं जाने वाली नहीं हैं। पुत्र-पुत्रियों से उऋण हो चुकीं, पर अभी नाती-पोतों की चिन्ता भी तो करनी है न?" स्व० कानोड़ियाजी के शब्दों में हो सकता है कि व्यंग-सा भी रहा हो। पर मेरी तो आजतक यही मान्यता है कि गृहिणी का सर्वप्रथम कर्त्तव्य घर ही है। समय-समय पर वह बाहर भी सहायक हो सकती है, पर उसका

वास्तविक कर्म-क्षेत्र उसका घर ही है। इस विषय में बहुत कुछ लिखना चाहकर भी केवल इतना ही कहना चाहती हूं कि, "मातृवान् पितृवान् आचार्यवान् पुरुषोवेद।" यह एक स्वतंत्र विषय है।

स्व० कानोड़ियाजी में प्रदर्शन-प्रशंसा से दूर रहने की प्रवृत्ति इतनी अधिक थी कि वे जिसकी सहायता करते थे, वह भार से दब नहीं जाता था, वे स्वयं अहं भाव से शून्य अनजान दर्शक की तरह सर्वथा निर्लिप्त, "पद्म पत्र मिवाम्भसा," जल में रह कर भी जल से पृथक कमल के पत्ते की तरह रहते थे। आत्मश्लाघा की भावना उनमें थी ही नहीं। दान-करना वह भी ऐसे पात्र को जो कुछ प्रत्युपकार भी न कर सके, और इतना सब कुछ करके भी स्वयं मात्र दर्शक होकर रह जाना, स्वयं को कभी प्रगट नहीं करना, निश्चय ही यह उनकी चारित्रिक विशेषता थी।

स्व० कानोड़ियाजी में यों तो अनेक उत्तम गुण थे ही, सर्वोपरि थी उनकी गुणग्राह्यता। मेरे वे परम हितैषी, एवं स्नेही मित्र थे। मैं उनके मित्र-भाव के प्रति सदा कृतज्ञ हूं, रहूंगी भी।

मैं पूज्य बनारसीदास जी की कृतज्ञ हूं, उन्होंने जिन स्वनामधन्य व्यक्तियों से मुझे आत्मीयता रखने की प्रेरणा दी, वे मेरे लिए बहुत ही अच्छे मित्र सिद्ध हुए। परमपिता स्व० कानोड़िया जी की आत्मा को चिर शान्ति एवं सद्‌गति प्रदान करें।

—:•:—

संगीत-श्यामला की संस्थापक-संचालक
श्रीमती सोमेश्वरी तिवारी

संस्कृति-पद्म-पल्लव

पूज्य बाबूजी (स्व० भागीरथजी) पिछले २५ वर्ष से हमारे मार्ग-दर्शक थे। वह सिर्फ सत्परामर्श ही नहीं देते बल्कि मित्र और चिन्तक के रूप में सुरक्षा की भावना के साथ संकल्प-शक्ति भी प्रदान करते थे। हमें जब भी उनकी जरूरत होती तो उन्हें हमेशा अपने पास पाते, हर अच्छे काम में मदद देने के लिए वह हमेशा तैयार रहते और हमें बताते कि किस प्रकार हमारी योजनाएं सफल हो सकती हैं।

मेरी बाबूजी से पहली मुलाकात मारवाड़ी छात्र संघ के एक समारोह में हुई थी जो मुझे कलकत्ता विश्वविद्यालय की परीक्षा में स्वर्ण-पदक प्राप्त करने पर बधाई देने के लिए आयोजित किया गया था। मेरी तब नयी-नयी शादी हुई थी और भागीरथजी और सीतारामजी की मशहूर जोड़ी के सामने मैं कुछ घबरा सी गयी थी। उस वक्त मैंने सोचा भी न था कि ये दोनों संगीत श्यामला की स्थापना करने के हमारे सपने को साकार करेंगे।

मुझे संगीत श्यामला द्वारा शिक्षायतन में आयोजित पहली संगीत गोष्ठी की याद आती है। इसमें सलामत अली और नजाकत अली की प्रसिद्ध जोड़ी ने गाया था। गोष्ठी के बाद बाबूजी और सीतारामजी ने दूसरे दिन सुबह मुझे मिलने को बुलाया और गोष्ठी की प्रशंसा की। दोनों ने हमारे काम में बड़ा ही उत्साह दिखाया। बरसों बाद जब दिल्ली में जमीन खरीद कर संगीत श्यामला सांस्कृतिक केन्द्र की इमारत बनाने की योजना बनी तब भी बाबूजी का उत्साह पहले जैसा ही था। जब भी मैं उनसे मिलती तो वह पूछते "दिल्ली डेवलपमेंट अथारिटी से तुम्हें जमीन कब मिल रही है ?" मैं कहती "मैंने कई लोगों से बातचीत की है, जल्द ही कुछ हो जायेगा।" हर बार जब दिल्ली आते तो मुझसे पूछते "काम कितना बढ़ा ?" मुझे इस बात का बहुत दुख होता कि सरकारी काम में इतनी ज्यादा देर लग गयी कि बाबूजी को यह काम अधूरा छोड़ चले जाना पड़ा।

सच, हम अनाथ हो गये। दुनिया पहले की तरह ही चल रही है लेकिन हमारे हृदय में एक ऐसा शून्य घर कर गया है जो भरता नहीं।

—: ० :—

अभिनव भारती बाल मन्दिर की संस्थापक-मंत्री
श्रीमती ज्ञानवती लाठ

प्रेरणास्पद जीवन

जिस व्यक्ति ने अपने कार्यों का न कभी प्रदर्शन किया, न शब्दों में उसकी चर्चा की, उसके लिए लिखना मुश्किल है, यह सभी समझ सकते हैं। कुछ लोगों की बातचीत, चर्चा शब्दों में उतार सकते हैं, तो कुछ लोगों के कार्यों के प्रदर्शन अपने आप बोलते रहते हैं। मैं स्व० भागीरथजी से इतना मिलती थी परन्तु मुझे उनके द्वारा सीकर के अस्पताल के लिए भरी धूप में यात्रा कर के रुपये इकट्ठे करना, या उसके बारे में सब समय सोचना और उसकी प्रगति में अपने को लगाए रखना, यह अनायास उन्हीं के बरामदे में अन्य किसी से सुन कर ही मालूम हुआ। और तो छोड़िए, उनका संगीत-श्यामला के संस्थापक-सभापति होने का कितने लोगों को मालूम है? उनकी पुस्तक भी किसी अन्य व्यक्ति द्वारा पढ़ने को मिली थी, बाद में मुझे इतनी अच्छी लगी कि खरीद ली। उस पुस्तक से ही उनके हृदय की विशालता की झलक मिल सकती है।

व्यक्ति को समझना बहुत कठिन है। भागीरथजी जैसे मन के वैभवशाली व्यक्ति मैंने बहुत कम देखे हैं। प्रतिदिन सुबह घूमने के समय उनके मकान के सामने गुजरते हुए अनायास ही दृष्टि उनके ऊपर टिक जाती थी। सुबह बरामदे में बैठने का उनका नियम था। दुबला-पतला शरीर कितने महान मन को छिपाए हुए था? मिलने का मन होता, या संगीत-श्यामला या अभिनव भारती के बारे में परामर्श की आवश्यकता होती तो उनसे मिलने चली जाती थी। सिर्फ दो शब्द "कैसी हो ज्ञान?", प्यार, आदर और अपनेपन से लिपटे होते थे। जब जाती, कुछ सीखकर, कुछ लेकर ही लौटती थी।

उन्होंने न जाने कितने व्यक्तियों को कार्य की प्रेरणा और स्नेह-सम्मान दिया है, जिसकी स्मृति वे ही जानते हैं जिनसे उनका सम्पर्क रहा। उनकी सज्जनता में एक भोलापन था, निश्छल छोटे शिशु जैसा; मुस्कुराहट में थी व्यक्ति को मोहने की शक्ति। उदार होते हुए भी एकदम व्यावहारिक थे। इतने गहरे थे, कि आपकी समझ में नहीं आ सकता था कि किस विषय पर क्या निर्णय लेंगे। किन्तु जहां तक मैंने देखा है, उनके निर्णय व्यक्ति के प्रति उदार होते थे। उनका सख्त से सख्त विरोध भी शान्त वजनदार शब्दों में प्रकट होता था। एक ऐसी गहरी गम्भीरता थी कि व्यक्ति उनके निर्णय के सामने झुक जाता था। उनके साथ काम करने वालों को पूरी स्वतंत्रता थी। कहते थे, करना तुमको है, तुममें शक्ति हो तो करो। मेरे से जो सहायता चाहिए, जब मन हो आ जाना बिना झिझक के।

आज भी घूमने जाती हूं, गुजरती हूं उसी पोर्टिको के सामने से। आंखें उठा कर देखते ही लगता है कुछ खो गया है।

—: ० :—

सामाजिक कार्यकर्त्री, 'पारिवारिकी' की
संस्थापक-संचालक
श्रीमती सुशीला सिंघी

श्रद्धा के फूल

श्रद्धेय भागीरथजी से मेरा परिचय बचपन में मारवाड़ी बालिका विद्यालय के पदाधिकारी के रूप में हुआ था। अपनी स्नेहशील वृत्ति के कारण वे सभी बालिकाओं को प्रोत्साहन देते थे। सीतारामजी मुझे बड़ा प्यार करते थे और उन्होंने भागीरथजी को मेरे बारे में काफी कुछ बता रखा था। पर सबसे बड़ा परिचय तो उनका मुझे अपने विवाह में ही मिला। उस दिन मैंने जाना कि वह किस प्रकार के समाज-सुधारक हैं। मेरा विवाह उन्हीं के २३ नम्बर ओल्ड बालीगंज के मकान में हुआ; उसी दिन उनके भतीजे राधाकृष्णजी की बड़ी लड़की का विवाह भी था। इस विवाह में पर्दा होने की बात थी सो भागीरथजी उसमें सम्मिलित नहीं हुए। वह घर के विवाह के बजाय मेरे विवाह में ही सक्रिय रहे।

इसके बाद तो संस्थाओं में और घरेलू समारोहों में हम अक्सर मिलते। संस्थाओं के काम के सिलसिले में वे बड़ा स्पष्ट और सही निर्देश देते। परिवार के समारोहों में वे मीठी-मीठी चुटकियों से चिढ़ाते और मैं कुछ बोलती तो यह कह कर कि 'नेता हो गयी है' मुझे अपरोक्ष समर्थन देते हुए सराहते। उनके इस मधुर स्नेह-भरे व्यवहार ने मुझे जीवन में कितनी ही समस्याओं से जूझने में प्रेरणा दी है। जाने कब मैं उन्हें ताऊजी कहने लगी।

उनकी पत्नी गंगा देवी भी बड़े अपनेपन से मिलती हैं। हां, उनके और मेरे बीच एक मजाक हमेशा रहा। उन्होंने मुझे ताईजी नहीं कहने दिया और अपने को चाची ही कहलवाया। मैं भी चूकती नहीं थी, ताऊजी की पत्नी चाची कैसे होगी, पूछ-पूछ कर उन्हें चिढ़ाती। चाचीजी की सेवा ने ताऊजी को दीर्घकालीन जीवन दिया। पिछले वर्षों में चाचीजी भी राजस्थान और कलकत्ता के बीच यात्रा करती रहतीं, कहतीं "सीकर के अस्पताल में इनके प्राण हैं तो मुझे भी जाना पड़ता है और यह अच्छा लगता है।" अभी पिछले दिनों सीकर अस्पताल देखने का मुझे सुयोग हुआ। व्यवस्था देखकर ही लगा कि किन प्राणों का रस उसमें है।

भागीरथजी अपने व्यवहार और सहृदयता के कारण अमर हैं और जाने कितने लोगों की भावनाओं में अमर रहेंगे। मैं तो उस महान आत्मा के अंतिम दर्शन भी नहीं कर पायी क्योंकि उन दिनों शय्याशायी थी। मेरी श्रद्धा के ये फूल वे निश्चय ही स्वीकार करेंगे।

—:०:—

सामाजिक कार्यकर्तृ

श्रीमती शांति खेतान

वाक्पटु

स्वर्गीय भागीरथजी कानोड़िया के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के गुणगान की सामर्थ्य मुझमें नहीं है, किन्तु उनके जीवन-काल की कतिपय मधुर स्मृतियां हृदय में इस प्रकार वनी हुई हैं, कि उन्हें व्यक्त करके अपनी हार्दिक श्रद्धा ज्ञापित करने को वाध्य हूं।

कानोड़ियाजी मेरे लिए तो मेरे पिता (स्व० रंगलालजी जाजोदिया) के तुल्य ही थे। हमारा पारिवारिक सम्बन्ध घनिष्ठ था। इसलिए मैं कानोड़ियाजी को बचपन से ही जानती थी। वे बड़े ही कर्मठ, दयालु एवं गम्भीर थे। अपने व्यापारिक क्षेत्र में वे बड़े निपुण तो थे ही उन्होंने समाज-सेवा का भी बड़ा काम किया था। उस समय की सामाजिक कुरीतियों को दूर करने तथा समाज को उन्नत बनाने में जिन व्यक्तियों ने प्रमुख रूप से हाथ बंटाया था उनमें कानोड़ियाजी भी प्रमुख थे। इस प्रकार वे जीवन-पर्यन्त एक क्रांतिकारी समाज-सेवी बने रहे। मेरे पिताजी तथा वे दोनों ही समाज-सेवा में एक दूसरे के पूरक थे। अतः उन्हीं लोगों के संस्कारों में पलकर मैं भी जीवन जी रही हूं। मेरा जीवन भी जो कुछ बन पाया है उसमें उनकी ही प्रेरणा है।

कानोड़ियाजी गम्भीर और मितभाषी होते हुए भी बड़े विनोदप्रिय थे। जब मैं मारवाड़ी बालिका विद्यालय की छात्रा थी। एक बार विद्यालय की ओर से एक नाटक मंचस्थ हुआ था, जिसमें मेरी भाभी ने मालकिन और मैंने नौकरानी का अभिनय किया था। भाई लोग मुझे घर पर चिढ़ाते थे। मैंने बाल-स्वभाववश कानोड़ियाजी से शिकायत की। उन्होंने बड़ी गम्भीरता और धैर्य से मेरी बातें सुनीं, किन्तु थोड़ी देर पश्चात् मुस्कुराते हुए बोले—"भाभी की साड़ियां तो तुम्हें धोनी ही पड़ेंगी।" यह सुनकर जितने लोग वहां थे, सभी हंस पड़े और उन सभी लोगों के साथ मैं भी हंसे बिना न रह सकी।

मेरा ज्येष्ठ पुत्र प्रकाश एवं कानोड़ियाजी के पुत्र ज्योति दोनों ही सेण्ट-जेवियर्स के छात्र थे। प्रकाश को हिन्दी में ज्योति से अंक अधिक मिलते थे। संयोग-वश एक बार मैं और प्रकाश के पिताजी दोनों ही कानोड़ियाजी के यहां मिलने के लिए गये। उस समय उन्होंने ज्योति को हमारा परिचय देते हुए कहा—"ज्योति ये ही

प्रकाश के माता-पिता हैं तो क्या मैं इनसे कहूं कि ये प्रकाश को सेण्टजेवियर्स से हटा लें ?" इसका तात्पर्य यह था कि ज्योति हिन्दी के लिए खूब मेहनत करे और प्रकाश जैसे अंक प्राप्त करे। यह उनकी वाक्‌पटुता का एक अद्‌भुत उदाहरण है।

एक घटना उस समय की है, जब मेरी शादी होने वाली थी। समाज में पर्दा और दहेज दोनों ही प्रथाएं बड़े जोरों पर थीं। मेरी शादी में भी यह समस्या थी। मेरा मानस विवाह के विरुद्ध ही था। किन्तु कानोड़ियाजी को ही इसका श्रेय था कि मैं शादी के पवित्र बंधन में बंध सकी। यदि वे न होते तो मैं शादी स्वीकार न करती।

इसके बाद भी जब कभी मुझे जीवन में कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, मैं उनसे अवश्य मिली और उन्होंने सदा उचित सलाह और प्रेरणा दी। उन्हीं की प्रेरणा और प्रोत्साहन से मैंने भी समाज-सेवा का व्रत लिया था। जो कुछ भी आज तक मेरे जीवन में सफलता मिली है, उसमें अधिकांश उनके स्नेह और प्रेरणा का ही फल है।

कानोड़ियाजी का जीवन समाज के लिए एक खुली पुस्तक के समान था। वह सदा ही हमलोगों के लिए अनुकरणीय रहेगा। हमें ही नहीं वरन् सारे समाज को उनकी कमी अखर रही है, किन्तु ईश्वरेच्छा के सामने हम सभी असहाय हैं।

—: ० :—

श्री सीताराम सेकसरिया की पुत्री

श्रीमती पन्ना देवी पोद्दार

'चाचाजी'

भागीरथ चाचाजी को मैं कब से जानती थी, यह पता नहीं। शायद १९३० से जानती होऊंगी, लेकिन जब से जाना तब से जो सम्बन्ध बना, वह बढ़ता ही गया और अब जब वह नहीं हैं तब उनकी स्मृतियां हैं। उन्हें कौन भूल सकता है? कितनी ही छोटी-बड़ी बातें याद आती हैं और न जाने कितनी याद नहीं आती होंगी क्योंकि यह तो कभी नहीं सोचा था कि वह एक दिन चले जायेंगे और उन पर मुझे भी कुछ लिखना होगा। जो-जो याद आता-जाता है उसे लिखती जाती हूं।

१९३२ में मेरे बाबूजी सार्वजनिक कार्यों में बहुत व्यस्त रहते थे। उन दिनों हमलोग बालीगंज में रहते थे और बाबूजी का कार्य-क्षेत्र ज्यादातर बड़ाबाजार था। इसलिए वहां देर हो जाने के कारण वह बहुत बार रात को भोजन किये बिना रह जाते थे। जब चाचाजी को इस बात का आभास हुआ तो वह बाबूजी को ढूंढ़ कर अपने यहां जकरिया स्ट्रीट में ले जाते। यह रोज का काम था। वर्षों बाबूजी ने रात का भोजन चाचाजी के यहां किया। मैं और मां यह चाहतीं कि रविवार को चाचाजी हमारे यहां भोजन करें। मुझे याद नहीं कि कभी उन्होंने यह कहा हो कि समय नहीं है। वह हमेशा मेरा और मां का मन रखते थे। इसी वर्ष बाबूजी को पीलिया हुआ तो उन्होंने दिन-रात एक कर दिया। कभी किस डाक्टर को लाते, कभी किस डाक्टर को। दिन में बड़ाबाजार से बालीगंज के तीन-चार चक्कर करते।

१९३३ में चाचाजी की तबीयत खराब हुई तो उन्होंने परपटी (दूध का एक प्रकार का इलाज) ली। उसी समय देशप्रिय जे०एम० सेनगुप्त का रांची में नजरबंद अवस्था में देहान्त हुआ, उनका शव हवड़ा लाया गया और वहां से ७-८ मील दूर केवड़ातला श्मशान घाट ले जाया गया। परपटी में बाहर आना-जाना सख्त मना था। सब लोगों ने बहुत रोका पर चाचाजी शव-यात्रा में शामिल होकर ही रहे। १९३४ में बिहार में भूकम्प हुआ तो चाचाजी देहातों में पैदल कहां-कहां गये, पता नहीं।

१९४० में एक दिन रात को ग्यारह बजे वह डाक्टर को लेकर घर आये। मैंने दरवाजा खोला तो इतनी रात डाक्टर के साथ उन्हें देखकर आश्चर्य में पड़ गयी। मालूम हुआ कि किसी नौकर ने उन्हें बताया था कि मुझे सांस उठता है। १९४० व्यक्तिगत सत्याग्रह का समय था। ब्रिटिश सरकार ने भयंकर दमन नीति अपनायी थी। वह अपने खिलाफ बोलनेवालों की सम्पत्ति जब्त कर लेती थी और उन्हें जेल में डाल देती थी। ऐसे व्यक्तियों की मदद करनेवालों पर भी उसकी कड़ी नजर रहती थी। बाबूजी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह किया लेकिन बंगाल सरकार ने आंदोलन

को दबाने का अलग तरीका ही अपनाया; वह सत्याग्रहियों को पकड़ती ही नहीं थी। बड़ाबाजार में बाबूजी ने युद्ध-विरोधी नारे लगाते हुए सुबह सत्याग्रह किया लेकिन उन्हें पुलिस ने पकड़ा नहीं। जब बाबूजी नारे लगाते-लगाते थक गये तो चाचाजी उन्हें बिना किसी भय के अपने घर ले गये। बाबूजी शाम को फिर सत्याग्रह करने के लिए उनके घर रहे।

१९४१ में द्वितीय विश्व युद्ध में जापान के शामिल होने पर कलकत्ता खाली होने लगा। कुछ ही दिनों में इतने लोग चले गये कि सड़कों पर आदमी नहीं दिखते थे। स्त्री-बच्चों को कलकत्ता के बाहर छोड़ कर पुरुषों को कामकाज के सिलसिले में कलकत्ता आना पड़ा तो कितने ही लोग चाचाजी के घर और गद्दी में रहे। इन सबका उन्होंने पूरा प्रबन्ध किया। जिन लोगों के नजदीकी नाते-रिश्तेदार नहीं थे, उनके स्त्री-बच्चों को मुकुन्दगढ़ में रखने की व्यवस्था की। रंगून से भागकर आये लोगों के रहने खाने-पीने की भी चाचाजी ने व्यवस्था की।

१९४२ के अगस्त में गांधीजी का 'भारत छोड़ो' आन्दोलन शुरू हुआ। यह पहले वाले आन्दोलनों से भिन्न था। इसमें सत्याग्रह का दूसरा रूप था। इसमें तोड़-फोड़ और अंडरग्राउण्ड रहना शामिल था। चाचाजी प्रारम्भ में ही पकड़ लिये गये तो उनके घर के लोगों ने अंडरग्राउण्ड रहने वाले लोगों के बाल-बच्चों की पूरी मदद की। चाचाजी की गिरफ्तारी के वक्त नन्दलालजी (चाचाजी के बड़े लड़के) बहुत बीमार थे। उन दिनों की कल्पना करके मैं आज भी सिहर उठती हूं। नन्दलालजी तो बीमार थे ही, आत्माराम (चाचाजी के तीसरे पुत्र) तीसरी मंजिल से गिर पड़ा और चाचीजी भी बीमार पड़ गयीं। हम सब बहुत आशंकाओं से घिर गये—नन्दलालजी इतने बीमार और आत्माराम तथा चाचीजी की यह हालत। डा० चारु बाबू (चाचाजी के परिवार के चिकित्सक) और विधान बाबू (डा० विधानचन्द्र राय, बाद में पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री) ने कहा कि अब तो हमलोग भागीरथजी को जेल से निकलवायेंगे ही लेकिन चाचाजी ने कोई भी सहूलियत लेने से इन्कार कर दिया। उस समय कलकत्ता में व्यापार बहुत जोर पर था। आज के कितने ही करोड़पति-लखपति उस समय के कमाये हुए धन से ही बड़े हुए हैं पर चाचाजी के मन में कहीं भी लोभ नहीं आया।

जेल में बाबूजी को चाचाजी का सहारा था तो बाहर हमलोगों को चाचाजी के घरवालों का। राधाकृष्ण भाईजी (चाचाजी के भतीजे) ने जो किया, उसको कहा नहीं जा सकता। मां ने कहा "मेरे लड़का नहीं है पर तुम्हारे बाबूजी राधाकृष्णजी को लड़के के रूप में छोड़ गये हैं। तुलसी (चाचाजी के दूसरे पुत्र) के करने का तो क्या, वह तो तुम लोग हो वैसा ही है।"

१९४३ का समय आया तो ब्रिटिश सरकार ने बहुत से राजनीतिक बंदियों को छोड़ा, इनमें चाचाजी को भी रिहा कर दिया गया। ईश्वर को चाचाजी से बहुत बड़ा काम लेना था। १९४३ में बंगाल में भयंकर अकाल था। चाचाजी बंगाल रिलीफ कमेटी के सेक्रेटरी बनाये गये। उन्होंने न जाने कितने रिलीफ सेंटर खोले। रिलीफ सेंटरों को चाचाजी के खास-खास आदमी संभालते थे। खुद वह सेंटरों का निरीक्षण करते और सारे हिसाब-किताब की देख-भाल करते। जगह-जगह उन्होंने लंगर

खुलवाये। एक लंगर मैं भी चलाती थी। इस समय कलकत्ता में अमरीकी सैनिक बहुत बड़ी तादाद में थे। उन्होंने भूख से मरने वालों और गांव से आए लोगों के चित्र अमरीका भेजे तो वे वहां के अखबारों में निकले। इससे ब्रिटिश सरकार की बहुत निन्दा हुई। जब वायसराय कलकत्ता आये तो बंगाल सरकार ने गांव के लोगों को शहर से निकालने के लिए रिलीफ सेंटर बन्द करवा दिये। कलकत्ता में उस समय कोई भी चीज बिना ब्लैक के नहीं मिलती थी। इसलिए मजदूरी करनेवाले तथा नौकरीपेशा लोगों को बहुत तकलीफ थी। चाचाजी ने अपने खास आदमियों को पाड़ों (मुहल्लों) और बस्तियों में भेजा। ये आदमी लोगों को राशन-कार्ड जैसे कार्ड देते थे जिसे दिखाकर लोग अपने पास के रिलीफ सेंटर से सामान ले सकते थे। शाम को सब काम करने वालों को चाचाजी खुद जा कर या फोन कर संभालते थे, पूरी रिपोर्ट लेते थे।

यों तो पालिटिकल सफरर्स को कानोड़िया कम्पनी से हमेशा ही सहायता मिला करती थी लेकिन १९४३ में जेल से छूटने के बाद चाचाजी ने व्यापक रूप से निर्भीकतापूर्वक सहायता करनी शुरू की। इस समय सैनिक लोग खासकर स्त्रियों और बच्चों पर बहुत अत्याचार करते थे और बदमाश अफसर पोलिटिकल सफरर्स के परिवार के लोगों को बहुत तंग करते थे। चाचाजी ने इनकी सहायता के लिए लोगों को रुपये देने को कहा तो लोग उन्हें गुप-चुप रुपये देने लगे, क्योंकि ब्रिटिश सरकार के खिलाफ सामने आने का लोगों में साहस नहीं था। चाचाजी पता लगाकर एक-एक गांव में सहायता भेजते।

१९४४-४५ का समय बहुत सी छोटी-बड़ी घटनाओं के साथ बीता। १९४६ में कलकत्ता में हिन्दू-मुसलमान दंगा हुआ तो चाचाजी रात-रात लोगों को निकाल कर लाये और उनको अपने घर रखा। दंगों में चाचाजी खतरनाक मुहल्लों में पूरी निर्भीकता के साथ आते-जाते थे। एक दिन मुर्गीहट्टा से जा रहे थे। थकावट के कारण गाड़ी में लेट गये। पुलिस ने गाड़ी का नम्बर नोट किया और उनके यहां फोन किया कि आपकी गाड़ी को इतने बजे मुर्गीहट्टा से एक मुर्दा ले जाते हुए देखा गया है, सो क्या बात है। इत्तफाक से चाचाजी ने ही फोन पकड़ा था, उन्होंने कहा : "आपकी बात ठीक है। उसमें पूरा मुर्दा नहीं अधमुर्दा था और वह मैं ही था।" इसके बाद तो देश स्वतंत्र हो गया। पार्लियामेंट में जानेवाले पार्लियामेंट में गये, मंत्री बनने वाले मंत्री बने। चाचाजी को कई बार पार्लियामेंट में जाने और मंत्री बनने को कहा गया पर वह गगनबिहारी मेहता आदि का नाम देते रहे। आजादी के बाद चाचाजी ने राजस्थान में जो काम किया उसके बारे में ग्रन्थ में बहुतों ने लिखा होगा, लेकिन मैं एक बात यह लिखना चाहती हूं कि राजस्थान में चाचाजी ने जो कठिन मेहनत की उसीसे उनका स्वास्थ्य बिगड़ता गया। १९५८ की जीप दुर्घटना, पीलिया और प्राणलेवा कमजोरी राजस्थान की देन थी।

आखिर में कुछ निजी बातें लिखती हूं। बचपन में चाचाजी को देखकर मुझे लगता था कि वह लक्ष्मण हैं क्या। बाबूजी उनको उनकी मृत्युपर्यन्त कुछ भी कह देते थे लेकिन उनके चेहरे पर कभी शिकन नहीं आयी। हमारे सुख-दुख में वह जिस तरह साथ रहे उस तरह कोई नहीं रह सकता। मां उनको बाबूजी की बहू कहा करती। समय

बीतता गया। एक दिन चाचाजी ने नन्दलालजी से कहलवाया कि वह मेरी बेटी भारती को अश्विनी के लिए चाहते हैं। तो मैं चाचाजी के रिश्ते में समधिन बन गयी। विवाह में लोग पूछते भागीरथजी लड़के वाले हैं या लड़की वाले। कइयों ने मुझे आकर कहा कि मालूम ही नहीं होता कि तुम लड़की वाली हो। किसी ने कहा कि मालूम होता है कि भागीरथजी तो ऐसा व्यवहार करते हैं कि वे ही लड़की वाले हैं तो मैंने कहा कि जन्म भर का अभ्यास कैसे चला जायेगा।

अंत तक मैं उनकी बेटी ही रही। इसको लेकर दोनों घरों में काफी विनोद होता। उनकी कितनी बड़ी छत्रछाया मुझ पर थी! मेरे पति को दिल का दौरा पड़ा तो खबर मिलते ही रात को ग्यारह बजे चाचीजी के साथ अस्पताल आये और बिना कुछ बोले मेरे सिर पर अपना हाथ रख दिया। उनका वह हाथ रखना बार-बार याद आता है। उनके जाने के बाद मैं तो हंसना ही भूल गयी हूं। वे किस शब्द का क्या अर्थ निकाल कर हंसा देते थे। दुनियां में ऐसे चाचाजी किसी को नहीं मिले होंगे, जैसे मुझे मिले। उनके जैसा कोई नहीं होगा।

—: o :—

सामाजिक कार्यकर्त्री, 'रचना' की मंत्री

श्रीमती कुसुम खेमानी

प्राणिनाम् आर्ति-नाशनम्

न त्वहं कामये राज्यम् न स्वर्गं ना पुनर्भवम्
कामये दुःख-तप्तानाम् प्राणिनाम् आर्ति-नाशनम् ।।

"कुस्सुम !"

"हाँ काकोजी !" (मैं उन्हें 'काकोजी' कहती थी)

"तू अभी जो श्लोक गायोना, 'इम ताप्तानाम्' नई 'तप्तानाम्' होस्सी, दुःख के तप्त प्राणिमात्र के लिये है वो ।"

बाबूजी (सीतारामजी सेकसरिया) के यहां सीढ़ी से उतरते वक्त धीरे से वे यह बात मुझे समझा रहे थे। उस समय उनका यह अर्थ समझाना, श्लोक को ही समझाना लगा था, पर जब पूर्ण समग्रता से काकोजी के बारे में सोचती हूं तो लगता है उस समय मानो वे स्वयं को ही परिभाषित कर रहे थे।

फ्लैशबैक की तरह ढेरों बातें स्मृति खंडों से झांकने लगती हैं। ऐसी बातें और घटनाएं जो अत्यन्त साधारण और सहज दिखें पर यथार्थ में बहुत गहरी और असाधारण हों।

x x x

कलकत्ता शहर के अमेरिकन वाणिज्य दूतावास में बैठे बाच्चू राय पुरानी यादों को दोहराते अचानक कहते हैं: "तुम्हारे समाज के बहुत से व्यक्तियों से मेरा परिचय नहीं फिर भी एक ऐसा व्यक्तित्व है जिसे कभी देखा नहीं, पर उस नाम के लिये मन में असीम श्रद्धा है। उम्र में छोटा ही था, जब सत्याग्रह करके जेल गया था। वहीं एक भागीरथजी कानोड़िया भी थे। उन्हें जब पता लगा कि एक बच्चा जेल में है तो उन्होंने तुरत अपनी ओर से मेरे लिये दूध का इन्तजाम करवा दिया।"

मैंने काकोजी से जब इसके बारे में पूछा—तो बोले, "ऐसा कुछ याद तो नहीं आता।"

x x x

भयानक गर्मी; राजस्थान में अकाल। काकोजी दिनरात राहत कार्य में जुटे हुए है। कलकत्ता प्रवासी सभी स्वजन छटपटा रहे हैं, उनकी शारीरिक अस्वस्थता की चिन्ता में। उधर वे अपना अस्वस्थ शरीर और चरम स्वस्थ मन लिये कभी नहर खोदने वालों के पैरों में चप्पल पहना रहे हैं, तो कभी शहर से सस्ता गल्ला ला उन्हें अनाज उपलब्ध करा रहे हैं। कलकत्ते वालों के बार-बार लौट आने के आग्रह पर वे जवाब देते हैं, "मैं एकदम स्वस्थ हूं। आप लोग यदि सचमुच मेरे लिये चिन्तित

हैं तो इन दुःख कातर मनुष्यों और पशुधन की रक्षा कीजिये। नहीं तो आने वाला समय, पूरी तरह इस अकाल का ग्रास बन जायेगा।"

x x x

राजस्थान में ही सीकर गांव और उसमें नन्दन कानन सा शोभता "जन कल्याण आरोग्य सदन।" सौभाग्य से मैं जब आरोग्य सदन देखने गई तो काकोजी वहीं थे, और वहां से जो अनुभूति लेकर आई, उसे मैंने टुकड़ों में अपनी डायरी में यों लिखा :—

"१३-११-७६ : काकोजी के टी० बी० अस्पताल गये। कल्पनातीत काम है। और काकोजी ! वे तो सचमुच जनक हैं, पूर्णतः विदेह। बनजारेवाली बात रह-रह कर मन में कौंध रही है।"

बनजारे वाली घटना इस प्रकार है—

सीकर अस्पताल के चारों ओर बड़ा चिकित्सा-शिविर लगा था। बम्बई, दिल्ली, कलकत्ते आदि शहरों के नामी-गिरामी डाक्टर वहां सैकड़ों की संख्या में ऑपरेशन कर चुके थे। कहीं नेत्र-शिविर, कहीं शल्य-शिविर, कहीं दन्त-शिविर आदि नाना शिविरों का विस्तार वहां फैला हुआ था।

शाम का झुटपुटा था, और बम्बई के प्रसिद्ध स्त्री रोग चिकित्सक डॉ० पुरेन्दरे (निःशुल्क) अपना कार्य समाप्त कर बम्बई लौट रहे थे। उनकी विदा की तैयारी में काकोजी की प्रतीक्षा हो रही थी। काकोजी उस समय शिविरों की ओर गये हुये थे। मैं उनके पास गई और उनसे कहा "डॉ० पुरेन्दरे आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।" वे अपना काम समाप्त कर, जैसे ही जीप में बैठे, एक बनजारा सामने आकर बोला, "बाबू, म विणजारो हूं, मेरी लुगाई (पत्नी) की सुणाई (देख-भाल) कोनी हो रई।"

काकोजी ने आव देखा ना ताव, और जीप से उतर पड़े। पुरेन्दरे का जाना, उनकी थकान, अनेक अतिथियों की प्रतीक्षा, सब उस एक उलाहने में तिरोहित हो गये। वे उसकी फाइल ढूंढ़ने कभी एमरजेन्सी कभी आउटडोर तो कभी इनडोर के चक्कर लगाने लगे। फाइल निकाल, डाक्टर का नाम मालूम किया तो पता चला कि वह डॉ० पुरेन्दरे के पास ही बैठे हैं, तब बोले "चलो वहीं चलते हैं।"

बनजारे को साथ लिये पहुंचे वहां। डॉ० पुरेन्दरे से पीछे मिले, पहले उस डाक्टर से जवाबदेही मांग बनजारे को संतुष्ट किया। यह सब कर चुके, तब उन्होंने दूसरी ओर देखा।

घटना छोटी ही थी पर जब-जब मुझे यह याद आती है रोमांच होने लगता है। सारे शिविर मिलाकर, हजारों लोगों को लाभ हुआ था। आशीर्वादों के अम्बार लग गये थे पर इन सबसे परे, एक साधारण आदमी का दर्द इस तरह छू जाये...शायद इसे ही करुणामय कहते होंगे।

डायरी में आगे भी उनके बारे में बहुत कुछ था और एक उच्छ्वास—"बाबूजी, (सीतारामजी सेकसरिया) आप धन्य हैं, ऐसा मित्र पाकर! हमलोग धन्य है, आपके आशीर्वाद से ऐसे व्यक्ति का सान्निध्य पाकर।"

x x x

उनकी बीमारी की खबर सुन उनसे मिलने गई। कहने लगे "म बीमार कोनी, तन्न बुलाण को सांग (स्वांग) कर्‌यो है"। मैंने कहा, "ईन्न सांग ही राखियो।"

काश! वह स्वांग ही होता।

गन्दगी में कमल की तरह रहना महानता है, पर जब कोई यश और कीर्ति में भी अनासक्त योगी सा रहे तो उसे क्या संज्ञा दें? शायद काकोजी।

मृत्यु ने उनके पार्थिव शरीर को पृथ्वी से ले स्वर्ग को सुरभित कर लिया। पर आज भी लगता है, वे हमारे बीच में ही हैं। बार-बार रवीन्द्रनाथ ठाकुर की वे पंक्तियां याद आ रही हैं—

"जाहार अमर स्थान प्रेमेर आसने,
क्षति तार क्षति नेई मृत्युर सामने।"

जो प्रेम के अमर सिंहासन पर आसीन है, मृत्यु उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकती।

—:०:—

अ० भा० मारवाड़ी सम्मेलन की महिला विभाग की भूतपूर्व अध्यक्ष

श्रीमती सरोजिनी शाह

एक संस्मरण

मैं १९६६-६७ में अजमेर में पढ़ती थी। मेरे ममेरे भाई श्री पुरुषोत्तमदास पोद्दार आदित्य मिल्स किशनगढ़ का कार्य संभालते थे। छुट्टियों में मैं भी किशनगढ़ जाती रहती थी। जिस समय स्व० भागीरथजी किशनगढ़ होते थे, तो मिल के और शहर के अनेक व्यक्ति शाम को उनसे मिलने कालोनी में जाते थे। मुझे भी कई बार अवसर मिला। जब उन्हें ज्ञात हुआ कि मैंने हिन्दी और समाजशास्त्र दोनों में एम०ए० किया है तो दोनों ही विषयों पर मुझसे अनेक प्रश्न करते और मेरी जिज्ञासाओं का, जो अनेक पुस्तकें पढ़कर भी स्पष्टतः शान्त नहीं हुई थी, समाधान सीधे और सरल तरीके से कर देते थे। इन विषयों पर उनका वृहत् ज्ञान देखकर आरम्भ में मैं आश्चर्यचकित रह जाती थी।

मैं बी०एड० कर रही थी अतएव एक दिन शिक्षा-पद्धति पर चर्चा चल पड़ी। वे वर्तमान मंहगी शिक्षा से असन्तुष्ट थे। उन्होंने बताया कि उनकी सम्पूर्ण स्कूली शिक्षा पर मात्र तीन रुपये के लगभग व्यय हुआ था। मेरी आंखों में जिज्ञासा देखकर उन्होंने इस खर्च का विस्तृत विवरण दिया जिसमें तत्कालीन शिक्षा-पद्धति की भी झलक मिलती है। यह बताया कि ७० वर्ष पूर्व हिन्दी, अंग्रेजी, गणित का ज्ञान और विज्ञान का भी सामान्य ज्ञान कर लेना बहुत अच्छी शिक्षा मानी जाती थी। ऐसी शिक्षा कक्षा ८ तक समाप्त हो जाती थी। इससे आगे पढ़ने की सुविधा जिला हेडक्वार्टर्स में भी नहीं थी। किन्तु यह अल्पकालीन शिक्षा भी जीवन के प्रति आस्था के बीज डालने के लिये पर्याप्त थी।

उन्होंने बताया कि उनकी शिक्षा उनके पारिवारिक स्थान मुकुन्दगढ़, जिला झुंझुनू राजस्थान में हुई थी। आरम्भिक चार वर्ष तक सवा तीन आने वार्षिक शुल्क लगता था और तत्पश्चात चार आने वार्षिक। इसे देने की भी कोई निश्चित तिथि नहीं थी। विद्यार्थी के माता-पिता अपनी सुविधानुसार किसी भी समय दे देते थे और कुछ तो मात्र आश्वासन ही देते रहते थे, कभी चुका नहीं पाते थे तथापि उन विद्यार्थियों का पढ़ने का अधिकार बना रहता था। इसके अतिरिक्त गणेश-चतुर्थी पर सवा किलो गेहूं देना अनिवार्य था। सभी विद्यार्थी अपने-अपने घर से गेहूं लाकर स्कूल में रखी नांद (कूंडी) में डालते जाते थे। गुरुजी सम्पन्न परिवारों के लड़कों का गेहूं नहीं नापते थे क्योंकि वे जानते थे कि वे सवा किलो से कुछ अधिक ही लाये होंगे। बल्कि वे उनके गेहूं डालते समय इधर-उधर देखने लगते थे। यदि किसी पर संदेह होता था तो नाप लेते थे और कमी को दूसरे दिन लाकर पूरा करने का आदेश दे देते थे। उस समय सवा किलो गेहूं का दाम लगभग चार पैसे था।

इसके अतिरिक्त कागज, कलम, पुस्तक आदि पर चार-पांच पैसे प्रति वर्ष का व्यय होता था। अर्थात् चतुर्थ कक्षा तक साढ़े पांच आने वार्षिक तथा ऊपर की कक्षाओं में साढ़े ६ आने वार्षिक व्यय होता था।

प्राचीन काल की गुरुकुल पद्धति और आधुनिक विवादास्पद अनेक शिक्षा पद्धतियों के बीच की यह शिक्षा-पद्धति अनेक गुणों से परिपूर्ण थी।

—: ० :—

प्रसिद्ध उद्योगपति, स्व० भागीरथजी के भ्रातृ-पुत्र

श्री राधाकृष्ण कानोड़िया

मेरे चाचाजी

पूज्य चाचाजी भागीरथजी का जन्म संवत् १९५१ के पौष महीने में मुकुन्दगढ़ (राजस्थान) में हुआ था, जब उनकी उम्र पढ़ने की हुई तो वे स्कूल जाने लगे। पढ़ने में वे तेज थे और अपनी क्लास में हमेशा प्रथम आते थे। १६ वर्ष की उम्र में वे कलकत्ता आ गए। यद्यपि उन्होंने ज्यादा शिक्षा प्राप्त नहीं की थी, फिर भी उनका अभ्यास और अनुभव इतना था कि वे चिट्ठी आदि का ड्राफ्ट अपने से अधिक पढ़े-लिखे व्यक्तियों से भी अच्छा बना लेते थे। उनकी चिट्ठियों से विदेशी व्यापारी बहुत प्रसन्न रहते थे।

प्रारम्भ से ही उनकी रुचि सामाजिक कामों में थी। जब वे बहुत छोटे थे, तभी उन्होंने मुकुन्दगढ़ में एक पुस्तकालय की स्थापना की। आज यह पुस्तकालय बहुत सुचारु रूप से चल रहा है। मुकुन्दगढ़ में जो भी सार्वजनिक काम होते, उन सबमें वे यथा-संभव सहयोग देते, कलकत्ता के सामाजिक क्षेत्र में तो उन्होंने काफी सक्रियता से भाग लिया। मारवाड़ी बालिका विद्यालय, श्री शिक्षायतन, मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी, भारतीय भाषा परिषद आदि संस्थाओं से वे लम्बे समय तक जुड़े रहे। उनकी यह विशेषता रही कि जब भी किसी संस्था का कोई काम अटक जाता वे उसे हाथ में लेकर संभाल लेते। सीकर (राजस्थान) के टी० बी० सेनेटोरियम का कार्य जब कुछ ढीला पड़ा, तो उन्होंने उसे अपने हाथ में लिया और व्यवस्थित कर दिया, न केवल ठीक ही किया, काफी हदतक उसे बढ़ाया भी।

उन्होंने राजस्थान में कुएं खुदवाने का काम बड़े पैमाने पर किया। राजस्थान के हर मुख्यमंत्री ने उन्हें सम्मान दिया और माना। पहले हीरालालजी शास्त्री मुख्यमंत्री बने, वे तो घर के ही आदमी थे, फिर जयनारायणजी व्यास, पालीवालजी, सुखाड़ियाजी, हरदेवजी जोशी, भैरोंसिंहजी शेखावत सभी उन्हें बहुत मानते थे। राजस्थान के ही नहीं हमारे देश के बड़े-बड़े नेता उन्हें सम्मान देते थे, जैसे, महात्मा गांधी, पंडित मदनमोहन मालवीय, लाला लाजपतराय, डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद, गोविन्दवल्लभ पंत, जयप्रकाशनारायण, डा० विधानचन्द्र राय, प्रफुल्लचन्द्र सेन, डा० प्रफुल्ल घोष प्रभृति। महात्मा गांधी द्वारा जब अंग्रेजों के विरुद्ध आन्दोलन चलाया जा रहा था, उस समय उन्होंने आन्दोलनकारियों की काफी मदद की। इस तथ्य का पता बंगाल की खुफिया पुलिस को लग गया, फलस्वरूप उन्हें १९४२ में गिरफ्तार किया गया।

हमारे देश के अनेक नेता समय-समय पर उनके निवास-स्थान पर ठहरते थे। डा० राजेन्द्रप्रसाद, पं० गोविन्दवल्लभ पंत, पुरुषोत्तमदास टंडन, पट्टाभि सीतारममैया, जयप्रकाशनारायण, आचार्य कृपलानी, जमनालालजी बजाज, हीरालालजी शास्त्री, ठक्करबापा, दादा धर्माधिकारी आदि अनेक नेता उनके पास ठहरे हुए हैं।

चाचाजी एक बहुत अच्छे लेखक भी थे। उन्हें लोक जीवन से सम्बन्धित बहुत सी कहानियां याद थीं, जिन्हें वे सुनाते रहते थे।

उनमें अभिमान नहीं था। वे अपने को किसी से बड़ा नहीं समझते थे। उनके चरित्र की एक यह भी विशेषता थी कि उन्होंने कभी किसी पर क्रोध नहीं किया। वे हर किसी की सहायता करने को तैयार रहते थे। किसी भी संस्था को आर्थिक मदद की आवश्यकता होती, वे उसे चन्दा करवा देते।

जो भी काम उन्होंने किया, लगन और निष्ठा से किया। विश्वेसरलाल हलवासिया चैरिटी ट्रस्ट का मामला जब अदालत में चला गया था, तब कोर्ट ने उनको इस ट्रस्ट का रिसीवर नियुक्त किया। फिर तो बहुत वर्षों तक वे उसके ट्रस्टी बने रहे और काफी काम किया।

देश के प्रति उन्हें बहुत लगाव था। महात्मा गांधी ने विदेशी वस्त्र न पहनने का आह्वान किया, उनका कहना था कि खादी पहननी चाहिए क्योंकि उससे गरीबों को सहायता मिलती है, रोजगार मिलता है। जहां तक मुझे याद पड़ता है, चाचाजी ने सन् १९२५ के पहले से ही खादी पहननी शुरू कर दी थी और अन्त तक पहनते रहे। वे खादी का प्रचार भी किया करते थे। मुकुन्दगढ़ में उन्होंने बड़े पैमाने पर खादी बनवाने का काम किया, जिससे लोगों को प्रचुर आमदनी हुई। कलकत्ता में शुद्ध खादी भण्डार चलाने में भी उनका काफी हाथ रहा।

हरिजनों को वे बहुत चाहते थे। वह जमाना था जब हरिजनों को स्कूलों में नहीं जाने दिया जाता था। उस समय अन्य जातियों के लड़के हरिजनों के साथ नहीं बैठते थे। मुकुन्दगढ़ में छोटी-मोटी पाठशालाएं और भी थीं, किन्तु बड़ा स्कूल हमारा ही था। उस समय अत्यधिक विरोध के बावजूद उन्होंने एक हरिजन लड़के को स्कूल में भरती कर लिया। काफी शोर मचा। किन्तु उन्होंने उसकी परवाह न कर हरिजनों के लिये स्कूल खोल दिया। विधवाओं के प्रति उनकी विशेष सहानुभूति रहती थी और कई युवती विधवाओं के विवाह उन्होंने करवाए। प्रथम विधवा-विवाह उन्होंने उस समय करवाया, जब समाज में विधवा-विवाह वर्जित था और उसे घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। उन्होंने बड़े साहस और धैर्य के साथ इस कार्य को अपने हाथ में लिया। समाज ने उन्हें बहिष्कृत कर दिया किन्तु धीरे-धीरे यह बात लोगों की समझ में आ गई कि जो काम वे कर रहे हैं वही ठीक है।

उन्होंने राजस्थान का अनेक बार दौरा किया। वहां के निवासी उन्हें बड़े श्रद्धा-भाव से देखते थे। उन्हें कोई भी तकलीफ या कष्ट होता, वे उन्हें बताते और चाचाजी उसे दूर करने का यथासंभव प्रयास करते।

सन् १९३४ में बिहार में भयंकर भूकम्प आया था और उससे बहुत बड़ी क्षति हुई थी। उस समय चाचाजी ने बिहार का दौरा किया और भूकम्प पीड़ित लोगों की सहायता के लिए चंदा एकत्र कर उनको राहत पहुंचाई। सन् १९४३ में बंगाल में भीषण अकाल पड़ा, उस समय उन्होंने बंगाल रिलीफ कमेटी के मंत्री बनकर जगह-जगह सहायता-केन्द्र खोले और अकाल पीड़ितों की बहुत अधिक मदद की। उस काम के लिए उस जमाने में ४० लाख रुपयों का चन्दा एकत्र हुआ था।

—:०:—

स्वर्गीय भागीरथजी की पुत्रवधू,

श्री तुलसीदास कानोड़िया की धर्मपत्नी

श्रीमती उर्मिला कानोड़िया

सतरंगी आभा से मंडित

"आओ वीनणी जी!" वात्सल्य रस से ओतप्रोत, चिर-परिचित, यह मधुर संबोधन हमारे परम श्रद्धेय स्वर्गीय बाबूजी का था। आज उनका संस्मरण लिखने बैठी हूं, किन्तु जीवन के हर क्षेत्र में उनकी बातें, उनकी यादें समाई हुई हैं; स्मृतियों के उन धागों को किस सिरे से उठाऊं, समझ नहीं पा रही हूं। उनके किस्से, कहानी चुटकुले, मुहावरे, मानो मणियां हैं भले सबको ही पिरो लो।

पूज्य बाबूजी सभी उम्र वालों के साथ, सभी रूपों में समरस होकर सहज सम्भाषण कर लेते थे—यह उनकी अभिनव विशेषता थी। साहित्य, कला, संस्कृति, भक्ति में अभिरुचि एक ओर, तो परम संवेदनशील हृदय दूसरी ओर। दूसरों की व्यथा सह ही नहीं पाते थे, करुणा विगलित हो उठते थे। अतीत में घटित इन संदर्भों की चर्चा मात्र से उनके नेत्र आर्द्र एवं कंठ रुद्ध हो उठता था। जीवित व्यक्तियों के प्रति तो करुणार्द्र होते ही थे, "मानस" के कतिपय प्रसंगों पर, अथवा गुप्तजी की "यशोधरा", "कनुप्रिया", या "साकेत" की उर्मिला की मौन व्यथा के सागर में गहरे पैठ जाते थे। उनकी कम्पित वाणी उनके समस्त उद्‌गारों को उंडेल देती थी।

भक्ति सागर तो उनमें सदैव ही तरंगायित होता रहता था। तभी तो "ऐसो को उदार जग माहीं", अथवा "अब लौं नसानी, अब न नसैहों" आदि गोसाईंजी के भजन सुनकर आत्म-विस्मृत हो जाते थे। सूर, मीरा के भजन, "प्रभु मोरे अवगुण चित न धरो," या "ऊधो! मन न भये दस-बीस," "पायो जी मैंने राम-रतन धन पायो," अथवा "राम-नाम रस पीजै मनुआ" इत्यादि उनको अतीव प्रिय थे। मन के कोमलतम भावों के नियोजन में ही उनकी मर्मभेदी दृष्टि सदा रहती थी। यथा—"संदेसो देवकी सो कहियो। हौं तो धाय तिहारे सुत की, मया करत ही रहियो।" सूरदास का यह पद गाते-गाते कितनी बार "धाय" शब्द के उच्चारण मात्र से विगलित हो उठते थे। इसी संवेदना के कारण मुहल्ले के, समाज के सर्वमान्य न्यायाधीश बने हुए थे। सभी अपना दुखड़ा बाबूजी के सामने रो लेते थे, कह लेते थे।

ईमानदारी व सच्चाई तो उनमें कूट-कूट कर भरी हुई थी। देशवासियों के, विदेशियों के विश्वासभाजन थे। लौकिक सम्पत्ति हो या वाक्-धन, सभी को गुप्त धरोहर सी रख लेते थे। संकोची तो इतने थे कि किसी ने उनका गुण-गान करना चाहा, या मान-पत्र भेंट करना चाहा, तो वहां से चुपचाप सरक जाते थे। "नेकी कर कुएं में डाल" के ज्वलन्त उदाहरण थे। उपर्युक्त गुणों को कथनी में ही नहीं, अपितु करनी में भी उतारते रहते थे। वे कर्मठता के सही अर्थ में मूक प्रहरी थे।

इसके अतिरिक्त बाबूजी तो विनोदी भी बहुत थे। एक बार की बात है कि अम्मांजी किसी बात पर मुझसे रुष्ट हो गईं। मैं उदास बैठी थी। बाबूजी को पता चला तो आकर तुरंत उन्होंने एक फुलझड़ी छोड़ी—"सासु सुसेवित वश नहिं लेखिय" और हंसा ही तो दिया। "मानस" के प्रसंग उन्हें यथेष्ट स्मरण थे। अतः बहुधा उसकी पंक्तियां अपने परिवेश में लेकर, परिवर्तित करके हम सबको हंसाते रहते थे।

इसी संदर्भ में एक रोचक घटना और याद आ गई। एक बार मेरा ज्येष्ठ पुत्र राजीव उनसे मिलने गया था। बाबूजी ने उससे उसकी पढ़ाई के विषय में पूछा, तो राजीव ने कहा वह B.Sc. कर रहा है। प्रत्युत्पन्नमति उनमें इतनी थी, तुरत बोले, "ओ, समझा! Brain seriously cracked!" राजीव हंसते-हंसते लोट-पोट हो गया। तभी थोड़ी देर में राजनीति की चर्चा चल पड़ी, और किसी M.L.A. का उल्लेख आया। बस, बाबूजी झट बोल पड़े, "अर्थात्, Member of the Lunatic Asylum" दुबारा ठहाकों से सम्पूर्ण वातावरण गूंज उठा। ऐसा था उनका विनोद—बौद्धिकता के आवरण से वेष्ठित सरल, भोला विनोद!

बाबूजी अपने जीवन काल में एक समाज सुधारक के नाम से विख्यात हुए। सदियों से परम्परागत आता हुआ लोकाचार, जिसमें मूल बात तो विलुप्त हो चुकी थी और रह गया था बाह्याडम्बर। कटिबद्ध होकर उन्होंने इसका विरोध किया। यहां तक कि घर का ही एक विवाह पर्दे से हुआ, किन्तु बाबूजी अपने सिद्धान्तों के इतने पक्के थे कि विवाह में सम्मिलित नहीं ही हुए। उनके लिए सब समान थे—स्वजन, परिजन, पुरजन। अन्य तथाकथित सुधारकों की भांति दो व्यक्तित्व नहीं रखते थे।

जहां स्वयं पर इतना नियंत्रण रखा, वहां उनके पूर्व अर्जित संस्कार भी उदीयमान रहते थे। मेरे पुत्रों, राजीव और नीरज के विवाह के पश्चात बहुओं सहित उन्हें अपने पास बुलाया था—यद्यपि बच्चे पूज्य बाबूजी को प्रणाम करने जाते ही—फिर भी, याद करके, फोन करके बुलाया। और भोजनोपरान्त बेटों को नारियल, तथा बहुओं के हाथ में गुड़ की डली स्वयं दी और कहा, "यह हमारा कुल-धर्म है।" उसी अवसर पर विवाह में बंधे 'गठ-बंधन' का अतीव सुंदर अर्थ बताया। बच्चे कितना समझे, मैं नहीं कह सकती, किन्तु मेरा कंठ अवरुद्ध हो गया।

इस प्रकार की अनेकानेक घटनाएं स्मृति-पटल पर समय-समय पर उभरती रहती हैं। दुःख है इस बात का कि उनकी पुनीत छत्र-छाया में रहकर भी "दिये तले अंधेरा" के समान ही रही। उनका एक भी गुण जीवन में घटाना सीख न सकी। वे अद्वितीय थे; कोई योग-भ्रष्ट संत थे......! "तुम तुंग हिमालय श्रृंग, मैं चंचल गति सुर सरिता.........!"

इन कतिपय शब्दों के साथ अपनी भाव-भीनी श्रद्धांजलि उस महान विभूति के श्री चरणों में अर्पित करती हूं।

—: ० :—

स्व० भागीरथजी की ज्येष्ठ पुत्री
श्रीमती सावित्री खेमका

मेरे काकोजी

कैसी विडम्बना ! स्मृति में कुछ लिखना है, लिखें तो तब जब विस्मृति की संभावना हो, यहां तो काकोजी की याद अक्षुण्ण है। खैर जब सभी लिख रहे हैं तो मैं भी सही।

पुकारती मैं अवश्य काकोजी थी पर थे वे मेरी ममतामयी मां !

मातृ देवो भव।
पितृ देवो भव।
आचार्य देवो भव।

गुरु-गृह से विदा होते समय स्नातक-छात्र को आचार्य का यह अन्तिम उपदेश है। आचार्य कह रहे हैं—मां में, पिता में और गुरु में देव बुद्धि रखना, उनको पूज्य समझना। मां अलग, पिता अलग और आचार्य अलग, पर जब मैं काकोजी को याद करती हूं तो उनमें मुझे तीनों एकाकार होते नजर आते हैं, तीन त्रिगुण रूप मेरे लिये एक हो गये, काकोजी के रूप में उस मां के प्यार में जब कहानियां उमड़ती तो उनका आचार्य रूप उनमें झांकता।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरणजी गुप्त के यहां राहुल को मां से बार-बार आग्रह करना पड़ता था, "मां कह दे एक कहानी" पर यहां आग्रह कहां, कहानियों की अजस्र धारा काकोजी से सदैव उमड़ती रहती जिनमें होता प्यार, दुलार आत्मीय भाव और ममतामयी सिखावन। भाई-बहन के सरल निश्छल, मधुर एवं उत्सर्गशील प्रेम के प्रसंग उन्हें बहुत प्रिय थे। सन् १९५२ में मेरे नाम एक पत्र मुकुन्दगढ़ से आया था जिसमें "जीण माता" के करुण गीत की मार्मिकता भाई बहन के शुभ्र एवं उज्ज्वल प्रेम के रूप में प्रकट हुई है। पत्र अविकल रूप से यहां उद्धृत है—

डा० मकुन्दगढ़
२०-१०-५२

सावित्री बेटी,

इस बार यहां आया तभी सोचा था कि देखें सावित्री का पत्र पहिले आवे तो ही पत्र दूं। इसी उधेड़बुन में दिन निकल गये। तुम्हें पत्र न लिखने का मन में अफसोस

भी बहुत होता था। एक तरह की खटक मन में लेकर सोता था लेकिन फिर मन को मनाता था कि इस बार तो देखो देखें सावित्री भी अपने को याद करती है क्या? आखिर यह तय किया था कि दीवाली के दिन तक अगर सावित्री का पत्र न आया तो उस दिन तो अपने हार मान लेंगे और उसे पत्र लिखेंगे ही। ठीक दीपावली के दिन तुम्हारा पत्र आया यानी परसों। कल तुम्हें जवाब लिखने वाला था लेकिन कल पत्र लिख नहीं पाया। इसलिये आज यह पत्र लिख रहा हूं। विवाह के बाद लड़की का अधिकार नहीं रहता यह तो तुम लिख सकती हो और मान सकती हो। एक तरह से है भी, लेकिन मैंने अभी ऐसा अनुभव नहीं किया है। मन पूरा-पूरा तो तैयार भी नहीं है, ऐसा मानने के लिए। मानना पड़ेगा तो उपाय नहीं, उस दिन तुम भी मान लेना, अभी से क्यों मानती हो!

संयोग की बात, सावित्री, जिस घड़ी तुम्हारा पत्र आया उस वक्त मैं जीण माता की कहानी और गीत पढ़ रहा था। गीत तुम सुनो तो रोये बिना न रहो बड़ा हृदयस्पर्शी है। तुम्हारे पत्र के समाचार यानी अनाधिकार की बात उस गीत से मिल रही थी और मैं दोनों चीजें यानी वह गीत और तुम्हारा पत्र साथ-साथ पढ़ रहा था इसलिये मुझे भी रोना आ जाय तो तुम बुरा मत मानना।

कथा यों है—औरंगजेब बादशाह के वक्त की बात है। जीवनी बहिन और हर्ष भाई दोनों प्रेमपूर्वक रहते थे। मां-बाप मर चुके थे। भाई और बहिन में गाढ़ा स्नेह था। भाई का विवाह हो गया था। एक दिन ननद और भावज एक दासी के साथ तालाब पर पानी भरने गईं। भावज ने कहा मेरा घड़ा तुम उठवा दो, तुम्हारा दासी उठवा देगी। ननद ने कहा: ऐसा नहीं हो सकता, मेरा तुम उठवाओ, तुम्हारा दासी उठवायेगी, इस पर दोनों में बोल-चाल बढ़ गई। ननद यानी जीवनी ने वहीं अपना मटका फोड़ दिया और अखण्ड ब्रह्मचर्य का व्रत लेकर कठिन तपस्या करने निकल पड़ी। भौजाई ने घर आकर सारे हाल हर्ष को कहे तो वह तुरन्त अपनी बहिन को मनाकर लाने के लिए निकल पड़ा। भाई ने पहिले तो बहुत खुशामद की। पीछे वात्सल्य की बातें कहीं लेकिन बहिन ने कहा कि मेरा प्रण अटल है तब भाई ने कहा: मैं भी साथ ही चलूंगा क्योंकि मां ने मरती दफा तुम्हारी सम्हलावण मुझे दी थी। मां के बारे में हर्ष ने जो कहा वह तुम्हें लिखता हूं:

"मां मरने लगी जब उसका जी गले में अटक गया था तब मैंने मां से पूछा कि तुम्हें किस बात की चिन्ता है तो मां ने कहा था कि मेरे लाल, मुझे जीवनी की चिन्ता है वह छोटी है, वह मां किसे कहेगी, वह किससे रूठेगी, उसका सिन्हारा कौन करेगा, उसके हाथों में रचनी मेंहदी कौन मांडेगा। सुबह शाम लुक-लुक कर कोनों में घुस-घुस कर वह रोयेगी। इस पर मैंने उसे वचन दिया था कि मां, तू जीवनी की चिन्ता मत कर। तू निश्चिन्त होकर मर। जीवनी की सम्हाल मैं करूंगा, मैं उसे हथेलियों पर रखूंगा तब मेरी और तेरी मां निश्चिन्त होकर और मुझे यह कह कर मरी थी कि ऐ

मेरे समर्थ लाल, मुझे तुझसे ऐसी ही आशा थी। तूं जीवनी की सम्हाल रखना। कहीं कभी पेटे पाप आया तो दरगाह में मैं तेरी दामणगीर होऊंगी। इस तरह कह कर वह शांत चित्त से मरी थी। इसलिये मेरी बहिन, मेरी जामनजाई बहिन मेरी जीण बहिन मैं अपने किये हुए कौल से फिर नहीं सकता। मैं असली राजपूत हूं या तो तुम घर चलो या जहां तुम वहां मैं।" फिर बहिन-भाई दोनों डूंगर पर चढ़ गये। कठोर तपस्या की सिद्धि प्राप्त की। और वह जीवनी आगे चलकर देवियों की देवी जीण माता हुई जिसके मन्दिर में मेला लगता है और हर साल बहुत बड़ी संख्या में लोग वहां एकत्र होते हैं। गीत तुम्हें पढ़ाऊंगा कलकत्ते आऊंगा तब। दीवाली के उपलक्ष्य में तुम्हें यह कहानी लिख दी है।

हम लोग सब कोई मजे में हैं तुम अच्छी तरह होवोगी। घर में और सब लोग अच्छी तरह हैं न? राहुल बाबू (मेरा पुत्र जो उस समय ढ़ाई वर्ष का था) का क्या हाल है? वह पढ़ता है क्या कुछ? लेक कोठी से उसका राजी पो हुआ या नहीं? दीनानाथ को भी यह पत्र पढ़ा देना। उसे अलग नहीं लिख रहा हूं। दोनों सीर में मान लेना पांती कम ज्यादा चाहे जैसे कर लेना। लड़ना मत आपस में। पांती में फरक रह जाय तो मैं आऊंगा तब पंचायती कर दूंगा।

काकोजी

इस तरह की एक और कहानी बहिन के निश्छल प्यार की मुझे १०-७-७१ के पत्र में (यह पत्र, पत्र-खण्ड में है) लिखी जिसका यह मार्मिक अंश है—

"तुम्हें एक कहानी लिखता हूं मेरा ख्याल है कि तुम्हें अच्छी लगेगी लेकिन डर यह लगता है कि तुम्हारे स्नेह के आंसू न चल जायें"।

काकोजी में कितना पारिवारिक प्रेम भरा था यह बहुत कम लोगों को पता है, बच्चों के साथ खेलते, विनोद करते। अतः सभी बच्चे उनसे निःसंकोच दोस्ती का भाव रखते थे। हम सब को हमारे बचपन की निश्छल बातें बताते। मैं जब तीन-चार वर्ष की थी तो उन्होंने पूछा, एक पैसे में दो नींबू तो दो पैसे में कितने? मैंने कहा: तीन। उन्होंने मुझे हिसाब समझाया तब मैंने झट कह दिया कि काकोजी आप साथ रहें तब तो वह चार देता है नहीं तो तीन ही। यह बात अकसर याद दिलाकर कहते कि मुझे तो तुम आज भी उतनी ही बड़ी लगती हो। कैसे वे हमारा बचपन हमें लौटाते रहते थे! मुझे काकोजी से स्नेह-दुलार अधिक मिला या उपदेश यह कहना कठिन है। उनके प्यार में उपदेश था और उपदेश में प्यार। काकोजी का जीवन सार्वजनिक जीवन था, उन्हें अवकाश कम मिलता था पर जो भी थोड़ा सा समय देते उसे प्यार से आत्मीयता से, अपनी सादगी व निर्मलता से गहन गंभीर बना कर पूर्ण कर देते, कितना सच्चा व पावन प्रेम हमें मिलता था। उन्हें उन्मुक्तता बहुत भाती थी। वे प्रत्येक व्यक्ति को दिल खोल कर खिलखिलाते देखना चाहते थे, महादेवीजी की उन्मुक्त हंसी पर वे न्योछावर थे।

काकोजी चाहे उम्र में, अनुभव में, व्यवहार में बड़े होते रहे पर थे वे एकदम बच्चे ही। वैसी ही निर्मलता, वैसी ही सरलता, वैसी ही दूसरों के दोषों को नजरअन्दाज कर फिर वैसा ही हो जाने की भावना। कितना निश्छल प्रेम !

ऐसे उदार, सहृदय व निर्मल पिता की बेटी होने में किसे गौरव न होगा ? हजारों-हजारों स्मृतियों से अभिषिक्त मैं जब पुरानी बातों को याद करती हूं तो सभी बातें इधर-उधर बिखर जाती हैं, मैं न उनको बटोर पाती हूं और न संजो पाती हूं। वे यशःकाय हैं। यह उनकी प्रशस्ति नहीं बल्कि सच्चाई है। अब भी मुझे उनकी वह मन्द मधुर आत्मीयता से भरी वाणी सुन पड़ती है और मैं पुनः उसे सुनने के लिये अधीर हो जाती हूं। फिर मैं अपने से प्रश्न करती हूं, काकोजी ने बहुत दिया, देने में कंजूसी नहीं की। क्या मैं ले पाई ? कितना ले पाई ? प्रभु से यही प्रार्थना है कि ये शब्द केवल शब्द न रहें—मेरे जीवन में अधिक से अधिक उतरें। यही होगी उनकी बेटी बनने की सार्थकता और यही होगी मेरी पूज्य पितृ-चरण में सच्ची श्रद्धांजलि।

—:०:—

स्वर्गीय भागीरथजी के जामाता,
ज्येष्ठ पुत्री श्रीमती सावित्री के पति
श्री दीनानाथ खेमका

श्रद्धेय काकोजी

"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समा:"

काकोजी कर्मवीर थे ? कर्मनिष्ठ थे ? नहीं, इनसे भी ऊपर काकोजी थे एक सच्चे 'कर्मनिष्ठ योगी'। स्व की सीमा लांघ धृति, श्रद्धा, उत्साह व पूरी निष्ठा से अनासक्त रह उन्होंने अपना जीवन परहिताय बिताया। "वसुधैव कुटुम्बकम्" उनका मूल मंत्र था। महामना मालवीय जी की भांति मोक्ष की चाह नहीं, बल्कि पुनर्जन्म की आकांक्षा रही काकोजी की ताकि कर्म कर सकें।

न त्वहं कामये राज्यम् न स्वर्गं नापुनर्भवम्
कामये दुःख-तप्तानाम प्राणिनाम् आर्ति-नाशनम् ॥

'दुःख सहना और सुख बांटना' यह उनके जीवन का ध्येय था। कभी किसी को छोटा नहीं माना और सदा सहायता करने को तत्पर रहते थे। किसी की निन्दा करना या दूसरे के प्रति दुर्भाव रखना इनको बिल्कुल पसन्द नहीं, था। परोपकार इनके जीवन का व्रत था। गृहस्थ जीवन में भी ये बराबर अनासक्त रहने की कोशिश में लगे रहे—इनके जीवन का उद्देश्य रहा है—

"अकुत्सिते कर्मणि य: प्रवर्तते निवृत्तिरागस्य गृहं तपोवनम्"।

काकोजी के परहिताय की एक बात यहां लिख रहा हूं। आज से कोई ५०-६० वर्ष पूर्व की बात है। इन्होंने अपने गांव में हरिजनों के लिये उनकी ही बस्ती में एक कुआं खुदवाया। उस समय हरिजन अछूत माने जाने के कारण जानवरों की पानी पीने वाली खेली से पानी लाकर पीते थे जिसमें कीड़े कुलबुलाया करते थे। इनके दिल में अछूतों के प्रति भाइयों सा प्रेम व समभाव था। हरिजनों का मान बढ़ाने के लिए तीस वर्ष पूर्व सावित्री को लेकर अपने भंगी के घर गये और बड़े प्रेम से उनके यहां लस्सी पी। इस प्रकार एक ओर हरिजनों के प्रति अपने प्रेम को दिखाया वहां यह भी भावना रही कि उनके बच्चे निराभिमानी बनें और सबके प्रति समभाव रखें।

रामावतार में प्रभु कटुभाषियों से मधुर बोलते थे, कृष्णावतार में प्रभु कटुभाषियों से कटु पर इस कलयुग में हमारे वीतरागी काकोजी प्रभु राम की भांति मधुर ही मधुर बोलते थे। अतः मेरा रोम-रोम व मेरी आत्मा श्रद्धावनत् हो यही कहती है

"इन्ह सम कोउ न भयउ जग मांहीं,
है नहीं कबहूं ह्वै हैं नाहीं"॥

—:०:—

श्री राधाकिशनजी कानोड़िया की ज्येष्ठ पुत्री
श्रीमती सुमित्रा जालान

छोटे बाबाजी

मैं उनकी लाड़ली थी और उन्हें छोटे बाबाजी कहती थी। मेरे शैशव की स्मृतियों में उनकी अनेकों स्मृतियां हैं, लेकिन एक स्मृति इतनी सजीव है कि उसकी याद आते ही सारा दृश्य मेरी आंखों के आगे खिंच जाता है। उसी को लिखती हूं।

२६ अगस्त, १९४२। यह मेरे जीवन का एक परम पुनीत दिवस बन गया है। मैं बच्ची थी और मेरे मन में देश के प्रति प्रेम था। इस दिन छोटे बाबाजी गिरफ्तार किये गये थे। छोटे बाबाजी गिरफ्तार हो रहे हैं, इससे मैं दुखित नहीं थी, गर्वित थी—हमारे छोटे बाबाजी देश के लिये जेल जा रहे हैं। छोटे बाबाजी की जेल-यात्रा का दृश्य अनोखा था। यह कुछ वैसा ही था जैसा कि किसी राजपूत योद्धा का युद्ध के लिए अभियान।

स्वतंत्रता के वीर सैनिक की विदा-वेला में सारा परिवार, स्वजन, परिजन, बंधु-बांधव अदम्य उत्साह से इकट्ठा हुए थे। इनमें मैं भी थी, उनकी लाड़ली अबोध बालिका जो न जाने कितनी हर्षित और गर्वित थी। आज भी बार-बार याद आती है वह अनुपम झांकी—छोटे बाबाजी के उन्नत ललाट पर बड़े बाबाजी (भागीरथजी के अग्रज गंगाबक्सजी) का तिलक लगाना, उनका देदीप्यमान मुख और गर्वोन्नत वक्ष।

इस पावन झांकी की स्मृति में आज भी मन धन्य-धन्य कर उठता है।

—:०:—

स्व० भागीरथजी के पुत्र एवं पुत्रवधू
श्री अश्विनीकुमार एवं
श्रीमती भारती कानोड़िया

सुरसरि सम सब कहं हित होई

"बेटी बीनणी कईयां होव" ये शब्द सदा कानों में अमृत बरसाते रहे और आज भी इनका स्मरण मुझे वात्सल्य के आगार में प्रतिष्ठित कर देता है। संसार की दृष्टि में काकोजी मेरे श्वसुर मात्र थे परन्तु वास्तव में वे मेरे माता, पिता, गुरु तथा मित्र पहले थे, श्वसुर बाद में। उनके अभिन्न मित्र श्री सीतारामजी सेकसरिया की दौहित्री होने के नाते मुझे उन्होंने जन्म से पुत्रीवत् माना। बाद में जब वे मुझे अपनी पुत्रवधू बनाकर घर में लाये तब बोले—

"मैं पुनि पुत्रवधू प्रिय पाई, रूप राशि गुन सील सुहाई।
नयन पुतरि करि-प्रीति बढ़ाई, राखेउ प्रान जानकीहिं लाई ॥"

इसके बाद उन्होंने अपनी विकट समस्या मेरे सामने रखी, "बेटी बीनणी कइयां होव"। उनकी समस्या ने मेरे पितृ गृह-वियोग के दुख को हर लिया, काकोजी की आंखों में छलक आये अनमोल स्नेहाश्रु मेरी जीवन लता को सिंचित करते रहे।

विवाह के कुछ दिन पश्चात ही किसी सम्बन्धी के यहां निमंत्रण से रात को कुछ देर से लौटी तो देखा, काकोजी व्याकुलता से बाहर चहलकदमी कर रहे हैं। उनकी परेशानी पर मेरी हैरानी देखकर वे बोले "वधू लरिकनी पर-घर आई। राखेहु नयन पलक की नाईं।"

"नयन पलक की नाईं" रखी जानेवाली घर में भारती अकेली नहीं थी। हम सब भाई-बहन एवं बहुएं सभी आपस में यह दावा करते थे कि "काकोजी मुझे ही सबसे ज्यादा प्यार करते हैं।" किसी के भी इस दावे का अन्त तक निपटारा नहीं हो पाया। यहां तक कि मेरे पुत्र देवप्रिय के पढ़ाई के लिए विदेश गमन की संध्या को काकोजी ने अपनी मृत्युशय्या से भी आशीष देने के लिए बम्बई फोन किया। यह उनकी अन्तिम फोन वार्ता थी। इतना विशाल था उनके स्नेह का प्रासाद कि हमारे बृहत् परिवार द्वारा उस प्रासाद पर अधिकार कर लेने के बाद भी अन्य लोगों के लिए पर्याप्त स्थान बच जाता था।

x x x

गृहस्थी में रह कर भी किसी मनुष्य के लिए वानप्रस्थ ले पाना बहुत ही कठिन होता है और विशेषकर एक वैश्य के लिए। चौथेपन में भी वह निन्यानबे के फेर में पड़ा रहता है लेकिन काकोजी "पद्मपत्रमिवाम्भसा" थे। उन्होंने व्यापार से पूरी तरह संन्यास ले लिया था। पैसे की दुनिया से अपने आपको समेट लिया था और अपना समय मात्र पढ़ने-लिखने तथा जन-कल्याण के कार्यों में ही व्यतीत किया करते थे। एक

बार जब वे किशनगढ़ थे तब वहां से बम्बई फोन पर बात करने के दौरान उन्होंने मुझसे पूछा "तेरी मील ठीक चाल ह ना। कमाई ठीक ह ना"। मिल में ही बैठे हुए इस प्रकार का प्रश्न पूछना मुझे बहुत ही अटपटा लगा। मैंने उनसे कहा "आप वहीं तो हैं आपको मालूम ही होगा अन्यथा वहीं मिल के अधिकारियों से पूछ लीजिए।" सीधा सा जवाब था उनका: "मन्न घाटे नफे स के मतलब, मतो बस अय्यां ही जाणन के लिये पूछ लियो थो। अठे हारां स क्यूं पूछूं ?"

विनोद तो उनकी रग-रग में समाया हुआ था। अपने इसी स्वभाव के कारण वे सबके प्रिय बने और सभी उन्हें अपने नजदीक का मान लेते थे। कोई बूढ़ा हो अथवा बच्चा—सभी के मित्र बन जाते थे। मेरी पुत्री अमिषा का मध्य रात्रि के अन्तिम प्रहर में जन्म हुआ ही था कि सुबह बहुत ही जल्दी उन्होंने मुझे फोन किया और बिल्कुल सरल तरीके से पूछा "तू कुण सो नीजी खर्च आज स कम करगो", मैंने कहा "मैं समझा नहीं। कोई विशेष खर्चीली आदत भी नहीं है जिसे मुझे कम करने के लिए कहा जाय", उन्होंने तुरन्त ही कहा "जो भी हो, खर्चो तो अब स घटानो ही पड़ गो। रुपया भेला कर जद ही तो बेटी को ब्याह करन सक गो"। उनका कहना था कि बात एक बारगी ही समझ में आ गई और मैं हंसी से दुहरा हो गया।

x x x

गीता और रामायण से काकोजी का मन कभी नहीं भरा। हम सभी बहुओं ने उन्हें रामायण गा-गा कर सुनाई है। वे सुनकर आनन्दित ही नहीं, कृतज्ञ होते थे। याद आती है यह पंक्ति "अतुल सुभाव तनक तुलसीदल, मानत सेवा भारी"। उनके लिये तनिक सा भी कर दिया जाता तो वे उस 'तनिक' को भी इतनी बड़ी सेवा मान लेते कि उससे अपने को कभी उऋण नहीं समझ पाते। मैं कभी कुछ रूखा-सूखा भी बना देती तो बड़े शौक से स्वाद लेकर खाते और कहते "तेर हाथ म अमृत है।"

मैं विवाह के बाद अन्तिम परीक्षा देने के लिये पढ़ रही थी। नये परिवेश में नई जिम्मेदारियों को सम्हालने में इतनी घबरा गई थी कि गृहस्थी और अध्ययन का ताल बेताल होने लगा। मैंने पढ़ाई छोड़ने का निश्चय किया। जब काकोजी को यह मालूम हुआ तब उन्होंने मुझे यह कहानी सुनाई: एक पटु नट और नटनी किसी कंजूस राजा के दरबार में अपना कौशल दिखाने गये। रात ढलने को आयी परन्तु राजा ने कुछ देना पड़ेगा इस डर से, एक बार भी वाह-वाह नहीं की। नटनी थक गई तो नट से बोली "रात घड़ी भर रह गई, पिंजर थाक्या आय। यो राजा रीझे नहीं, मघरी ताल बजाय"। उत्तर में नट ने कहा "बहुत गई थोड़ी रही, थोड़ी भी अब जाय। नट कहे सुन नट्टणी, ताल भंग क्यूं खाय"। यह सुनकर राजकुमारी ने अपना बहुमूल्य हार तथा राजकुमार ने अपना कीमती दुशाला उतार कर नट को दे दिया। राजा को क्रोधित देखकर राजकुमार ने कहा "हम दोनों आपकी कंजूसी से तंग आकर कल कुछ अकर्म करने वाले थे। "ताल भंग क्यूं खाय" याने जीवन का क्रम क्यों बिगड़े इस बात ने हमें नया जीवन-दर्शन दिया है। हमने अपना निश्चय बदल कर अपने को पाप करने से बचाया है। इसलिए नट को गुरु मानकर गुरु दक्षिणा-स्वरूप यह दे दिया"। यही प्रतिक्रिया मेरे साथ भी हुई तथा मैं नये संकल्प

के साथ अपनी पढ़ाई में जुटी और सफल हुई। आज सोचती हूं तो प्रश्न उठता है कि यदि काकोजी मुझे समय पर नैतिक साहस नहीं देते तो क्या मैं अपनी मंजिल तक पहुंच पाती ? तब "बहता पानी निर्मला" लिखी नही गई थी परन्तु जीवन-काव्य तो वे सदा ही लिखते रहे। यह काव्य रस, रूप और गंध तीनों गुणों से युक्त पुष्प की तरह था। उनकी हर बात निराली थी, जिसमें धरती की गंध, जीवन का रस और अन्तस् के सौन्दर्य के दर्शन होते थे।

X X X

हम लोग बम्बई रहते हैं। मेरे गले में एक बार भयंकर तकलीफ हुई और मैं घबरा गया था। भारती ने सोचा कि काकोजी की उपस्थिति से मुझे बल मिलेगा। उसने कलकत्ता फोन करके काकोजी से सहज स्वर में बम्बई आने को कहा। वे बोले "ठीक ह, काल शाम के प्लेन से आजास्यूं।" भारती ने अनुरोध किया "शाम को नहीं सुबह के प्लेन से आ जाइये।" बिना पूछे ही कि क्या बात है वे सुबह की उड़ान से ही बम्बई आ गये। मुझे डिप्थीरिया हो गया था। परन्तु यह उन्हें आने के बाद ही बताया गया। भारती ने जब पूछा "आप मेरे बुलाने पर कारण जाने बिना सब कामकाज छोड़कर तुरन्त कैसे दौड़े चले आये ?" इस पर वे बोले "क्यूं गड़बड़ है या तो म समझ गयो थो। इतनो विश्वास थो कि तू बिना मतलब मन्ने परेशान कोनी करे ई लिये कारण पूछनो जरूरी कोनी समझ्यो और आ गयो।

X X X

"या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी" जब सारा जग अपनी-अपनी दुनिया में खोया रहता था, तब भी काकोजी जागते रहते थे और सोचते थे, योजनाएं बनाया करते थे—अकाल-राहत के कार्यों की, गरीब छात्रों के लिए छात्रवृत्ति की, निराश्रित वृद्ध अपाहिजों को पेन्शन दिलाने की, अस्पताल के लिए धन संग्रह की, परित्यकताओं को उनके अपने घरों में पुनः प्रतिष्ठित कराने की। विचारना और विचार को कार्यान्वित करना, दिन हो या रात, उनके लिए कभी नहीं रुका, अनवरत चलता ही रहा—तब तक, जब तक सांसें चलती रहीं।

यह सब हमने निकट से देखा था। कभी हमारा मन भी इस राह पर चलने को ललकता था, किन्तु दूसरे ही क्षण अपनी क्षमताओं की सीमा का परिचय पाकर हम थम जाते। यदि कभी इस ललक से पराजित होकर हम उनके पद-चिन्हों पर एक पग भी रख पाये तो अपने को धन्य मानेंगे।

—: ० :—

भागीरथजी के कनिष्ठ पुत्र एवं पुत्रवधू

श्री संतोषकुमार एवं उमा कानोड़िया

वट-वृक्ष

आकाश की तरह निर्मल—मेरे पिता
तुमने हमें जन्म दिया
प्यार दिया
सपने
गीत दिये
गीता के कर्म का पाठ
और घने वट-वृक्ष की छाया

जितना कुछ दिया है तुमने
उसके लिये शब्द नहीं हैं मेरे पास
भाषा बौनी लगती है
तुम्हारे विराट व्यक्तित्व के सम्मुख

आज जीवन के हर मोड़ पर, दिवस के हर क्षण में, हमें अपने परम श्रद्धेय काकोजी का अभाव महसूस हो रहा है। उनके बनाये हुए प्रशस्त मार्ग पर हम यदि एक डगर भी चल पाये तो यही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि मानेंगे।

ओ स्नेह, प्रेम, ममता, जीवन के गायक !
ओ सहज गीत के कर्णधार जन-नायक !
रूप रंग रस गंध, मम छन्द निर्माता !
ओ पिताश्री ! मैं तुमको शीश झुकाता।

:— ० —:

स्व० भागीरथजी की कनिष्ठ पुत्री

श्रीमती उषा भुवालका

वह शीतल छाया !

अचानक ही लगा जैसे समय आकर मेरे निकट रुक गया है और मैं तपते रेगिस्तान की रेत पर जलने के लिये छोड़ दी गयी हूं। वह शीतल छाया जो मेरे हृदय को बराबर सुख और शान्ति प्रदान करती रही वह हठात् कैसे पंचभूत-तत्व में विलीन हो गई। इस तरह उनके चले जाने से, जीवन में एक बड़ी रिक्तता आ गयी। अब मुझे 'बेटी' कहने वाली वह मधुर आवाज नहीं मिलेगी—जन्म भर यह सुनने के लिये तड़पना पड़ेगा—मन छटपटाता रहेगा।

काकोजी हमेशा ही मुझे 'बेटी' कह कर पुकारते थे—वह आत्मीय क्षण फिर-फिर मिले इसकी प्रतीक्षा अब समाप्त हो गयी। कभी-कभी तो उनके स्नेहसिक्त साहचर्य और अतीत हो गयी आन्तरिक घटनाओं की याद में मन इतना विचलित हो उठता है कि अपने आपको सम्भालना बहुत मुश्किल हो जाता है। उनकी वे कहानियां, उनकी उक्तियां व मीठी झिड़कियां हमेशा-हमेशा याद रहेंगी। अन्तिम दिनों में वे कितने आत्मीय व स्नेहिल हो उठे थे कि भुलाये नही भूल पाती। जो जीवन भर स्वयं दूसरों की तकलीफ दूर करने में संलग्न रहे, अन्तिम दिनों में उन्होंने उतनी ही तकलीफ अपने ऊपर ओढ़ ली थी—यह सोच कर भी मन बिलख उठता है।

काकोजी स्वयं तो सबको रोता-बिलखता छोड़ कर स्वर्गवासी हुए। एक ऐसा अभाव दे गये, जिसकी पूर्ति नहीं हो सकती। ईश्वर के दूत के रूप में मानो इस पृथ्वी पर अवतरित हुए थे। दूसरों को सेवा-सुख प्रदान कर स्वयं सन्तुष्ट होते रहे और अपनी तकलीफें झेलते हुए ब्रह्मलीन हो गये। सच ही वे एक 'महापुरुष' थे। एक सन्त थे, जिनकी बेटी होने का सौभाग्य मुझे मिला—मैं गौरवान्वित हुई।

उनका आशीर्वाद, उनका आदर्श, उनकी सत् इच्छा मेरा पथ-निर्देश करे, इसकी प्रार्थना ईश्वर से करती हूं। परम पिता परमेश्वर उनकी पावन आत्मा को शान्ति प्रदान करें—यही मेरी हार्दिक विनती है।

—:०:—

स्व० भागीरथजी के व्यक्तिगत परिचारक

श्री जगरूप धरिया

दीनन के हितकारी

१९३० में पन्दरह वर्ष की उमर में मैं बाबू भागीरथजी के पास काम करने लगा। उस वक्त बाबूजी मुझे अपने लड़के की तरह मानते थे। मेरी शादी उनकी मदद से हुई। मेरी स्त्री के पेट में बहुत बड़ा रोग हो गया तो उन्होंने बहुत पैसा खरच करके उसका आपरेशन करवाया।

एक बार बाबूजी ने पूछा, तुम्हारे पास खेत नहीं है तुमको कुछ खेत करवा दें, मैंने कहा, मेरे कोई बाल-बच्चा तो है नहीं, दो जने हैं, किसलिए खेत करूं ? आपकी इच्छा हो तो हमको एक कुआं और शंकरजी का मन्दिर बनवा दीजिये। बाबूजी ने कुआं और मन्दिर बनवा दिया। कुआं बनने से मेरे गांव वालों को पानी पीने का बहुत सुभीता हो गया। पहले कुआं बहुत दूर था।

इधर मैंने बाबूजी से पशुओं के पानी पीने के लिए मेरे गांव में हौदी बनाने की बात कही तो उन्होंने मुझे २००/- रु० दिये। हौदी का काम शुरु किया तो बाबूजी की मृत्यु हो गयी और फिर काम रुक गया।

सीताराम बाबू और बाबूजी की जोड़ी थी। दोनों एक दूसरे के हर काम में साथ रहते। बाबूजी की मृत्यु के बाद उनके लड़के मेरी सहायता करते हैं।

—:०:—

पत्र-लेखक भागीरथजी

स्व० भागीरथजी कानोड़िया के जीवन के कई पहलू थे। वह लोक-सेवी थे, भारतीय संस्कृति के प्रेमी थे, अध्यात्म में उनकी अभिरुचि थी, साहित्य में उनकी गति थी, कला के वह पारखी थे। इन तथा अन्य क्षेत्रों में उन्होंने जो सेवा की, वह अत्यन्त महत्वपूर्ण है। लेकिन उनका एक पहलू और भी था, जो मेरी दृष्टि में सबसे प्रमुख था। वह था उनके पत्र-लेखन का। वस्तुतः पत्र-लेखन एक महान कला है। यों लिखने को हम सब पत्र लिखते हैं, लेकिन अधिकांश व्यक्ति यह नहीं जानते कि पत्र किस प्रकार लिखने चाहिए। हिन्दी के वयोवृद्ध लेखक श्री बनारसीदास चतुर्वेदी की फाइलों में एक फाइल है, जिसमें उन्होंने कुछ ऐसे पत्र रख छोड़े हैं, जो लिखने वाले और पानेवाले, दोनों के लिए अशोभनीय हैं। उस फाइल के ऊपर चतुर्वेदीजी ने लिखा है : "हाऊ नॉट टू राइट लेटर्स, अर्थात्, किस प्रकार के पत्र नहीं लिखने चाहिए।" बिना अतिशयोक्ति के मैं कह सकता हूं कि पत्र कैसे लिखने चाहिए, भागीरथजी के पत्र उसके नमूने हैं।

अपने जीवन-काल में उन्होंने हजारों नहीं, लाखों पत्र लिखे होंगे। उनका स्वभाव ही था कि जो भी पत्र उनके पास आता था, चाहे वह किसी बड़े नेता, विशिष्ट साहित्यकार अथवा किसी प्रमुख समाज-सेवी का हो, या सामान्य कार्यकर्ता का, उसका उत्तर वह तत्काल दे देते थे। मेरा उनका पत्र-व्यवहार बहुत पुराने समय से रहा है और उनके जीवन के अन्तिम दो महीनों को छोड़कर, जब कि वह अत्यन्त अस्वस्थ थे, मुझे याद नहीं पड़ता कि मेरा एक भी पत्र अनुत्तरित रहा हो।

दूसरी उनकी विशेषता यह थी कि जहां तक उनका वश चलता था, पत्र अपने हाथ से लिखते थे। यह नहीं कि बोल कर पत्र लिखवाने का उन्हें अभ्यास नहीं था, मैंने बीसियों बार देखा कि वह हिन्दी अथवा अंग्रेजी में पत्र लिखवाने में कोई कठिनाई अनुभव नहीं करते थे, धाराप्रवाह बोलते जाते थे। उनके पास साधनों का अभाव नहीं था, टाइपिस्ट भी था, लेकिन फिर भी वे अपने हाथ से ही पत्र लिखना पसन्द करते थे। मेरे पास उनके सैकड़ों पत्र हैं, उनमें कुछ को छोड़कर शेष उनके हाथ के ही लिखे हुए हैं।

सम्भवतः इसका कारण यह रहा होगा कि पत्र लिखने वाला अपने दिल की बात लिखता है। वह नहीं चाहता कि उसकी बात किसी तीसरे व्यक्ति को मालूम हो। वह यह भी अपेक्षा रखता है कि उसके उत्तर की जानकारी और किसी को न हो। भागीरथजी इन बातों का विशेष ध्यान रखते थे। बहुत-से लोग उनके पास आते थे, उनके सामने अपनी निजी समस्याएं रखते थे। भागीरथजी उनकी चर्चा कभी दूसरों के सामने नहीं करते थे, विशेषकर उन बातों को तो वह कभी नहीं कहते थे,

जिनका प्रभाव किसी की मान-मर्यादा पर पड़ता हो या जिससे किसी के स्वाभिमान को आघात पहुंचता हो।

भागीरथजी के जीवन में जिस प्रकार की सादगी थी, वही सादगी उनके विचारों में थी और वही सादगी उनके पत्रों में दिखाई देती है। वह बड़े-बड़े विशेषणों का प्रयोग नहीं करते थे, न उनकी बातों में अतिशयोक्ति होती थी। वह पत्रों में बड़ी सरल और सहज भाषा का प्रयोग करते थे। उनकी भाषा बहुत गठी हुई होती थी। कभी-कभी वह राजस्थानी की किसी कहावत को भी उद्धृत कर देते थे।

वह निस्सन्देह कला के उपासक थे। लेकिन उनका विश्वास था कि कला कला के लिए नहीं है, जीवन के लिए है। अतः अपने पत्रों में वह कभी कला की छटा दिखाने का प्रयत्न नहीं करते थे। कम-से-कम शब्दों में सीधी-सच्ची बात लिख देते थे। शब्दों का आडम्बर कभी नहीं रचते थे।

एक और गुणवत्ता थी उनकी और वह यह कि वह कभी किसी को बीच में लटका कर नहीं रखते थे। कुछ करना हुआ, कर दिया। नहीं करना हुआ तो साफ इन्कार कर दिया।

उनके पास सभी प्रकार के पत्र आते थे। उनमें एक नहीं, अनेक समस्याएं होती थीं। भागीरथजी के विचार, भाषा और शैली इतनी स्पष्ट थी कि वह जटिल-से-जटिल समस्याओं का भी बड़ी सरलता से समाधान कर देते थे।

उनका मानसिक संतुलन तो अद्भुत था। कठोर-से-कठोर और कड़वी-से-कड़वी बात का जवाब किस प्रकार शिष्ट भाषा में दिया जा सकता है, यह कोई उनसे सीख सकता था। कुछ अवसर ऐसे आये, जब मैंने उन्हें बहुत उत्तेजित होकर पत्र लिखे, लेकिन उन्होंने अत्यन्त संयत शब्दों में उत्तर दिया।

'सस्ता साहित्य मंडल' के साथ उनका सम्बन्ध बहुत पुराना था। पहले वह उसके सदस्य थे, बाद में श्री घनश्यामदास बिड़ला के सभापति के पद से हट जाने पर वह उस पद पर आसीन हो गये और मृत्यु-पर्यन्त आसीन रहे। 'मंडल' की आर्थिक कठिनाई कैसे दूर हो, उसका काम आगे कैसे बढ़े, उसके लिए कौन-कौन सहायक हो सकते हैं, इन तथा अन्य अनेक सुझावों से उनके पत्र भरे पड़े हैं। इस प्रकार के सुझाव वह 'मंडल' को ही नहीं, उन सब संस्थाओं को देते रहते थे, जिनके साथ उनका किसी तरह का सम्बन्ध होता था।

मजे की बात यह है कि उनके पास जितने पत्र आये, उन्होंने किसी को भी सहेजकर नहीं रखा। उनका सम्पर्क बड़े-बड़े राजनेताओं, विद्वानों, लेखकों, कलाकारों से रहा। उनमें से बहुतों के ऐसे पत्र आते रहते थे, जिन्हें संग्रह में रखने का लालच किसी को भी हो सकता है, लेकिन भागीरथजी थे कि उन पत्रों का उत्तर देकर उन्हें तभी-के-तभी फाड़ डालते थे। पिछले अनेक वर्षों से मैं जब-जब कलकत्ता जाता था, उन्हीं के साथ ठहरता था। दफ्तर में उनका सारा समय मुलाकातियों

से बात करने अथवा पत्र-लेखन में व्यतीत होता था। मैं देखता था कि चिट्ठियों का जवाब लिखा कि उन्हें फाड़कर रद्दी की टोकरी में डाल दिया। मैंने कहा कि आप ऐसा क्यों करते हैं? उनका एक ही उत्तर होता था, पत्रों को संभालकर रखने का मेरा स्वभाव ही नहीं है। एक बार मैंने किसी विद्यार्थी को ५०) महीने दस महीने तक देने को लिखा। उन्होंने स्वीकार कर लिया और पहले महीने रुपये भेज दिये। जब दूसरे महीने रुपये नहीं गये तो उस छात्र ने मुझे लिखा। मैंने भागीरथजी को पत्र भेजा तो जवाब आया कि उन्होंने रुपये भिजवाकर पत्र फाड़ दिया था। मैं उस छात्र का पता फिर से भेज दूं।

भागीरथजी वैसे बड़े भावनाशील व्यक्ति थे। कभी-कभी भावुक भी हो उठते थे। लेकिन अपनी भावुकता को वह कभी पत्रों में व्यक्त नहीं होने देते थे। भावुकता में बहते मैंने उन्हें कभी नहीं पाया। उनके पत्रों में भी कभी भावुकता दिखाई नहीं देती थी। सच यह है कि भावुकता मोह-माया और आसक्ति के कारण उभरती है। भागीरथजी काफी हद तक इनसे ऊपर उठ गये थे। हां, अपने आत्मीयजनों का स्मरण करते रहते थे। अपने पत्रों में वह परिचित व्यक्तियों की कुशलता पूछना नहीं भूलते थे।

सन्तों और राजस्थानी के साहित्य में उनकी दिलचस्पी बहुत गहरी थी। हम लोग कलकत्ते में सवेरे टहलकर जब उनके निवास-स्थान पर आते थे तो अक्सर उस सम्बन्ध में चर्चा छिड़ जाती थी। पत्रों में भी कभी-कभी वे प्रसंग आ जाते थे। हम लोगों ने 'मंडल' से उनकी लोक कथाओं का एक संग्रह 'बहता पानी निर्मला' निकाला था। उसकी अधिकांश कहानियां उन्होंने मेरे आग्रह पर लिखी थीं। जब उन कहानियों के पुस्तकाकार प्रकाशित होने की बात आई तो उन्होंने मुझसे आग्रह किया कि पुस्तक की भूमिका मैं ही लिख दूं। उनके कई पत्रों में कहानियों का उल्लेख रहा। शब्दों की उनकी पकड़ विलक्षण थी।

उनके किसी भी पत्र में निराशा की बात नहीं रहती थी। उनका उत्तर पाकर निराश और दुःखी व्यक्ति भी उत्साहित हो उठता था। अपने जीवन में उन्होंने खूब उतार-चढ़ाव देखे थे। अतः दूसरे की निराशा अथवा व्यथा को वह सहज ही अपनी समझ लेते थे और उसे सांत्वना देने का हर तरह से प्रयास करते थे।

किसी विदेशी समीक्षक के पास समीक्षा के लिए बहुत-सी पुस्तकें आया करती थीं। उसने बड़ी चतुराई से इन शब्दों में उत्तर लिख रखा था—"आई विल लूज नो टाइम इन रीडिंग योर बुक।" इसके दो अर्थ निकलते थे। पहला यह कि मैं तत्काल तुम्हारी पुस्तक को पढ़ूंगा। दूसरा यह कि मैं तुम्हारी पुस्तक के पढ़ने में समय का अपव्यय नहीं करूंगा। भागीरथजी अपने पत्रों में इस प्रकार की दोहरी भाषा का प्रयोग कभी नहीं करते थे। जो कहना होता था, साफ-साफ लिख देते थे।

पत्र-लेखन की कला में भागीरथजी पारंगत थे और उनके पत्र सादगी, हार्दिकता, स्पष्टता आदि अनेक गुणों के अनुकरणीय दृष्टान्त हैं।

—यशपाल जैन

भागीरथजी द्वारा लिखे गये पत्र

[यहां भागीरथजी द्वारा लिखे गये कुछ पत्र दिये जा रहे हैं। उनको लिखा गया एक भी पत्र नहीं मिल पाया क्योंकि वह पत्र का जवाब देने के बाद उसे तुरत फाड़ देते थे। सं०]

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी के नाम

(१)

१९-५-१९७७

प्रिय श्री बनारसीदासजी,

आपका पत्र तथा साथ में गौतम बुद्ध पर आपका लेख व श्री अवतार सिंह पंवार के बारे में एक छोटी-सी पुस्तिका मिली। धन्यवाद।

आपने जिस पेन्शन का जिक्र किया वह मेरी समझ में स्थायी नहीं रह पायेगी क्योंकि जनता पार्टी की सरकार के अधिकतर लोग इस तरह की पेन्शन के पक्ष में नहीं हैं। जो हो, दरअसल आपके लिये तो पेन्शन और वह भी अच्छी रकम (अमाउन्ट) की पेन्शन, प्रवासी भारतीयों के काम की मिलनी चाहिये थी या तो आपकी साहित्यिक सेवाओं की। क्रांतिकारियों के लिये भी आपकी सेवायें कम नहीं हैं किन्तु मालूम नहीं इस तरह की सेवाओं की कदर सरकार कब करेगी तथा कब उन्हें सम्मानित करेगी।

मुझे जिन शब्दों में याद किया वह तो आपकी कृपा और स्नेह के कारण है। मैं तो जहां हूं और जैसा हूं उस अवस्था में मुझे पूरा सन्तोष है। मेरा नाम कहीं भी प्रकाश में आये तो मुझे शरम आती है। भगवान से यही चाहता हूं कि आप जैसे सुहृद बन्धुओं की कृपा और स्नेह बना रहे। जीवन में ऐसी कोई भूल न हो कि जिसके कारण इससे वंचित होना पड़े।

आपने गढ़वाल जाने की बात लिखी सो अभी तो जाने वाला नहीं हूं किन्तु सितम्बर के आसपास शायद बद्रिकाश्रम की एक बार फिर यात्रा करूं। देखें कैसा संयोग बनता है।

आपका
भागीरथ कानोड़िया

२६-५-१९७७

प्रिय श्री बनारसीदासजी,

आपका २५ तारीख का पत्र मिला।

दरअसल मुझे कभी ऐसा भान नहीं हुआ और न आज ही है कि मैंने अपने जीवन में कुछ किया है। यह तो आप लोगों का स्नेह और कृपा है कि आप इन शब्दों में मुझे याद करते हैं। मेरे सन्तोष के लिये इतना काफी है। इससे अधिक न मैंने कभी चाहा है, न आज चाहता हूं और न कल चाहूंगा। बस, आप कृपा बनाये रखें।

सीतारामजी से आप ८ महीने छोटे हैं, इसका मतलब यह हुआ कि मुझसे २ वर्ष बड़े हैं।

आपका,
भागीरथ कानोड़िया

श्री गोविन्दप्रसाद केजड़ीवाल के नाम

आदित्य मिल्स लिमिटेड
मदनगंज
किशनगढ़ (राजस्थान)
२-८-१९७७

प्रिय गोविन्द,

तुम्हारा पत्र मिला।

तुमने सम्मान की बात लिखी सो ठीक किन्तु मैंने तो सम्मान होता बसन्तलाल जी का देखा था जो कि दो पांच दिन के बाद ही चल बसे। दूसरा अभी रामेश्वरजी टांटिया का देखा था। उनको भी दो-तीन ही लगे और वे चले गये। नागरमलजी मोदी का देखा था, वे भी थोड़े से दिनों ही जिये। इस तरह कई उदाहरण दे सकता हूं। मित्रों को मेरे लिए इतनी जल्दी नहीं होनी चाहिए। कुछ दिन आराम से बैठा हूं, बुलाहट आयेगी तब चला जाऊंगा। राजस्थानी में एक कहावत है, 'पाड़ोसी न मरतो देख, म्हारो तो मरणै सै मन इ फटगो", सो सम्मानित हुए लोगों की तुरन्त ही मृत्यु होने की बात देख कर मेरा भी सम्मानित होने से मन फट गया।

सम्मानित करने की बात तो उन लोगों के लिए ही सोचनी चाहिए जो इसके इच्छुक हों या जो बड़े लोग हों।

आशा है तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा होगा। मैं ५-४ दिन में कलकत्ते जा रहा हूं।

तुम्हारा शुभेच्छु
भागीरथ कानोड़िया

श्री सीताराम सेकसरिया के नाम

(१)

१०-१-१९७३

भाई श्री सीतारामजी,

आपका पत्र मिला।

कीमत में न गदहे की बात है, न गाय की, बात उपयोगिता की है। यों चाहें तो इसे कलियुग की महिमा भी कह सकते हैं। लेकिन आज तो अर्थशास्त्र ही मुख्य है।

कांग्रेस के अधिवेशन के बारे में आपने लिखा सो ठीक। अगर धूम-धाम को सफलता माना जाय, टीप-टाप को सफलता माना जाय, भड़कीले दिखावे को सफलता माना जाय तो मानने वाला भले ही सफलता मान ले, लेकिन जहां तक बड़े-बड़े उद्देश्यों का सवाल है उसके हिसाब तो राई-रत्ती भी सफलता की बात है नहीं। करने वाले जो कुछ करते हैं, अपनी मान्यताओं और रुचि के हिसाब से करते हैं, इसलिए अपनी आलोचना भी व्यर्थ ही है।

मारवाड़ी रिलीफ सोसायटी के भोजन कराने की बात लिखी सो ठीक। कांग्रेस सेशन में डेलीगेटों को भोजन कराने की व्यवस्था करना तो ग्रहण के अवसर पर गंगाजी पर स्वयंसेवक का काम करने जैसी बात है। रामकृष्ण सरावगी काम ठीक कर रहा है तथा उसका स्थान बनता जा रहा है, यह मुझे भी बहुत अच्छा लगता है। सम्बन्ध का आदमी है, नौजवान है, उसका स्थान बन जाय और वह कुछ कर सके तो बहुत ही अच्छी बात है।

आपने २५ बरस के स्वराज की बात लिखी सो स्वराज का हाल तो यह है कि स्वर्ग से गंगा गिरी तो शंकर की जटा में समा गई। धरती के लोगों को उसका लाभ तब मिला जब कि भगीरथ ने एक बार शंकर के सामने अपना रोना रोया और प्रार्थना की, नहीं तो वह अनंत काल तक शंकर की जटा में ही पड़ी रहती। शंकर की जटा से निकली तो उसे फिर एक बार एक ऋषि ने अपने जांघ में रोक कर रख लिया। वहां से छूटने पर उसका नाम जान्हवी हो गया। भगीरथ को, बेचारे को फिर उसकी खुशामद करनी पड़ी तब जाकर गंगा का उपभोग जनता को मिल सका। यह स्वराज की गंगा भी आज कुछ बड़े लोगों की जटा में समाई हुई है। जनता का दुख-दर्द देखने को किसी को पड़ी नहीं है। स्वर्ग से गंगा याने अंग्रेजों से स्वराज गांधीजी ने लिया। गांधीजी के चले जाने पर तो अब शंकर की खुशामद करने वाला या शंकर को डराने वाला भी कोई रहा नहीं। भगवान को जो मंजूर होगा सो होगा। फिर अप्पन भी तो केवल बात ही बात करते हैं, कुछ करते कहां हैं? आज सुबह घूम कर आ रहा था तो रास्ते में एक नौजवान लड़की को उसका पिता बुरी तरह पीट रहा था। लड़की की मां उसको छुड़ाने का प्रयत्न कर रही थी लेकिन मां-बेटी दोनों ही असहाय थीं। "विधि कत सृजी नारि जग मांहि, पराधीन सपनेहु सुख नाहीं"—

स्त्री की स्थिति कितनी नाजुक है। मामला यह था कि पिता लड़की को ससुराल भेजना चाहता था और वह जाना नहीं चाहती थी। दोनों से सही स्थिति समझने की और उन्हें समझाने-बुझाने की थोड़ी कोशिश की, लेकिन खास कुछ सफलता मिली नहीं। सफलता मिली तो इतनी ही कि लड़की का तात्कालिक पीटा जाना बंद हो गया। कितने दुखदायी दृश्य आंखों के, कानों के और हृदय के सामने नित्य ही आते रहते हैं लेकिन ये सब दृश्य देखते-देखते, सुनते-सुनते मन इतना आदी हो गया है कि चंद मिनटों उसका असर मन पर भले ही रह जाय उसके बाद तो फिर वैसा का वैसा। घी-दूध खाना, रेशम-ऊन पहनना, मोटरों पर चढ़े फिरना और अपनी झूठी बड़ाई सुनकर राजी होना, जाने-अनजाने शेखी बघारना यह दैनिक चर्या रहती है।

राजस्थान में अकाल का असर स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है लेकिन फिर भी कुछ करने की तैयारी कहां है? आये हुए आदमी को हाथ का उत्तर दे दिया और संतोष मान लिया। समस्या की तह में कोई जाय और स्थायी इलाज का प्रयत्न करे तब तो एक बात है, नहीं तो केवल लिखना और बोलना तो वाक्-विलास जैसा है।

गो-सेवा संघ की मीटिंग कल जयपुर में है। मुझे भी बुलाया है। वे चाहते हैं कि सीकर, झुंझनू और चूरू जिले का काम मैं अपने जिम्मे लूं। इसके लिये ५-४ लाख रुपये कलकत्ते से इकट्ठे करके लाऊं तो गवर्नमेन्ट से अच्छी सी सहायता मिल सकती है और चारा-दाना सस्ते भाव में बड़े पैमाने पर वेचा जा सकता है। कल जाने के बाद जो बात होगी, आपको लिखूंगा। कुछ-कुछ मन तो चलता है काम करने का, लेकिन एक तो पैसा मांगने में झंझट लगता है, इसके अलावा दौड़-धूप भी करनी पड़े। देखिये क्या होता है। अगर अकाल का काम हाथ में लेना तय करूंगा तब तो कलकत्ते जल्दी ही आ जाऊंगा नहीं तो कुछ देरी से। फिर भी यह महीना शेष होने से पहले-पहले तो अवश्य आना है ही। मिलेंगे तब ही अधिक बातें हो सकेंगी, पत्र में तो कहां तक क्या लिखा जाय।

···आज सुबह सावित्री से बात हुई थी वह कहती थी कि कलकत्ते में कल पंखे चलते थे। यहां तो कल न्यूनतम तापमान ४० के करीब था। आज सुबह से ऐसी हाड़फोड़ तीखी हवा चल रही है कि कुछ कहने की बात नहीं।

स्नेही
भागीरथ

(२)

११-५-१९७३

भाई श्री सीतारामजी,

आपका ७ तारीख का पत्र कल मिला। एक पत्र तीन दिन पहले भी मिला था। अकाल के बारे में आपने लिखा सो जब से अधिक गर्मी पड़ने लगी है तथा लू चलने लगी है मैंने घूमना-फिरना बन्द ही कर रखा है। काम तो करता हूं लेकिन करता हूं किशनगढ़ बैठा-बैठा ही और इतने में ही सन्तोष मान रखा है। मेहनत जिसे कहते हैं वह तो बदरीनारायणजी करते हैं। दो मुट्ठी हड्डियों का शरीर और इतनी

मेहनत ! मैं तो देखकर दंग रह जाता हूं। न धूप गिनते हैं न लू। अकाल के काम में सरकार का पैसा कम खर्च हो चाहे ज्यादा, और उसका उपयोग भी कम हो चाहे ज्यादा, लेकिन मुख्य बात जो है वह यह है कि अफसरशाही और नौकरशाही सभी यंत्रवत् काम करते हैं। न दया है, न करुणा, न सहानुभूति, न समवेदना। जड़वत् काम होता है। फिर भी मिकदार के हिसाब से गिनें तो सरकार के कामों से ही राहत अधिक लोगों को पहुंचती है। प्राइवेट एजेन्सी करके भी आखिर कितना कर ले।

आपने कलकत्ते के हालचाल लिखे सो बात यह है कि 'जाके पांव न फटी बिवाई वो क्या जाने पीर पराई'। आपको कई विवाहों में जाना पड़ा होगा। आपने लिखा कि आडम्बर और ठाट-बाट के विषय में किसी को कुछ कहने को मन ही नहीं होता सो यह बात ठीक है। कहने का कुछ परिणाम थोड़ा ही आता है। आज तो ऐसा करना केवल अरण्य-रोदन मात्र है।

आपने बिजली की कमी के समाचार लिखे सो बिजली के हालात तो राजस्थान के आप देखें तो कलकत्ते में बिजली की कमी कुछ भी नहीं है। यहां पर ५० प्रतिशत तो सारे कारखानों में ही बिजली कटी हुई है ही, इसके अलावा ३-४ दिन से जयपुर में सारे कारखाने पूर्णतया बन्द है। सुना है कल से भीलवाड़ा की मिल भी बन्द है। अपनी मिल वाले भी डरे बैठे हैं कि मालूम नहीं किस घड़ी मिल बन्द हो जाय।

पानी की किल्लत का कोई हिसाब नहीं है। जयपुर जैसे शहर में पीने के पानी की कमी है। हर दिन जयपुर के अखबारों में एक विज्ञापन रहता है कि 'एक-एक बूंद पानी बचाइये। बूंद-बूंद से ही घट भरता है'।

अपनी आपसी वार्ता के बारे में आपने समुद्र की स्याही और पृथ्वी को कागज बनाने की बात लिखी सो वह तो महिमन का श्लोक है जिसकी अन्तिम लाइन यह है :

'लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालम् तदपि तब गुणानामीश पार न याति'

लेकिन यह तो बड़े लोगों की दी हुई उक्ति है। पुष्पदन्त जैसे कवियों की। राजस्थानी में एक छोटी सी कहावत है 'धरती पर बातां कित्तीक—आकास में तारा जित्ताक'।

आपने मानव के मन की अशान्ति की बात लिखी सो आदमी के मन की भूख और चाह ज्यों-ज्यों बढ़ेगी त्यों-त्यों मानव का मन अधिक से अधिक क्षुब्ध और अशान्त तो होगा ही। आदमी के पास भोग के साधन ज्यों-ज्यों बढ़ेंगे त्यों-त्यों उसकी तृष्णा भी अधिक-अधिक बढ़ेगी। न भोग्य वस्तुओं की कोई सीमा है और न तृष्णा की। यह एक ऐसा गोरखधन्धा या जंजाल है कि फंसते ही जाओ। भर्तृहरि का वह श्लोक आपको शायद याद होगा जिसमें कहा है :—'भोगा न भुक्ता, वयमेव भुक्ता, तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा, तपो न तप्ता वयमेव तप्ता।' पूरा श्लोक मुझे याद नहीं है। आपको याद हो तो ठीक है नहीं तो जितना सा लिखा है उससे काम निकाल लेना।

अमेरिका संसार का सबसे बड़ा धनी देश और निक्सन वहां का प्रेसीडेंट। जरा देखिये क्या हाल हो रहा है उस आदमी का।

आपने अपनी शारीरिक थकान की बात लिखी सो भाई साहब, बात यह है कि आपके और मेरे मन को यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि शरीर और उम्र का एक दूसरे के साथ ऐसा सम्बन्ध है कि उमर का असर आये ही आये। अप्पन लोगों को तो भगवान का आभार मानना चाहिए कि इतना सा हाथ-पांव तो पटक लेते हैं। इसके अलावा दिल और दिमाग से भी सजग हैं। इतना क्या कम है। इतणा दे करतार फेर नहीं बोलणा।

स्नेही
भागीरथ

श्री नथमल भुवालका के नाम

मदनगंज : किशनगढ़
२०-४-७३

प्रिय श्री नथमलजी,

मैं उदयपुर से कल शाम को आया हूं। आपका पत्र कुछ दिनों से नहीं आया, पता नहीं क्या कारण है। आशा करता हूं एक दो दिन में आयेगा।

उदयपुर के हालात बहुत खराब हैं। अन्न का संकट है सो तो है ही, पानी का भी संकट है। उदयपुर शहर में जो पीने का पानी मिलता है वह बहुत खराब है। मैं किशनगढ़ में जितना पानी पिया करता था उससे आधा भी उदयपुर में नहीं पी सका। पानी के दोष से उदयपुर में पीलिया रोग का बहुत उठाव है। अस्पताल के डाक्टरों से तथा कलेक्टर से बात होने पर ऐसा मालूम हुआ कि करीब एक हजार व्यक्ति या इससे भी अधिक उदयपुर में पीलिया रोग से पीड़ित हैं। मैं महावीरजी बागड़ोदिया के लड़के के पास ठहरा था। वह भी पीलिया रोग से ग्रस्त है। बाहर गांव में पीने के पानी का बहुत संकट है। कुएं गहरे कराने की जरूरत है क्योंकि कुओं में पानी बहुत कम हो गया है। कलेक्टर के पास पैसे तो हैं लेकिन कम्प्रेसर मशीनें नहीं मिल रही हैं। उसका कारण यह है कि 'इन्डियन एक्सप्लोजिव्स' नाम की जो कम्पनी है उसमें स्ट्राइक होने के कारण एक्सप्लोसिव की तंगी आ गई। एक पेटी के ४५० रुपये दाम थे, वे अब ८०० रुपये हो गये। मैं इस बारे में कुछ खटपट कर तो रहा हूं। यदि मामला पट गया तो कुओं का काम अच्छी संख्या में हो जायेगा। यों जो कुएं बिना एक्सप्लोजिव के गहरे कराये जा सकते हैं वैसे कुओं में करीब एक सौ की मंजूरी सरकार से दिलाकर आया हूं। मैं और कलेक्टर दोनों साथ-साथ कुछ गांवों में गये थे। एक मीटिंग भी कानोड़ में की थी। उसी में उपरोक्त करीब १०० कुओं की मंजूरी वहां की वहां दे दी है। इसमें अपना खर्चा कुछ नहीं आयेगा, मामूली देखभाल में हजार पांच सौ रुपये लगेंगे सो लग जायेंगे।

५००० रुपया मेरे गांव के एक आदमी ने बम्बई से पीपुल्स वेलफेयर सोसायटी के लिए मुझे भेजे है। ड्राफ्ट आ गया है। १७०० रुपये मैं उदयपुर से लाया हूं। उदयपुर में कुछ लोगों से और बात की है तथा कुछ होने की उम्मीद भी है। कितना क्या होगा, कहना मुश्किल है। बम्बई में पांच-सात मित्रों को पत्र लिखे हैं, कुछ रुपये अवश्य आने चाहिए। दो-चार दिन में आपको पत्र लिखूंगा कि कहां से क्या आया है।

सीताराम शर्मा कलकत्ते आ गया होगा। उसको कहकर अपनी सोसायटी के लिए लिखे हुए रुपये अदाई करने का प्रयत्न करना। अपनी सोसायटी की तरफ से जो-जो काम चल रहे हैं उसका पूरा ब्यौरा नीचे लिख रहा हूं :—

(१) २८ नये कुएं सीकर जिले में अपनी समिति की ओर से बन रहे हैं जिनमें ५००० रुपया करके प्रति कुआं खर्चा आयेगा। इनमें २५ कुओं के पैसे तो एक विदेशी एजेन्सी से मिले हुए हैं तथा तीन कुओं के बजाज परिवार से। आदिवासी एरिया में १५ कुएं गहरे कराने का काम आरम्भ किया हुआ है कुल खर्चा २१०००) होगा।

(२) झुनझुनू जिले के पांच गांवों में तथा उदयपुर जिले के तीन गांवों में प्राइमरी स्कूलों में एक-एक कमरा अपनी सोसायटी की ओर से बन रहे हैं। उन पर अपनी सोसायटी का खर्चा २०००) प्रति स्कूल आयेगा। सरकार २०००) प्रति स्कूल देगी तथा २०००) गांव के लोग श्रम के रूप में या सामान के रूप में लगायेंगे। इस तरह ६०००) एक कमरे की लागत बरामदे समेत आयेगी।

(३) झुनझुनू जिले के १५ गांवों में १००-१०० के हिसाब से कुल १५०० छात्रों को पोषक आहार दे रहे हैं। प्रति बच्चा ३३ पैसा प्रतिदिन खर्चा आता है। उसमें १८ पैसा सरकार देती है, १५ पैसा अपनी सोसायटी का लगता है। आदिवासी गांवों में जो छात्रावास आदिम जाति सेवक संघ वाले चला रहे हैं उनमें कुल ५७५ छात्र रह रहे हैं। उन बच्चों के लिए दो महीने तक अतिरिक्त भोजन की व्यवस्था की है। इसमें ढाई से तीन हजार रुपये प्रति माह लगेंगे।

(४) चूरू और सीकर जिले के १६०० सांडों को २ किलो प्रतिदिन प्रतिसांड के हिसाब से गुंवार दे रहे हैं। झुनझुनू में ४०० सांडों को गुंवार दे रहे थे, वह काम १६ अप्रैल से गोयनकों ने करना मंजूर कर लिया इसलिए अपनी तरफ से वह काम बन्द है। बदले में नागौर के गांवों में सांडों को गुंवार देने की योजना बनाई थी किन्तु सरकार ने कहा कि आप सीकर और चूरू दो जिलों में ही गुंवार देने का काम सीमित रखिये इसलिए नागौर जिले का काम हाथ में नहीं ले रहे हैं।

(५) ५०० बच्चों को सीकर जिले में पोषक आहार दे रहे हैं जिसका सामान सीकर की जनता की ओर से मिल जाता है। ऊपर-ऊपर का मामूली-सा खर्चा अपना है।

(६) सड़कों पर काम करने वाले मजदूरों के लिए ठंडे पानी की व्यवस्था हो सके इसके लिए करीब हजारेक मटके तो दे चुके हैं। यह काम अभी भी चालू है।

(७) सड़कों पर काम करने वाले मजदूरों के लिए चप्पलों को बांटने का काम भी कर रहे हैं लेकिन इसमें कोई विशेष खर्चा नहीं है। आठ आने प्रति जोड़ी लगता है। रबड़ की चप्पलें बनवाई हैं। दो-ढाई महीने चल जायेंगी।

(८) उदयपुर में रोटरी क्लब की मार्फत चार गांवों में बीमारों के लिए इलाज की व्यवस्था की है। डाक्टर, कम्पाउन्डर, वोलेन्टियर तथा सवारी रोटरी क्लब की। रुपये एक बार उन लोगों को दिये हैं। दो-तीन हजार रुपये और लग सकते हैं। कम रुपये में अच्छा काम हो जायगा।

(९) सड़क पर काम करने वाले मजदूरों के लिए छाया का कोई इन्तजाम नहीं है। इसके लिए उदयपुर जिले में ही कुछ जगहों पर सरकी के टाटे बनवाये हैं। २०० रु० की लागत से बनाये हुए टाटे में करीब ४० से ५० आदमी एक साथ विश्राम के लिए बैठ सकते हैं। दसेक टाटों के लिए कहकर आया हूं।

रामेश्वरजी टांटिया अभी कलकत्ते ही हैं या बम्बई गये? अगर बम्बई नहीं गये हों तो यह पत्र उन्हें भी पढ़ा देना। भाई सीतारामजी को तो पढ़ा ही देंगे।

आपके जंचे तो पीपुल्स वेलफेयर सोसायटी की एक मीटिंग बुला लेना जिससे कि मेम्बरों को इस बात की जानकारी हो सके कि सोसायटी क्या काम कर रही है।

इन्कमटैक्स एक्जेम्प्शन सर्टीफिकेट आया तो नहीं है लेकिन उनलोगों से बात हो गई है जल्दी ही आ जायेगा तथा पुरानी तारीख में मिल जायेगा। इसलिए कोई आदमी अपने अकाउन्टिंग ईयर के हिसाब से मार्च महीने का चेक देना चाहे तो भी दे सकता है। उसे इन्कम टैक्स बाद मिल जायगा।

पाट के व्यापारियों के रुपये लिखे जाने तथा अदाई होने में क्या प्रगति हुई लिखना। कुछ रुपये आप कलकत्ते में और कर सकें तो पोषक आहार देने वाला काम बहुत आवश्यक है।

आपका
भागीरथ कानोड़िया

श्री भंवरमल सिंघी के नाम

(१)

८, रायल एक्सचेंज प्लेस, कलकत्ता
४-१२-४३

भाई श्री भंवरमलजी,

आपका और भाई सीताराम जी का पत्र २९ तारीख का आज (जेल से लिखा गया) मिला। यह बात सही है कि मनुष्य को काम देना ही सबसे अच्छा है। काम बिना खुराक देना मनुष्य के पतन में मददगार होना है, लेकिन जैसी अवस्था सामने आ पड़ी थी

(१९४३ का बंगाल का अकाल) उसमें काम की बात सोचना सम्भव नहीं था। ज्यों-ज्यों फुरसत मिलती है उस-उस तरह थोड़ा-थोड़ा ध्यान मैं इस पर देता रहा हूं, लेकिन आदमी नहीं मिल रहे हैं। काम करने वाले आदमियों का कितना अभाव है यह मुझे ठीक-ठीक नहीं तो भी बहुत कुछ अनुभव इस बार हुआ। अनाज के अलावा कपड़ा बांटने, दवा देने, बीज बांटने, सस्ते दाम में बीज बांटने, सस्ते दाम में बीज बेचने, लड़कों के लिए घर बनाकर (उन्हें) वहां रखने, दूध का प्रबन्ध करने आदि सभी तरफ ध्यान देने की कोशिश तो की है। मुफ्त में अनाज देने के अलावा सस्ते दाम में अनाज देने की तरफ मेरा ज्यादा ध्यान रहा है। जो लोग रिलीफ थ्रू वर्क कर रहे हैं उनको बराबर मदद दी है लेकिन जो भी हो जो कुछ मैंने किया है या कर सका हूं उससे मुझे कोई संतोष थोड़े ही है, लेकिन संतोष इतना तो है कि मैं जितना कर सकता था उतना कस कर करने की कोशिश की।

आप जो करने को लिखते हैं उसे मैं भी पसन्द करता हूं और वही एक मात्र कारगर राहत हो सकती है लेकिन उसके लिए तो कोई स्थायी संगठन चाहिए। आज संगठन खड़ा किया, कल काम शुरू किया और परसों उसे उठ जाना है, उसके लिए ऐसा सम्भव नहीं है। ...मैं खुद भी तो बराबर के लिए सार्वजनिक कार्य में लग जाने वाला नहीं इसलिए किस बूते पर कोई संगठन खड़ा करूं। कोई अच्छा ऐसा मित्र भी सामने नहीं जिसके बल पर मेरे में हिम्मत ज्यादा बढ़े। अब तो क्या है उठता मेला सा है। रुपया शायद कुछ न कुछ तो बचेगा ही चारेक लाख तक बच जाये। इनसे कुछ हो सकेगा तो करने के लिए कोशिश करूंगा।

आप सब मित्र खूब याद आते हैं। खासकर ऐसे मौके पर लेकिन बेबसी तो बेबसी है। हम कितने बेबस हैं! आप सब मित्र अच्छे रहें। आप का पत्र आया इससे खुशी हुई और मेरा ध्यान इसकी तरफ ज्यादा रहेगा, इसका मैं आपको विश्वास दिलाता हूं

आपका
भागीरथ कानोड़िया

[इसी पत्र में जेल में बंदी स्व० बसन्तलालजी मुरारका के नाम]

भाई बसंतलाल,

तुम्हारा पत्र नहीं मिला। ऑपरेशन होने वाला था, उसका क्या हुआ? साधारण स्वास्थ्य कैसा है? नोट्रम्प और नोलॉज (ताश के खेल) का क्या हाल है? मजे में मौज से होवोगे।

तुम्हारा भाई
भागीरथ कानोड़िया

मेडिकल हास्पीटल, कटक
कनिका वार्ड कॉटेज
७-५-४४

भाई श्री भंवरमलजी,

आपका जेल से भेजा हुआ पत्र मुझे आज यहां मिला हैं। इस तरह जेल से ही लिखते रहेंगे क्या? मुझे तो भाई साहब यह कुछ अच्छा नहीं लग रहा है। लेकिन करना तो क्या करना, यह समझ में नहीं आता। फिर यह भी बात है कि सब कुछ अपने को अच्छा लगे, वही थोड़ा ही होता है। अपनी रुचि कोई आख़िरी रुचि थोड़ी ही है। घटना चक्र चलता रहता है और इसके क्रम में जैसा आ जाता है वैसा हो जाता है। अपना काम तो यही है कि जिसे श्रेय समझें उसे ईमानदारी और परिश्रमपूर्वक करते जायें, उसका परिणाम जो आवे उसे सन्तोषपूर्वक झेलते जायें।

तुलसी की तबीयत के लिए तथा उसके परिणामस्वरूप मेरी चिन्ता के लिए आपने जो भावना प्रकट की वह ठीक ही है, लेकिन यह सब झंझट तो गृहस्थ जीवन में खासकर बड़ी गृहस्थी में लगे ही रहते हैं, इनसे घबड़ाने से काम कैसे चले। तुलसी की तबीयत तो अब मजे में है लेकिन एक घटना और हो गई। तुलसी कुछ दिनों से पुरी था। मैं भी ५-७ दिन के लिए उससे मिलने चला गया था। ३ तारीख को मैं तुलसी और मेरा एक छोटा लड़का ज्योति जिसकी उमर साढ़े छः साल की है पुरी से चल कर कलकत्ता जा रहे थे। रात को साढ़े तीन बजे के करीब चमक कर वह लड़का खिड़की से गिर पड़ा। गाड़ी पूरे जोर से जा रही थी इसलिए लड़के को बड़ी सख्त चोट लगी। गाड़ी में पूरा अन्धेरा था। गाड़ी को ठहराने तक करीब सवा माईल गाड़ी आगे आ चुकी थी। इसलिए फिरती जाकर लड़के को पिक-अप किया। वह जिन्दा किन्तु पूरा बेहोश था। उसे लेकर कटक आया क्योंकि कटक ही सबसे नजदीक ऐसा स्थान था जहां इलाज की व्यवस्था हो सके। जिस वक्त मैं यह पत्र लिख रहा हूं, लड़के को चोट लगे ८४ घण्टे हो चुके हैं। डाक्टर का कहना है जान को खतरा तो अब ज्यादा करके नहीं है, ऐसा ही मानना चाहिए, लेकिन आफ्टर-इफेक्ट्स क्या होंगे यह कहना मुश्किल है। स्कल की एक हड्डी जो सबसे मजबूत हड्डी बतायी जाती है उसके चार टुकड़े हो गये लेकिन वह है अपने स्थान पर। उससे हेमरेज तो खूब हुआ लेकिन अब आशा यही होती है कि वह टुकड़े सेट कर जायेंगे। सिर पर कई गहरे घाव हुए हैं। सारा शरीर बुरी तरह छिल गया है। लेकिन सबसे सांघातिक चोट स्कल ब्रेन फ्रैक्चर वाली है। जिन्दा बच जायगा यह आशा तो हो चली है। आफ्टर इफेक्ट्स क्या रह जायें यही चिन्ता है। डाक्टर के दो मत हैं—कहते हैं बिलकुल नारमल स्थिति हो सकती है और ब्रेन डिफीशियेन्सी भी रह सकती है, लेकिन कहते हैं वह डिफीशियेन्सी धीरे-धीरे लेवल पर आ जायेगी। देखें क्या होता है। ईश्वर मंगल करेगा। अपना जो करने का है वह कर रहे हैं। उसके बाद परिणाम जो आवेगा उससे सन्तोष मानेंगे। यह भी तो अपने करने का ही है न।

...जिन्दगी में नया अनुभव ले रहा हूं। अस्पताल में एक कोने में छोटा सा काटेज किराया लेकर कई आदमी रह रहे हैं और बच्चे की सुश्रुषा कर रहे हैं। यह भी एक मजेदार जिन्दगी है।

स्वास्थ्य की सम्हाल रखना। कुछ चीज चाहिए तो लिख देना। मैं अभी ५-७ दिन तो यही हूं फिर कलकत्ते आऊंगा।

आपका
भागीरथ कानोड़िया

(३)

८, रायल एक्सचेंज, कलकत्ता
दिनांक ७-९-४४

भाई श्री भंवरमलजी,

आपका पत्र २५-८ का समय पर मिल गया था। उत्तर देने में विलम्ब हो गया क्योंकि २-३ दिन के लिए तो मैं एक बार कोंटाई (मेदिनीपुर) की तरफ चला गया था, फिर दो-तीन दिन व्यस्त ज्यादे रहा इसलिए यह विलम्ब हुआ मानना चाहिए।

जेल में समय उपयोगी तरीके से काटने के लिए दो ही साधन है। पढ़ना और कातना। बाकी खेलना और गप्प। वर्षों का एकांगी और एकाकी जीवन कितना नीरस शुष्क और साथ ही बिना उपयोग के कटता हुआ कितना खटकता है—लेकिन मनुष्य अपने ध्येय के प्रति वफादार बना हुआ है इससे जीवन में भी संतोष और सुख मानता है। देव और दानवों के युद्ध का वर्णन जो पुराणों में पढ़ते हैं वह अलंकारिक भाषा में है लेकिन अलंकार उतार कर उसका शुद्ध रूप देखें तो आज सारे संसार में वह युद्ध चलता हुआ स्पष्ट ही दृष्टिगोचर हो रहा है। कंस ने वासुदेवजी को जेल में बन्द कर दिया था क्योंकि उनका पुत्र उसे मारने वाला है और इसीलिये वासुदेवजी के जितने लड़के होते थे उन्हें कंस मरवा देता था। वासुदेव जी के पुत्र के याने—वासुदेवजी के (द्वारा) अन्याय के प्रति प्रकट किये हुए विचार और उनका प्रचार। कंस की मान्यता थी कि अगर वासुदेवजी को अपने विचारों का प्रचार करने का मौका मिला तो तुम्हारी मृत्यु—याने तुम्हारे अन्यायपूर्ण साम्राज्य की मृत्यु निश्चित है। उठाकर जेल में रख दिया और प्रचार को रोक दिया लेकिन कृष्ण याने उनके सद्विचार जेल की चहारदीवारी और सात ताले तोड़कर भी जनता में पहुंचे और कंस की मृत्यु हुई। आज भी ठीक वही हाल है, दूसरे जमाने में भी रहा है। सम्भव है आगे भी रहे। न्याय, सत्य, अहिंसा आदि मानवोचित विचारों की जीत तो है ही, यह ध्रुव सत्य है, लेकिन इसमें जो धीरज-अटूट धीरज की दरकार है, वह भी साथ ही है। हम लोग अल्पकालीन हार-जीत देखकर व्याकुल हो जाते हैं, घवड़ा उठते हैं, धीरज खो देते हैं, लेकिन इस विशाल काल अनन्त समय में यह छोटा सा काल २-५ वर्ष या १०-२० वर्ष का काल या सौ-पचास वर्ष का काल भी क्या महत्व रखता है? जिनकी इस चीज में श्रद्धा है उनके लिए तो यह होना चाहिए कि आज की दानवी-दोष और अन्यायपूर्ण दुख का सृजन करने वाली यह प्रणाली अगर वे और उनकी आने वाली पीढ़ी सतत प्रयत्न करके पचास या सौ वर्षों में बदल सकें तो उन्होंने बहुत जल्दी ही एक बहुत बड़ा महान भले का काम कर दिया।

बाहर में आज इतना काम उन लोगों के लिए करने का पड़ा है जो लोग कि कुछ करने की हविस रखते हैं, इच्छा और ताकत रखते हैं कि कुछ हिसाब नहीं। लेकिन वे करें तो किस तरह करें ? हाथ-पांव बांधकर उन्हें बंद जो कर दिया गया है लेकिन बैठे-बैठे भी अपने श्वासों द्वारा ही हवा में वे अपना काम तो कर ही रहे हैं।

आपके विचार पढ़े। मैं उनसे पूरी तरह सहमत हूं कुछ थोड़े से लोगों का जैसे एक गुट हो गया है और वह यही सोचता और कल्पना करता है तथा केवल इसी तरह की योजनाएं बनाता रहता है कि किस तरह अनन्त काल तक लोग—जनता उनके इस गुट की गुलाम बनी रहे।

घर में माता-पिता बीमार हों, दूसरा कोई गृहस्थी को सम्भालने वाला मेम्बर घर में न हो और फिर बीस-बीस दिन खत न मिले, यह सब आदमी को विकल करने वाली बातें तो हैं हीं, इस स्थिति में आप जितने बैलेंस्ड और सुखी रहते हैं, वह स्पर्धा करने की चीज है।

हमलोग सब मजे में हैं।

स्नेही
भागीरथ

(४)

८ रायल एक्सचेंज प्लेस
कलकत्ता
२९-९-१९४४

भाई श्री भंवरमलजी,

एक-एक करके दिन सप्ताह और महीने बीते जा रहे हैं। सूरज उगता है और छिप जाता है। वर्षा चली गई, शरत् आ गई, यह भी चली जायगी। दिन... बीते जा रहे हैं, समय का चक्र अबाधगति से चल रहा है और चलता रहेगा। ममत्व के कारण स्वभावतः ही उन लोगों का विछोह खटकता है, जिन्हें मोह-स्वार्थ या दुनियावी दूसरे कारणों से हम एक दूसरे के साथ निजत्व-निकटत्व कायम हो जाने के कारण अपना मान लेते हैं। नहीं तो आप और आप जैसे अन्य मित्रों के समय का यों दृश्यमान उपयोग चाहे न होता हो लेकिन बहुत बड़ा उपयोग हो रहा है। सिवा पैसा कमाने, पेट भरने और एक दूसरे के ऊपर कीचड़ उछालने के, हम लोगों के समय का भी जो कि बाहर है कौन सा सदुपयोग हो जाता है। मोहवश कुटुम्बीजनों और मित्रों की तपस्या से हमलोग सदा से ही घबराते आये हैं और जब-जब किसी ने इस मार्ग पर पांव बढ़ाया है तब-तब बराबर ही तथाकथित इष्ट मित्रों ने उसे विरत करने की कोशिश की है। विरत न होने पर क्रुद्ध भी हुए हैं, उलाहना दिया है, रोये हैं, लिपटे हैं लेकिन आखिर वह नहीं माना है तो उस पर अभिमान किया है। उसके नाम पर बल मिला है। पुराने आख्यान पढ़ने को मिलते हैं उनकी भाषा आलंकारिक चाहे हो—घटना सत्य है, क्या यह सोचने की जरूरत नहीं—लेखक और कवि तो अपनी कल्पनाओं को मूर्त्त रूप दिया करता है। उन्हीं पुराने आख्यानों के साथ आप लोगों का जीवन भी मिलाया जा सकता है।

देव-दानव युद्ध हजार वर्ष से चलता आ रहा है सही, लेकिन इसी तरह चलता रहेगा, यह मानने को जी नहीं करता। मानव दानव ही बना रहेगा यह क्यों मान लेना

चाहिए। यह मान लेना तो मानवता की हार है। हो चाहे कुछ भी लेकिन मैं स्वप्न तो उस दिन का जरूर देख रहा हूं—चाहे उसके आने में कितने ही सौ वर्ष लग जांय, जिस दिन संसार सुखी होगा एक दूसरे के मित्र होकर लोग रहेंगे। दुश्मनी नाम की वस्तु कोश में ही रह जायगी। तुलसीदासजी ने कल्पना की है राम-राज्य की रामायण में, उसमें दण्ड यतियों के हाथ में गिनाया है। याने दण्ड नाम की कोई वस्तु नहीं रह गई थी। क्या यह कभी भी सत्य नहीं होने वाला है? होगा किसी दिन तो होगा ही।

आपका पवित्र सूत आज मैंने वर्धा भेज दिया है। सोहनलालजी द्विवेदी कवि के हाथ भेजा है। साथ का परचा भी। उन्हें सारी बातें समझा दी हैं। सूत गांधीजी को मिल जायगा याने वे दे देंगे और सभी बातें बता भी देंगे।

आपका,
भागीरथ कानोड़िया

(५)

८ रायल एक्सचेंज प्लेस, कलकत्ता
१२-१२-४४

भाई श्री भंवरमलजी,

कुछ दिनों से आपको कोई पत्र नहीं लिखा है। आपके तीन पत्र मेरे सामने बिना जवाब दिये हुये हैं। ९-११, २३-११ और ७-१२ के। मुझे बाहर आये डेढ़ वर्ष हो गया। आपके लिए कुछ भी तो नहीं कर सका। अपने काम में मशगूल हो गया और घर खुशी-आनन्द से बैठा हूं।

आप पहिले से अच्छे हैं यह तो अच्छी बात है लेकिन केवल पहिले से अच्छे होने से ही तो पूरा सन्तोष नहीं हो सकता। पूरा अच्छा होना चाहिए। बीमारी नाम की कोई चीज न रह जाय, पूर्ण स्वास्थ्यलाभ कर लें, कुछ भी शिकायत न रह जाय, तब सन्तोष हो। जेल में मैं भी आपके साथ वहां का वातावरण, लोगों की याने अपने ही साथियों की मनोवृत्ति बहुत से लोगों की देख चुका हूं—बाहर भी काम पड़ता ही रहता है। यह सच है कि प्रेरणा नहीं मिलती। न केवल इतना ही, झूठ, कमीनापन आदि की सृष्टि ही ज्यादा देखने में आती है। ग्रेस जिसे कहते हैं उसका और एक दूसरे के प्रति सहिष्णुता का नितान्त अभाव देखने में आता है, इससे तो वे प्राइवेट व्यक्ति या नरम दल वाले अच्छे, जो न बहुत बड़ी बातें करते हैं और अपनी कमजोरी को जैसा अनुभव करते हैं वैसा प्रकट भी करते हैं। घर में एक कोने में बैठे रहते हैं। किसी की बुराई में जाते नहीं और अपने बच्चों आदि को अच्छी नागरिकता की शिक्षा देते हैं। मनुष्य के लिए सबसे जरूरी चीज यह है कि वह मनुष्य बनने का प्रयत्न करे। योग्य और चतुर हो—सुलझे हुये दिमाग का हो, सहिष्णु हो, सहानुभूतिवाला हो, पड़ोसी धर्म को मानने वाला हो, एक सुनागरिक हो, व्यवहार में सच्चा और नेक हो। हमारे यहां याने हमारे देश में इसका बहुत दीवाला है। अच्छे और काबिल आदमी बहुत कम पाये जाते हैं। मनुष्य खुद मनुष्य बनने का प्रयत्न करे और दूसरों को मनुष्य बनाने के लिए अपनी शक्ति का उपयोग करे, यह बहुत जरूरी है। मैं और दूसरे सारे मित्र खूब मजे में हैं। आप अपने स्वास्थ्य की पूरी सम्हाल लें। तुलसी का विवाह सानन्द समाप्त हो गया है। लड़की आई० ए० पास है और चतुर है।

आपका
भागीरथ कानोड़िया

ॐ

8, Royal Exchange Place
Calcutta
२७.४.५६.

भाई श्री भँवरमलजी,

आपका २२ तारीख का पत्र और ज्ञान मिल गया है।

अभिमान और स्वाभिमान दो अलग अलग चीजें मानी जाती हैं। अभिमान माने घमंड अगर किसी आदमी में तो वह बुरी चीज करार दी जाती है। अभिमान—घमंड का अर्थ अकड़ता है और वह भी कि अभिमानी आदमी किसी चीज को ठीक भी मानता तो लोगों में, साथियों में, भाइयों में ~~[illegible]~~ गांव वालों में इस ध्यान से वह दूसरों की अपेक्षा छोटा हो जायगा या उसकी इज्जत लोग कम करने लगेंगे इस ध्यान से वह उसे करेगा नहीं।

श्री रामसिंह तोमर के नाम

(१)

कलकत्ता
२८-९-७०

प्रिय श्री तोमरजी,

आपका पत्र मिला। एक तारीख को ट्रस्ट की मीटिंग है उसमें आलमारियों तथा पुस्तकों के बारे में बात कर लूंगा, उसके बाद आप कलकत्ते आ ही रहे हैं। बात कर लेंगे।

लोक-कथाओं के अनुसार तो भानुमती राजा भोज की रानी थी—विक्रमादित्य की नहीं। सिंहासन बत्तीसी में अगर विक्रमादित्य की रानी बताई हो तो मुझे पता नहीं। सिंहासन बत्तीसी मेरी पढ़ी हुई है तो सही लेकिन बहुत वर्ष हो गये इसलिए याद नहीं आ रही है। भानुमती इन्द्रजाल या जादू जानती थी। उसके पास एक पिटारी थी उसमें बहुत सी वस्तुएं वह रखती थी। अतः "भानुमती की पिटारी" कहावत चल पड़ी, लेकिन "कहां की ईंट कहां का रोड़ा-भानुमती ने कुनबा जोड़ा" इसके पीछे क्या कहानी है, यह मुझे अभी तक पता नहीं लगा है, इसकी खोज में हूं।

आपका,
भागीरथ कानोड़िया

(२)

कलकत्ता
१५-५-७२

प्रिय श्री रामसिंह जी,

आपका १० तारीख का पत्र कल मिला। पाणिनि के प्रसंग में जो वाक्य मैंने आपके सामने कहा था वह था, "व्याजिघ्रति से व्याघ्र"।

कथा इस तरह है कि पाणिनि महाराज अपने एक शिष्य के साथ जा रहे थे। सामने एक व्याघ्र धरती सूंघता हुआ आ रहा था। पाणिनि अपने शिष्य को व्याघ्र की व्युत्पत्ति बताने लगे। व्याघ्र अधिक नजदीक आया तो शिष्य तो भाग गया लेकिन पाणिनि अपनी विद्या की लगन में इतने बेसुध थे कि सिंह उन्हें खा गया।

आपने जो श्लोक लिखकर भेजा है, उसमें तो विद्या की साधना में तीन-तीन दिग्गज विद्वानों की मृत्यु करा दी है। श्लोक दरअसल ही बहुत प्रेरणादायक है। याद रखने लायक है।

तुलसी पुस्तकालय मेरा अपना ही था। कुछेक वर्षों तक वह अच्छी तरह चला था, लेकिन एक बार हिन्दू-मुस्लिम दंगे में वह स्वाहा हो गया।

मैं यहां से २४ को सुबह दिल्ली जा रहा हूं। वहां से उत्तराखंड की यात्रा पर जाने का मन कर रहा है। इसके पहले अगर आपका आना हुआ तो मिलना हो सकेगा। नहीं तो १० जून के बाद कलकत्ते आऊंगा तब होगा। जून शेष तक तो मैं फिर राजस्थान चला जाना चाहता हूं। शायद दो महीने नहीं लौटूं।

ट्रस्ट वालों ने एक वर्ष के बदले तीन वर्ष की ग्रांट देनी स्वीकार कर ली है, इसलिए अलवार रामानुजाचार्य वाला काम अब आप आगे बढ़ा सकते हैं।

आपका,
भागीरथ कानोड़िया

श्री गोविन्द अग्रवाल के नाम

(१)

कलकत्ता
दिनांक १६-११-७२

प्रिय श्री गोविन्द जी,

शंकराचार्य जी महाराज के जुलूस के समाचार (चूरू में हिन्दू-जैन विद्वेष के दिनों में निकला जुलूस) लिखी सो पढ़े। यज्ञ, होम, साधु आदि के प्रति अभी खूब आस्था है। इसका परिणाम अच्छा-बुरा निश्चित है। जहां आस्था और श्रद्धा बिना विवेक के बिलकुल अंधी है, वहां तो भोले-भाले लोग बहुत ठगाते हैं। लेकिन श्रद्धा यदि विवेक को लिए हुए हो तो बहुत अच्छी भी है।

यज्ञ में किसी तरह की गड़बड़ी नहीं हुई, सारा काम शांत वातावरण में हुआ, यह जानकर प्रसन्नता हुई। जैन सम्प्रदाय के कुछ लोग यज्ञ में शरीक होने को आये भी थे क्या? वैष्णव सम्प्रदाय के लोग आचार्य श्री (तुलसी) के प्रवचन में अथवा उन लोगों के और किसी कार्यक्रम में शरीक हुए या नहीं? जैन साधु-साध्वी भिक्षाटन के लिए अप्पन लोगों के घर में आते हैं या नहीं?

अग्नि परीक्षा (आचार्य तुलसी की विवादास्पद पुस्तक) के आंदोलन से पहले जैसा स्नेहिल वातावरण था वैसा हुआ पार पड़ा या नहीं, लिखना।

आपका,
भागीरथ कानोड़िया

(२)

कलकत्ता
१६-१२-७२

प्रिय श्री गोविन्द जी,

आपका पत्र मिला। जिस कानोड़ से मेरे पुरखे उठकर आये थे वह कानोड़ पंजाब में था, अब हरियाणा में है। राजस्थान में भी दो कानोड़ हैं तो सही—एक

जैसलमेर जिले में और एक उदयपुर जिले में, लेकिन हमलोग वहां से उठकर आये हुए नहीं हैं।

आपने जो यात्रा-विवरण भेजा वह भूगोल से मेल खाता है क्या ?

आचार्य तुलसीजी वाले मामले (आचार्य तुलसी की अग्नि-परीक्षा सम्बन्धी पुस्तक पर उठे विवाद का मामला) को अब भुला देना चाहिए। भला-बुरा जो होना था हो गया। किसी को दोष देना व्यर्थ है। दोष तो आदमी देखे तो अपने में ही भरे पड़े हैं। बाहर ढूंढ़ने की क्या जरूरत है ?

बुरा जो ढूंढ़न मैं चला,
तो बुरा न मिलिया कोय,
जो दिल ढूंढू आपणा
तो मुझसा बुरा न कोय।

आपका,
भागीरथ कानोड़िया

(३)

कलकत्ता
१८-१२-७२

प्रिय गोविन्द जी,

वियोगी हरिजी यहां आये हुए हैं। उनका कहना है कि मैंने अपने कहानी-संग्रह में राजा टोडरमल और तुलसीदासजी का जो सम्बन्ध जोड़ा है, वह गलत है। तुलसीदासजी के साथ जिन टोडरमल का सम्बन्ध था वे दूसरे टोडरमल थे। बनारस के पास के ही रहने वाले थे। उनके कुटुम्ब में हिस्से-पांती को लेकर कुछ झगड़ा हो गया था, उसकी पंचायती तुलसीदासजी ने की थी। उस पंचनामे की नकल उपलब्ध है। अगर ऐसा है तो मुझे वह कहानी फिर से शुद्ध करके लिखनी होगी। आप इस विषय में कुछ प्रकाश डाल सकते हैं क्या ? कोई खास जल्दी नहीं है। आवश्यकतानुसार पुराने ग्रंथ देख कर लिख दें। मैं २-३ दिन में किशनगढ़ जा रहा हूं। पत्रोत्तर वहीं दें।

मैं भी आइने-अकबरी में देखूंगा। देखें, उससे कुछ पता लग सकता है क्या ?

आपका,
भागीरथ कानोड़िया

(४)

कलकत्ता
३-४-१९७३

प्रिय श्री गोविन्द जी,

आपका १ ता० का पत्र मिला। कथा-लोक का अंक मेरे पास नहीं पहुंचा है। पहुंचने से लिखूंगा।

आपने चूरू में होने वाले यज्ञ के समाचार लिखे सो ठीक किन्तु काल की इस विभीषिका का समय यज्ञ के अनुकूल नहीं है। यों हर आदमी हर काम अपनी रुचि के अनुकूल करता है, अपना कुछ कहने का हक नहीं, लेकिन मुझे जैसा लगा वैसा आपको लिख दिया।

राजू (श्री गोविन्द अग्रवाल के पुत्र) की बाबत तथा और समाचारों का पत्र कल-परसों दिया ही था। पहुंचा होगा।

आपका,
भागीरथ कानोड़िया

(५)

कलकत्ता
१४-६-७४

प्रिय श्री गोविन्द जी,

आपका ७ तारीख का पत्र मिला। चौपड़ में मैंने ८४ ढाणे दरअसल लिखे तो भूल से थे लेकिन खैंच-तान कर इसकी मिसल लाख चौरासी योनि से बैठानी हो तो यों बैठ सकती है कि हर ढाणे में २-२ चिक्खे होते हैं जहां पर स्यार मरती नहीं और हरेक ढाणे का पहिला घर जन्म स्थान है पहिली योनि (जूण) का, इसलिए ८ और ४ घर नहीं गिनें तो ८४ घर ही रह जाते हैं। लेकिन यह सब कल्पना तो आपका पत्र आने की बाद की है। असल बात तो यह है कि मैंने गिनती में भूल की थी। फिर भी आपकी तरह ध्यानपूर्वक पढ़ने वाले पाठक कितने होंगे।

शतरंज के खेल का आविष्कार भाष्कराचार्य जी ने अपनी लड़की लीलावती का मन बहलाने के लिए संभवतः ११ वीं शताब्दी में किया था, जिसको विवाह के तुरन्त बाद दुःख पड़ गया था। वे बहुत बड़े ज्योतिषी और गणितज्ञ थे। लीलावती नामक गणित के ग्रंथ की रचना उन्होंने की थी। कहते हैं होते-होते अकबर के समय तक इसका लोप हो चला था। अकबर-बीरबल के नाम पर अनेक काल्पनिक किस्से जुड़े हुए हैं। हो सकता है कि उनमें से एक किस्सा यह भी हो।

टोडरमल के जन्म स्थान के बारे में आपने जानकारी दी तथा उनके सात हजारी मनसबदारी होने की बात लिखी, इससे मेरी जानकारी बढ़ी। आपके पत्र प्रायः ज्ञानवर्धक होते हैं। समय-समय पर आपके पत्र आते रहें तो जानकारी बढ़ती रहे।

शतरंज का नाम प्रारम्भ में चतुरंग था बाद में सम्भवतः घिसते-पिटते शतरंज नाम हो गया।

आपका,
भागीरथ कानोड़िया

(६)

कलकत्ता
२६-६-७४

प्रिय श्री गोविन्दजी,

आपका १७ तारीख का पत्र समय पर मिल गया था। धन्यवाद।

इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका के अनुसार शतरंज की शुरुआत छठी शताब्दी ही है और यहां से यह खेल फारस गया था, यह जिक्र भी उसमें है। लेकिन मालूम होता है कि इसमें बदलाव होता रहा है। मुझे खेतड़ी में रामकृष्ण मिशन के प्रधान सुखदानन्दजी महराज ने बतलाया था कि इसका आविष्कार भास्कराचार्य ने अपनी बेटी लीलावती के मन-बहलाव के लिए किया था। मैंने भास्कराचार्यजी के बारे में एक पुस्तक मंगा कर भी पढ़ी लेकिन उसमें मुझे शतरंज का कोई जिक्र नहीं मिला। भास्कराचार्यजी द्वारा लिखित जिन ग्रन्थों का जिक्र आप करते हैं उनका उस पुस्तक में भी जिक्र है। हो सकता है भास्कराचार्यजी ने इसको आजका रूप दिया हो। अकबर-बीरबल के नाम पर अनेक कल्पित किस्से चलते हैं इसलिए किसी मनचले ने इस किस्से को भी जोड़ दिया और मैंने जैसा सुना था वैसा ही कहानी का रूप देकर लिख दिया।

पहिले इसमें चार आदमी एक साथ खेलते थे, गोटियां भी चार रंग की होती थीं। इनसाइक्लीपीडिया ब्रिटैनिका में भी इसका पुराना नाम चतुरंग ही लिखा है।

टोडरमल के गीत की एक कड़ी कहते हैं यों है—जीत्यो म्हारी केसरियो बनड़ो टोडरमलजी कै पाण।

प्रेम और राजू के बारे में अभी कुछ भी नहीं हुआ? दोनों को कितना-कितना वेतन मिलता है? प्राविडेंट फंड तथा बोनस-छुट्टी आदि की क्या व्यवस्था है, लिखना। खाना खरचा तथा दूसरा खरचा उन लोगों का वहां पर क्या आ जाता है, यह भी लिखना।

अगस्त में मैं सम्भवतः राजस्थान जाऊंगा। उस वक्त १-२ दिन आपको समय हो तो आपके साथ मुकुन्दगढ़ में रहना चाहूंगा।

आशा है आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा।

आपका,
भागीरथ कानोड़िया

(७)

११-२-१९७८

प्रिय श्री गोविन्दजी,

आपका ९ तारीख का पत्र मिला। कल एक पत्र आपको लिखा था वह मिला होगा।

आप १५ तारीख को सीकर आ जायें। मैं आपको वहां मिल जाऊंगा। दो-तीन घण्टा अप्पन साथ रह लेंगे, काफी है। मैं कल्याण आरोग्य सदन के सामने वाले बाग में स्थित अतिथि-गृह में मिलूंगा।

आपने 'इकलहट्टी बाणिये...' वाली कहावत का तीसरा चरण पूछा सो मेरी तो यह कहावत सुनी हुई भी नहीं है।

आपने १८८० के कागजों में ब्याज की दर पौने आठ आना लिखी सो पिछले वर्षों तक बम्बई में दर पौने आठ आना ही थी और कलकत्ता में नौ आनां। ब्याज पौने आठ आना ही क्यों था और पूरे आठ आना क्यों नहीं, इसका कोई कारण मेरी जानकारी में नहीं है।

एक-दो कहावतें आपको नीचे लिखता हूं। ये कहावतों में आती हों और पहले लिखी हुई नहीं हों तो आप जोड़ सकते हैं :

१—आयो ब्याज कमाण नैं, चाल्यो मूल गंवाय।
२—बो' रो ब्याज भी ले, बेगार भी ले, गरज बधाऊ में करावै।
३—स्यामीजी हरजस कोनी गावो, कै रोणे से फुरसत मिलै जद ना।

नीचे लिखी कहावत हालांकि राजस्थानी बोली में तो नहीं है, लेकिन अपनी तरफ प्रचलित जरूर है। आपको शामिल करने लायक लगे तो देख लीजियेगा :

हिम्मते मर्दां मददे खुदा, बादशाह की बेटी, फकीर से निकाह।

नीचे लिखा दोहा कहावती दोहों में आता है क्या ?

सिंह केलि, सायर बचन, केल फलै इक बार।
तिरिया तेल हमीर हठ, चढ़ै न दूजी बार॥

कुछ कहावतें और हैं :—

(१) न्याऊ दिन आवै जद एक कानी से कोनी आवै।
(२) न्याऊ दिन आवै जिका कोई नैं पूछकर कोनी आवै।
(३) गोबर को घोड़ो काठ की तलवार।
(४) धरती पर जाजम कोनी बिछ, पग बलै तो जूती पैर ले।

आपका
भागीरथ कानोड़िया

(८)

कलकत्ता
२५-७-७८

प्रिय श्री गोविन्दजी,

आपका पत्र २२ तारीख को मिला। इस साल सचमुच ही राजस्थान में अति वृष्टि हुई और अत्यधिक मात्रा में हुई और सारे ही जिलों में हुई। यातायात,

डाक-तार सभी गड़बड़ा गये । फसल में भी काफी नुकसान हुआ, लेकिन दैव गति के आगे कोई क्या करे ?

आपने जो कहावत लिखी वह हमारी तरफ "गुड़ सा गोविन्द होगा" (के रूप में) प्रचलित है। गुड़ अपने यहां सर्वोपरि माना गया है। इसका मतलब यह हुआ कि आज तो गोविन्द यानी भगवान की इतनी कृपा हो गयी कि वह गुड़ जितना मीठा हो गया और हमें निहाल कर दिया। गुड़ के बारे में एक कहावत भी है "राजा को के गुड़का ई करा ले।" इसके पीछे एक कहानी है जो शायद आपकी सुनी हुई हो। कहानी यों है, एक राजा घोड़े पर चढ़ कर जा रहा था। घोड़े के पागड़े (रकाव) सोने के थे। दो औरतें जा रही थीं। एक ने कहा: देख, देख राजा के सोनैं का पागड़ा। दूसरी तत्काल बोली "राजा को के गुड़का ई करा ले" (अर्थात् इनके तो गुड़ के पागड़े हों तो भी थोड़े हैं। उसकी दृष्टि में गुड़ जैसी दुर्लभ वस्तु कोई नहीं थी: राजस्थानी कहावत कोश: पृष्ठ ३८३)। आपकी लिखी हुई कहावत ही मानें तो यह अर्थ बैठेगा कि गुणों का विकास होते-होते मनुष्य नर से नारायण हो गया।

आशा है यह आपके लिए सन्तोषकारी होगा।

आपका,

भागीरथ कानोड़िया

(९)

३-८-७८

प्रिय श्री गोविन्दजी,

आपका पत्र ३१ तारीख का मिला। "घी बेच कर......" का अर्थ है :

एक स्त्री थी। वह मिठाई बनाना चाहती थी। घी तो उसके पास जरूरत से अधिक था और चीनी थी ही नहीं। इसलिए वह थोड़ा सा घी अपनी हांडी में से निकाल कर दुकानदार के पास गई और दुकानदार को वह घी देकर बदले में चीनी चाही। दुकानदार ने घी के दाम बाजार भाव से कम पकड़े और चीनी के बाजार भाव से अधिक। एक दूसरा आदमी वहां बैठा था और यह सब देख रहा था। वह स्त्री खांड लेकर जाने लगी तब उस आदमी ने ऐसा कहा।

वर्षा के लिए सीकर और मुकुन्दगढ़ से भी ऐसे ही समाचार आ रहे हैं। प्रकृति की प्रतिकूलता के सामने किसी का वश नहीं। प्रकृति तो भगवान का ही दूसरा नाम है उसके सामने तो वश ही किसका ? अगर राजा ही किसी को दण्डित करे तो वश नहीं चलता।

राजा डंडे की तनैं रोवै किण ढिग जाय
बाड़ लगाई खेत नै बाड़ खेत न खाय।

आपका

भागीरथ कानोड़िया

१९-११-७८

प्रिय श्री गोविन्द जी,

आपका पत्र १४ तारीख का मिला। कलकत्ता आने के बाद मुझे एक दफे दिल्ली भी जाना पड़ गया था। कुछ दूसरा भी झंझट भी रहा इसलिए आपको पत्र नहीं लिख सका। आपका दीवाली का पत्र तथा एक पत्र और मिल गया था।

कहावत कोश के बारे में समाचार लिखे सो ठीक। आपकी समझ में अगले दो महीनों में यह काम पूरा हो जायेगा क्या ?

मथुरा प्रिंटिंग वालों के बारे में लिखा सो ठीक लेकिन झूठ का ठेका प्रेस वालों ने ही ले रखा है ऐसी बात नहीं है। तुलसीदासजी ने कलियुग के वर्णन में लिखा है—

झूठ ही लेना-झूठ ही देना
झूठ ही भोजन-झूठ चबेना।

"जुग टूट्यां स्यार मरै" का अर्थ है कि चोपड़ में एक ढ़ाणे में दो स्यार रहती है तो चोपड़ के खेल के धारे में उन्हें कोई नहीं मार सकता।

दो स्यार को जुग कहते हैं। ज्यों ही खिलाड़ी को उन दो स्यारों में (से) एक को चलने की जरूरत पड़ती है और वह अपनी आवश्यकतानुसार एक स्यार की चाल आगे बढ़ा देता है त्यों ही वे स्यार मरणशील हो जाती है, (अर्थात् संगठन टूटने से ही नाश होता है : राजस्थानी कहावत कोश, पृष्ठ २२४)।

आपका,
भागीरथ कानोड़िया

श्री तुलसीदास कानोड़िया के नाम

मुकुन्दगढ़
२३-९-७८

चि० तुलसीदास, (द्वितीय पुत्र)

चिट्ठी तुम्हारी आज मिली। एक पत्र मैंने तुम्हें कल दिया था पहुंचा होगा।

मैं कलकत्ते की अपेक्षा यहां काफी अधिक व्यस्त रहता हूं। मन लगा हुआ है। स्वास्थ्य भी ठीक रहता है।

कुमुदनी खिचड़ी देने वाली है, वह केवल चावल मूंग की सीधी-सादी खिचड़ी तो नहीं देगी न ? मेवे की खिचड़ी और उस पर हीरे-मोती का चूरा बुरकाई हुई खिचड़ी हो तो हमलोग आने का मन कर सकते हैं। सो उससे यह कन्फर्म करवा देना।

मैं २९ ता० तक तो यहां हूं उसके बाद किशनगढ़ जाने की बात सोच रहा हूं। तुम्हारा टेलीफोन आज आया लेकिन स्पष्ट बात नहीं हो पाई। फिर भी जितनी भी हुई उससे संतोष मान लेता हूं।

कल भंवरमलजी सिंघी का एक पत्र भटनागरजी के पास आया था। कॉलेज भवन पर ७ लाख रुपया खरच करने की बात लिखी थी। २२००० फुट का काम है। ४० रु० खरचा आयेगा। इससे कम में मेरी समझ में पार नहीं पड़ेगा। करीब इतना सा लग जायेगा इसलिए सात लाख रुपये में काम पार नहीं पड़ेगा। इसके अलावा चहारदीवारी के रुपये अलग लगेंगे। फर्नीचर सारा नया बनवाना पड़ेगा क्योंकि मौजूदा फर्नीचर काफी पुराना हो गया है। यह हाई स्कूल के काम आ जायगा। कुल ११ लाख का खरचा मान कर चलना चाहिए। इसके अलावा ३ लाख रुपये छात्रावास तथा क्वार्टर्स के अलग जिसमें २ लाख सरकार से मिल जायेंगे।

इस साल करीब २००-२५० लड़कों को ऐडमिशन के लिए इनकार करना पड़ा है। नवलगढ़ में भी ऐडमिशन के लिए बहुत मारा-मारी चल रही है। मेरी समझ में कॉलेज की नई बिल्डिंग बनने पर छात्रों की संख्या १००० की पहिली साल ही हो जायगी। निर्णय जल्दी ले लो तथा काम जल्दी शुरू कर दो तो काम आगे बढ़ाने में मेरे से बने जितनी मदद मैं भी कर सकता हूं।

कल ब्रांच स्कूल के सारे टीचर इकट्ठे होकर आये थे। उनका कहना है कि आपको सरकार से ग्रांट के रुपये कम मिले या नहीं मिले तो उसका हम क्या करें। हमें हमारी पे मिलनी चाहिए। उनकी मांग वाजिब है इसलिए रुपये यहां जल्दी भिजवा देना। इस पत्र के समाचार तुम्हें आवश्यकता लगे तो बासु को भी बता देना।

स्नेही
काकोजी

श्री आत्माराम व विमला कानोड़िया के नाम

Grosvenor House
Park Lane, London W.
२१-८-५६

चि० आत्माराम, विमला, गुड्डी, पुचकी (तृतीय पुत्र, पुत्रवधू और पौत्रियां)

तुम लोगों को पत्र दिया उसी दिन कलकत्ते भी पत्र दिया था उनका तो उत्तर आ भी चुका है। शायद एक दो दिन में तुम्हारा भी उत्तर आवे।

लंदन में हम लोगों का मन लगा हुआ है। खाने-पीने की किसी तरह की दिक्कत नहीं है। मौसम बहुत अच्छा है, सरदी ज्यादा नहीं है। यहां पर देखने-भालने के लिए बहुत जगहें हैं। दुकानें बहुत बड़ी-बड़ी हैं। ज्यों-ज्यों खिलौने तथा दूसरी छोटी चीजें दुकानों में देखने में आती है त्यों-त्यों चाची (भागीरथजी की पत्नी गंगा देवी, जिन्हें पुत्र-पुत्रियां चाची ही कहते हैं) तो गुड्डी, पुचकी का नाम याद करती रहती है, खासकर पुचकी का तथा तुलसीदास वाले छोटे गीगे (बच्चे) का। बुरा मत मानना यों तुम्हें भी कभी-कभी तो याद करती है लेकिन बच्चों जितना नहीं।

यहां पर हमलोगों ने विंडसर कैसल देखा, मैडम टुसाड देखा, चिड़ियाखाना देखा। मैडम टुसाड के वहां मोम के बनाये हुए पुतले हैं जितने बादशाह, प्रधानमंत्री, बड़े लेखक, बड़े कवि या राजनीतिज्ञ हुए हैं उन सब के मोम के पुतले बने हुए हैं केवल इंगलैंड के ही नहीं लेकिन दूसरे देशों के भी। ऐसे पुतले बने हैं कि देखने से ऐसा लगता है कि सचमुच में ही वही आदमी जीता-जागता खड़ा है। गांधीजी और जवाहरलाल को भी स्थान मिला हुआ है। विंडसर कैसल एक बहुत पुराना और बड़ा किला है। वहां गिरजाघर भी बहुत सुन्दर है। रानी के रहने का स्थान है जहां रानी बीच-बीच में जाकर रहती है। किला बहुत बड़ा है। ऐयाशी का सामान भी वहां बहुत है। लन्दन में पार्क और बगीचे और Squares शहर भर में बहुत हैं जिनमें कई तो बहुत बड़े हैं और कई छोटे। इतनी बड़ी-बड़ी इमारतें और संग्रह तथा ऐशोआराम का सामान उस जमाने का बना हुआ है जबकि ब्रिटिश साम्राज्य में सूरज अस्त नहीं होता था। लेकिन अब वह जमाना नहीं रहा। सारे ही देश अपने-अपने घर के मालिक बन गये हैं। एक पर दूसरा राज्य करने का जमाना खत्म होता जा रहा है। नीचे के तबके के लोग ऊपर उठ रहे हैं ऊपर के नीचे आ रहे हैं। गरीब और अमीर का भेद कम होता जा रहा है। उस जमाने में चारों ओर का धन सिमट-सिमट कर विलायत चला आ रहा था और उसके फलस्वरूप यहां का यह वैभव बना था। अब तो पुरानी चीजों का (रख-रखाव) भी मुश्किल होता जा रहा है। ब्रिटिश साम्राज्य का सूरज तेजी से अस्ताचल की ओर जा रहा है।

मकान यहां पर बहुत ऊंचे नहीं हैं। सफाई अच्छी है। लोग बहुत सभ्य, मिलनसार और नम्र हैं। थैंक यू, सारी, एक्सेलेंट, फाइन आदि शब्द ऐसे हैं, जो हर आदमी की जबान पर रहते हैं। टेट गैलरी तथा नेशनल आर्ट गैलरी आज देखने जाऊंगा। कहते हैं वहां एक-एक तस्वीर ५।५ ७।७ लाख रुपये तक की है। अमेरिका में जो धन-दौलत कल-कारखाने और ऊंची-बड़ी इमारतें हैं उनके मुकाबले में तो यहां कुछ भी नहीं है लेकिन फिर भी बहुत है।

सारे इंगलैण्ड में नार्थ आयरलैंड तथा स्काटलैण्ड मिलाकर कुल पांचेक करोड़ की आबादी है। उसमें से १ करोड़ आदमी अकेले लन्दन शहर में रहते हैं याने कुल मुल्क की पञ्चमांश आबादी। सारे इंगलैण्ड में आज मुश्किल से ५०० आदमी ऐसे बचे हैं जिनकी आय सालाना ५००० (पौ०) या इससे अधिक है। धीरे धीरे भागवानी-नवाबी खत्म होती जा रही है। गरीबों की गरीबी भी खतम हो रही है। नौकर मुश्किल से मिलते हैं। दुकानों में साग, फल तथा और कुछ भी चीजें खरीदतें हैं तो बोझा खुद ही ढोना पड़ता है। कुली नाम की कोई चीज यहां देखने में नहीं आई। यहां सब लोग अपना काम आप ही करते हैं नवाबी नहीं करते। गाड़ी ज्यादातर लोग अपनी आप ही चलाते हैं। खाने पीने के लिये यहां पर छोटे-छोटे होटल और रेस्तरां बहुत हैं। हिन्दुस्तानी रेस्तरां भी बहुत हैं जहां फलके, पूड़ी, पापड़ अचार, हर तरह के साग, पोदीने की चटनी आदि सब चीज जो भी तुम चाहो मिलता है। विद्यार्थीगण ज्यादातर गृहस्थों के यहां रहते हैं। गृहस्थी ऐसे कई हैं जो पेयिंग गेस्ट रखते हैं। करीब चार सौ रुपये महीने में एक विद्यार्थी रह सकता है।

दूध यहां बहुत सस्ता है। अच्छा शुद्ध दूध ताजा ७ पेनी per pint यानी दस छटांक के छः आने से कुछ कम ही लगते हैं जिसमें घर बैठे बोतल पहुंचा जाता है।

पत्र लिखते-लिखते हाथ दुखने लग गया है और अब बाहर भी जाना है इसलिए यह पत्र यहीं खत्म करता हूं। फुरसत मिलने से फिर लिखूंगा। तुम्हें पत्र दिलचस्प लगे तो मुझे लिखना। अश्विनी को भी यही पत्र लिखना चाहता था लेकिन तुम इतना काम तो करना कि मेरी यह मेहनत बचा देना। पत्र पढ़कर गुड्डी वगैरह को पढ़ाकर अश्विनी को खास देना। वह भी इसे ही पढ़ लेगा। सत्यनारायण और निर्मल (सत्यनारायण झुनझुनवाला तथा निर्मल जैन बुरहानपुर ताप्ती मिल में तब काम करते थे) को भी यह पत्र भले ही पढ़ा देना जिससे कि उन लोगों को यहां का थोड़ा-बहुत अंदाज हो जायेगा। तुमलोगों में कोई आदमी अथवा अश्विनी, दीनानाथ, सावित्री को भी किसी को भी यह पत्र पसन्द आवे तो मुझे लिखना, दूसरा पत्र यहां के हालचालों का और लिखूंगा।

— काकोजी

श्रीमती सावित्री खेमका के नाम

१०-७-७१

सावित्री बाई (ज्येष्ठ पुत्री),

कलकत्त सेती चाल्यां आज पूरा पन्द्रह दिन होगा। उडीकतां-उडीकतां आखता होगा पण तेरी चिट्ठी आई नहीं। चाची कव ह या ई बात सावित्री भी कह न सक है। मैं कहो के या बात तो साची है। दोनों तरफ लेखो बराबर होयो कोई एक दूसर न ओलमूं नहीं दे न सक। मीनू की सगाई की ओर कोई बात चाली के? दिल्ली वालां को तो कुछ जवाब नहीं आयो होवगो—सगाई तो करनी ई है और कोई निगह करये। तेरो आन को मन होव तथा आसानी से आ सक तो भलांई दसेक दिन क तांई आ ज्याये। ५५० माइल को चक्कर है। अठे सेती चित्तौड़, उदयपुर, कांकरोली, चार भुजा, नाथद्वारा, रनकपुर, केसरिया तथा १-२ जगह और जाकर आने में एक हफ्ते का चक्कर समझो। इसके रास्ते में अजमेर के कुछ दर्शनीय स्थान तथा पुष्कर तीर्थ का भ्रमण हो जायगा लेकिन बिलकुल सुभीता हो तथा मन चलता हो तो ही आना। उर्मिला आने का कुछ-कुछ मन कर रही थी उसको भी मेरे और चाची के नाम से याद दिला देना। मैना को भी मैंने कहा था। उसे कह देना उसका राजस्थान घूमना मेरे बिना नहीं होगा। उसके लिये मेरा खास मन है कि वह कुछ दिन मेरे साथ रहे और अभी मौका भी है। तुम उसे इन्ड्यूस कर सको तो देखना।

तुम्हें एक कहानी लिखता हूं। मेरा खयाल है कि तुम्हें अच्छी तो लगेगी लेकिन डर यह लगता है कि तुम्हारे स्नेह के आंसू न चल जायें। एक बनिया था, साहूकारी

का काम था। धीरे-धीरे अच्छा धनी हो गया। उसके एक लड़का था और एक लड़की। लड़की भी अच्छे भागवान घर ब्याही थी। समय पाकर लड़के के मां-बाप की मृत्यु हो गई। लड़की के घर में व्यापार में नुकसान लग गया। फीकाई आ गई। लड़की अपने पति के साथ, भाई-भौजाई के पास गई अपने दुख के दिन काटने के लिये तथा सहायता मांगने के लिए जिससे कि वे फिर अपने पैर पर खड़े हो सकें। व्यापार-बट्टा कर सकें। भाई-भौजाई ने विशेष आवभगत नहीं की, रुखाई से ही पेश आये। बहिन ५-७ दिन रह कर फिरती चली गई। समय की बात बहिन का घर फिर से सजल हो गया। उनका व्यापार चल निकला। इधर भाई के घर में फीकाई आ गई। भाई अपनी पत्नी के साथ शरमाता-सकुचाता सा बहिन के घर गया। बहिन ने भाई को बहुत आदर से रखा, अपने पास से रुपये देकर भाई को कारबार कराके दिया, भाई भी अपने पांवों पर खड़ा हो गया। बहिन से विदा मांगने और आभार प्रकट करने गया तो बहिन गले लगा कर मिली। बहुत लाड़-चाव किया भौजाई का, लेकिन एक व्यंग कस दिया भाई को सावधान करने के लिये जिससे कि वह भविष्य में दुःख में पड़े हुये आदमी का आदर-सत्कार किया करे। बहिन ने कहा :

तिथि टूटे रे बीर, बार कदे नहीं टूटसी,
भाण बिराणी होय, बीरो बीरो ही रहे...,

भाई शर्मिन्दा हो गया। भाई बहिन को पराई मान सकता है लेकिन बहिन के लिये यह सम्भव नहीं कि वह भाई को पराया माने (यह कहानी 'बहता पानी निर्मला, तृतीय संस्करण में 'बहन के ममत्व' शीर्षक से है : पृष्ठ १८६-१८९)।

— काकोजी

पौत्री अमिषा के नाम

कलकत्ता
२३-२-७७

प्यारी बेटी अमिषाजी,

तुम्हारा बहुत सुन्दर कार्ड पर सुन्दर अक्षरों में लिखा हुआ प्यारा पत्र मिला। बहुत ही अच्छा लगा। मन बहुत ही प्रसन्न हुआ। बीच-बीच में लिखती रहा करो।

अब तुम किशनगढ़ कब जावोगी? तुम जावोगी तभी मैं भी जाऊंगा। तुम्हारा स्वास्थ्य एकदम ठीक रहता होगा। लिखाई-पढ़ाई में मन खूब लगता होगा तथा खेल कूद में भी। पार्क में घूमने के लिये रोज जाती हो न?

खुश रहना, बहुत-बहुत खुश, खूब खाना, खेलना और पढ़ना।

— काकोजी

पौत्री दिविता के नाम

किशनगढ़

२३-११-१९७७

बेटी दिविता,

तुम्हारा प्यारा-प्यारा पत्र २० तारीख का मिला। तुम बड़ी सयानी लड़की हो। तुम खूब मन लगा कर पढ़ रही हो यह बहुत अच्छी बात है। ऐसा ही करना चाहिए। अंशु (बड़े भाई) तो मास्टर को फांकी देता है।

तुम थोड़े दिन यहां क्यों नहीं आ जाती ? तुम्हारे आने से हमारा मन बहुत लगेगा। अपनी मां से कह दो मैं तो राजस्थान जाऊंगी, काकोजी ने मुझे बुलाया है। यहां आने पर तुम्हें बहुत अच्छी-अच्छी जगहें दिखला कर लाऊंगा, बहुत अच्छे-अच्छे खिलौने भी खेलने को दूंगा। पढ़ने के लिए तस्वीरोंवाली अच्छी-अच्छी किताबें भी मिलती हैं। किशनगढ़ कलकत्ते से बहुत बड़ा शहर है। कलकत्ता तो छोटा-सा है। जरूर चली आना। तुम्हारी याद रोज़ाना आती रहती है।

ढेर सारे प्यार के साथ,

तुम्हारा शुभेच्छु

काकोजी

—: ० :—

भागीरथजी का लेखन

भागीरथजी उस अर्थ में लेखक नहीं थे जिसमें हम किसी को लेखक मानते हैं। उन्होंने जो-कुछ लिखा, वह लेखक की हैसियत में नहीं लिखा। वह यह सोच भी नहीं सकते थे कि कोई उन्हें लेखक भी मान सकता है। अपने बारे में ज्यादा से ज्यादा उदार हो कर सोचने पर वह शायद इतना ही सोच पाते कि वह साहित्य, खासकर भक्ति-साहित्य व लोक-साहित्य के प्रेमी और साहित्यकारों के गुण-ग्राहक हैं।

जो व्यक्ति लेखक होता है वह कहीं यह मानता होता है कि वह स्रष्टा और रचयिता है; उसके पास कोई विशेष या अनूठी प्रतिभा है; और कोई ऐसा सत्य भी है जिसे दूसरों और दुनिया तक उसे पहुंचाना चाहिए। इस प्रकार लेखक होने के पीछे किसी न किसी रूप में अहं रहता ही है। भागीरथजी में यह लेखकीय अहं नहीं था। लेकिन उन्होंने जो लिखा वह 'स्वान्तः सुखाय' भी नहीं था क्योंकि उनके लिखने के पीछे दूसरों और दुनिया तक पहुंचने का निश्चय ही आग्रह था। यह आग्रह ही उन्हें लेखक के दरजे तक पहुंचा देता है। यदि किसी लेखक में स्रष्टा और रचयिता होने का अहं भाव तो हो लेकिन अपने सत्य और अपनी सम्वेदना को दूसरों और दुनिया तक पहुंचाने (कम्युनिकेट करने) का आग्रह न हो तो वह फिर लेखक तो नहीं ही हो सकता और तब उसके स्रष्टा और रचयिता होने का भी कोई अर्थ नहीं होगा। लेखक यदि अरण्य में रोता है तो वह अरण्य को सुनाने के लिए ही रोता है।

भागीरथजी को हम लेखक मानते हैं तो इसीलिए कि वह अपना सुख-दुख, अपनी सम्वेदना और अनुभूति व अनुभव से अर्जित ज्ञान हमारे साथ बांटने के लिए आग्रही हैं। शबरी भागीरथजी की एक परम प्रिय 'नायिका' है और उसी की तरह वह हमें बेर खिलाना चाहते हैं। 'बहता पानी निर्मला' की कई कहानियों में यह आग्रह इतना तीव्र है कि वह पाठक से रूबरू बतियाने लगते हैं। इस प्रकार की बातचीत हमें हिन्दी गद्य के विकास के उन दिनों की भी याद दिलाती है जब लिखने और बोलने की भाषाओं के बीच आज जितना व्यवधान नहीं था और लेखक महोदय को लिखते-लिखते पाठक महोदय से 'दो-चार हाथ' बातचीत करते रहने की तलब होती रहती थी।

'बहता पानी निर्मला' की कई कहानियों में भागीरथजी सीधे पाठकों से बातचीत करने लगते हैं और उन्हें बैठाकर' किसी पुरानी कथा से मिलती-जुलती या उसी प्रकार की कोई सम-सामयिक कथा सुनाने लगते हैं। कभी-कभी तो वह बरसों पुरानी किसी कहावत के साथ हाल के वर्षों की कोई

बात घुला-मिलाकर अद्भुत रस की सृष्टि करते हैं। 'बहता पानी निर्मला' की एक विशेषता यह भी है कि उसमें मानव जीवन के एक महत्वपूर्ण अंग भोजन की काफी चर्चा है। एक कहानी में खीर की 'महिमा का वर्णन करते-करते भागीरथजी रसगुल्ले और जलेबी के गुणों और उनके प्रेमियों का वर्णन करने लगते हैं। जलेबी के प्रेमियों में वह राजस्थान के एक भारत-विख्यात नशाबंदी-विरोधी नेता को गिनाते हैं, जो जलेबी को महारानी मानते-कहते हैं। इस नेता का वह उदाहरण इस तरह देते हैं कि जो लोग नेता को व्यक्तिगत रूप से जानते हैं वे तुरत समझ जाते हैं और आनन्दित होते हैं; और जो नहीं जानते वे अटकल लगाये बिना नहीं रह पाते। इस कहानी में खीर, रसगुल्ले और जलेबी को एक साथ मिलाकर तथा कहावत और सम-सामयिक उदाहरणों को फेंटकर भागीरथजी ने सचमुच ही एक अद्भुत रस की सृष्टि की है।

एक दूसरी कहानी में एक स्त्री के चटोरपन की चर्चा करते हुए भागीरथजी ने लिखा है कि उसे सुस्वादु व्यंजनों के 'गटके' आया करते थे। 'गटके' राजस्थानी बोली का शब्द है और इसका अर्थ होगा—स्वाद की याद में उठने वाली हूक। अब खड़ी बोली में 'गटके' की टक्कर का शब्द नहीं है। ऐसे राजस्थानी बोली के शब्दों के वहुत सुन्दर प्रयोग से भागीरथजी कहीं हमारी हिन्दी की अमित संभावनाओं को प्रकट करते हैं—बोलियों के कुबेर-खजाने से, वह अपने को किसी तरह के ह्रास की आशंका के विना कैसे निरन्तर समृद्ध करती रह सकती है।

भागीरथजी का गद्य हमारे जन-जीवन के सभी क्षेत्रों से खुराक हासिल करता चलता है। कहावतें, मुहावरे, दोहे-सोरठे, श्लोक-भजन आदि सब उसमें अपना रस उंडेलते रहते हैं। जब हम 'बहता पानी निर्मला' की कहानियां पढ़ते हैं तो उनके माध्यम से अपने लोक-जीवन, संस्कृति, नेगचारों और धार्मिक संस्कारों की दुनिया में स्वतः प्रवेश पा जाते हैं। औपनिवेशिक मानसिकता के चलते हिन्दी का तथाकथित आधुनिक लेखक जब इस दुनिया को त्याज्य मानकर एक स्रोतहीन नकली और अनुवाद की भाषा में लिखे जा रहा है तब भागीरथजी का गद्य पढ़ना ऐसा मालूम होता है कि बरसों होटल का खाना खाने के बाद हम घर का सुस्वादु भोजन कर रहे हैं।

यह स्वाभाविक ही है कि 'बहता पानी निर्मला' की ज्यादातर कहानियों में भागीरथजी की वही प्रेरणाएं दिखायी दें जो उनके जीवन की रही हैं। जब संतोष को 'परम सुख' वताती हुई उनकी कहानियां हम पढ़ते हैं तो यह याद आये बिना नहीं रहता कि मृत्यु शय्या पर लेटे हुए भागीरथजी ने ज्योतिपीठ के शंकराचार्य स्वामी श्रीस्वरूपानन्दजी के यह पूछने पर कि आपके मन में कोई इच्छा है क्या, तो क्षीण स्वर में कहा था "मुझे अपने जीवन से पूरा संतोष है। मैंने सदा संतोष को ही सुख मामा है।"

'बहता पानी निर्मला' की बहुतेरी कहानियां सेठों के बारे में और बनिया-बुद्धि के बारे में हैं। इन कहानियों में जब भागीरथजी किसी सेठ के दानी और उदार स्वभाव की चर्चा करते हैं तो लगता है कि प्रकारातंर से वह अपनी ही चर्चा कर रहे हैं; और जब वह किसी सेठ की बनिया-बुद्धि, कृपणता और ओछेपन की चर्चा करते हैं तो लगता है कि परिग्रह, लोभ और क्षुद्रता के प्रति उनकी वितृष्णा फूट कर निकल रही है।

भागीरथजी को भाई-बहन का प्रेम, बेटी की विदाई का प्रसंग और स्त्री का अपने पितृ गृह के प्रति मोह बहुत ज्यादा मोहता है। बातचीत और पत्रों में इन प्रसंगों की वह अक्सर चर्चा किया करते थे और तब रामायण की कोई न कोई चौथाई या कोई कहावत उद्धृत करते थे। एक बार १९७१ में वह अपनी एक पुत्र-वधू को बहुत आग्रह कर अपने दादा की १०० वर्ष पुरानी हवेली दिखाने ले गये। दिखाने के बाद उसे अन्त में छत पर ले गये और उसे कहा : देखो, वह चूड़ी (पास का गांव) है। "नन्दू की मां (भागीरथजी की पहली पत्नी जो चूड़ी गांव की थीं) रोज छत पर आकर अठ सूं चूड़ी न देख्या करती।" यह कहते हुए उनकी आंखें नम हो गयीं। प्यारी बेटी 'सावित्री बाई' को लिखे गये उनके दो पत्र इस ग्रन्थ में छपे हैं। दोनों में ही भाई-बहन के प्रेम की मार्मिक चर्चा है। 'बहता पानी निर्मला' की कहानियों में भाई-बहन के प्रेम और स्त्री के अपने पितृ गृह के प्रति मोह के प्रसंगों को उन्होंने अपनी करुणा से सिंचित कर लिखा है। इन कारुणिक प्रसंगों को पढ़ते हुए पाठक का मन एक ऐसी निश्छल करुणा से लबालब हो जाता है, जो कहीं उसका परिष्कार करती है; उसमें दूसरों का दुख-दर्द समझने की क्षमता भी बढ़ाती है।

"बहता पानी निर्मला" को कहानियों में भागीरथजी का भक्ति-साहित्य के प्रति लगाव बार-बार प्रकट होता है और वह उससे निरन्तर-उद्धरण देते रहते हैं। भक्त और भक्ति की महिमा का बखान करते वह कभी अघाते नहीं।

भागीरथजी ने 'बहता पानी निर्मला' की कहानियां अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में ७० की उम्र पार करने के बाद लिखीं। इसके पहले उन्होंने छिटपुट ही लेख लिखे। इन छिटपुट लेखों की कोई क़तरन उन्होंने अपने पास नहीं रखी। सामयिक समस्याओं पर लिखे गये उनके लेख विस्मृति के गर्भ में विलीन हो गये हैं। उनके चार लेखों का याददाश्त के सहारे उद्धार किया जा सका है; चारों ही इस ग्रन्थ में दिये जा रहे हैं। इनमें दो तो राजस्थान के अकाल के बारे में है। इन लेखों में अकाल पीड़ितों के कष्ट की मार्मिक स्थिति का वर्णन है और उससे अपने को जोड़ने का प्रबल आग्रह है। आज से ३२ साल पहले भागीरथजी एक बार नैनीताल गये थे तो उन्होंने 'नया समाज' के सम्पादक स्व० श्री मोहन

सिंह सेंगर के अनुरोध पर नैनीताल के बारे में एक लेख लिखा था। उस लेख में अपने को परोपजीवी लोगों में शुमार करते हुए उन्होंने लिखा : "थोड़े से परोपजीवी लोग, जिन्होंने अपना एक गुट बनाकर सारी पृथ्वी पर अपना माया जाल बिछा लिया है, सारे पदार्थों का उपभोग कर रहे हैं। हमलोग इसी श्रेणी के हैं जिन्हें शारीरिक परिश्रम बिलकुल नहीं करना पड़ता और फिर भी सारी सुख-सुविधाओं का उपभोग करते हैं।" आत्म-निरीक्षण, सम्वेदना और विनम्रता उनके जीवन में इस तरह घुली मिली थीं कि उनके पग-पग पर दर्शन होते हैं। यह लिखते-लिखते कोई बता गया कि १९७६ में कल्याण आरोग्य सदन की ओर से सर्जिकल कैम्प लगाया गया था तो बम्बई के प्रसिद्ध डाक्टर पुरेन्दरे तथा अन्य बहुत से डाक्टर सीकर आये हुए थे। आरोग्य सदन के सभी अतिथि-गृह भर गये थे। ८० वर्ष की उम्र में भागीरथजी सारे वक्त काम कैम्प का करते रहते थे। दोपहर को धूप में किसी पेड़ के नीचे बैठे रहते क्योंकि यदि विश्राम करने अतिथि-गृह में जाते तो अतिथि-डाक्टरों के आराम में बाधा पड़ती। इस प्रकार का अपने को समेट कर दूसरों को खयाल रखना, हमारे समाज में अब एकदम दुर्लभ होता जा रहा है।

कल्याण आरोग्य सदन के उनके कार्य की चर्चा इस ग्रन्थ के बहुत सारे संस्मरणों में आयी है। भागीरथजी ने १९७१ में जब सदन का कार्य-भार सम्भाला तो उन्होंने सीकरवासियों को बुलाया और कहा "आपने यहां पीड़ितों की सेवा करने का अवसर देकर मुझे उपकृत किया है, इसके लिए मैं आप सब का आभारी हूं।' भागीरथजी का अकिंचन होने का यह भाव उनके लेखन में भी प्रकट होता है। उनके लेखन में कहीं भी बनावट नहीं (कहानियों को दिलचस्प बनाने के लिए उन्होंने उनमें बहुत सी चीजें उंडेली जरूर है पर वह कहीं भी ज्ञान-प्रदर्शन या आरोपण नहीं) है। लिखने की प्रक्रिया ही कुछ ऐसी है कि आदमी कहीं थोड़ा बन्नू और नाटकीय हुए बिना नहीं रह पाता। भागीरथजी अपने विनम्र और अकिंचन भाव के कारण इससे भी मुक्त हैं।

उनका लेखन उनकी निश्छलता और सम्वेदना के कारण ही हमें मोहता है और जब उसमें (जैसा कि कहानियों में) उनकी भक्ति और लोक-संस्कृति के प्रति आसक्ति मिल जाती है तो एकदम सोने में सुहागे वाली बात हो जाती है।

अकाल-पीड़ित राजस्थान

भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है। लेकिन आज तो सच्ची स्थिति यह है कि यहां पर बसनेवाले लोगों में काफी तादाद ऐसे लोगों की है, जिन्हें सदा भर पेट भोजन नहीं मिलता। सम्पूर्ण पोषण देनेवाला और सुरुचिपूर्ण भोजन तो यहां पर बहुत कम लोगों को ही नसीब होता है। इस तरह की हालत जिस देश में हो, उसके किसी भी हिस्से में जिस साल प्राकृतिक कोप के कारण विशेष रूप से अकाल पड़ जाय, उस साल वहां के निवासियों की दशा का सहसा दयनीय हो उठना स्वाभाविक है। इस साल (१९४८-४९) राजस्थान में ऐसा ही हुआ। एक तो यों ही गत तीन-चार साल से वहां लगातार पैदावार कम होती आ रही थी, फिर इस वर्ष तो वर्षा के नितान्त अभाव से कम-ज्यादा रूप में प्रायः सारे राजस्थान में अकाल पड़ गया। वहां के सरकारी आंकड़ों के अनुसार २६ जिलों में केवल ३ जिले—यानी कोटा, भरतपुर, गंगानगर ऐसे हैं, जिनकी हालत अच्छी है। बाकी २३ जिलों में अकाल की या तंगी की हालत घोषित की गई है। राजस्थान में भूमि का अभाव नहीं है; लेकिन उस भूमि में बहुत बड़ा भाग ऐसी जमीन का है, जो पथरीली, कंकरीली और रेतीली होने के कारण अधिक उपजाऊ नहीं है। राजस्थान के प्रायः सभी भागों में साल में एक ही फसल पैदा होती है और उसका आधार केवल मौसम की अनुकूलता-प्रतिकूलता पर निर्भर करता है। नहरों या कुओं की सिंचाई द्वारा बहुत कम खेती होती है।

इसी के अध्ययन और वहां चल रहे राजस्थान-अकाल-सेवा-समिति के सेवा-कार्य के निरीक्षण के लिए गत नवंबर मास में मैं और मारवाड़ी रिलीफ-सोसाइटी के प्रधानमंत्री राजस्थान गए। हमलोग कोटा, बूंदी, बारो होते हुए शाहाबाद-किशनगंज के जंगलों में गए, जहां करीब साठ हजार मवेशियों को लेकर तीन हजार आदमी गए हुए हैं। ये लोग ज्यादातर जोधपुर डिवीजन के उस हिस्से से आए हैं, जहां पर घास-चारे के अलावा पानी की खासतौर पर कमी है। इन लोगों को यहां जंगलों में पहुंचने के लिए करीब ५०० मील पैदल चलना पड़ा, जिसके परिणामस्वरूप गायें और मनुष्य दोनों ही बहुत थक गए। साथ ही काफी तादाद में गायों के खुर सूज भी गए। सारी सड़क पर जगह-जगह हमें एक-एक सौ या दो-दो सौ गायों और बैलों के ऐसे झुण्ड मिले, जिन्हें उनके मालिक एक गाड़ी में अपनी गृहस्थी का सारा सामान लादे हुए घास-चारे की तलाश में लिए जा रहे थे। जंगलों में पहुंचकर हमने गायों और उनके मालिकों को, जो जगह-जगह घास और लकड़ी की झोपड़ियां बनाकर रह रहे हैं, देखा। गायों में खुर और मुंह के रोग अधिक देखने में आए। रास्तों और जंगलों में जगह-जगह इक्की-दुक्की मरी हुई गायें भी दीख पड़ीं तथा ऐसी गायें भी थीं जिन्हें बेकार तथा असमर्थ पाकर उनके मालिक रास्ते में ही छोड़ गए थे और जो सिसक-सिसक कर अपनी

अन्तिम घड़ियां गिनती हुई दम तोड़ रही थीं। जंगलों में गायों के और मनुष्यों के इलाज के लिए सरकारी डाक्टर थे तो सही, लेकिन सवारी आदि के अभाव में उनके लिए सब जगह पहुंचना नामुमकिन था। लोगों ने दवा न मिलने की शिकायत की। सर्दी अधिक और कपड़ा कम होने से कई लोगों को बुखार और निमोनिया भी हो गया था।

समिति ने एक जीप और छः स्वयंसेवकों को वहां भेजा है, जिनके साथ पशुओं और मनुष्यों के लिए पर्याप्त मात्रा में दवाइयां है। ये लोग सारे जंगलों में घूम-घूम कर वहां गए हुए लोगों की तथा उनके पशु-धन की चिकित्सा और सेवा का प्रबन्ध करेंगे। शीत-निवारण के लिए उनके साथ पांच सौ रजाइयां भी भेज दी गई हैं, जो वहां पर ऐसे कुटुम्बों में एक-एक या दो-दो के हिसाब से दे दी जायेंगी, जिनके पास कपड़े का अभाव है। जो गाय और बैल वहां गए हैं, उनमें अधिकांश अच्छी नस्ल तथा कम आयु के हैं, क्योंकि गृहस्थ लोग अपने पशु-धन को, जो कि उनका एकमात्र सहारा है, बचाने की दृष्टि से ही वहां ले गए हैं और अपंग तथा बूढ़ी गायों को यों ही मरने देने के लिए घर पर ही छोड़ गए हैं। मेरा अन्दाज है कि इन गायों में कम-से-कम दस प्रतिशत तो मरेंगी ही। और दवा-पानी का समुचित प्रबन्ध अगर नहीं हुआ तो अधिक भी मर सकती हैं। चार-पांच प्रतिशत गायों की हालत इतनी कमजोर हो जायगी कि उनको उनके भाग्य के भरोसे वहीं छोड़ आना पड़ेगा; क्योंकि वे पांच सौ मील किसी तरह भी चल नहीं सकेंगी। समिति इस बात का भरसक प्रयत्न करेगी कि दवा आदि का प्रबन्ध पूर्णतया हो और दवा के अभाव में किसी मनुष्य या पशु को मरने न दिया जाय। यदि जरूरत हुई और साधन हुए, तो आगे चलकर कमजोर गायों को गवार और बांटा देने की व्यवस्था करने का भी विचार है।

रोटी और काम की तलाश

यहां से लौट कर हम लोग जयपुर, अजमेर, ब्यावर होते हुए पाली गए। ब्यावर के पास राजस्थान में भीम नाम का एक इलाका है। उस इलाके की अवस्था ज्यादा शोचनीय है। पाली में कुछ तालाबों की खुदाई और उनकी मरम्मत कराने तथा सस्ते घास-चारे का डिपो खोलने की मांग थी। तालाबों के काम को आरम्भ करने की समिति की ओर से मंजूरी दी गई तथा घास-चारे के लिए, जो कि मध्य-भारत और उत्तर-प्रदेश से मंगाया गया है, उसके पहुंचते ही डिपो खोलने का आश्वासन भी दिया गया। वहां से जोधपुर होते हुए हम लोग नागौर गए। रास्ते में दो जगहों पर, जहां कि सरकार की ओर से सड़क-मरम्मत का काम चल रहा था, करीब पांच-पांच सौ आदमियों के दो कैम्प देखे। उनकी दुःखद अवस्था का वर्णन करना मुश्किल है। मजदूरी की रेट सरकार की ओर से पुरुष को १२ आने, स्त्री को १० आने और बच्चे को (जो कि १२ वर्ष से ऊपर की अवस्था हो) ८ आने है। न पेट-भर अन्न उनको मिलता है और न उनके पास शीत-निवारण के लिए पूरे वस्त्र ही हैं। एक स्त्री ने

बताया कि उसके चार बच्चे हैं और चारों ही १२ वर्ष की अवस्था से कम उम्र के हैं। इसलिए उसे केवल १० आने पैसे में ही पांच पेट पालने पड़ते हैं। एक दूसरे लड़के नें बताया कि वह सड़क खोदने या और किसी भी किस्म की सख्त-से-सख्त मेहनत करने को तैयार है, लेकिन उम्र कम होने से उसे नाकाबिल समझा गया। लड़का हम लोगों से चिपट रहा था और चिल्ला-चिल्लाकर काम मांग रहा था। ११-१२ वर्ष का बच्चा सड़क खोदने और मिट्टी ढोने का काम मांगे और उसके बदले में रूखी-सूखी रोटी भी न मिले, यह कैसी स्थिति है।

२०-२५ कोस तक से गृहस्थ लोग मजदूरी की खोज में आते हैं। किसी को काम मिल जाता है और कोई निराश होकर वापस चला जाता है, क्योंकि मजदूरी की आवश्यकता कम है और मजदूरी चाहनेवालों की संख्या अधिक। उन दोनों स्थानों पर समिति की ओर से डेढ़-डेढ़ सौ रजाइयां देने का प्रवन्ध किया गया, ताकि भूख के साथ शीत तो इन्हें न सतावे। वीच-बीच में इन लोगों को समिति की ओर से अनाज या दाल आदि भी देने की व्यवस्था की गई है। इन दोनों ही स्थानों पर पड़े हुए मजदूरों में एक भी आदमी हमें ऐसा नहीं मिला, जिसने यहां आने के बाद रोटी के साथ दाल या तरकारी खाई हो। कहते थे—"तरकारी तो अमीरों के खाने की चीज है और दाल घर पर रहते हैं, तो कभी-कभी मिल जाती है। यहां तो रोटी के साथ किसी दिन नमक-मिर्च मिल जाता है, तो वह दिन हमलोग भाग्य का दिन मानते हैं। नहीं तो यों ही भूख और पानी के साथ रोटी निगल लेते हैं। पर वह भी पूरी कहां मिलती है?" स्वतंत्र भारत में यह स्थिति हमलोगों के लिए शर्म की बात है। यह कैसी स्थिति है और इस तरह कब तक चलेगा? आदमी काम करना चाहे और उसे काम न मिले, यह स्थिति सरकार और जनता दोनों के लिये ही अशोभनीय है। केवल अशोभनीय ही नहीं, भयावह भी है। यदि इस स्थिति में सुधार नहीं हुआ और लोग इसी तरह भूखे, नंगे, बेकार फिरते रहे, तो उन भूखों-नंगों की जमात को अपनी अपनी ओर आकर्षित कर लेना तथाकथित साम्यवादियों के लिए कठिन न होगा। जो लोग देश को हिंसात्मक प्रवृत्तियों से बचाना चाहते हैं, उनका यह पहला फर्ज होना चाहिए कि वे समाज में ऐसी स्थिति पैदा करने में अपने को प्राण-पण से लगावें कि जिसमें अधिक से अधिक लोगों को धंधा मिल सके तथा लोग भर पेट भोजन पा सकने के साथ-साथ पूरा कपड़ा तथा जिन्दा रहने के लिए अन्य आवश्यक सामग्री भी प्राप्त कर सकें।

नागौर, डीडवाना, लाड़नू, जसवन्तगढ़, रतनगढ़, सुजानगढ़, बीदासर, छापर, सरदार शहर और चूरू होते हुए हम लोग इनके रास्ते में पड़ने वाले गांवों की स्थिति देखते तथा लोगों से बात करके हालत की जानकारी करते हुए शेखावाटी गए। गांवों में प्रायः हर जगह कम या ज्यादा एक ही स्थिति है, एक ही समस्या है—यानी धन्धा-रोजगार नहीं है। बेकारी की खास शिकायत है। लोग-बाग काम की तलाश में काफी संख्या में बाहर चले गए हैं। लेकिन फिर भी बहुत लोग ऐसे हैं, जो किसी भी

तरह की मजदूरी चाहते हैं। सभी जगह हरिजनों की अवस्था अधिक शोचनीय है। जगह-जगह कुओं की मरम्मत करवाने तथा तालाब खुदवाने की आवश्यकता है, क्योंकि बहुत से ऐसे गांव है, जहां तालाब या कुआं एक ही है और उसके भी बेमरम्मत पड़े रहने के कारण वहां के लोगों को काफी कष्ट है। अगर इन कुओं-तालावों की मरम्मत का काम बड़े पैमाने पर किया जाय, तो एक तरफ लोगों को मजदूरी का जरिया हो जाय और दूसरी ओर कई वर्षों के लिए वहां पर मनुष्य और पशुओं के लिए पानी का भी सुभीता हो जाय। जगह-जगह छुटपुट चोरी तथा डाकों के मारे लोग परेशान थे। रास्ते में हमें कई गांव ऐसे मिले, जहां एक भी आदमी साक्षर नहीं है। ऐसे भी कई गांव मिले, जिनमें एक या दो आदमी साक्षर-मात्र है। गांवों के बच्चों से बात करने पर हमें पता चला कि कस्बों से दूर बसनेवाले गांवों के बच्चों ने बादाम, किशमिश, काजू आदि का न तो कभी नाम सुना है और न उनका स्वाद ही जानते हैं। जब उन्हें ये चीजें दिखाकर पूछा गया, तो वे नहीं बता सके कि ये क्या चीजें हैं और किस काम आती हैं। जिन कस्बों में हम गए, उनमें कई ऐसे हैं, जहां कई पैसे वाले लोग बसते हैं। बड़ी-बड़ी हवेलियां, मोहरे और कोठियां हैं लेकिन सफाई की हालत यह हैं गलियों में चलते वक्त गन्दगी से बचने के लिए सावधान रहकर चलना पड़ता है।

गोधन की रक्षा की व्यवस्था

गांवों में सांड़ है, उन्हें बचाने की खासतौर पर जरूरत है क्योंकि अधिकांश गांवों में एक ही सांड़ है और यदि वह मर गया, तो गांववालों के लिए मुसीबत हो जायेगी। वे दूसरा सांड़ खरीदने में कठिनाई अनुभव करेंगे। साड़ों की चराई गांव में आम तौर पर प्रत्येक घर से कुछ घास और कुछ गवार लेकर बस्ती की ओर से की जाती है। लेकिन इस साल गांवों की ऐसी हालत नहीं है कि वे सांड़ों के लिए पूरी खुराक दे सकें। समिति की ओर से करीब ३० गांवों में प्रति सांड़ १५०/- रुपए की गवार दिये जाने की मंजूरी अभी तक दी गई है। तालाव खुदवाई और कुओं की मरम्मत के लिए अब तक करीब साठ हजार रुपयों की मंजूरी दी गई है। लेकिन मांग बहुत ज्यादा है। एक सुजानगढ़-तहसील से ही करीब एक लाख की मांग है। पर समिति के पास जब तक चन्दे के और रुपए नहीं आते, तब तक और खर्च की मंजूरी देना सम्भव नहीं है। समिति ने अच्छी नस्ल की गायों और साड़ों को खास तौर पर बचाने के लिए यह तजवीज भी सोची है कि जगह-जगह एक सौ से दो सौ अच्छी गायों के अलग डिपो खोले जायें। वहां साधारण कीमत पर गायें व कम उम्र के बछड़े और बाछियां खरीद कर रखी जायं और उन्हें अच्छी तरह घास-चारा आदि दिया जाय। अगले साल उन्हें कीमत लेकर किसानों में बांट दिया जाय। दो हजार से तीन हजार तक इस तरह की गायें रखने का विचार है। खर्च के लिए डेढ़ लाख रुपए की मंजूरी समिति ने दी है। डेढ़ लाख रुपया सरकार की ओर से मिलने की बात है। जहां-जहां घास-चारे की कमी है, वहां के लिए समिति ने एक लाख मन कड़बी मध्य-प्रदेश तथा उत्तर-प्रदेश से खरीदी है। घास-चारे का संकट दो तीन महीने बाद ज्यादा मालूम

पड़ेगा; क्योंकि अभी तो स्थानीय पैदावार का थोड़ा-बहुत माल है, जिसके सहारे लोगों का काम चल रहा है। किशनगढ़ में, जहां घास-चारे की अधिक महंगाई है, समिति ने घास पहुंचाकर सस्ता घास-डिपो खोल दिया है।

यह प्रसन्नता की बात है कि राजस्थान-सरकार की ओर से जो सहायता-कार्य चल रहा है, वह तत्परता से हो रहा है। अब तक सरकार की ओर से कुल ९७०००००/- रुपयों की मंजूरी है जिसमें बाईस लाख तो तकावी के रूप में दिए जायेंगे और बाकी पचहत्तर लाख विभिन्न सहायता तथा सड़क आदि बनवाने में। सरकार की ओर से कुओं की मरम्मत तथा तालाबों की खुदाई पर जो रुपये खर्च किए जायेंगे तथा जो तकावी दी जायेगी, उसका भी शीघ्र और उचित प्रबन्ध हो, इसके लिए समिति का प्रतिनिधि कलेक्टरों और तहसीलदारों के साथ बराबर सम्पर्क रखेगा।

शेखावाटी के गांवों से भी रोजगार की तलाश में काफी संख्या में लोग बाहर गए हैं। सभी जगहों पर लोगों की क्रय-शक्ति बहुत कम रह गई है। इसके परिणाम-स्वरूप सरकारी या सहकारी भंडार की दुकानों पर पौने तीन सेर के भाव से बिकता हुआ बाजरा न खरीदकर लोग दो सेर के भाव से दुकानदार से खरीदते हैं क्योंकि नकद पैसा पास नहीं है और सरकारी या सहकारी भंडार की दुकानों पर नकद मूल्य देना पड़ता है, जबकि महाजन की दुकान पर उधार मिल जाता है। बहुत इच्छा होने पर भी हमलोग समयाभाव के कारण डूंगरपुर, बांसवाड़ा और जैसलमेर नहीं जा सके। लेकिन समिति की ओर से विशेष प्रतिनिधि भेज कर इन सब जगहों की जांच कराई गई, तो मालूम हुआ कि इन इलाकों में पानी की दिक्कत खास तौर पर है। बेरोजगारी और गरीबी तो है ही। सुना है, केन्द्रीय सरकार की ओर से भील-क्षेत्र में कुओं की खुदाई के लिए पांच लाख रुपए की मंजूरी हुई है। समिति इस बात का प्रयत्न करेगी कि इन रुपयों का उचित और शीघ्र उपयोग हो सके। समिति ने अपनी ओर से भील-क्षेत्र में कुछ कपड़े, कुछ अन्न तथा कुओं की मरम्मत करने की व्यवस्था की है। जैसलमेर के शहरी हिस्से को छोड़कर बाकी जगह सरकारी अफसर कदाचित ही जाते हैं। इसलिए वहां के लोगों के दुःख-दर्द को सुननेवाला कोई नहीं है। लाल जवार को छोड़ कर दूसरा अन्न नहीं मिलता और वह भी दूसरी जगहों की अपेक्षा महंगा मिलता है। चारे की हालत वहां ठीक है; लेकिन पानी का यह हाल है कि बहुत जगहों पर दो या तीन दिन बाद गायों को पानी मिलता है। कहीं-कहीं तो गायों को पानी पीने के लिए १०-१२ मील तक जाना पड़ता है। समिति ने अपनी ओर से दो कुएं और तालाब की मरम्मत की मंजूरी दी है। समिति का विचार है कि वहां पर सस्ते अनाज की दुकानें खोली जायं। सरकार के साथ मिलकर समिति इस बात का पूरा प्रयत्न कर रही है कि राजस्थान में सब जगह सरकारी अन्न की दुकानें खुल जायं।

पर समिति अपना सेवा-क्षेत्र और सेवा-कार्य अधिकाधिक बढ़ाने में तभी समर्थ हो सकेगी और समिति के कार्यकर्त्ताओं का उत्साह बढ़ता रहेगा तथा लोगों के पास

सहायता पहुंचती रहेगी, जबकि उसे जनता की ओर से पर्याप्त धन तथा अन्न-वस्त्र की सहायता मिले। धनी और समर्थ लोगों के लिए धन के सदुपयोग अथवा सात्विक दान का यह बड़ा सुन्दर अवसर है। समिति के कार्यकर्त्ताओं का यह सतत प्रयत्न रहेगा कि इस निधि के एक-एक पैसे का उपयोग अच्छे-से-अच्छे रूप में हो।

इस सारी यात्रा में कई शिक्षण-संस्थाएं देखने का भी लाभ मिला। बहुत तरह के लोगों के सम्पर्क में भी आना पड़ा और कुल मिला कर हमें बहुत सन्तोष रहा। सन्तोष का मानी यह नहीं कि मैं मानता होऊं कि राजस्थान-अकाल-सेवा समिति या मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी या और कोई भी संस्था या व्यक्ति इस तरह के अकाल में कोई बहुत बड़ी राहत पहुंचा सकेगा; क्योंकि यह सम्भव ही नहीं है। राहत-कार्य करने वाला केवल अपना मनःसन्तोष कर लेता है, वरना आजकी स्थिति में जब तक कोई आमूल परिवर्तन नहीं होता, तब तक इस तरह के छुट-पुट सेवा-कार्यों से बहुत बड़ी सहायता क्या मिल सकती है? दरअसल प्रयत्न तो यह होना चाहिए कि न अकाल पड़े, न महामारी फैले। सारे लोगों को धन्धा-रोजगार मिल सके और परिश्रमपूर्वक हर व्यक्ति अपनी रोजी अच्छी तरह उपार्जन कर सके। न किसी की मांगने की जरूरत रहे, न देने की—'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।'

('नया समाज', फरवरी, १९४९)

राजस्थान : संवत् २०२६ का अकाल

यों तो राजस्थान में अकाल की शिकायत आये दिन ही रहती है लेकिन किसी-किसी वर्ष का अकाल इतना भयंकर होता है कि उसकी कथा अनेक वर्षों तक चलती रहती है। इस तरह का अकाल एक तो विक्रम संवत् १९०० में पड़ा था और दूसरा विक्रम संवत् १९५६ में। पहले वाला सैये के अकाल और दूसरा छपनिया अकाल के नाम से प्रसिद्ध हुए और उनकी कथा आज भी कही-सुनी जाती है। मुझे इनके बारे में दो पद याद आ रहे हैं। १९०१ का संवत् १९०० से पूछता है—

सैंया रे सैया
चाकी चालै रै भैया
मानुष बोले रै भैया

अर्थात् १९०० के साल तूं ने क्या किसी को जीवित छोड़ा है ? दूसरी तुकबन्दी छपनिया के अकाल के बारे में है —

छपन्या रै छपन्या बैरी !
ओजूं मत आज्ये म्हारे देस बैरी।

छपनिये अकाल को देखने वाले अनेक लोग आज भी मौजूद हैं जो आंखों-देखी घटनाओं का हृदयविदारक वर्णन करते हैं। सन् १९४३ में बंगाल में जो अकाल की स्थिति लोगों ने देखी है करीब-करीब वैसी ही स्थिति संवत् १९५६ में राजस्थान की थी। लोगों की जानकारी के लिये मैं यह लिखना चाहता हूं कि राजस्थान की संवत् १९५६ की दयनीय स्थिति से द्रवित होकर स्वामी विवेकानन्दजी ने किशनगढ़ (अजमेर जिला) में रह कर राहत कार्य किया था। एक बार उनके पास राहत-कार्य के लिए धन की कमी हुई तो उन्होंने बेलूर स्थित अपने मठ की जमीन भी बेचनी चाही। उनके शिष्यों ने इस बात का जब हल्का-मीठा विरोध किया तो स्वामीजी ने यह कहा था कि मठ से मनुष्य बड़ा होता है। जमीन को बचाने से मनुष्य को बचाना अधिक आवश्यक है। जमीन का बैनामा सही करने को जब स्वामीजी कलकत्ता आये तो मैसूर महाराजा को, जो उन दिनों कलकत्ता आये थे, इस बात का पता लगा और उन्होंने स्वामीजी को ४० हजार रु० दिये तथा जमीन बेचने से रोक दिया।

हाल के वर्षों में संवत् १९९६ में राजस्थान में छपनिये जैसा व्यापक और भयंकर अकाल पड़ा था। उस अकाल में राहत के कार्य के सिलसिले में सारे राजस्थान में घूमने का मेरा काम पड़ा था। जो दुर्दशा उस वक्त लोगों को मैंने देखी थी वह आज भी मेरे हृदय पटल पर ज्यों की त्यों अंकित है। इस साल विक्रम संवत् २०२९ में जो अकाल पड़ा है वह पिछले किसी अकाल से कम नहीं है। कई लोगों का तो कहना है कि राजस्थान के अमुक-अमुक स्थानों पर छपनिये से भी ज्यादा भयावह स्थिति है। २४ जिलों में १८ जिले अभावग्रस्त घोषित हो चुके हैं। जोधपुर और बीकानेर के कुछ हिस्सों में पानी का भी भयानक संकट है।

राजस्थान प्रदेश का प्रायः भाग इकसाखिया (एक फसलिया) है। बरसात अच्छी हो गई तो लोगों के पास खाने भर को हो गया नहीं तो विपत्ति मुंह बाए सामने खड़ी रहती है। सिंचाई का प्रबन्ध बहुत कम भूमि में है। जिस किसान के पास यथेष्ट भूमि है तथा सिंचाई का समुचित प्रबन्ध है, वह सुखी है। शेखावाटी और शेखावाटी से लगे गांवों में पानी गहरा होने के कारण बैल से की गयी खेती पोसाती नहीं क्योंकि एक तो बैल के दाम अधिक हैं, दूसरे बैल को चराने में खरचा भी बहुत आता है। बरसात की खेती भी आजकल तो बैलों की जगह ऊंटों से ही होने लगी है। जिन लोगों का राजस्थान जाने का काम नहीं पड़ता उन्हें शायद इस बात की जानकारी भी नहीं होगी कि वहां पर बैल का स्थान धीरे-धीरे ऊंट लेता जा रहा है।

जब भी अकाल पड़ता है सबसे पहले उसकी चपेट में गाय आती है। ऊंट या बकरी या भैंस आज तक अकाल से मरते नहीं सुने गये हैं क्योंकि इसका कारण यही है कि गो-भक्त जनता ने आज तक गाय को अधिक उपयोगी बनाने की दिशा में ठोस काम नहीं किया है। केवल भावुकता से गाय बचनी सम्भव नहीं। यह भी है कि मनुष्य जाति पर गाय के अनन्त उपकार है और इसलिये वेद में इसे वदान्या कहा भी गया है, लेकिन आज के अर्थप्रधान युग में गाय तभी जिन्दा रह सकेगी जबकि इसका आधार केवल भक्ति न होकर अर्थ शास्त्र भी हो। कोशिश यह होनी चाहिये कि गाय का दूध कैसे बढ़े—आज गाय जितनी बार बियाती है उससे अधिक बार बियाने लगे। जितने दिन गाय ठाल रहती है वह समय किस तरह कम हो आदि बातों पर वैज्ञानिक रूप से काम किया जाय तो गाय अपनी रक्षा स्वयं कर लेगी। अभी दूध राजस्थान में सस्ता है क्योंकि गांव का जो आदमी अच्छा दूध अपने बच्चे को देता था और आधा कस्बे में आकर बेचता था वह पूरा का पूरा कस्बे में बेचना चाहता है। इस सस्तेपन पर दुख ही हो सकता है, सुख नहीं। केवल गो माता की जय बोलने और गोपाष्टमी के दिन उसके माथे पर तिलक लगाने से ही इस युग में गो-रक्षा होनी मुश्किल ही लगती है। हर हिन्दू जिनमें मैं अपने को भी शामिल करता हूं, यह चाहेगा कि गाय की रक्षा हर हालत में हो, लेकिन चाह के साथ-साथ वैज्ञानिक रीति से प्रयत्न हो तभी यह हो सकेगा। गाय दूध के लिए रखी जाती थी लेकिन राजस्थान के कई हिस्सों में आज गाय का स्थान भैंस और बकरी ले रही है।

अकाल के बारे में मारवाड़ी समाज की यह प्रथा रही है कि जब-जब अकाल पड़ा है तब धनी लोगों ने अपने गांव में तथा अपने गांव के आसपास राहत-कार्य किया है। इस बार ऐसा देखने में नहीं आ रहा है। न मालूम क्यों, बहुत ही कम लोगों के मन में स्थिति के प्रति दर्द है। गांव के आदमी के पास किसी तरह का धन्धा नहीं है। पंजाब, हरियाना आदि जगहों में जाकर लोग जीविकोपार्जन करते थे लेकिन इस बार बिजली की कमी होने के कारण वहां के कई कारखाने बन्द हो गये हैं या कम चल रहे हैं सो जो लोग वहां गये थे उन्हें निराश होकर वापस लौटना पड़ा है। कस्बों में या शहरों में चेजे-भाटे (सड़क बनाना, मकान बनाना) का काम नगण्य सा ही है सो लोग हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं। जो लोग समर्थ हैं उन्हें चाहिए कि वे सही स्थिति की जानकारी करके अपनी सामर्थ्य के अनुसार राहत-कार्य आरंभ करें। राहत-कार्य

करने वाले को राजस्थान सरकार से काफी सहयोग मिल सकता है। सरकार अपनी तरफ से करेगी तो सही पर कोई प्रामाणिक संस्था इस काम को जितना भी हाथ में ले सके उतना ही उपयोग सरकार के रुपयों का भी सही-सही हो सकेगा क्योंकि सरकारी रुपये बीच में बहुत नष्ट हो जाते हैं; जरूरतमन्द या पात्र के पास वे पहुंच नहीं पाते। इस बात की आवश्यकता है कि छोटे-बड़े संगठन वहां जांय, स्थानीय लोगों की मदद से राहत-कार्य करें।

अभी अकाल अपनी चरम विभीषिका पर पहुंच रहा है, अगले तीन-चार महीने तो बहुत ही भयंकर होंगे। अभी तो थोड़ा अनाज कहीं-कहीं मिल रहा है पर यह भी खतम होने को आ रहा है। राहत-कार्य अकाल का स्थायी उपचार नहीं है। नारद ने युधिष्ठिर से पूछा था 'हे युधिष्ठिर, तुम्हारे राज्य में खेती वर्षा पर तो निर्भर नहीं ?' युधिष्ठिर ने जबाब दिया था, 'मेरे राज्य में खेती वर्षा पर निर्भर नहीं।' हमारे देश में युधिष्ठिर के राज्य जैसी स्थिति आये तब अकाल नहीं पड़ेंगे लेकिन......। राजस्थान में आज राहत की तात्कालिक आवश्यकता के साथ-साथ इस बात की भी जरूरत है कि अधिक से अधिक सिंचाई के कुएं बनाये जांय। बिना विद्युत सिंचाई के बैलों या ऊंटों से यह काम पार पड़ने वाला नहीं है।

(चौरंगी वार्ता, ५ फरवरी १९७३)

नैनीताल

ये पंक्तियां मैं अपने बिछौने में पड़ा-पड़ा उस वक्त लिख रहा हूं, जबकि 'अरुण-शिखा-ध्वनि कान सुन, जागे राम सुजान' और 'चन्द्र-किरण शीतल भई, चकई पिय-मिलन गई' वाला उषः काल है। ऊपर आकाश में चन्द्रमा की ज्योति फीकी पड़ चुकी है। तारा कोई-कोई ही टिमटिमा रहा है। सामने अनन्त पर्वत-राशि और वृक्षों की—जो शीत के कारण कुछ-कुछ मुरझाने लगे हैं—अटूट सुन्दर हरी कतार अपना सिर ऊंचा किये खड़ी है। मन्द-मन्द पवन —जो हिमालय से आ रहा है और चल-अचल प्राणियों तथा वनस्पतियों में प्राण-पुलक भर रहा है—के स्पर्श से ये झूम-झूमकर संगीतमय शब्द कर रहे हैं। दूसरा संगीत पक्षीगण अपने कलरव से पैदा कर रहे हैं।

कोठी का माली मेरे कमरे के ठीक नीचे गाय दुह रहा है, जिसका शब्द इतना कर्णप्रिय और मधुर है कि वह किसी भी संगीत से कम नहीं जान पड़ता। कोठी के नीचे बगीचे में काले-काले मुंह वाले बीसियों बन्दर आ गए हैं और स्वच्छन्दता से वृक्षों के ऊपर कूद-कूद कर उधम मचा रहे हैं। ये अखरोट और दूसरी तरकारियां भी तोड़-तोड़कर खा रहे हैं। ये एक वृक्ष से दूसरे पर कितनी निर्भयता से कूद रहे हैं। ये कितने पुष्ट हैं, कितने निश्छल, सुखी, स्वतंत्र और निश्चिन्त! इन्हें न पाट बेचना है, न मोडल, और न इस वात की चिन्ता है कि कल क्या होगा? यह भी एक संगीत है और हमलोगों के लिये उपदेश भी कि—क्यों चिन्ता करते हो कि कल क्या होगा? नहीं, कल की ही नहीं, हम तो वर्षों वाद की भी—वल्कि पीढ़ियों वाद की भी—चिन्ता करते हैं और फिर यह भी दावा करते हैं कि हम सव प्राणियों में श्रेष्ठ हैं, क्योंकि ईश्वर ने हमें ज्ञान दिया है। क्या हमें यही ज्ञान मिला है कि चिन्ता में घुलें और पदार्थ-अपदार्थ संग्रह किए जायं? सुरसा के वदन की तरह मनुष्य के लोभ का तो कहीं अन्त ही नहीं।

नीचे पीलीभीत वालों की कोठी है। उसमें से ग्रामोफोन की आवाज आ रही है। वह भी एक संगीत है, लेकिन इस प्राकृतिक संगीत-सा उसमें माधुर्य और सौन्दर्य नहीं। हां, है वह भी एक संगीत और जो इन संगीतों से आनन्द न उठा सके, उसके लिए वह भी एक अच्छा संगीत है। जीवन मिलता है संगीत और काव्य से।

आजकल मौसम बहुत सुहावना है। दिन बहुत ही साफ, धूप तेज, हवा बहुत ठंडी और सुखद है। खाने-पीने और रहने का सारा इन्तजाम अच्छा है। दूसरे पहाड़ी स्थानों से नैनीताल में रहना सस्ता है। दो हजार रुपये में साल भर के लिए अच्छी से अच्छी कोठी मिल जाती है। एक रुपये घंटे में नौका मिलती है जिस पर पांच-छः आदमी खूब मजे से सैर कर सकते हैं। घोड़ों की दर भी दूसरी जगहों से सस्ती है और घोड़े काफी अच्छे हैं। दूध चाहे जितना मिल जाता है। साग-सब्जी और फल हर तरह के मिलते हैं—और कलकत्ते से सस्ते। कपड़ा सब तरह का मिलता है। वह भी कलकत्ते से सस्ता है। सिलाई की दर भी बहुत कम है। असल में जहां जितनी गरीबी है, मजदूरी की दर वहां उतनी ही कम है। यहां सफाई

बहुत है। म्युनिसिपैलिटी का इन्तजाम बहुत अच्छा है। बिना मिलावट का पहाड़ी घी चार-साढ़े-चार रुपये सेर मिल जाता है। खुरजे की तरफ का सरकारी छाप का घी सवा छह रु० सेर है। स्वास्थ्य के लिहाज से यह जगह मुझे बहुत पसन्द आई। फिर नैनीताल में देखने की जगहें बहुत सी हैं और आसपास दूसरे शहर-कस्बे आदि भी बहुत हैं।

रेल से नैनीताल आने वाले को रायबरेली या काठगोदाम उतरना पड़ता है। यही अन्तिम स्टेशन है। कलकत्ते से आने वाला काठगोदाम उतरता है। उसे लखनऊ में गाड़ी बदलनी पड़ती है। इस बीच उसे इतना समय मिल जाता है कि लखनऊ शहर में देखने लायक प्रायः सभी स्थान देख आवे। काठगोदाम से नैनीताल २२ मील है। सारा रास्ता साफ-सुथरा है। अलकतरे की पक्की अच्छी सुन्दर सड़क है। कहते हैं पहाड़ों में इतनी सुन्दर सड़क बहुत कम जगह ही मिलती है। मोटर का किराया पूरी का २२) और बस का ३५) है। प्रति सीट १।।।≤) बस वाला लेता है। और १ मन तक वजन प्रति आदमी साथ ला सकता है। इससे ज्यादा वजन हो तो किराया लगता है। पानी के लिए हर कोठी में नल लगे हुए हैं, जिनसे चौबीसों घंटे पानी मिलता है। बिजली भी है। पूरे शहर में बिजली १९२२ में लगी थी। यहां बिजली और पानी का इन्तजाम यहां की म्युनिसिपैलिटी के जिम्मे है। यहां पर म्युनिसिपैलिटी १८५४ से चल रही है और उसका इन्तजाम बहुत अच्छा है।

नैनीताल नैनादेवी या नन्दादेवी के नाम पर बसा हुआ है। यह समुद्र की सतह से करीब ६४०० फुट की ऊंचाई पर है। मैं जिस कोठी में रह रहा हूं, वह करीब ५०० फुट और ऊंची है। पहला मकान यहां १८४१ में बना था। मैंने उस मकान को देखा है। वहां पर आजकल एक चतुर्वेदी, जो वन-विभाग के अफसर हैं, रह रहे हैं। ६० वर्ष के लगभग उम्र होगी उनकी। शरीर से लाल और तन्दुरुस्त हैं। पति, पत्नी और एक लड़की तीन ही प्राणी हैं घर में। पत्नी एम०ए० है। लड़की एम०ए० में पढ़ रही है। वे इतने खुशदिल और हंसोड़ हैं कि जितनी देर आप उनके पास या उनके साथ बैठिए, उतनी देर वे ही बोलते हैं, आप तो बस सुने जाइये और हंसे जाइये। पक्के शिकारी हैं। कई शेरों की खालें घर में टांग रखी है। कहते थे कि इस मकान की जमीन बैरन साहब नामके एक अंग्रेज ने दो रुपये में—फकत दो रुपये में—१८४१ में खरीदी थी। बैरन को पैदल यात्रा करने का बड़ा शौक था। यहां पहुंचने तक वह हिमालय के पहाड़ों में करीब १५०० मील घूम चुका था। उसने लिखा है कि मेरी १५० मील की पैदल यात्रा में इतना सुन्दर स्थान मैंने नहीं देखा—अल्मोड़े से पैदल चलता हुआ कौसी नदी के इस पार पहाड़ के ऊपर जब वह पहुंचा और उसे 'त्रिऋषिताल' दिखाई पड़ा, तो वह मुग्ध हो गया और उस जमीन को अपने तईं खरीद लिया तथा इस यात्रा के सम्बन्ध में 'अज्ञात यात्री' के नाम से एक लेख विलायत के कागजों में छपवाया। साथ ही 'आगरा-अखबार' नामक पत्र के सम्पादक को इसकी सुन्दरता के बारे में एक लम्बा लेख भेजा। इधर उसने जंगल के बीच, जहां कोई मकान नहीं था, अपने लिए एक कोठी बनानी शुरू की, उधर लोगों का ध्यान उसके लेख पर गया, और दूसरे लोग भी जमीन खरीदने लगे। १८५७ के गदर में जब

लोगों को नीचे रहने में भय लगने लगा और ऊपर पहाड़ों में सुरक्षा मालूम दी, तो उस वक्त यहां की जमीनें बहुत बिकीं और बहुत से मकान भी बने। यों १८४१ में शुरू होकर १८५७ तक यह ज्यादा जोरों से बसा। १८४१ के पहले भी हर साल दशहरे के अवसर पर यहां एक मेला लगता था और हजारों की तादाद में लोग बाजा-गाजा लेकर इकट्ठे हुआ करते थे। यहां नैनादेवी और पाषाण देवी के दो प्रसिद्ध मन्दिर हैं, जिनमें से एक शहर बसने के पहले का है। वह स्थान जहां बैरन साहब ने अपनी कोठी बनाई थी, आज भी मौके के लिहाज से नैनीताल की अच्छी से अच्छी जगहों में से एक है। उसने अपनी कोठी को 'यात्री का झोंपड़ा' ही नाम दिया।

जिस ताल के किनारे और ऊपर पहाड़ों में नैनीताल बसा हुआ है, उसे पौराणिक कथाओं में 'त्रिऋषिताल' कहा गया है। कहते हैं अत्रि, पुलस्त्य और एक दूसरे ऋषि जब शिव के दर्शन करने को इस तरफ से कैलास जा रहे थे, तो संध्या करने का समय हो गया। पानी था नहीं, अतः यहां खोदकर उसी वक्त पानी पैदा किया। कैलास आज भी लोग जाते हैं, लेकिन क्या शिव के, मंगल के, सौन्दर्य के दर्शन उस भाव से कर पाते हैं? 'अस मानस मानस चख चाही'—मानस वही है, लेकिन उसे समझने के लिए मानस-चक्षु चाहिए। कैलास में शिव के दर्शन करने को भी वह नेत्र चाहिए, जो अत्रि आदि ऋषियों के थे। इस तरफ से बदरीनारायण भी बहुत लोग जाते हैं। वे रानीखेत से फंट जाते हैं। कैलास-मानसरोवर जाने वाले कौसानी से इधर सोमेश्वर एक स्थान है, वहां से जाते हैं। पिण्डारी ग्लेशियर और नीलम ग्लेशियर भी बहुत सुन्दर स्थान है। जब कोई आदमी इस तरफ आता है, तो कैलास-मानसरोवर जाने की इच्छा जाग्रत होती है। त्रिऋषिताल की लम्बाई १५०० और चौड़ाई ५०० गज है। गहराई जहां ज्यादा से ज्यादा है, वहां ९३ फुट है।

स्वर्ग की झांकी

महान हिमालय के, जो हिन्दुस्तान का प्रहरी और रक्षक है तथा हिन्दुस्तान की शान है, बाहरी हिस्से कुमायूं-पहाड़ी के बीचों-बीच नैनीताल शहर बसा हुआ है। उत्तराखण्ड की ये कुमायूं-पहाड़ियां सौन्दर्य में सानी नहीं रखतीं। यहां पहाड़ की कई चोटियां हैं, जिन पर जाने के लिए अच्छा रास्ता बना हुआ है। सबसे ऊंची चोटी 'चीना पीक' है, जो ८६०० फुट ऊंची है, यानी नैनीताल से २२०० फुट ऊंची। वहां से हिमालय और नैनीताल की सारी इमारतें दीख पड़ती हैं। जगह-जगह डाक बंगले बने हुए हैं। 'स्नो व्यू' नाम की एक चोटी है। वहां का डाक बंगला बहुत सुन्दर बना हुआ है। इन पहाड़ों में कुदरत की महानता, मनुष्य के प्रति उसका असीम दान, सौन्दर्य और शान्ति खूब देखने को मिलती हैं। ईश्वर ने जिसे तनिक भी हृदय दिया है, वह इन पहाड़ों को देखते और इनमें रमते अघाता ही नहीं। पाण्डव सदेह स्वर्ग गए थे, ऐसी कथा है। उसमें भी कवि ने उनको हिमालय ही भेजा है। हिमालय में ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते जाइए, त्यों-त्यों स्वर्ग ही आता जायगा। यह रूपक बहुत सही और सच्चा है। जब पाण्डवों को संसार से विरक्ति हुई तो वे शान्त, महान्, सुन्दर और असीम हिमालय में चले गए।

मैं घोड़े पर सवार होकर 'लैण्ड्स-एण्ड' यानी धरती का नाका और उसके ऊपर टिफिन-टाप देखने गया। वहां से प्रायः सारा नैनीताल दिखता है। जगह सुन्दर है। भुवाली से घोड़े के रास्ते ६-७ मील पर रामगढ़ है और दूसरी तरफ ६-७ मील भीमताल। भीमताल में देखने की खास कोई चीज नहीं है। लेकिन भुवाली, रामगढ़, रानीखेत, अल्मोड़ा, कौसानी आदि कई स्थान दर्शनीय हैं। चारों ओर हरियाली है। झरनों के शब्द अत्यन्त कर्णप्रिय हैं। शान्ति चारों ओर बिखरी पड़ी है। प्रकृति की अपनी जो शोभा है, उसकी बराबरी मनुष्य की कृत्रिम रचनाएं थोड़े ही कर सकती हैं ? पुराने जमाने में इन उत्तराखण्ड की पहाड़ियों में सन्त, तपस्वी और भक्त-जन अपनी तपस्या, भक्ति और साधना के लिए आया करते थे। उसके बाद कवि और लेखकगण अपने गीतों के लिए प्रेरणा प्राप्त करने को यहां आने और रहने लगे। कविगण को अपनी रचनाओं के लिए जितना मसाला और प्रेरणा इन सौन्दर्य भरी हरी-भरी पहाड़ियों में मिल सकते हैं, उतना अन्यत्र कहीं नहीं।

महंगी तो सभी जगह है। गरीबी भी सभी जगह है। यहां भी काफी है। लेकिन काश्मीर में मैंने जो गरीबी देखी थी, उतनी गरीबी यहां नहीं है। लोगों को खाने-पीने को ठीक से मिल जाता है। लोग जितने परिश्रमी हैं, उतने ही सच्चे और ईमानदार भी। सब काफी स्वस्थ हैं। फिर भी इन पहाड़ों में गरीबी स्थायी चीज सी हो गई है। लेकिन अपनी इस नई सरकार में तो इस तरह की भयंकर गरीबी नहीं रह सकेगी। लोगों के सामने लिखने-पढ़ने का साधन उपस्थित होगा। लोग लिखेंगे पढ़ेंगे, समझेंगे। उन्हें ज्ञान प्राप्त होगा। फिर दूसरी तरफ उनकी आय भी बढ़ेगी। इस तरह पांच-दस वर्षों में उनकी माली हालत में अवश्य फर्क पड़ेगा (लेख जनवरी, १९४९ में प्रकाशित है : सं०)।

नैनीताल की सफाई देखकर तबीयत खुश हो गई, पर नगर को इतना साफ सुथरा और स्वास्थ्यप्रद रखने वालों की स्थिति जानकर खुशी नहीं हुई। यहां के मेहतरों को म्युनिसिपैलिटी से केवल तीस-एक, इकतीस रुपए महीना मिलता है। इसके अलावा कुछ भी नहीं। सुबह ६ बजे ड्यूटी पर आना पड़ता है इस कठिन शीत में बिना चाय-पानी पिए। शहर को साफ रखनेवाले तथा सारे लोगों को स्वास्थ्य बख्शने वाले इन अभागे बहन-भाइयों की किसे चिन्ता है कि ये इतनी कम आय में किस तरह गुजर कर पाते हैं ? और फिर इनके रहने का स्थान कितना तंग और अन्धकार-पूर्ण है ? जिनके परिश्रम से सारे लोग स्वस्थ रहते हैं, उनके स्वास्थ्य और खान-पान की चिन्ता से हम लोग कितने उदासीन हैं ? दूसरा दर्जा कुलियों या मजदूरों का है, जो हमारा बोझ ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर पहाड़ों में ढोते हैं, सड़क बनाते हैं, मकान चिनते हैं और डांडी (डोली) चलाते हैं। इन्हें 'डोटियाल' कहते हैं, क्योंकि इनमें ज्यादातर लोग डोटी नामक स्थान से आते हैं, जो नेपाल और कुमायूं की सरहद पर है। यहां के सारे मकान इन्होंने बनाए, सड़कें इन्होंने तैयार की, यही लोग गत एक सौ वर्षों से अपनी पीठ पर लाद कर दूर दूर के स्थानों से अन्न तथा साग-सब्जी हमें खिलाते रहे हैं और आज भी खिलाते हैं। बीमार या कमजोर कोई हुआ अथवा वृद्ध हुआ, तो उसे डोली में बैठा कर सिर पर लादकर भी ले जाते हैं। यहां जितना

सुख और वैभव है, उस सारे की सृष्टि करने वाले यही हैं। फिर भी पेट में पूरा अन्न नहीं, तन पर कपड़ा नहीं।

सृजन करने वाला, परिश्रम करनेवाला भूखा और नंगा है, अपनी सृजन की हुई सारी वस्तुओं के उपभोग से वंचित है। गाय-भैंस रखता है पर बच्चों को दूध नहीं, डोली रखता है, तो सिर पर बोझा ढोने के लिए, मकान चिनता है लेकिन बिना आज्ञा उसमें प्रवेश भी नहीं कर पाता और वह सूत कातता और बिनता है लेकिन दूसरों के लिए। बिजली की रोशनी का सारा सरंजाम इकट्ठा किया, बिजली पैदा की और उसकी जगमगाहट से सारा नैनीताल तथा दूसरे शहर जगमग कर रहे हैं। लेकिन इन लोगों के रहने के स्थानों में तो आज भी वह किरासन की डिबिया है और उसके लिए भी राशन की मेहरबानी से पूरा किरासन तेल कहां मिल पाता है। दूसरी तरफ थोड़े से परोपजीवी लोग, जिन्होंने अपना एक गुट बना कर सारी पृथ्वी पर अपना मायाजाल बिछा लिया है, सारे पदार्थों का उपभोग कर रहे हैं। हमलोग इसी श्रेणी के हैं, जिन्हें शारीरिक परिश्रम बिल्कुल नहीं करना पड़ता और फिर भी सारी सुख-सुविधाओं का उपभोग करते हैं।

(नया समाज, जनवरी १९४९)

गांधीजी के व्यक्तित्व के कुछ पहलू

गांधीजी जितने गम्भीर थे उतने ही विनोदी भी थे। अस्पृश्यता निवारण के सिलसिले में जब वह उड़ीसा की पैदल यात्रा कर रहे थे तब दो दिन उनके साथ रहने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ था। सायंकाल की प्रार्थना-सभा में आये हुए दर्शनार्थी और श्रोतागण में से बहुत लोग अपनी ओर से कुछ-न-कुछ भेंट (नगद या वस्तु के रूप में) गांधीजी को दिया करते थे और उन सब वस्तुओं को प्रार्थना-प्रवचन के बाद गांधीजी नीलाम कर दिया करते थे। कटक में एक कुम्हार ने बालगोपाल (कृष्ण) की एक छोटी-सी मूर्ति भेंट में दी। सारी वस्तुएं नीलाम होने लगीं तो उस बेचारे कृष्ण की भी बारी आ गई। गांधीजी ने मूर्ति को उठाया और बोले, "अब तुम्हारी बारी है।" मैंने हंसकर कहा, "बापू, आपने तो कृष्ण को भी नीलाम पर चढ़ाने से नहीं बख्शा।" इस पर गांधीजी खूब हंसे और बोले, "अरे, तुम जानते नहीं। यह तो सदा ही नीलाम होता रहा है। कोई नीलाम करनेवाला और खरीदनेवाला होना चाहिए। तुमने मीरा का वह पद नहीं सुना क्या—"माई, मैंने गोविन्द लीनूं मोल, कोई कहे सस्तु कोई कहे महंगू, लीनूं तराजू तोल।" जहां तक मुझे याद है, उस दिन नीलाम की हुई वस्तुओं में, जिनमें चांदी का कुछ सामान था, सबसे अधिक कीमत उस मूर्ति की ही आई थी।

गांधीजी में आत्मीयता भी अत्यधिक थी। मेरा बड़ा लड़का कई दिनों से पेट की बीमारी से पीड़ित था। मैं उसे लेकर गांधीजी के पास गया। कुशल-मंगल पूछने के बाद लड़के की तरफ देखकर वह बोले, "यह बीमार-जैसा क्यों दीखता है?" मैंने कहा, "इसे अलसर की बीमारी हो रही है। दो-तीन वर्ष हो गये। अच्छे-से-अच्छे एलोपैथिक डाक्टरों का इलाज करा लिया, लेकिन लाभ नहीं हो रहा है।" गांधीजी ने तुरन्त कहा, "इस छोटी-सी बीमारी को जो लोग दो-तीन वर्ष तक ठीक नहीं कर पाते वे क्या डाक्टरी करेंगे। इस चक्कर को छोड़ो और लड़के को मेरे हवाले करो। मैं इसका इलाज करूंगा।" उनके इस कथन में आत्मीयता भरी थी, साथ ही इस बात की झलक भी मिलती है कि उनका प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धति के प्रति कितना गहरा विश्वास था।

गांधीजी ने अपनी उम्र में स्वाधीनता आन्दोलन, अस्पृश्यता निवारण तथा अन्य प्रवृत्तियों के लिए जितना पैसा लोगों से मांगा और एकत्र किया उतना दूसरे किसी नेता ने नहीं किया है। एक बार की बात है, गांधीजी सोदपुर में ठहरे हुए थे। मेरे कुटुम्ब की कुछ महिलाएं उनके दर्शन करने गईं। प्रणाम करके जो कुछ रुपये-पैसे ले गयी थीं वे उनके चरणों में रखे तो गांधीजी ने कहा: "बस इतना ही।" भाई सीतारामजी सेकसरिया वहां बैठे थे। वह बोले, "बापू, देखिये तो सही, इतने रुपये कम हैं क्या? आपका तो पेट भरता ही नहीं।" गांधीजी ने गम्भीर होकर कहा, "तुम ठीक कहते हो, मेरा पेट नहीं भरता। लेकिन तुम्हीं बताओ वह भरे भी कैसे? मेरा पेट तो हिन्दुस्तान का पेट है।"

गांधीजी हर व्यक्ति से इस बात की अपेक्षा रखते थे कि वह अपने समय में से कुछ-न-कुछ समय ईमानदारीपूर्वक सार्वजनिक हित के काम में लगायेगा। एक बार सोदपुर में मैं उनके पास बैठा हुआ था। एक सम्भ्रान्त घराने की कुछ महिलाएं उनके दर्शनों के लिए आईं। प्रणाम करके और भेंट रखके जब वे अपना परिचय दिये बिना ही लौटने लगीं तो पं० नेकीरामजी शर्मा ने, जो कि वहां बैठे थे, यह उचित समझा कि उनका परिचय करा दिया जाय, क्योंकि जिस कुटुम्ब की वे महिलाएं थीं, वह गांधीजी के निकट परिचितों में था। अतः पं० नेकीरामजी ने कहा, "बापू, आप शायद पहचानते नहीं, ये महिलाएं अमुक घर की हैं।" गांधीजी ने एक क्षण उनकी ओर देखा, फिर तुरन्त बोले, "अरे, आप क्या जान-पहचान कराते हो। बाहर निकलेंगी, भूल जाऊंगा, क्योंकि कुछ काम (याने सार्वजनिक सेवा का काम) तो ये करती नहीं है, कैसे याद रहेंगी। जो लोग कुछ करते रहते हैं, उनको तो, मैं यहां आता हूं तब, स्वयं याद करके भी बुला लेता हूं।"

गांधीजी के जीवन में स्वतन्त्रता की लड़ाई लड़ते हुए तथा अस्पृश्यता और अन्य सामाजिक बुराइयों के विरुद्ध संघर्ष करते हुए कई उतार-चढ़ाव आये, लेकिन स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद देश की हालत देखकर उन्हें जितनी निराशा हुई और वह जितने व्यथित हुए, उतने उसके पहले शायद ही कभी हुए हों। एक बार तो उन्होंने यहां तक कहा, "स्वराज्य क्या आया, बला आई है।" ऐसा कहते हुए उनके चेहरे पर जो नैराश्य और व्यथा के भाव थे और जैसी उनकी मुख-मुद्रा थी, वह मुझे आज भी ज्यों-की-त्यों याद है। यह बात उन दिनों की है, जब गांधीजी ने कलकत्ता में साम्प्रदायिकता के विरुद्ध उपवास किया था।

(गांधी : व्यक्तित्व, विचार और प्रभाव ;
सस्ता साहित्य मण्डल, १९६६)

'ताल भंग क्यों खाय'

नट एक जन-जाति का नाम है। ये लोग कहीं पर भी घर बांधकर नहीं रहते। घुमक्कड़ होते हैं। एक से दूसरे गांव, कस्बा और शहर में घूमते हुए अपना खेल दिखाकर जीविकोपार्जन किया करते हैं।

आजकल सर्कस में जिस तरह के खेल दिखाये जाते हैं, कुछ-कुछ उसी तरह के खेल नट-जाति के लोग दिखाते हैं। साधनों का सर्वथा अभाव होने के बावजूद ये लोग बाज-बाज खेल ऐसा दिखा जाते हैं कि देखनेवाले दांतों-तले अंगुली दबा लें।

आर्थिक दृष्टि से इस जाति के लोग बहुत कमजोर होते हैं। इसलिए इनके लिए कहावत है :

"कद नटणी बांस चढ़े, कद भोजन पावै।"

यानी कल के खाने को भी इनके पास कुछ नहीं होता। नित्य कमाते हैं, नित्य खाते हैं।

नटों सम्बन्धी एक कहानी सुन लीजिये।

एक था नट, एक थी नटी। उनके एक लड़का था। उस लड़के से वे लोग 'जमूरे' का काम लेते थे। दोनों नट-नटी अपने काम में बहुत ही दक्ष थे। यह 'जमूरा' भी उनका अच्छा सहायक था। जहां भी ये लोग जाते, इनके खेल की अच्छी सराहना हुआ करती। खेल समाप्त होने पर नटणी बांस पर चढ़ कर जब पैसा मांगती तब वह अक्सर यह मार्मिक दोहा कहा करती :

"बांस चढ़ी नटणी कहै, हुयो न नटज्यो कोय।
मैं नटकर नटणी हुई, नटै सो नटणी होय।।"

एक बार ये लोग एक ऐसे कस्बे में पहुंचे जहां का राजा निहायत कंजूस था, इतना कंजूस कि दहेज देने के डर से उसने अपनी लड़की का विवाह भी नहीं किया था। उस राजा के नगर में जाकर इस नट-दम्पति ने अपना खेल दिखाना शुरू किया। लोगों को इनका खेल इतना पसन्द आया कि वह एक मोहल्ले से दूसरे मोहल्ले में और दूसरे मोहल्ले से तीसरे मोहल्ले में, इस तरह कई दिन तक चलता रहा। लोगों ने जाकर राजा के सामने इनके खेल की तारीफ की और कहा, "महाराज, एक दफे इनका खेल आपके यहां भी होना चाहिए।"

चूंकि राजा कंजूस था, इसलिए टालता रहा, लेकिन जब लोग बहुत ही पीछे पड़ गये तो आखिर एक दिन उसने स्वीकृति दे दी।

नट-नटी ने पूरे जोश-खरोश के साथ अपनी आत्मा उंडेलकर खेल दिखाना आरम्भ किया। सारे लोग "वाह-वाह" कर उठे। राजा को भी खेल पसन्द आया लेकिन वह तो गुमसुम बैठा रहा, एक शब्द भी बोला नहीं, क्योंकि उसके मन में यह डर

था कि अगर वह खेल की सराहना कर देता है तो उसे नट को कुछ-न-कुछ देना पड़ेगा।

इन लोगों को खेल दिखाते काफी देर हो गयी और नटणी थकने लगी तो उसने इशारे से अपने पति को कहा :

"रात घड़ी भर रह गयी, पिंजर थाक्या आय।
यो राजा रीझै नहीं, मधरी ताल बजाय।।"

यानी, सारी रात बीत गयी है, मेरा शरीर थककर चूर हो गया है, तुम कितने ही करतब दिखाओ, यह राजा रीझने वाला नहीं है, व्यर्थ ही इतनी नाच-कूद क्यों करते हो, जरा ताल धीमी करो।

उत्तर में नट ने कहा :

"बहुत गयी थोड़ी रही, थोड़ी भी अब जाय।
नट कहै सुण नट्टणी, ताल भंग क्यों खाय।।"

यानी, जीवन का अधिकांश भाग तो बीत चुका है. अब थोड़ा-सा बाकी रहा है। इतने से के लिए ताल भंग क्यों पड़े ?

नट का इतना कहना था कि राजकुमारी ने अपने गले का हार उतार कर नट की तरफ फेंक दिया। दूसरे ही क्षण वहां बैठे हुए एक साधु ने भी अपना एकमात्र कम्बल नट को दे डाला। फिर राजकुमार ही क्यों पीछे रहनेवाला था। उसने भी अपना दुशाला उतार कर नट को दे दिया।

राजा को बहुत ही विस्मय हुआ, किन्तु खेल चल रहा था, इसलिए किसी से कुछ बोला नहीं। खेल समाप्त होते ही उसने राजकुमारी से पूछा, "बेटी, ऐसी क्या बात हुई कि तूने अपना बहुमूल्य हार इस नट को दे डाला ?

राजकुमारी ने कहा, "मेरा कुसूर आप माफ करने का वचन दें, तो मैं बताऊं।"

राजा के अभय वचन देने पर राजकुमारी बोली, "आप अपने मूंजी स्वभाव के कारण मेरा विवाह नहीं कर रहे हैं। मैं बहुत दिन तो संयम करके रही, लेकिन आखिर जब यौवन रूपी उलझा हुआ समुद्र डाटे नहीं डटा, तो बाध्य होकर मैंने दीवान के पुत्र के साथ प्रेम-सम्बन्ध कर लिया। और अपनी योजना के अनुसार कल इस घर से सारे जेवरात और जो कुछ धन हाथ लगे, उसे लेकर दीवान-पुत्र के साथ भागना चाह रही थी। इस नट ने जब कहा, "बहुत गयी, थोड़ी रही, थोड़ी भी अब जाय, नट्ट कहे सुण नट्टणी, ताल भंग क्यों खाय", तो मेरी आंखें खुल गईं और मैंने सोचा कि जब इतने बरस निकाल दिये हैं तो अब कुछ वर्ष और सही। थोड़े-से वर्षों के लिए ताल भंग क्यों खाय, यानी जीवन का क्रम क्यों बिगड़े! यह सोचकर मैंने अपनी योजना तो ढहा दी और इस नट को अपना गुरु मान कर गुरु-दक्षिणा के रूप में अपना हार उसे दे डाला।

राजा ने साधु से पूछा, "महाराज, आपके पास तो यह एक ही कम्बल था। वह भी आपने इस नट को दे डाला। इसका क्या कारण है ?"

साधु ने कहा, "राजन्, साधु का त्यागमय जीवन बिताते-बिताते मेरे मन में

इस जीवन के प्रति उपरामता आ गयी थी। दूसरों को सुख भोगते देख कर मेरे मन में भी सुख भोगने की लालसा बलवती हो उठी थी। अतः इस नट के वचन ने राजकुमारी के मन पर जो असर डाला, वही मेरे मन पर भी डाला।"

फिर राजकुमार से पूछने पर उसने कहा, "महाराज, आपके मूंजी स्वभाव के कारण मैं न तो किसी को कुछ दे सकता हूं, न कहीं सैर-सपाटे के लिए जा पाता हूं और न किसी दूसरे प्रकार का सुख भोग सकता हूं। अतः मेरे मन में आपको मारकर राजगद्दी पर बैठने का लालच हो गया था। इस नट के वचन ने मेरी आंखें खोल दीं। मैंने भी इसे गुरु-दक्षिणा के रूप में ही अपनी शाल उतारकर दी है।"

इतना सुनते ही राजा को अपने जीवन के प्रति बहुत ग्लानि हुई। दूसरे ही दिन उसने राजकुमारी का विवाह दीवान-पुत्र के साथ बड़ी धूमधाम से कर दिया और राज्य अपने पुत्र को सौंप कर स्वयं भजन-स्मरण में लग गया।

(बहता पानी निर्मला, तृतीय संस्करण ; पृष्ठ २०५-२०८)

सूम और वैतरणी

एक आदमी के पास पैसा तो ठीक-ठाक था, लेकिन वह कंजूस इतना था कि भाड़ा दिये बिना काया चले तो भोजन भी नहीं करे। उसकी पत्नी अपने पति के मूंजी स्वभाव के कारण बहुत दुःखी रहा करती। बार-बार अपने पति को समझाने की चेष्टा भी करती और कहा करती, "कुछ तो लोक-लाज की बात भी सोचो, आंख खोल कर देखो और कान खोलकर सुनो, तो तुम्हें पता चले कि लोग तुम्हारी कितनी निन्दा करते हैं। कभी तो परलोक की बात भी सोचा करो कि भगवान के घर जाकर क्या उत्तर दोगे।"

लेकिन चिकने घड़े पर पानी की बून्द टिके तो उस कंजूस को अपनी पत्नी की बात लगे। पत्नी बेचारी दिन भर घुटी-घुटी रहती। न कभी मन्दिर जाती और न गंगा-स्नान के लिए ही, क्योंकि मन्दिर जाय तो छटांक आधी छटांक अनाज ठाकुरजी के सामने चढ़ाना पड़े, और गंगा-स्नान के लिए जाय तो पैसा-अधेला 'घाटिया' (गंगा स्नानार्थ घाट पर जाने वाले लोगों के चन्दन लगाने वाला ब्राह्मण) को देना पड़े, जबकि डर यह था कि ऐसा करने से पतिदेव रुष्ट हो जायेंगे। अतः वह बेचारी चुपचाप उदास मुंह किये घर में पड़ी रहती। घर का धंधा जैसा कुछ होता—जैसे पानी लाना, भोजन पकाना, बरतन मांजना आदि—मन मारकर करती रहती।

उस बनिये के बारे में, उसकी कंजूसी के कारण, लोग यह कहने लग गये थे कि प्रातः काल इसके दर्शन हो जायं, तो दिन-भर खाने को नहीं मिले।

दिन बीतते गये और बनिया बूढ़ा हो गया, लेकिन उसकी वृत्ति में रत्ती-भर भी फरक नहीं पड़ा। एक दिन उसकी पत्नी ने फिर हिम्मत बटोरकर कहा, "देखिये, आपको भी बुढ़ापा आ गया है और मुझे भी। जीवन-भर अपन लोगों ने किसी को एक लोटा पानी भी नहीं पिलाया। अब अन्त समय में एक बात मेरी मान लीजिये। मैं आपसे और कुछ भी नहीं चाहती, केवल इतना ही चाहती हूं कि आप अपने हाथ से एक गाय किसी ब्राह्मण को दे दीजिये, जिससे सुखपूर्वक वैतरणी तो पार हो सकें।"

बनिये ने कहा, 'मैं तो 'द' अक्षर से ही डरता हूं। मुंह से यह अक्षर निकल न जाय, इसलिए दिल्ली को हस्तिनापुर और दुकान को हाट कहता हूं।"

तब बनियानी ने अपने पति को एक कहानी सुनाते हुए कहा, "एक बार मनुष्य, देवता और राक्षस तीनों मिलकर ब्रह्माजी के पास गये थे और उनसे कहा था कि आप अपनी रुचि के अनुसार हमें कुछ दीजिये। ब्रह्माजी ने तीनों को ही 'द' अक्षर दिया था।

उस 'द' अक्षर का अर्थ देवों ने यह निकाला कि अपन लोग विलासी बहुत हैं इसलिए ब्रह्माजी ने अपन को 'द' अक्षर के द्वारा दमन, यानी इन्द्रिय-दमन, की शिक्षा दी है। राक्षसों ने यह अर्थ निकाला कि अपन लोग हिंसा बहुत करते हैं, इसलिए 'द' अक्षर द्वारा अपन को दया की शिक्षा दी है और मनुष्य ने 'द' का अर्थ निकाला दान, यानी देना। तीनों का ही अर्थ ठीक था।"

सूम की पत्नी ने आगे फिर कहा, "आपको मालूम होना चाहिए कि जो आदमी केवल संग्रह करता है कभी किसी को कुछ देता नहीं, उसे हमारे शास्त्रकारों ने दस्यु की संज्ञा दी है।"

मूंजी ने कहा, "मैं ये सब बातें नहीं सुनना चाहता। तुम अपना दान अपने पास रखो।"

बनियानी बेचारी क्या करती। वह तो जार-जार रोने लगी। उसके आंसुओं से उस मूंजी के पैर भीग गये, लेकिन कलेजा नहीं पसीजा। आखिर कलेजा पांवों में तो था नहीं, वह तो अपनी जगह पर था, अतः पांवों पर पड़े आंसुओं से कलेजा पसीजता भी तो कैसे पसीजता ?

रो-धोकर बनियानी तो अपने धन्धे में लग गई और बनिया चला गया अपनी हाट पर।

कुछ दिन और यों ही गुड़क गये। दोनों की ही मृत्यु नजदीक आ गई। बनियानी ने एक तरकीब सोची। उसके पास सोने की दो चूड़ियां थी। अपने पति से लुक-छिपकर उसने एक सुनार को बुलाया और बोली कि इसकी एक छोटी-सी गाय बनाकर ला दो। सुनार गाय बनाकर लाया तो उसने उसके ऊपर खूब मोटी-मोटी मिट्टी थपेड़ दी और उसे मिट्टी की गाय का रूप दे दिया। उसके बाद वह पड़ोस में ही रहनेवाले एक ब्राह्मण को बुलाकर एकान्त में बोली, "मेरा पति तुम्हें एक गाय देगा। वह यों तो ऊपर से मिट्टी की है, लेकिन उसके भीतर छोटी-सी एक सोने की गाय निकलेगी, अतः तुम उस गाय का दान स्वीकार कर लेना।"

ब्राह्मण को उसकी बात का विश्वास हो गया और वह मान गया।

कुछ दिन बीच देकर बनियानी ने पति से कहा, "मैंने एक युक्ति विचारी है, जिसमें आपका एक अधेला तो खर्च नहीं होगा और मुझे सन्तोष हो जायगा। मैं अपने हाथ से मिट्टी की एक गाय तैयार कर देती हूं, उसे आप किसी ब्राह्मण को दे दीजिये।"

बनिये ने कहा, "भला मिट्टी की गाय कोई दान में क्यों लेने लगा।"

पत्नी ने कहा, "यह काम मेरे जिम्मे रहा, मैं किसी-न-किसी को राज़ी कर लूंगी।" इस पर बनिये ने अनिच्छापूर्वक स्वीकृति दे दी।

दो-चार दिन बीतने पर बनियानी ने अपनी वह मिट्टी थपेड़ी हुई सोने की गाय आंगन में लाकर खड़ी कर दी और उस ब्राह्मण को बुलाकर अपने पति से बोली कि इन्हें आप यह गाय दान कर दीजिये।

बनिये ने कहा, "तुम मेरी उमर-भर की सौगन्ध तुड़ा रही हो, लेकिन खैर, तुम्हारी बात ही रही सही।" ऐसा कहकर उसने वह गाय ब्राह्मण को दान में दे दी। फिर भी बनिये के मन में कुछ संशय रहा कि इसमें कुछ रहस्य तो नहीं है, अतः उसने ब्राह्मण से पूछा, "महाराज, आपने मिट्टी की गाय लेना स्वीकार क्यों किया। यह आपके क्या काम आयेगी ?"

ब्राह्मण ने कहा, "जजमान, जो मीठा खाता है, वही खट्टा भी खाता है। असली गायं जब हम लोगों को मिलती है तो एक बार मिट्टी की गाय लेने का काम पड़ गया तो इसको लेने दूसरा कौन आयेगा ? दान लेना-देना तो ब्राह्मण का धर्म है।

ब्राह्मण की यह बात सुन कर बनिये को यह विश्वास तो हो गया कि रहस्य कुछ भी नहीं है, फिर भी उसके मन में यह कसक बनी रही कि अपनी न देने की सौगन्ध टूट गई।

ब्राह्मण उस गाय को लेकर अपने घर चला गया। बनिये ने अपनी पत्नी से पूछा, "क्यों, अब तो खुश हो न ?"

बनियानी थोड़ी मुलकी और बनिया मन में कसक लिये अपनी हाट पर चला गया।

घर जाकर ब्राह्मण ने मिट्टी धोई तो सचमुच ही भीतर से सोने की छोटी-सी गाय निकली, जिसे पाकर वह सन्तुष्ट हो गया।

नियति के नियमानुसार हर व्यक्ति की मृत्यु एक-न-एक दिन होती है। उस बनिये को भी एक दिन मृत्यु ने आ दबोचा। वह मरकर वैतरणी पर पहुंचा तो एक मिट्टी की गाय उसके सामने खड़ी थी। बनिये ने वैतरणी पार करने के लिए गाय की पूंछ पकड़ी। गाय बढ़ी, लेकिन थोड़ी ही दूर जाने पर मिट्टी तो सारी गल-गलकर उतर गई और उसे सोने की गाय दिखाई पड़ी। देखते ही बनिये के तो होश उड़ गये। पागल की तरह अपनी पत्नी को गालियां देने लगा। दोनों हाथ ऊंचे करके चिल्लाता हुआ बोला, "हाय, कुलच्छिनी ने दगा करके मुझे डुबो दिया, मेरा सारा घर लुटा दिया !"

ऐसा कह कर बनिये ने जब अपने हाथ नीचे किये, तब तक वह गाय कुछ आगे निकल चुकी थी। अब बनिये का हाथ गाय की पूंछ तक नहीं पहुंच सकता था, अतः वह वहां-का-वहां ही खड़ा रह गया। अब वह सारी वस्तु-स्थिति समझ गया और लगा पछताने। लेकिन अब पछताने से क्या हो सकता था।

उस दिन से आज तक वह बनिया वैतरणी के बीच में खड़ा है और खड़ा-खड़ा पार जानेवाले दूसरे लोगों को अपनी दुःख-गाथा सुनाता रहता है।

इस कहानी के पाठकों में से अगर किसी को उस बनिये पर दया आ जाय और वह अपने जीवन में एक की जगह दो गाएं ब्राह्मण को दे दे और वैतरणी पार करते समय एक गाय की पूंछ उस बनिए को थमा दे, तो बेचारा वह भी पार हो सकता है, नहीं तो पता नहीं, कब तक वह खड़ा-खड़ा वैतरणी पार करने वाले दूसरे लोगों से अपनी दुःख-गाथा कहता रहेगा और साथ ही 'द' अक्षर की महिमा और माहात्म्य का भी बखान करता रहेगा—जिस 'द' अक्षर से वह जीवन भर इतना कतराता, डरता और बचता रहा था।

(बहता पानी निर्मला, तृतीय संस्करण ; पृष्ठ ११०-११४)

"जीत्या-जीत्या जी म्हारा टोडरमल बीर"

सोलहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण की बात है। दिल्ली के निकट किसी नगर में एक सेठ रहता था। वह जितना धनी था, उतना ही उदार भी। उसकी ओर से अनेक स्थानों पर मन्दिर, धर्मशालाएं, औषधालय और पाठशालाएं तथा अन्य सार्वजनिक संस्थाएं बनायी गई थीं और संचालित थीं। ये संस्थाएं लोगों को लाभ पहुंचाती हुई सेठ का यशोगान किया करतीं। आतिथ्यप्रिय वह इतना था कि कोई भी यात्री उसके नगर से गुजरता हुआ वहां विश्राम करना चाहता, तो उसकी हवेली सदा-सर्वदा सबके लिए समान रूप से खुली मिलती। आये हुए मेहमान की खातिरदारी सेठ और उसकी पत्नी दोनों ही बहुत आदर और स्नेह के साथ करते। "अतिथिदेवो भव" का सिद्धान्त उन लोगों ने अपने जीवन में पूरा-पूरा उतार रखा था।

धन घिरती-फिरती छाया है। लक्ष्मी किसी के घर पीढ़ा डालकर, जमकर आजतक बैठी नहीं। सात तालों के भीतर बन्द करने पर भी वह तो, अपनी इच्छा होती है तब, चली ही जाती है। आने और जाने में सुपात्र-कुपात्र का विचार भी वह नहीं करती। हां सरस्वती के वरद पुत्रों और उपासकों के यहां जाना तो वह क्वचित् ही पसन्द करती है। लक्ष्मी और सरस्वती का आमतौर पर ३६ का योग माना जाता है। कहते हैं, लक्ष्मी के इतने चंचल और अधीर स्वभाव तथा सरस्वती के साथ द्वेष रखने के कारण ही विष्णु भगवान दुखी होकर क्षीरसागर में जाकर आंखें मूंदकर शेष-शय्या पर सोये रहते हैं। लक्ष्मी उन्हें मनाने के लिए उनके पांव दबाया करती है, लेकिन विष्णु भगवान राजी नहीं होते, क्योंकि लक्ष्मी अपना स्वभाव छोड़ने को तैयार नहीं। हवा की तरह उन्मुक्त रहकर विचरण करने वाली लक्ष्मी, आज यहां तो कल वहां इस तरह घूमती ही रहती है।

जो हो, होते-करते एक दिन ऐसा आया कि उस सेठ के घर से भी लक्ष्मी अकारण ही रूठकर चली गई। लक्ष्मी के चले जाने से सेठ को बहुत सदमा पहुंचा। खासकर इसलिए कि अब वह याचकों को संतुष्ट नहीं कर सकेगा तथा अतिथियों की खातिरदारी भी उतनी अच्छी तरह नहीं कर सकेगा।

थोड़े ही दिनों बाद सेठ का स्वर्गवास हो गया। रह गई उसकी पत्नी, एक कुंआरा लड़का और सेठ की सुखद स्मृति तथा उसका अमिट यश।

जिन दिनों सेठ पर लक्ष्मी की कृपा थी, उन दिनों उसके लड़के की सगाई पड़ौस के ही एक कस्बे में अपनी बराबरी की हैसियत वाले दूसरे सेठ की लड़की के साथ हो चुकी थी। अब, जबकि वर-पक्ष का घर धनहीन हो गया तथा घर के मालिक का स्वर्गवास हो गया, तो कन्या के पिता के मन में यह पाप समाया कि किसी तरह इस सम्बन्ध को तोड़कर लड़की दूसरे घर "परणानी"[1] चाहिए। लेकिन उसके सामने समस्या यह आई कि बिना किसी खास कारण के या बिना कोई झूठा-सच्चा बहाना

---

१. विवाह करना।

बनाये, सगाई छोड़ी जाय, तो कैसे छोड़ी जाय। उन दिनों किसी कुटुम्ब का धनहीन होना तो सगाई छोड़ने के लिए यथेष्ट कारण नहीं माना जाता था।

अत: उस सेठ ने सगाई छोड़ने के लिए कोई-न-कोई बहाना ढूंढ़ना, कोई-न-कोई युक्ति विचारना शुरू किया। "जहां चाह, वहां राह" के अनुसार विचारते-विचारते एक युक्ति सूझी और उसके अनुसार सेठ ने एक "बीदड़ी"[2] बाजरे के दानों से भरकर "कासिद"[3] के साथ अपनी समधिन के यहां भेजी और साथ में एक पत्र भी।

कासिद ने बीदड़ी और पत्र ले जाकर हमारी पूर्व-परिचित सेठानी के हाथ में दिये। उसने जब पत्र खोलकर पढ़ा तो वह "सूनी-सी" हो गई। उसे ऐसा जान पड़ा मानो जमीन उसके पैरों के नीचे से खिसक रही है।

उस पत्र में लिखा था, "हमने "सावा" निकलवा लिया है। वसन्त-पंचमी का सावा बहुत श्रेष्ठ बनता है। आप भी अपने पंडित से पूछ लें और वह सहमत हो तो आप लोग उस दिन बारात लेकर आ जायं, लेकिन इस बीदड़ी में बाजरे के जितने दाने हैं उतने आदमी बारात में आने चाहिए, अगर इससे कम हुए तो अपने दोनों घरों की ही शोभा नहीं रहेगी। विवाह के सारे काम दोनों पक्षों की प्रतिष्ठा के अनुरूप होने चाहिए।"

पत्र पढ़ कर सेठानी ने सोच लिया कि यह भी दिनमान की बात है। "दिन करै सो बैरी कोनी करै।"[4] "पतला दिन आवै जद तन का कपड़ा भी वैरी होज्या[5]। चूंकि मालिक का शरीर रहा नहीं तथा अपने पास पैसा भी रहा नहीं, इसलिए समधी बहाना बनाकर सगाई छोड़ना चाहता है। खैर, कोई बात नहीं, जो होना होगा सो हो-जायगा।

उसने कासिद से कह दिया कि कल सुबह तुम्हें उत्तर लिखकर दे दूंगी, आज तुम यहीं विश्राम कर लो।

संयोग की बात है कि उसी दिन राजा टोडरमल उस नगर से गुजर रहे थे। वर्षा अधिक होने के कारण उन्हें रात-भर वहीं ठहरना पड़ा। चूंकि यह सेठानी धनहीन होने पर अतिथि-सत्कार की परम्परा पहले की भांति ही निभाये जा रही थी अत: टोडरमल भी उसीके अतिथि हुए। यद्यपि सेठानी को इस बात का पता नहीं था कि यह टोडरमल हैं फिर भी उसने अपने सहज स्वभाव जैसी खातिरदारी की, उससे वह बहुत प्रभावित हुए। रात-भर उन्होंने वहीं विश्राम किया।

रात बीती प्रात:काल हुआ, चिड़ियां चहकीं और प्रकृति ने गाया—"उठ जाग मुसाफिर, भोर भई, अब रैन कहां जो सोवत है।" टोडरमल अपने बिस्तर से उठे, हाथ-मुंह धोकर अगली मंजिल पर रवाना होने से पहले सेठानी से बिदा मांगने और आभार जताने हवेली के भीतर गये।

---

2. हरकारे हाथ भेजा जाने वाला छोटा पार्सल।
3. हरकारा।
4. बुरे दिन शत्रु से भी अधिक दुखदायी होते हैं।
5. जब बुरे दिन आते हैं तब तन के कपड़े भी दुश्मन जैसा काम करते हैं।

सेठानी अपनी हथेली पर गाल रखे, मुंह लटकाये, अधमुंदी आंखों के साथ पीढ़े पर उदास बैठी थी। टोडरमल को भीतर आते देखा तो हड़बड़ा कर उठी। दोनों ओर से नमस्कार-प्रणाम हुआ। राजा टोडरमल ने उदासी का कारण पूछा। पहले तो सेठानी ने टालमटोल की, लेकिन जब टोडरमल ने अधिक आग्रह किया तो उसकी आंखें भर आईं। दुःखी आदमी को जब किसी से आंतरिक सहानुभूति मिलती है, तो अनचाहे ही उसकी आंखें बरस पड़ती हैं। ऐसा ही हुआ। अश्रुपूरित आंखों से सेठानी ने सारी कथा कह दी।

टोडरमल ने उसे सान्त्वना दी, हिम्मत रखने को कहा और बोले, "मैं तुम्हारा धर्म का भाई हूं। तुम मेरी बहन हो और लड़का मेरा भानजा। तुम्हें किसी भी बात की चिंता करने की जरूरत नहीं है। मैं भात लेकर आऊंगा और समधी ने जितनी बड़ी बारात चाही है उससे सवाई की व्यवस्था करके ले आऊंगा। तुम निश्चिन्त रहो।"

सेठानी ने कहा, "एक रात "बासा"[6] देने के बदले मैं आपको इतना बड़ा कष्ट कैसे दे सकती हूं। मैंने अपना सारा दुखड़ा आपके सामने इसलिए रो दिया था कि मेरे स्वयं के मन में आपके प्रति सगे भाई जैसा ही स्नेह उमड़ पड़ा था, और इसलिए मेरा जी भर आया। अब मेरे मन में न कोई दुःख रहा है, न अपनी स्थिति के प्रति ग्लानि ही। आप कष्ट न करें, मैं अपनी लाचारी की बात समधी को लिख दूंगी और अपनी हैसियत वाले किसी दूसरे घर की सुशील कन्या के साथ सम्बन्ध करके बहू को अपने घर लिवा लाऊंगी। लेकिन मैं आपसे इतना सा जरूर चाहती हूं कि आप मुझे अपना नाम-पता-ठिकाना बता दें ताकि मैं राखी-पूनम के दिन आपको राखी भेज दिया करूं। इतना काफी होगा।"

टोडरमल ने कहा, "कष्ट की तुमने भली कही। तुम बेफिक्र रहो। ब्याह आया और मैं आया। तुम तो एक काम करो कि जितनी बड़ी बीदड़ी तुम्हारे पास आई है, उतनी ही बड़ी बीदड़ी राई के दानों से भरकर समधी के यहां भेज दो और यह लिख दो कि "बारात आपके लिखे अनुसार ही आयेगी। आप निश्चिन्त रहें। मेरी प्रतिष्ठा की तो खैर क्या बात पड़ी है, लेकिन आपकी प्रतिष्ठा और शोभा बनी रहे, इसका मैं पूरा खयाल रखूंगी। आप इस बीदड़ी में राई के जितने दाने हैं, उतने आदमी खातिर-तवज्जह के लिए अवश्य तैयार-तैनात रखें, क्योंकि बारात में बहुत बड़े-बड़े रईस-रजवाड़े, सेठ-साहूकार, और हाकिम-हुक्काम आदि आने वाले हैं। इसलिए ऐसा न हो कि खातिरदारी में किसी तरह की कमी या कसर रह जाय। अगर ऐसा हुआ तो हम दोनों को ही लोगों के सामने नीचा देखना पड़ेगा।"

सेठानी ने ऐसा ही किया।

टोडरमल की बिदाई के समय सेठानी ने उनकी यात्रा की मंगलकामना करते हुए उन्हें अपने हाथ से गुड़ खिलाया, माथे पर तिलक लगाया और बलैयां लीं। दोनों ओर से आंखें सजल थीं।

---

6. रात्रि विश्राम (ठहरने) की सुविधा।

सेठानी ने उसी दिन समधी के यहां से आये हुए कासिद को अपना पत्र और राई के दानों की बीदड़ी देकर फिरती भेज दिया।

दूसरे ही दिन अपने पुरोहित और पुराने मुनीम को बुलाकर बोली कि लड़के का विवाह वसंत-पंचमी का तय हुआ है, आपलोग धन की ओर से निश्चिन्त होकर इस घर के पुराने रुतबे और प्रतिष्ठा के अनुसार विवाह की तैयारी आरम्भ कर दें। पीले चावल लेकर कस्बे के हर घर में जाकर सारे लोगों को "भेल" की जीमणवार"[7] तथा बारात में शरीक होने का निमन्त्रण दे आवें। कोई भी घर छूट ना पाये।

मुनीम और पुरोहित ने उत्साहपूर्वक सारी तैयारी आरम्भ कर दी। दरवाजे पर नगाड़े और शहनाई बजने लगे. गीत गाये जाने लगे और जीमणवार होने लगी। घर में हलवाइयों, दर्जियों, सुनारों आदि की भीड़ लग गई और दूसरे आने-जाने वाले लोगों का भी तांता बंध गया।

उधर जब कन्या-पक्ष वालों के यहां पत्र पहुंचा, तो उन्होंने उसे पढ़कर यही सोचा कि धनहीन हो जाने और पति का स्वर्गवास हो जाने के कारण समधिन बेचारी विक्षिप्त हो गई है। उसका दोष भी क्या है ! दुख के समय ऐसा होना स्वाभाविक ही है। इस तरह की झूठी और व्यर्थ की सहानुभूति प्रकट करके उन्होंने पत्र को फाड़ डाला और राई के दाने इधर-उधर बिखेर दिये।

लगन के एक दिन पहले हाथी, घोड़े, ऊंट, पैदल सेना और बाजा-गाजा लेकर टोडरमल पहुंचे लड़के की मां के घर, और अपना परिचय दिया। सेठानी तो राजा टोडरमल का नाम सुनकर विह्वल हो गई, गद्‌गद् हो गई। उसने अपने भाग्य को सराहा। उसे ऐसा लगा कि उसके पुराने सुख के दिन फिर लौट आये हैं।

राजा टोडरमल के ठहरने और भोजन आदि की व्यवस्था की गई। शामं को "भात का नेग"[8] सम्पन्न हुआ। दूसरे दिन सवेरे ही राजा टोडरमल इस शहर से जितने बाराती साथ में जाने वाले थे, उनको लेकर कन्या-पक्ष वालों के यहां पहुंचे।

शहर के बाहर ही बारात को रोककर लड़की के पिता के पास खबर भेजी गयी। टोडरमल का नाम और आई हुई बारात के ठाठ-बाट का समाचार सुनकर कन्या का पिता तो सन्न रह गया। उसे ऐसा लगा कि आकाश से उसके हाथ छूट गये हैं। आंखों के आगे अंधेरा छा गया, काटो तो खून नहीं। वह तो इस डर से कि पता नहीं, टोडरमल क्या दण्ड दें, पीपल के पत्ते की तरह थर-थर कांपने लगा, लेकिन आखिर हिम्मत बटोर कर अपने भाई-बन्धुओं को इकट्ठा किया, उनके सामने सारे समाचार कहे और उन्हें साथ लेकर बेहाल दौड़ा-दौड़ा टोडरमल के पास पहुंचा। अपने अपराधों के लिए बहुत-बहुत क्षमा-याचना की और बोला, "पलक-पांवड़े बिछे हैं ! आइये और विवाह की रस्म सम्पन्न करके मुझे कृतार्थ कीजिये ! आपके योग्य खातिरदारी करना तो मेरे बलबूते की बात नहीं है, फिर भी जैसी बन पड़ेगी, उसमें कोई कसर नहीं रखूंगा।"

---

7. विवाह के अवसर पर होने वाला भ्रातृ-भोज
8. माहेरा—वर या कन्या के विवाह के अवसर पर उसके ननिहाल वालों की ओर से गहने, कपड़े आदि दिये जाने की रस्म।

इस पर टोडरमल ने कहा, "क्षमा करने वाला मैं कौन ? आपने मेरा तो कोई कुसूर किया नहीं है। अपराधी हैं तो आप वर की मां के हैं, इसलिए क्षमा करने की अधिकारिणी तो वह है। फिर भी उनका भाई होने के कारण मैं उनका स्वभाव जानता हूं। वह बहुत उदार हैं, इसलिए जब आपके मन में अपनी करनी के प्रति ग्लानि हो गई है तो मेरी बहिन के मन में किसी प्रकार का मैल नहीं रह जायगा। शान्त चित्त से अपने घर जाइये और विवाह की तैयारी करिये।"

टोडरमल ने सेठ को सांत्वना तो दी, लेकिन साथ ही भविष्य के लिए सावधानी भी दिलाई।

बारात जनवासे पहुंची। रात को फेरे हुए। दूसरे और तीसरे दिन अन्य सारे नेगचार सम्पन्न होकर विदाई हुई। बारात जब वापस लौटी तो सेठानी ने अपने बेटे और चांद-सी सुलक्खिनी बहू को "राई-नोन" करके सुन्दर रथ से नीचे उतारा, 'वारीफेरी" और "निछरावल" की, उनका माथा सूंघा और बलैयां लीं। टोडरमल की आरती उतारी। बेटे-बहू को हवेली के भीतर ले जाकर अपने कुल-देवता के सामने धोक दिलाई तथा विवाह के बाद के सारे नेगचार सम्पन्न किये। सेठानी ने उस समय जो गीत गाया, उसकी पहली कड़ी यह थी—"जीत्या-जीत्या जी म्हारा टोडरमल बीर। जीत्यों म्हारो केसरियो बनड़ो, जीत्यो जी टोडरमल के पाण।"

उस समय से आज तक यह गीत राजस्थान के प्रत्येक भाग में एकाधिक रूप में विवाह के बाद वर जब वधू को लेकर लौटता है तब गाये जाने की प्रथा चालू है।

यह तो हुई कहानी !

अब पाठक राजा टोडरमल के बारे में थोड़ी-सी ऐतिहासिक जानकारी भी कर लें, साथ ही टोडरमल नाम के दूसरे कुछ और प्रसिद्ध व्यक्तियों को भी जान लें।

राजा टोडरमल लाहौर के रहनेवाले खन्नावंशी खत्री थे। ये अकबर के राज्य में राजस्व-मन्त्री के पद पर काम करते थे और थे अकबर के नवरत्नों में से एक। बादशाह की ओर से इन्हें "राजा' का खिताब मिला हुआ था। ये 'चारहजारी' मनसबदार थे।

"आइने-अकबरी" के अनुसार "चारहजारी मनसबदार" उसे कहा जाता था, जिसके पास विभिन्न जाति के अस्सी हाथी, दो सौ सत्तर घोड़े, पैंसठ ऊंट, सत्रह खच्चर और एक सौ तीस बोझा ढोनेवाली गाड़ियां होती थीं। इस सारे "लवाजमे" का खर्चा मनसबदार खुद उठाता था, बदले में राज्य से उसे बाईस हजार रुपये महीना मिला करते थे। "बीकानेर का इतिहास" के अनुसार आगे चलकर राजा टोडरमल तथा कछवाहा राजा मानसिंह का रुतबा और भी बढ़ गया था तथा वे सातहजारी मनसबदार हो गये थे।

टोडरमल राज-काज के संचालन और हिसाब-किताब के मामले में इतने दक्ष थे कि अपने राजस्व-मन्त्रित्व काल में उन्होंने भूमि-पैमाइश की जो विधि चलाई थी वह आज भी प्रचलित है।

लाहौर में आज भी एक बड़ी-सी हवेली खड़ी है, जिसमें टोडरमल के वंशज रहा करते थे। यह हवेली भारत-विभाजन के पहले तक 'टोडरमल का किला" नाम से प्रसिद्ध थी।

कहा जाता है कि बिना मात्रा की जो मुड़िया लिपि लिखी जाती है उसके आविष्कारक भी राजा टोडरमल ही थे। इसकी साक्षी के रूप में नीचे लिखा दोहा प्रचलित है :—

देवनागरी अति कठिन, स्वर ब्यंजन ब्यौहार।
तातें जग के सुगम हित, मुड़िया कियौ प्रचार॥

मुड़िया लिपि को "महाजनी" लिपि भी कहा जाता है। शेखावाटी की तरफ इस लिपि को 'बाणियां आंक" तथा देवनागरी को "बामणी आंक" कहा करते हैं।

राजस्थान में सारी ही जगह व्यापारी वर्ग की सारी बहियां, हुण्डी-पुरजे, दस्तावेज और लिखा-पढ़ी आदि बाणियां आंकों में ही हुआ करती थी। अक्षरों पर मात्रा न होने पर भी किसी दस्तावेज के अर्थ में आजतक कभी कोई फर्क नहीं पड़ा है। लेकिन अब तो मुड़िया लिपि का प्रचलन केवल बड़ी उमर के कुछ लोगों तक ही सीमित रह गया है। लगता है, कुछ वर्षों में इसका प्रचलन उठ जायगा, क्योंकि आज का विद्यार्थी न तो यह लिपि लिखता ही है और न भली प्रकार पढ़ ही सकता है।

कहा जाता है कि राजा टोडरमल अपने अन्तिम दिनों में जब अपने कार्य भार से मुक्त होकर वृन्दावन-वास करने चले गये थे, तो एक बार अकबर को एक विशेष काम के लिए उनकी सलाह की जरूरत पड़ी थी और आदमी भेजकर उन्हें बुलवाया था।

टोडरमल नाम के एक अन्य व्यक्ति काशी के पास भदैनी ग्राम के रहनेवाले थे। उन्हें गोस्वामी तुलसीदासजी बहुत मानते थे। वे एक साधारण जमींदार थे।

कहा जाता है कि एक बार गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपनी जगत् प्रसिद्ध रामचरितमानस की हस्तलिखित प्रति चोरी के भय से इनके घर पर रखी थी। यह भी कहा जाता है कि इनके घर में भाइयों में किसी बात को लेकर आपसी मतभेद हो गया था, तो गोस्वामी तुलसीदास ने ही पंचायती की थी। वह पंचायतनामा तुलसीदासजी का स्वयं का लिखा हुआ है और टोडरमल के वंशजों के पास आज भी सुरक्षित है। विक्रम परिषद्, वाराणसी द्वारा प्रकाशित तुलसी-ग्रन्थावली के दूसरे भाग में उस पंचायतनामे की फोटोस्टेट प्रति भी है। जो लोग तुलसीदासजी के अक्षर देखना चाहें, वे विक्रम-परिषद् की उक्त तुलसी ग्रन्थावली की प्रति मंगवा कर देख सकते हैं।

कहते हैं कि इन टोडरमलजी के वंशज आज भी गोस्वामी तुलसीदासजी की पुण्य-तिथि के दिन ब्राह्मणों को "सीधा" देते हैं।

इनकी मृत्यु पर गोस्वामी तुलसीदासजी ने नीचे लिखा दोहा कहा था, जो आज भी बहुत लोगों के जबान पर है :

चार गांव को ठाकुरो, मन को महा महीप।
तुलसी या संसार से, अथयो टोडर दीप॥

इसके बाद शेखावाटी-स्थित भोमियोंवाले उदयपुर में भी एक टोडरमल नाम के प्रसिद्ध व्यक्ति हुए हैं। वह जाति के राजपूत थे और थे बहुत ही आतिथ्यप्रिय और उदार। उनकी अतिथि-सेवा के बारे में जिक्र आता है कि राणा जगतसिंह ने जब हरिदासजी

नामक "बारठ"[9] को उनके पास भेजा था, तब उनकी पालकी स्वयं टोडरमल ने उठायी थी। उनकी उदारता के बारे में नीचे लिखा दोहा प्रसिद्ध हैं :

दो उदयापुर ऊजला[10], दा दातार अटल्ल[11]।
इक तो राणा जगतसी[12], दूजो टोडरमल॥

यह टोडरमल शाहजहां के दरवार में डेढ़हजारी मनसबदार थे और शाहजहां के बहुत विश्वासपात्र भी।

टोडरमल नाम के एक प्रसिद्ध व्यक्ति आज से दो सौ वर्ष पहले और भी हुए हैं। वे जयपुर के रहनेवाले दिगम्बर जैन थे तथा थे बाल-ब्रह्मचारो। उन्होंने जैन-धर्म सम्वन्धी अनेक प्रसिद्ध आध्यात्मिक ग्रन्थों की रचना की है।

एक वार उनकी मां ने भोजन में यह सोचकर नमक डालना बन्द कर दिया था कि नमक से प्यास अधिक लगती है, लेकिन टोडरमल को पता भी नहीं चला कि भोजन "अलूना" है। जिस दिन उनका ग्रन्थ पूरा हुआ और वे भोजन पर बैठे तो उन्हें लगा कि भोजन अलूना है, क्योंकि अब वे साधनावस्था से अपनी स्वाभाविक अवस्था में आ गये थे। उन्होंने मां से कहा, "मां, मालूम होता है कि तुम आज नमक डालना भूल गयी हो।" तब मां ने कहा, "मालूम होता है, आज तुम्हारा ग्रन्थ पूरा हो गया है।" और दोनों ने एक-दूसरे की ओर श्रद्धा तथा स्नेह-भरी दृष्टि से देखा।

(बहता पानी निर्मला, तृतीय संस्करण ; पृष्ठ २३७-२४६)

---

9. बारहठ, चारण 10. निर्मल, 11. अटल, 12. जगत सिंह।

परिग्रह

एक साधु था। वह जंगल में झोंपड़ी बनाकर रहता था। उसके पास मात्र एक लंगोटी थी और एक कमण्डल। प्रातःकाल गांव में जाकर वह 'गोचरी' कर लाता और जो कुछ नियमित समय में मिल जाता, उतना सा खाकर दिन-भर भजन-स्मरण करता रहता। उसकी झोंपड़ी से थोड़ी ही दूर पर चरागाह था, जहां ग्वाले अपने पशु चराया करते। कभी-कभी कोई-कोई ग्वाला श्रद्धापूर्वक थोड़ा-बहुत दूध साधु महाराज को भी दे जाता था, जिसे वह स्वीकार कर लेते, लेकिन कभी किसी से वे दूध मांगते नहीं थे।

एक बार साधु महाराज की झोंपड़ी में चूहों का उत्पात हो गया और वे चूहे आए दिन बांस पर लटकाई हुई लंगोटी को काटने लगे। अब तो साधु महाराज के लिए मुश्किल हो गई, क्योंकि बिना लंगोटी के भिक्षाटन के लिए जाया नहीं जा सकता और भिक्षाटन के लिए नहीं जायं तो खायें क्या ! अतः दो-चार बार तो गृहस्थों से लंगोटी का कपड़ा मांगकर लाये, लेकिन जब आए दिन ही चूहे टंगी हुई लंगोटी को काटने लगे, तो साधु को कुछ सूझ नहीं पड़ा कि क्या करना चाहिए। रोज-रोज कपड़ा मांगने के लिए हाथ पसारना उनके मन ने स्वीकार नहीं किया। अन्त में उन्हें एक उपाय सूझ पड़ा। क्यों न एक बिल्ली को पाल लिया जाय, जिससे कोई चूहा आने का साहस ही नहीं करेगा। साधु महाराज ने ऐसा ही किया।

इससे चूहों की परेशानी तो दूर हो गई, लेकिन अब प्रश्न यह उठा कि बिल्ली को खिलाया क्या जाय। बिल्ली स्वस्थ बनी रहे, इसके लिए उसको थोड़ा-बहुत दूध देना भी आवश्यक था। अतः जो ग्वाले श्रद्धा-भक्ति से दूध देने महाराज को कुटी में आते, उन्हीं के पास स्वयं महाराज को दूध मांगने के लिए जाना पड़ता। कुछ दिनों तो उनको अपनी पुरानी साख के कारण कभी किसी ग्वाले से और कभी किसी ग्वाले से दूध मिलता रहा, लेकिन आखिरकार इस प्रकार की नित्यप्रति की मांग से सारे ग्वाले तंग आ गये। एक दिन सबने मिलकर इस बात पर विचार किया और यह तय किया कि आज से साधु महाराज को कोई दूध न दे।

अब तो साधुजी को और भी मुश्किल हो गई। 'गये थे रोजा छुड़ाने, नमाज गले घल गई' वाली स्थिति हो गई उनकी। भूखी बिल्ली 'म्याऊं-म्याऊं' करती इधर-उधर फिरे। साधु महाराज को दया आई। उन्होंने सोचा, क्यों न एक गाय पाल ली जाय, जिससे अपने को भी दूध मिलता रहेगा और बिल्ली को भी दूध पिला दिया करेंगे। लेकिन सामने प्रश्न यह आया कि गाय खरीदने के लिए पैसे कहां से आये, क्योंकि साधुजी की त्याग की जो साख थी, वह धीरे-धीरे कम होती जा रही थी। अतः गृहस्थों से पैसा मिलने की आशा धूमिल हो गई थी।

साधु ने सोचा कि राजा के पास चलना चहिए, शायद वहां याचना सफल हो जाय। ऐसा सोचकर वह राजा के पास गये और उन्हें आशीर्वाद देकर एक अच्छी-सी गाय के लिए याचना की। राजा ने तुरन्त अपनी गोशाला सें हाल ही की

ब्याई हुई दुधारु गाय साधु महाराज को दिलवा दी। महाराज तो निहाल हो गये, रोम-रोम से राजाजी को पुनः आशीर्वाद दिया और गाय व बाछे को लेकर झोंपड़ी में चले आये।

अब वह भजन-स्मरण की बात तो भूल गये और लग गये उस गाय की सेवा-टहल में। सुबह उठकर वे गाय को दुहते, फिर उसे चराने के लिए जंगल में ले जाते। आती दफे गाय के लिए घास काटकर ले आते। भागते-दौड़ते गांव में जाकर भिक्षाटन करते और आते ही खा-पीकर फिर गाय की सेवा में लग जाते। गाय दुहकर स्वयं दूध पीते और अपनी बिल्ली को पिलाते। उन्हें भजन-स्मरण करने के लिए अब बहुत ही कम समय मिलता था। भागते-दौड़ते दो-चार राम के नाम लिये कि भजन की इति-श्री मान लेते थे।

कुछ दिन तो लोग कुछ बोले नहीं, लेकिन आखिरकार किसान लोग साधुजी को अपने खेत में गाय चराने से तथा घास काटने से मना करने लगे। साधुजी ने सोचा, क्यों न दो-चार बीघा जमीन राज्य से अपने नाम लिखा लें, जिससे अपने खाने-भर का अन्न भी हो जायगा और गाय के लिए घास भी। न गांव में भिक्षाटन के लिए जाना पड़ेगा और न किसी ग्वाले से ही कुछ मांगना पड़ेगा। यह सोचकर उन्होंने जमीन का एक छोटा सा टुकड़ा अपने नाम लिखा लिया और लगे खेती करने।

आदमी भी क्या अनोखा जीव है! अपनी उलझनें बढ़ाकर खुद ही फंसता जाता है। मकड़ी जिस तरह जाला बुनती जाती है और स्वयं ही उसमें कैद होती जाती है, उसी तरह मनुष्य भी अपनी समस्याएं, जरूरतें बढ़ाता जाता है और उसके ताने-बाने में फंसता जाता है।

यही हाल साधु महाराज का हुआ। अनजान में ही वे तो पूरे गृहस्थ हो गए। कमी रही तो केवल स्त्री की। वह भी शायद पूरी हो जाती, लेकिन सिर और दाढ़ी के सारे बाल सफेद हो चुकने के कारण तथा साथ ही धन की कमी के कारण उन्हें अपनी लड़की दे तो कौन दे?

इस तरह कुछ वर्ष तो साधुजी के चैन से कट गये, लेकिन मुश्किल तब आई जब आगे चलकर एक साल भयंकर अकाल पड़ा, जिसके कारण खेत में कुछ भी नहीं उपजा। ऐसा होने से वे राज्य की जमीन का लगान नहीं चुका सके। नतीजा यह हुआ कि जिन-जिन लोगों ने लगान नहीं चुकाया था, उन सब की राज्य में बुलाहट हुई और उन्हें दण्डस्वरूप धूप में खड़ा कर दिया गया। साधुजी भी उनमें से एक थे। वैसाख-जेठ की तपती हुई धूप में खड़े-खड़े साधु महाराज तिलमिला उठे और अपने पुराने दिनों की याद करने लगे कि अपन तो सुख से रह रहे थे, भगवान का नाम जपते थे, आखिर यह सब क्या हो गया और कैसे हो गया। सोचते-सोचते उनके ध्यान में आया कि इस सारे खटराग का कारण बस लंगोटी है। अगर लंगोटी न होती तो चूहे क्यों आते, चूहे न आते तो बिल्ली को क्यों पालना पड़ता? बिल्ली न होती तो गाय क्यों लाते, और गाय न होती तो खेती क्यों करते? बस उनके अन्तर्चक्षु खुल गये और उन्होंने उपाधि-रूप उस लंगोटी को खोलकर फेंक दिया और हर्षोन्मत्त होकर नाचने लगे।

सिपाहियों ने समझा, साधु महाराज कष्ट न सह सकने के कारण पागल हो गये हैं। अतः वे पहुंचे उनके पास और लगे तरह-तरह से समझाने-बुझाने। लेकिन साधुजी तो अपने-आप में मस्त हो गये थे, इसलिए कुछ बोले नहीं। 'मन मस्त हुआ तब क्यों बोले ?' यह हाल था साधु महाराज का।

सिपाहियों ने आकर राजा को खबर दी। वह वहां आये। राजाजी थे समझदार। सारा हाल देखकर तुरन्त ताड़ गये कि साधु को ज्ञान की फटकार लगी है। उन्होंने शाप से डरकर महाराज से बहुत-बहुत क्षमा-याचना की और उन्हें तुरन्त मुक्त कर दिया।

साधुजी अपनी झोपड़ी में आये और गाय तथा बिल्ली आदि को छोड़कर पूरे-पूरे अन्तर्मुखी होकर पुनः भजन स्मरण में लग गये और पूरे-पूरे निर्द्वन्द्व हो गये।

सच है, परिग्रह तो बंधनकर्ता होता ही है, छोटा हो या बड़ा। संग्रह-परिग्रह का ही दूसरा नाम 'नाग-पाश' है।

(बहता पानी निर्मला तृतीय संस्करण; पृष्ठ ७३-७६)

एक भेंट-वार्ता

[शारदा सदन महाविद्यालय द्वारा प्रकाशित "पूर्वा" के सम्पादक-मण्डल ने भागीरथजी से उनके मुकुन्दगढ़ वास के अवसर पर २३ सितम्बर, १९७६ को भेंट की। उस भेंट का "पूर्वा" में जो विवरण प्रकाशित हुआ था, उसे यहां छापा जा रहा है—सं०]

प्रश्न १ : चूंकि आप स्वातंत्र्य-संग्राम में सक्रिय रहनेवाले बड़े-बड़े नेताओं के सम्पर्क में रहे हैं, अत: हम आपसे यह जानना चाहते हैं कि क्या आपकी राय में १९४७ के देश के विभाजन को टाला जा सकता था ?

उत्तर : मेरी राय में विभाजन टल सकता था किन्तु हमारे बड़े नेताओं के मन की यह तैयारी नहीं रह गई थी कि वे और अधिक लम्बे समय तक आन्दोलन जारी रखें। कहना चाहिए कि उनके मन में एक प्रकार की थकान-सी आ गई थी। लॉर्ड माउण्टबेटन ने पं० जवाहरलालजी और सरदार वल्लभभाई पटेल को बुलाया और इस बात का आग्रह किया कि वे ब्रिटिश सरकार का प्रस्ताव मान लें, जिसमें देश को स्वतंत्र करने की बात तो थी लेकिन विभाजन की शर्त के साथ। उस प्रस्ताव के हर पहलू पर आपस में चर्चा हुई। अन्त में नेहरूजी और सरदार पटेल ने विभाजन की बात मान ली। उसके बाद माउन्टबेटन ने गांधीजी को बुलाया। गांधीजी ने विभाजन की बात मानने से इन्कार किया तब लार्ड माउन्टबेटन ने हंसकर कहा, Mr. Gandhi, The Congress to-day is not in your hand, it is in my hand. गांधीजी समझ गये कि नेहरूजी और सरदार पटेल ने विभाजन के लिए स्वीकृति दे दी है। अत: उन्होंने माउन्टबेटन से इतना ही कहा "अब मुझे कुछ नहीं कहना है" और ऐसा कहकर वे वापस चले आये।

उन दिनों ब्रिटिश सरकार की बागडोर लेबर पार्टी के हाथों में थी। वे लोग भारत को आजादी देने के पक्ष में थे अत: वहां के तत्कालीन प्रधान मंत्री एटली ने कंजरवेटिव पार्टी के नेता चर्चिल को बुलाया और उनसे कहा "हमलोग भारत को आजादी देना चाहते हैं और देंगे। मैं आपसे इसके लिये सहमति चाहता हूं क्योंकि सर्वसम्मति से हम भारत को स्वतंत्र करेंगे तो ब्रिटिश सरकार की शोभा अधिक होगी तथा भारतवासियों के मन में किसी तरह की कटुता नहीं रह जायेगी। मैं चाहता हूं कि आप अपनी सहमति देकर मेरे हाथ मजबूत करें।

चर्चिल सिद्धान्तत: भारत को आजादी देने के पक्ष में नहीं थे। वे पूरे-पूरे साम्राज्यवादी थे किन्तु जब उन्होंने देखा कि सत्तारूढ़ ब्रिटिश सरकार भारत को आजादी देने के लिए कटिबद्ध है तो उन्होंने कहा, "यदि आप भारत के दो टुकड़े कर देते हैं तो मैं अपनी सहमति दे सकता हूं।" चूंकि लेबर-पार्टी यह नहीं चाहती थी कि भारत की स्वतंत्रता को लेकर इंगलैण्ड में फूट पड़े अत: एटली ने कंजरवेटिव पार्टी के नेता चर्चिल की यह बात स्वीकार कर ली।

(चर्चा के दौरान श्री कानोड़ियाजी ने यह भी बताया कि उपर्युक्त बात आजादी के कुछ ही दिनों बाद डॉ० राधाकृष्णन ने उनसे कही थी।)

प्रश्न २ : स्वतंत्रता के पहले के और बाद के नेतृत्व में आपकी राय में क्या अन्तर है ?

उत्तर : इसमें तो मूल अन्तर है। एक प्रकार से पूर्व और पश्चिम का अन्तर है, ऐसा कहना चाहिए। स्वतंत्रता के पहले जो राजनीति थी वह त्याग-तपस्या की, जेल जाने और मार खाने की थी। आज की राजनीति भोग-प्रधान है। पहले लोगों के मन में एक ही आकांक्षा थी कि देश को कैसे आजादी मिले, भारत कैसे खुशहाल हो, लेकिन आज की राजनीति में तो अपना स्वार्थ प्रधान है। कीर्ति और पद की लालसा ही लक्ष्य है। गांधीजी की पीढ़ी के नेताओं में तो आज कोई भी बचा नहीं। दूसरी पीढ़ी राजेन्द्र बाबू, जवाहरलालजी, नेताजी सुभाष बोस आदि की है। उस पीढ़ी के लोगों में भी शायद ही कोई बचा है।

प्रश्न ३ : गांधीजी के व्यक्तित्व में ऐसा कौन सा जादू था जिसने सारे विश्व के बड़े-से-बड़े व्यक्तियों को उनकी ओर आकर्षित किया ?

उत्तर : गांधीजी जैसा सोचते थे वैसा कहते थे, जैसा कहते थे वैसा करते थे। सत्य उनके जीवन का मुख्य आधार था। स्वभाव उनका अत्यन्त स्नेहिल था। प्रताड़ित और उपेक्षित मानव को उठाना वे अपना कर्तव्य मानते थे। राजनीति में सत्य और अहिंसा को दाखिल करने वाले वे ही सर्वप्रथम व्यक्ति थे और उन्होंने इसका अपने जीवन में तथा कार्यों में प्रयोग किया और वे अपने प्रयोग में सफल भी हुए। इसीलिए वे कर्मवीर से महात्मा कहलाने लगे।

प्रश्न ४ : गांधीजी के ट्रस्टीशिप सिद्धान्तों को क्या कभी व्यावहारिक रूप मिला है तथा इसकी क्या उपादेयता है ?

उत्तर : यह कोई नया सिद्धान्त नहीं है। ईशोपनिषद् के "ईशावास्यम इदम सर्वम्, यत् किं च जगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुंजीथाः, मा गृधः कस्यस्विद धनम्॥" मंत्र से यह स्पष्ट होता है कि यह बहुत पुराना सिद्धान्त है। गांधीजी ने समय-समय पर कहा है कि मैं जो कुछ प्रतिपादित कर रहा हूं उसमें कोई नई बात नहीं है। मैं तो अपने पूर्वजों द्वारा कहे हुए सिद्धान्त को नई भाषा और नये रूप में रख रहा हूं। इस सिद्धान्त की उपादेयता सर्वदा थी, है और रहेगी, लेकिन है लोगों के मन में जब तक स्वार्थ भावना है तब तक यह सिद्धान्त कार्यरूप नहीं ले सकता। मनुष्य के मन की यह तैयारी होनी चाहिए कि उसमें अपनी चाह कम हो, अपने लिए भोग की इच्छा कम-से-कम हो, देने की अधिक से अधिक। ज्यों-ज्यों यह भावना विकसित होगी त्यों-त्यों लोगों की सुख-शांति बढ़ेगी।

प्रश्न : ५ आज की शिक्षा-पद्धति हमारे राष्ट्र के अनुकूल है क्या ?

इसका उत्तर देना मेरे लिए सहज नहीं है क्योंकि मैं कोई शिक्षाविद् नहीं हूं। लेकिन हां, अपने अनुभव से इतना तो कह सकता हूं कि यह शिक्षा हमारे नैतिक उत्थान में सफल नहीं हुई है। आज के शिक्षक लोग और छात्र दोनों का ही ध्यान नैतिक मान्यताओं और चरित्र-निर्माण की ओर कम है। फिर भी कोई शिक्षा-शास्त्री

आज तक इसका विकल्प नहीं बता सका है। गांधीजी ने बुनियादी शिक्षा के नाम पर एक शिक्षा-पद्धति का परीक्षण किया था किन्तु वह पूरा सफल नहीं हुआ, अतः जब तक दूसरा विकल्प हमारे सामने नहीं है तब तक इस शिक्षा को छोड़ने के लिए तो नहीं कहा जा सकता।

प्रश्न ६ : परिवार-नियोजन पर आपकी क्या राय है ?

उत्तर : भारत जैसे अविकसित और बहुजनसंख्या वाले देश के लिए परिवार-नियोजन परम आवश्यक है। जब तक जनसंख्या वृद्धि पर रोक नहीं लगती तब तक हम न अपने बच्चों को स्नेह दे सकते हैं और न उनकी दूसरी आकांक्षाएं ही पूरी कर सकते हैं।

जीवन की पांच मूलभूत आवश्यकताएं हैं :—(१) पेट-भरने को ऐसा भोजन हो जो सुस्वादु तथा पर्याप्त पोषण देने वाला हो। (२) शीत-निवारण और लज्जा निवारण के लिए काफी होने के साथ-साथ सुरुचिपूर्ण वस्त्र हों। (३) पर्याप्त हवा और प्रकाशयुक्त आवास, चाहे वह कच्चा ही हो। (४) अच्छी शिक्षा और (५) अच्छी चिकित्सा की व्यवस्था। इन पांच चीजों की पूर्ति तभी सम्भव है जबकि जनसंख्या वृद्धि पर रोक लग जाय, "घण जायां घण ओलमा, घण बरस्यां कण हाण"।

लेकिन फिर भी मुझे व्यक्तिगत रूप से ऐसा लगता है कि आज परिवार-नियोजन के कार्यक्रम में जिस तरह की होड़बाजी तथा प्रलोभन के तरीके बरते जा रहे हैं, वे अनुचित हैं। यह बात ठीक है कि हमारे देश की जनसंख्या और नहीं बढ़ पाये, ऐसा होना चाहिए लेकिन गैरवाजिब तरीकों से नहीं।

प्रश्न ७ : अनुसूचित जातियों और जनजातियों को प्रदत्त विशेष सुविधाओं से प्रशासनिक कुशलता पर क्या प्रभाव पड़ा है ?

उत्तर : मैं हरिजन सेवा का पक्षपाती रहा हूं और आज भी हूं। यथासाध्य इस क्षेत्र में काम भी किया है। हरिजन सेवक संघ के साथ मेरा सम्बन्ध इसकी स्थापना काल से रहा है और आज भी है। शेखावाटी की शिक्षण-संस्थाओं में, जहां तक मेरा खयाल है, हरिजन लड़के ने सबसे पहले प्रवेश मुकुन्दगढ़ के शारदा सदन स्कूल में पाया था। प्रवेश पाने से मेरा मतलब एक साथ बैठकर पढ़ना और एक ही जगह से पानी पीना आदि। उसके कारण मुझे गांववालों की नाराजगी भी मोल लेनी पड़ी थी। मैंने सदा यह माना है और आज भी यह मानता हूं कि महज जाति विशेष में जन्म लेने के कारण कोई छोटा या बड़ा नहीं माना जाना चाहिए। हर व्यक्ति को पूजा-अर्चना में, ठहरने आदि में, खाने-पीने में, पढ़ने में, धंधे में सब प्रकार का समान अधिकार होना चाहिए। मैं जिन दिनों की बात कर रहा हूं, यानी आज से ४० वर्ष या इससे भी पहले की, उन दिनों तो हरिजनों को अपने पीने का पानी 'खेतों' से भरकर लाना पड़ता था, जहां पशु पानी पिया करते थे तथा जिसमें कीड़े बिल-बिलाया करते थे। वह सर्वथा अन्यायपूर्ण बात थी। किन्तु आज वे सब मान्यताएं बदल गई है, स्थिति भी बदल गई है। अब जो हरिजनों को विशेष अधिकार दिये जाते हैं, यानी राजकीय सेवाओं में तथा शिक्षण संस्थाओं में, उनकी मैं विशेष आवश्यकता नहीं मानता। प्रशासनिक कार्यों में या शैक्षणिक संस्थाओं में या अस्पतालों

में यदि केवल कुछ लोगों को भर्ती किया जाय, जो मेरिट में खरे नहीं उतरते हैं किन्तु वे एक विशेष जाति के हैं तो प्रशासनिक कुशलता में बाधा आयेगी ही आयेगी। अवर्णों को सुविधाएं देने के नाम पर एक ऐसे हरिजन छात्र को सुविधाएं मिले जो सम्पन्न घर का है तथा पढ़ने में बहुत अच्छा भी नहीं है, जबकि दूसरा छात्र जो प्रतिभाशाली है और निर्धन भी है लेकिन वह केवल इसलिए उन सुविधाओं से वंचित रहे कि वह सवर्ण है, सर्वथा अनुचित है। अवर्ण लोगों को न्यूनतम योग्यताओं के न होने पर भी प्रशासन में नियुक्त करना उसी तरह अनुचित है जिस तरह उन्हें किसी दिन उनके मौलिक अधिकारों से वंचित करना घातक था।

प्रश्न ८ : अर्थतंत्र में सरकार के हस्तक्षेप के बारे में आपकी क्या राय है ?

उत्तर : सरकारका कुछ हस्तक्षेप तो आवश्यक है, जैसे न्यूनतम मजदूरी, काम करने के घंटे, वास्तविक छुट्टी, आवास आदि के मामले। किन्तु दिनानुदिन कार्य-संचालन में सरकारी हस्तक्षेप जितना कम हो उतना ही अच्छा है।

प्रश्न ९ : देश में चल रहे आर्थिक नियोजन ने जन-सामान्य को कहां तक लाभान्वित किया है ?

उत्तर : भारत जैसे अविकसित देश के लिए जहां औद्योगीकरण बहुत कम हुआ था, इस तरह का आर्थिक नियोजन बहुत आवश्यक हैं। पिछले २५ वर्षों में छोटे-मोटे काफी उद्योगों की स्थापना हुई है। कृषि-सुधार के लिए सिंचाई का प्रबन्ध भी हुआ है किन्तु देश बहुत बड़ा है और उसकी जनसंख्या बराबर बढ़ रही है इसलिए लोगों की अपेक्षाएं पूरी नहीं हो पाती। फिर भी यह तो मानना पड़ेगा कि सरकार अपनी ओर से सजग है और जितना बन पड़ता है, प्रयत्न कर रही है। मुझे आशा है कि अगले कुछ वर्षों में लोग सुखी और समृद्ध हो सकेंगे। सरकारी प्रयत्नों के साथ-साथ जनसेवकों का भी कर्तव्य है कि वे सरकार का ध्यान इस ओर दिलाते रहें तथा यथासाध्य सरकार के सहयोग से तथा स्वतंत्र रूप से भी देश का दुख-दारिद्र्य तथा निरक्षरता आदि मिटाने में सहायक हों।

प्रश्न १० : बंगला, तमिल, गुजराती आदि भाषाओं को हमारे संविधान में जैसा स्थान मिला है वैसा ही राजस्थानी भाषा को क्यों नहीं मिला ?

उत्तर : राजस्थानी भाषा का कोई भी माना हुआ एक रूप नहीं है। वह तो भिन्न-भिन्न हिस्सों में भिन्न-भिन्न रूप से बोली जाती है। हाड़ोती अलग है, ढूंढ़ाड़ी अलग, मारवाड़ी अलग है तो मेवाड़ी अलग। राजस्थानी भाषा का साहित्य भी इतना समृद्ध नहीं है जितना मराठी, बंगला आदि का। मैं स्वयं राजस्थानी भाषा का पक्षपाती हूं और यथासाध्य इसका प्रचार भी करता हूं लेकिन मेरी अपनी राय यह भी है कि हमलोग जो राजस्थानी के पक्षपाती हैं, उनका प्रयत्न इसकी एकरूपता प्रतिष्ठित करने का होना चाहिए। इस भाषा में सुसाहित्य सृजन का प्रयत्न भी होना चाहिए। आज तो हम इसे अन्य समृद्ध भाषाओं के समकक्ष नहीं रख सकते। इसके लिए हमारा प्रयत्न यह होना चाहिए कि राजस्थानी भाषा का एकरूप हो, यह समृद्ध हो, फिर सरकारी मान्यता तो यह भाषा स्वयं अपने लिए प्राप्त कर लेगी।

भागीरथजी और साहित्य

कारे जहां वानी से दुश्वारतर है कारे जहां बीनी
जिगर खूं हो तो चश्मे दिल में होती है नजर पैदा

—इकबाल

साहित्य प्रेमी या पाठक की नजर रचनाकार से कहीं अधिक गहरी होती है। भागीरथजी ने साहित्य रचना तो उतनी नहीं की लेकिन साहित्य का गहरा पठन किया, साहित्य को असीम और निश्छल प्यार दिया जिसके कोसों दूर तक वासना का कोई शोर न था।

भागीरथजी ने आम परिभाषा के मुताबिक साहित्य सृजन नहीं किया लेकिन उन्होंने बहुत ही महत्वपूर्ण काम किए हैं। एक तो राजस्थानी लोक-कथाओं को सजा-संवार कर खड़ी बोली हिन्दी में बहुत ही रोचक और पठनीय ढंग से "बहता पानी निर्मला" के शीर्षक से एक किताब के रूप में प्रकाशित करके।

भारत के विभिन्न भाषा-भाषियों को एक दूसरे के साहित्य से अवगत कराने का काम अभी नगण्य है। लोग अब इसकी जरूरत महसूस कर रहे हैं। इस काम का परिन्दा अब साहित्य के चमन में उड़ांन भरने को पर तोल रहा है। इस महत्वपूर्ण कार्य की लम्बी शृंखला की एक खूबसूरत कड़ी है—भागीरथजी की यह किताब।

इस किताब को कहानियों का चुनाव, इनका कथानक और भाषा की रवानी, स्वयं इस बात का प्रमाण है कि भागीरथजी की नजर कितनी पैनी थी और सम्वेदना कितनी गहरी, उनकी भाषा कितनी सरल एवं रोचक थी। साहित्य सृजन के यही तीन प्रधान तत्व हैं और ये सभी उस व्यक्ति में, उस हस्ती में मौजूद थे।

वेदों और वेदान्तों में प्रकृति के गूढ़ रहस्यों को ऋषियों ने ऋचाओं और श्लोकों के माध्यम से बताया है लेकिन वे जनसाधारण की समझ से बाहर है, उसकी बुद्धि की पकड़ में नहीं आते।

पौराणिक ऋषियों ने रोचक कथाओं के माध्यम से उन तथ्यों को जनसाधारण तक पहुंचने में सफलता प्राप्त की और उस आसमानी रहस्य को धरती के बाशिन्दों तक पहुंचाया। आहिस्ता-आहिस्ता ये कहानियां लोक-कथाएं बनती गईं। आज हिन्दुस्तान की सरज़मीन के कोने-कोने में बिखरा हुआ इन कहानियों का इतना बड़ा खजाना है जो शायद ही किसी और मुल्क के पास हो।

इसी खजाने के चन्द जवाहर श्री भागीरथजी ने राजस्थान की धरती से इकट्ठा करके इस किताब रूपी हार को गूंथा।

इस किताब में १०१ कहानियां पांच भागों में विभक्त करके प्रस्तुत की गई हैं।

उनका दूसरा महत्वपूर्ण काम है "राजस्थानी कहावत कोश।"

यह संकलन बड़े परिश्रम का और बड़ा ही महत्वपूर्ण काम है। राजस्थान का सही इतिहास, वहां की सही स्थिति और वहां की संस्कृति इन कहावतों में सुरक्षित है। इनको विभिन्न दृष्टिकोण से देखा जा सकता है। पूरा जीवन-दर्शन सिर्फ कहावतों के सहारे सीखा और सिखाया जा सकता है।

राजस्थान, बाकी हिन्दुस्तान की तरह ही नहीं बल्कि उससे कहीं ज्यादा बारिशों पर आश्रित रहा है। बारिश ठीक समय पर आयेगी या नहीं, फसल अच्छी होगी या नहीं इन बातों की अग्रिम सूचना, वहां के लोगों ने चींटियों के बर्ताव से लेकर नक्षत्रों और ग्रहों की गति तक से देने की कोशिश की।

एक कहावत है (देखें, राजस्थानी कहावत कोश—कहावत नं० ७३६) :

कांसै काई जमै, आभ नीलै रंग आवै।
कीड़ी काढै ईंड, चिड़ी रेती में न्हावै।
माखण गलियो माट, पवन मुख बैठे छाली।
डेडका डहक बाड़ां चढै, विषधर चढ बैठे बड़ां।
माघिया पंडत कूड़ा पतड़, घण बरसै अंतै गुणां।

यदि कांसी पर काई जमे, आकाश का रंग नीला हो जाए, चींटियां अपने अण्डों को लेकर चल पड़ें, चिड़ियां रेत में स्नान करें, बिलौने में मक्खन पिघल जाए, बकरी पवन के सामने मुख करके बैठे, मेंढक बाड़ों पर चढ़ जाएं और सांप वट वृक्षों पर जा चढ़ें तो पण्डित माघ कहता है कि वर्षा का योग न बताने वाले सारे पतड़े झूठे हो जायेंगे और वर्षा खूब होगी।

यहां बर्तनों और जीव जन्तुओं के बर्ताव से बारिश की आमद का पैगाम मिलता है तो दूसरी तरफ किस नक्षत्र की बारिश कैसी होती है, ये सब बातें लोक कहावतों में मौजूद है—नमूने के तौर पर एक कहावत देखिये (नम्बर : १२४) :

असलेखां बूठां, बैदां घरां बधावणा।

अश्लेषा नक्षत्र में जब बारिश होती है तो रोग बहुत फैलते हैं और वैद्य लोगों की आमदनी बढ़ जाती है।

ऐसी कितनी ही कहावतें इस संकलन में मौजूद हैं।

हिन्दुस्तान का इतिहास इस बात का गवाह है कि ब्राह्मणवाद ने कितनी ज्यादतियां की हैं और इसी की प्रक्रिया में बौद्ध आदि धर्मों का उदय भी हुआ। एक कहावत में बड़ी अच्छी चोट की है—(नम्बर : ३६) :

अग्रे अग्रे ब्राह्मणां, नदी नाला बरजन्ते।

मतलब ब्राह्मण सबसे आगे हैं लेकिन खतरे के वक्त नहीं।

१९५३ नम्बर कहावत है :

दुवधा में दोनूं गया, माया मिली न राम।

इसके नीचे एक दोहा है :

राधो तूं समझ्यो नईं, घर आया था स्याम।
दुवधा में दोनूं गया, माया मिली न राम॥

पहली पंक्ति दूसरी से तालमेल नहीं खाती है इसको दूसरी तरह भी सुना है

दिल चाहे दिलदार को, तन चाहे आराम।
दुविधा में दोनों गए, माया मिली न राम।

बहुत कुछ सम्भव है कि दूसरी पंक्ति हिन्दी से राजस्थानी जगत में गई हो और पहली पंक्ति की रचना यूं ही पास निभाते हुए किसी ने कर डाली हो।

इन कहावतों के विभिन्न पहलुओं पर बात करना लेख की सीमाओं के कारण सम्भव नहीं है।

सबसे महत्वपूर्ण बात यह कि इन कहावतों से माटी की गन्ध आती है और एक शहरी पाठक में तो प्राण ही फूंक देती है।

लोक-कथाओं, कहावतों और लोक-गीतों का एक महत्वपूर्ण पहलू और भी है, वह यह है कि सही इतिहास इन्हीं में छुपा रहता है।

चंगेज खां की औलाद ने जब पूरे यूरोप को गारत कर दिया था और एक दहशत का आलम वहां तारी था, ऐन उस वक्त, अचानक फौजें मंगोलिया लौट गईं। अब तक के इतिहासकारों को यह विश्वास था कि फौजों में किसी भयानक रोग के फैल जाने की वजह से वे लौट जाने पर मजबूर हुईं। मगर हाल ही में मंगोलिया के लोक-गीतों और लोक-कथाओं से हक़ीकत पता चली है, वह हकीकत यह है कि उनका नेता मर गया था और नये नेता के चुनाव के लिए उन्हें अचानक लौट जाना पड़ा था।

लोक-कथाओं और कहावतों का संकलन इतिहास की ऐसी शोध को आसान कर देता है। इन्हें गौर से पढ़ना और समझना चाहिए। इनमें कई खजाने पोशीदा होते हैं।

इतिहास की किताबों में बादशाहों के हुक्म के साथ-साथ, मयख्वार की नीयत की तरह तथ्य बदलते रहते हैं लेकिन लोक-कथाओं और कहावतों में जुग-जुगान्तर का यह विरसा पीढ़ी दर पीढ़ी सहेज कर रखा होता है।

भागीरथजी को और भाषाओं के बजाय राजस्थानी और हिन्दी से शदीद लगाव था। उनके यहां साहित्यकारों ने ही नहीं, साहित्य ने परवरिश पाई है।

खुद भागीरथजी ने अपने आपको परदों में रखने की कोशिश की। अपने साहित्य-प्रेम और साहित्य-सेवा को रहस्य की चहारदीवारी में महदूद रखना चाहा। लेकिन राजस्थान से बंगाल तक बिखरे हुए स्कूल, कालेज, संस्थाएं, शिक्षक, साहित्य-प्रेमी और साहित्यकार उनके प्यार और प्रेरणा से पैदा हुए इस रहस्य को पोशीदा नहीं रहने देते।

जब यूरेनस राशिचक्र की परिक्रमा पूरी करके वृश्चिक राशि में वापिस जा रहा था, जब १९७९ ई० का अक्तूबर का महीना अस्त होने वाला था, हिन्दी साहित्य के प्रेम जगत का यह सूर्य अस्ताचल को चला गया। अनायास मुंह से निकला :

वो इक हस्ती जिसके ग़म में जमां मकां का दिल रोया था
उससे कफन सरका के देखा जैसे कोई युग सोया था।

—रेवतीलाल शाह

दो ऐतिहासिक तार

बंगाल के १९४३ के अकाल के वक्त मुस्लिम लीग द्वारा दक्षिण अफ्रीका में यह प्रचार किया गया कि बंगाल रिलीफ कमेटी को दक्षिण अफ्रीका वासी भारतीय मुसलमान चन्दा न भेजें क्योंकि वह एक साम्प्रदायिक कमेटी है। स्व० मुहम्मद अली जिन्ना तक ने इस आशय का तार दक्षिण अफ्रीका भेजा। इससे चिंतित होकर दक्षिण अफ्रीका से बंगाल के १९४३ के अकाल में सहायता भेजने का काम करने वाले प्रमुख भारतीय कार्यकर्ता श्री सोराबजी रुस्तमजी ने भागीरथजी को दो तार भेजे। इनमें तत्कालीन बंगाल सरकार के मुख्यमंत्री व अन्य मंत्रियों तथा श्री फजलुल हक और सर अब्दुल हलीम गजनवी जैसे प्रतिष्ठित मुस्लिम नेताओं से कमेटी के विरुद्ध किये जाने वाले प्रचार का खण्डन कराने की मांग की गई ताकि मुस्लिम लीग के प्रचार के कारण कमेटी के बारे में दक्षिण अफ्रीका में संदेह का जो वातावरण पैदा हो गया था वह दूर हो सके। भागीरथजी ने इन तारों के जवाब में न केवल श्री फजलुल हक और सर अब्दुल हलीम गजनवी की ओर से वक्तव्य दिलवाया वरन् दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों का संदेह दूर करने की पूरी कोशिश की। उन्होंने सोराबजी को लिखा कि अकाल में सहायता का काम करने के पीछे बंगाल रिलीफ कमेटी का एकमात्र उद्देश्य पीड़ितों की सहायता करना है, राजनीति करना नहीं।

दोनों तारों की फोटो-प्रतिलिपियां अगले पृष्ठों पर है; मजमून इसी पृष्ठ पर हैं।

(1)

From Durban—28.11.43

LC B. Kanoria 8 Royal Exchange Place Calcutta = Confidential x Jinnah Cables x Calcutta Muslim Chamber Commerce Reliable Agency, Personal Muslim make no Distinction x please send Cables Box 2627 Durban from Fazlul Haq Ghaznavi other leading Muslim and even Hindus immediately so that very large amount already in hand could be remitted to your Committee x remitted only Rupees 26240 in absence of further Cables—Sorabjee Rustomjee Box 1610 Durban.

(2)

From PIETERMARITZBURG—4.12.43

NLT B. Kanoria 8 Royal Exchange Place, Calcutta-Confidential x Muslim Edited Journal Indian views wilfully propagating recognition of your committee means spitefulness against Muslim League Government of Bengal so that Congress Mahasabha bigots may be gratified x low attack on Dr. Shyama Prasad Mukherjee x is it possible Bengal premier and responsible members of present Ministry to send cables Box 2627. immaterial if funds are sent to your Budridasjis Committee which is also doing useful work irrespective class creed = Sorabjee Rustomjee Box 2627 Durban.

तार नम्बर—१

C. S.

INDIAN POSTS AND TELEGRAPHS DEPARTMENT

Received here at .... M. .... M.

DL KH 39 DURBAN 29 IRC 73

LC B KANDRIA 8 ROYAL EXCHANGE PLACE CALCUTTA

CONFIDENTIAL X JINNAH CABLES X CALCUTTA MUSLIM CHAMBER

COMMERCE RELIABLE AGENCY PERSONAL MUSLIM MAKE NO

DISTINCTION X PLEASE SEND CABLES BOX 2629 DURBAN FROM

FAZULHAQ GHAZNAVI OTHER LEADING MOSLIM & EVEN HINDUS

IMMEDIATELY SO THAT VERY LARGE AMOUNT ALREADY IN HAND COULD

BE REMITTED TO YOUR COMMITTEE X [illegible] ONLY RUPEES

40 IN ABSENSE OF FURTHER CABLES

SORABJEE RUSTOMJEE BOX 4610 DURBAN

तार नम्बर—२

INDIAN POSTS AND TELEGRAPHS DEPARTMENT.

NLT NIL 181 PIETERMARITZBURG 4 IRC 84

NLT B KANORIA 8 ROYAL EXCHANGE PLACE CALCUTTA

CONFIDENTIAL X MUSLIM EDITED JOURNAL INDIAN VIEWS WILFULLY

PROPAGATING RECOGNITION OF YOUR COMMITTEE MEANS

[illegible] CONGRESS AGAINST MUSLIM LEAGUE GOVERNMENT OF

BENGAL SO THAT CONGRESS MAHASABHA BIGOTS MAY BE GRATIFIED

[illegible] ATTACK ON DR SHYAMPRASAD MOOKERJEE X IS IT POSSIBLE

BENGAL PREMIER [illegible]

AND RESPONSIBLE MEMBERS OF PRESENT MINISTRY TO SEND

CABLES BOX 2627 IMMATERIAL IF FUNDS ARE SENT TO YOUR

GOORIDASJIS COMMITTEE WHICH IS ALSO DOING USEFUL

WORK IRRESPECTIVE CLASS CREED

I SORABJEE RUSTOMJEE BOX 2627 DURBAN

The sequence of entries at the beginning of this telegram is—class of telegram, time [illegible] serial number in the case of foreign Telegrams [illegible] office of origin, date, service instructions (if any), and number of words.

This form must accompany any inquiry respecting this telegram.

Elan Press, Calcutta—No. 146 (5173.B.123) 17-11-42—1,00,000 Bks.

गांधीजी का निर्देश-पत्र

Phone {CAL. 3139 / CAL. 6600

CENTRAL PEACE COMMITTEE

Sj. Sudhir Ray Choudhury, Mayor
Chairman.

Sj. Deven Sen, M. L. A.
Secretary.

CORPORATION BUILDING
Surendra Banerji Road, Calcutta.

Dated..........................194

मजमून : हिन्दू-मुस्लिम दंगा के कारण जिन गरीब लोगों को अपना घर छोड़ना पड़ा है या जिनके पास छुड़वाया गया है और जिनके घर जला दिये गये हैं या और किसी तरह से बर्बाद किये गये हैं उन लोगों की पुनर्बसती के लिए और जहां तक जरूरत महसूस किया जाय वहां तक उनकी परवरिश करने के लिए पैसे इकट्ठे करने के लिए यह कमिटि बनायी जाती है। जिसका काम पैसा इकट्ठा करना और ऊपर बताए हुए कामों में खरच करना होगा। इस कमिटी के सदर डा० प्रफुल्लोचन्द्र घोष होंगे। मन्त्री और खजान्ची भागीरथजी कानोरिया होंगे।

Phone { CAL. 3139 / CAL. 6800

CENTRAL PEACE COMMITTEE

Sj. Sudhir Roy Choudhury, Mayor
Chairman.
Sj. Deven Sen, M. L. A.
Secretary.

CORPORATION BUILDING
Surendra Banerji Road, Calcutta.

Dated 194

अर्थ समिति बनाने के लिए मेरी राय साफ है कि यह कमिटि अगर मध्यवर्गीय (अर्थात् सेंट्रल) पीस (शांति) कमेटी के मातहत हो सके तो अच्छा हो। अगर ऐसा न बन सके तो भी अर्थ कमिटी को बनना ही चाहिए और जितनी जल्दी पैसे इकट्ठे हो सकें और उसका खरच पुनर्बसती के लिए किया जाय उतना अच्छा। और यह काम जल्दी और अच्छा होने के लिए मैं जरूरी समझता हूं कि हर हालत में यह समिति स्वावलम्बी होनी चाहिए। ६ या ८ दिसम्बर, १९४७ हस्ताक्षर : मो० क० गांधी

नोट : कलकत्ता के हिन्दू-मुस्लिम दंगों में उजड़े लोगों के पुनर्वास के लिए गांधीजी ने ६ या ८ सितम्बर, १९४७ को सेंट्रल पीस कमेटी के तहत एक फिनान्स सब कमेटी गठित करने का निर्देश दिया था। गांधीजी ने इस अवसर पर जो डिक्टेशन दिया वह भागीरथजी ने लिखा। निर्देश-पत्र पर गांधीजी के हस्ताक्षर हैं।

भागीरथजी कानोड़िया का वंश-वृक्ष
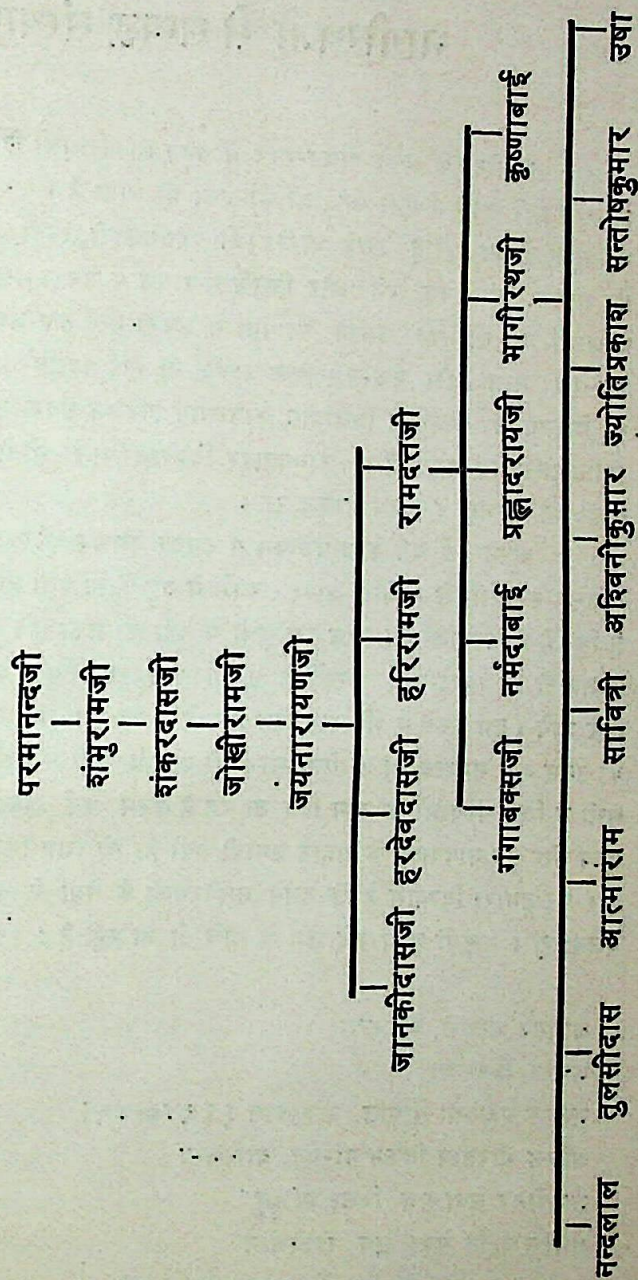
भागीरथजी से सम्बद्ध संस्थाएं

भागीरथजी अपने जीवन-काल में बहुत सी संस्थाओं से सम्बद्ध रहे। इस ग्रन्थ के बहुत सारे लेखों में ऐसी संस्थाओं की चर्चा भी आयी है। यहां उन संस्थाओं की एक सूची दी जा रही है जिनके भागीरथजी पदाधिकारी, ट्रस्टी, कोषाध्यक्ष, कार्यकारिणी के सदस्य, संस्थापक रहे और जिनके संचालन में उनका प्रमुख हिस्सा रहा। कई संस्थाओं के तो वह उनकी स्थापना से अपनी मृत्यु तक अध्यक्ष रहे और कई के तो १५-१५ साल और २०-२५ साल अध्यक्ष या कोई पदाधिकारी। ऐसी संस्थाओं में श्री शिक्षायतन, वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान हरिजन सेवक संघ, राजस्थान आदिम जाति सेवक संघ प्रमुख हैं। रायबहादुर विश्वेश्वरलाल मोतीलाल हलवासिया ट्रस्ट से तो वह लगभग ४२ वर्ष सम्बद्ध रहे।

अपने ८५ वर्ष के दीर्घजीवन में उनका देशभर और खासकर राजस्थान की अगिनत संस्थाओं से सम्बन्ध आया। इनमें से बहुतों का पता ही नहीं चल पाया। जाहिर है कि ऐसी संस्थाओं का नाम इस सूची में नहीं आ सका है। भागीरथजी की मृत्यु पर शेखावाटी के छोटे-छोटे कस्बों के पुस्तकालयों, स्कूलों और अन्य संस्थाओं से बहुत से तार आये। हम इनमें से भी अधिकांश के बारे में यह पता नहीं लगा पाये कि भागीरथजी का उनसे क्या सम्बन्ध था। ऐसी संस्थाओं को भी सूची में शामिल नहीं किया गया है। सूची में जिन संस्थाओं के नाम दिये जा रहे हैं उनमें कई अब नहीं है। यह सूची मुख्य तौर पर याददाश्त के सहारे बनायी गयी है, सो यह निश्चय ही काफी अधूरी है। पर हमारा विश्वास है कि इससे भागीरथजी के सेवा के व्यापक-क्षेत्र का पता तो चलेगा ही। सूची अकारादि क्रम से नीचे दी जा रही है :

अभिनव भारती, कलकत्ता
अर्चना, कलकत्ता
अकाल सहायता समिति, राजस्थान (१९४८-४९)
अखिल भारतीय विक्रम परिषद, वाराणसी
अलसीसर सेवा संघ, जिला झुंझुनू
आदिम जाति सेवक संघ, राजस्थान
आई० एन० ए० इन्क्वायरी एण्ड रिलीफ कमेटी (१९४५-४६)
आल इन्डिया सेभ द चिल्ड्रेन कमेटी
कानोड़िया महिला कालेज, जयपुर
कन्हैयालाल सहल हिन्दी-राजस्थानी शोध संस्थान
कथालोक (पत्रिका) दिल्ली)
गांधी नैशनल मेमोरियल फंड (१९४८-४९)

गो सेवा संघ, बीकानेर
गांधी विद्यालय, सरदार शहर, बीकानेर
जन कल्याण समिति—पीपुल्स वेलफेयर सोसाइटी, सीकर
जवाहिर विद्यापीठ, कानोड़, उदयपुर
जसीडीह आरोग्य भवन, जसीडीह
ट्यूनीसिया सहायता समिति, कलकत्ता (१९५३)
तिलक पुस्तकालय, रानीगंज
तुलसी पुस्तकालय, कलकत्ता
तरुण संघ, कलकत्ता
नवजीवन (साप्ताहिक पत्र), उदयपुर
नया समाज (मासिक १९४८ से १९५८), कलकत्ता
पारिवारिकी, कलकत्ता
पूर्व भारत राष्ट्र भाषा प्रचार सभा
पश्चिम बंगाल प्रदेश रिलीफ कमेटी (१९५३)
पश्चिमी सीमा विकास समिति, राजस्थान
प्रयाग महिला विद्यापीठ, प्रयाग
बंगाल रिलीफ कमेटी (बंगाल का अकाल, १९४३)
बंगाल सेंट्रल रिलीफ कमेटी (१९४६-१९४७)
बंगवाणी, नवद्वीप, प० बंगाल
बड़ाबाजार कुमार सभा पुस्तकालय, कलकत्ता
बलरामपुर अभय आश्रम, प० बंगाल
बाल मन्दिर, जयपुर
बाल सेवा सदन, बेलूर, हवड़ा
भारतीय भाषा परिषद, कलकत्ता
भूपाल नोबल्स कालेज, उदयपुर
भारतीय लोक कला मंडल, उदयपुर
भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ
भारत स्काउट्स एण्ड गाइड्स, कलकत्ता
मातृ सेवा सदन, कलकत्ता
मारवाड़ी बालिका विद्यालय, कलकत्ता
मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी, कलकत्ता
मारवाड़ी अग्रवाल महासभा, (१९१८-२६)
महिला मंडल, उदयपुर
मरु-श्री (पत्रिका) चूरू, राजस्थान
मरु भारती (पत्रिका), पिलानी
महिला हरिजन सेवा समिति, किशनगढ़
राजस्थान जल बोर्ड (१९५६-५७)

राजस्थान बाल सेवा सदन, फतेहपुर
राजस्थान अकाल सेवा समिति (१९५२-५३)
राजस्थान नशाबंदी समिति
राजस्थान सेवक संघ
राजस्थान बाल-सेवा सदन, फतेहपुर
राजस्थानी प्रचारिणी सभा, कलकत्ता
राजस्थान छात्र निवास ट्रस्ट, कलकत्ता
राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर
राजस्थान हरिजन सेवक संघ
राजपूताना अकाल सहायता समिति (१९३८-३९), कलकत्ता
रघुमल चैरिटी ट्रस्ट, कलकत्ता
रघुमल आर्य विद्यालय ट्रस्ट, कलकत्ता
रायबहादुर विश्वेश्वरलाल मोतीलाल हलवासिया ट्रस्ट, कलकत्ता
रामकृष्ण मिशन, नीमपीठ, २४ परगना, प० बंगाल
रामकृष्ण मिशन इंस्टीट्यूट आफ कल्चर, कलकत्ता
रूपायण संस्थान, बोरून्दा, जोधपुर
लेडी अबला बोस स्मारक समिति, कलकत्ता
लोक संस्कृति शोध संस्थान, नगर-श्री चूरू
लोक सेवा समिति, खीरपाई, मेदिनीपुर
वनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली
विद्या भवन, उदयपुर
विश्वभारती, शांतिनिकेतन
श्री सार्वजनिक पुस्तकालय, मुकुन्दगढ़ (१९०९ में स्थापित)
शारदा सदन महाविद्यालय, माध्यमिक स्कूल, प्राइमरी स्कूल, मुकुन्दगढ़
श्री शिक्षायतन स्कूल, कालेज, कलकत्ता
श्री महिला जागृति परिषद ट्रस्ट, सादूलगंज, बीकानेर
श्री सरस्वती पुस्तकालय, फतेहपुर
शिक्षा सदन ट्रस्ट, कलकत्ता
शुद्ध खादी भण्डार, कलकत्ता
संगीत श्यामला, कलकत्ता-दिल्ली
साहित्यकार संसद, प्रयाग
सेंट्रल पीस कमेटी की फिनान्स सब कमेटी (गांधीजी द्वारा स्थापित सितम्बर, १९४७)
सीकर जिला खादी ग्रामोदय समिति, रींगस
सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली
सावित्री गर्ल्स कालेज, अजमेर
हरिजन उत्थान समिति, कलकत्ता (स्थापित १९३४)
हरिजन सेवक संघ, दिल्ली
हिन्द सेवा संघ, कलकत्ता (१९४७-४८)
हिन्दी भवन, शांतिनिकेतन
हिन्दी प्रचार पुस्तकालय, कलकत्ता